गीता दर्शन, भाग पांच

अनुक्रम

अध्याय 10
1. अज्ञेय जीवन-रहस्य...3
2. रूपांतरण का आधार--निष्कंप चित्त और जागरूकता..............................22
3. ईश्वर अर्थात ऐश्वर्य...41
4. ध्यान की छाया है समर्पण...59
5. कृष्ण की भगवत्ता और डांवाडोल अर्जुन..79
6. स्वभाव की पहचान...97
7. शास्त्र इशारे हैं...120
8. सगुण प्रतीक--सृजनात्मकता, प्रकाश, संगीत और बोध के...................140
9. मृत्यु भी मैं हूं..161 10...आभिजात्य का फूल
.... 180
11..काम का राम में रूपांतरण
.... 200
12..शस्त्रधारियों में राम
.... 221
13...मैं शाश्वत समय हूं
.... 243
14..परम गोपनीय--मौन
.... 265
15...मंजिल है स्वयं में
.... 286

अध्याय 11
1. विराट से साक्षात की तैयारी..305 16..दिव्य-चक्षु की पूर्व-भूमिका
.... 324
17..धर्म है आश्चर्य की खोज
.... 344
18...परमात्मा का भयावह रूप
.... 363
19..अचुनाव अतिक्रमण है
.... 385
20..पूरब और पश्चिमः नियति और पुरुषार्थ
.... 404

1

21..साधना के चार चरण
....423
22..बेशर्त स्वीकार
....443
23...चरण-□□□□□□ □□ □□□□□□□□
....462
24...मनुष्य बीज है परमात्मा का
....481
25...मांग और प्रार्थना
....502
26..□□□□□□□ □□□□□□□□
....523

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
पहला प्रवचन

अज्ञेय जीवन-रहस्य

श्रीमद्भगवद्गीता
अथ दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
भूय एव महाबाहोशृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।। 1।।
न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।। 2।।
यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। 3।।
भगवान श्रीकृष्ण बोले, हे महाबाहो, फिर भी मेरे परम वचन श्रवण कर, जो
कि मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिए हित की इच्छा से कहूंगा।
हे अर्जुन, मेरी उत्पत्ति को अर्थात विभूतिसहित लीला से प्रकट होने
को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं का और महर्षियों का भी आदि कारण हूं।
और जो मेरे को अजन्मा, अनादि तथा लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

जीवन है एक रहस्य। गणित की पहेली जैसा नहीं कि श्रम से उसे हल किया जा सके। रहस्य जीवन का कोई सांयोगिक गुण नहीं है; रहस्य जीवन का स्वभाव है।
जीवन है रहस्य ही।
अज्ञात है बहुत कुछ, अननोन है बहुत कुछ, लेकिन वह ज्ञात हो जाएगा। आज नहीं कल, हम उसे जान लेंगे। जो आज नहीं जाना है, वह भी कल जाना जा सकेगा। जो कभी भी जाना जा सकता है, उसका नाम रहस्य नहीं है।
रहस्य से अर्थ है, जो कभी भी जाना नहीं जा सकेगा, जो अज्ञेय है, अननोएबल है। जानने की आकांक्षा प्रगाढ़ है जिसके लिए, जिस तक पहुंचने के लिए जीवन दौड़ता है, जिससे मिलने की प्यास है और फिर भी समस्त श्रम और समस्त इच्छाएं और सारी अभीप्सा और सारी प्यासें व्यर्थ रह जाती हैं और हम उसके निकट ही पहुंच पाते हैं, उसका स्पर्श होता है, लेकिन उसे जान नहीं पाते। अज्ञेय से अर्थ है, जिसे हम किसी भांति पहचान भी लेते हैं, फिर भी नहीं
कह सकते कि हमने उसे जान लिया। ऐसे अज्ञात, ऐसे अज्ञेय के संबंध में जो वचन हैं, कृष्ण उन्हें परम वचन कहते हैं। इस सूत्र में जो बहुत कीमती शब्द है, वह है परम वचन। उसे हम थोड़ा समझें।
कृष्ण ने कहा, हे महाबाहो, फिर भी मेरे परम वचन श्रवण कर, जो कि मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिए हित की इच्छा से कहूंगा।
साधारणतः, परम वचन शब्द को पढ़ते समय कोई विशेष ख्याल मन में नहीं आता है। और इसीलिए उसके विशेष अर्थ भी चूक जाते हैं। एक वचन तो होता है, जिसे हम कहते हैं, सत्य वचन। एक वचन होता है, जिसे हम कहते हैं, असत्य वचन। परम वचन क्या है? अगर भाषाकोश में खोजने जाएंगे, तो भाषाकोश कहेगा, सत्य वचन ही परम वचन है। लेकिन वह ठीक नहीं है बात। सत्य वचन का अर्थ ही होता है, जिसके विपरीत भी असत्य वचन हो सकता है।
परम वचन का अर्थ होता है, जिसके विपरीत कोई वचन नहीं हो सकता, जिसके विपरीत किसी वक्तव्य की कोई संभावना नहीं है। पहली बात।
सत्य, जो आज सत्य मालूम पड़ता है, कल असत्य हो सकता है। जो आज असत्य मालूम पड़ता है, कल खोज से पता चले कि सत्य है। इसलिए विज्ञान जिसे सत्य कहता है, कल उसे असत्य कहने को मजबूर हो जाता है। न्यूटन का जो सत्य था, वह आइंस्टीन का सत्य नहीं है। और आइंस्टीन का जो सत्य है, वह आने वाली सदी का

सत्य नहीं होगा। और आज कोई भी वैज्ञानिक यह नहीं कह सकता कि हम जो सत्य उदघोषित कर रहे हैं, वह सदा ही सत्य रहेगा।
सत्य असत्य हो सकते हैं। असत्य भी कल खोजे जाएं और पता चले, तो सत्य बन सकते हैं।
परम वचन का अर्थ है, जिसे हम न सत्य कह सकते हैं और न असत्य कह सकते हैं। क्योंकि हम जिसे सत्य कह सकते हैं, वह हमारे कारण कल असत्य भी हो सकता है। परम वचन का अर्थ है कि हमारे सत्य और असत्य दोनों के जो पार है; हम जिसके संबंध में कभी भी निर्णायक न हो सकेंगे।
इस संबंध में जो लोग आधुनिक चिंतन से परिचित हैं, उन्हें ज्ञात होगा
कि बर्ट्रेंड रसेल, विट्गिंस्टीन, ए.जे.अय्यर, ऐसे कुछ पश्चिम के मनीषियों ने, जिन्हें कृष्ण ने परम वचन कहा है, उन्हीं वचनों को नानसेंस, उन्हीं वचनों को व्यर्थ वचन कहा है। ए.जे. अय्यर ने बड़ी मेहनत की है यह बात सिद्ध करने की कि कुछ वचन ऐसे हैं, जो अर्थहीन हैं, मीनिंगलेस हैं, नानसेंस हैं। उन वचनों को अय्यर ने अर्थहीन कहा है, जिनको न तो हम सत्य सिद्ध कर सकें, और न असत्य। जिनके पक्ष में भी कोई प्रमाण न दिया जा सके और जिनके विपक्ष में भी कोई प्रमाण न दिया जा सके। जैसे कोई आदमी कहता है कि ईश्वर है। अय्यर, विट्गिंस्टीन और रसेल कहेंगे कि यह वचन अर्थहीन है। क्योंकि ईश्वर है, यह भी अब तक सिद्ध नहीं किया जा सका; और नहीं है, यह भी सिद्ध नहीं किया जा सका। और आदमी के पास कोई भी उपाय नहीं है इस वचन की सत्यता या असत्यता को परखने के लिए। वेरीफिकेशन के लिए कोई उपाय नहीं है।
तो जिस वक्तव्य की जांच का कोई उपाय ही न हो, उस वक्तव्य को न तो सत्य कहा जा सकता है, और न असत्य। क्योंकि असत्य का अर्थ हुआ कि जांचा और पाया कि गलत है। सत्य का अर्थ हुआ कि जांचा और पाया कि सत्य है।
लेकिन ईश्वर है, इस वक्तव्य के पक्ष या विपक्ष में कोई भी प्रमाण आज
तक इकट्ठे नहीं किए जा सके। आस्तिक कहे चले जाते हैं, ईश्वर है; नास्तिक कहे चले जाते हैं, ईश्वर नहीं है। आस्तिकों की दलीलों का नास्तिकों पर कोई प्रभाव नहीं है; और नास्तिकों की दलीलों का आस्तिकों पर कोई प्रभाव नहीं है। और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आस्तिक नास्तिक हो जाते हैं, नास्तिक आस्तिक हो जाते हैं। लेकिन वक्तव्य वैसे के वैसे ही खड़े रहते हैं।
खलील जिब्रान ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। लिखा है, एक गांव में एक महाआस्तिक और एक महानास्तिक था। सारा गांव परेशान था उनके कारण। क्योंकि आस्तिक लोगों को समझाता था कि ईश्वर है; नास्तिक समझाता था कि नहीं है। आखिर गांव ने उन दोनों से कहा कि तुम निर्णय पर पहुंच जाओ कुछ, ताकि हमारी परेशानी कम हो।
पूर्णिमा की एक रात, गांव ने विवाद का आयोजन किया और नास्तिक और आस्तिक ने प्रबल प्रमाण दिए। आस्तिक ने ऐसे प्रमाण दिए, जिनका खंडन मुश्किल था। नास्तिक ने ऐसा खंडन किया कि आस्तिकता के पैर डगमगा जाएं। रातभर विवाद चला और विवाद बड़ा परिणामकारी रहा। आस्तिक के प्रमाण इतने प्रभावशाली सिद्ध हुए कि सुबह होते-होते नास्तिक आस्तिक हो गया; और नास्तिक के तर्क इतने प्रभावशाली सिद्ध हुए कि सुबह होते-होते आस्तिक नास्तिक हो गया। गांव की मुसीबत जारी रही! गांव में एक महाआस्तिक और एक महानास्तिक बना रहा।
अब तक जितने भी वक्तव्य आस्तिकों और नास्तिकों ने दिए हैं, उनसे कुछ
भी सिद्ध नहीं होता। न तो यह सिद्ध होता है कि ईश्वर है; और न यह सिद्ध होता है कि ईश्वर नहीं है। और ऐसी कोई कसौटी नहीं है, जिस पर जांचा जा सके कि कौन सही है। इसलिए अय्यर और उनके साथी दार्शनिक कहते हैं कि ये वक्तव्य नानसेंस हैं। इन वक्तव्यों से कुछ अर्थ नहीं निकलता, ये अर्थहीन हैं। तो अय्यर कहता है कि न तो ईश्वर है, यह सत्य वचन है और न यह असत्य वचन है। यह दोनों नहीं है। यह व्यर्थ वचन है।
कृष्ण इसी वचन को परम वचन कहते हैं। तो थोड़ा समझना पड़ेगा कि कृष्ण का प्रयोजन क्या है? अगर अय्यर और विट्गिंस्टीन सही हैं, तो कृष्ण का वचन अर्थहीन वचन है। लेकिन कृष्ण उसे परम वचन कहते हैं। और अर्जुन से वे कहते

हैं कि मैं तुझे तेरे प्रेम के कारण और तेरे हित की दृष्टि से कुछ परम वचन कहूंगा, तू उन्हें सुन।
इसे हम ऐसा बांट लें। सत्य वचन उसे कहते हैं, जिसके लिए यथार्थ से प्रमाण उपलब्ध हो जाएं। अगर मैं कहूं, आग हाथ को जलाती है, तो यह सत्य वचन है। क्योंकि आप आग में हाथ डालकर देख सकते हैं और प्रमाण मिल जाएगा कि आग जलाती है या नहीं जलाती है। अगर मैं कहूं, आग शीतल है, तो आप हाथ डालकर देख सकते हैं कि यह वचन असत्य है। क्योंकि आग शीतल नहीं है, इसका प्रमाण मिल जाता है; वचन के अतिरिक्त प्रमाण उपलब्ध हो जाता है।
अय्यर कहता है कि एक तीसरे तरह का वचन है, और समस्त धार्मिक वचन, मेटाफिजिकल स्टेटमेंट्स अय्यर के हिसाब से व्यर्थ हैं, क्योंकि उनका कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। कृष्ण के हिसाब से वे वचन परम हैं, क्योंकि उनका इस जगत के अनुभव में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता, लेकिन अगर दूसरे जगत में कोई प्रवेश करने को तैयार हो, तो उनका प्रमाण मिलता है। अप्रमाणित वे नहीं हैं।
एक अंधे आदमी के लिए, प्रकाश है, यह अप्रमाणित वचन होगा। क्योंकि अंधे
के सामने कोई भी प्रमाण नहीं जुटाया जा सकता कि प्रकाश है या नहीं है। अंधा अय्यर के साथ राजी हो जाएगा और कहेगा कि यह वचन व्यर्थ है, क्योंकि न तो इसके पक्ष में तुम कोई प्रमाण दे सकते हो, और न विपक्ष में। क्योंकि अंधा तैयार है, अगर प्रकाश हो तो मैं उसे हाथ से छूकर देख लूं; कान से सुनकर देख लूं; या जीभ से चखकर देख लूं। अंधा राजी है। उसके पास जो भी इंद्रियां हैं, उन इंद्रियों के माध्यम से प्रमाण मिल सकता हो, तो अंधा प्रमाण खोजने के लिए राजी है।
लेकिन हाथ प्रकाश को छू नहीं सकते, फिर भी प्रकाश है। और कान प्रकाश
को सुन नहीं सकते, फिर भी प्रकाश है। और जीभ प्रकाश का स्वाद नहीं ले पाएगी, फिर भी प्रकाश है। और नासारंध्र प्रकाश की गंध नहीं पा सकेंगे, फिर भी प्रकाश है। और अंधे की चार इंद्रियां, जिसको कहें कि कोई प्रमाण नहीं है, अंधा कैसे मानने को राजी हो कि जो वक्तव्य है, वह व्यर्थ नहीं है! अंधे की सीमा के भीतर प्रमाण नहीं जुटाए जा सकते, इससे कोई चीज गलत नहीं हो जाती। इससे यह भी हो सकता है कि अंधे की सीमा बहुत सीमित है। अंधे की सीमा भी बड़ी की जा सकती है। अंधे की आंखें ठीक की जा सकती हैं। आंखों के ठीक होते ही प्रकाश का प्रमाण मिल जाएगा।
लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि स्वभावतः हम सभी अंधे हैं। जिस आंख से जीवन के परम सत्य का अनुभव हो सके, वह आंख सबके पास है, लेकिन बंद है। इसलिए कभी अगर एक व्यक्ति की आंख भी खुल जाए, तो वह प्रमाण उसके लिए ही प्रमाण होता है, शेष के लिए प्रमाण नहीं होता है।
हमने मीरा को नाचते देखा है, लेकिन मीरा हमें पागल मालूम पड़ती है। क्योंकि हमें मीरा का नाच ही दिखाई पड़ता है; वह नहीं दिखाई पड़ता है, जिसको देखकर मीरा नाच रही है। हमने कबीर को गीत गाते देखा है। लेकिन हमें कबीर के गीत ही सुनाई पड़ते हैं, कबीर के भीतर गीत का जन्म हुआ है जिसके स्पर्श से, उसका हमें कोई पता नहीं चलता। हमने बुद्ध को मौन होते देखा है, हमने बुद्ध को शांत होते देखा है, ऐसी शांति जैसी कि पृथ्वी पर कभी-कभार उभरती है, कभी-कभार उतरती है। लेकिन क्या देखकर बुद्ध शांत हो गए हैं, क्या देखकर उनका मन ठगा रहकर चुप हो गया है, उसका हमें कोई भी पता नहीं।
तो हमारे भीतर जिसकी आंख भी खुलती है, वह हम अंधों के बीच अंधा मालूम पड़ने लगता है, क्योंकि हमने अपने अंधेपन को आंख समझा हुआ है। हमसे जो भिन्न होता है, वह हमें अंधा मालूम पड़ता है।
परम वचन कृष्ण की दृष्टि में वे वचन हैं, जो हमारी मौजूद हालत में तो प्रमाण नहीं बन सकते, लेकिन अगर हम अपनी हालत बदलने को राजी हों, तो उनके हमें प्रमाण मिल सकते हैं। परम वचन का अर्थ हुआ, हम जैसे हैं, वैसे ही रहकर अगर हम उनका प्रमाण चाहें, तो प्रमाण नहीं मिलेंगे। अगर हम अपने को बदलने को राजी हों, तो प्रमाण मिल जाएंगे।
यहां दो बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए।

विज्ञान आदमी को बदलने की कोई जरूरत नहीं मानता। विज्ञान मानता है कि आदमी जैसा है, सत्य वैसे ही पाया जा सकता है। विज्ञान चीजों को बदलता है, चीजों को तोड़ता है, चीजों का विश्लेषण करता है। अगर अणु की खोज करनी पड़ी है, तो दो हजार वर्ष लग गए हैं। हेराक्लतु से लेकर आइंस्टीन तक दो हजार वर्षों तक अणु का चिंतन चला है, अणु की शोध चली है, अणु का खंडन चला है, और तब जाकर हमें अणु के सत्य का पता चला है। दो हजार साल हमें अणु के साथ मेहनत करनी पड़ी है।
विज्ञान वस्तु के साथ मेहनत करता है, धर्म व्यक्ति के साथ मेहनत करता है। विज्ञान कहता है, वस्तु को हम ऐसी स्थिति में ले आएं, जहां सत्य का उदघाटन हो जाए। धर्म कहता है, व्यक्ति को हम ऐसी स्थिति में ले आएं, जहां वह सत्य को देखने में समर्थ हो जाए।
विज्ञान की सारी चेष्टा वस्तु के साथ है, धर्म की सारी चेष्टा व्यक्ति के साथ है। व्यक्ति बदले, तो सत्य का पता चलेगा। विज्ञान कहता है, वस्तु को हम समझ लें, तो सत्य का पता चल जाएगा। स्वभावतः, विज्ञान की खोज पदार्थ की खोज है, धर्म की खोज चेतना की खोज है।
कृष्ण कहते हैं, ये परम वचन हैं। परम वचन का अर्थ है, अर्जुन, अगर तू बदले, तो इनके प्रमाण को जान सकेगा। पहली बात। अर्जुन की बदलाहट पर ही तय होगा कि ये वचन सत्य हैं या असत्य। अर्जुन जैसा है, वैसा रहते हुए इन वचनों के संबंध में कुछ भी नहीं बोल सकता है।
इसलिए धर्म ने श्रद्धा को आधारभूत बनाया है। क्योंकि इन परम वचनों को मानकर चले बिना कोई उपाय नहीं है।
एक सूफी बोध-कथा मुझे स्मरण आती है। एक छोटी-सी नदी सागर से मिलने को चली है। नदी छोटी हो या बड़ी, सागर से मिलने की प्यास तो बराबर ही होती है, छोटी नदी में भी और बड़ी नदी में भी। छोटा-सा झरना भी सागर से मिलने को उतना ही आतुर होता है, जितनी कोई बड़ी गंगा हो। नदी के अस्तित्व का अर्थ ही सागर से मिलन है।
नदी भाग रही है सागर से मिलने को, लेकिन एक रेगिस्तान में भटक गई, एक मरुस्थल में भटक गई। सागर तक पहुंचने की कोशिश व्यर्थ मालूम होने लगी, और नदी के प्राण संकट में पड़ गए। रेत नदी को पीने लगी। दो-चार कदम चलती है, और नदी खोती है, और सिर्फ गीली रेत ही रह जाती है।
नदी बहुत घबड़ा गई। सागर तक पहुंचने के सपने का क्या होगा? नदी ने रोकर, चीखकर रेगिस्तान की रेत से पूछा कि क्या मैं सागर तक कभी भी नहीं पहुंच पाऊंगी? क्योंकि रेगिस्तान मालूम पड़ता है अनंत, और चार कदम मैं चलती नहीं हूं और रेत में मेरा पानी खो जाता है, मेरा जीवन सूख जाता है! मैं सागर तक पहुंच पाऊंगी या नहीं?
रेत ने कहा कि सागर तक पहुंचने का एक उपाय है। ऊपर देख, हवाओं के बवंडर जोर से उड़े चले जा रहे हैं। रेत ने कहा कि अगर तू भी हवाओं की तरह हो जा, तो सागर तक पहुंच जाएगी। लेकिन अगर नदी की तरह ही तूने सागर तक पहुंचने की कोशिश की, तो रेगिस्तान बहुत बड़ा है, यह तुझे पी जाएगा। और हजारों-हजारों साल की कोशिश के बाद भी तू एक दलदल से ज्यादा नहीं हो पाएगी, सागर तक पहुंचना बहुत मुश्किल है। तू हवा की यात्रा पर निकल।
उस नदी ने कहा कि रेत, तू पागल तो नहीं है? मैं नदी हूं, मैं आकाश में
उड़ नहीं सकती! रेत ने कहा कि तू अगर मिटने को राजी हो, तो आकाश में भी उड़ने का उपाय है। अगर तू तप जाए, वाष्पीभूत हो जाए, तो तू हवाओं पर सवार हो सकती है; हवाएं तेरे वाहन बन जाएंगी और तुझे सागर तक पहुंचा देंगी।
उस नदी ने कहा, मिटने को! मैं स्वयं रहते ही सागर से मिलने की आकांक्षा रखती हूं, मिटकर नहीं। मिटकर मिलने का मजा ही क्या? अगर मैं मिट गई और सागर से मिलना भी हो गया, तो उसका सार क्या है? मैं बचते हुए, रहते हुए सागर से मिलना चाहती हूं।
नदी की बात को सुनकर रेत ने कहा, तब फिर कोई उपाय नहीं है। आज तक सागर
से मिलने जो भी चला है, मिटे बिना नहीं मिल पाया है। और जिसने अपने को बचाने की कोशिश की है, वह मरुस्थल में खो गया है। मैंने और नदियों को भी मरुस्थल में खोते देखा है, और मैंने कुछ नदियों को आकाश पर चढ़कर सागर तक

पहुंचते भी देखा है। तू मिटने को राजी हो जा। तुझे अभी पता नहीं कि मिटकर ही तू वस्तुतः सागर हो पाएगी।
लेकिन नदी को भरोसा कैसे आए! नदी ने कहा, यह मेरा अनुभव नहीं है। मिटने
की हिम्मत नहीं जुटती। और फिर अगर मैं सागर से मिल भी गई मिटकर, तो सागर में मेरा होना रहेगा! मैं बचूंगी! क्या भरोसा? कैसे श्रद्धा करूं? जो मेरा अनुभव नहीं है, उसे कैसे मानूं?
तो उस मरुस्थल की रेत ने कहा, दो ही उपाय हैं। या तो अनुभव हो, तो मानना
आ जाता है; और या मानना हो, तो अनुभव की यात्रा शुरू होती है। अनुभव तुझे नहीं है, और बिना यह माने कि मिटकर भी तू बचेगी, तुझे अनुभव भी कभी नहीं होगा। इसे तू श्रद्धा से स्वीकार कर ले।
परम वचन का अर्थ है, जो हमारा अनुभव नहीं है, लेकिन जिसकी हमें प्यास है। जिससे हमारा परिचय नहीं है, लेकिन जिसकी हमारे हृदय में आकांक्षा है। जिसे हमने जाना नहीं है, लेकिन जिसे खोजना है। ऐसी जिसकी अभीप्सा है, उसे कहीं न कहीं किसी न किसी क्षण में ऐसा कदम भी उठाना पड़ेगा, जो अज्ञात में है, अननोन में है।
अर्जुन सरिता की भांति है। उसे कुछ भी पता नहीं है। वह जिस अज्ञात सत्य को जानने की प्रेरणा से भर गया है, उसका उसे कोई भी अनुभव नहीं है। वह जिस परम गुह्य की तलाश कर रहा है, प्रश्न पूछ रहा है, जिज्ञासा कर रहा है, उसकी उसे कोई भी प्रतीति नहीं है। इसलिए कृष्ण उससे कहते हैं कि मैं परम वचन तुझसे कहता हूं।
परम वचन का दूसरा अर्थ हुआ कि अर्जुन, अभी तुझे श्रद्धा से ही मान लेना पड़ेगा। जैसा तू है, ऐसी स्थिति में तेरी बुद्धि काम नहीं पड़ेगी। अगर तू श्रद्धा से मान ले और यात्रा पर निकल जाए रूपांतरण की, तो तू भी जान सकेगा। जो मैं कह रहा हूं, वह सत्य है। लेकिन वह सत्य तेरे रूपांतरित चित्त को ही अनुभव में आएगा। तू जैसा है, वैसा ही उस सत्य से तेरा कोई संबंध नहीं हो सकता। परम वचन का यह भी अर्थ है कि उसे श्रद्धा से ही स्वीकार कर लेना पड़ेगा।
और तीसरा अर्थ भी ख्याल में ले लें, तो फिर यह सूत्र हमारी समझ में आसान हो जाएगा।
परम वचन का अर्थ तीसरा, आत्यंतिक अर्थ है, ऐसा वचन, जो समय और काल से रूपांतरित नहीं होता, परिवर्तित नहीं होता। हमारे सारे सत्य सामयिक हैं। समय बदल जाए, सत्य को बदलना पड़ता है। हमारे सभी सत्य समय की शर्तों से बंधे हुए हैं। लेकिन क्या कोई ऐसा सत्य भी है, जो समय की शर्त से बंधा हुआ नहीं है? कितना ही समय बदले और जीवन का कितना ही रूपांतरण हो जाए, उस सत्य में कोई अंतर नहीं पड़ेगा।
आपने रास्ते पर बैलगाड़ी को चलते हुए देखा है। चाक चलता है, चलता चला जाता है। प्रतिपल चलना ही उसका काम है। लेकिन उस चाक के बीच में एक कील है, जो खड़ी रहती है, जो चलती नहीं। मीलों चल जाए चाक, कील अपनी जगह ही बनी रहती है। कील ठहरी हुई है। और मजा यह है कि ठहरी हुई कील के आधार पर ही चाक का घूमना होता है। अगर कील भी घूम जाए, तो चाक इसी वक्त गिर जाए और रुक जाए। चाक चलता है इसलिए, क्योंकि कील ठहरी है। इस कील और चाक के बीच गहरा समझौता है। कील के ठहरे होने पर चाक की गति है।
जीवन तो पूरा ही बदलता रहता है चाक की तरह, इसलिए हमने उसे संसार कहा है। संसार का अर्थ होता है, दि व्हील; उसका अर्थ होता है, चाक, घूमता हुआ। चाक की तरह है संसार तो। लेकिन क्या कुछ कील भी है इस संसार में?
क्योंकि भारतीय मनीषा का ऐसा अनुभव है कि जहां भी परिवर्तन हो, उसके आधार में कुछ जरूर होगा, जो अपरिवर्तित है। जहां गति हो, वहां केंद्र में कुछ होगा, जो ठहरा हुआ है। जहां तूफान हो, वहां बिंदु होगा बीच में कोई एक, जहां परम शांति है। क्योंकि जीवन विपरीत के बिना असंभव है। जन्म होगा, तो मृत्यु होगी। गति होगी, तो कोई ठहरा हुआ होगा। चाक होगा, तो कील होगी। विपरीत अनिवार्य है। दिखाई पड़े, न दिखाई पड़े; समझ में आए, न समझ में आए; विपरीत अनिवार्य है। विपरीत के बिना जीवन के खेल का कोई उपाय नहीं है।

परम वचन का अर्थ है, जब सारे सत्य बदल जाते हैं, सारे दर्शन और धर्म बदल जाते हैं, सिद्धांत बदल जाते हैं, चिंतन की धाराएं बदल जाती हैं, तब भी जो ठहरा ही रहता है, जिसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। ऐसे कुछ वचन कृष्ण अर्जुन से कहना चाहते हैं।
एक और कीमती बात इस सूत्र में उन्होंने कही है। और वह कहा है कि तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिए, तेरे हित की इच्छा से कहूंगा।
एक तो परम सत्य केवल उनसे ही कहे जा सकते हैं, जो अतिशय प्रेम से भरे हों। एक सिम्पैथी, एक गहरी सहानुभूति चाहिए। क्षुद्र बातें कहने के लिए सहानुभूति की कोई भी जरूरत नहीं है। जितनी गहरी कहनी हो बात, उतना गहरा संबंध चाहिए। दो व्यक्तियों के बीच जितना गहरा हो संबंध, उतने ही गहरे सत्य संवादित किए जा सकते हैं। तो सत्य कह देना, सिर्फ कह देने वाले पर निर्भर नहीं है। सत्य कहना, सुनने वाले पर भी उतना ही निर्भर है, जितना कहने वाले पर।
कृष्ण अर्जुन से ये सत्य कह सके, क्योंकि एक बहुत गहरी मैत्री और गहरे प्रेम का संबंध था। ठीक यही सत्य हर किसी से नहीं कहे जा सकते। जब सत्य कहा जाता है, तो कहने वाला और सुनने वाला, दोनों एक ऐसी समरसता में होने चाहिए, जहां सत्य कहा जा सके, और सुना भी जा सके। प्रेम वैसा द्वार है, जहां से गहरी बातें की जा सकती हैं।
सिर्फ पूरब ही इस राज को समझ पाया। पश्चिम में शिक्षक होते हैं, लेकिन गुरु केवल पूरब की उत्पत्ति है। गुरु मात्र शिक्षक नहीं है। गुरु और शिक्षक में यही फर्क है। शिक्षक को प्रयोजन नहीं है कि विद्यार्थी का कोई संबंध भी है उससे या नहीं। उसे जो कहना है, वह कह देगा; वह एकतरफा है, वन वे ट्रैफिक है।
शिक्षक स्कूल में पढ़ा रहा है, यूनिवर्सिटी में पढ़ा रहा है। विद्यार्थी सहानुभूति से सुन रहा है, श्रद्धा से सुन रहा है, सुन भी रहा है, नहीं सुन रहा है, ये बातें प्रयोजनीय नहीं हैं। शिक्षक जैसे दीवाल से बोल रहा हो। यह प्रोफेशनल, व्यावसायिक वक्तव्य है। दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है; शिक्षक को बोलने से प्रयोजन है। उसे जो कहना है, वह कह देगा। गुरु और शिक्षक में यही अंतर है। गुरु जो कहना है, वह तभी कह सकेगा, जब सुनने वाला तैयार हो। जब सुनने वाला खुला हो, उन्मुक्त हो, उसके हृदय के द्वार बंद न हों। और जब सुनने वाला सिर्फ सुनने वाला ही न हो, बल्कि अपने को रूपांतरित करने की आकांक्षा से भी, अभीप्सा से भी भरा हो। और जब कि सुनने वाला केवल सत्य की खोज में ही न आया हो, बल्कि उस व्यक्ति के प्रेम का आकर्षण भी उसे खींचा हो।
ध्यान रहे कि जहां प्रेम नहीं है, जहां एक आंतरिक संबंध, एक इंटिमेसी नहीं है, वहां सत्य नहीं कहे जा सकते।
महावीर के पास एक युवक आया है। और वह जानना चाहता है कि सत्य क्या है।
तो महावीर कहते हैं कि कुछ दिन मेरे पास रह। और इसके पहले कि मैं तुझे कहूं, तेरा मुझसे जुड़ जाना जरूरी है।
एक वर्ष बीत गया है और उस युवक ने फिर पुनः पूछा है कि वह सत्य आप कब कहेंगे? महावीर ने कहा कि मैं उसे कहने की निरंतर चेष्टा कर रहा हूं, लेकिन मेरे और तेरे बीच कोई सेतु नहीं है, कोई ब्रिज नहीं है। तू अपने प्रश्न को भी भूल और अपने को भी भूल। तू मुझसे जुड़ने की कोशिश कर। और ध्यान रख, जिस दिन तू जुड़ जाएगा, उस दिन तुझे पूछना नहीं पड़ेगा कि सत्य क्या है? मैं तुझसे कह दूंगा।
फिर अनेक वर्ष बीत गए। वह युवक रूपांतरित हो गया। उसके जीवन में और ही जगत की सुगंध आ गई। कोई और ही फूल उसकी आत्मा में खिल गए। एक दिन महावीर ने उससे पूछा कि तूने सत्य के संबंध में पूछना अनेक वर्षों से छोड़ दिया? उस युवक ने कहा, पूछने की जरूरत न रही। जब मैं जुड़ गया, तो मैंने सुन लिया। तो महावीर ने अपने और शिष्यों से कहा कि एक वक्त था, यह पूछता था, और मैं न कह पाया। और अब एक ऐसा वक्त आया कि मैंने इससे कहा नहीं है और इसने सुन लिया!

महावीर की परंपरा कहती है कि महावीर ने अपने गहनतम सत्य वाणी से उदघोषित नहीं किए, उन्होंने वाणी से नहीं कहे। जो सुन सकते थे, उन्होंने सुने; महावीर ने कहे नहीं।
यह बहुत मजेदार बात है। इससे उलटी बात भी सही है, कि जो नहीं सुन सकते हैं, उनसे महावीर कितना ही कहें, तो भी नहीं सुन सकते। सुनना एक बहुत बड़ी कला है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि तुझसे कहूंगा, क्योंकि तू अतिशय प्रेम से भरा है। अतिशय प्रेम! साधारण प्रेम भी कृष्ण ने नहीं कहा। कहा, अतिशय प्रेम। इतने प्रेम से भरा है, जहां आदमी प्रेम में पागल हो जाता है।
पागल होने से कम में वह घटना नहीं घटती, जिसे हम आंतरिक संबंध कहें। अगर प्रेम भी बुद्धिमान हो, तो होता ही नहीं। अगर प्रेम भी गणित की तरह हिसाब-किताब से हो, तो होता ही नहीं। प्रेम तो जब होता है, तब अतिशय ही होता है।
एक मजे की बात है, प्रेम में कोई मध्य स्थिति नहीं होती; अतियां होती हैं, एक्सट्रीम्स होती हैं। या तो प्रेम होता ही नहीं; एक अति। और या प्रेम होता है, तो बिल्कुल पागल होता है; दूसरी अति। प्रेम में मध्य नहीं होता। इसलिए प्रेम में बुद्धिमान आदमी खोजने बहुत मुश्किल हैं। कोई मध्य बिंदु नहीं होता।
कनफ्यूशियस ने कहा है कि बुद्धिमान आदमी मैं उसको कहता हूं, जो मध्य में ठहर जाए। कनफ्यूशियस एक गांव में गया। गांव के रास्ते पर ही था कि एक गांव के निवासी से मिलना हुआ। तो कनफ्यूशियस ने पूछा कि तुम्हारे गांव में सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी कौन है? तो उस आदमी ने उस आदमी का नाम लिया, जो गांव में सबसे ज्यादा बुद्धिमान था। कनफ्यूशियस ने पूछा कि उसे बुद्धिमान मानने का कारण क्या है? तो उस ग्रामीण ने कहा, कारण है कि वह अगर एक कदम भी उठाए, तो तीन बार सोचता है। इसलिए गांव उसे बुद्धिमान कहता है। कनफ्यूशियस ने कहा कि मैं उसे बुद्धिमान न कहूंगा। क्योंकि जो एक ही बार सोचता है, वह कम बुद्धिमान है। और जो तीन बार सोचता है, वह दूसरी अति पर चला गया। दो बार सोचना काफी है। मध्य में रुक जाना चाहिए।
बुद्धिमान आदमी को मध्य में रुक जाना चाहिए। लेकिन प्रेम में कोई मध्य नहीं होता, इसलिए तथाकथित बुद्धिमान आदमी प्रेम से वंचित रह जाते हैं। प्रेम में होती है अति। कनफ्यूशियस खुद भी प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम में मध्य होता ही नहीं। या तो इस पार, या उस पार।
तो कृष्ण कहते हैं, तेरा अतिशय प्रेम है मेरे प्रति, इसलिए तुझसे कहूंगा। अतिशय, टु दि एक्सट्रीम, आखिरी सीमा तक, जहां अति हो जाती है।
जब प्रेम अतिशय होता है, तो सोच-विचार बंद हो जाता है। और जहां सोच-विचार बंद होता है, वहीं आंतरिक संवाद हो सकते हैं। जहां तक सोच-विचार जारी रहता है, वहां तक संदेह काम करता है, वहां तक डाउट काम करता है।
अगर कृष्ण को परम वचन कहने हैं, तो ऐसी अवस्था चाहिए अर्जुन की, जहां सोच-विचार बंद हो। जहां अर्जुन सुने तो जरूर, सोचे नहीं। जहां अर्जुन खुला तो हो, लेकिन उसके भीतर विचारों की बदलियां न हों। जहां अर्जुन आतुर तो हो, लेकिन अपनी कोई धारणाएं न हों। जहां अर्जुन के पास अपने कोई सिद्धांत न हों, अपनी कोई समझ न रह जाए।
शिष्य बनता ही कोई तभी है, जब उसे पता चलता है कि अपनी कोई समझ काम नहीं पड़ेगी। तभी समर्पण है, उसी अतिशय क्षण में समर्पण है।
कृष्ण कहते हैं, तेरे अतिशय प्रेम के कारण मैं तुझसे परम वचन कहूंगा।
और एक बात कहते हैं कि तेरे हित के लिए। इसे थोड़ा समझ लें।
ऐसे सत्य भी कहे जा सकते हैं, जिनसे किसी का हित न होता हो। ऐसे सत्य
भी कहे जा सकते हैं, जिनसे किसी का अहित होता हो। ऐसे सत्य भी खोजे जा सकते हैं, जिनसे अकल्याण हो। विज्ञान ऐसे बहुत-से सत्यों को खोज रहा है, जिनसे अहित होगा, अहित हो रहा है। अभी पश्चिम के अनेक विचारशील वैज्ञानिक यह सोचने लगे हैं कि सभी सत्य हितकारी नहीं हैं। इसलिए किसी बात का सत्य होना काफी नहीं है।

और फ्रेड्रिक नीत्शे ने तो एक बहुत अनूठी बात कही है। उसने कहा है कि बहुत बार तो असत्य भी हितकारी होते हैं। अगर सभी सत्य हितकारी नहीं होते, तो दूसरी बात भी सही हो सकती है कि असत्य भी हितकारी हो सकते हैं। और नीत्शे ने यह भी कहा है कि यह जो आज के मनुष्य के चित्त की इतनी विकृत दशा है, इसका एक मात्र कारण यह है कि हम बिना समझे-बूझे कि क्या हितकर है और क्या अहितकर है, निपट सत्य की खोज में लगे हुए हैं। सत्य अपने आप में मूल्यवान नहीं है। सत्य भी एक डिवाइस, एक उपाय है। सत्य भी कहीं पहुंचने का साधन है।
मनुष्य का परम मंगल, जिस सत्य से फलित हो, कृष्ण कहते हैं, वह मैं तुझसे कहूंगा, तेरे हित के लिए।
अब यह बहुत सोचने जैसी बात है। हम आमतौर से सोचते हैं कि सत्य तो अपने
आप में हितकारी है। और हममें से बहुत-से लोग सत्य का इस तरह उपयोग करते हैं, जिससे दूसरे को नुकसान पहुंचे। इतना काफी नहीं है। मंगल ध्यान में रखना जरूरी है। और इसलिए कृष्ण उसी सत्य की बात करेंगे, जो अर्जुन के लिए मंगलकारी है, जो उसके जीवन को रूपांतरित करे।
सत्य की भी अंतिम कसौटी आनंद ही होगी। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। सत्य
की एक कसौटी तो तर्क है, कि जो तर्क से सिद्ध हो वह सत्य है। सत्य की परम कसौटी आनंद है, कि जिससे आनंद फलित हो, वह सत्य है।
बुद्ध ने कहा है, जो पहुंचा दे परम स्थिति तक, वह सत्य है। और हम दूसरी कसौटी नहीं जानते हैं। बुद्ध ने कहा है, नाव हम उसे कहते हैं, जो उस पार पहुंचा दे। हम और दूसरी कसौटी नहीं जानते। कई बार यह भी हो सकता है कि तर्क से जो सही मालूम पड़ता है, वह इसी किनारे पर बांधकर रोक रखे। तर्क से जो सही मालूम पड़ता है, वह उस पार भी ले जा सकेगा या नहीं! और कई बार यह भी हो सकता है कि इस पार के तर्क से जो गलत मालूम पड़ता है, वह भी उस पार ले जाने की नाव बन जाए।
बुद्ध ने कहा है, सवाल यह नहीं है कि तुम क्या मानते हो। सवाल यह है कि तुम क्या हो जाते हो उसे मानकर। सवाल यह नहीं है कि तुम्हारा क्या है मार्ग। सवाल यह है कि तुम किस मंजिल पर पहुंचते हो उस मार्ग पर चलकर। मार्ग अपने आप में व्यर्थ है--मंजिल! तर्क अपने आप में व्यर्थ है-- निष्पत्ति! और सत्य अपने आप में अर्थपूर्ण नहीं है--आनंद!
कृष्ण कहते हैं, तेरे हित की कामना से, तेरे हित की इच्छा से कहूंगा। यहां कोई सत्य को कहना ही मेरा प्रयोजन नहीं है। और न ही सत्य को सिद्ध करना प्रयोजन है। तेरा हित, तेरा कल्याण, तेरा आनंद फलित हो सके, इस दृष्टि से कहूंगा।
यहां धर्म और साधारण विचार में फासले पड़ जाते हैं। एक आदमी कहता है, ईश्वर है, क्या यह सत्य है? एक आदमी कहता है, मुक्ति है, क्या यह सत्य है? सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि जिन्होंने मुक्ति की बात कही, उनके चेहरों में देखें और उनकी आंखों में झांकें। और जिन्होंने ईश्वर को कहा कि है, उनके जीवन की सुगंध और उनके जीवन के प्रकाश को देखें। और जिन्होंने कहा, ईश्वर नहीं है, उनके जीवन के आस-पास जो अंधेरा घिर गया है, उसे देखें। ईश्वर का होना सत्य है या नहीं, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। जो, ईश्वर है, इस आधार पर जीता है, उसके होने में एक और तरह की सुगंध है, एक और तरह के जगत का आविर्भाव हो जाता है; पंख लग जाते हैं; वह किसी और आकाश में उड़ने लगता है।
यह सवाल नहीं है कि बुद्ध ने जो कहा है, वह सही है या गलत। बुद्ध का होना ही काफी प्रमाण है। यह भी सवाल नहीं है कि नीत्शे ने जो कहा, वह सही है या गलत। नीत्शे का होना ही काफी प्रमाण है।
नीत्शे ने बहुत तर्कयुक्त बातें कहीं, लेकिन जीवन का अंत पागलखाने में हुआ। नीत्शे ने बहुत तर्कयुक्त बातें कही हैं। संभवतः मनुष्य-जाति के इतिहास में नीत्शे के मुकाबले दूसरा आदमी खोजना कठिन है, जो इतना तर्कयुक्त हो, और जिसने सत्य के संबंध में ऐसी तार्किक खोज की हो। लेकिन नीत्शे का अंत एक पागलखाना है। और नीत्शे का पूरा जीवन दुख की एक लंबी कथा

है, जहां सिवाय उदासी के और पीड़ा के और संताप के कुछ भी नहीं है। नीत्शे का तर्क हम देखें या नीत्शे को देखें?
कृष्ण ने जो कहा, वह तर्कयुक्त है या नहीं, उसे हम देखें, या कृष्ण को
और कृष्ण की बांसुरी को देखें? नीत्शे को और कृष्ण को देखने चलें, तो ही पता चलेगा कि सत्य भी सप्रयोजन है। समस्त सिद्धांत सप्रयोजन हैं। उनसे मनुष्य का हित, उनसे मनुष्य का मंगल सधता है या नहीं सधता है?
तो कृष्ण ने कहा है कि मैं तेरे हित की दृष्टि से यह परम वचन कहूंगा।
हे अर्जुन, मेरी उत्पत्ति को अर्थात विभूतिसहित लीला से प्रकट होने
को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का भी आदि कारण हूं।
मेरी उत्पत्ति को, मेरी विभूति को, मेरे सत्य को न देवता जानते हैं और
न महर्षि!
बहुत आश्चर्यजनक वचन है। और परम श्रद्धा हो, तो ही समझ में आ सकता है। देवता भी नहीं जानते, और जिन्हें हम जानने वाले कहते हैं, वे महर्षि भी नहीं जानते मेरी उत्पत्ति को। क्यों नहीं जानते? तीन बातें।
एक तो, इस जगत का जो भी मूल आधार है, उस मूल आधार को कोई भी नहीं जान सकेगा, क्योंकि वह मूल आधार सभी के होने के पहले है। देवता नहीं थे, तब भी वह था; और महर्षि जब नहीं थे, तब भी वह था।
मैं अपनी आंखों से सबको देख सकता हूं, अपनी आंखों भर को नहीं देख सकता। मैं अपनी आंखों से आंखों के बाहर सब कुछ देख सकता हूं, आंखों के पीछे नहीं देख सकता। मैं अपनी इस मुट्ठी से सब कुछ पकड़ सकता हूं, लेकिन इस मुट्ठी को ही नहीं पकड़ सकता।
जो मौलिक है, जो मूल है, जिससे देवता भी पैदा होते और महर्षि भी; जिससे
सब पैदा होते हैं और जिसमें सब लीन हो जाते हैं, उसके जन्म को, उसके होने को, उसके अस्तित्व के मूल कारण को कोई भी नहीं देख पाएगा। कोई उपाय नहीं है। उसका स्वयं का वक्तव्य ही केवल एकमात्र वक्तव्य है। और उस वक्तव्य को श्रद्धा के अतिरिक्त स्वीकार करने का और कोई उपाय नहीं है।
महर्षि तो हम कहते ही उसे हैं, जो जानता है। लेकिन कृष्ण के इस सूत्र
का अर्थ हुआ कि जो जानते हैं, वे भी नहीं जानते। तब महर्षि का एक और भी परम गुह्य अर्थ प्रकट होगा। तब जो सोचते हैं कि महर्षि हैं, वे महर्षि नहीं हैं। तब तो केवल वे ही जानते हैं, जो इस अनुभव पर आ जाते हैं कि उन्हें कुछ भी पता नहीं है। कोई सुकरात, कोई उपनिषद का ऋषि, जो कहता है कि मुझे कुछ भी पता नहीं, वही, शायद उसे ही थोड़ा पता लगा है।
नहीं जान सकेगा कोई भी, क्योंकि हम सब उसके हिस्से हैं। सागर तो बूंद
को जान सकता है, बूंद सागर को जानेगी भी तो कैसे! और वृक्ष की पत्तियां जड़ों से बंधी हैं, लेकिन जड़ों को जानेंगी तो कैसे! और वृक्ष की पत्तियां अगर उस बीज को जानना चाहें, जिससे वृक्ष हुआ, तो उस बीज को कैसे जानेंगी! जिससे सब हुआ है, वह अज्ञात ही रहेगा, अज्ञेय ही रहेगा।
मेरी उत्पत्ति को न देवता जानते, न महर्षि, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का भी आदि कारण हूं।
समस्त दिव्यता मेरा ही रूप है, और समस्त ज्ञान मेरा ही ज्ञान है। मेरा
ही ज्ञान लौटकर मुझे नहीं जान पाएगा, जैसे मेरी ही आंख लौटकर मुझे नहीं जान पाएगी। लेकिन आंख एक काम कर सकती है। दर्पण में अपने को देख सकती है। यद्यपि दर्पण में जो दिखाई पड़ता है, वह आंख नहीं है; केवल प्रतिबिंब है, केवल छाया है। ऋषियों ने भी जिसे जाना है, वह भी परमात्मा की छाया है, परमात्मा नहीं। और देवता भी जिसकी अर्चना करते हैं, वह परमात्मा का प्रतिबिंब है, परमात्मा नहीं।
जिस दिन प्रतिबिंब भी छूट जाते हैं, जिस दिन जानने वाला भी अपने को भूल जाता है, जिस दिन जानने वाला भी शेष नहीं रहता, उस दिन! लेकिन उस दिन ऋषि ऋषि नहीं होता; देवता देवता नहीं होता; उस दिन तो लहर खो जाती है सागर में और सागर ही हो जाती है।
कृष्ण महर्षि नहीं हैं, और उन्हें महर्षि न कहने का यही कारण है। वे कोई ज्ञाता नहीं हैं, और न कृष्ण कोई देवता हैं। कृष्ण अपने को छोड़ दिए हैं

उस परम के साथ। कृष्ण अब नहीं हैं, अब वह परम ही अपनी अभिव्यक्ति उनके द्वारा कर रहा है।
इसलिए एक बहुत मजे की बात, और बहुत विचित्र, और जिसके कारण बहुत विवाद दुनिया में चला है, वह आपको इस संदर्भ में कहूं।
हिंदू मानते हैं कि वेद ईश्वरीय वचन है। इस्लाम मानता है कि कुरान इलहाम है, रिवीलेशन है; ईश्वर से सीधा प्रकट हुआ है। ईसाई भी मानते हैं कि बाइबिल ईश्वरीय, रूहानी किताब है। लेकिन ये कोई भी ठीक से सिद्ध नहीं कर पाते कि इनका मतलब क्या है। और जो भी सिद्ध करने जाते हैं, वे बहुत बचकानी बातें इकट्ठी कर लेते हैं। और उनको गलत करना बहुत कठिन नहीं है।
जो कहते हैं कि वेद ईश्वर की किताब है, उनको गलत करना बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि वेद में जो भी बातें हैं, वे बिल्कुल मानवीय हैं और मनुष्यों के वक्तव्य मालूम होते हैं। कुरान में भी जो बातें हैं, वे भी मानवीय हैं और मनुष्यों के वक्तव्य मालूम होते हैं। अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण, लेकिन फिर भी मनुष्यों के। और बाइबिल में भी वही बात है। कोई भी, एक भी वचन ऐसा नहीं है, जो मनुष्य न दे सके। कोई भी वचन मनुष्य दे सकता है। कोई भी वचन ऐसा नहीं है, जो कि मानने को मजबूर करे कि वह ईश्वरीय है।
अत्यंत बुद्धिमान लोगों के वचन होंगे, श्रेष्ठतम प्रतिभाओं के वचन होंगे, लेकिन ईश्वरीय होने का कोई कारण नहीं मालूम पड़ता। इसलिए जो इनके विपरीत बातें करते हैं, वे सरलता से बातें कर सकते हैं। लेकिन ईश्वरीय मानने का कारण दूसरा है, वह इस सूत्र में है।
इस जगत के मौलिक आधार के संबंध में जो भी वक्तव्य है, वह वक्तव्य इस जगत के मूल से ही आ सकता है, किसी दूसरे के द्वारा नहीं दिया जा सकता। और अगर दूसरा उस वक्तव्य को देगा, तो वह वक्तव्य मिथ्या होगा, फाल्स होगा। यह जगत ही अपने संबंध में अपना वक्तव्य है। ईश्वर ही कहे अगर, तो ही सार्थक है बात। सागर ही अगर कहे कि मैं ऐसा हूं, तो ठीक है। कितनी ही बड़ी लहर सागर के संबंध में कुछ भी कहे, वह वक्तव्य अधूरा होगा, और लहर का ही होगा।
यह वेद, बाइबिल या कुरान का जो आग्रह है कि ये वचन ईश्वरीय हैं, इनका क्या कारण है? इनका कारण यह है कि इन वचनों को मानकर जो भी यात्रा करता है, एक दिन उसका लहर होना मिट जाता है और सागर होना हो जाता है। इन वचनों को मानकर जो भी यात्रा पर निकलता है, वह खुद भी एक दिन मिट जाता है और ईश्वर ही शेष रह जाता है।
जिन लोगों ने इन्हें ईश्वरीय कहा, उनके कहने का प्रयोजन इतना ही है कि
इन वचनों को मानकर अगर कोई चले, तो अंततः मनुष्य और मनुष्यता की सीमा के पार चला जाता है। और जिस क्षण इन वचनों की अंतिम घड़ी उपलब्ध होती है, उस क्षण व्यक्ति स्वयं भी मौजूद नहीं रहता, बूंद खो जाती है, सागर ही शेष रह जाता है। तो जिन वक्तव्यों को मानकर अंततः बूंद मिट जाती हो और सागर ही बचता हो, वे वक्तव्य बूंद के नहीं हो सकते। वे वक्तव्य सागर के ही होंगे। क्योंकि बूंद तो जान ही कैसे सकती है!
लेकिन हमारी तकलीफ है। हम अगर कुरान या बाइबिल या वेद को पढ़ते हैं, तो
हम जैसे हैं, वैसे ही पढ़ना शुरू करते हैं, बिना किसी यात्रा पर गए। हम अपनी आरामकुर्सी पर बैठकर वेद पढ़ सकते हैं। बिना किसी रूपांतरण में गए, बिना जीवन को बदले, बिना किसी अल्केमी से गुजरे, बिना अपने अनगढ़ पत्थर को हीरा बनाए, हम जैसे हैं, वैसे ही वेद को पढ़ें, कुरान को पढ़ें, बाइबिल को पढ़ें--वे वक्तव्य हमें मनुष्य के ही वक्तव्य मालूम पड़ेंगे। क्योंकि हम वही पढ़ सकते हैं, जो हमारी क्षमता है। जो हमारी क्षमता नहीं है, वह हमारी सीमा के बाहर छूट जाता है।
सूफियों के ग्रंथ हैं। एक-एक ग्रंथ के सात-सात अर्थ हैं। और सूफी फकीर
जब किसी साधक को साधना में प्रवेश करवाता है, तो किताब को पढ़वाता है। एक किताब है सूफियों की, किताबों की किताब उसका नाम है, दि बुक आफ दि बुक। छोटी-सी है; वह साधक को पढ़ाई जाएगी। और उससे कहा जाएगा, इसका अर्थ तू लिख डाल। जो भी अर्थ तुझे सूझता हो, वह लिख।

फिर छः महीने साधना चलेगी। और छः महीने के बाद वही किताब, वही छोटी-सी किताब फिर पढ़ाई जाएगी। और साधक से कहा जाएगा, इसके अर्थ अब तू जो भी चाहे लिख। उसे पहले अर्थ नहीं दिखाए जाएंगे। लेकिन इन छः महीनों में उसने यात्रा की है, वह ध्यान की किसी अवस्था को पार हुआ है, वह दूसरे अर्थ लिखेगा। और ऐसा सात बार किया जाएगा। ध्यान की सात सीढ़ियां पार कराई जाएंगी, और यह किताब सात बार पढ़ाई जाएगी, और सात बार अर्थ लिखवाए जाएंगे। जब सातों अर्थ पूरे हो जाएंगे, तो उस साधक को वे सातों अर्थ दिए जाएंगे, और उससे कह जाएगा, क्या तू भरोसा कर सकता है कि ये सातों तेरे ही अर्थ हैं? आज लौटकर वह खुद भी भरोसा नहीं कर सकता कि ये उसके ही अर्थ हैं। और उसी एक ही आदमी ने एक ही किताब से ये सात अर्थ निकाल लिए!
हम जो भी अर्थ निकालते हैं, वह निकालते कम हैं, डालते ज्यादा हैं। जब
भी हम वेद पढ़ते हैं, तो हम वेद नहीं पढ़ते, वेद के द्वारा अपने को पढ़ते हैं। तो जो हम होते हैं, वह अर्थ निकलता है। जब हम बदल जाते हैं तब वेद पढ़ते हैं, तब जो अर्थ होता है, वह दूसरा होता है। और जब हम स्वयं उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां व्यक्ति का अहंकार खो जाता है और परमात्मा ही शेष रह जाता है, तब जो अर्थ निकलता है, वह दूसरा ही अर्थ होता है।
जिन्होंने ये सात सीढ़ियां पूरी की हैं ध्यान की, उन्होंने जाना है कि
यह वक्तव्य कुरान में जो है, मोहम्मद का नहीं है। उन्होंने जाना कि ये जो वेद में वक्तव्य हैं, ये ऋषियों के नहीं हैं। उन्होंने जाना कि ये जो बाइबिल में वक्तव्य हैं, ये मनुष्य से इनका कोई संबंध नहीं है। ये मनुष्य के पार से आए हुए हैं। मनुष्य के पार से लेकिन तभी कोई चीज आती है, जब मनुष्य मिटने को और दरवाजा बनने को राजी हो जाता है।
तो कृष्ण कहते हैं, न मुझे ऋषि जानते हैं, न मुझे देवता जानते हैं, क्योंकि मैं उनका भी आदि कारण हूं, मैं उनसे भी पहले हूं। और जो मेरे को अजन्मा, अनादि तथा लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।
तब फिर क्या किया जाए? महर्षि नहीं जानते, ज्ञानी नहीं जानते, दिव्य पुरुष नहीं जानते, फिर क्या किया जाए? फिर इस परम तत्व को जानने के लिए क्या है उपाय?
तो कृष्ण कहते हैं, जो मेरे को अजन्मा... ।
अब यह बड़ी कठिन बात शुरू हुई। और मनुष्य की श्रद्धा की कसौटी वहां है, जहां कठिन बात शुरू होती है। अति कठिन, बल्कि कहें असंभव।
ईसाई फकीर तरतूलियन ने कहा है कि मैं ईश्वर को मानता हूं, क्योंकि ईश्वर असंभव है। उसके भक्तों ने उससे कहा, आपका मस्तिष्क तो ठीक है? तरतूलियन ने कहा कि अगर ईश्वर संभव है, तो फिर मुझे उसे मानने की कोई जरूरत ही न रही। सूरज को मैं मानता नहीं, क्योंकि सूरज संभव है। आकाश को मैं मानता नहीं, क्योंकि आकाश है। मैं ईश्वर को मानता हूं, क्योंकि ईश्वर का होना बुद्धि के लिए असंभावना है, इंपासिबल है।
और जब बुद्धि किसी असंभव को मानती है, तो बुद्धि टूट जाती है और शून्य
हो जाती है। असंभव से टकराकर नष्ट होती है बुद्धि। असंभव से टकराकर विचार खो जाते हैं। असंभव की स्वीकृति के साथ ही अहंकार को खड़े होने की जगह नहीं मिलती। यह असंभव की बात शुरू होती है। यह आपने बहुत बार गीता में पढ़ी होगी और आपको कभी ख्याल में न आया होगा कि असंभव है।
और जो मेरे को अजन्मा, कृष्ण कहते हैं, जो मुझे मानते हैं अजन्मा, अनबॉर्न, जो कभी पैदा नहीं हुआ। अनादि, जिसका कोई प्रारंभ नहीं है। ऐसा जो मुझे तत्व से मानते हैं, ऐसा ईश्वर, वे मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाते हैं।
यह अत्यंत कठिन बात है। इसे हम थोड़ा समझें।
हम सभी जानते हैं, तथाकथित धार्मिक लोग लोगों को समझाते हैं कि ईश्वर है। क्योंकि अगर ईश्वर न होगा, तो जगत को बनाया किसने? आस्तिक सोचते हैं, बड़ी गहरी दलील दे रहे हैं। बहुत बचकानी है दलील। आस्तिक सोचते हैं कि बड़ी गहरी दलील दे रहे हैं कि अगर ईश्वर न होगा, तो जगत को बनाया किसने? आस्तिक कहते हैं कि एक छोटा-सा घड़ा भी बनाना हो, तो कुम्हार की जरूरत होती है। अगर

घड़ा है, तो कुम्हार भी रहा होगा। होगा। बिना बनाए घड़ा भी नहीं बन सकता। और इतना विराट, इतना व्यवस्थित जगत बिना ईश्वर के बनाए नहीं बन सकता। आस्तिक यह दलील शायद इसलिए देते हैं कि उनकी बुद्धि भी, जगत बिना बनाया है, ऐसा मानने के लिए तैयार नहीं है। लेकिन उन्हें पता नहीं है कि एक ही कदम आगे बढ़कर मुसीबत शुरू हो जाएगी। और नास्तिक पूछते हैं कि अगर जगत बिना बनाया नहीं बन सकता, तो तुम्हारे ईश्वर को किसने बनाया है? और तब आस्तिक के पैर के नीचे से जमीन खिसक जाती है। तब अक्सर आस्तिक क्रोध में आ जाएगा, क्योंकि आस्तिक बड़े कमजोर हैं। वह कहेगा, ईश्वर को बनाने वाला कोई भी नहीं है।
लेकिन तब उसके अपने ही तर्क के प्राण निकल गए। और नास्तिक उससे कहता
है कि अगर ईश्वर को बनाने वाले की कोई जरूरत नहीं है, तो तुम स्वीकार करते हो कि बिना बनाए भी कुछ हो सकता है। तो फिर जगत के ही बिना बनाए होने में कौन-सी तकलीफ है! तत्वतः यह स्वीकार करते हो कि कुछ हो सकता है जो बिना बनाया है, तो इस जगत को क्या अड़चन है! और जब यह मानना ही है, तो जगत पर ही रुक जाना बेहतर है, और एक ईश्वर को बीच में लाने की क्या जरूरत है? यहां आपको तकलीफ होगी।
कृष्ण कहते हैं कि वही मुक्त होगा अज्ञान से, जो मुझे अजन्मा जानता है। जो मुझे मानता है कि मेरा कोई जन्म नहीं, और मैं हूं; और मेरा कोई प्रारंभ नहीं, और मैं हूं।
इसलिए जो छोटा-मोटा आस्तिक है, वह तो दिक्कत में पड़ेगा, क्योंकि उसकी
तो सारी तर्क की व्यवस्था ही यही है कि अगर कुछ है, तो उसका बनाने वाला चाहिए। इसलिए हमने ईश्वर को भी स्रष्टा, दि क्रिएटर, बनाने वाला, इस तरह के शब्द खोज लिए हैं, जो कि गलत हैं।
ईश्वर बनाने वाला नहीं है; ईश्वर अस्तित्व है। वही है। उसके अतिरिक्त
और कुछ भी नहीं है। जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह कोई ईश्वर से भिन्न और अलग नहीं है। उसकी ही अभिव्यक्ति है, उसका ही एक अंश है, उसका ही एक हिस्सा है। सागर का ही एक हिस्सा लहर बन गया है। अभी थोड़ी देर बाद फिर सागर हो जाएगा। फिर लहर बन जाएगा। लहर सागर से अलग नहीं है।
यह जो सृष्टि है... । हमारे शब्द में ही कठिनाई घुस गई है, हमने सोचते- सोचते इसको सृष्टि ही, क्रिएशन ही कहना शुरू कर दिया है। यह जो दिखाई पड़ रहा है हमें चारों तरफ, यह जो प्रकृति है, यह प्रकृति परमात्मा का ही हिस्सा है। यह उतनी ही अजन्मी है, जैसा परमात्मा अजन्मा है।
लेकिन तब बिना बनाए कोई चीज हो सकती है? बिना प्रारंभ के कोई चीज हो सकती है? हमारा प्रारंभ है, हमारा जन्म होता है; हमारी मृत्यु होती है। हम जगत में ऐसी किसी चीज को नहीं जानते, जिसका प्रारंभ न होता हो और अंत न होता हो। सभी चीजें शुरू होती हैं, और सभी चीजें समाप्त हो जाती हैं। आप किसी ऐसे अनुभव को जानते हैं जिसका प्रारंभ न हो, अंत न हो? हमारे अनुभव में ऐसा कोई भी अनुभव नहीं है। इसीलिए इस सूत्र को स्वीकार करने में बुद्धि को अड़चन है, भारी अड़चन है।
अजन्मा, अनादि, ऐसा जो मुझे मानता है, ऐसा जो मुझे जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान है और संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।
यह ज्ञान कुछ दूसरे ही प्रकार का ज्ञान है। जितना हम सोचेंगे, जितना
हम विचार करेंगे, उतना ही हमें मालूम पड़ेगा कि सब चीजों का प्रारंभ है और सब चीजों का अंत है। कहीं चीज शुरू होती है और कहीं समाप्त होती है। जन्म होता है कहीं, मृत्यु होती है कहीं। हम खुद अपने ही भीतर खोज करें, तो कुछ पता नहीं चलता कि जन्म के पहले भी हम थे, कि मृत्यु के बाद भी हम होंगे! झेन फकीर जापान में अपने साधकों को कहते हैं कि ध्यान करो, और खोजो उस चेहरे को, जो जन्म के पहले तुम्हारा था, ओरिजिनल फेस। जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तब तुम्हारी शक्ल कैसी थी? या तुम जब मर जाओगे, तब तुम कैसे होओगे, इसकी तलाश करो ध्यान में!
जब भी कोई साधक अपने भीतर खोज लेता है उस सूत्र को, जो जन्म के भी पहले
था या मृत्यु के भी बाद बचेगा, तभी इस सूत्र को समझने में समर्थ हो पाता है।

नहीं; इस अस्तित्व का न कोई प्रारंभ है, और न कोई अंत है। हो भी नहीं सकता। वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि हम रेत के एक छोटे-से कण को भी नष्ट नहीं कर सकते। तोड़ सकते हैं, बदल सकते हैं, रूप दूसरा हो सकता है, लेकिन विनाश असंभव है। और वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि हम रेत के एक छोटे-से नए कण को निर्मित भी नहीं कर सकते।
इस जगत की जो भी गुणात्मक, परिमाणात्मक स्थिति है, वह उतनी की उतनी ही है; उसमें रत्तीभर न कभी बढ़ता है और न कभी घटता है। क्योंकि घटने या बढ़ने का अर्थ होगा, या तो शून्य से कोई चीज पैदा हो और जगत में बढ़ जाए; घटने का अर्थ होगा, कोई चीज खो जाए और शून्य में लीन हो जाए। लेकिन इस जगत के बाहर न कोई स्थिति है, न कोई स्थान है, न कोई उपाय है।
ईश्वर का अर्थ है, दि टोटेलिटी। इस संपूर्ण अस्तित्व का धार्मिक नाम ईश्वर है। विज्ञान जिसे एक्झिस्टेंस कहता है, अस्तित्व कहता है, प्रकृति कहता है, धर्म उसे ही परमात्मा कहता है।
कृष्ण कहते हैं, जो मुझे अजन्मा, अनादि, ऐसा जानने में समर्थ हो जाए,
वह सब पापों के पार हो जाता है।
लेकिन क्यों? अगर आप जान भी लें कि ईश्वर का कोई प्रारंभ नहीं, कोई अंत नहीं, तो आप पाप के पार कैसे हो जाएंगे? यह बहुत अजीब-सी बात है। मैं चोर हूं, मैं बेईमान हूं, मैं हत्यारा हूं। अगर मैं यह जान भी लूं कि ईश्वर का कोई जन्म नहीं और ईश्वर का कोई अंत नहीं, तो मैं पाप के क्यों पार हो जाऊंगा? मेरे इस जान लेने से मेरे पाप के विसर्जन का क्या संबंध है? यह और भी जटिल बात है। लेकिन बहुत महत्वपूर्ण है।
जैसे ही मैं यह जान लूं कि ईश्वर का कोई प्रारंभ नहीं है और ईश्वर का कोई अंत नहीं है, वैसे ही मुझे यह भी पता चल जाता है कि मेरा भी कोई प्रारंभ नहीं है और मेरा भी कोई अंत नहीं है। वैसे ही मुझे यह भी पता चल जाता है कि आपका भी कोई प्रारंभ नहीं है, आपका भी कोई अंत नहीं है। तो मैंने जो हत्याएं की हों या मेरी हत्या की गई हो, मैंने जो पाप किए हों या मेरे साथ पाप किए हों, वे सब मूल्यहीन हो जाते हैं। एक शाश्वत जगत में खेल से ज्यादा उनकी स्थिति नहीं रह जाती। एक अभिनय और एक नाटक से ज्यादा उनका मूल्य नहीं रह जाता।
अगर मैं मृत्यु के बाद भी शेष रहता हूं और जन्म के पहले भी मैं था, तो जीवन में जिन बातों का हम बहुत मूल्य मान रहे हैं, वे मूल्यहीन हो जाती हैं। तब स्थिति केवल यह हो जाती है कि जैसे एक मंच पर एक नाटक चलता हो, रामलीला चलती हो, और मंच के पात्र पर्दे के पीछे जाकर गपशप करते हों। यहां राम की सीता खो जाती हो और राम छाती पीटते हों और वृक्षों से पूछते हों कि सीता कहां है! और पीछे, पर्दे के पीछे बैठकर भूल जाते हों सीता को, सीता के खो जाने को, आंसुओं को। क्यों?
अगर यह मंच ही सब कुछ है और मंच के पहले राम का कोई अस्तित्व नहीं है
और मंच के बाद भी राम का कोई अस्तित्व नहीं है, तो फिर बहुत कठिनाई है, फिर जिंदगी बहुत वास्तविक हो जाएगी।
लेकिन मंच पर आने के पहले भी राम हैं, मंच से उतर जाने के बाद भी राम हैं, तो राम होना एक पात्र, एक लीला का हिस्सा रह गया; और राम की जो सातत्यता है, जो कंटिन्युटी है, जो भीतर का अस्तित्व है, वह अंतहीन, अनादि हो गया। उसमें न मालूम कितनी लीलाएं होंगी, न मालूम कितनी सीताएं खोएंगी और न मालूम कितने युद्ध होंगे, लेकिन अब उन युद्धों का मूल्य एक नाटक से ज्यादा नहीं रहा।
इसलिए हमने राम के इस पूरे खेल को रामलीला कहा है। उसको हमने बहुत सोचकर लीला कहा है। कृष्ण के जीवन को हमने कृष्णलीला कहा है, बहुत सोचकर। लीला का अर्थ है कि इसका मूल्य अब खेल से ज्यादा नहीं है।
एक लहर उठी है सागर में, हवाओं में, थपेड़ों में। उछलेगी, कूदेगी, नाचेगी, सूरज से मिलने की होड़ करेगी; फिर गिर जाएगी, खो जाएगी। अनेक बार उठी है यह लहर पहले भी, अनेक बार बाद में भी उठेगी। अगर यह लहर यह जान जाए कि जब मैं नहीं उठी थी, तब भी थी, और जब गिर जाऊंगी, तब भी रहूंगी, तो फिर इस लहर का होना एक खेल हो गया। तब इसमें से भार, गंभीरता, बोझ विलीन हो गया। तब

मिटना भी एक आनंद है, होना भी एक आनंद है, न हो जाना भी एक आनंद है। क्योंकि न होकर भी हम मिटते नहीं हैं, और होकर भी हम नए नहीं होते हैं। एक सातत्य है, एक कंटीनम है।
यह शब्द वैज्ञानिक है। आइंस्टीन ने इस शब्द का उपयोग किया है, कंटीनम,
एक सातत्य। चीजें सदा हैं। इसलिए चीजों का जो रूप आज दिखाई पड़ता है, वह बहुत मूल्यवान नहीं रह जाता। तब पाप भी मूल्यवान नहीं है और पुण्य भी मूल्यवान नहीं है। तब मैंने जो किया, वह मूल्यवान नहीं है; वरन मैं जो हूं, वही मूल्यवान है। तब मेरे साथ जो किया गया, वह भी मूल्यवान नहीं है; तब होना, बीइंग कीमत की चीज है। डूइंग, करना गैर-कीमती चीज है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो जान लेगा इस सातत्य को--जो मेरे अजन्मा होने को, अनादि, अनंत होने को जान लेगा--वह सब पापों के पार हो जाएगा।
लेकिन कोई चाहे कि पापों के पार होना है, इसलिए मान लो कि कृष्ण अनादि हैं, अजन्मा हैं, भगवान का होना सदा से है--इस भूल में आप मत पड़ना। इससे पाप नष्ट नहीं होंगे। यह आप जान लेंगे, तो पाप नष्ट हो जाएंगे। लेकिन आप पाप नष्ट करने के लिए ही अगर इसको मान लेंगे, तो पाप नष्ट नहीं होंगे।
पाप तो हम सभी नष्ट करना चाहते हैं, लेकिन बिना ज्ञान की उस ज्योति को उपलब्ध हुए, जहां पाप का अंधेरा गिर जाता है। पाप हम नष्ट करना चाहते हैं, लेकिन ज्ञान की ज्योति को जन्माने की चेष्टा नहीं करना चाहते। तो फिर हम मानकर बैठ जाते हैं कि ठीक है, हम मानते हैं कि ज्ञान की ज्योति है; मानते हैं कि ईश्वर अजन्मा है। लेकिन जो भी हम करते हैं, उससे सिद्ध होता है कि न हमें ईश्वर का पता है, न उसके अजन्मा होने का पता है।
कृष्ण के सामने अर्जुन की तकलीफ यही है। अर्जुन कह यह रहा है कि मेरे मित्र हैं, प्रियजन हैं, सगे-संबंधी हैं, युद्ध में इनको काटूं, यह बड़ा पाप है। इनसे लडूं, यह बड़ा पाप है। इससे तो अच्छा है, मैं संन्यास ले लूं। मैं यह सब छोड़ दूं। मैं भाग जाऊं, मैं विरत हो जाऊं।
कृष्ण उससे कह रहे हैं कि जब तक तू देख नहीं पा रहा है कि इन सारी लहरों के भीतर एक ही सागर है। जब ये लहरें नहीं थीं, तब भी वह सागर था; और जब कल ये लहरें सब गिर जाएंगी, तब भी सागर रहेगा। अगर तू इस अनादि, अजन्मा को देख ले, तो फिर तुझे यह जो पाप की और पुण्य की धारणा पैदा होती है, यह तत्काल विसर्जित हो जाए।
परम ज्ञानी के लिए न कोई पाप है और न कोई पुण्य। इसका यह अर्थ नहीं कि
वह पाप करता है। वह पाप कर ही नहीं सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह पुण्य नहीं करता। वह पुण्य ही कर सकता है। पुण्य और पाप की परिभाषा ज्ञानी के जीवन में दूसरी ही हो जाती है।
अभी हम उसे पाप कहते हैं, जो नहीं करना चाहिए, यद्यपि करते हैं। और उसे पुण्य कहते हैं, जो करना चाहिए और नहीं करते हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति ईश्वर के इस सातत्य को अनुभव करता है, वैसे ही पाप और पुण्य की परिभाषा बदल जाती है। तब वह व्यक्ति जो करता है, वह पुण्य कहलाता है। और वह जो नहीं करता है, वह पाप कहलाता है। और जो नहीं करता है, वह करना भी चाहे, तो नहीं कर सकता है। और वह जो करता है, अगर चाहे भी कि न करूं, तो बच नहीं सकता है। पुण्य अनिवार्यता है ज्ञान में। और पाप अनिवार्यता है अज्ञान में। लाख उपाय करो, अज्ञान में पाप से बचा नहीं जा सकता; पाप होगा ही। और लाख उपाय करो, ज्ञान में पुण्य से बचा नहीं जा सकता; पुण्य होगा ही। ज्ञान में जो होता है, उसका नाम पुण्य है; और अज्ञान में जो होता है, उसका नाम पाप है। इसलिए अज्ञान में जिन्हें हम पुण्य समझकर करते हैं, वह हम समझते ही होंगे कि पुण्य हैं, वे पुण्य होते नहीं।
अज्ञान में एक आदमी मंदिर बनाता है भगवान का, तो सोचता है, पुण्य कर रहा है। लेकिन मंदिर जिस ढंग से बनाता है, जहां से पैसा खींचकर लाता है, उसे उसका कोई हिसाब नहीं है। मंदिर बनाता है शोषण से; सोचता है, पुण्य कर रहा हूं! और जिस पुण्य को करने के लिए भी पाप करना पड़ता हो, वह कितना पुण्य होता होगा!
और मंदिर बनाता है भगवान के नाम से, लेकिन तख्ती अपनी लगाता है। वह भगवान तो गौण है, वह जो मंदिर पर पत्थर लगता है अपने नाम का, वही असली बात

है। मंदिर उसी के लिए बनाया जाता है। भगवान की प्रतिमा भी उसी पत्थर के लिए भीतर रखी जाती है। अहंकार जिस मंदिर में प्रतिष्ठित हो रहा हो, वह कितना पुण्य है?
इसलिए अज्ञानी कुछ भी करे, कितने ही मंदिर बनाए और कितनी ही तीर्थयात्राएं करे--मक्का जाए, और जेरूसलम जाए, और काशी जाए, और जो भी करना चाहे करे--अज्ञानी कुछ भी करे, अज्ञान के कारण वह जो भी करेगा, वह पाप ही होगा। पुण्य के कितने ही मुलम्मे चढ़ाए और पुण्य के कितने ही वस्त्र ढांके, भीतर जब भी खोदकर जाएंगे, तो पाप ही मिलेगा।
इससे उलटी बात और भी कठिन है समझनी, कि ज्ञानी कुछ भी करे, पुण्य ही होगा। इसलिए तो कृष्ण उससे कह रहे हैं कि तू लड़ने की फिक्र छोड़, ज्ञान की फिक्र कर। और अगर तुझे ज्ञान मिल जाए, तो मैं तुझसे कहता हूं, तू काट डाल इन सारे लोगों को, जो तेरे सामने खड़े हैं, और पाप नहीं होगा। और अगर ज्ञान न हो, तो तू भाग जा जंगल, चींटी को भी मत मार, फूंक-फूंककर पैर रख; और मैं तुझसे कहता हूं कि पाप ही होगा।
यह परम ज्ञान उस सातत्य के साथ अपना एकत्व अनुभव होने से होता है।
यह कठिन सूत्र है। फिर इस सूत्र को समझाने के लिए ही पूरा अध्याय है।
इस सूत्र को ख्याल में ले लें। इसमें परम वचन, ऐसा वचन कृष्ण कहने जाने की घोषणा कर रहे हैं, जिसे बुद्धि से नहीं समझा जा सकता, तर्क से जिस तक पहुंचने का उपाय नहीं है। हां, प्रेम और श्रद्धा का संबंध हो, तो संवाद हो सकता है। अर्जुन के हित की दृष्टि से कह रहे हैं। कहने का कोई मजा नहीं है। एक तो आदमी होते हैं, जिन्हें कहने का मजा होता है। जिन्हें इससे प्रयोजन नहीं होता कि आपका कोई हित होगा, इसलिए कह रहे हैं। जिन्हें कहना है, जैसे कि खुजली खुजलानी है। उन्हें कुछ कहना है, वे कह रहे हैं। दिनभर हम जानते हैं चारों तरफ लोगों को, जो सुबह अखबार पढ़ लिए और फिर निकले किसी से कहने! उनको कहना है। कहना उनके लिए बीमारी है। बिना कहे उनसे नहीं चलेगा। अगर उनको चार दिन अकेले बंद कर दो, तो वे दीवालों से बातचीत शुरू कर देंगे। जाना गया है ऐसा।
कारागृह में कैदी बंद होते हैं, तो थोड़े दिन के बाद दीवालों से बातचीत शुरू कर देते हैं। मकड़ी हो ऊपर, तो उससे बातचीत करने लगते हैं; छिपकली हो, तो उससे बातचीत करने लगते हैं। कोई न हो, तो अपने को ही दो हिस्सों में बांट लेते हैं। एक तरफ से प्रश्न उठाते हैं, दूसरी तरफ से जवाब देते हैं। हम सभी करते रहते हैं। कोई न मिले, जरूरी भी नहीं। हमेशा श्रोता मिलना आसान नहीं। और जैसे दिन खराब आते जा रहे हैं, श्रोता बिल्कुल नाराज है; सुनने को कोई राजी नहीं है। पति कुछ कहना चाहता है, पत्नी सुनने को राजी नहीं है। मां कुछ कहना चाहती है, बेटा सुनने को राजी नहीं है। बाप कुछ कहना चाहता है, कोई सुनने को राजी नहीं है! श्रोता मुश्किल होता जा रहा है। और बोलना है, कहना है! एक बीमारी है।
बर्ट्रेंड रसेल ने इक्कीसवीं सदी की कहानी लिखी है एक। उसमें उसने लिखा है कि जगह-जगह हर बड़े नगर में तख्तियां लगी हैं, जो बड़ी अजीब हैं। उन तख्तियों पर लिखा हुआ है कि आपको कुछ भी कहना हो, तो हम सुनने को राजी हैं। सुनने की इतनी फीस!
और अभी ऐसा हो रहा है। पश्चिम में जिसको साइकोएनालिसिस कहते हैं, मनोविश्लेषण कहते हैं, वह कुछ भी नहीं है; आपकी बकवास सुनने की फीस! सालों चलता है एनालिसिस। पैसा जिनके पास है, वे एक बड़े मनोवैज्ञानिक के पास सप्ताह में तीन दफा, चार दफा जाकर घंटेभर, जो उनको बकना है, बकते हैं। वह बड़ा मनोवैज्ञानिक शांति से सुनता है।
सालभर की इस बकवास से मरीजों को लाभ होता है। लाभ इलाज से नहीं होता है, इस बकवास के निकल जाने से होता है। यह बीमारी है; कैथार्सिस हो जाती है सालभर। और एक बुद्धिमान आदमी, प्रतिष्ठित आदमी, योग्य आदमी, सुशिक्षित आदमी बड़ी लगन से आपकी बात सुनता है, क्योंकि आप उसको सुनने के पैसे देते हैं। वह आपकी लगन से बात सुनता है। आप कुछ भी कहिए, वह उसको ऐसे सुनता है, जैसे कि परम सत्य का उदघाटन किया जा रहा हो!

तो पश्चिम में बड़े घरों के लोग एक-दूसरे से पूछते हैं, कितनी बार साइकोएनालिसिस करवाई? कितने दिन तक? पैसे वाले का लक्षण आज अमेरिका में यही है; खास कर स्त्रियों का। पैसे वाली स्त्रियों का लक्षण यही है कि उन्होंने कितने बड़े मनोवैज्ञानिक के साथ कितने साल तक मनोविश्लेषण करवाया है!
और मनोविश्लेषण का कुल मतलब इतना है कि मनोवैज्ञानिक कहता है, लेट जाओ इस कोच पर, और जो भी मन में आए, फ्री एसोसिएशन आफ थाट्स, जो भी मन में आए, कहे चले जाओ। जो भी आए! संगत-असंगत का कोई सवाल नहीं। लोग बड़े हल्के होकर लौटते हैं।
एक तो कहने वाले वे लोग हैं, जिन्हें कहना एक बीमारी है। उनके भीतर कुछ भरा है, उसे निकालना है। लेकिन उससे दूसरे का हित कभी नहीं होता। कृष्ण कहते हैं, मैं तेरे हित के लिए कहूंगा। कुछ कहने का सवाल नहीं है। लेकिन तेरे सुनने की घड़ी आ गई, तेरे सुनने का क्षण आ गया, वह परिपक्व मौका आ गया, जब तेरा हृदय राजी है, तो मैं तुझसे परम सत्य कहूंगा। और यह परम सत्य, इस सूत्र की व्याख्या होगी अंततः, कि जीवन अजन्मा है, अनादि है। अस्तित्व का न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत। और हम इस अस्तित्व में छोटी लहरों से ज्यादा नहीं। हमारे कृत्य इस परम विस्तार को ध्यान में रखकर सोचे जाएं, तो लीला मात्र, खेल मात्र रह जाते हैं।
अगर इस परम विस्तार को छोड़ दिया जाए, तो हमारे कृत्य बड़ी महिमा ले लेते हैं, बड़ी गरिमा ले लेते हैं, बड़े महत्वपूर्ण हो जाते हैं। और हम सबकी नजर इतनी छोटी है कि इस विस्तार को हम नहीं देख पाते।
अपने घर में आप बैठे हैं अपनी कुर्सी पर, अपने कमरे के भीतर, तो आप सम्राट मालूम होते हैं। थोड़ा बाहर आइए; फिर फैले हुए इस विराट आकाश को देखिए, फिर इन चांद-तारों को देखिए, तब आपको अपना अनुपात अलग मालूम पड़ेगा। तब आपके छोटे-से कमरे में आप जो सम्राट मालूम होते थे, वह अब नहीं मालूम पड़ेंगे।
यह छोटे-छोटे दड़बों में आदमी बंद है, फ्लैट्स में, छोटी-छोटी कोठरियों में आदमी बंद है, उसकी वजह से उसकी अकड़ बहुत बढ़ गई है। उसे थोड़ा खुले आकाश के नीचे लाना चाहिए, तो उसे पता चले कि अपना अनुपात कितना है!
विराट आकाश! और जितना आकाश आपको दिखता है, उतना ही नहीं है, यह तो आपकी आंख की कमजोरी की वजह से इतना दिखता है। यह आकाश और भी विराट है। तो एक बड़े दूरदर्शी यंत्र से देखिए। तब आपको दिखाई पड़ेगा कि जितने तारे आपको दिखाई पड़ते हैं, ये तो कुछ भी नहीं हैं। आपने हालांकि सोचा होगा, क्योंकि हमारी गणना कितनी है! आप रात में तारे देखते हैं, तो कहते हैं, असंख्य! गलती में मत पड़ना।
आम आंख से आदमी चार हजार तारों से ज्यादा तारे नहीं देखता। अच्छी से अच्छी आंख चार हजार तारे देखती है, बस। चूंकि आप गिन नहीं पाते, इसलिए सोचते हैं, असंख्य। लेकिन दूरदर्शक यंत्र से देखिए, तो तीन अरब तारे अब तक देखे जा चुके हैं। लेकिन वे तीन अरब तारे जगत की सीमा नहीं हैं। जगत उनके भी पार, उनके भी पार, उनके भी पार है। अब वैज्ञानिक कहते हैं, हम कहीं भी तय न कर पाएंगे कि जगत की सीमा है।
अगर इस असीम का पता चले, तो आपको अपना कमरा और आपका राजा होना उस कमरे में, कितना मूल्यवान मालूम पड़ेगा? अगर आपको इस अनंत विस्तार का पता चले, तो पड़ोसी से आपकी एक इंच जमीन के लिए जो अदालत में मुकदमा चल रहा है, वह मुकदमा कितना मूल्यवान मालूम पड़ेगा? उसकी कोई रेलिवेंस, उसकी कोई संगति मालूम नहीं पड़ेगी।
अगर आप पीछे लौटकर देखें, तो अरबों-अरबों लोग इस जमीन पर रहे हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि जहां आप बैठे हैं, उस जगह पर कम से कम दस आदमियों की कब्र बन चुकी है; हर जगह पर। जहां आप बैठे हैं, वहां दस मुर्दे गड़े हैं। इतने आदमी हो चुके हैं कि अगर हम पूरी जमीन पर भी गड़ाएं, तो हर इंच पर दस मुर्दे गड़ जाएंगे! उनके भी झगड़े थे, उनकी भी अकड़ थी, उनकी भी राजनीति थी, उनके भी छोटी-छोटी बातों पर बड़े-बड़े विवाद थे, वे सब खो गए। आज उनका कोई विवाद नहीं है। कल हमारा भी कोई विवाद नहीं होगा।

अगर हम इस सातत्य को, इस विस्तार को अनुभव करें, तो कहां टिकेगा पाप? कहां टिकेगा पाप? कहां टिकेगा अहंकार? कहां टिकूंगा मैं? वे सब खो जाएंगे। और उनके खो जाने पर व्यक्ति नहीं बचता, परमात्मा ही बचता है।
आज इतना ही।
लेकिन उठेंगे नहीं। पांच मिनट बैठेंगे। पांच मिनट हमारे संन्यासी कीर्तन में लीन होंगे, उनके साथ आप भी लीन हों। तालियां बजाएं। कीर्तन में भाग लें। कोई भी उठेगा नहीं। यह प्रसाद समझें, और इसको लेकर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
दूसरा प्रवचन

रूपांतरण का आधार--निष्कंप चित्त और जागरूकता

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।। 4।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।। 5।।
महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।। 6।।
और हे अर्जुन, निश्चय करने की शक्ति एवं तत्वज्ञान और अमूढ़ता, क्षमा, सत्य तथा इंद्रियों का वश में करना और मन का निग्रह तथा सुख-दुख, उत्पत्ति और प्रलय एवं भय और अभय भी तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति और अपकीर्ति, ऐसे ये प्राणियों के नाना प्रकार के भाव मेरे से ही होते हैं। और हे अर्जुन, सात महर्षिजन और चार उनसे भी पूर्व में होने वाले सनकादि तथा स्वायंभुव आदि चौदह मनु, ये मेरे में भाव वाले सब के सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, कि जिनकी संसार में यह संपूर्ण प्रजा है।

जैसे आकाश ने सबको घेरा हुआ है, जैसे जीवन की ऊर्जा सभी में परिव्याप्त है, वैसे ही कण-कण, चाहे पदार्थ का हो, चाहे चेतना का, परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। कृष्ण इस सूत्र में अर्जुन से कह रहे हैं कि मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। पहले इस मौलिक धारणा को समझ लें, फिर हम सूत्र को समझें।
जैसा हम देखते हैं, तो सभी चीजें अलग-अलग मालूम पड़ती हैं। कोई एक ऐसा तत्व दिखाई नहीं पड़ता, जो सभी को जोड़ता हो। जब हम देखते हैं, तो माला के गुरिए ही दिखाई पड़ते हैं। वह माला के भीतर जो पिरोया हुआ सूत का धागा है, जो उन सबकी एकता है, वह हमारी आंखों से ओझल रह जाता है। जब भी हम देखते हैं, तो हमें खंड दिखाई पड़ते हैं, लेकिन अखंड का कोई अनुभव नहीं होता।
यह अखंड का जब तक अनुभव न हो, तब तक परमात्मा की कोई प्रतीति भी नहीं है। इसीलिए हम कहते हैं कि परमात्मा को मानते हैं, मंदिर में श्रद्धा के फूल भी चढ़ाते हैं, मस्जिद में उसका स्मरण भी करते हैं, गिरजाघर में उसकी स्तुति भी गाते हैं। लेकिन फिर भी वह परमात्मा, जिसके चरणों में हम सिर झुकाते हैं, हमारे हृदय के भीतर प्रवेश नहीं कर पाता है।
आश्चर्य की बात कि हम जिस अखंड की खोज में मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे में जाते हैं, हमारा मंदिर, हमारा मस्जिद, हमारा गुरुद्वारा भी हमें खंड-खंड करने में सहयोगी होते हैं। हम मंदिर और मस्जिद के बीच भी एक को नहीं देख पाते हैं। हिंदू और मुसलमान और ईसाई के पूजागृहों में भी हमें फासले की दीवालें और शत्रुता की आड़ें दिखाई पड़ती हैं। मंदिर भी अलग-अलग हैं, तो यह पूरा जीवन तो कैसे एक होगा?
मंदिर अलग नहीं हैं, लेकिन हमारे देखने का ढंग केवल खंड को ही देख पाता है, अखंड को नहीं देख पाता है। तो हम जहां भी अपनी दृष्टि ले जाते हैं, वहां ही हमें टुकड़े दिखाई पड़ते हैं। वह समग्र, जो सभी को घेरे हुए है, हमें दिखाई नहीं पड़ता है।
अर्जुन की भी तकलीफ वही है। उसे भी अखंड का कोई अनुभव नहीं हो रहा है। उसे दिखाई पड़ता है, मैं हूं। उसे दिखाई पड़ता है, मेरे मित्र हैं, प्रियजन हैं, शत्रु हैं। उसे दिखाई पड़ता है कि सुख क्या है, उसे दिखाई पड़ता है कि दुख क्या है। उसे दिखाई पड़ता है कि पाप क्या है, पुण्य क्या है। उसे सब दिखाई पड़ता है; सिर्फ एक, जो सभी के भीतर छिपा हुआ है, वह भर दिखाई नहीं पड़ता है। और इसलिए कृष्ण और अर्जुन के बीच जो चर्चा है, वह दो दृष्टियों के बीच है।
अर्जुन खंडित दृष्टि का प्रतीक है और कृष्ण अखंडित दृष्टि के। कृष्ण समग्र की, दि होल, वह जो पूरा है, उसकी बात कर रहे हैं और अर्जुन टुकड़ों की

बात कर रहा है। शायद इसीलिए दोनों के बीच बात तो हो रही है, लेकिन कोई हल नहीं हो पा रहा है। उन दोनों का जीवन को देखने का ढंग ही भिन्न है।
इस सूत्र में कृष्ण अर्जुन को एक-एक बात गिना रहे हैं कि मैं कहां- कहां हूं। इतना ही कहना काफी होता कि मैं सब जगह हूं। इतना ही कहना काफी होता कि सभी कुछ मैं ही हूं। लेकिन यह बात अर्जुन को स्पष्ट न हो पाएगी। अर्जुन को खंड-खंड में ही गिनाना पड़ेगा कि कहां-कहां मैं हूं। शायद उसे खंड-खंड में यह एक की झलक मिल जाए, तो खंड खो जाएं और अखंड की प्रतीति हो सके।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, निश्चय करने की शक्ति एवं तत्वज्ञान और अमूढ़ता... ।
ये तीन शब्द बहुत कीमती हैं। निश्चय करने की शक्ति!
जैसा हमारे पास मन है, अगर हम ठीक से समझें, तो हम कह सकते हैं, मन है अनिश्चय करने की शक्ति। मन का सारा काम ही भीतर यह है कि वह हमें निश्चित न होने दे। मन जो भी करता है, अनिश्चय में ही करता है। कोई भी कदम उठाता है, तो भी पूरा मन कभी कोई कदम नहीं उठाता। एक हिस्सा मन का विरोध करता ही रहता है।
अगर आप किसी को प्रेम करते हैं, तो भी मन पूरा प्रेम नहीं करता; मन का
एक हिस्सा, जिसे आप प्रेम करते हैं, उसी के प्रति घृणा से भी भरा रहता है।
और इसीलिए किसी भी दिन प्रेम घृणा बन सकता है। मन में घृणा तो मौजूद ही है।
जिसे आप प्रेम करते हैं, किसी भी क्षण उसी के प्रति क्रोध से भर सकते हैं।
एक क्षण में प्रेम की शीतलता क्रोध की अग्नि बन सकती है, क्योंकि मन तो क्रोध से भरा ही है।
और पूरे मन से न हम प्रेम करते हैं, और न पूरे मन से हम शांत होते हैं,
और न पूरे मन से हम सच्चे होते हैं। पूरा मन जैसी कोई चीज ही नहीं होती। यह समझने में थोड़ी कठिनाई पड़ेगी।
जहां पूरा हो जाता है मन, वहां मन समाप्त हो जाता है। जब तक अधूरा होता है, तभी तक मन होता है। इसे हम ऐसा समझें कि अधूरा होना, मन का स्वभाव है। अपने ही भीतर बंटा होना, मन का स्वभाव है। अपने ही भीतर लड़ते रहना, मन का स्वभाव है। द्वंद्व, कलह, खंडित होना, मन की नियति और प्रकृति है।
आपने जीवन में बहुत बार निर्णय लिए होंगे, रोज लेने पड़ते हैं, लेकिन
मन से कभी कोई निर्णय पूरा नहीं लिया जाता। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, संन्यास हमें लेना है, लेकिन अभी सत्तर प्रतिशत मन तैयार है; अभी तीस प्रतिशत मन तैयार नहीं है। कोई आता है, वह कहता है, नब्बे प्रतिशत मन तैयार है; अभी दस प्रतिशत मन तैयार नहीं है। जब मेरा पूरा मन तैयार हो जाएगा, तब मैं संन्यास में छलांग लगाऊंगा। मैं उनसे कहता हूं कि पूरा मन तुम्हारा किसी और चीज में कभी तैयार हुआ है?
पूरा मन कभी तैयार होता ही नहीं। और जब कोई व्यक्ति पूरा तैयार होता है, तो मन शून्य हो जाता है; मन तत्क्षण विदा हो जाता है। अधूरे आदमी के पास मन होता है, पूरे आदमी के पास मन नहीं होता। बुद्ध, या राम, या कृष्ण जैसे व्यक्तियों के पास मन नहीं होता। और जहां मन नहीं होता, वहीं आत्मा के दर्शन, वहीं परमात्मा की झलक मिलनी शुरू होती है।
साधारण-सी बात में भी मन झिझकता है! बाएं रास्ते से जाऊं या दाएं से,
तो भी मन सोचता है। तो भी आधा मन कहता है बाएं से, आधा मन कहता है दाएं से। और अगर हम कभी जाते भी हैं, तो वह निर्णय डेमोक्रेटिक होता है, पार्लियामेंटरी होता है। मन का ज्यादा हिस्सा जहां कहता है, वहां हम चले जाते हैं। साठ प्रतिशत मन जो कहता है, वही हम हो जाते हैं। चालीस प्रतिशत जो मन कहता है, उसे हम नहीं करते। बहुमत मन का जो कहता है, हम उसके पीछे चले जाते हैं।
लेकिन जो अभी बहुमत है, वह कल सुबह तक बहुमत रहेगा, यह पक्का नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे पार्लियामेंट में भी पक्का नहीं है कि जो अभी बहुमत है, वह कल सुबह तक भी बहुमत रहेगा। दलबदलू वहां ही नहीं हैं, मन के भीतर भी हैं।

सांझ जिसने तय किया था कि सुबह चार बजे उठूंगा और सोचा था, दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकेगी; सुबह चार बजे घड़ी का अलार्म बजता है, वही आदमी करवट लेकर कहता है, ऐसी भी क्या बात है, अभी सर्दी बहुत है और अगर आधी घड़ी सो भी लिए, तो हर्ज क्या है! वही आदमी सुबह सात बजे उठकर पछताता है और कहता है, यह कैसे हुआ! क्योंकि मैंने संकल्प किया था कि चार बजे उठूंगा ही, चाहे कुछ भी हो जाए। फिर मैं चार बजे उठा क्यों नहीं? दुखी होता है।
ये तीन बातें एक ही आदमी कर लेता है! सांझ तय करता है, उठूंगा, चाहे कुछ
भी हो जाए। चार बजे तय कर लेता है, छोड़ो भी, कुछ ऐसा उठना अनिवार्यता नहीं है; किसी की गुलामी तो नहीं है। घड़ी बज जाए, हम कोई घड़ी के गुलाम तो नहीं हैं कि उठ जाएं। और सुबह सात बजे यही आदमी पछताता है।
यह एक ही आदमी इसलिए कर पाता है, क्योंकि मन का बहुमत बदल जाता है। सांझ नब्बे प्रतिशत से निर्णय लिया था, लेकिन उसे भी पता नहीं कि छः घंटे सोने के बाद आलस्य की ताकतें बढ़ गई होंगी; और नींद के क्षण में मन का वह हिस्सा वजनी हो जाएगा, जो रात को कमजोर था; सांझ अल्पमत में था, सुबह चार बजे बहुमत में हो जाएगा। फिर वही आदमी सात बजे पछताता है, क्योंकि सुबह जागकर सांझ की बुद्धि का ख्याल आता है। होश बढ़ता है। सुबह के सूरज के साथ भीतर भी प्रकाश बढ़ता है। वह जो अल्पमत में हो गया था चार बजे रात के अंधेरे में, वह फिर बहुमत में हो गया है। पछतावा शुरू हो जाता है। यह आदमी सांझ फिर तय करेगा, रात फिर बदलेगा, सुबह फिर पछताएगा। पूरी जिंदगी आदमी की ऐसी है।
मन कोई भी निर्णय पूरा नहीं ले पाता।
सुना है मैंने, बंगाल में एक भक्त हुआ। कभी मंदिर में नहीं गया। पिता बहुत धार्मिक थे। तो पिता चिंतित थे, स्वभावतः। लेकिन बेटा बड़ा ज्ञानी था, शास्त्रों का बड़ा ज्ञाता था। दूर-दूर तक बड़ी ख्याति थी। नव्य न्याय का, न्याय का, तर्क का बड़ा पंडित था। साठ वर्ष का हो गया, तो अस्सी वर्ष के पिता ने कहा कि अब बहुत हो गया, अब तू भी बूढ़ा हो गया, अब मंदिर जाना जरूरी है! उस साठ वर्ष के बूढ़े बेटे ने कहा, मंदिर तो मैं कई बार सोचा कि जाऊं, लेकिन पूरा मन कभी मैंने पाया नहीं कि मंदिर जाऊं। और अगर अधूरे मन से गया, तो मंदिर में जा ही कैसे पाऊंगा? आधा बाहर रह जाऊंगा, आधा भीतर जाऊंगा, तो जाना हो ही नहीं पाएगा। और फिर मैं आपको भी रोज मंदिर जाते देखता हूं वर्षों से; चालीस वर्ष का तो कम से कम मुझे स्मरण है; लेकिन आपकी जिंदगी में मैंने कोई फर्क नहीं देखा। तो मैं मानता हूं कि आप मंदिर अभी पहुंच ही नहीं पाए हैं। आप जाते हैं, आते हैं, लेकिन पूरा मंदिर और पूरा मन कहीं मिल नहीं पाते। तो आपको देखकर भी मेरी हिम्मत टूट जाती है। जाऊंगा एक दिन जरूर, लेकिन उसी दिन, जिस दिन पूरा मन मेरे पास हो।
और दस वर्ष बीत गए। बाप मरने के करीब पहुंच गया। अभी तक वह प्रतीक्षा
कर रहा है कि किसी दिन उसका बेटा जाएगा। सत्तरवीं उसकी वर्षगांठ आ गई। और बेटा उस दिन सुबह बाप के पैर छूकर बोला कि मैं मंदिर जा रहा हूं।
बेटा मंदिर गया। घड़ी, दो घड़ी, तीन घड़ी बीतीं। बाप चिंतित हुआ; बेटा मंदिर से अब तक लौटा नहीं है! फिर आदमी भेजा। मंदिर के पास तो बड़ी भीड़ लग गई है। फिर बूढ़ा बाप भी पहुंचा। पुजारियों ने कहा कि इस बेटे ने क्या किया, पता नहीं! इसने आकर सिर्फ एक बार राम का नाम लिया और गिर पड़ा!
एक पत्र वह अपने घर लिखकर रख आया था। जिसमें उसने लिखा था कि एक बार राम का नाम लूंगा, पूरे मन से। अगर कुछ हो जाए, तो ठीक; अगर कुछ न हो, तो फिर दुबारा नाम न लूंगा। क्योंकि फिर दुबारा लेने का क्या प्रयोजन है?
एक ही बार राम का नाम पूरे मन से लिया गया; वह शरीर से मुक्त हो गया! लेकिन पूरे मन से तो हम कुछ ले नहीं पाते। पूरे मन का मतलब ही होता है कि मन समाप्त हुआ। मन का कोई अर्थ ही नहीं होता, जब मन पूरा हो जाए।
तो कृष्ण पहला सूत्र का हिस्सा कहते हैं, निश्चय करने की शक्ति मैं हूं।
तो जिस दिन भी अर्जुन, तू पूर्ण निश्चय कर पाएगा, उस दिन तू मुझे समझ लेगा कि मैं कौन हूं, मैं किसकी बात कर रहा हूं। लेकिन जब तक तू उस पूरे निश्चय को नहीं कर पाएगा, तब तक मुझे नहीं समझ पाएगा।

पूर्ण निश्चय हमने कभी भी नहीं किया है। छोटे-मोटे निश्चय भी हमने पूर्ण नहीं किए हैं। अगर आप पांच मिनट के लिए भी तय करें कि मैं आंख को नहीं झपकूंगा, तो भी आपको परमात्मा की झलक मिल जाए। लेकिन पांच मिनट में आंख पच्चीस बार झपक जाएगी। अगर आप तय करें कि मैं पांच मिनट बिना हिले खड़ा रहूंगा, तो भी परमात्मा की झलक मिल जाए। लेकिन पांच मिनट में पच्चीस बार आप हिल जाएंगे। जिस मन से आप तय कर रहे हैं, उस मन का स्वभाव कंपन है। तो पूर्ण निश्चय तभी होता है, जब कोई व्यक्ति मन के पार उठ पाए।
समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं मन के पार उठने के उपाय हैं। मन का अर्थ है, विचलित चेतना। और ध्यान का अर्थ है, अविचलित चेतना। ध्यान का अर्थ है, मन की मृत्यु।
इसलिए झेन फकीरों ने ध्यान के लिए नाम दिया है, नो माइंड। कबीर ने भी ध्यान को अ-मनी अवस्था कहा है; ए स्टेट आफ नो माइंड। ध्यान का अर्थ है, जहां मन न रह जाए, जहां मन न बचे, जहां कोई विकल्प न हो, जहां कोई द्वंद्व न हो। अगर एक क्षण को भी मैं इस आंतरिक समता को पा जाऊं, जहां मन में कोई द्वंद्व न हो, जहां कोई विपरीत भाव न हो, जहां कोई कलह न हो, कोई कांफ्लिक्ट न हो--एक क्षण को भी अगर यह समरसता भीतर आ जाए, तो मैं निश्चय को उपलब्ध हुआ।
उसी क्षण मुझे परमात्मा उपलब्ध हो जाए; उसी क्षण उसकी मुझे झलक मिल जाए; धागे की झलक मिल जाए, मनकों के भीतर जो छिपा है।
सूफी फकीर एक ध्यान का अभ्यास करते और करवाते हैं। पश्चिम में जार्ज गुरजिएफ ने भी उस ध्यान के प्रयोग को बहुत प्रचलित किया इस सदी में। सूफी फकीर उस प्रयोग को कहते हैं, दि एक्सरसाइज आफ हाल्ट। और गुरजिएफ ने उसे कहा है, स्टाप एक्सरसाइज--रुक जाने का प्रयोग।
गुरजिएफ अपने साधकों को कहता था कि जब मैं कहूं स्टाप, रुक जाओ, तो तुम
जो भी कर रहे होओ, वैसे ही रुक जाना। अगर तुम्हारा बायां पैर चलने के लिए ऊपर उठा हो, तो वह वहीं ठहर जाए। अगर तुम्हारा होंठ खुला हो बोलने के लिए, तो वहीं रुक जाए। अगर तुम्हारी आंख खुली हो, तो ठहर जाए। तुम फिर कुछ भी बदलाहट मत करना; वैसे ही रुक जाना।
सूफी फकीर कहते हैं कि अगर एक क्षण को भी कोई पूर्णता से रुक जाए, तो उसी पूर्णता के रुकावट के क्षण में, ठहरे होने के क्षण में, उस अगति में, उसे निश्चय का अनुभव हो जाएगा।
गुरजिएफ यह प्रयोग कर रहा था, तिफलिस, रूस के एक छोटे-से नगर में। एक नहर के पास पड़ाव डालकर अपने साधकों के साथ पड़ा था। तंबू के भीतर बैठा था सुबह ही और पास में ही नहर थी। लेकिन नहर बंद थी, पानी उसमें था नहीं। अचानक उसने चिल्लाकर तंबू के भीतर से कहा, स्टाप, रुक जाओ!
तीन साधक नहर को पार कर रहे थे, सूखी नहर को, वे वहीं रुक गए। जो साधक ऊपर थे, वे ऊपर रुक गए। और तभी अचानक नहर किसी ने खोल दी। पानी आ गया।
पानी को देखकर एक साधक ने सोचा कि गुरजिएफ तो भीतर है तंबू के, उसे क्या पता कि हम कहां फंस गए हैं! अगर मैं रुका, तो जान को खतरा है। लेकिन फिर भी वह जब तक गले तक पानी आया, तब तक रुका रहा। गले के ऊपर पानी जाने लगा, वह छलांग लगाकर बाहर निकल गया। दूसरे साधक ने सोचा कि और थोड़ी देर रुकूं; शायद गुरजिएफ आज्ञा दे दे। लेकिन जब नाक भी पानी में डूबने लगी, तो उसने सोचा कि अब पागलपन है। हम यहां ध्यान सीखने आए हैं, कोई जान गंवाने नहीं। और वह पागल भीतर बैठा हुआ है, उसे शायद पता भी नहीं है कि बाहर हम नहर में फंस गए हैं। वह भी छलांग लगाकर बाहर निकल गया। लेकिन तीसरे साधक ने सोचा कि जब तय ही कर लिया, तो अब कोई बदलाहट नहीं। उसके सिर पर से पानी बहने लगा। गुरजिएफ भागा हुआ तंबू के बाहर आया, छलांग लगाकर नहर में कूदा। उस तीसरे साधक को बेहोश बाहर निकाला गया। बेहोश, बाहर से। शरीर में पानी भर गया; शरीर से पानी निकाला गया। लेकिन जैसे ही उसका शरीर होश में आया, उस व्यक्ति ने गुरजिएफ के चरणों में सिर रख दिया; और उसने कहा कि अब मुझे सीखने को कुछ भी नहीं बचा, मैंने जान लिया। गुरजिएफ ने कहा कि इन सब शेष को भी कह दो कि तुमने क्या जाना।

उसने कहा कि जिस क्षण मैं जान को भी खोने के लिए तैयार हो गया, उसी क्षण मैंने जाना कि मन भी खो गया। जब तक मेरे मन में जरा-सा भी द्वंद्व था कि निकल जाऊं या रुकूं, तब तक मन था; तब तक भीतर कोई चीज चल रही थी; गति थी, विचार थे, हलन-चलन था। लेकिन जैसे ही मैंने तय किया कि ठीक है, जान बचे या जाए, लेकिन हटना नहीं है, वैसे ही सारे विचार खो गए। पानी तो मेरे भीतर भर गया, लेकिन मैं पहली दफा भीतर विचारों से खाली हो गया। बाहर से तो मेरे प्राण संकट में पड़ गए, लेकिन पहली दफा मैंने भीतर उसके दर्शन कर लिए जिस पर कभी कोई संकट नहीं पड़ सकता है। मैं मर भी जाता, तो अब कोई हर्ज न था, क्योंकि मैंने उसकी झलक पा ली, जो कभी नहीं मरता है।
निश्चय का अर्थ है, ऐसी अवस्था, जहां मन का कोई कंपन न हो।
तो कृष्ण कहते हैं, निश्चय में मैं हूं, तत्वज्ञान में मैं हूं। तत्वज्ञान का अर्थ फिलासफी नहीं होता। तत्वज्ञान का अर्थ विचारशास्त्र, दर्शनशास्त्र नहीं होता। बड़ी भूल हुई है। पश्चिम में एक चिंतना की धारा विकसित हुई है, जिसे फिलासफी कहते हैं। उस अर्थ में भारत में फिलासफी जैसी कोई भी चीज कभी विकसित नहीं हुई। भारत में जो विकसित हुआ, वह तत्वज्ञान है।
जर्मनी के एक विचारशील आदमी हरमन हेस ने तत्वज्ञान के लिए एक नया शब्द प्रयोग किया है, फिलोसिया। वह ठीक है। फिलासफी उसका अनुवाद नहीं है। फिलासफी का अर्थ होता है, चिंतन, मनन, विचार। तत्वज्ञान का अर्थ होता है, दर्शन, साक्षात्कार, अनुभूति। एक अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में सोचता रहे, तो वह फिलासफी है; और अंधे आदमी की आंख खुल जाए और वह प्रकाश को देख ले, तो वह तत्वज्ञान है।
तत्वज्ञान का अर्थ है, अनुभूत। फिलासफी का अर्थ है, मानसिक। तत्वज्ञान का अर्थ है, वास्तविक। फिलासफी का अर्थ है, सोचा हुआ।
तत्वज्ञान का अर्थ है, जाना हुआ। सोचना तो बहुत आसान है, जानना बहुत कठिन है। क्योंकि सोचने के लिए बदलने की कोई भी जरूरत नहीं; जानने के लिए तो स्वयं को बदलना अनिवार्य है।
तो भारत का जोर तत्वज्ञान पर है, चिंतना पर नहीं, विचारणा पर नहीं। कोई कितना ही सोचे, सोचकर कहीं कोई पहुंचता नहीं। कोई कितना ही सोचे, हाथ में विचार की राख के सिवाय कुछ भी लगता नहीं। कोई कितना ही सोचे, खाली शब्द का संग्रह बढ़ जाता है। लेकिन प्रतीति, प्रत्यभिज्ञा नहीं होती, उसकी पहचान नहीं होती। उसे तो जानना पड़े आमने-सामने। उससे तो पहचान करनी पड़े, मुलाकात करनी पड़े। सोचने से नहीं होगा।
कोई आदमी प्रेम के संबंध में बहुत सोचे, तो भी प्रेम का उसे पता नहीं चलता, जब तक कि वह प्रेम में डूब ही न जाए। प्रेम में डूबना बिल्कुल दूसरी बात है। और ऐसा भी हो सकता है कि जो प्रेम में डूब जाए, वह प्रेम के संबंध में कुछ भी न सोचा हो। और यह भी हो सकता है, और अक्सर होता है, कि जिन्होंने प्रेम के संबंध में बहुत सोचा है, वे प्रेम करने में असमर्थ ही हो जाएं। सोचने से ही उनको परितृप्ति मिल जाए, या सोचने को ही वे परिपूरक, सब्स्टीट्यूट समझ लें।
बहुत-से लोग ईश्वर के संबंध में सोचते रहते हैं। उस सोचने को ही वे समझते हैं कि अनुभव हो रहा है! सोचना अनुभव नहीं है। सोचना सहयोगी हो सकता है, सोचना उपयोगी हो सकता है, लेकिन सोचना अनुभव नहीं है। और सोच-सोचकर कोई कहीं भी नहीं पहुंचता है, कभी नहीं पहुंचा है। जानना पड़े। तो तत्वज्ञान से अर्थ है, जानना।
कृष्ण कहते हैं, जानना मैं हूं। विचारणा नहीं, थिंकिंग नहीं, नोइंग। विचार का अर्थ है कि जिसका मुझे पता नहीं है, उसके संबंध में, जो मुझे पता है, उसके आधार पर कुछ धारणा बनानी है। जिसका मुझे पता नहीं है, उस संबंध में, जिन चीजों का मुझे पता है, उनके आधार पर कोई धारणा निर्मित करनी है, बौद्धिक कोई ख्याल निर्मित करना है। कोई इमेज, कोई प्रतिमा निर्मित करनी है। लेकिन विचारों की। और विचार क्या हैं? शब्दों के संग्रह हैं। शब्दों से--न तो शब्द की आग से कोई जल सकता है, और न शब्द के फूल से कोई सुगंध मिलती है। शब्द के परमात्मा से भी कोई अनुभव नहीं मिलता।

शब्द परमात्मा परमात्मा नहीं है। तो कोई कितना ही शब्द को रटता रहे
और परमात्मा-परमात्मा दोहराता रहे, शब्द को ही दोहराता रहे, तो कहीं पहुंचेगा नहीं। यह भी हो सकता है कि दोहराते-दोहराते इस भ्रम में पड़ जाए कि मैं जानता हूं। बहुत लोग पड़ जाते हैं। पंडित की यही भूल है।
और इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि पंडित अज्ञानियों से भी ज्यादा भटक जाते हैं। पंडित की यही भूल है। शब्द का धनी होता है। शास्त्र का ज्ञाता होता है। सिद्धांत उसे स्मरण होते हैं। उसके पास धनी स्मृति होती है। उसी स्मृति को दोहराते-दोहराते वह इस भ्रांति में पड़ जाता है कि जो मैं दूसरों को कहता हूं, वह मैं भी जानता हूं। अपने ही शब्द सुनते-सुनते आत्म-सम्मोहित हो जाता है। अपने ही शब्दों को दोहराते-दोहराते एक गहरी तंद्रा में खो जाता है और लगता है कि मैं जानता हूं।
जानना बड़ी दूसरी बात है। जानने का संबंध बुद्धि से कम, जानने का संबंध पूरे अस्तित्व से है। जानने का संबंध सोचने से कम, मौन हो जाने से ज्यादा है। जानने का संबंध शब्द से कम, निःशब्द, शून्य, शांत से ज्यादा है।
जब कोई शांत हो जाता है शब्दों से, तो दर्पण बन जाता है। और उस दर्पण में जो झलक मिलती है, वह जानना है। और जब कोई शब्दों के धुएं से भरा रहता है, तो कोई झलक नहीं मिलती। कोई झलक नहीं मिलती।
पंडित अपने ही शब्दों में भटकता है, अपने ही शब्दों में उलझता रहता है, अपने ही शब्दों को हल करता रहता है। अपने ही सवाल, अपने ही जवाब देता रहता है। दर्शनशास्त्र--फिलासफी के अर्थों में--अपना ही सवाल है, अपना ही जवाब है।
तत्वज्ञान सवाल अपना है, जवाब उसका है। सवाल पूछकर साधक चुप हो जाता है, शून्य हो जाता है। जैसे झील शांत हो जाए और सारी लहरें बंद हो जाएं और आकाश का चांद झील में झलकने लगे। और झील में लहरें हों, तो भी आकाश का चांद तो झलकता है, लेकिन लहरें उसे हजार खंडों में तोड़ देती हैं।
देखें, पूर्णिमा के दिन कभी झील पर जाकर देखें। चांद तो एक है ऊपर, लेकिन झील में हजार टुकड़ों में बिखरा होता है। हजार खंडों में बंटा हुआ झील की लहरों पर बहता होता है। चांद नहीं टूट गया है, लेकिन झील का दर्पण टूटा हुआ है, इसलिए हजार चांद दिखाई पड़ते हैं। झील शांत हो जाए, ऐसी शांत कि दर्पण बन जाए, तो चांद जो ऊपर है, वही एक चांद नीचे दिखाई पड़ने लगता है। फिर झील जब बिल्कुल शांत होती है, तो पता ही नहीं चलता कि झील है भी। सिर्फ दर्पण ही रह जाता है।
ठीक ऐसे ही मन पर जब विचार होते हैं, तो तरंगें होती हैं। उन्हीं तरंगों से जो व्यक्ति सोच-सोचकर तय करता है कि चांद कैसा है, उसका चांद खंडों में बंटा हुआ होगा।
कृष्ण कहते हैं, तत्वज्ञान मैं हूं।
जब कोई पूर्ण शांत हो जाता है, तब उसे तत्व का पता चलता है। वह जो है, दैट व्हिच इ.ज, उसका पता चलता है। जो है, उसका नाम तत्व है। उसका कोई और नाम नहीं है। जो भी है, शांत हो गए व्यक्ति के भीतर झलकता है। और तब जो अनुभूति होती है, जो ज्ञान होता है, वह मैं हूं। और उस क्षण में अखंड का अनुभव होता है। जब तक मन है खंडित, तब तक हम जो भी जानेंगे, वह खंडित होगा। जब मन होगा अखंडित, तब जो हम जानेंगे, वह अखंड होगा।
तीसरा शब्द कृष्ण ने कहा है, अमूढ़ता मैं हूं, असम्मोह।
यह शब्द साधकों के लिए बहुत उपयोगी है। मूढ़ता का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति, जो जागा हुआ मालूम पड़ता है, लेकिन जागा हुआ नहीं है। सोया-सोया व्यक्ति, जैसे नींद में चल रहा हो।
कभी रास्ते के किनारे खड़े हो जाएं, और रास्ते से गुजरते हुए लोगों को देखें। गौर से देखें, आंख गड़ाकर देखें कि लोग कैसे चल रहे हैं! तो थोड़ी ही देर में आपको लगेगा कि लोग सोए-सोए चल रहे हैं। कोई आदमी चलते-चलते बात करता जा रहा है। कोई उसके साथ नहीं है, अकेला है। अपने हाथ से इशारा कर रहा है। उसके होंठ चल रहे हैं। वह किसी से बात कर रहा है। उसके चेहरे के भाव बदल रहे हैं।

यह आदमी होश में है या नींद में है? यह कोई सपना देख रहा है। यह इस सड़क
पर बिल्कुल नहीं है। यह किसी और सड़क पर होगा, यह किसी और के साथ होगा। यह किससे बातें कर रहा है? यह किसकी तरफ हाथ के इशारे कर रहा है? यह किसी के साथ है, सपने में।
हम सब सपने में चल रहे हैं। हम सबके भीतर सपने चल रहे हैं। हम कुछ भी
कर रहे हों, हमारे भीतर एक सपनों का जाल चल रहा है। और ध्यान रहे, सपना तभी चल सकता है, जब भीतर निद्रा हो। बिना नींद के सपना नहीं चल सकता। और सपने हम सबके भीतर चौबीस घंटे चलते हैं। जरा आंख बंद करो, सपना दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। आंख जब आप बंद नहीं करते, तब आप यह मत सोचना कि भीतर सपना नहीं चलता है। भीतर तो सपना चलता है, लेकिन बाहर की जरूरत के कारण आपको उस सपने का पता नहीं चलता। आंख बंद करो, सपने का पता चलना शुरू हो जाएगा।
दिन में आप देखते हैं आकाश की तरफ, तारे दिखाई नहीं पड़ते। लेकिन आप यह
मत सोचना कि तारे खो जाते हैं। तारे तो अपनी जगह होते हैं। दिन में दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि सूरज की रोशनी इतनी तेजी से बीच में आ जाती है कि आपकी आंखें तारों को नहीं देख पातीं। लेकिन दिन की भरी रोशनी में ही आप किसी गहरे कुएं में चले जाएं, तो गहरे कुएं में से देखें, तो आपको तारे दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि तब बीच का अंधेरा तारों को उघाड़ने में सहयोगी होता है। ठीक ऐसे ही, हमारे भीतर रात सपने चलते हैं, ऐसा मत सोचना; दिनभर सपने चलते हैं, चौबीस घंटे सपने चलते हैं। दिन की जरूरत में, दिन की रोशनी में, उलझन में, दूसरे काम में, बाहर उलझे होने की वजह से भीतर के सपने दिखाई नहीं पड़ते। इसलिए आरामकुर्सी पर जरा लेट जाएं, बाहर की दुनिया से आंख बंद कर लें, और दिवास्वप्न, डे-ड्रीमिंग शुरू हो जाती है। वह चल ही रही थी, आपने आंख बंद की, तो दिखाई पड़ने लगती है। आप आंख खोलकर बाहर लग जाते हैं, तो भूल जाते हैं। लेकिन भीतर चौबीस घंटे, भीतर के छबिगृह में सपने चल रहे हैं। वे सपने इस बात की खबर हैं कि हम सोए हुए हैं।
बुद्ध के पास कोई आता था, तो बुद्ध उससे पूछते थे कि तेरे सपने अभी बंद
हो गए या नहीं? अगर सपने बंद हो गए हैं, तो करने को बहुत कम काम बाकी है। और अगर सपने बंद नहीं हुए, तो बहुत बड़ा काम बाकी है। क्योंकि सपनों से लड़ना, इस जगत में सबसे बड़ी लड़ाई है। सपने दिखाई तो पड़ते हैं कि सपने हैं, लेकिन जब कोई उन्हें तोड़ने जाता है, तब पता चलता है कि कितना कठिन है। इतनी कमजोर चीज, सपना भी हम तोड़ नहीं पाते! उसका कारण है कि हम उससे भी कमजोर हैं। मूढ़ता का अर्थ है, एक तरह की निद्रा। मूढ़ता का अर्थ मूर्खता नहीं है। इसलिए पंडित भी मूढ़ हो सकता है। तथाकथित ज्ञानी भी मूढ़ हो सकता है। अज्ञानी भी मूढ़ हो सकता है। मूढ़ होना अलग ही बात है।
मूढ़ का अर्थ है, निद्रित चलना, सोए-सोए जीना। भीतर सपने चलते रहते हैं
और हम बाहर चलते रहते हैं। हम जागे हुए नहीं हैं। हम ठीक से जागे हुए नहीं हैं। इसकी आप कोशिश करें, तो आपको पता चलेगा कि कितनी गहरी नींद है। अपनी हाथ की घड़ी पर आंख गड़ाकर बैठ जाएं और तय कर लें कि पूरा एक मिनट, जो सेकेंड का कांटा है, उसको आप देखते रहेंगे स्मृतिपूर्वक, और बीच में कोई दूसरा विचार और सपना नहीं आने देंगे--एक मिनट सिर्फ।
आप पाएंगे कि दस दफा बीच में सपने आ गए, दस दफे झोंक आ गई, दस दफे निद्रा लग गई, दस दफे आप चूक गए। कांटे को भूल गए; मन कहीं और चला गया। कोई और ख्याल बीच में आ गया और आपको ले गया। एक मिनट में दस बार आपके मन में सपना आपको झकझोर डालेगा। तब आपको पता चलेगा कि मैं कैसा सोया हुआ आदमी हूं!
रास्तों पर कोई रात तीन बजे और चार बजे के बीच अधिक एक्सिडेंट होते हैं। तो ड्राइवर्स के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक वक्त रात के तीन और चार के बीच में है। मनोवैज्ञानिक बहुत दिन से इस खोज में थे कि बात क्या होगी? यह तीन और चार के बीच में जो इतनी दुर्घटनाएं होती हैं, अधिकतम दुर्घटनाएं, इसका कारण क्या होगा?
अब वे इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि तीन और चार के बीच में सपने इतने प्रगाढ़ हो जाते हैं। सोया आदमी हो, तब तो पता नहीं चलता। जागा हुआ आदमी हो, तो आंख खुली भी रहे, तो भी ड्राइवर सपनों में खो जाता है। सपने में कुछ भी

हो सकता है फिर। और इसलिए बहुत-से ड्राइवर कहते हैं कि मैं बिल्कुल जागा हुआ था। आंख मेरी खुली थी। और मेरी समझ के बाहर है कि यह दुर्घटना कैसे हो गई!
एक क्षण को भी अगर सपने ने खींच लिया हो, तो दुर्घटना होने में देर नहीं लगती। और आंख खुली हो, तो भ्रम पैदा हो सकता है कि आंख खुली थी, इसलिए मैं जागा हुआ था।
इस भूल में कोई भी न रहे। आंख का खुला होना और जागे होने का कोई भी संबंध नहीं है। बुद्ध की आंख भी बंद हो, कृष्ण की आंख भी बंद हो, तो भी वे जागे हुए होते हैं। हमारी आंख भी खुली हो, तो हम सोए हुए होते हैं। सोना और जागना आंतरिक घटनाएं हैं, आंख से इसका कोई संबंध नहीं है।
तो सोने का अर्थ हुआ कि हमारे भीतर विचारों की, सपनों की, चित्रों की
एक भीड़ है, वह चल रही है। उस भीड़ के कारण हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, कुछ भी सूझता नहीं। हम अंधे की तरह जी रहे हैं; टटोल-टटोलकर जी रहे हैं। किसी तरह रास्ते से गुजर जाते हैं, घर आ जाते हैं, काम कर लेते हैं, तो सोचते हैं कि हम जागे हुए हैं। लेकिन आध्यात्मिक अर्थों में यह जागरण नहीं है, इसे मूढ़ता... ।
कृष्ण कहते हैं, अमूढ़ता मैं हूं।
अमूढ़ता का अर्थ है, जागरण, बुद्धत्व।
बुद्ध का नाम था सिद्धार्थ गौतम, लेकिन जब वे जाग गए, तब उन्हें नाम मिला गौतम बुद्ध। गौतम दि अवेकंड, दि एनलाइटेंड; जागा हुआ गौतम। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो जो घटना घटी, वह क्या थी? वह घटना थी, उनकी नींद टूट गई। उनके भीतर कोई बेहोशी न रही। वे भीतर परम जाग्रत हो गए। फिर वे सोते भी तो भी भीतर की नींद जैसी कोई घटना नहीं घटती थी; शरीर ही सोता, भीतर जागरण बना रहता।
आनंद, उनका शिष्य, वर्षों तक उनके साथ रहा। एक दिन आनंद ने बुद्ध को पूछा कि मैं बहुत चकित हूं। आप जिस भांति सोते हैं सांझ, जहां रखते हैं दायां पैर, जहां रखते हैं बायां पैर, जिस तरह रखते हैं हाथ, जिस तरह एक हाथ रखते हैं सिर के नीचे, आप रातभर वैसे ही रखे रहते हैं! करवट भी आप बदलते नहीं। इंचभर भी पैर आपका हिलता नहीं, हटता नहीं। बात क्या है? क्या रातभर भी सम्हलकर सोते हैं?
तो बुद्ध ने कहा, सम्हलने की कोई जरूरत नहीं। शरीर ही सोया होता है, मैं सोता ही नहीं। मैं जागा ही रहता हूं। तो अगर करवट मुझे बदलनी हो, तो वह मेरे निर्णय से होगा। शरीर करवट नहीं बदल सकता। मैं बेहोश नहीं हूं, मैं पूरे होश में हूं।
और जब कोई व्यक्ति नींद में भी जाग जाए, तो योग को उपलब्ध हुआ। कृष्ण
ने कहा है कि जो नींद में भी जागा हुआ है, वही योगी है। इससे उलटा सूत्र भी हम बना सकते हैं कि जो जागकर भी सोया हुआ है, वही भोगी है।
इस जागरण का क्या अर्थ हुआ? कभी आपने जागरण का कोई क्षण अनुभव किया है?
थोड़ा मुश्किल है। कभी-कभी अचानक भी हो जाता है। अगर अचानक दो आदमी एकांत रास्ते पर आपको पकड़ लें और एक आदमी छुरा आपकी छाती पर रख दे, तो उस क्षण में आपके भीतर कोई विचार होंगे? अचानक! उस क्षण आपके भीतर कोई विचार नहीं होंगे। उस क्षण आपके भीतर सब सपने छूट जाएंगे। उस क्षण एक क्षण को आप पूरे जागे होंगे, जैसे कोई बुद्ध कभी जागा हो।
लेकिन यह बाहर की परिस्थिति पर होगा। छुरा हट जाए, या चेहरा पहचान में
आ जाए कि मित्र ही है, मजाक कर रहा है, सपने वापस दौड़ पड़ेंगे। या छुरा न भी हटे, तो एक क्षण को आकस्मिक था, इसलिए आपके भीतर की बंधी हुई धारा को तोड़ने में सफल हुआ। अगर न हटे, तो आप तत्काल सोचने में लग जाएंगे कि अब मैं क्या करूं, कैसे बचूं, कैसे भागूं, क्या जवाब दूं!
खतरे के क्षण में हमें कभी-कभी नैसर्गिक रूप से जागरूकता उपलब्ध होती है; खतरे के क्षण में। और हमने अब जिंदगी ऐसी बना ली है कि उसमें खतरे का कोई ज्यादा क्षण नहीं है। सब तरफ से हमने व्यवस्था कर ली है कि कोई खतरा न हो। इसलिए जागरण का क्षण और भी कम होता जाता है।

एक झेन फकीर था, बोकोजू। वह अपने साधकों को वृक्षों पर चढ़ना सिखाता था--ध्यान के लिए। ऊंचे वृक्षों पर चढ़ना। राजकुमार देश का, उसके पास ध्यान सीखने आया था। तो बोकोजू ने उससे कहा कि तू वृक्ष पर चढ़। वृक्ष देखकर वह मुश्किल में पड़ा। उसने कहा कि चढ़ना मैं बिल्कुल नहीं जानता। गिर पड़ा तो हाथ-पैर चकनाचूर हो जाएंगे।
बोकोजू ने कहा कि मैंने जानने वालों को तो कभी-कभी गिरते देखा है, न जानने वालों को मैंने कभी गिरते नहीं देखा। तू चढ़। क्योंकि न जानने वाला इतना खतरे से भरा रहता है कि भीतर होश रहता है, एक-एक कदम सम्हालकर रखता है। जो सोचता है कि मैं चढ़ना जानता हूं वृक्ष पर, वह कभी-कभी गिर भी जाता है, क्योंकि उसे होश रखने की कोई जरूरत नहीं होती।
वह राजकुमार चढ़ा। कोई सौ फीट ऊंचा वृक्ष! वह चढ़ता आखिरी कगार पर पहुंच गया, तब तक उसका गुरु नीचे आंख बंद करके बैठा रहा। उसने कई बार नीचे झांककर भी देखा कि गुरु कुछ सुझाव देगा, कोई मार्ग-दर्शन देगा, लेकिन वह आंख बंद करके बैठा है। फिर जब वह ऊपर पहुंच गया, तो उसे आज्ञा थी कि ऊपर से पहुंचकर वापस लौटना शुरू कर देना, आखिरी सीमा तक पहुंचकर लौट आना।
जब राजकुमार दस फीट के करीब था जमीन से वापस लौटते वक्त, तब गुरु अचानक चौंककर उठा और उसने चिल्लाकर कहा कि जरा सावधानी से उतरना! उस राजकुमार ने कहा, आप भी पागल मालूम पड़ते हैं! क्योंकि जब तुम्हारी सहायता की और चेतावनी की जरूरत थी, तब तुम आंख बंद किए बैठे रहे। और जब मैं जमीन के अब करीब आ गया हूं, जब कि अब कोई खतरा ही नहीं है, तब तुम चेतावनी दे रहे हो! जब वह राजकुमार नीचे उतर आया, तब उसके गुरु ने कहा कि निश्चित ही, मैंने तभी तुझे चेतावनी दी, जब तू निश्चिंत हो गया। जब तुझे लगा कि जमीन करीब आ गई और तेरे भीतर के सपने शुरू हो गए, तभी तू चूक सकता था और गिर सकता था। नींद शुरू हो गई। ऊपर के शिखर पर जब था, तब तो नींद के आने का कोई उपाय न था। तू खुद ही जागा हुआ था; हमारी कोई जरूरत ही न थी। वह तो जब मुझे लगा कि अब जमीन है करीब, और अब तू सो सकता है... । मैं तुझसे पूछता हूं कि जब मैंने चेतावनी की आवाज दी, तब तेरे भीतर कोई फर्क पड़ा था?
तब उस राजकुमार को स्मरण आया--हम इतने सोए हुए हैं कि हमारे भीतर भी क्या होता है, उसका भी हमें स्मरण कहां है--तब उसे स्मरण आया कि यह बात ठीक है। जब तक वह शिखर के ऊपर था, तब तक उसके भीतर ऐसी ताजगी और जागरूकता थी, जैसे सुबह का सूरज निकला हो और सब तरफ ताजगी हो। जैसे फूल खिले हों ताजे, और सब तरफ ताजगी हो। जैसे दीया जल रहा हो और सब तरफ रोशनी हो। और जैसे ही वह गुरु ने चिल्लाकर कहा कि सावधान! तभी उसे याद आया, तभी उसके भीतर ताजगी खो गई थी, भीतर के द्वार बंद हो गए थे। दीया बुझ गया था। सूरज डूब गया था। अंधेरा पकड़ रहा था। और उसे सपने आने शुरू हो गए थे। नींद घिर गई थी।
कभी खतरे के क्षण में हमें थोड़ा-बहुत होश आता हो, तो आता हो। लेकिन हम इतने कुशल हैं नींद में कि हम खतरे के क्षण को भी धोखा देकर, बचकर निकल जाते हैं।
एक मित्र के घर मैं गया था, उनके घर में कोई मर गए थे। अब घर में कोई मर जाए, तो बड़ा खतरा है। जो मर गया उसको नहीं, वह तो खतरे के बाहर हुआ; जो जिंदा हैं उनको। अगर उनमें थोड़ी भी समझ हो, तो मौत उनके लिए जिंदगी का रूपांतरण हो सकती है। क्योंकि एक की मौत सबकी मौत की खबर है। और जब भी मैं किसी को मरते देखता हूं, तो उसका मतलब है कि फिर मुझे खबर आई कि मैं मरूंगा।
लेकिन घर में मैं गया, तो वे सारे लोग रो-पीट रहे थे। जो चल बसे थे, उनकी पत्नी ने मुझसे पूछा कि आपका आत्मा की अमरता में तो विश्वास है न? मेरे पति की आत्मा तो बचेगी?
मैंने उस पत्नी को कहा कि तू और नए सपनों में खोने का उपाय कर रही है।
यह शरीर मर गया है, इस मौके को मत चूक। तेरा शरीर भी मरेगा। यह तीर तेरे भीतर इस क्षण अगर गहरे में प्रवेश कर जाए, तो तेरी नींद टूट जाए। लेकिन तू होशियार है। तू अपने बाबत सोच ही नहीं रही है! तू सोच रही है कि मेरे पति की आत्मा तो अमर है न! थोड़ी ही देर में यह खतरा समाप्त हो जाएगा, यह लाश घर से उठ जाएगी। दो-चार दिन में यह घाव पुरना शुरू हो जाएगा। साल, छः महीने में यह बात पुरानी पड़ जाएगी। इस क्षण में, इस खतरे के क्षण में, जब कोई निकटतम

मर गया है, तब इस मौत के तीर को अपनी तरफ मोड़, तो शायद तुझे ध्यान उपलब्ध हो जाए।
लेकिन उसने मुझसे कहा, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं! मेरे पति मर गए हैं और आप ध्यान की बात कर रहे हैं! आपको ध्यान के सिवाय कुछ और सूझता ही नहीं? मेरे पति मर गए हैं! वह अपनी छाती पीटने लगी।
यह छाती पीटना मौत के तथ्य को भुलाने का उपाय है। वह रोने लगी। उसकी आंख आंसू से भर गई। वह अपने पुराने सपने देखने लगी, जब उसकी शादी हुई होगी और जब बैंड-बाजे बजे होंगे, और जब वह इस घर की तरफ आई होगी बहुत सपनों को लेकर, और वह सब याददाश्त। और यह जो तथ्य का क्षण, एक सत्य का क्षण, एक तीर की तरह चुभ जाए चेतना में कोई घड़ी सामने खड़ी है, वह इसे खो देगी। हम ऐसा अपने को धोखा देते हैं।
अमूढ़ता मैं हूं, कृष्ण कहते हैं। उसका अर्थ है, जागरूकता मैं हूं। जब
भी कोई जागता है भीतर, तभी मैं उपलब्ध हो जाता हूं। जब भी कोई जागता है भीतर, तब वह जागा हुआ व्यक्ति मेरा ही भाग हो जाता है।
ये तीन शब्द ख्याल में ले लें, निश्चय करने की शक्ति, तत्वज्ञान, अमूढ़ता मैं हूं।
क्षमा, सत्य, इंद्रियों को वश में करना--दम, और मन का निग्रह--शम, तथा सुख-दुख, उत्पत्ति-प्रलय एवं भय और अभय भी मैं हूं।
इन सूत्रों को भी थोड़ा-सा समझ लें।
क्षमा। थोड़ा कठिन है। कठिन इसलिए कि हम क्षमा से जो अर्थ लेते हैं, वह कृष्ण का अर्थ नहीं है। हो भी नहीं सकता। असल में हमारी और कृष्ण की भाषा एक नहीं हो सकती। और जब भी हम कृष्ण को अपनी भाषा में अनुवादित करते हैं-- संस्कृत से हिंदी में नहीं--कृष्ण की भाषा को अपनी भाषा में जब हम अनुवादित करते हैं, तब बुनियादी भूलें हो जाती हैं। जैसे क्षमा; अगर हम पूछें अपने से कि क्षमा का क्या अर्थ है? तो साफ है अर्थ कि अगर किसी पर क्रोध आ जाए तो उसे क्षमा कर देना।
लेकिन कृष्ण की भाषा में क्षमा का यह अर्थ नहीं होता। कृष्ण की भाषा में क्षमा का अर्थ होता है, क्रोध का न आना। हमारी भाषा में अर्थ होता है, क्रोध का आना और क्षमा करना। कृष्ण की भाषा में अर्थ होता है, क्रोध का न आना, क्रोध का अभाव। हमारा अर्थ है, क्रोध को लीपना-पोतना।
मुझे आप पर क्रोध आ गया। पीछे पछतावा आता है; फिर मैं क्षमा मांग लेता हूं। तो क्रोध से जो भूल हुई थी, उसे मैं पोंछ देता हूं। एक लकीर गलत पड़ गई थी, उसे काट देता हूं। लेकिन क्रोध हो गया। और यह जो क्षमा है, यह केवल क्रोध को पोंछने का उपाय करती है; नकारात्मक है, निगेटिव है। इस क्षमा का बहुत उपयोग नहीं है। यह तो हम करते रहते हैं। चलता रहता है। अगर इसी क्षमा में अनुभव होता हो परमात्मा का, तो हम सबको हो गया होता।
कृष्ण का क्षमा से अर्थ है, जहां क्रोध पैदा नहीं होता। जहां क्रोध जन्मता नहीं, जहां क्रोध की घड़ी मौजूद होती है और भीतर क्रोध का कोई रिएक्शन, कोई प्रतिक्रिया पैदा नहीं होती, कोई प्रतिकर्म पैदा नहीं होता। बुद्ध एक गांव से गुजरते हैं, कुछ लोग गालियां देते हैं। और बुद्ध उनसे कहते हैं कि अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई हो, तो मैं जाऊं! उनमें से एक आदमी पूछता है, आप पागल तो नहीं हैं! क्योंकि हमने बातें नहीं की हैं, गालियां दी हैं। बुद्ध कहते हैं, अगर पूरी न हुई हो बातचीत, तो जब मैं लौटूंगा, तब थोड़ा ज्यादा समय लेकर यहां रुक जाऊंगा। लेकिन अभी मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है।
निश्चित ही, वे दो तरह की भाषाएं बोल रहे हैं। उस गांव के लोग गालियां समझ सकते हैं; गालियों के उत्तर में गालियां दी जाएं, यह भी समझ सकते हैं। गालियां क्षमा कर दी जाएं; बुद्ध कह दें कि जाओ मैंने माफ किया तुम्हें, यह भी समझ सकते हैं। लेकिन बुद्ध कहते हैं, तुम्हारी बात अगर पूरी हो गई हो, तो मैं जाऊं! न क्रोध है, न क्षमा है। गालियां जैसे दी ही नहीं गईं। और अगर दी भी गई हैं, तो कम से कम ली तो गई ही नहीं हैं।
एक आदमी पूछता है, लेकिन हम ऐसे न जाने देंगे। हम जानना चाहते हैं कि पागल आप हैं कि पागल हम हैं? हम गालियां दे रहे हैं, इनका उत्तर चाहिए!

बुद्ध ने कहा, अगर तुम्हें इनका उत्तर चाहिए था, तो तुम्हें दस वर्ष पहले आना था। तब मैं तुम्हें उत्तर दे सकता था। लेकिन जो उत्तर दे सकता था, वह तो समय हुआ, मर गया। तुम गालियां देते हो, यह तुम्हारा काम है, लेकिन मैंने तो बहुत समय हुआ जब से गालियां लेना ही बंद कर दीं। देने की जिम्मेवारी तुम्हारी है, लेकिन अगर मैं न लूं, तो तुम क्या करोगे? कम से कम इतनी स्वतंत्रता तो मेरी है कि मैं न लूं। और अब मैं व्यर्थ चीजें नहीं लेता। तो मैं जाऊं, अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई हो!
पर लोगों को बड़ी मुश्किल है। बुद्ध गालियां दे दें, तो भी लोग घर शांति से लौट जाएं। बुद्ध क्षमा कर दें और कहें कि नासमझ हो तुम, तुम्हें कुछ पता नहीं, तो भी लोग घर शांति से लौट जाएं। लेकिन अब इन लोगों की नींद हराम हो जाएगी, क्योंकि यह बुद्ध इनको अधर में लटका हुआ छोड़ गए। इन्होंने गाली दी थी; नदी के एक तरफ से सेतु बनाया था; दूसरा किनारा ही न मिला! इन्होंने तीर छोड़ा था, निशाना ठीक जगह लगे; हर्ज नहीं, गलत जगह लगे; लगे तो। निशाना लगा ही नहीं। और तीर चलता ही चला जाए और निशाना लगे ही नहीं, तो जैसी मजबूरी में, जैसी तकलीफ में तीर पड़ जाए, वैसी तकलीफ में ये पड़ जाएंगे। तो बुद्ध उन्हें तकलीफ में देखकर कहते हैं कि तुम बड़ी तकलीफ में पड़ गए मालूम पड़ते हो। तुम्हारी सूझ-बूझ खो गई, तो मैं तुम्हें एक सुझाव देता हूं। पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयों का थाल लेकर मुझे देने आए थे, लेकिन मेरा पेट था भरा और मैंने उनसे कहा कि तुम इन्हें वापस ले जाओ। तो वे अपनी मिठाइयों का थाल वापस ले गए। मैं तुमसे पूछता हूं, उन्होंने क्या किया होगा? तो एक आदमी ने भीड़ में से कहा, क्या किया होगा! गांव में जाकर मिठाई बांट दी होगी। तो बुद्ध ने कहा, अब तुम क्या करोगे? तुम गालियों का थाल भरकर लाए, और मैं लेता नहीं हूं। तुम जाकर गांव में इन्हें बांट लेना, ताकि तुम रात शांति से सो सको!
क्षमा का अर्थ है, वैसी चित्त की दशा, जहां क्रोध व्यर्थ हो जाता है। क्षमा का अर्थ है, चित्त की वैसी भाव-दशा, जहां क्रोध जन्मता ही नहीं।
यह बहुत मजे की बात है कि क्रोध हमें इसलिए जन्मता है-- इसलिए नहीं कि लोग क्रोध जन्मा देते हैं--क्रोध हमें इसलिए जन्मता है कि क्रोध हमारे भीतर सदा है। जब कोई आपको गाली देता है, तो आप इस भ्रांति में मत पड़ना कि उसने आपमें क्रोध पैदा करवा दिया। क्रोध तो आपके भीतर मौजूद था। उसकी गाली तो केवल उसे बाहर लाने का काम करती है।
जैसे कोई एक बाल्टी को रस्सी में बांधकर कुएं में डाल दे और खींचे और पानी भरकर बाहर आ जाए, तो क्या आप यह कहेंगे कि इस आदमी ने कुएं में पानी भर दिया? यह सिर्फ बाल्टी डालता है, कुएं में जो पानी भरा ही था, वह बाहर निकल आता है। अगर यह आदमी खाली कुएं में, सूखे कुएं में बाल्टी डाले, तो बाल्टी भड़भड़ाएगी, परेशान होगी; खाली वापस लौट आएगी।
बुद्ध में जब कोई गाली डालता है, तो खाली, सूखे कुएं में बाल्टी डाल रहा है। बाल्टी वापस लौट आएगी। मेहनत व्यर्थ जाएगी। हमारे भीतर जब कोई बाल्टी डालता है, गाली डालता है, तो भरी हुई लौटती है, लबालब लौटती है; ऊपर से बहती हुई लौटती है। और हम सोचते हैं, इस आदमी ने गाली दी, इसलिए मुझमें क्रोध पैदा हुआ! नहीं। क्रोध आपके भीतर था, इस आदमी ने कृपा की, गाली दी और आपको आपके क्रोध के दर्शन करवाए। इसने आपके क्रोध को आपके समक्ष प्रकट किया।
क्रोध किसी की गाली से पैदा नहीं होता, नहीं तो बुद्ध में भी पैदा होगा। क्रोध तो है ही, मौके उसे प्रकट करने में सहयोगी हो जाते हैं। और अगर मौके न मिलें और क्रोध भीतर हो, तो हम मौके खोज लेते हैं।
आप सबको पता होगा, अगर दो-चार-आठ दिन क्रोध करने का कोई मौका न दे, तो जैसी बेचैनी होती है, वैसी बेचैनी क्रोध करने से भी नहीं होती। मनसविद इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि आदमी को क्रोध करने का मौका न मिले, तो वह मौका खोज लेता है। वह ऐसी बात में से मौका निकाल लेता है, जहां कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि यहां क्रोध की कोई जरूरत है। वह चारों तरफ तलाश में रहता है। वह चारों तरफ अपने आस-पास अज्ञात फीलर्स छोड़ देता है; खोजते रहते हैं कि कहीं जरा मौका मिल जाए और वह क्रोध से भर जाए।

अगर इस आदमी को बंद कर दें तीन महीने एकांत में, तो यह दीवालों से लड़ेगा। यह दीवालों से सिर फोड़ेगा। यह खाली आकाश में गालियां देगा। यह अपने को भी चोट पहुंचा सकता है; अपने को भी मार सकता है। क्रोध अपने पर भी प्रकट कर सकता है।
क्रोध आपकी एक अवस्था है। ध्यान रखें, अगर क्रोध सिर्फ एक प्रतिक्रिया है किसी के द्वारा पैदा की गई, तब तो क्षमा असंभव है। क्रोध आपकी एक अवस्था है; और अगर आप अपने को बदल लें, तो क्षमा भी आपकी अवस्था हो सकती है। और तब कोई आपके भीतर बाल्टी डाले, तो क्षमा भरकर बाहर निकले। जीसस को सूली पर लटकाया है। और जीसस से कहा गया है कि अगर तुम्हें कोई अंतिम प्रार्थना करनी हो, तो मृत्यु के पहले कर लो। तो वे प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मा! इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।
गाली नहीं, सूली डाली गई है भीतर! और यह आदमी कहता है, इन्हें क्षमा कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं, ये क्या कर रहे हैं! भीतर क्षमा हो, तो क्षमा निकलेगी। भीतर क्रोध हो, तो क्रोध निकलेगा।
इस बात को एक मौलिक सूत्र की तरह अपने हृदय में लिखकर रख छोड़ें कि जो आपके भीतर है, वही निकलेगा। इसलिए जब भी कुछ आपके बाहर निकले, तो दूसरे को दोषी मत ठहराना। वह आपकी ही संपदा है, जिसको आप अपने भीतर छिपाए थे। इसलिए कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छबाय। अपनी निंदा करने वाले को आंगन और कुटी छवाकर अपने पास ही रख लेना चाहिए, ताकि भीतर जो भी कचरा है, वह उसका दर्शन करवाता रहे। वह बार-बार ऐसी बातें कहता रहे कि भीतर जो भी है, वह दिखाई पड़ता रहे। ताकि किसी दिन उससे छुटकारा भी हो जाए। लेकिन हम प्रशंसकों को पास रखना पसंद करते हैं। क्योंकि जो हमारे भीतर नहीं है, वह वे बताते रहते हैं। जो हमारे भीतर नहीं है वह! और जो हमारे भीतर है, उसे छिपाते रहते हैं। हम मित्र उनको कहते हैं--नासमझी हमारी हद्द की है--हम मित्र उनको कहते हैं, जो हमारे भीतर नहीं है, उसका हमें दर्शन कराते रहते हैं। और हम शत्रु उनको कहते हैं--नासमझी हमारी हद्द की है--कि जो हमारे भीतर है, उसका दर्शन कराएं, तो हम उन्हें शत्रु मान लेते हैं! अगर कोई गाली दे और भीतर क्रोध आए, तो उसे धन्यवाद देना कि उसने एक अवसर दिया, एक मौका जुटाया, एक परिस्थिति बनाई, जिसमें आपका क्रोध आपको दिखाई पड़ा। और अगर कोई व्यक्ति गाली देने वाले को भी धन्यवाद दे पाए, तो एक दिन उसके भीतर क्षमा की शक्ति पैदा होगी। वह क्षमा पाजिटिव है। वह क्षमा किसी किए गए क्रोध का पछतावा नहीं है; किसी क्रोध के लिए मांगी गई माफी नहीं है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप क्रोध करना, तो माफी मत मांगना। यह मैं नहीं कह रहा हूं। लेकिन उस माफी को कृष्ण की क्षमा मत समझना। वह हमारे बाजार की क्षमा है। हमारी दुनिया की क्षमा है। वह कारगर है, लुब्रिकेटिंग है, उसका बड़ा उपयोग है।
आप मुझे गाली दे गए, फिर अगर आप मुझसे क्षमा न मांगें, तो मेरे और आपके बीच चका बिल्कुल जाम हो जाएगा, लुब्रिकेशन मुश्किल हो जाएगा। थोड़ा तेल चाहिए; चके चलते रहते हैं। और जिंदगी बड़े चकों का जाल है। चके में चके उलझे हुए हैं। यहां अगर बिल्कुल क्षमा वगैरह मत करिए, तो आप जाम हो जाएंगे, अटक जाएंगे; हिलना मुश्किल हो जाएगा। मांग ली क्षमा; थोड़ा तेल पड़ गया चके में; चके फिर चलने लगे। बस हमारी क्षमा का तो इतना ही उपयोग है। लेकिन उपयोग है, और जिंदगी चलती है इस लुब्रिकेशन से।
लेकिन कृष्ण की क्षमा कोई और बात है। इस क्षमा में उस अखंड का दर्शन नहीं होगा। अगर क्षमा आपका स्वभाव बन जाए, क्रोध संभव ही न हो, अक्रोध सहज हो जाए। कोई नींद में भी आपको डाल दे आपके भीतर कुछ, तो क्षमा ही बाहर आए। आपके रोएं-रोएं से आशीष ही बहने लगें, आपका कण-कण शुभकामना और मंगल से भर जाए, तो क्षमा है।
कृष्ण कहते हैं, क्षमा मैं हूं, सत्य मैं हूं, इंद्रियों का वश में करना मैं हूं, मन का निग्रह मैं हूं।

मन का निग्रह, इंद्रियों को वश में करना--इस संबंध में थोड़ी-सी बात ख्याल में ले लें।
एक, व्यापक रूप से गलत धारणा हमारे भीतर है। जब भी हम सोचते हैं, इंद्रियों को वश में करना, तो कोई संघर्ष, कोई युद्ध, कोई लड़ाई, कोई भीतरी कलह का ख्याल आता है। जब भी हम सोचते हैं, मन का निग्रह करना, तो कोई जबरदस्ती, कोई दमन, कोई रिप्रेशन करने का ख्याल मन में आता है।
वे बड़े गलत ख्याल हैं। और जो व्यक्ति भी अपनी इंद्रियों को दुश्मन की तरह वश में करने जाएगा, वह मुसीबत में पड़ेगा। वह मालिक तो कभी न हो पाएगा, विक्षिप्त हो सकता है। और जो व्यक्ति जबरदस्ती अपने मन को ठोंक-पीटकर वश में करने की चेष्टा में लगेगा, उसका मन विद्रोही हो जाएगा, मन बगावती हो जाएगा; और मन उसे ऐसी जगह ले जाने लगेगा, जहां-जहां वह चाहता है कि मन न जाए। जहां-जहां चाहेगा कि न जाए मन, वहां-वहां जाने लगेगा। जहां-जहां रोकेगा मन, मन वहां-वहां और भी बहने लगेगा। इंद्रियों पर जितनी जबरदस्ती करेगा, उतना ही पाएगा कि ऐंद्रिक और सेंसुअल होता चला जा रहा है।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि अगर कोई जबरदस्ती ब्रह्मचर्य को थोपने बैठ जाए, तो उसके चित्त में कामवासना जितनी भयंकर हो जाती है, तूफान ले लेती है, उतना किसी गहरे से गहरे कामी के मन में भी नहीं होती।
आपको पता होगा, अगर किसी दिन उपवास करें, तब आपको पता चलेगा कि भोजन की याद उपवास के दिन ही आती है। ऐसे भोजन की कोई याद आती है! आदमी भोजन कर लेता है और भूल जाता है। आप सड़क पर निकलते हैं, आपको कभी ख्याल आया कि आप कपड़े पहने हुए हैं! एक दिन नग्न निकलकर सड़क पर देखें, तब आपको कपड़े ही कपड़े याद आएंगे।
जबरदस्ती किसी चीज को रोका जाए, तो वह स्मृति में गहन हो जाती है। जोर
से आती है, प्रगाढ़ हो जाती है। उसका बल, उसकी ताकत बढ़ जाती है। इंद्रिय-निग्रह या मन-निग्रह जबरदस्तियां नहीं हैं, वैज्ञानिक विधियां हैं। इसे ख्याल में ले लें। वैज्ञानिक विधियां हैं। लड़ाई का सवाल नहीं है, समझ का सवाल है। और जो व्यक्ति मन से लड़ेगा, वह कभी मन का मालिक न होगा। जो व्यक्ति मन को समझेगा, वह मन का मालिक तत्काल हो जाएगा। समझ सूत्र है, दमन नहीं।
लेकिन हम लड़ते रहते हैं। एक आदमी को क्रोध आता है, तो वह क्रोध को दबाता है कि क्रोध करना अच्छा नहीं है। शास्त्र में पढ़ा है, गुरुओं से सुना है, क्रोध करना बुरा है। क्रोध आता है; अब वह क्या करे? उसे दबा लेता है। दबाया हुआ और भीतर पहुंच जाता है। दबाया हुआ और रग-रग, रोएं-रोएं में फैल जाता है। दबाया हुआ नए रास्तों से निकलना शुरू हो जाता है। दबाया हुआ धीरे-धीरे स्वभाव में जहर की तरह फैल जाता है।
इसलिए देखें आप, जो आदमी को यह वहम हो कि मैंने क्रोध पर काबू पा लिया है, उसके आप रोएं-रोएं में क्रोध को झलकता हुआ देखेंगे। जिस आदमी को ख्याल हो कि मेरा अहंकार बिल्कुल समाप्त हो गया है, मैं तो बिल्कुल विनम्र हो गया हूं, उसकी आंख की झलक में, उसके चेहरे के भाव में, जगह-जगह आप अहंकार की छाप पाएंगे।
जिस आदमी को ख्याल हो कि मैंने संसार को लात मार दी है, संसार को छोड़ दिया है, त्याग कर दिया है, उसको अगर आप थोड़ा भी गौर से देखेंगे, तो उसे संसार में इस बुरी तरह फंसा हुआ पाएंगे, जिसका हिसाब नहीं। संसार नहीं होगा उसके चारों तरफ, तो भी फंसा हुआ पाएंगे। क्योंकि एक छोटी-सी लंगोटी भी पूरा साम्राज्य बन सकती है।
जो दबाया जाता है, वह विषाक्त कर देता है।
नहीं; कृष्ण का अर्थ दमन से नहीं है। इसलिए जो दमित करेगा अपने को, वह
तो और भी परमात्मा की झलक से दूर हो जाएगा। कृष्ण का प्रयोजन है रूपांतरण से, ट्रांसफार्मेशन से, एक क्रांति से, जो ज्ञान से संभव होती है।
जिस व्यक्ति को क्रोध के बाहर जाना हो, उसे क्रोध को समझना चाहिए, उसे क्रोध को पहचानना चाहिए। क्रोध ताकत है। जैसे आकाश में बिजली कौंधती है। एक दिन हम उससे डरते थे और घबड़ाते थे। आज वही बिजली प्रकाश देती है। एक दिन आकाश में कौंधती थी, तो हम घुटने टेककर जमीन पर, प्रार्थना करते थे, कि

जरूर परमात्मा नाराज है, देवता रुष्ट हैं। आज उस बिजली को हमने बांध दिया। आज कोई आकाश में चमकती बिजली को देखकर घबड़ाता नहीं है, क्योंकि अब हम जानते हैं उस बिजली के विज्ञान को।
क्रोध भी आपके भीतर कौंधती हुई बिजली है। और मजा तो यह है कि आकाश की बिजली को बांधने में हम समर्थ हो गए, आदमी के भीतर की बिजलियां अभी भी गैर-सम्हली पड़ी हैं।
क्रोध शक्ति है। अगर एक बच्चा ऐसा पैदा हो, जिसमें क्रोध हो ही नहीं,
तो वह बच्चा जिंदा नहीं रह सकेगा; मर जाएगा। नपुंसक होगा; उसमें बल ही नहीं होगा। क्रोध शक्ति है। लेकिन शक्ति का दुरुपयोग हो सकता है, सदुपयोग हो सकता है। जब कोई उस शक्ति का दुरुपयोग करता है, तो जीवन नर्क हो जाता है। क्रोधी का जीवन शक्ति का दुरुपयोग है। और जब कोई उसी शक्ति का सदुपयोग करता है, तो वही शक्ति क्षमा बन जाती है। और क्षमाशील का जीवन स्वर्ग हो जाता है।
कृष्ण जब कहते हैं, इंद्रियों के निग्रह में मैं हूं, मनोनिग्रह में मैं हूं, तो उनका अर्थ है कि जो व्यक्ति इंद्रियों को जानकर, इंद्रियों को समझकर, ज्ञान से उनके पार हो जाता है; जो व्यक्ति मन को पहचानकर, मन के प्रति जागरूक होकर, मन के ऊपर उठ जाता है, उसे मेरी झलक मिलनी शुरू हो जाती है।
दमन से नहीं, रूपांतरण से। लड़कर नहीं, जानकर।
यह सूत्र थोड़ा बारीक है। क्योंकि जानने का क्या अर्थ? कभी आपने सोचा
है कि आपने क्रोध को जाना? आप कहेंगे, बहुत जाना। रोज जानते हैं! लेकिन फिर भी मैं आपसे कहूंगा, आपने कभी नहीं जाना। क्योंकि जब क्रोध होता है, तब आपका जानना बिल्कुल ही नहीं होता है। आपका जानना खो गया होता है। तब आप बिल्कुल पागल होते हैं।
क्रोध जो है, वह अस्थायी पागलपन है। उस वक्त होश वगैरह आपके भीतर बिल्कुल नहीं होता। उस वक्त आप जो करते हैं, वह आप करते हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। आप से होता है, ऐसा ही कहना ठीक है। क्योंकि क्रोध के बाद आप ही पछताते हैं और कहते हैं कि मेरे बावजूद, इंस्पाइट आफ मी, मुझसे हो गया। यह मैं सोचता तो नहीं था कि इस बच्चे को उठाकर खिड़की के बाहर फेंक दूंगा और यह मर जाएगा। यह मैंने सोचा ही नहीं था, लेकिन यह हो गया। यह मैंने किया नहीं है; यह हो गया है। लेकिन फिर किसने किया? क्रोध इतना हावी हो गया था कि आपकी चेतना बिल्कुल खो गई थी और आप बिल्कुल मूढ़ हो गए थे, सो गए थे, बेहोश थे।
एक मुसलमान खलीफा हारुन अल रशीद अपने घोड़े पर राजधानी से निकल रहा है बगदाद में। एक आदमी अपने छप्पर पर खड़े होकर खलीफा को गालियां देने लगा। अभद्र गालियां थीं। खलीफा ने सुना और अपने सिपाहियों को कहा कि कल सुबह इस आदमी को दरबार में पकड़कर ले आओ। वह आदमी उसी समय पकड़कर बंद कर दिया गया। दूसरे दिन सुबह उस आदमी को दरबार में लाया गया।
तो खलीफा ने उससे पूछा कि कल तुमने छप्पर के ऊपर खड़े होकर गालियां किस प्रयोजन से दी थीं? उस आदमी ने कहा कि क्षमा करें, जिसने गालियां दी थीं, वह अब मैं नहीं हूं। खलीफा ने कहा कि तुम वह नहीं हो? शक्ल मैं तुम्हारी ठीक से पहचानता हूं। और सिपाहियों ने कहा कि यही आदमी है। लेकिन उस आदमी ने कहा कि और सब ठीक है। शक्ल भी वही है। आदमी भी वही है एक अर्थ में। लेकिन फिर भी मैं कहता हूं, वह मैं नहीं हूं, क्योंकि कल मैंने शराब पी रखी थी। और जब सुबह मैं होश में आया, तो मैंने सोचा, अरे, यह मैंने क्या किया!
खलीफा ने उसे मुक्त कर दिया।
लेकिन आपको पता है कि जब आप क्रोध में होते हैं, तब भी शराब आपके रग-रग रेशे-रेशे में दौड़ जाती है! अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि आपके शरीर के भीतर ग्रंथियां हैं जहर की। जब आप क्रोध में होते हैं, तो वे ग्रंथियां जहर को छोड़ देती हैं और आप बेहोश हो जाते हैं; केमिकली आप बेहोश हो जाते हैं।
तो आपने क्रोध को कभी जाना नहीं। क्योंकि जब क्रोध होता है, तब आप नहीं होते। और जब आप लौटते हैं, तब तक क्रोध जा चुका होता है। आपकी मुलाकात नहीं हुई है क्रोध से अभी। क्रोध को जानने का, या और वासनाओं को जानने का

एक ही उपाय है कि जब क्रोध मौजूद हो, तब आप आंख बंद करें और क्रोध पर ध्यान करें कि यह क्या है? कैसे उठ रहा है? कहां से आया है? कहां जा रहा है? क्या प्रयोजन है? यह क्या है शक्ति? इसका क्या है रूप? यह क्या करना चाहता है? लेकिन जब आप क्रोध में होते हैं, तो आपकी नजर दूसरे पर होती है, जिसने क्रोध करवाया। उसी में आप चूक जाते हैं। जब आप क्रोध में हों, तो नजर अपने पर रखें। दूसरे को भूल जाएं, जिसने गाली दी। उससे तो घड़ीभर बाद भी मुलाकात हो सकती है। लेकिन यह क्रोध जो आपके भीतर है, यह घड़ीभर बाद नहीं होगा; यह बह गया होगा। फिर इससे मुलाकात नहीं होगी। इस मौके को मत चूकें।
गुरजिएफ ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि मेरे पिता ने मरते वक्त मुझसे कहा था--एक छोटी-सी बात, वही मेरे जीवन में बदलाहट बन गई--उन्होंने मरते वक्त मुझसे कहा था कि मेरे पास देने को तुझे कुछ भी नहीं है, सिर्फ एक छोटी-सी सलाह है, जिसने मेरी जिंदगी को सोना बना दिया, वह मैं तुझे देता हूं। और वह सलाह यह थी कि जब तुझे कभी कोई गाली दे, तो तू चौबीस घंटेभर बाद जवाब देना; चौबीस घंटे बाद जवाब देना, इसके पहले जवाब मत देना। उससे कह देना कि मैं आऊंगा। चौबीस घंटे का मुझे मौका दें, ताकि मैं सोचूं, विचारूं। मैं चौबीस घंटेभर बाद आकर जवाब दे दूंगा।
गुरजिएफ ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुझे जवाब देने का मौका कभी नहीं आया। चौबीस घंटे बहुत लंबा वक्त था, इतनी देर जहर टिकता नहीं। वह तत्काल हो जाए, तो हो जाए।
मगर हम बड़े होशियार लोग हैं। अगर कोई भला काम करना हो, तो हम कहते हैं, जरा सोचेंगे। बुरा काम करना हो, तो हम बड़े तत्काल! फिर हम कभी नहीं कहते कि सोचेंगे। अगर कोई कहे कि एक दो पैसे दान कर दो, तो हम कहेंगे, सोचेंगे। और कोई एक गाली दे, तो हम कभी नहीं कहते कि जरा सोचेंगे। फिर सोचने का कोई सवाल नहीं है। फिर हम तत्काल! फिर हमसे ज्यादा त्वरा और तीव्रता में और जल्दी में कोई नहीं होता।
यह जल्दी क्या है, आपको पता नहीं। यह जल्दी केमिकल है, यह जल्दी रासायनिक है। वह जहर जो आपके खून में छूटा है, वह कहता है, जल्दी करो! क्योंकि अगर दो क्षण भी चूक गए, तो वह जहर तब तक खून में विलीन हो जाएगा। वह जहर जो आपकी नसों में फैलकर अकड़ गया है, वह कहता है, उठाओ घूंसा और मारो! क्योंकि अगर नहीं मारा, तो यह जहर तो बेकार चला जाएगा।
क्रोध जब हो, तब ध्यान का क्षण समझें। आंख बंद कर लें। बीच सड़क पर भी हों, तो वहीं आंख बंद कर, एक किनारे पर बैठकर ध्यान कर लें कि भीतर क्या हो रहा है! लोग शायद आपको पागल समझें, लेकिन आप पागल नहीं हैं। क्योंकि क्रोध को जो जान लेगा, वह सब पागलपन के ऊपर उठ जाता है। जब कामवासना आपको पकड़े, तब रुक जाएं। ध्यान करें उस पर। उस वासना को पहचानें भीतर से, क्या है? कौन-सी ऊर्जा भीतर उठकर इतना धक्का दे रही है कि आप पागल हुए जा रहे हैं?
तो आप बहुत शीघ्र उस ज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे, जिस ज्ञान में ये इंद्रिय-निग्रह, मनो-निग्रह सरलता से फलित हो जाते हैं। कृष्ण कहते हैं, वह भी मैं ही हूं।
वे कहते हैं, सुख और दुख, उत्पत्ति और प्रलय, भय और अभय भी मैं ही हूं।
इन तीन द्वंद्वों को एक साथ उपयोग करने का प्रयोजन है। हम सब सोचते हैं, हम सबने सोचा है बहुत बार कि परमात्मा आनंद है। लेकिन कभी सोचा है कि परमात्मा दुख भी है? यह सूत्र बहुत खतरनाक है।
कृष्ण कहते हैं, सुख भी मैं और दुख भी मैं।
हम सब सोचते हैं कि परमात्मा सुख का धाम है। परम सुख अगर चाहिए, तो परमात्मा की तरफ जाओ। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि सुख भी मैं और दुख भी मैं! तो क्या वे वेदों की, उपनिषदों की जो परम उक्ति है, सच्चिदानंद की, उसके खिलाफ बोल रहे हैं?
नहीं; उसके खिलाफ नहीं बोल रहे हैं। लेकिन अगर उस तक जाना हो, तो इस सूत्र को मानकर चलने वाला ही उस तक पहुंचता है, जहां परमात्मा मात्र आनंद रह जाता है। इस सूत्र को मानने वाला--सुख और दुख, दोनों में जो परमात्मा को देखता है, वह एक दिन परम आनंद को उपलब्ध होता है।

हम सुख में तो परमात्मा को देख सकते हैं, लेकिन दुख में! दुख में नहीं देख सकते। और जो दुख में नहीं देख सकता, वह समता को उपलब्ध नहीं होगा, शांति को उपलब्ध नहीं होगा। लेकिन जो दुख में भी देख सकता है, वह समता को उपलब्ध हो जाएगा। अगर आपको दुख में भी परमात्मा दिखाई पड़े, तो आप दुख से भागना न चाहेंगे। परमात्मा से कोई भागना चाहता है? अगर दुख में परमात्मा दिखाई पड़े, तो आप प्रार्थना न करेंगे कि दुख से मुझे छुड़ाओ! क्योंकि परमात्मा से कोई छूटना चाहता है?
और जिसको दुख में भी परमात्मा दिखाई पड़ जाए, उसके लिए फिर कोई दुख जगत में नहीं रह जाएगा। क्योंकि दुख का मतलब ही तभी तक है, जब तक हम उससे बचना चाहते हैं, भागना चाहते हैं। जिस दिन कोई दुख को भी आलिंगन करके गले लगा ले; और जिस दिन दुख को भी कोई कहे कि प्रभु आए द्वार मेरे, स्वागत है; उस दिन फिर कोई दुख नहीं बचेगा। और जिसके जीवन में कोई दुख नहीं बचता, उसके जीवन में सभी कुछ सुख हो जाता है।
हमारे जीवन में दुख से बचने की और सुख को पकड़ने की आकांक्षा होती है। लेकिन परिणाम क्या है? परिणाम इतना है कि दुख ही दुख हो जाता है; सुख तो कहीं मिलता नहीं।
कृष्ण कहते हैं, सुख भी मैं, दुख भी मैं; उत्पत्ति भी मैं, प्रलय भी मैं; जन्म भी मैं, मृत्यु भी मैं। सारे द्वंद्व मैं हूं। भय भी मैं, अभय भी मैं। जहां-जहां द्वंद्व दिखाई पड़ें, दोनों में मैं ही हूं। ऐसा जो मुझे देखेगा, वह आगे के सूत्रों को समझना और आसान हो जाएगा।
तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति, अपकीर्ति, ऐसे ये जो नाना प्रकार के भाव प्राणियों में होते हैं, वे मेरे से ही होते हैं। और हे अर्जुन, सात महर्षिजन, और चार उनसे भी पूर्व में होने वाले सनकादि तथा स्वायंभुव आदि चौदह मनु, ये मेरे भाव वाले सब के सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए, जिनकी संसार में यह संपूर्ण प्रजा है।
इस सूत्र का अर्थ है कि जितने भी जानने वाले हुए हैं अब तक, जिन्होंने
भी जाना है इस सत्य को, इस जीवन को, वे भी मेरे ही संकल्प थे, मेरे ही भाव थे; वे भी मुझसे अलग नहीं हैं। जिन्होंने भी कभी उस परम अनुभव को पाया है, चाहे वे पहले हुए ऋषि-महर्षि हों, चाहे मनु आदि हों, वे सब भी मेरे ही भाव की अवस्थाएं हैं।
कृष्ण यह कह रहे हैं कि इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम फूल खिलते हैं अनुभव के, वे सब मेरी ही सुगंध से परिव्याप्त हैं। और जब भी कोई अपनी परम दशा में पहुंचता है, तो मुझको ही उपलब्ध हो जाता है।
लेकिन उस परम दशा में वे ही लोग पहुंच पाते हैं, जो द्वंद्व के बीच अपने को समता में ठहरा लेते हैं। जो दो के बीच चुनाव नहीं करते, जो यह नहीं कहते कि हमें सुख चाहिए, दुख नहीं चाहिए। जो कहते हैं, दुख में भी तू है, और सुख में भी तू है। जो यह नहीं कहते कि जन्म तो प्यारा है, जीवन तो प्यारा है; मृत्यु नहीं चाहिए, हमें तो अमर जीवन चाहिए। जो ऐसा नहीं कहते हैं। जो कहते हैं, मृत्यु भी तेरी, जन्म भी तेरा। दोनों हमें प्रीतिकर हैं, क्योंकि दोनों ही तेरे हैं।
इस जगत में जो चुनाव नहीं करते हैं, इस जगत में जो च्वाइसलेस, चुनावरहित जीने के उपक्रम में प्रवेश करते हैं, वे सभी, चाहे किसी काल में हुए हों, वे सभी महर्षिगण, मुझको ही, मेरे ही संकल्प को, मेरे ही भाव को उपलब्ध होते हैं। कहें कि वे मेरे ही भाव के अंश हैं, वे मेरी ही लहरें हैं। लेकिन वे ऐसी लहरें हैं, जो मेरे सागर होने को भी अनुभव कर लेती हैं। आज इतना ही। फिर कल हम बात करेंगे।
लेकिन पांच मिनट रुकेंगे। कोई भी बीच से उठे न। पांच मिनट प्रसाद लेकर जाएं। राम-नाम का प्रसाद। पांच मिनट कीर्तन में सम्मिलित हों। और बीच में कोई उठे न। जब कीर्तन बंद हो, तभी आप उठें।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
तीसरा प्रवचन

ईश्वर अर्थात ऐश्वर्य

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।। 7।।
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। 8।।
और जो पुरुष इस मेरी परम ऐश्वर्यपूर्ण विभूति को और योगशक्ति को तत्व
से जानता है, वह पुरुष निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।
मैं ही संपूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूं और मेरे से ही जगत सब चेष्टा करता है, इस प्रकार तत्व से समझ कर, श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमान जन मुझ परमेश्वर को ही निरंतर भजते हैं।

और जो पुरुष इस मेरी परम ऐश्वर्यपूर्ण विभूति को और योगशक्ति को तत्व
से जानता है, वह पुरुष निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।
इस सूत्र में प्रवेश के लिए कुछ बातें प्राथमिक रूप से समझें।
जीवन के परम रहस्य को हमने ईश्वर कहा है। जीवन के परम आधार को हमने ईश्वर कहा है। और रोज हम ईश्वर शब्द का प्रयोग भी करते हैं। लेकिन शायद हमें ख्याल न हो कि ईश्वर शब्द ऐश्वर्य का ही रूप है। जहां भी ऐश्वर्य प्रकट होता है, जिस आयाम में भी, वहां ईश्वर की झलक निकटतम हो जाती है।
जब कोई फूल अपने परम सौंदर्य में खिलता है, तो उस परम सौंदर्य का नाम ऐश्वर्य है। और जब कोई ध्वनि संगीत की आत्यंतिक ऊंचाई को छू लेती है, तो उस ध्वनि का नाम भी ऐश्वर्य है। और जब कोई आंखें सौंदर्य की गहनतम स्थिति में डूब जाती हैं, तो उस सौंदर्य का नाम भी ऐश्वर्य है।
ऐश्वर्य का अर्थ है, किसी भी दिशा में और किसी भी आयाम में जो परम उत्कर्ष है, जो अंतिम सीमा है, जिसके पार नहीं जाया जा सकता है। चाहे वह सौंदर्य हो, चाहे वह सत्य हो, चाहे वह शिवम हो, कोई भी हो आयाम, लेकिन जहां जीवन अपनी अत्यंत आत्यंतिक स्थिति को छू लेता है, अपने परम शिखर को पहुंच जाता है, गौरीशंकर को छू लेता है, वहां ईश्वर निकटतम प्रकट होता है। ईश्वर तो सब जगह छिपा है, उस पत्थर में भी जो रास्ते के किनारे पड़ा है। लेकिन वही पत्थर जब एक सुंदर मूर्ति बन जाता है, तब उससे प्रकट होना उसे आसान हो जाता है। ईश्वर तो कण-कण में है, लेकिन उसके दो रूप हैं। छिपा हुआ रूप, गुप्त रूप, जब वह दिखाई नहीं पड़ता और अनुभव में नहीं आता; और उसका प्रकट रूप, जब उसकी अभिव्यक्ति होती है और वह दिखाई पड़ता है।
ऐश्वर्य का अर्थ है, जीवन के परम रहस्य की अभिव्यक्ति, उसका एक्सप्रेशन, उसकी अभिव्यक्ति की आखिरी सीमा।
कृष्ण ने इस सूत्र में कहा है कि जो पुरुष मेरी परम ऐश्वर्यपूर्ण विभूति को... ।
हम सभी सुनते हैं और कहते भी हैं कि सब जगह ईश्वर छिपा है, लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि जब भी उस ईश्वर की परम विभूति प्रकट होती है, तो हम उसे नहीं पहचान पाते हैं। जिन लोगों ने जीसस को सूली दी, वे भी कहते थे, कण-कण में ईश्वर छिपा है, लेकिन जीसस को वे न पहचान पाए। जिन लोगों ने बुद्ध को पत्थर मारे, वे लोग भी कहते थे कि कण-कण में परमात्मा का वास है, लेकिन बुद्ध को वे न पहचान पाए। जिन्होंने महावीर के कानों में खीले ठोंक दिए, वे भी सोचते थे कि परमात्मा तो सब जगह छिपा है, लेकिन महावीर में उन्हें वह परमात्मा दिखाई न पड़ा।
यह बहुत आश्चर्य की बात है कि जो लोग मानते हैं कि सब जगह छिपा है, वे
भी जब उसकी परम अभिव्यक्ति होती है, तो न केवल उसे नहीं पहचान पाते, बल्कि उसके विपरीत खड़े हो जाते हैं। निश्चित ही, इनका कहना सिर्फ कहना ही होगा;

इन्होंने जाना नहीं है, इन्होंने पहचाना नहीं है। अन्यथा जीसस को सूली लगनी असंभव थी, क्योंकि वह परमात्मा को ही सूली है। अन्यथा बुद्ध को पत्थर मारे जाने असंभव थे, क्योंकि वे परमात्मा को ही मारे गए पत्थर हैं।
और मजे की बात तो यह है कि पत्थर में भी परमात्मा छिपा है, लेकिन उसे कोई पत्थर मारने नहीं जाता है। लेकिन बुद्ध में जब परमात्मा प्रकट होता है, तो लोग पत्थर मारने पहुंच जाते हैं! जहां परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, वहां शायद हम पूजा भी कर लें; लेकिन जहां परमात्मा दिखाई पड़ता है, वहां हम शत्रु हो जाते हैं। जरूर कुछ गहरा कारण होगा। और गहरा कारण समझने जैसा है। जहां परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, वहां हम कितना ही कहें कि परमात्मा है, हम उस परमात्मा से बड़े बने रहते हैं और हमारे अहंकार को कोई बाधा नहीं पहुंचती। लेकिन जब परमात्मा अपने परम ऐश्वर्य में प्रकट होता है कहीं भी, तो हमारे अहंकार को चोट लगनी शुरू होती है। हम छोटे पड़ जाते हैं, हम नीचे हो जाते हैं।
तो हम पत्थर की मूर्ति पूज सकते हैं, लेकिन जीवित बुद्ध को हम पत्थर मारेंगे ही। फिर हम मरे हुए जीसस के आस-पास बड़े-बड़े चर्च और बड़े कैथेड्रल खड़े कर सकते हैं, लेकिन जीसस को तो हम सूली देंगे ही। जीसस में पहचानना तो तभी संभव है, जब हम कृष्ण के इस सूत्र को समझ जाएं, कि जो व्यक्ति तत्व से मेरे परम ऐश्वर्य को पहचानता है!
मान लेना परंपरा से, तत्व से पहचानना नहीं है। मान लेना सुनकर, संस्कार से, तात्विक पहचान नहीं है। क्योंकि वह पहचान हमारी क्षणभर में डगमगा जाती है। और सबसे ज्यादा वहां डगमगाती है, जहां परमात्मा का ऐश्वर्य प्रकट होता है।
कृष्ण को आज भगवान मान लेना बहुत आसान है। कृष्ण की मौजूदगी में भगवान मानना बहुत कठिन था। कृष्ण की गैर-मौजूदगी में भगवान मान लेने में कोई अड़चन नहीं है, क्योंकि हमारे अहंकार को कोई भी पीड़ा, कोई तुलना नहीं होती। लेकिन कृष्ण की मौजूदगी में भगवान मानना बहुत कठिन है।
शायद अर्जुन भी मन के किसी कोने में कृष्ण को भगवान नहीं मान पाता होगा। शायद अर्जुन के मन में भी कहीं न कहीं किसी अंधेरे में छिपी हुई यह बात होगी कि कृष्ण आखिर कर मेरे सखा हैं, मेरे मित्र हैं, और फिलहाल तो मेरे सारथी हैं! किन्हीं ऊंचाई के क्षणों में मन के भला लगता हो कि कृष्ण अद्वितीय हैं, लेकिन अहंकार के क्षण में तो लगता होगा कि मेरे ही जैसे हैं।
अगर अर्जुन भी मान पाता कि कृष्ण भगवान हैं, तो शायद इतनी चर्चा की कोई जरूरत भी न थी। इतना समझाना पड़ रहा है उसे कृष्ण को, उसका कारण यही है। उसका कारण यही है। कृष्ण जो कह रहे हैं, इसके लिए भी कृष्ण को तर्क देने पड़ रहे हैं, क्योंकि अर्जुन की समझ--कृष्ण जो कह रहे हैं, वह परमात्मा का वचन है--ऐसी नहीं है। एक मित्र की सलाह है। तो विवाद जरूरी है, चर्चा जरूरी है। और राजी हो जाए चर्चा से, तो ठीक है, मान भी लेगा। लेकिन परमात्मा की आवाज हो, तो फिर सोचने-विचारने का उपाय नहीं रह जाता। फिर सोचना-विचारना गिर ही गया।
कृष्ण का अर्जुन से यह कहना महत्वपूर्ण है कि जो मेरे परम ऐश्वर्य को तत्व से जान पाता है!
यह परम ऐश्वर्य बहुत रूपों में प्रकट होता है। अगर ठीक से समझें, तो ऐश्वर्य के सभी रूप परमात्मा के रूप हैं। और जहां भी श्रेष्ठतर दिखाई पड़े, दिशा वह कोई भी हो, वहां परमात्मा पारदर्शी हो जाता है। चाहे कोई एक संगीतज्ञ अपने संगीत की ऊंचाई को छूता हो। और चाहे कोई एक चित्रकार अपनी कला की अंतिम सीमा को स्पर्श करता हो। चाहे कोई बुद्ध अपने मौन में डूबता हो। चाहे कोई भी हो दिशा, जहां भी अभिजात्य है, जहां भी जीवन किसी अभिजात्य को छूता है, वहीं परमात्मा अपनी सघनता में प्रकट होता है और पारदर्शी हो जाता है, ट्रांसपैरेंट हो जाता है।
नीचे भी वही है; हमारे पैरों के नीचे भी जो जमीन है, वहां भी वही है; लेकिन वहां उसे देखना बहुत मुश्किल होगा। वहां हम मान भी लें, तो भी देखना

मुश्किल होगा। आसान होगा कि हम आंखें उठाएं और आकाश के तारों की विभूति में उसे देखें। वहां आसान होगा।
लेकिन हमें कठिनाई है। हम पैर के नीचे की जमीन में मान लें, लेकिन आकाश के तारों में मानना बहुत मुश्किल हो जाता है। जो भी हमसे ऊपर है, उसे मानना बहुत मुश्किल हो जाता है। जो हमसे नीचे है, उसे हम मान भी लें, क्योंकि उसे मानकर भी हम ऊपर बने रहते हैं।
इसलिए यह दुर्घटना मनुष्य के इतिहास में घटी कि हमने क्षुद्र लोगों
को मान लिया है। मंदिर के पुजारी को मानना बहुत कठिन नहीं है, लेकिन अगर मंदिर की मूर्ति जीवित हो जाए, तो पूजा करने वाले ही दुश्मन हो जाते हैं! दोस्तोवस्की ने एक छोटी-सी कथा लिखी है। लिखा है कि जीसस के मरने के अठारह सौ वर्ष बाद जीसस को ख्याल आया कि मैं पहले जो गया था जमीन पर, तो बेसमय पहुंच गया था। वह ठीक वक्त न था, लोग तैयार न थे और मुझे मानने वाला कोई भी न था। मैं अकेला ही पहुंच गया था। और इसलिए मेरी दुर्दशा हुई; और इसलिए लोग मुझे स्वीकार भी न कर पाए, समझ भी न पाए। और लोगों ने मुझे सूली दी, क्योंकि लोग मुझे पहचान ही न सके। अब ठीक वक्त है। अगर मैं अब वापस जमीन पर जाऊं, तो आधी जमीन तो ईसाइयत के हाथ में है। हर गांव में मेरा मंदिर है। जगह-जगह मेरे पुजारी हैं। जगह-जगह मेरे नाम पर घंटी बजती है, और जगह-जगह मेरे नाम पर मोमबत्तियां जलाई जाती हैं। आधी जमीन मुझे स्वीकार करती है। अब ठीक वक्त है, मैं जाऊं।
और जीसस यह सोचकर एक रविवार की सुबह बैथलहम, उनके जन्म के गांव में वापस उतरे। सुबह है। रविवार का दिन है। लोग चर्च से बाहर आ रहे हैं। प्रार्थना पूरी हो गई है। और जीसस एक वृक्ष के नीचे खड़े हो गए हैं। उन्होंने सोचा है कि आज वह अपनी तरफ से न कहेंगे कि मैं जीसस क्राइस्ट हूं। क्योंकि पहले एक दफा कहा था, बहुत चिल्लाकर कहा था कि मैं जीसस क्राइस्ट हूं; मैं ईश्वर का पुत्र हूं; मैं तुम्हारे लिए संदेश लेकर आया परम जीवन का; और जो मुझे समझ लेगा, वह मुक्त हो जाएगा, क्योंकि सत्य मुक्त कर देता है। लेकिन इस बार, अब तो वे लोग मुझे वैसे ही पहचान लेंगे, घर-घर में तस्वीर है। अब तो कोई जरूरत न होगी मुझे घोषणा करने की। वे चुपचाप खड़े रहे।
लोगों ने पहचाना जरूर, लेकिन गलत ढंग से पहचाना। भीड़ इकट्ठी हो गई, और लोग हंसने लगे, और मजाक करने लगे। और किसी ने कहा कि बिल्कुल बन-ठनकर खड़े हो! बिल्कुल जीसस जैसे ही मालूम पड़ते हो! खूब स्वांग रचा है! अभिनेता कुशल हो, जरा भी भूल-चूक निकालनी मुश्किल है!
जीसस को कहना ही पड़ा कि तुम गलती कर रहे हो। मैं कोई अभिनय नहीं कर रहा हूं। मैं वही जीसस क्राइस्ट हूं, जिसकी तुम पूजा करके बाहर आ रहे हो। तो लोग हंसने लगे और उन्होंने कहा कि जल्दी से तुम यहां से भाग जाओ, इसके पहले कि मंदिर का प्रधान पुरोहित बाहर निकले। नहीं तो तुम मुसीबत में पड़ोगे। और रविवार का दिन है, चर्च में बहुत लोग आए हुए हैं, व्यर्थ तुम्हारी मारपीट भी हो जा सकती है। तुम भाग जाओ।
जीसस ने कहा, क्या कहते हो, ईसाई होकर! पहली दफा जब मैं आया था, तो यहूदियों के बीच में आया था, कोई ईसाई न था; तो मुझे कोई पहचान न सका। यह स्वाभाविक था। लेकिन तुम भी मुझे नहीं पहचान पा रहे हो!
और तभी पादरी आ गया। चर्च के बाहर और लोग आ गए और बाजार में भीड़ लग गई। जीसस पर जो लोग हंस रहे थे, वे जीसस के पादरी के चरणों में झुक-झुककर नमस्कार करने लगे! लोग जमीन पर लेट गए। बड़ा पादरी! बड़ा पुरोहित मंदिर के बाहर आया है!
जीसस बहुत चकित हुए। फिर भी जीसस के मन में एक आशा थी कि लोग भला न पहचान पाएं, लेकिन मेरा पुजारी तो पहचान ही लेगा! लेकिन पादरी के जब लोग चरण छू चुके, और उसने आंखें ऊपर उठाकर देखा, तो कहा कि बदमाश को पकड़ो और नीचे उतारो! यह कौन शरारती आदमी है? जीसस एक बार आ चुके, और अब दुबारा आने का कोई सवाल नहीं है।
लोगों ने जीसस को पकड़ लिया। जीसस को अठारह सौ साल पहले का ख्याल आया। ठीक ऐसे ही वे तब भी पकड़े गए थे। लेकिन तब पराए लोग थे और तब समझ में आता

था। लेकिन अब अपने ही लोग पकड़ेंगे, यह भरोसे के बाहर था। और जीसस को जाकर चर्च की एक कोठरी में ताला लगाकर बंद कर दिया गया।
आधी रात किसी ने दरवाजा खोला; कोई छोटी-सी लालटेन को लेकर भीतर प्रविष्ट हुआ। जीसस ने उस अंधेरे में थोड़े से प्रकाश में देखा, पादरी है; वही पुरोहित!
उसने लालटेन एक तरफ रखी, दरवाजा बंद करके ताला लगाया। फिर जीसस के चरणों में सिर रखा और कहा कि मैं पहचान गया था। लेकिन बाजार में मैं नहीं पहचान सकता हूं। तुम हो पुराने उपद्रवी! हमने अठारह सौ साल में किसी तरह व्यवसाय ठीक से जमाया है। अब सब ठीक चल रहा है, तुम्हारी कोई जरूरत नहीं; हम तुम्हारा काम कर रहे हैं। तुम हो पुराने उपद्रवी! अगर तुम वापस आए, तो तुम सब अस्तव्यस्त कर दोगे, तुम हो पुराने अराजक। तुम फिर सत्य की बातें कहोगे और सब नियम भ्रष्ट हो जाएंगे। और तुम फिर परम जीवन की बात कहोगे, और लोग स्वच्छंद हो जाएंगे। हमने सब ठीक-ठीक जमा लिया है, अब तुम्हारी कोई भी जरूरत नहीं है। अब तुम्हें कुछ भी करना हो, तो हमारे द्वारा करो। हम तुम्हारे और मनुष्य के बीच की कड़ी हैं। तो मैं तुम्हें भीड़ में नहीं पहचान सकता हूं। और अगर तुमने ज्यादा गड़बड़ की, तो मुझे वही करना पड़ेगा, जो अठारह सौ साल पहले दूसरे पुरोहितों ने तुम्हारे साथ किया था। हम मजबूर हो जाएंगे तुम्हें सूली पर चढ़ाने को। तुम्हारी मूर्ति की हम पूजा कर सकते हैं और तुम्हारे क्रास को हम गले में डाल सकते हैं, और तुम्हारे लिए बड़े मंदिर बना सकते हैं, और तुम्हारे नाम का गुणगान कर सकते हैं, लेकिन तुम्हारी मौजूदगी खतरनाक है।
जब भी ईश्वर अपने परम ऐश्वर्य में कहीं प्रकट होगा, तब उसकी मौजूदगी खतरनाक हो जाती है। वे जो हमारे क्षुद्र अहंकार हैं, उन क्षुद्र अहंकारों को बड़ी पीड़ा शुरू हो जाती है। जब भी विराट ईश्वर सामने होता है, तो हमारा क्षुद्र अहंकार बेचैन हो जाता है। हम मरे हुए ईश्वर को पूज सकते हैं, जीवित ईश्वर को पहचानना मुश्किल है।
कृष्ण का यह सूत्र कीमती है। इसमें ऐश्वर्य शब्द को ठीक से पहचान लेना। और जहां भी, जहां भी कोई झलक मिले उसकी, जो पार है, दूर है, तो उसे प्रणाम करना, उसे स्वीकार करना।
पदार्थ में भी झलक मिलती है उसकी। फूल पदार्थ ही है। लेकिन जीवंत होकर जब खिलता है, तो पदार्थ के पार जो है, उसकी खबर आती है उसमें। वीणा भी पदार्थ है। लेकिन जब कोई गहरे प्राणों से उसके तारों को छूता है, तो उन स्वरों में भी उसका ही स्वर आता है।
जहां भी कोई चीज श्रेष्ठता को छूती है, अभिजात्य को छूती है, वहीं उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। लेकिन उतनी ऊंची आंखें उठाना हमें बड़ा मुश्किल है।
मंसूर को सूली लगी, और मंसूर के लोगों ने हाथ-पैर काट डाले। क्योंकि मंसूर ने कहा कि मैं परमात्मा हूं। और जब मंसूर को सूली पर लटकाया गया और उसके पैर काट डाले गए, तो एक आदमी ने मंसूर की तरफ आंख उठाकर देखा।
यह थोड़ी बारीक घटना है। भीड़ इकट्ठी थी। एक लाख आदमी थे सूली देने को। सूली देने में हमारी इतनी उत्सुकता है, जिसका हिसाब नहीं! दूर-दूर से लोग चलकर आए थे। और उस आदमी का कसूर कुल इतना था कि उसने घोषणा की थी कि मैं मिट गया हूं और केवल परमात्मा है। उसकी घोषणा में इतनी ही गलती थी कि उसने परम ऐश्वर्य को घोषित किया था। और उस आदमी में था। उसकी आंखों में थी बात। उसके हृदय में थी बात।
और जब कोई मंसूर से कहता था कि तुम अपने को ईश्वर कहते हो! तो मंसूर कहता था, जब तक मैं था, तब तक तो मैंने अपने को आदमी भी नहीं कहा। जब से मैं नहीं रहा हूं, तब से ही मैंने कहा है कि ईश्वर हूं। मैं नहीं हूं, ईश्वर ही है। लेकिन लोग कहते कि सब बातें हैं।
भीड़ इकट्ठी थी, लेकिन कम ही लोगों की आंखें ऊपर की तरफ थीं, जहां मंसूर
के गले में सूली लगने वाली थी। लोग तो नीचे पत्थर उठा रहे थे झुके हुए; पत्थर मारने की तैयारियां कर रहे थे।

एक आदमी ने मंसूर की तरफ देखा तो चकित हुआ, क्योंकि उसके होंठों पर मुस्कुराहट थी। और मंसूर बड़े आनंद से भरा था। तो उस आदमी ने पूछा कि मंसूर, तुम किस आनंद से भरे हो? तो मंसूर ने जो कहा था, उसे मैं बहुत धीरे से आपसे कहता हूं। मंसूर ने कहा, मैं इसलिए खुश हो रहा हूं कि शायद मुझे देखने को ही तुम्हारी आंखें थोड़ा ऊपर उठ सकें। सूली लंबी है, शायद मुझे देखने को ही तुम्हारी आंखें थोड़ी ऊपर उठ सकें। इस बहाने ही सही, तुम एक बार ऊपर देख सको, तो मेरा सूली लगना भी सार्थक हुआ।
लेकिन पता नहीं, वे लोग समझ पाए कि नहीं समझ पाए। क्योंकि यह तो बड़ी प्रतीक की बात थी। हम ऊपर देखने के आदी ही नहीं हैं। हमारी आंखें जमीन में गड़ गई हैं। हमारी आंखें जमीन की कशिश से बंध गई हैं। ऊपर उठाने में हमें आंखों को बड़ी पीड़ा होती है। क्षुद्र को देखकर हम बड़े प्रसन्न होते हैं। उससे हमारी बड़ी सजातीयता है। श्रेष्ठ को देखकर हम बड़े बेचैन होते हैं। उससे हम अपना कोई समझौता नहीं कर पाते, उसके साथ हमें बड़ी अड़चन होने लगती है।
नीत्शे ने कहा है कि अगर कहीं कोई ईश्वर है, तो मैं उसे तभी बर्दाश्त
कर सकता हूं, जब उसी के बराबर के सिंहासन पर मैं भी विराजमान होऊं। और अगर कहीं कोई ईश्वर है, तो मैं इनकार करता ही रहूंगा तब तक, जब तक कि मैं भी उसी ऊंचाई पर न बैठ जाऊं।
इसलिए श्रेष्ठ को स्वीकार करना बड़ा कठिन हो जाता है।
यही तो कठिनाई है। अगर कोई आदमी आपसे आकर कहे कि फलां आदमी असाधु है, बेईमान है, चोर है, तो हम बड़ी प्रफुल्लता से स्वीकार कर लेते हैं। कोई आकर कहे कि फलां आदमी साधु है, सज्जन है, संत है, तो कभी आपने ख्याल किया है कि आपके भीतर स्वीकार का भाव बिल्कुल नहीं उठता। आप कहते हैं कि तुम्हें पता नहीं होगा अभी, पीछे के दरवाजों से भी पता लगाओ कि वह आदमी साधु है? क्योंकि हमने बहुत साधु देखे हैं। तुमने सुन लिया होगा किसी से। कोई दलाल, कोई एजेंट तुम्हें मिल गया होगा साधु का, उसने तुमसे प्रशंसा कर दी। जरा सावधान रहना। इस तरह के जाल में मत फंस जाना।
अगर हम यह न भी कहें, तो यह भाव हमारे भीतर होता है। अगर यह भाव हमें पता भी न चले, तो भी हमारे भीतर होता है। कोई श्रेष्ठ है, इसे स्वीकार करने में बड़ी बेचैनी है। कोई निकृष्ट है, इसे स्वीकार करने में बड़ी राहत है। जब हमें पता चलता है कि दुनिया में बहुत बेईमानी हो रही है, चोरी हो रही है, हत्याएं हो रही हैं, तो हमारी छाती फूल जाती है। तब हमें लगता है, कोई हर्ज नहीं, कोई मैं ही बुरा नहीं हूं, सारी दुनिया बुरी है। और इतने बुरे लोगों से तो मैं फिर भी बेहतर हूं। रोज लोग अखबार पढ़ते हैं, उसमें पहले वे देखते हैं, कहां हत्या हो गई, कहां चोरी हो गई, कौन किस की स्त्री को लेकर भाग गया है। तब वे छाती फुलाकर बैठते हैं कि मैं बेहतर हूं इन सबसे। किसी की स्त्री को भगाने की योजना तो मैं भी करता हूं, लेकिन कार्यरूप में कभी नहीं लाता! हत्या करने का मेरे मन में भी कई बार विचार उठता है, लेकिन सिर्फ विचार है। ऐसे तो मैंने किसी को कभी कंकड़ भी नहीं मारा। ऐसे चोरी तो मेरे मन में भी आती है, लेकिन सपनों में ही आती है; वस्तुतः मैं चोर नहीं हूं।
अखबार में अगर गलत खबरें न हों, तो पढ़ने में रस ही नहीं आता। इसलिए अखबार साधुओं की कोई खबर नहीं दे सकते, क्योंकि उनको पढ़ने में किसी की कोई उत्सुकता नहीं है। अखबारों को चोरों को खोजना पड़ता है, बेईमानों को खोजना पड़ता है, हत्यारों को, बीमारों को, रुग्ण-विक्षिप्तों को खोजना पड़ता है। इसलिए अखबार अगर निन्यानबे प्रतिशत राजनीतिज्ञों की खबरों से भरा रहता है, तो उसका कारण है, क्योंकि राजनीति में निन्यानबे प्रतिशत चोर और बेईमान और सब हत्यारे इकट्ठे हैं।
लेकिन हमें क्यों रस आता है इतना?
आप भागे चले जा रहे हैं दफ्तर। और रास्ते पर दो आदमी छुरा लेकर लड़ने खड़े हो जाएं, तो आप भूल गए दफ्तर! साइकिल टिकाकर आप भीड़ में खड़े हो जाएंगे। और अगर झगड़ा ऐसे ही निपट जाए; कोई बीच में आकर छुड़ा दे, तो आप बड़े उदास लौटेंगे कि कुछ भी नहीं हुआ। कुछ होने की घड़ी थी, एक्साइटमेंट था,

उत्तेजना थी; रस आने के करीब था। कुछ होता; लेकिन कुछ भी नहीं हुआ! कोई नासमझ बीच में आ गया और सब खराब कर दिया। इतना बुराई को देखने का इतना रस क्यों है? बुराई में इतनी उत्सुकता क्यों है?
उसका कारण है। जब भी हमें कोई बुरा दिखाई पड़ता है, हम बड़े हो जाते हैं।
जब भी हमें कोई भला दिखाई पड़ता है, हम छोटे हो जाते हैं।
लेकिन जो बड़े को देखने में असमर्थ है, वह परमात्मा को समझने में असमर्थ हो जाएगा। इसलिए जहां भी कुछ बड़ा दिखाई पड़ता हो, श्रेष्ठ दिखाई पड़ता हो, कोई फूल जो दूर आकाश में खिलता है बहुत कठिनाई से, जब दिखाई पड़ता हो, तो अपने इस मन की बीमारी से सावधान रहना। परम ऐश्वर्य को कोई समझ पाए, तो ही आगे गति हो सकती है।
दूसरा शब्द कृष्ण ने कहा है, और मेरी योगशक्ति को।
यह थोड़ा कठिन है। क्योंकि आदमी के लिए योग तो अर्थपूर्ण है, क्योंकि योग का अर्थ होता है, वह शक्ति, जो व्यक्ति को परमात्मा से जोड़ दे। इसे थोड़ा समझें। योग का अर्थ है आदमी के लिए, क्योंकि योग का अर्थ है, वह जोड़ने वाली शक्ति, जो परमात्मा से जोड़ दे व्यक्ति को, जो क्षुद्र को विराट से जोड़ दे, जो बूंद को सागर से जोड़ दे। लेकिन परमात्मा की योगशक्ति क्या होगी? आदमी की योग की प्रक्रिया समझ में आती है, कि आदमी योग साधे और परमात्मा को उपलब्ध हो जाए। लेकिन परमात्मा की तरफ से योगशक्ति क्या होगी?
ठीक विपरीत शक्ति परमात्मा की तरफ से योगशक्ति है। जिसके द्वारा परमात्मा की विराटता क्षुद्रता से जुड़ी होती है, और जिसके द्वारा सागर बूंद से जुड़ा होता है।
कबीर ने कहा है कि मेरी बूंद सागर में गिर गई, अब मैं उसे कैसे खोजूं!
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई;
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।
बूंद खो गई सागर में, उसे कैसे निकालूं वापस। और कबीर खोजते-खोजते खुद
ही खो गया। खोजने निकला था प्रभु को, खुद खो गया। बूंद उसके सागर में गिर गई। अब मैं उस बूंद को कैसे वापस पाऊं!
यह पहला वक्तव्य है। लेकिन कबीर ने तत्काल दूसरा वक्तव्य इसी के नीचे लिखा है और उसमें लिखा हैः
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई;
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरा जाई।
खोजते-खोजते कबीर खो गया। और यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। पहले तो मैंने समझा था, बूंद सागर में गिर गई, अब उसे कैसे वापस पाऊं! अब मैं पाता हूं कि यह तो सागर ही बूंद में गिर गया, अब मैं बूंद को कैसे वापस पाऊं!
बूंद सागर में गिरती है, वह हमारा योगशास्त्र है। और जब सागर बूंद में गिरता है, तब वह भगवान का योग, वह भगवान की योगशक्ति है।
निश्चित ही, मिलन तो दो का होता है। यात्रा दो तरफ से होगी। एक यात्रा
के संबंध में हमने सुना है कि आदमी परमात्मा की तरफ जाता है। एक और भी यात्रा है, जिसमें परमात्मा आदमी की तरफ आता है। सच तो यह है कि हम एक कदम चलते हैं परमात्मा की तरफ, तो तत्काल परमात्मा का एक कदम हमारी तरफ उठ जाता है। यह संतुलन कभी नहीं खोता। जितना आप बढ़ते हैं, उतना परमात्मा आपकी तरफ बढ़ आता है।
आप यह मत सोचना कि जब परमात्मा से मिलना होता है, तो परमात्मा के घर में होता है। बिल्कुल नहीं। यह बीच यात्रा में होता है। आप चलकर पहुंचते हैं कुछ, परमात्मा चलकर आता है कुछ, और ठीक बीच में यह मिलन होता है।
आप ही मिलने को आतुर हैं परम से, ऐसा अगर होता, तो जीवन बड़ा साधारण होता। परम भी आतुर है आपसे मिलने को। वही जीवन का रस और आनंद है। अगर आदमी ही परमात्मा की तरफ दौड़ रहा है और यह वन वे ट्रैफिक है, एक ही तरफ से यात्रा होती हो, और परमात्मा जरा भी उत्सुक नहीं है आदमी के भीतर आने को, तो आप परमात्मा से मिल भी जाते, तो भी तृप्ति न होती, क्योंकि यह प्रेम एकतरफा होता।

नहीं, जितने आतुर आप हैं, उतना ही आतुर परमात्मा भी है। सागर भी उतना
ही आतुर है सरिता से मिलने को, जितनी सरिता आतुर है सागर से मिलने को। ये प्रेम की धाराएं दोनों तरफ से प्रवाहित हैं।
वह जो परमात्मा के मिलने की शक्ति है, उस शक्ति का नाम यहां योगशक्ति है।
इसके तो बहुत अर्थ होंगे। इससे तो पूरा एक जीवन-दर्शन विकसित होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब आप परमात्मा की तरफ चलते हैं... । सूफी फकीरों में कहावत है कि उसे खोजने तब तक कोई नहीं निकलता, जब तक वह खुद ही उसे खोजने न निकल आया हो। कहावत है कि परमात्मा की तरफ तब तक कोई नहीं चलता, जब तक कि परमात्मा ने ही साधक की तरफ चलना शुरू न कर दिया हो। कहावत है कि प्यास ही नहीं जगती, जब तक उसकी पुकार न आ गई हो।
सूफी फकीर हुआ झुन्नून, इजिप्त में हुआ। कहा है झुन्नून ने अपने संस्मरणों में कि जब मेरी मुलाकात हुई उस परम शक्ति से--प्रतीक कथा है--कि जब मैं प्रभु से मिला, तो मैंने प्रभु से कहा कि कितना तुझे मैंने खोजा! तो प्रभु मुस्कुराए और उन्होंने कहा कि क्या तू सोचता है, तूने ही मुझे खोजा? काश, तुझे पता हो कि कितना मैंने तुझे खोजा! और परमात्म शक्ति ने झुन्नून को कहा कि तूने मुझे खोजना ही तब शुरू किया, जब मैं तुझे खोजना शुरू कर चुका था। क्योंकि अगर मैं ही तुझे खोजने न निकलूं, तो तू मुझे खोजने में कभी समर्थ न हो सकेगा!
अज्ञानी कैसे खोज पाएगा? नासमझ कैसे खोज पाएंगे? जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, जिन्हें यह भी पता नहीं है कि वे खुद कौन हैं, वे कैसे खोज पाएंगे? अगर यह परम विराट ऊर्जा भी साथ न दे रही हो इस खोज में, अगर उसका भी हाथ न हो इसमें, अगर उसका भी सहारा न हो, अगर उसका भी इशारा न हो, तो यह खोज न हो पाएगी।
इसलिए धर्म व्यक्ति से परमात्मा की तरफ संबंध का नाम ही नहीं है। धर्म व्यक्ति से परमात्मा की तरफ और परमात्मा से व्यक्ति की तरफ संवाद, मिलन, आलिंगन का संबंध है। यह खोज इकतरफा नहीं है।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, तत्व से जो इसे जान ले कि परमात्मा भी खोज रहा है।
वह भी खोज रहा है। विराट भी आपको पुकार रहा है। सागर ने भी आह्वान दिया है, आओ! तो बूंद की शक्ति हजार गुना हो जाती है। सामर्थ्य बढ़ जाता है, साहस बढ़ जाता है, यात्रा बड़ी सुगम हो जाती है। यात्रा फिर यात्रा ही नहीं रह जाती है, बहुत हलकी हो जाती है, निर्भार हो जाती है।
अगर विराट भी मुझे खोज रहा है, तो फिर मिलन सुनिश्चित है। अगर मैं ही उसे खोज रहा हूं, तो मिलन सुनिश्चित नहीं हो सकता। मैं क्या खोज पाऊंगा उसको! मेरी सामर्थ्य क्या? मेरी शक्ति कितनी? लेकिन अगर वह भी मुझे खोज रहा है, तो मैं कितना ही भटकूं, और कितना ही भूलूं, और कितना ही चूकूं, कुछ भी हो जाए, मिलन होकर रहेगा।
परमात्मा की तरफ से योगशक्ति का अर्थ है, परमात्मा की हमसे मिलने की शक्ति। निश्चित ही, हम जिस दिन परमात्मा को पा लेंगे, उस दिन हम कहेंगे कि पा लिया। लेकिन परमात्मा तो अभी भी जानता है कि उसने हमें पाया हुआ है। बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो बुद्ध को देवताओं ने पूछा कि तुम्हें क्या मिला? तो बुद्ध ने कहा, मुझे कुछ मिला नहीं। जो मुझे मिला ही हुआ था, केवल उसका पता चला। जो मेरे पास था ही, जो मेरी संपत्ति ही थी, मेरे ही भीतर, लेकिन मुझे जिसका कोई स्मरण न था, उसकी स्मृति आई। तो मुझे कुछ मिला नहीं है, जो मिला ही हुआ था, उसका मुझे पता चला।
परमात्मा से जिस दिन हमारा मिलन होगा, हमें पता चलेगा कि मिलन हुआ। परमात्मा को पता चलने का कोई कारण नहीं कि मिलन हुआ; मिलन हुआ ही हुआ है।
वह हमारे चारों तरफ मौजूद है। बाहर-भीतर, रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में वह मौजूद है। हम उसमें मौजूद नहीं हैं। वह हममें मौजूद है; हम उसमें मौजूद नहीं हैं।
जैसे अंधा आदमी खड़ा हो सूरज की रोशनी में। बरसती हो रोशनी चारों तरफ।
रोएं-रोएं पर चोट करती हो कि द्वार खोलो। और उस आदमी को कोई भी पता न हो कि

सूरज है। और फिर वह आदमी आंख खोले, और तब वह पाए कि चारों तरफ सूरज है। आंख का मिलन हुआ सूरज से। सूरज तो तब भी मिल रहा था आंख से, भला आंख बंद रही हो।
सूरज तो तब भी द्वार पर ही खड़ा था। सूरज के लिए कोई नई घटना नहीं घट रही है। लेकिन सूरज भी दस्तक दे रहा था; वह भी द्वार खटखटा रहा था।
परमात्मा के लिए तो हम उसके ही भीतर हैं, लेकिन वह हमारे भीतर नहीं है। जब मैं कहता हूं, वह हमारे भीतर नहीं है, तो यह कोई अस्तित्वगत वक्तव्य नहीं है। जब मैं कहता हूं, वह हमारे भीतर नहीं है, तो इसका कुल इतना मतलब हुआ कि वह तो हमारे भीतर है, लेकिन हमें उसके भीतर होने का कोई भी पता नहीं है। यह ज्ञानगत वक्तव्य है।
आपके खीसे में हीरा रखा है। आपको पता नहीं है। आप सड़क पर भीख मांग रहे हैं। हीरे के होने और न होने में कोई फर्क नहीं है। न होता, तो भी आप भीख मांगते; है, तो भी भीख मांग रहे हैं। आप भिखारी हैं। हीरा आपकी जेब में पड़ा है। हीरा है या नहीं है, बराबर है। उसके होने, न होने का कोई भी बाजार के मूल्य में फर्क नहीं है।
लेकिन आपका हाथ खीसे में जाए। कोई आपको खीसे का पता बता दे। आप हाथ भीतर डालें। हीरा आपको मिल जाए। तो आप यही कहेंगे कि हीरा मुझे मिला। लेकिन ज्यादा उचित होगा कहना कि हीरा मेरे पास था; मुझे मिला ही हुआ था; सिर्फ मुझे पता नहीं था। मुझे स्मरण आया। मुझे पहचान आई। मैंने जाना कि हीरा है।
कृष्ण का अर्थ है यहां कि जो पुरुष मेरी योगशक्ति को तत्व से जानता है, वह निश्चिंत हो जाता है। वह जानता है कि परमात्मा में मैं स्थापित ही हूं, मिला ही हुआ हूं। उसका हाथ मेरे हाथ तक आ ही गया है। सिर्फ मुझे मेरे हाथ को बांधना है, सिर्फ मुझे मेरे हाथ को उसके हाथ में दे देना है। हाथ उसका दूर नहीं है। उसके हृदय की धड़कन मेरे हृदय की ही धड़कन है। मेरे हृदय की धड़कन ही उसके हृदय की धड़कन भी है।
ऐसा जो तत्व से जानता है!
यह तत्व शब्द का बहुत प्रयोग कृष्ण जगह-जगह करते हैं, सिर्फ एक फासला बनाने को कि सुनकर जान लेने से नहीं कुछ होगा। मैंने आपसे कहा, आपने सुन लिया। एक अर्थ में आपने जान लिया। आप मान सकते हैं कि ठीक है। मान लिया। लेकिन इससे कुछ भी न होगा। आपकी जिंदगी तो वैसी ही चलती रहेगी, जैसी तब चलती थी, जब आपने यह नहीं जाना था। और जिंदगी में कोई फर्क न पड़ेगा। आदमी क्या मानता है, इससे उसके धार्मिक होने का कोई पता नहीं चलता। आदमी कैसा जीता है, इससे उसके धार्मिक होने का पता चलता है।
अठारह सौ सत्तावन में एक मौन संन्यासी को अंग्रेजों ने छाती में भाला भोंक दिया था, भूल से। नग्न संन्यासी था, मौन था वर्षों से। रास्ते से गुजर रहा था नाचता हुआ। अंग्रेजों की छावनी पड़ी थी, गदर का मौसम था, हवा खराब थी। अंग्रेजों के लिए संकट का समय था। उन्होंने पकड़ लिया उसे। उससे पूछा, कौन हो? संदिग्ध पाया, क्योंकि न वह आदमी बोले। नाचे जरूर, हंसे जरूर; बोले नहीं! तो समझा कि कोई जासूस है और छावनी के इर्द-गर्द कुछ पता लगाने आया है। तो उसकी छाती में भाला मार दिया।
उस संन्यासी ने प्रतिज्ञा ले रखी थी कि मरते वक्त एक बार बोलूंगा। छाती में भाला लगा, तो बस एक मौका था उसे जीवन में बोलने का। उसने जो शब्द बोले, वह तत्व से जानता होगा, इसलिए बोले।
उसने उपनिषद के महावचन का उपयोग किया, तत्वमसि श्वेतकेतु। उसने कहा, दैट आर्ट दाउ श्वेतकेतु। उस अंग्रेज से, जिसने छाती में भाला भोंका, उससे कहा कि तुम भी परमात्मा हो, श्वेतकेतु। और गिर गया।
मृत्यु के क्षण में जब कोई छुरा भोंक रहा हो छाती में या भाला भोंक रहा हो, तब भी उसमें परमात्मा को देखने की क्षमता तत्व से आती है, विश्वास से नहीं आती। मान लेने से नहीं आती, समझ लेने से नहीं आती, जान लेने से आती है।
तो एक तो ईश्वर की धारणा है, जो हम समझ लेते हैं बुद्धिगत रूप से, इंटलेक्चुअली। उसका बहुत मूल्य नहीं है। एक ईश्वर की प्रतीति है, जो हम

संवेदना से जानते हैं, सेंसिटिवली। इन थोड़े दो शब्दों को ठीक से समझ लें-- इंटलेक्चुअली, बुद्धि से; संवेदना से, सेंसिटिवली, प्रतीति से।
हवाएं छूती हैं शरीर को, तो अनुभव होता है, वही छू रहा है। आंख उठती है सूरज की तरफ, तो अनुभव होता है, उसी की रोशनी है। फूल खिलता है, तो लगता है, उसी की सुगंध है। कोई सुंदर चेहरा दिखाई पड़ता है, तो लगता है, उसी का सौंदर्य है। रोएं-रोएं से, उठते-बैठते, सोते-चलते, जो भी संवेदना होती है, सभी संवेदनाओं में उसी का संदेश प्रतीत होता है। तो धीरे-धीरे जीवन के सब द्वार उसी की खबर लाने लगते हैं। और भीतर एक क्रिस्टलाइजेशन, एक तत्व संगृहीत होता है। और भीतर एक केंद्र, एक सेंटरिंग घटित होती है।
उस जानने को, कृष्ण तत्व से जानना कहते हैं। उस जानने को, तत्व से जानना कहते हैं।
क्या करें इसके लिए? हमारी तो संवेदना बोथली हो गई है, मर गई है। किसी
का हाथ भी छूते हैं, तो कुछ पता नहीं चलता। चमड़ी से चमड़ी भला स्पर्श करती हो, लेकिन चमड़ी के पार भी कोई चीज छुई जा रही है, इसका पता नहीं चलता।
अभी योरोप और अमेरिका में बड़े व्यापक पैमाने पर प्रयोग चलते हैं सेंसिटिविटी के, संवेदना के। लोग गिरोहों में इकट्ठे होते हैं, एक-दूसरे के शरीर को छूने और जानने के लिए कि छूने का अनुभव क्या है। उसका प्रशिक्षण चलता है। आपको मैं थोड़ा-सा कोई उदाहरण दूं, तो ख्याल में आ जाए। आप गए हैं जुहू के तट पर, रेत में बैठे हुए हैं। आंख बंद कर लें, रेत को हाथ से छुएं, कांशसली। रेत तो बहुत बार छुई है, बहुत बार उस पर चले हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, रेत की आपको कोई संवेदना नहीं है। आंख बंद कर लें, शांत हो जाएं, विचार शांत हो जाने दें, फिर रेत को हाथ से छुएं। उसका टेक्सचर, उसको अनुभव करें--क्या है--हाथ से छूकर। उलटे हाथ से छुएं; उसकी ठंडक, उसकी गर्मी, एक-एक दाने का अलग-अलग भाव। लेट जाएं, सिर रेत में रख लें। आंखें रेत में गपा दें, बंद आंखें। अनुभव करें आंखों की पलकों पर--रेत की प्रतीति, रेत का फैलाव, रेत का अस्तित्व। मुट्ठी में बांधें; अनुभव करें।
एक घंटेभर रेत के साथ संवेदना को विकसित करें। और तब आप पहली दफा अनुभव करेंगे कि रेत में भी बड़े आयाम हैं। उसका भी अपना होना है। रेत के भी बड़े अनुभव हैं, रेत की भी बड़ी स्मृतियां हैं, रेत का भी बड़ा लंबा इतिहास है। रेत भी सिर्फ रेत नहीं है। वह भी अस्तित्व की एक दिशा है। और तब बहुत कुछ प्रतीति होगी। बहुत कुछ प्रतीति होगी।
हरमन हेस ने किताब लिखी है, सिद्धार्थ। उसमें सिद्धार्थ एक पात्र है,
वह नदी के किनारे वर्षों रहता है, नदी को अनुभव करता है। कभी नदी जोर में होती है, तूफान होता है, आंधी होती है, तब नदी का एक रूप प्रकट होता है। कभी नदी शांत होती है, मौन होती है, लीन होती है अपने में, लहर भी नहीं हिलती है, तब नदी का एक और ही रूप होता है। कभी नदी वर्षा की नदी होती है, विक्षिप्त और पागल, सागर की तरफ दौड़ती हुई, उन्मत्त। तब नदी में एक उन्माद होता है, एक मैडनेस होती है; उसका भी अपना आयाम है, अपना अस्तित्व है। और कभी धूप आती है, गर्मी के दिन आते हैं, और नदी सूख जाती है, क्षीण हो जाती है; दीन-दुर्बल हो जाती है, पतली, एक चांदी की चमकती धार ही रह जाती है। तब उस नदी की दुर्बलता में, उस नदी के मिट जाने में कुछ और है।
धीरे-धीरे सिद्धार्थ उस नदी के किनारे रहते-रहते नदी की वाणी समझने लगता है। धीरे-धीरे नदी के भाव समझने लगता है, मूड समझने लगता है। नदी कब नाराज है, नदी कब खुश है, कब नदी नाचती है और कब नदी उदास होकर बैठ जाती है! कब दुखी होती है, कब संतप्त होती है, कब प्रफुल्लित होती है, वह उसके सारे स्वाद, उसके सारे अनुभव, नदी की अंतर्व्यथा और नदी का अंतर्जीवन, नदी की आत्मकथा में डूबने लगता है।
धीरे-धीरे नदी उसके लिए बड़ी शिक्षक हो जाती है। वह इतना संवेदनशील हो जाता है कि वह पहले से कह सकता है कि आज सांझ नदी उदास हो जाएगी। वह पहले से कह सकता है कि आज रात नदी नाचेगी। वह पहले से कह सकता है कि आज नदी कुछ गुनगुना रही है, आज उसके प्राणों में कोई गीत है। वर्षों-वर्षों नदी के किनारे रहते-रहते, नदी और उसके बीच जीवंत संबंध हो जाते हैं।

तब नदी ही परमात्मा हो जाएगी। इतनी संवेदना अगर आ जाए, तो अब किसी और परमात्मा को खोजने जाना न पड़ेगा।
जिन ऋषियों को गंगा में परमात्मा दिखा, वे कोई आप जैसे गंगा के तीर्थयात्री नहीं थे, कि गए, और दो पैसे वहां फेंके, और पंडे से पूजा करवाई, और भाग आए अपने पाप गंगा को देकर! जिन्होंने अपने पुण्य गंगा को नहीं दिए, वे गंगा को कभी नहीं जान पाएंगे। पाप भी देकर कहीं कोई जान पा सकता है? इसलिए हमारे लिए गंगा एक नदी है। हम कितना ही कहें कि पवित्र है, हम भीतर जानते हैं कि बस नदी है। हम कितना ही कहें, पूज्य है, लेकिन सब औपचारिक है।
लेकिन जिन्होंने वर्षों-वर्षों गंगा के तट पर रहकर उसके जीवन की धार
से अपनी जीवन की धार मिला दी होगी, उनको पता चला होगा। तब किसी भी गंगा के किनारे पता चल जाएगा। तब किसी खास गंगा के किनारे ही जाने की जरूरत नहीं है, तब कोई भी नदी गंगा हो जाएगी और पवित्र हो जाएगी।
संवेदना--रेत में भी, वृक्ष के पत्ते में भी, फूल में भी, व्यक्ति के हाथों में भी, लोगों की आंखों में भी--जीवन को एक संवेदना बनाएं। सब तरफ से जितना ज्यादा जीवन को स्पर्श कर सकें, उतना स्पर्श करें। इस स्पर्श से आपके भीतर एक केंद्र का जन्म होगा। वही केंद्र परमात्मा की योगशक्ति को जान पाता है। उसी केंद्र को पता चलता है कि जब मैं बहता हूं संवेदना में, और जब मेरे द्वार खुलते हैं संवेदना के लिए, जब मैं एक नदी के लिए अपने हृदय के द्वार खोल देता हूं, जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के लिए खोल दे या कोई प्रेयसी अपने प्रेमी के लिए खोल दे, तब एक नदी से भी परमात्मा का ही आगमन शुरू हो जाता है। और जो व्यक्ति अपनी संवेदना के सभी द्वार खुले रख दे, उस व्यक्ति को, परमात्मा भी मुझसे मिलने को आतुर है, इसका पता चलेगा। बुद्धि से यह पता नहीं चलेगा। बुद्धि बहुत आंशिक घटना है, और बहुत पुरानी और बासी। संवेदना ताजी, जीवंत घटना है। और मजा यह है कि बुद्धि तो उधार भी मिल जाती है, संवेदना उधार नहीं मिलती। अगर पानी को छूकर मैंने जाना है कि वह ठंडा है या गर्म, अगर पानी को छूकर मैंने जाना है कि मैत्रीपूर्ण है कि मैत्रीपूर्ण नहीं, तो यह मैं ही जान सकता हूं। पानी की ठंडक या पानी की गर्मी, या पानी की मैत्री या अमैत्री, मेरा ही अनुभव होगी। यह दूसरे के अनुभव से मैं नहीं जान सकता हूं।
संवेदनाएं उधार नहीं मिलतीं। लेकिन बुद्धि उधार मिल जाती है। हमारे विश्वविद्यालय, विद्यालय बुद्धि को उधार देने का काम कर रहे हैं। बुद्धि उधार मिल जाती है; शब्द उधार मिल जाते हैं; संवेदनाएं स्वयं जीनी पड़ती हैं। और इसीलिए तो हम संवेदनाओं से धीरे-धीरे टूट गए। क्योंकि हम इतने उधार हो गए हैं कि जो उधार मिल जाए, बाजार में खरीदा जा सके, वह हम खरीद लेते हैं। जो उधार मिल जाए, वह हम ले लेते हैं, चाहे जिंदगी ही उसके बदले में क्यों न चुकानी पड़े। लेकिन जो खुद जानने से मिलता है, उतनी झंझट, उतना श्रम कोई उठाने को तैयार नहीं है।
तो हमने धीरे-धीरे जीवन के सब संवेदनशील रूप खो दिए। और उन्हीं की वजह
से हमें पता नहीं चलता कि परमात्मा भी पुकारता है, वह भी आता है, वह भी हम से मिलने को आतुर है। चारों तरफ से उसके हाथ हमारी तरफ आते हैं, लेकिन हमें संवेदनहीन पाकर वापस लौट जाते हैं।
परमात्मा की योगशक्ति का अर्थ आपको तभी पता चलना शुरू होगा, जब आप उसके मिलन की संभावनाएं जहां-जहां हैं, वहां-वहां अपने हृदय को खोलें। लेकिन जिसको हम साधक कहते हैं आमतौर से, वह तो और बंद कर लेता है। वह अपनी संवेदनाएं और सिकोड़ लेता है। वह अपने द्वार-दरवाजे और घबड़ाहट से सब तरफ खीलें ठोक देता है कि कहीं से कुछ भीतर न आ जाए। सौंदर्य देखकर डरता है कि कहीं वासना न जग जाए। सुंदर फूल देखकर डरता है कि कहीं यह शारीरिक सौंदर्य का स्मरण न बन जाए। गीत सुनने में भयभीत होता है, क्योंकि गीत की कोई गहरी कड़ी भीतर छिपी किसी वासना को जगा न दे। संगीत से डरता है। सब तरफ से भयभीत हो जाता है। जिसको हम धार्मिक कहते हैं, तथाकथित धार्मिक, वह धार्मिक कम, पैथालाजिकल, रुग्ण ज्यादा है। और सब तरफ से अपने को बंद कर लेता है।

ठीक धार्मिक तो सब तरफ से अपने को खोल देगा। ठीक धार्मिक तो जहर में
भी अमृत को खोज लेगा। और गलत धार्मिक अमृत में भी जहर को खोज लेता है। ठीक धार्मिक तो निकृष्ट में भी श्रेष्ठ को अनुभव कर लेगा, और गलत धार्मिक श्रेष्ठ में भी निकृष्ट को ही पकड़ पाता है।
यह हम पर निर्भर करता है। अगर हमारी संवेदनशीलता प्रगाढ़ है, तीव्र है,
तो हम जीवन में कहीं से भी प्रवेश कर सकते हैं। और परमात्मा हममें कहीं से भी प्रवेश कर सकता है। परमात्मा की विभूति, उसका ऐश्वर्य हमारे स्मरण में हो, हम उसके ऐश्वर्य को स्वीकार करने की क्षमता जुटाएं, इतने विनम्र हों कि उसके ऐश्वर्य को स्वीकार कर सकें और इतने संवेदनशील हों कि उसकी जो योगशक्ति है, वह भी हमारी प्रतीति का विषय बन सके।
तो कृष्ण ने कहा है, वह पुरुष निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ऐसा जो पुरुष है, वह निश्चल ध्यान योग द्वारा मुझमें ही एकीभाव से स्थित हो जाता है, यह निस्संदिग्ध है।
इसमें एक बात है, निश्चल ध्यान योग द्वारा।
व्यक्ति का परमात्मा की तरफ जाने का जो उपक्रम है, वह जाने जैसा कम और ठहर जाने जैसा ज्यादा है। व्यक्ति की परमात्मा की तरफ जो यात्रा है, वह दौड़ने जैसी कम और सब भांति रुक जाने जैसी ज्यादा है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
जगत में हम जो भी खोजते हैं, वह दौड़कर खोजते हैं। इसलिए जगत में जो जितनी तेजी से दौड़ सकता है, उतना सफल होगा। जो दूसरों की लाशों पर से भी दौड़ सकता है, वह और भी ज्यादा सफल होगा। जो पागल होकर दौड़ सकता है, उसकी सफलता सुनिश्चित हो जाएगी, जगत में। जितनी तेजी से दौड़ेंगे, उतना ज्यादा इस जगत में आप सफल हो जाएंगे। लेकिन भीतर आप विक्षिप्त और पागल भी हो जाएंगे। ठीक परमात्मा की तरफ जाने वाली बात बिल्कुल दूसरी है। वहां तो जो जितना शांति से खड़ा हो जाता है, उतना ज्यादा सफल हो जाता है।
जब आप दौड़ते हैं, तो आपका मन भी दौड़ता है। मन दौड़ता है, इसीलिए तो आप दौड़ते हैं। आप तो पीछे जाते हैं मन के; मन बहुत पहले जा चुका होता है। अगर आपको लाख रुपए पाने हैं, तो मन तो पहुंच गया लाख पर; अब आपको दौड़कर यात्रा पूरी कर लेनी है। मन तो पहुंच चुका, अब आप आ जाएं।
अगर आपको एक बड़ा मकान बनाना है, मन ने बना डाला। अब आप जो और जरूरी काम
रह गए करने के, वे कर डालें और वहां पहुंच जाएं। लक्ष्य तो मन पहले ही पा लेता है, फिर शरीर उसके पीछे घसिटता रहता है। और जब आप बड़े महल में पहुंचते हैं, तब तक आपके मन ने दूसरे बड़े महल आगे बना लिए होते हैं। इसलिए मन आपको कहीं रुकने नहीं देता, दौड़ाता रहता है।
मन दौड़ता है, इसलिए आप दौड़ते हैं। आपकी दौड़ आपके मन का ही प्रतिफलन है। जब मन ठहर जाता है, तो आप भी ठहर जाते हैं। परमात्मा में जिसे जाना है, उसे संसार से ठीक उलटा उपक्रम पकड़ना पड़ता है। उसे ठहर जाना पड़ता है, उसे रुक जाना पड़ता है।
निश्चल ध्यान योग का अर्थ है, मन की ऐसी अवस्था, जहां कोई दौड़ नहीं है।
मन की ऐसी अवस्था, जहां कोई भविष्य नहीं है। मन की ऐसी अवस्था, जहां कोई लक्ष्य नहीं है। मन की ऐसी अवस्था कि मन कहीं आगे नहीं गया है; यहीं है, अभी, इसी क्षण; कहीं नहीं गया है। इसका नाम है, निश्चल ध्यान योग।
आमतौर से लोग सोचते हैं, ध्यान का मतलब है, परमात्मा पर ध्यान लगाना। अगर आपने परमात्मा पर ध्यान लगाया, तो परमात्मा तो बहुत दूर है, आपका ध्यान दौड़ेगा; परमात्मा की तरफ दौड़ेगा, लेकिन दौड़ेगा। और जब तक चित्त किसी भी तरफ दौड़ता है, तब तक परमात्मा को नहीं जान सकता। एक बहुत पैराडाक्सिकल, विरोधाभासी बात है।
जो लोग परमात्मा को पाना चाहते हैं, उन्हें परमात्मा को पाने की चिंता भी छोड़ देनी पड़ती है। वह चिंता भी बाधा है। वह भी वासना है। आखिरी वासना है, लेकिन वासना है। तो जो परमात्मा को भी पाने के लिए बेचैन है... । कोई धन पाने के लिए बेचैन है, कोई यश पाने के लिए बेचैन है, कोई ईश्वर को पाने के लिए बेचैन है। लेकिन बेचैनी है।

ध्यान रहे, धन मिल सकता है बेचैनी के साथ। यश भी मिल सकता है बेचैनी के साथ। परमात्मा नहीं मिल सकता है बेचैनी के साथ। क्योंकि परमात्मा को पाने की तो पहली शर्त ही यही है कि चैन आ जाए, भीतर सब चुप और मौन हो जाए, सब ठहर जाए। ईश्वर को वे पाते हैं, जो खड़े हो जाते हैं, ठहर जाते हैं, रुक जाते हैं। उलटी बात है। सूत्र बना सकते हैं हम।
संसार में कुछ पाना हो तो दौड़ो; और परमात्मा में कुछ पाना हो तो ठहरो, स्टाप। जहां हो भीतर, वहीं ठहराव हो जाए; कोई चीज दौड़ती न हो, कोई तरंग न उठती हो। बड़ा कठिन है। हम तरंगें बदल सकते हैं, वह आसान है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम समझे। लेकिन कुछ सहारा चाहिए!
आप कहते हो, धन के बाबत मत सोचो, नहीं सोचेंगे। लेकिन फिर हम क्या सोचें? कुछ सोचने को दें। तो हम धर्म के बाबत सोचेंगे। आप कहते हैं, हिसाब-किताब, खाता-बही को भूल जाएं; ठीक। तो हमें कोई रामायण, कोई महाभारत, कोई गीता, कुछ हमें पकड़ा दें, हम उसमें लग जाएं। लेकिन कुछ चाहिए!
ध्यान रहे, खाते-बही में लगा हुआ मन, दूसरा खाता-बही मिल जाए, तो उसे कोई अड़चन नहीं है; उसमें लग जाएगा। नाम कुछ भी हो, उसमें लग जाएगा। लेकिन उससे कहो, नहीं, किसी में भी मत लगो। बस, खाली रह जाओ थोड़ी देर। तो बहुत घबड़ाहट होती है कि यह कैसे हो सकता है! यह कैसे हो सकता है!
एक पागल आदमी पश्चिम की तरफ दौड़ रहा है। हम उससे कहते हैं, रुक जाओ। व्यर्थ मत दौड़ो। वह कहता है, मैं रुक सकता हूं, पश्चिम की तरफ नहीं दौडूंगा; तो मुझे पूरब की दिशा में दौड़ने दो। मगर दौड़ने दो।
अब पागलपन उसका पश्चिम में दौड़ने के कारण नहीं है, दौड़ने के कारण है।
तो पूरब में दौड़े, तो कोई फर्क नहीं पड़ता; कि दक्षिण में दौड़े, कि उत्तर में दौड़े, कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन वह पागल यह कहता है कि पश्चिम से दिक्कत होती है? पश्चिम न दौड़ेंगे! पूरब दौड़ने दो, दक्षिण दौड़ने दो, उत्तर दौड़ने दो। कहीं भी दौड़ने दो। पूरब को छोड़ देते हैं, लेकिन दौड़ को नहीं छोड़ सकते। पागलपन दौड़ में है, पूरब में नहीं है। धन में पागलपन नहीं है, ध्यान रहे। इसलिए जनक जैसा आदमी धन के बीच भी गैर-पागल हो सकता है। धन में कोई पागलपन नहीं है। यश में भी कोई पागलपन अपने में नहीं है। पागलपन दौड़ में है। धन का पागल जब कभी-कभी धन से ऊब जाता है--और सभी चीजों से जिंदगी में हम ऊब जाते हैं--धन हो गया, हो गया, दौड़ भी हो गई, तो वह कहता है, अब धर्म के लिए दौड़ेंगे, लेकिन दौड़ेंगे जरूर।
दुनिया के तर्क अंत तक पीछा करते हैं। दौड़ एक तर्क है, कि सब चीजें दौड़कर पाई जा सकती हैं। कोई चीज ऐसी भी है, जो दौड़ छोड़कर पाई जा सकती है, वह हमारे तर्क का हिस्सा नहीं है।
परमात्मा अगर कहीं और होता, तो आपको दौड़कर मिल जाता। लेकिन परमात्मा वहीं है, जहां आप हैं। इसलिए दौड़कर वह नहीं मिलेगा। दूसरे को पाना हो, तो दौड़कर पा सकते हैं। खुद को पाना हो, तो दौड़कर कैसे पाइएगा! खुद को पाने के लिए दौड़ बिल्कुल बेमानी है, पागलपन की बात है।
इसलिए झेन फकीर हुवांग पो ने कहा है कि जो ईश्वर को खोजने निकलेगा, वह
खो देगा। निकलना ही मत खोजने।
बुद्ध घर लौटे। रवींद्रनाथ ने एक बहुत व्यंग्य-कथा लिखी है, एक व्यंग्य-गीत लिखा है। बुद्ध घर लौटे। यशोधरा नाराज थी। छोड़कर, भागकर चले गए थे। गुस्सा स्वाभाविक था। और बुद्ध इसीलिए घर लौटे कि उसको एक मौका मिल जाए। बारह वर्ष का लंबा क्रोध इकट्ठा है, वह निकाल ले। तो एक ऋण ऊपर है, वह भी छूट जाए।
बुद्ध वापस लौटे। तो रवींद्रनाथ ने अपने गीत में यशोधरा द्वारा बुद्ध
से पुछवाया है; और बुद्ध को बड़ी मुश्किल में डाल दिया है। यशोधरा से पुछवाया है रवींद्रनाथ ने। यशोधरा ने बुद्ध को बहुत-बहुत उलाहने दिए और फिर कहा कि मैं तुमसे यह पूछती हूं कि तुमने जो घर से भागकर पाया, वह क्या घर में मौजूद नहीं था?
बुद्ध बड़ी मुश्किल में पड़ गए। यह तो वे भी नहीं कह सकते कि घर में मौजूद नहीं था। और अब पाकर तो बिल्कुल ही नहीं कह सकते। अब पाकर तो बिल्कुल ही नहीं कह सकते। आज से बारह साल पहले यशोधरा ने अगर कहा होता कि

तुम जिसे पाने जा रहे हो, क्या वह घर में मौजूद नहीं है? तो बुद्ध निश्चित कह सकते थे कि अगर मौजूद घर में होता, तो अब तक मिल गया होता। नहीं है, इसलिए मैं खोजने जा रहा हूं। लेकिन अब तो पाने के बाद बुद्ध को भी पता है कि जो पाया है, वह घर में भी पाया जा सकता था। तो बुद्ध बड़ी मुश्किल में पड़ गए।
रवींद्रनाथ तो बुद्ध को मुश्किल में देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने बात आगे नहीं चलाई। लेकिन मैं नहीं मानता हूं कि बुद्ध उत्तर नहीं दे सकते थे। वह रवींद्रनाथ बुद्ध को दिक्कत में डालना चाहते थे, इसलिए बात यहीं छोड़ दी उन्होंने। यशोधरा ने पूछा, और बुद्ध मुश्किल में पड़ गए। लेकिन निश्चित मैं जानता हूं कि अगर बुद्ध से ऐसा यशोधरा पूछती, तो बुद्ध क्या कहते!
बुद्ध ने निश्चित कहा होता कि मैं भलीभांति जानता हूं कि जिसे मैंने पाया, वह यहां भी पाया जा सकता है। लेकिन बिना दौड़े यह पता चलना मुश्किल था कि दौड़ व्यर्थ है। यह दौड़कर पता चला। दौड़-दौड़कर पता चला कि बेकार दौड़ रहे हैं। जिसे खोजने निकले थे, वह यहीं मौजूद है। लेकिन बिना दौड़े यह भी पता नहीं चलता।
दौड़कर भी पता चल जाए, तो बहुत है। हम काफी दौड़ लिए, फिर भी कुछ पता नहीं चलता। एक चीज चूकती ही चली जाती है; जो हम हैं, जो भीतर है, जो यहां और अभी है, वह हमें पता नहीं चलता।
निश्चल ध्यान योग का अर्थ है, दौड़ को छोड़ दें और कुछ घड़ी बिना दौड़ के
हो जाएं; कुछ घड़ी, घड़ीभर, आधा घड़ी, बिना दौड़ के हो जाएं। ध्यान का इतना ही अर्थ है।
ध्यान का यह मतलब नहीं है कि आप लेकर माला, और माला के साथ दौड़ने लगें।
वह दौड़ है। एक गुरिया हटाया, दूसरा हटाया, जल्दी हटाए, चक्कर लगाए माला का। लंबा दौड़ नहीं लगा रहे हैं आप; माला में चक्कर मार रहे हैं। छोटे बच्चे होते हैं न, उनको एक कोने में खड़ा कर दो, तो वहीं कूदते रहेंगे। यह माला वाला वही काम कर रहा है। छोटे बच्चे हैं, उनसे कहो, मत दौड़ो। ठीक है। आन दि स्पाट! वे वहीं उछल-कूद करते रहेंगे। उछल-कूद जो उनके भीतर चल रही थी, वह जारी रहेगी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जगह कितनी घेरी। एक छोटे-से गोल घेरे में आदमी दौड़ सकता है। माला फेर रहा है कोई। कोई बैठकर राम-राम, राम-राम, राम-राम किए चला जा रहा है। लेकिन दौड़ जारी है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप माला मत फेरना। बुरा नहीं है। आधा घंटा माला फेरी, न मालूम कितने उपद्रव नहीं किए, वह भी काफी है। अपनी जगह पर ही कूद रहे हैं, दूसरे के घर में नहीं कूदे, यह भी काफी है।
मैं यह नहीं कह रहा कि आप माला मत फेरना। फेरना जरूर, लेकिन मत यह समझ लेना कि वह ध्यान है। वह ध्यान नहीं है।
मैं यह भी नहीं कह रहा कि आप राम-राम मत करना। मजे से कर लेना। क्योंकि कुछ तो आप करेंगे ही। कुछ तो करेंगे ही, बिना किए तो रह नहीं सकते। तो एक फिल्म स्टार का नाम लेने से राम-राम का नाम लेना बहुत बेहतर है। कुछ न कुछ तो भीतर चलेगा ही, खोपड़ी आपकी चुप नहीं रह सकती। तो ठीक है, राम प्यारा शब्द है, उसको दोहरा लेना। लेकिन उसे ध्यान मत समझ लेना।
ध्यान का तो मतलब ही निश्चल ध्यान होता है। ध्यान का तो मतलब ही निश्चल हो जाना होता है, मन का बिल्कुल न दौड़ना--न माला में, न राम में, न स्वर्ग में, न मोक्ष में--कहीं भी न दौड़ना। मन का ठहर जाना, रुक जाना। एक क्षण को भी ऐसी घड़ी बन जाए, एक क्षण को भी ऐसा परम मुहूर्त आ जाए, जब आपका मन कुछ भी न कर रहा हो, कहीं भी न जा रहा हो, गोइंग नो व्हेयर, वहीं रह गया हो जहां आप हैं।
तो कृष्ण कहते हैं, निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है। जैसे ही यह निश्चल ध्यान फलित होता है, वैसे ही व्यक्ति मुझ में एकीभाव से स्थित हो जाता है। तब उसमें और मुझमें जरा भी फासला नहीं है। तब उसके और मेरे बीच जरा भी दूरी नहीं है।
इसका मतलब हुआ, दौड़ ही दूरी है। जितना आप दौड़ते हैं, उतना ही आप दूर हैं। इसका अर्थ हुआ, रुक जाना ही पहुंच जाना है। इसका अर्थ हुआ, ठहर जाना

ही मंजिल है। जैसे ही कोई शांत ठहर जाता है, अचानक द्वार खुल जाता है। उस ठहरेपन में ही, उस शांत क्षण में ही, वह एक हो जाता है परमात्मा से। द्वैत टूट जाता है, दुई मिट जाती है।
एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।
कृष्ण को न मालूम कितनी बार गीता में अर्जुन से कहना पड़ता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अर्जुन की आंख में संशय दिखाई पड़ता होगा बार-बार, इसलिए वे कहते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह अर्जुन के बाबत खबर है। क्योंकि कृष्ण इसे दोहराएं, यह सार्थक नहीं है। इसको बार-बार कहने की कोई जरूरत नहीं है कि इसमें कोई संशय नहीं है। लेकिन अर्जुन की आंख में संशय दिखाई पड़ता होगा।
अभी जब मैं कह रहा था, अगर उस वक्त आपकी आंखों के चित्र पकड़े जा सकें,
जब मैं कह रहा था कि दौड़ें मत, ठहर जाएं; एक क्षण को मन बिल्कुल रुक जाए, तो आप परमात्मा के साथ एक हो जाएंगे; उस वक्त अगर आपकी आंख के चित्र लिए जा सकें, तो मुझे भी कहना पड़ेगा कि इसमें कोई भी संशय नहीं! क्योंकि आपकी आंख बता रही है कि यह नहीं होने वाला। यह कैसे होगा! इतनी सरल बात कह रहे हैं आप!
लेकिन यह बहुत कठिन है, यह रुकना हो नहीं सकता। मन तो चलता ही रहेगा,
मन तो चलता ही रहेगा, वह रुकेगा ही नहीं। और उसके चलने के ढंग इतने अजीब हैं, जिसका हिसाब नहीं है!
मुल्ला नसरुद्दीन अपने तीन मित्रों के साथ एक गुरु के पास गया था ध्यान सीखने। तो गुरु ने कहा कि एक काम करो, ध्यान तो बहुत दूर की बात है; सांझ हो गई है, सूरज ढल गया है, तुम एक घड़ीभर के लिए चुप बैठ जाओ चारों। एक घंटेभर तुम बिल्कुल चुप रहना। फिर मैं तुमसे पीछे बात कर लूंगा।
गुरु आंख बंद करके अपने ध्यान में चला गया। वे चारों बड़ी मुश्किल में पड़े! कुछ करने को दे देता, तो ठीक था। कुछ करने को नहीं दिया, और चुप बैठे रहना! एक दो-चार मिनट ही बीते होंगे, उनमें से एक ने कहा कि रात हो गई और दीया अब तक जला नहीं। दूसरे ने कहा कि क्या कर रहा है! मौन के लिए कहा है! तीसरे ने कहा कि दोनों नासमझ हो। मौन तोड़ दिया। नसरुद्दीन अब तक चुप था, वह खिलखिलाकर हंसा और उसने कहा कि सिर्फ मुझे छोड़कर और कोई भी मौन नहीं है! एक क्षण चुप रहना भी बहुत मुश्किल है। कोई बहाना मिल ही जाएगा। एक क्षण ठहरना मुश्किल है, दौड़ का कोई कारण मिल ही जाएगा। एक क्षण ठहरना मुश्किल है, कोई न कोई वासना वेग बन जाएगी और आपको उड़ा ले जाएगी। इसलिए जब मैं कह रहा था, तब मैं आपकी आंखों में देख रहा था, तब मुझे ख्याल आया कि यह कृष्ण को बार-बार कहना पड़ता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ये बेचारे अर्जुन को बार-बार देखकर समझते होंगे कि संशय आ रहा है, अब इसकी पकड़ के बाहर हुई जा रही है बात। तब उन्हें बलपूर्वक कहना पड़ता है कि अर्जुन, इसमें कोई संशय नहीं है। ऐसा करेगा, तो ऐसा हो ही जाएगा। बुद्ध ने बहुत बार कहा है, ऐसा करो और ऐसा होगा ही। ऐसा मत करो, और ऐसा कभी नहीं होगा।
जीवन भी एक गहन कार्य-कारण है, एक गहरी काजेलिटी है। अगर कोई ठहर जाए,
तो परमात्मा से मिलन होगा ही। यह हो सकता है कि कभी सौ डिग्री पर पानी भाप न बने, और यह भी हो सकता है कि कभी आपको ऊपर की तरफ फेंक दें और जमीन का गुरुत्वाकर्षण काम न करे, जगत के सब नियम भला टूट जाएं, एक नियम शाश्वत है कि जिसका मन ठहरा, वह परमात्मा से तत्क्षण एक हो जाता है। उसमें कुछ भी संशय नहीं है। लेकिन वह ठहरना दुरूह और कठिन बात है।
मैं ही संपूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूं और मेरे से ही सब जगत चेष्टा करता है। इस प्रकार तत्व से समझकर, श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमानजन मुझ परमेश्वर को ही निरंतर भजते हैं।
आखिरी बात। मैं ही कारण हूं समस्त अस्तित्व का, मुझसे ही सारा जगत चेष्टा करता है, मैं ही गति हूं, इस प्रकार तत्व से समझ कर, श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमानजन मुझ परमेश्वर को निरंतर भजते हैं।
अभी मैंने कहा कि हम राम-राम, कृष्ण-कृष्ण, हरि-हरि, कुछ कहते रहें, उससे कुछ होगा नहीं। आप कहेंगे, कृष्ण तो कहते हैं कि मुझे निरंतर भजते हैं!

इसमें ध्यान रखना, निरंतर शब्द कीमती है। अगर आप राम-राम कहते हैं, तो
भी भजन निरंतर नहीं होगा, क्योंकि दो राम के बीच में थोड़ी-सी जगह तो बिना राम के छूट ही जाएगी। मैंने कहा, राम; मैंने फिर कहा, राम; बीच में थोड़ी जगह छूट ही जाएगी। इसलिए कोई कितनी ही तेजी से राम-राम कहे, वह निरंतर भजन नहीं है; उसमें बीच में गैप होंगे; डिसकंटिन्युटी हो जाएगी।
निरंतर भजन का तो एक ही अर्थ हो सकता है कि शब्द न हो, भाव हो, क्योंकि भाव में गैप नहीं होता। भाव में बीच-बीच में अंतराल नहीं होते; शब्द में तो अंतराल होते हैं। शब्द में तो अंतराल होंगे ही, नहीं तो एक शब्द दूसरे शब्द के ऊपर चढ़ जाएगा और शब्दों का अर्थ ही खो जाएगा। वह तो एक्सिडेंट हो जाएगा, जैसे मालगाड़ी टकरा जाएं दो, और डिब्बे एक-दूसरे के ऊपर चढ़ जाएं। शब्दों में तो अंतराल जरूरी है। एक शब्द और दूसरे शब्द के बीच में खाली जगह है। उस खाली जगह में क्या है? जब मैं कहता हूं, राम; और जब मैं कहता हूं, राम; दो राम के बीच में क्या है? वहां तो राम नहीं होगा। या आप कहेंगे कि हम तीसरा राम वहां रख लेंगे। तो ध्यान रहे, तीसरा राम रख लेंगे, तीन राम हो जाएंगे तीन अंगुलियों की तरह, तो दो अंतराल हो जाएंगे एक ही जगह; दो खाली जगह हो जाएंगी! और आप यह सोचते हों कि हम दो में और दो रख लेंगे, तो ध्यान रखना, अंतराल उतने ही बढ़ जाएंगे। अंतराल, इंटरवल, तो रहेगा ही शब्दों में। सिर्फ भाव अविच्छिन्न होता है।
लेकिन भाव बड़ी और बात है। समझाना कठिन है। कबीर ने कहा है... । किसी ने कबीर से पूछा कि कैसे उसका स्मरण करें कि अविच्छिन्न हो? कैसे उसका भजन हो कि बीच में कुछ अंतराल न हो, सतत हो, निरंतर हो? तो कबीर ने कहा, बड़ी कठिन बात पूछी। जाओ नदी के किनारे, वहां से ग्राम-वधुएं पानी भरकर मटकियां सिर पर लेकर गांव की तरफ लौट रही होंगी। तुम जरा उन्हें गौर से देखना।
गांवों में ग्राम-वधुएं नदी से पानी भरकर घड़ा सिर पर रखकर लौटती हैं, दोनों हाथ छोड़ देती हैं; घड़ा सिर पर होता है। चर्चा करती रहती हैं। गीत भी गा सकती हैं। यात्रा भी करती हैं, चलती भी हैं। लेकिन उस घड़े का स्मरण तो पूरे समय बना रहता है, नहीं तो वह गिर जाए। लेकिन वह स्मरण है शब्दरहित; जस्ट ए रिमेंबरिंग विदाउट एनी वर्ड्स; सिर्फ स्मरण है। घड़ा सिर पर है, उसका सिर्फ स्मरण है, भाव है। जरा ही घड़ा डिगेगा, हाथ सम्हाल लेगा। फिर बातचीत वे करने लगेंगी।
भाव का अर्थ है, शब्दरहित बोध।
एक मां है, सो रही है, उसका बच्चा उसके पास सो रहा है। वैज्ञानिक चिंतक बड़े हैरान हुए। तूफान आ जाए, आकाश में बादल गड़गड़ाने लगें, बिजलियां कौंधने लगें, मां की नींद नहीं खुलती। और बच्चा जरा-सा, जरा-सा हिले-डुले, जरा-सी आवाज कर दे, और मां का हाथ बच्चे के ऊपर पहुंच जाता है। क्या मामला होगा? आकाश में बादल गरजते हों, तो मां की नींद नहीं टूटती; और बच्चा जरा-सा कुरमुर कर दे, तो उसकी नींद टूट जाती है!
तो मनोचिकित्सक सोचते थे बहुत कि बात क्या होगी? तब ख्याल में आना शुरू हुआ कि कोई एक शब्दरहित स्मरण, जो भीतर रात नींद में भी मौजूद रहता है! शब्दरहित स्मरण, नींद में भी बना रहता है।
वह जो प्रतीति है, कृष्ण उसी प्रतीति के लिए कह रहे हैं। श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमानजन मुझ परमेश्वर को निरंतर भजते हैं। निरंतर भजते हैं अर्थात निरंतर मेरे भाव में रहते हैं।
भाव क्या है? भाव, वह निश्चल ध्यान के द्वारा एकता की जो प्रतीति हुई है, उस प्रतीति को सतत बनाए रखते हैं। बनाए रखते हैं, कहना ठीक नहीं; बनी रहती है। निश्चल ध्यान योग से जो प्रतीति होती है, उस प्रतीति का स्मरण भीतर ऐसे ही बना रहता है, जैसे श्वास चलती रहती है। श्वास में भी गैप होते हैं, उसमें वह गैप भी नहीं होते। श्वास भी चलती है, फिर थोड़ी रुकती है, फिर निकलती है; उसमें भी अंतराल होते हैं, आना-जाना होता है। लेकिन स्मरण सतत होता है।
उस सतत भाव की दशा का नाम ही भक्ति है। और सतत भाव की दशा का नाम ही भजन है।
आज इतना ही।

पांच मिनट रुकें। शायद उस भजन का कोई ख्याल यहां चलने वाले भजन से आ जाए। पांच मिनट रुकें। कोई उठे नहीं। जब मैं यहां से उठूं, तभी आपको उठना है। पांच मिनट कीर्तन में सम्मिलित हों।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
चौथा प्रवचन

ध्यान की छाया है समर्पण

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।। 9।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।। 10।।
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।। 11।।
और वे निरंतर मेरे में मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्ति की चर्चा द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं और मुझ में ही निरंतर रमण करते हैं।
उन निरंतर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों
को मैं वह तत्वज्ञान रूप योग देता हूं, जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं।
और हे अर्जुन, उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अंतःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को प्रकाशमय तत्वज्ञान रूप दीपक द्वारा नष्ट करता हूं।

मन की दो अवस्थाएं हैं, एक दौड़ता हुआ मन, एक ठहरा हुआ मन। दौड़ता हुआ मन, निरंतर ही जहां होता है, वहां नहीं होता। ऐसा समझें कि दौड़ता हुआ मन कहीं भी नहीं होता। दौड़ता हुआ मन सदा ही भविष्य में होता है। आज नहीं होता, अभी नहीं होता, यहां नहीं होता। कल, आगे, कहीं और, कल्पना में, सपने में, कहीं दूर भविष्य में होता है। और भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। अस्तित्व है वर्तमान का, अभी का, इसी क्षण का।
जब मैं कहता हूं इसी क्षण का, इतना कहने में भी वह क्षण वर्तमान का जा चुका। इतनी भी देर हुई, तो हम वर्तमान के क्षण को चूक जाते हैं। जानने में जितना समय लगता है, उतने में भी वर्तमान जा चुका होता है।
एक क्षण हमारे हाथ में है अस्तित्व का, लेकिन मन सदा वासना में, भविष्य में होता है। भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं। इसलिए दौड़ता हुआ मन कहीं होता ही नहीं। जहां हो सकता है, वहां होता नहीं; और जहां हो ही नहीं सकता, वहां होता है। वर्तमान में हो सकता था, लेकिन वर्तमान में दौड़ता हुआ मन नहीं होता।
आप वर्तमान में दौड़ नहीं सकते; जगह नहीं है, स्पेस नहीं है। दौड़ने के लिए भविष्य का विस्तार चाहिए। वासना के लिए अनंत विस्तार चाहिए। वर्तमान का क्षण बहुत छोटा है। उस छोटे-से क्षण में आपकी वासना न समा सकेगी।
यह जो दौड़ता हुआ मन है, यह दौड़ता ही रहता है। कहीं भी ठहरने का इसे उपाय नहीं है। जहां ठहर सकता है, वर्तमान में, वहां ठहरता नहीं। और भविष्य तो है नहीं। वहां सिर्फ दौड़ सकता है। ठहरने की वहां कोई सुविधा नहीं है। यह दौड़ता हुआ मन ही हमारी बीमारी है, रोग है।
अगर अधार्मिक आदमी की हम कोई परिभाषा करना चाहें, तो वह परिभाषा ऐसी नहीं हो सकती है कि वह आदमी, जो ईश्वर को न मानता हो। क्योंकि ऐसे बहुत-से व्यक्ति हुए हैं, जो ईश्वर को नहीं मानते और धार्मिक हैं। महावीर हैं, बुद्ध हैं, वे ईश्वर को नहीं मानते हैं, पर परम धार्मिक हैं। उनकी आस्तिकता में रत्तीभर भी संदेह नहीं। और अगर बुद्ध और महावीर की धार्मिकता में संदेह होगा, तो इस पृथ्वी पर फिर कोई भी आदमी धार्मिक नहीं हो सकता।
अधार्मिक आदमी उसे नहीं कह सकते हैं, जो ईश्वर को न मानता हो। अधार्मिक आदमी उसे भी नहीं कह सकते, जो वेद को न मानता हो, बाइबिल को न मानता हो, कुरान को न मानता हो। अधार्मिक आदमी केवल उसे कह सकते हैं कि

जिसके पास केवल दौड़ता हुआ मन है, ठहरे हुए मन का जिसे कोई अनुभव नहीं। फिर वह कुछ भी मानता हो--ईश्वर को मानता हो, आत्मा को मानता हो; वेद को, कुरान को, बाइबिल को मानता हो--अगर दौड़ता हुआ मन है, तो वह आदमी धार्मिक नहीं है। और फिर चाहे वह कुछ भी न मानता हो, लेकिन अगर ठहरा हुआ मन है, तो वह आदमी धार्मिक है। क्योंकि मन जहां ठहरता है, वहीं तत्क्षण उस परम सत्ता से संबंध जुड़ जाता है।
हम उसे क्या नाम देते हैं, यह गौण बात है। कोई उसे ईश्वर कहे, यह उसकी मर्जी। और कोई उसे आत्मा कहे, यह भी उसकी मर्जी। और कोई उसे कोई भी नाम न देना चाहे, यह भी उसकी मर्जी। और कोई उसके संबंध में चुप रह जाए, यह भी उसकी मर्जी। कोई उसे शून्य कहे, कोई उसे मिट जाना कहे, कोई उसे पूरा हो जाना कहे, यह उसकी मर्जी की बात है। लेकिन जहां मन ठहरा, वहीं आदमी धार्मिक हो जाता है।
इस मन को ठहराने के लिए कल के सूत्र में कृष्ण ने जो शब्द उपयोग किया है, उसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें, तो इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाएगा। समझना कहना शायद ठीक नहीं, क्योंकि समझ तो हम बहुत बार लेते हैं, फिर भी कोई समझ पैदा नहीं होती। शायद उचित होगा कहना कि हम उस सूत्र को थोड़ा कर लें, तो यह सूत्र समझ में आ सकेगा।
कृष्ण ने कहा है, निश्चल ध्यान योग को जो उपलब्ध होता है, वह मेरे में एकीभाव से ठहर जाता है।
निश्चल ध्यान योग क्या है, वह मैंने कल आपसे कहा। लेकिन कैसे आप उसे
कर सकते हैं, वह मैं आज आपसे कहना चाहूंगा। क्या है, एक बात है; कैसे किया जा सकता है, बिल्कुल दूसरी बात है। निश्चल ध्यान योग का अर्थ समझ लेना एक बात है; निश्चल ध्यान योग की प्रक्रिया में उतर जाना बिल्कुल दूसरी बात है। और प्रक्रिया में उतरे बिना कोई भी जान नहीं पाएगा; समझ कितना ही ले। इसलिए बहुत बार जिन्हें हम समझदार कहते हैं, उनसे नासमझ आदमी खोजने मुश्किल होते हैं। वे सब समझते हैं और जानते कुछ भी नहीं। सच तो यह है कि वे इतना समझते हैं कि सोचते हैं, जानने की अब कोई जरूरत ही न रही। शब्द का उनके पास भंडार हो सकता है, अनुभव का उनके पास कण भी नहीं होता। अनुभव का संबंध, ध्यान क्या है, इसे समझने से नहीं है; ध्यान कैसे होता है, इसमें उतर जाने से है।
ध्यान एक अनुभूति है। ध्यान के सैकड़ों प्रकार हैं। और सैकड़ों मार्गों
से लोग ध्यान को उपलब्ध हो सकते हैं। निश्चल ध्यान योग की तरफ पहुंचने के लिए भी सैकड़ों रास्ते हैं। और पृथ्वी पर अनेक-अनेक रास्तों से चलकर लोग उस क्षण को उपलब्ध हो गए हैं, जिसे हम मन का ठहर जाना कहें। एक छोटी-सी प्रक्रिया मैं आपसे कहूंगा, सरल, जिसे आप कर सकें।
और आपको निश्चल मन की थोड़ी-सी झलक और छाया भी मिलनी शुरू हो जाए, तो आपकी जिंदगी रूपांतरित होने लगेगी। एक नए आदमी का जन्म आपके भीतर हो जाएगा। पुराना आदमी बिखरने, पिघलने लगेगा; और एक नई चेतना, एक नया केंद्र, देखने का एक नया ढंग, जीने की एक नई प्रक्रिया, होने की एक नई व्यवस्था आपके भीतर पैदा हो जाएगी। जैसे अचानक अंधे की आंख खुल जाए, या जैसे अचानक बहरे को कान मिल जाएं, या जैसे अचानक कोई मरा हुआ पुनरुज्जीवित हो जाए; ठीक ध्यान के अनुभव से ऐसी ही व्यापक क्रांतिकारी घटना चेतना में घटती है। मन तो एक अंडे की तरह है। अंडा जब टूटता है, तो पक्षी पंख फैलाकर आकाश में उड़ता है। और अंडा अगर रुका रह जाए, तो जो अंडा पक्षी को सम्हालने के लिए था, उसकी सुविधा और व्यवस्था के लिए था, उसकी सुरक्षा के लिए था, वही-- वही उसके लिए कब्र बन जाएगा। अंडे को टूटना ही चाहिए।
मन जरूरी है। आदमी बिना मन के पैदा हो, तो वैसा ही होगा जैसा बिना अंडे
के कोई पक्षी पैदा हो, तो मुश्किल में पड़ जाए। मन बिल्कुल जरूरी है; लेकिन अंडे की तरह ही जरूरी है। एक सीमा तक साथी है, एक सीमा के बाद दुश्मन हो जाता है। एक जगह तक बचाता है, एक सीमा के बाद हानि पहुंचाने लगता है। एक सीमा तक सहारा है, एक सीमा के बाद कारागृह हो जाता है।
और हमारा मन करीब-करीब कारागृह है। अनेक-अनेक जन्मों से हम उस मन को लेकर चल रहे हैं, जो हमें कभी का तोड़ देना चाहिए था। लेकिन अंडे के भीतर जो

छिपा हुआ पक्षी है, उसे भी तो कुछ पता नहीं आकाश का। और उसे यह भी तो डर समाता होगा कि अंडे को तोड़ दूं, तो फिर मेरा क्या होगा! वही तो मेरी सुरक्षा है, वही मेरी आड़ है, उसी से तो मैं बचा हूं; वह मेरा घर है। स्वाभाविक है कि हम मन को ही अपनी सुरक्षा मानकर जीते हैं। इसलिए अगर कोई आपके शरीर को बीमार कह दे, तो आप नाराज नहीं होते। कोई अगर कह दे कि आप दुबले दिखाई पड़ते हैं, बीमार मालूम होते हैं, तबीयत खराब है! तो सहानुभूति मालूम पड़ती है। लगता है, यह आदमी मित्र है। लेकिन कोई आपसे कह दे कि आपका मन बीमार मालूम पड़ता है, कुछ मन में ज्वर मालूम होता है, मन में कुछ विक्षिप्तता दिखाई पड़ती है, पागलपन मालूम पड़ता है। तो फिर यह आदमी मित्र नहीं मालूम पड़ता, यह दुश्मन मालूम पड़ता है। क्योंकि शरीर को हम अपने से दूर मान पाते हैं, लेकिन मन के साथ तो हम अपने को एक ही मानते हैं। इसलिए जब कोई कहता है, आपका शरीर बीमार है, तो वह यह नहीं कहता कि आप बीमार हैं। आपका शरीर बीमार है। लेकिन जब कोई कहता है कि आपका मन रुग्ण है, तो आपको तत्काल लगता है कि इसका मतलब हुआ कि मैं पागल हूं, मैं रुग्ण हूं!
मन के साथ हमारा तादात्म्य, हमारी आइडेंटिटी गहरी है। हमने अपने को
मन के साथ एक समझ रखा है। और इस तरह पक्षी अंडे के बाहर होने में असुविधा पाता है, उपाय नहीं रह जाता। अंडे को ही पक्षी समझ ले कि मेरा होना है, तो कठिनाई हो जाती है।
ध्यान मन के तोड़ने का नाम है। या कहें मन के ठहरने का नाम, या कहें मन
के तोड़ने का नाम, या कहें मन के पार हो जाने का नाम, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। एक छोटी प्रक्रिया आपसे कहता हूं, जिससे आप इस अंडे के बाहर आ सकते हैं।
अगर आपने चित्र देखे हों बच्चों के उनके मां के पेट में, गर्भ में। मां के पेट में बच्चा जिस हालत में होता है, गर्भ में, उस अवस्था में मनोवैज्ञानिक कहते हैं, योग की गहरी खोज कहती है, कि मां के पेट में जब बच्चा होता है जिस पोश्चर में, जिस आसन में, उस समय बच्चे के पास न्यूनतम मन होता है, न के बराबर मन होता है। कह सकते हैं, होता ही नहीं। और बच्चे की चेतना मस्तिष्क में नहीं होती मां के पेट में। और न ही बच्चे की चेतना हृदय में होती है। शायद आपको पता न हो कि मां के पेट में बच्चे का हृदय नहीं धड़कता। नौ महीने बच्चा बिना हृदय धड़कने के होता है।
इसलिए एक बात और समझ लेना कि हृदय की धड़कन से जीवन का कोई संबंध नहीं, क्योंकि बच्चा बिना हृदय की धड़कन के नौ महीने जिंदा रहता है। जीवन और गहरी बात है।
हमसे अगर कोई पूछे कि आपकी चेतना कहां है, तो सिर पर हाथ जाएगा। चेतना
जब मन में केंद्रित होती है, तो सिर केंद्र हो जाता है। जब प्रेम में केंद्रित होती है, भाव में केंद्रित होती है, तो हृदय केंद्र हो जाता है। इसलिए प्रेमी हृदय पर हाथ रखेगा। और गणित को सुलझाने वाला आदमी अगर गणित में उलझ जाए, तो सिर को खुजलाएगा, हृदय पर हाथ नहीं रखेगा। हाथ जाएगा ही नहीं हृदय पर। और प्रेमी अगर प्रेम में पड़ा हो और सिर पर हाथ रखे, तो बहुत बेहूदा मालूम पड़ेगा। सिर से कोई संबंध नहीं है।
चेतना जब भाव में होती है, तो हृदय केंद्र होता है। और चेतना जब विचार में होती है, तो मस्तिष्क केंद्र होता है। लेकिन मस्तिष्क बहुत बाद में विकसित होता है। और हृदय भी नौ महीने के बाद धड़कता है। उसके भी पहले चेतना एक केंद्र पर होती है, वह नाभि है। बच्चा मां से नाभि से जुड़ा होता है। जीवन का पहला अनुभव बच्चे को नाभि पर होता है।
जिन लोगों को मन के पार जाना है, उन्हें हृदय, मस्तिष्क दोनों से उतरकर नाभि के पास वापस लौटना होता है। अगर आप फिर से अपनी चेतना को नाभि के पास अनुभव कर सकें, तो आपका मन तत्क्षण ठहर जाएगा।
तो इस ध्यान की प्रक्रिया के लिए, जिसको मैं निश्चल ध्यान योग की तरफ
एक विधि कहता हूं, दो बातें ध्यान में रखने जैसी जरूरी हैं। जैसा कि सूफी फकीरों को अगर आपने देखा हो प्रार्थना करते, या मुसलमानों को आपने नमाज पढ़ते देखा हो, तो जिस भांति घुटने मोड़कर वे बैठते हैं, वैसे घुटने मोड़कर बैठ जाएं। बच्चे के घुटने ठीक उसी तरह मुड़े होते हैं मां के गर्भ में। आंख

बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें और श्वास को बिल्कुल शिथिल छोड़ दें, रिलैक्स छोड़ दें, ताकि श्वास जितनी धीमी और जितनी आहिस्ता आए-जाए, उतना अच्छा। श्वास जैसे न्यून हो जाए, शांत हो जाए। श्वास को दबाकर शांत नहीं किया जा सकता है। अगर आप रोकेंगे, तो श्वास तेजी से चलने लगेगी। रोकें मत, सिर्फ ढीला छोड़ दें।
आंख बंद कर लें, और अपनी चेतना को भीतर नाभि के पास ले आएं। सिर से उतारें हृदय पर, हृदय से उतारें नाभि पर। नाभि के पास चेतना को ले जाएं। श्वास का हल्का-सा कंपन पेट को नीचे-ऊपर करता रहेगा। आप अपने ध्यान को आंख बंद करके वहीं ले आएं, जहां नाभि कंपित हो रही है। श्वास के धक्के से पेट ऊपर-नीचे हो रहा है, आंख बंद करके ध्यान को वहीं ले आएं। शरीर को ढीला छोड़ते जाएं। थोड़ी ही देर में शरीर आपका आगे झुकेगा और सिर जाकर जमीन से लग जाएगा। उसे छोड़ दें और झुक जाने दें।
जब सिर आपका जमीन से लग जाएगा, तब आप ठीक उस हालत में आ गए, जिस हालत में बच्चा मां के पेट में होता है। शांत होने के लिए इससे ज्यादा कीमती आसन जगत में कोई भी नहीं है। आसन ऐसा हो जाए, जैसा गर्भ में बच्चे का होता है; और आपका ध्यान नाभि पर चला जाए। बच्चे का ध्यान और चेतना नाभि में होती है। आपका ध्यान भी नाभि पर चला जाए।
अनेक बार ध्यान उचट जाएगा, कहीं कोई आवाज होगी, ध्यान चला जाएगा। कहीं कोई बोल देगा कुछ, ध्यान चला जाएगा। नहीं कहीं कुछ होगा, तो भीतर कोई विचार आ जाएगा, और ध्यान हट जाएगा। उससे लड़ें मत। अगर ध्यान हट जाए, चिंता मत करें। जैसे ही ख्याल में आए कि ध्यान हट गया, वापस अपने ध्यान को नाभि पर ले आएं। किसी कलह में न पड़ें, किसी कांफ्लिक्ट में न पड़ें कि यह मन मेरा क्यों हटा! यह मन बड़ा चंचल है, यह क्यों हटा! नहीं हटना चाहिए। इस सब व्यर्थ की बात में मत पड़ें। जब भी ख्याल आ जाए, वापस नाभि पर अपने ध्यान को ले आएं।
और चालीस मिनट कम से कम--ज्यादा कितनी भी देर कोई रह सकता है--ठीक ऐसे बच्चे की हालत में मां के गर्भ में पड़े रहें। संभावना तो यह है कि दो-चार-आठ दिन के प्रयोग में ही आपको एक गहरी निश्चलता भीतर अनुभव होनी शुरू हो जाएगी। ठीक आप बच्चे के जैसी सरल चेतना में प्रवेश कर जाएंगे। मन ठहरा हुआ मालूम पड़ेगा। जितना नाभि के पास होंगे, उतनी देर मन ठहरा रहेगा। और जब नाभि के पास रहना आसान हो जाएगा, तो मन बिल्कुल ठहर जाएगा।
मन भी चलता है, हृदय भी चलता है, नाभि चलती नहीं। मन की भी दौड़ है, विचार की भी दौड़ है, भाव की भी दौड़ है, नाभि की कोई दौड़ नहीं। अगर ठीक से समझें, तो मन भी भविष्य में होता है, हृदय भी भविष्य में होता है, नाभि वर्तमान में होती है--जस्ट इन दि मोमेंट, हियर एंड नाउ, अभी और यहीं।
जो आदमी नाभि के पास जितना जाएगा अपनी चेतना को लेकर, उतना ही वर्तमान
के करीब आ जाएगा। जैसे बच्चा नाभि से जुड़ा होता है मां से, ऐसे ही एक अज्ञात नाभि के द्वार से हम अस्तित्व से जुड़े हैं। नाभि ही द्वार है।
जिन लोगों को--शायद दो-चार लोगों को यहां भी--कभी अगर शरीर के बाहर होने का कोई अनुभव हुआ हो। पृथ्वी पर बहुत लोगों को कभी-कभी, अचानक, आकस्मिक हो जाता है। अचानक लगता है कि मैं शरीर के बाहर हो गया। तो जिन लोगों को भी शरीर के बाहर होने का आकस्मिक, या ध्यान से, या किसी साधना से अनुभव हुआ हो, उनको एक अनुभव निश्चित होता है, कि जब वे अपने को शरीर के बाहर पाते हैं, तो बहुत हैरानी से देखते हैं कि उनके और उनके शरीर के बीच, जो नीचे पड़ा है, उसकी नाभि से कोई एक प्रकाश की किरण की भांति कोई चीज उन्हें जोड़े हुए है। पश्चिम में वैज्ञानिक उसे सिल्वर कॉर्ड, रजत-रज्जु का नाम देते हैं। जैसे हम मां से जुड़े होते हैं इस भौतिक शरीर से, ऐसे ही इस बड़े जगत, इस बड़े अस्तित्व से, इस प्रकृति या अस्तित्व के गर्भ से भी हम नाभि से ही जुड़े होते हैं। तो जैसे ही आप नाभि के निकट अपनी चेतना को लाते हैं, मन निश्चल हो जाता है।
जीसस का बहुत अदभुत वचन है--शायद ही ईसाई उसका अर्थ समझ पाए--जीसस ने कहा है कि तुम तभी मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकोगे, जब तुम छोटे बच्चों की भांति हो जाओ।

लेकिन मोटे अर्थ में इसका यही अर्थ हुआ कि हम बच्चों की तरह सरल हो जाएं। लेकिन गहरे वैज्ञानिक अर्थ में इसका अर्थ होता है कि हम बच्चे की उस आत्यंतिक अवस्था में पहुंच जाएं, जब बच्चा होता ही नहीं, मां ही होती है। और बच्चा मां के सहारे ही जी रहा होता है। न अपनी कोई हृदय की धड़कन होती है, न अपना कोई मस्तिष्क होता; बच्चा पूरा समर्पित, मां के अस्तित्व का अंग होता है।
ठीक ऐसी ही घटना निश्चल ध्यान योग में घटती है। आप समाप्त हो जाते हैं
और परमात्मा के साथ एकीभाव हो जाता है। और परमात्मा के द्वारा आप जीने लगते हैं।
यह जो कृष्ण ने कहा है कि निश्चल ध्यान योग से मुझमें एकीभाव को स्थित
हो जाता है, इसका ठीक वही अर्थ है, जो बच्चे और मां के बीच स्थूल अर्थ है, वही अर्थ साधक और परमात्मा के बीच सूक्ष्म अर्थ है। इस प्रयोग को थोड़ा करेंगे, तो जो अर्थ स्पष्ट होंगे, वे अर्थ शब्दों से स्पष्ट नहीं किए जा सकते।
अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।
और वे मेरे में निरंतर मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन, सदा ही आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं और मुझमें ही निरंतर रमण करते हैं।
अब इस सूत्र का पूरा अर्थ बदल जाएगा, अगर आपने मेरी पहली बात समझी तो। क्योंकि निश्चल ध्यान योग के बाद ही इस सूत्र का अर्थ खुल सकता है, अन्यथा इस सूत्र का गलत अर्थ किया जाएगा।
गीता पर हजारों टीकाएं हैं। अधिक टीकाएं पंडितों के द्वारा हैं, जिनके पास काफी ज्ञान है, लेकिन शायद ध्यान नहीं है। इसलिए भारी विवाद है शब्दों का। सैकड़ों अर्थ किए गए हैं। स्वाभाविक है। सैकड़ों अर्थ होंगे ही। सैकड़ों मन अर्थ करेंगे, तो सैकड़ों अर्थ होंगे।
ध्यान रहे, ध्यान तो एक ही होता है, चाहे कोई भी ध्यान को उपलब्ध हो; लेकिन मन तो उतने ही होते हैं, जितने लोग होते हैं। शायद यह भी कहना कम है, क्योंकि एक आदमी के पास भी एक ही मन नहीं होता। सुबह दूसरा था, दोपहर दूसरा है, सांझ तीसरा है! शायद यह कहना भी ठीक नहीं है, एक ही आदमी के पास भी एक साथ बहुत-से मन होते हैं। अभी, एक ही साथ कई मन होते हैं। इसलिए पुराने एक मन की धारणा को मनोविज्ञान धीरे-धीरे तिलांजलि दे रहा है। मनोविज्ञान अब कहता है कि आदमी पोलीसाइकिक है, बहु-चित्तवान है। बहुत-से मन हैं उसके पास, एक मन नहीं है।
तो मन से जो अर्थ किए जाएंगे, वे तो अनेक होंगे ही। अगर एक ही आदमी जिंदगी में दो-चार-पांच बार गीता का अर्थ करे, तो दो-चार-पांच अर्थ निकलेंगे, क्योंकि उसका मन बदलता चला जाएगा। तो एक तो वे अर्थ हैं, वे कमेंट्रीज और टीकाएं हैं, जो मन से की गई हैं; उनका बहुत मूल्य नहीं है। वे कितनी ही गहरी हों, फिर भी छिछली होंगी, क्योंकि मन और बुद्धि का कोई गहरा होना होता ही नहीं। बुद्धि कितना ही शोरगुल मचाए, वह सतह पर ही होती है, गहरी कभी जाती नहीं। ध्यान गहरा जाता है।
तो एक तो उपाय यह है कि गीता के शब्दों को समझें, उनकी व्याख्याएं समझ लें, और तृप्त हो जाएं। उसका अर्थ हुआ कि आप गीता से चूक गए; गीता आपके काम न आई। शायद नुकसान भी हुआ, क्योंकि आपको भ्रम होगा कि आपने जान भी लिया। दूसरा रास्ता है कि ध्यान से प्रवेश करें और फिर गीता को समझें। और तब
एक मजेदार बात घटती है। जो लोग मन से गीता को समझेंगे, वे गीता की भी हजार टीकाएं करेंगे। दो टीकाकार दुश्मन की तरह लड़ेंगे। मन से, तो गीता की भी हजार टीकाएं हो जाएंगी, और हर टीकाकार गीता का एक अर्थ करेगा और शेष को गलत कहेगा। अगर ध्यान से कोई प्रवेश करे, तो एक और दूसरी घटना घटती है, गीता का भी वही अर्थ होगा, बाइबिल का भी वही अर्थ होगा, कुरान का भी वही अर्थ होगा। मन से कोई चले, तो गीता के हजार अर्थ होंगे। और ध्यान से कोई चले, तो दुनिया में जितनी गीताएं हैं, जितने धर्म-ग्रंथ हैं, उन सबका अर्थ एक हो जाएगा। ध्यान एक नया पर्सपेक्टिव, एक नया परिप्रेक्ष्य दे देता है; देखने का एक नया ढंग, जानने का, स्पर्श करने की एक नई व्यवस्था।

तो इसलिए मैंने कहा, इस सूत्र को अब समझें, तो फर्क पड़ेगा। अगर हम पहले समझते, तो इसका अर्थ होता, वे मेरे में निरंतर मन लगाने वाले, तो इसका अर्थ होगा कि निरंतर ईश्वर को स्मरण करने वाले, निरंतर उसका नाम लेने वाले। और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन, मुझमें ही जो अपने को समर्पण कर देते हैं, ऐसे लोग, सदा मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए, एक-दूसरे को मेरा प्रभाव समझाते हुए, तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं और मुझमें ही निरंतर रमण करते हैं। तब इसका अर्थ बहुत साधारण होगा। जो कि भक्त प्रभु-चर्चा में, सत्संग में, ईश्वर का गुणगान करने में, ईश्वर की स्तुति करने में करते हैं। यह अर्थ ध्यान से बिल्कुल बदल जाएगा। ध्यान इसकी सारी की सारी दिशा को मोड़ दे देता है।
मेरे में निरंतर मन लगाने वाले का अर्थ ध्यान से जो जानेगा, उसको पता चलेगा, वही, जिसका कोई मन न रहा। क्योंकि परमात्मा में मन वही लगा सकता है, जिसका मन समाप्त हो जाए। अगर आपका मन जारी है, तो मन संसार में ही लगा रहेगा। आप बीच-बीच में परमात्मा का नाम ले सकते हैं, लेकिन मन संसार में ही लगा रहेगा।
इसलिए हम देखते हैं कि भक्तजन, तथाकथित भक्तजन मंदिरों में बैठे हैं,
पर आप इस भूल में मत रहना कि उनका मन वहां है। मंदिरों में बैठना आसान है; प्रभु का नाम उच्चार करना भी बहुत आसान है; लेकिन मन का वहां होना उतना आसान नहीं है।
नानक के जीवन में उल्लेख है कि नानक एक गांव में आए। उस गांव के मुसलमान नवाब ने नानक को कहा कि सुना है मैंने, तुम कहते हो कि हिंदू- मुसलमान सब एक हैं! नानक ने कहा, एक हैं ही; मैं कहता हूं इसलिए नहीं। एक हैं, इसलिए मैं कहता हूं। तो उस नवाब ने कहा कि आज नमाज का दिन है, तो हमारे साथ मस्जिद में चलकर नमाज पढ़ो। सोचा उसने कि नानक इनकार करेंगे। एक हिंदू मस्जिद जाने से इनकार करेगा। नानक तो बड़ी खुशी से तैयार हो गए। नवाब थोड़ा चिंतित हुआ। उसने कहा, लेकिन ध्यान रखिए, नमाज में मेरे साथ सम्मिलित होना पड़ेगा। नानक ने कहा कि अगर तुम नमाज पढ़ोगे, तो मैं भी पढूंगा।
लेकिन नवाब न समझा कि यह बात गहरी हो गई। आप भी एकदम से न समझे होंगे
कि इसमें क्या गहराई हो गई। नमाज शुरू हुई। नानक एक दीवाल के किनारे सटकर खड़े हो गए। नवाब बीच-बीच में झुककर और आंख खोलकर नानक को देखता है कि वे नमाज पढ़ रहे हैं कि नहीं पढ़ रहे हैं! और नानक नमाज नहीं पढ़ रहे हैं। तो नवाब को बहुत गुस्सा आने लगा। नमाज तो भूल गई, नानक पर गुस्सा आने लगा कि यह आदमी बेईमान है, धोखेबाज है। और उसने जल्दी-जल्दी प्रार्थना पूरी की, ताकि इस आदमी को ठीक कर सके।
प्रार्थना पूरी करने के बाद वह नानक पर टूट ही पड़ा। उसने कहा, तुम धोखेबाज हो। बेईमान हो। अपने वचन का भी कोई ख्याल नहीं! तुमने कहा था कि नमाज पढूंगा, फिर तुमने पढ़ी नहीं?
नानक ने कहा, मैंने कहा था, अगर तुम नमाज पढ़ोगे, तो मैं भी पढूंगा। लेकिन तुमने नमाज कहां पढ़ी? तुम हाथ-पैर से कवायद पूरी कर रहे थे नमाज की। व्यायाम तुम पूरा कर रहे थे। लेकिन मन तुम्हारा मेरी तरफ था, परमात्मा की तरफ नहीं। तो मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ा कि अब मैं क्या करूं! वचन देकर बुरा फंस गया। एक नमाज चूक गई मेरी भी! क्योंकि वचन मैंने दिया था, तुम प्रार्थना करोगे, तो मैं भी प्रार्थना करूंगा। तुम ही प्रार्थना में न गए! मन का अर्थ ही आपका जगत से जो संबंध है, उसका जोड़ आपका मन है। तो आप मन
को परमात्मा में लगा नहीं सकते। मन तो संसार में ही लगेगा। हां, मन न रह जाए, तो जो लगाव घटित होगा, वह परमात्मा से होगा। इसलिए जब यह सूत्र ध्यान के अर्थ से समझेंगे, तो इसका अर्थ होगा--मेरे में निरंतर मन लगाने वाले, इसका अस्तित्वगत, ध्यानगत अर्थ होगा--जिन्होंने अपना मन खो दिया और मुझमें निरंतर रहने लगे।
मन को आप परमात्मा में लगा ही नहीं सकते। मन का अर्थ ही बीमारी है। मन
का अर्थ ही तरंगें है। मन का अर्थ ही बेचैनी है। मन को आप परमात्मा में नहीं लगा सकते। जब तक मन है, तब तक आप भी परमात्मा में नहीं लग सकते। मन

जहां शांत, शून्य हो जाता है, वहां आप परमात्मा में लग गए। और यह लगना बहुत अलग तरह का है। क्योंकि मन को लगाते हैं, तो चेष्टा करनी पड़ती है, फिर भी मन भागता है। यह लगना चेष्टा का नहीं है; चेष्टारहित है। अब आप भागना भी चाहें, तो परमात्मा से भाग नहीं सकते।
नानक के जीवन में दूसरा उल्लेख है। वे मक्का गए और पैर करके सो गए पवित्र मंदिर की तरफ। रात पुजारियों ने उन्हें हिलाया, उठाया और जगाया और कहा कि तुम नासमझ मालूम पड़ते हो! यह सोचकर कि तुम एक फकीर हो, हमने ठहर जाने दिया मंदिर में। और तुम पवित्र मंदिर की तरफ पैर करके सो रहे हो? तुम्हें परमात्मा की तरफ पैर करते हुए शर्म नहीं आती! तो नानक ने कहा, शर्म तो मुझे बहुत आती है। लेकिन मेरी भी अपनी मुसीबत है। मैं तुमसे कहता हूं, मेरे पैर तुम उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो। मैं राजी हूं।
पुजारी मुश्किल में पड़ गए। पैर कहां किए जा सकते हैं, जहां परमात्मा न हो! नानक ने कहा, मेरी मुसीबत यह है कि मैं कहां पैर करूं! जहां भी पैर करूं, वहीं परमात्मा है। इसलिए कहीं भी पैर करूं, अब कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस व्यक्ति का मन खो जाएगा, उसे परमात्मा में ध्यान लगाना नहीं पड़ता;
वह जहां भी जाए, जहां भी ध्यान लगाए, परमात्मा ही है। वह जो भी करे, सब तरफ परमात्मा ही है। मन वाले आदमी को कोशिश कर-करके परमात्मा में लगना पड़ता है, फिर भी लग नहीं पाता। और मन खोया कि आप कोशिश भी करें कि परमात्मा से बच जाएं, तो बचने का कोई उपाय नहीं है। आप भागना चाहें, उससे दूर निकल जाएं, तो दूर नहीं निकल सकते। आप आंख बंद करें, तो वह मौजूद होगा। आप आंख खोलें, तो वह मौजूद होगा। आप कुछ भी करें, वह मौजूद होगा। तभी निरंतर मन लगाने का अर्थ जाहिर होगा। फिर कोई उपाय नहीं रह जाता आपके हाथ में। आप होते ही उसमें हैं। जैसे मछली सागर में है, ऐसे आप उसमें होते हैं। चारों ओर वही होता है। लेकिन यह अर्थ ध्यान से खुलेगा। अगर शब्द से खोलने जाएंगे, तो यह सूत्र उलटा मालूम पड़ेगा।
मेरे में निरंतर मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन!
कौन करेगा अर्पण प्राणों को? आप कर सकते हैं? सोचकर तो नहीं कर सकते, विचारकर तो नहीं कर सकते, मनपूर्वक तो नहीं कर सकते। क्योंकि जब कोई मनपूर्वक कहता है कि मैं अपने प्राण अर्पित करता हूं, तो भी अंतिम निर्णायक वही रहता है। कल वह कह सकता है कि वापस लिया। प्राण अब अर्पित नहीं करते! तो परमात्मा क्या करेगा? जब आप मंदिर में जाकर सिर रखते हैं चरणों में, तो यह भी आपका निर्णय है। आप चाहें तो रखें और चाहें तो न रखें। और जब आप कहते हैं कि परमात्मा, मैं अपने प्राण तुझे देता हूं, तो भी आप हैं देने वाले! कल आप वापस ले सकते हैं। आप मौजूद रहते हैं, मिटते नहीं।
लेकिन ध्यान के बाद जो समर्पण होता है, वह आपका कृत्य नहीं है, वह आपका कर्म नहीं है। ध्यान से जो समर्पण होता है, वह आपकी मजबूरी है, वह आपकी हेल्पलेसनेस है, आप असहाय हैं। जैसे ही ध्यान में कोई उतरता है, फिर ऐसा नहीं लगता है कि मैं अपने प्राण परमात्मा को समर्पित करूं। फिर ऐसा उसे पता चलता है कि मेरे प्राण सदा से उसी को समर्पित हैं। मेरे प्राण उससे ही चल रहे हैं, मेरी श्वास उसकी ही श्वास है। मैं उससे अलग नहीं हूं कि समर्पण कर सकूं। इतना भी अलग नहीं हूं कि समर्पण कर सकूं। मैं समर्पित हूं।
यह बहुत अलग बात है। अब समर्पण वापस नहीं लिया जा सकता। यह अनुभव--कि मैं उसमें ही जी रहा हूं, वही मुझमें जी रहा है, मेरी कोई पृथकता नहीं है-- इस अनुभव का नाम है, मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले।
लेकिन भाषा की अपनी मजबूरियां हैं। यह भाषा में जो भी कहा गया है, यह बहुत उलटा है। भाषा अक्सर चीजों को उलटा कर देती है। क्योंकि भाषा के पास जितने भी शब्द हैं--किसी भी भाषा के पास--वे सभी अहंकार-केंद्रित हैं। आदमी ने बनाई हैं भाषाएं, आदमी उनका स्रष्टा है। अहंकार केंद्र पर है। इसलिए हर चीज अहंकार से जुड़ी हुई है।
तो जब हम अहंकार के पार की कोई बात कहना चाहते हैं, तब बड़ी मुसीबत होती है। कहना पड़ता है, समर्पण करो। यह बिल्कुल गलत वाक्य है। क्योंकि समर्पण कोई कैसे करेगा? और जब करेगा, तो वह समर्पण कैसे होगा? कृत्य, कर्म कैसे

समर्पण हो सकता है? कर्ता तो मैं रहूंगा। मैंने किया, तो समर्पण नहीं हो सकता। लेकिन हमें कहना पड़ता है, समर्पण करो। जब कि ठीक होगा, उचित होगा कहना, समर्पण होता है, किया नहीं जाता।
लेकिन अगर ऐसा कहा जाए कि समर्पण होता है, किया नहीं जाता, तो हमारा मन तत्काल दूसरी गलत बात समझ लेगा। वह कहेगा, फिर अपने वश की बात न रही। होगा, तब हो जाएगा। हम क्या कर सकते हैं! या तो हम करेंगे समर्पण, तो अहंकार मौजूद रहेगा, समर्पण होगा नहीं। और या फिर हम कहेंगे, हम कर ही क्या सकते हैं! हम प्रतीक्षा करेंगे; होगा, तब हो जाएगा। तब भी हम धोखा दे रहे हैं। हम समर्पण नहीं कर सकते, लेकिन हम मन को ठहरा सकते हैं। हम समर्पण नहीं कर सकते, लेकिन हम मन को तोड़ सकते हैं। और जब मन टूट जाता है, मन ठहर जाता है, तो समर्पण हो जाता है।
समर्पण बाइ-प्रोडक्ट है, ध्यान की छाया है। ध्यान हम कर सकते हैं, समर्पण छाया की तरह पीछे चला आता है। जिनके जीवन में ध्यान आता है, उनके जीवन में समर्पण अचानक, बिना कोई पगध्वनि किए, बिना कोई आहट किए, बिना कोई खबर दिए, अतिथि की भांति चुपचाप, मौन, भीतर प्रवेश कर जाता है। इस समर्पण की तरफ ही इशारा है।
मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले, सदा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए... ।
इसका यह मतलब नहीं है कि एक-दूसरे से प्रभु की स्तुति की बातें कर रहे हैं कि वह बहुत महान है, कि वह बड़ा दयालु है, कि वह बड़ा प्रेमी है। यह सब, यह बातों से कोई किसी को जना नहीं सकता। लेकिन जो व्यक्ति एकीभाव को उपलब्ध हो जाता है, वह आंख की पलक भी उसकी हिलती है, तो भी परमात्मा की ही खबर उसके चारों तरफ फैलती है। उसका पैर भी चलता है, तो परमात्मा ही उससे चलता है। उसके उठने में, उसके बैठने में, उसके चलने में, उसके फिरने में, उसके आचरण में, उसके शब्द में, उसके मौन में, उसके सब ओर, उसके समस्त कृत्यों में परमात्मा का ही गुणगान शुरू हो जाता है।
बुद्ध को सोचें चलते हुए आपके बीच से। उन्हें कहना न पड़ेगा। उनका चलना!
ऐसी घटना घटी कि बुद्ध ने जब साधना शुरू की और छः वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की, तो पांच उनके भक्त थे। तरह-तरह के भक्त होते हैं! वे भक्त बुद्ध के भक्त नहीं थे। वे बुद्ध जो तपश्चर्या करते थे, उसके भक्त थे। बुद्ध अपने शरीर को सुखा डालते, इससे वे बड़े प्रभावित थे। बुद्ध से नहीं, शरीर सूख जाए इससे। मानते थे कि बुद्ध महातपस्वी है। भूखा रहता है, लंबे उपवास करता है, काया की चिंता नहीं करता, कंकड़-पत्थरों पर सोता है, कांटों में चलता है, सूख गया, हड्डी-हड्डी हो गया।
उस समय की बनाई गई एक प्रतिछवि और उस समय की बनाई गई एक प्रतिमा है, जिसमें बुद्ध का सिर्फ अस्थिपंजर शेष रहा है। उनका पेट, पीछे पीठ से जुड़ गया है। सिर्फ हड्डियां छाती की भर दिखाई पड़ती हैं। सब मांस खो गया है। वे पांच उनके बड़े भक्त थे।
फिर बुद्ध को पता चला कि इस तरह अपने को सताकर मैं कहीं भी नहीं पहुंचा। यह तो एक तरह की क्रमिक आत्महत्या है। तो बुद्ध ने जैसे एक दिन भोग छोड़ दिया था और महल छोड़ दिए थे, वैसे ही एक दूसरा महात्याग किया, त्याग भी छोड़ दिया।
यह जरा कठिन है समझना। क्योंकि कोई महल को छोड़कर जाए, हम सब समझ लेते हैं, क्योंकि महल हमारे पास नहीं है और महल को पाने की आकांक्षा हमारे भीतर है। तो जब कोई महल को छोड़ता है, हमें लगता है, महात्यागी है। बुद्ध ने एक दिन महल छोड़ा, तो वे महात्यागी थे। फिर एक दिन उन्होंने पाया कि यह त्याग भी मेरा ही अहंकार है। यह भी मेरा ही कर्ता का भाव है कि मैं तप कर रहा हूं, साधना कर रहा हूं, योग कर रहा हूं। यह भी सब मेरा अहंकार है। एक दिन उन्होंने इसे भी त्याग दिया।
यह महात्याग है। त्याग को भी जब कोई छोड़ पाता है--भोग को भी छोड़ देता है, त्याग को भी छोड़ देता है--तब आदमी वीतराग हो जाता है, तब वह परम स्थिति को पहुंचता है।

लेकिन पांचों भक्त बुद्ध को छोड़कर चले गए, उन्होंने कहा, यह तो भ्रष्ट
हो गया। इसने उपवास बंद कर दिए। अब कोई भोजन लाता है, तो यह भोजन ग्रहण कर लेता है। कोई कपड़े दे जाता है, तो कपड़े भी पहन लेता है। अब धूप में न बैठकर वृक्ष की छाया में बैठ जाता है, यह भ्रष्ट हो गया। वे पांचों बुद्ध को छोड़कर चले गए।
फिर बुद्ध को परम ज्ञान हुआ। तो बुद्ध को ख्याल आया अपने पांच उन शिष्यों का, कि उन्हें जाकर मैं पहली खबर उन्हीं को दूं, क्योंकि वर्षों तक वे मेरे साथ थे। तो बुद्ध उनका पता लगाते हुए बोध-गया से काशी आए, क्योंकि सारनाथ में वे पांचों भिक्षु ठहरे हुए थे। बुद्ध बोध-गया से पैदल चलते हुए उन भिक्षुओं को खोजते हुए सारनाथ पहुंचे।
सांझ होने का वक्त था और वे पांचों एक चट्टान के पास बैठकर सत्संग कर रहे थे। देखा बुद्ध को आते हुए, तो उन पांचों ने कहा कि भ्रष्ट हो गया गौतम आ रहा है। देखो, इसके शरीर पर अब हड्डियां नहीं दिखाई पड़तीं; अब मांस-मज्जा आ गई है। बिल्कुल भ्रष्ट हो गया है। यह आ रहा है। हम इसे उठकर नमस्कार भी न करें। हम इसकी तरफ देखें भी न। अगर यह हमें नमस्कार भी करे, तो हम इसका उपेक्षा से उत्तर दें। हम इससे बैठने को भी न कहें, क्योंकि यह भ्रष्ट हो गया है।
बुद्ध उनके जैसे-जैसे पास आए, वैसे-वैसे उनका संकल्प पिघलने लगा। बुद्ध जैसे-जैसे उनके पास आए, वैसे-वैसे भूल गए वे कि हमने निर्णय किया है कि उठकर नमस्कार न करेंगे। और एक उठकर बुद्ध के चरणों में गिरा, दूसरा बुद्ध के चरणों में गिरा, फिर वे पांचों बुद्ध के चरणों में गिर गए। तब बुद्ध ने उनसे पहली बात कही कि मैं जब दूर था, तब मैंने अंतर्ध्वनि सुनी कि तुमने निर्णय किया है कि तुम उठकर मुझे नमस्कार नहीं करोगे। फिर तुम अपने संकल्प को क्यों छोड़ रहे हो?
तो उन पांचों की आंखों में आंसू बहने लगे और उन्होंने कहा, हम अपने संकल्प को न छोड़ते, लेकिन तुम्हारा आना ठीक वैसा ही आना है, जैसे परमात्मा आ रहा हो। जब तक तुम दूर थे और हम तुम्हें देख न पाए और तुम्हारी आंखों की रोशनी हम पर न पड़ी, तब तक हम अपने संकल्प में दृढ़ थे। जैसे-जैसे तुम पास आने लगे, तो जैसे सूरज उगने लगे और रात छंटने लगे और तारे डूबने लगें, वैसे ही हमारा मन, हमारा संकल्प सब खोने लगा। और तुम जब पास आए, तब हमें याद भी न रहा कि हम क्या कर रहे हैं। यह तो तुमने हमसे कहा कि तुमने अपना संकल्प क्यों छोड़ा, इसलिए हमें अपने पुराने संकल्प की याद आती है।
इस सूत्र का अर्थ ऐसा नहीं है कि हम एक-दूसरे को भगवान की स्तुति का गान करके, और भगवान की तरफ स्मरण दिलाएंगे। ऐसे कोई स्मरण नहीं होता। ऐसा बहुत-सा स्मरण चलता है। लोग माइक लगाकर अखंड कीर्तन कर देते हैं चौबीस घंटे! इसी ख्याल से करते हैं कि दूसरों के कान में, चाहे वे सो ही रहे हों, अगर भगवान का नाम पहुंचा, तो बड़ा लाभ होगा।
इधर मैंने सुना है कि ऐसे करने वाले लोग नर्क भेज दिए जाते हैं। क्योंकि वे केवल दूसरों की नींद हराम कर रहे हैं, और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। और उन पर तो चिढ़ आती ही है सोने वालों को, इस भगवान के नाम तक से भी धीरे-धीरे चिढ़ आने लगेगी।
कोई जबरदस्ती किसी को भगवान का नाम नहीं दिलवा सकता है। और न ही कोई किसी को भगवान की स्तुति करवाकर प्रभावित कर सकता है। लेकिन जब कोई भगवान को जीता है, तो उसके उठने में, बैठने में, चलने में, उसके बोलने में, उसके चुप होने में, उसकी भाव-भंगिमा में, उसकी मुद्राओं में, सब तरफ भगवान की स्तुति शुरू हो जाती है।
बुद्ध से किसी ने आकर पूछा है कि मैंने सुना है कि आप ईश्वर को नहीं मानते हैं! बुद्ध ने कहा, सुनने की फिक्र छोड़ो, तुम मुझे गौर से देखो। मैं क्या कहता हूं, यह मूल्यवान नहीं है। मैं क्या हूं, यह मूल्यवान है। लेकिन वह आदमी जमीन पर अपनी आंखें गड़ाए हुए है, वह कहता है कि मेरे सवाल का जवाब आपने नहीं दिया। आप मेरे प्रश्न का उत्तर दें। मैंने सुना है कि आप लोगों से कहते हैं कि कोई ईश्वर नहीं है!

इस सूत्र को ध्यान से समझेंगे, तो इसका अर्थ हुआ, आपस में मेरे प्रभाव
को जनाते हुए; उनके व्यवहार से, उनके होने से, उनके अस्तित्व से मेरी सुगंध को उड़ाते हुए।
वही स्तुति है परमात्मा की। आपके कहने से कोई राजी न होगा, आपके होने
से कोई राजी होगा। आप क्या कहते हैं, कौन चिंता करता है! आप क्या हैं?
और यह बड़े मजे की बात है कि आप क्या कहते हैं, वह दो कौड़ी का हो जाता है, अगर आप उसके विपरीत हैं। और आप कुछ भी न कहें, लेकिन जो आप कहना चाहते हैं, अगर उसके अनुकूल हैं, तो बिना कहे भी वह कह दिया जाता है। लेकिन इस सूक्ष्म भाव का ख्याल तो, आप भीतर उतरें और उस एकीभाव की झलक मिले, तो ही स्पष्ट हो सकता है।
तथा मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं!
यह बड़ा प्रीतिकर, बड़ा प्रीतिकर वचन है कि मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं। अगर हम कभी ईश्वर का कथन भी किसी से करते हैं, तो हम संतुष्ट कथन करते वक्त नहीं होते। हम संतुष्ट होते हैं, अगर दूसरा राजी हो जाए, कनवर्ट हो जाए। अगर मैं किसी को अपने विचार में ढाल लूं, तब मैं संतुष्ट होता हूं। लेकिन वह संतोष अहंकार का संतोष है। सब कनवर्शन अहंकार-केंद्रित हैं। अगर मैं इस चेष्टा में लगा हूं कि जो मैं मानता हूं, वही आपको मनवा दूं; और अगर आपको मनवाने में सफल हो जाता हूं, तो जो संतोष मिलता है, वह अहंकार का संतोष है; वह पाप है।
नहीं, यह सूत्र यह नहीं कहता है। यह सूत्र कहता है, मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं। आप राजी हुए या नहीं हुए, आपने सुना भी या नहीं सुना, यह निष्प्रयोजन है, यह व्यर्थ है। इसकी बात ही क्या उठानी! उन्होंने प्रभु की चर्चा कर ली, यह काफी संतोष है। यह काफी संतोष है कि उन्हें प्रभु की चर्चा करने का एक क्षण मिला। उनके जीवन की समस्तता से प्रभु का गुणगान हो सका, यह संतुष्टि है।
इसलिए एक बहुत अदभुत बात है, हिंदू धर्म कनवर्टिंग धर्म नहीं है। हिंदू धर्म किसी को रूपांतरित नहीं करना चाहता। हिंदू धर्म ने अपने इतिहास में दूसरे को रूपांतरित करने की अपने धर्म में, कभी कोई चेष्टा नहीं की। यह बड़ी अदभुत बात है। क्योंकि बड़ा स्वाभाविक यह है, मन की यह स्वाभाविक आकांक्षा होती है कि जो मैं मानता हूं, वही दूसरा भी मान ले। शायद आपने सोचा न हो, यह आकांक्षा क्यों होती है! यह आकांक्षा इसलिए होती है कि मुझे खुद भी पक्का भरोसा नहीं है, जो मैं मानता हूं, उस पर। जब मैं दूसरे को भी राजी कर लेता हूं, तो थोड़ा भरोसा आता है। जब भीड़ बढ़ने लगती है और मेरे साथ बहुत लोग राजी होने लगते हैं, तो मैं समझता हूं कि जो मैं कह रहा हूं, वह सत्य है। अन्यथा इतने लोग कैसे मानते! मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि भीतरी इनफीरिआरिटी, भीतरी हीनता है; भीतर पक्का भरोसा नहीं है। दूसरे को राजी करवाकर अपने पर भरोसा आता है।
सुना है मैंने कि जिस आदमी ने न्यूयार्क में सबसे पहला बैंक खोला, उससे जब बाद में पूछा गया कि तुझे बैंक खोलने का कैसे ख्याल आया और कैसे तूने बैंक खोला? तो उसने कहा कि मैंने बैंक खोला। मेरे पास पचास डालर थे। कोई और धंधा नहीं था, तो मैंने सोचा, चलो बैंकिंग। तो मैंने एक दफ्तर खोला, तख्ती लगाई, बोर्ड लगाया बैंक का, और मैं दफ्तर में बैठ गया। एक आदमी आया और सौ डालर जमा कर गया। दूसरे दिन दूसरा आदमी आया और तीन सौ डालर जमा कर गया। तो तीसरे दिन मेरे जो पचास डालर थे, वे भी मैंने जमा कर दिए। मेरी हिम्मत तब तक बढ़ चुकी थी कि बैंक चलेगा, कोई डर की बात नहीं है!
करीब-करीब कनवर्टिंग माइंड इसी तरह के होते हैं। दूसरा जब बदल जाए, तो खुद भी भरोसा आता है कि ठीक है, हम जो मानते हैं, वह ठीक है। वह किताब, वह शास्त्र, वह संदेश सही होना चाहिए, नहीं तो यह आदमी कैसे राजी हो जाता! इसलिए जब आपसे कोई राजी नहीं होता, तो आप बड़े नाराज होते हैं। वह आप उस
पर नाराज नहीं हो रहे हैं; वह आपको अपने भीतर, आपका खोखलापन आपको अब दिखाई पड़ रहा है कि कोई मुझसे राजी नहीं हो रहा; किसी को मैं सहमत नहीं करवा पा रहा हूं। तब आपकी जड़ें हिलने लगीं, आपका भरोसा टूटने लगा। अगर दो दिन तक ये

दो आदमी इसके पास बैंक में जमा करवाने न आते, तो तीसरे दिन यह तख्ती निकालकर अपना कोई दूसरा काम शुरू कर देता।
हिंदू धर्म नान-कनवर्टिंग रिलीजन है, किसी को बदलने की आकांक्षा नहीं है। दयानंद ने पहली दफा हिंदू विचार में बदलने का ख्याल दिया। इसलिए दयानंद को मैं पक्का हिंदू नहीं कहता हूं। उनमें ईसाइयत और मुसलमान होने के गहरे लक्षण हैं। बुरे हैं, ऐसा नहीं कहता। लेकिन हिंदू की जो एक अपनी धारा थी, उसको तोड़ने वाले हैं, ऐसा जरूर कहता हूं।
क्योंकि हिंदू मानता है, किसी को क्या बदलना! अगर मेरे जीवन की सुगंध किसी को बदल दे, तो काफी है। लेकिन मैं क्यों बदलने जाऊं! और बदलना एक तरह का आक्रमण है, हिंसा है। क्यों मैं चोट करूं किसी के ऊपर कि तुम गलत हो! और क्यों तुम्हें राजी करने के लिए आग्रहशील बनूं! अगर मेरा जीवन तुम्हें बदल दे, तो ठीक है। अगर तुम खुद इस सुगंध से प्रभावित होकर आ जाओ, तो ठीक है। अगर मंदिर की बजती हुई घंटी ही तुम्हें बुला ले, तो काफी है। और अलग से तुम्हें बुलाने जाने की कोई जरूरत नहीं है। और कभी कोई किसी को जबरदस्ती बुलाकर ला भी नहीं पाता। और ले भी आए, तो शरीर ही आता है, आत्मा पीछे छूट जाती है।
ईश्वर की स्तुति--अस्तित्व से, व्यक्तित्व से, होने से। तब फिर संतोष दूसरे को राजी करने में नहीं है। तब संतोष अपनी अभिव्यक्ति में है। तब संतोष जो मेरे भीतर था, उसको सुवासित कर देने में है, उसे बाहर फैला देने में है। दूसरे पर क्या परिणाम हुआ, यह विचारणीय भी नहीं है।
इधर मैं देखता हूं, एक बड़े विचारक हैं, अब उम्र के आखिरी दिन हैं उनके। जिंदगीभर उन्होंने कोशिश की लोगों को समझाने की, अब बहुत फ्रस्ट्रेटेड हैं, अब बहुत विषाद है मन में। विषाद यह है कि कुछ भी हो नहीं पाया; कोई राजी नहीं हुआ, कोई बदला नहीं!
लेकिन यह विषाद धार्मिक आदमी के मन में होना नहीं चाहिए। नहीं तो फिर
तो धर्म भी दुकान हो गई, कि मैं दिनभर दुकान खोले बैठा रहा और कोई ग्राहक आया नहीं! और जिंदगी हो गई, और माल की कोई बिक्री न हुई, तो मेरी जिंदगी बेकार चली गई।
नहीं; यह सवाल ही नहीं है। जो ध्यान में गहरा उतर जाता है, उसे फिर परमात्मा की स्तुति सिर्फ उसका आनंद है, सिर्फ उसका आनंद है; वह उसमें ही संतुष्ट है। इससे आगे, इससे आगे का कोई हिसाब मन में अगर है, तो अभी ध्यान के बिना ही आप परमात्मा की तरफ चल पड़े हैं, इसे समझना। आप मन से ही चल पड़े हैं, इसे समझना।
मन तो सब जगह दुकान खोल लेता है, धंधा बना लेता है। मन तो सब जगह अहंकार के लिए रास्ते खोजने लगता है। मन तो अहंकार का भोजन जुटाता है।
और वे मुझमें ही निरंतर रमण करते हैं!
वे मुझमें ही डूबते-उतराते हैं, वे मुझमें ही डुबकियां लेते रहते हैं। यह मन से संभव नहीं है। यह मन से बिल्कुल ही असंभव है। इसलिए मैंने कहा, इस सूत्र को ध्यान का सूत्र समझें।
उन निरंतर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को, मैं वह तत्वज्ञान रूपी योग देता हूं, जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं। और हे अर्जुन, उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अंतःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को प्रकाशमय तत्वज्ञान रूप दीपक द्वारा नष्ट करता हूं।
ऐसी जिसकी चित्त-दशा निर्मित हो गई हो, कि जो परमात्मा में डूबता- उतराता हो, उसमें ही डुबकियां लेता हो, उसी में रमण करता हो, उसके अलावा जिसका कोई संसार न बचा हो; कहें, परमात्मा ही जिसका संसार हो गया हो; परमात्मा ही हो जिसकी वासना, परमात्मा ही हो जिसकी इच्छा, परमात्मा ही हो जिसकी प्रार्थना; सभी कुछ, सभी कुछ जिसका परमात्ममय हो गया हो--ऐसे व्यक्ति को, कृष्ण ने कहा है, बुद्धि उपलब्ध होती है, बुद्धियोग उपलब्ध होता है। ऐसे व्यक्ति में प्रतिभा का जन्म होता है। ऐसा व्यक्ति पहली दफा बुद्धिमत्ता को, जिसको बुद्ध ने प्रज्ञा कहा है, उसको पाता है।

बुद्ध ने तीन शब्दों का उपयोग किया है, वे उपयोगी होंगे इस सूत्र को समझने के लिए। बुद्ध ने तीन शब्दों पर सारी की सारी अपनी चिंतना को केंद्रित किया है। वे तीन शब्द हैं, शील, समाधि और प्रज्ञा। शील से अर्थ है, जो आप करते हैं। समाधि से अर्थ है, जो आप हो जाते हैं। और प्रज्ञा से अर्थ है, जो आप में खिलता है।
शील से अर्थ है, आपका जीवन रूपांतरित हो। समाधि से अर्थ है, आपकी चेतना रूपांतरित हो। और प्रज्ञा से अर्थ है कि जब ये दोनों रूपांतरण घटित होते हैं, तो जो संपदा आपको उपलब्ध होती है, जो धन आपको मिलता है, जो परम धन आपको मिलता है। कृष्ण ने उस परम धन को बुद्धियोग कहा है।
हमें थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि हम सब अपने को बुद्धिमान मानते हैं।
और कृष्ण के हिसाब से बुद्धि तब उपलब्ध होती है, जब कोई व्यक्ति परमात्मा के साथ एक हो जाता है। तो जिसको हम बुद्धि कहते हैं, वह क्या होगी?
जैसे कोई आदमी झील के किनारे खड़ा हो। तो आप ख्याल करें। झील शांत है, आदमी किनारे खड़ा है, तो उस आदमी का प्रतिबिंब झील में बनता है। लेकिन प्रतिबिंब उलटा बनता है। बनेगा ही। प्रतिबिंब सभी उलटे होते हैं। अगर आपने झील के किनारे खड़े आदमी को न देखा हो और केवल झील में बनने वाले प्रतिबिंब पर ही आपकी आंख हो, तो आदमी आपको सिर के बल खड़ा हुआ मालूम पड़ेगा। लेकिन अगर आपने झील के ऊपर खड़े आदमी को देखा ही न हो, तो यही आदमी की ठीक स्थिति होगी!
जिसको हम अभी बुद्धि कह रहे हैं, वह हमारे मन की झील पर बनी हुई हमारी बुद्धिमत्ता का केवल प्रतिबिंब है, रिफ्लेक्शन है। हमारी मन की झील पर जो प्रतिबिंब बन रहा है, उसी को अभी हम बुद्धि कह रहे हैं। वह बुद्धि नहीं है, बुद्धि का प्रतिबिंब है। और मजा यह है कि प्रतिबिंब उलटा होता है।
इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं, वे उस परम बुद्धि की दृष्टि से बिल्कुल उलटे आदमी होते हैं। जिनको हम उलटी खोपड़ी के आदमी कहते हैं। वे किसी भी चीज को सीधा नहीं समझ सकते; उसको तत्काल उलटा कर लेते हैं। वे परमात्मा की बात में से भी ऐसी बातें निकालते हैं कि परमात्मा तक पहुंचना असंभव हो जाए। वे धर्म में भी इस तरह का तर्क खोजते हैं कि धर्म तत्काल व्यर्थ मालूम होने लगे। वे जो भी करते हैं, वह कुछ उलटा होता है। उस उलटे का कारण है। क्योंकि प्रतिबिंब को जिन्होंने बुद्धि समझा, वे उलटे चलेंगे ही।
हमारी इस सदी में, जिसको हम कह सकते हैं कि बुद्धि की सदी--प्रतिबिंब वाली बुद्धि, रिफ्लेक्टेड इंटलेक्ट। निश्चित ही, इतनी बुद्धिमान सदी कभी नहीं थी जमीन पर। लेकिन इतनी बुद्धिहीन सदी भी खोजनी मुश्किल है। यही उलटापन है। न इतनी शिक्षा थी, न इतने शास्त्र थे, न इतने विचार थे, लेकिन आदमी हमसे ज्यादा बुद्धिमान था।
निश्चित ही, अगर बुद्ध को हम मैट्रिक की परीक्षा में बिठाएं, तो मैं नहीं मानता कि अगर वे चोरी वगैरह करें, तब तो बात अलग, नहीं तो पास नहीं हो सकते। सीधे तो पास नहीं हो सकते। नकल वगैरह कर लें, तब तो बुद्धू भी पास हो रहे हैं, बुद्ध भी हो जाएंगे! नहीं तो फेल होना निश्चित है। और हमारे तथाकथित बुद्धिमान आदमी अगर बुद्ध से विवाद करने जाएं, तो निश्चित जीत जाएंगे; बुद्ध हार जाएंगे। लेकिन फिर भी बुद्ध बुद्धिमान हैं और हम जिसको बुद्धिमान कह रहे हैं, वह केवल उलटा है।
बुद्धि का एक और रूप भी है। जब तक हम मन के पार न उठें, तब तक वह सीधा रूप हमें दिखाई नहीं पड़ेगा। हमारी झील से आंख उठे, तब हमें दिखाई पड़ेगा कि कोई आदमी झील पर खड़ा है, उसके पैर नीचे हैं, सिर ऊपर है। और प्रतिबिंब में पैर ऊपर हैं और सिर नीचे है। तब हमें पता चलेगा कि प्रतिबिंब उलटा था। लेकिन जिन्होंने प्रतिबिंब ही देखा है... !
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की काफी बदनामी हो गई थी। बदनामी ऐसी कि गांव के पंडितों ने, पुरोहितों ने जाकर सम्राट को कहा कि यह आदमी इस तरह की बातें कर रहा है कि लोग च्युत हो जाएंगे मार्ग से। यह आदमी खतरनाक है, यह आदमी उलटी बातें करता है लोगों से। तो सम्राट ने उसे बुलाया दरबार में। मुल्ला अपने घर से निकला, अपने गधे पर बैठा और दरबार की तरफ चला।

लेकिन एक भीड़ उसके साथ चलने लगी और लोग उस पर हंसी-मजाक करने लगे, क्योंकि वह गधे पर उलटा बैठा हुआ था। लेकिन उसने अपनी गंभीरता कायम रखी।
जब वह दरबार में पहुंचा, तो सम्राट ने खुद देखकर उसे कहा कि नसरुद्दीन, तुम गधे पर उलटे क्यों बैठे हुए हो? नसरुद्दीन ने कहा कि महाराज, अपनी-अपनी नजर की बात है। मैं तो समझता हूं कि गधा उलटा खड़ा है; हम तो सीधे ही बैठे हैं। आप जरा गधे की तरफ देखें! नसरुद्दीन ने कहा, इट डिपेंड्स। यह निर्भर करेगा कुछ बातों पर कि कौन उलटा है। मैं तो बिल्कुल सीधा बैठा हूं। गधा इसी तरफ मुंह किए हुए खड़ा था; मैं सीधा बैठ गया। अगर जिसको आप सीधा कहते हैं, वैसा मैं बैठता, तो गधे को मुझे मोड़ना पड़ता और तकलीफ देनी पड़ती।
लेकिन एक मजे की बात हुई। सम्राट ने कहा कि इस आदमी को ले जाओ, क्योंकि
अब आगे बात करनी ठीक नहीं है।
हम कैसे देखते हैं, कहां से देखते हैं, किस बिंदु से देखते हैं, इस पर
सब निर्भर करता है।
नसरुद्दीन बैठा है अपने स्कूल में। उसका छोटा मदरसा है, जिसमें वह बच्चों को पढ़ाता है। और एक बच्चे को कहता है कि जाकर कुएं से इस घड़े में पानी भर ला। और जैसे ही वह बच्चा घड़ा लेकर जाने लगता है, उसे वापस बुलाता है, कान पकड़कर दो चांटे उसे रसीद करता है और कहता है कि सम्हलकर, घड़े को फोड़ मत डालना!
एक आदमी मेहमान की तरह मिलने आया था, वह हैरान हो गया। दुनिया में उसने बहुत तरह के दंड देखे थे। लेकिन कसूर करने के पहले दंड उसने कभी नहीं देखा था। अभी लड़का घड़ा लेकर गया ही नहीं, गिराने का तो सवाल ही नहीं है! उसने नसरुद्दीन से कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन यह उलटी बात मेरी समझ में नहीं आती। अभी लड़के ने घड़ा गिराया ही नहीं और आपने उसको दो चांटे मार दिए! नसरुद्दीन ने कहा, घड़ा गिरा दे, फिर चांटा मारने से फायदा क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, यह देखने-देखने की बात है। यह उलटी नहीं है; यह सीधी है। घड़ा गिरा दे, फिर चांटा मारने से फायदा? अब न तो घड़ा गिरेगा और न चांटा मारने की आगे जरूरत पड़ेगी।
उलटा और सीधा सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। लेकिन अगर दोनों बातें हमारे ख्याल में हों। एक ही बात हमारे ख्याल में हो, तो सीधे-उलटे का सवाल ही नहीं उठता। जो होता है, उसे हम सीधा मानकर चलते हैं।
हम मन में ही देखे हैं छबि अभी अपनी संभावना की। मन में हमने प्रतिबिंब देखा है, उसको हम बुद्धि समझते हैं। और उसको ही हम शिक्षित करते हैं विश्वविद्यालयों में। ट्रेन करते हैं, प्रशिक्षित करते हैं, उसी प्रतिबिंब को। हमारा बड़े से बड़ा बुद्धिमान प्रतिबिंब से ज्यादा नहीं है। एक और बुद्धिमत्ता है, कृष्ण उसकी बात कर रहे हैं। वे कहते हैं, जब कोई ध्यान को उपलब्ध होता है और जब कोई मुझमें डूब जाता है, तब उसे बुद्धियोग, तब पहली दफा उसे बुद्धिमत्ता का पता चलता है कि बुद्धि क्या है।
हमारी जो बुद्धि है, वह हमें ही नुकसान पहुंचाती है। कभी आपने ख्याल किया है कि आपकी बुद्धि आपको सिवाय नुकसान पहुंचाने के कुछ और भी करती है? आदमी कितने संकट में रोज बढ़ता जाता है, उसका बहुत कुछ कारण तो उसकी बुद्धि है। वह जितनी बुद्धिमानी करता है, पाता है, उतने ही संकट उसने बढ़ा लिए, अनंत गुना हो गए।
हमने सोचा था, हमारे बुद्धिमानों ने, तथाकथित बुद्धिमानों ने--अगर हम
दो सौ वर्ष के बुद्धिमानों के नाम गिनें, तो हमें पता चलेगा--उन सभी तथाकथित बुद्धिमानों ने कहा था कि सारी दुनिया को शिक्षित करने से सुख का साम्राज्य उतर आएगा, युनिवर्सल एजुकेशन चाहिए। और उनकी बात हम सबको जंचती थी। अब हमने करीब-करीब आधी दुनिया को शिक्षित कर लिया है। और जहां-जहां हमने शिक्षित कर लिया है, वहां पहली दफा मुसीबत के नए आयाम शुरू हो गए हैं, जिनका हमें पता ही नहीं था।
आज अमेरिका सबसे ज्यादा सुशिक्षित है। लेकिन अमेरिका के बच्चे आज जो
कर रहे हैं, वह ज्यादा से ज्यादा सैवेज, ज्यादा से ज्यादा जंगली हालत में जो किया जाना चाहिए, वह कर रहे हैं। लेकिन बुद्धिमानों ने कहा था कि सबको

सुशिक्षित कर दो, दुनिया में बड़ा सुख आ जाएगा! लेकिन जितनी शिक्षा बढ़ी है, उतना दुख बढ़ा है।
और शिक्षित आदमी लगता है, सुखी हो ही नहीं सकता। ऐसा मालूम पड़ता है कि
वह जो शिक्षित नहीं है, शायद सुखी हो जाए; लेकिन जो शिक्षित है, वह तो सुखी हो ही नहीं सकता। शायद इतनी महत्वाकांक्षा बढ़ जाती है, शायद सुख की इतनी प्रगाढ़ आकांक्षा हो जाती है, शायद सुख पर मुट्ठी बांधने की इतनी तीव्रता हो जाती है कि जिस पर मुट्ठी बांधते हैं, वह मुट्ठी से छूट जाता है। और शायद शिक्षा इतने तनाव बढ़ा देती है कि बुद्धिमान होने का ख्याल तो आ जाता है, लेकिन बुद्धिमत्ता बिल्कुल नहीं होती। और तब जिंदगी बड़े खिंचाव में, बड़ी बेचैनी में उलझ जाती है।
बुद्धिमान जिनको हम कहते हैं, उनकी मानकर दुनिया चल रही है। जिनको कृष्ण बुद्धियोगी कहते हैं, उनको मानकर दुनिया अब तक चली नहीं। पूजा वगैरह हम उनकी कर लेते हैं। वह आसान तरीका है उनसे निपटने का। जिससे निपटना हो, उसकी पूजा करो और अपने घर जाओ; उससे निपट गए; उससे झंझट खतम हुई। ठीक है; कि नमस्कार कर लेते हैं आपको। अब हमें क्षमा करें। अब हम जाएं।
यह जो दूसरी बुद्धिमत्ता है, जो जीवन को आनंद की तरफ ले जाती है... । हमारी बुद्धि तो दुख की तरफ ले गई है। अगर दुख ही कसौटी हो, तो हम जिसे बुद्धि कहते हैं, वह जहर है। और अगर आनंद कसौटी हो, तो फिर कृष्ण और बुद्ध जिसे बुद्धि कहते हैं, उसी की तरफ ध्यान को हटाना पड़ेगा।
यह बुद्धि कुछ और है। यह उन्हें उपलब्ध होती है, जो निरंतर मेरे ध्यान में लगे हुए हैं, जो निरंतर मेरी भक्ति में, मेरे स्मरण में डूबे हुए हैं। उन्हें मैं वह तत्वयोग, बुद्धियोग देता हूं, जिससे वे अंततः मुझे उपलब्ध हो जाते हैं, अंततः परमात्म रूप हो जाते हैं। और हे अर्जुन, उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अंतःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को प्रकाशमय दीपक द्वारा नष्ट करता हूं। तत्वज्ञान रूप दीपक द्वारा!
यह जो बुद्धि जब भीतर पैदा होती है, यह जो बुद्धियोग उपलब्ध होता है;
जब जीवन दिखाई पड़ता है उसकी समग्रता में, जैसा वह है; हमारे विचारों के अनुसार नहीं, हमारे चश्मों के अनुसार नहीं, हमारी दृष्टियों के अनुसार नहीं, वरन जैसा है, उसकी वास्तविकता में, उसके तत्वरूप में जब दिखाई पड़ता है, तो यही प्रज्ञा दीया बन जाती है। और यह सारा अज्ञान, जिसमें हम अब तक जीए हैं, जिसको हमने अब तक अपना जीवन समझा है, जिसमें हम भटके हैं, ठुकराए गए हैं, ठोकर खाए हैं, दुखी हुए हैं, नर्कों-नर्कों का परिभ्रमण किया है, वह सारा अंधकार विलीन हो जाता है, शून्य हो जाता है।
मनुष्य एक संभावना है प्रकाश की। मनुष्य बीज है प्रकाश का; एक ज्योति उसमें छिपी है। जैसा मैंने कहा, अंडे में छिपा है एक पक्षी; पंख खोल आकाश में उड़ जाए। ऐसा ही एक ज्योतिर्मय पक्षी आपके भीतर छिपा है। एक ज्योति, जो पंख खोले और आकाश की तरफ लपट बन जाए, वह आपके भीतर छिपी है।
लेकिन मन को तोड़ना पड़े, और अहंकार को ईंधन बनाना पड़े। अहंकार बने तेल
और जले, तो वह प्रकाश की ज्योति, वह बुद्धियोग आपके भीतर सघन हो। उस बुद्धियोग से जो जाना गया है, वही धर्म है। उस प्रकाश में जो पाया गया है, वही मोक्ष है। और उसके बिना जो भी हम जान रहे हैं अंधकार में, वह संसार है। इसे हम ऐसा परिभाषित करें, अज्ञान में जो जाना जाता है, वह संसार है। वही जब ज्ञान से जाना जाता है, तो परमात्मा है। संसार और परमात्मा दो चीजें नहीं हैं। संसार और परमात्मा एक ही अस्तित्व के दो दर्शन हैं, एक ही अस्तित्व के दो अनुभव हैं। अज्ञान में एक अनुभव होता है, वह संसार है। परमात्मा को हम अज्ञान में जैसा जानते हैं, उसका नाम संसार है। और ज्ञान में हम जैसा संसार को जानते हैं, उसका नाम परमात्मा है। ये दो नाम हैं, ये हमारे मन की दो स्थितियों के अनुरूप नाम हैं; इनका दो चीजों से संबंध नहीं है।
लेकिन आदमी अदभुत है, और होगा, क्योंकि उसकी उलटी बुद्धि है। उलटा खड़ा हुआ वह जगत को देख रहा है। तो अगर हम कभी सोचते भी हैं परमात्मा का, तो हम सोचते हैं, परमात्मा कुछ और है, संसार कुछ और है। दुकान कुछ और है, और मंदिर

कुछ और है। शरीर कुछ और है, और आत्मा कुछ और है। पत्थर कुछ और है, और परमात्मा कुछ और है। जब हम सोचते भी हैं, तो हम दो हिस्सों में सोचते हैं। हम दो अस्तित्व बना लेते हैं। उन दो अस्तित्वों के बीच और कठिनाई खड़ी हो जाती है, क्योंकि वे दोनों झूठ हैं। वे दोनों झूठ हैं।
बुद्ध से कोई पूछता है कि जब आपको ज्ञान हुआ, तो फिर संसार और सत्य में क्या संबंध होता है, वह आप बताएं। जब आपको ज्ञान हुआ, तो आत्मा और शरीर में क्या संबंध होता है, वह आप बताएं। जब आपको ज्ञान हुआ, तो आप संसार में किस भांति जीते हैं, वह आप हमें बताएं।
बुद्ध ने कहा कि एक आदमी गुजरता हो रास्ते से, अंधेरा हो, और रस्सी पड़ी हो, और सांप उसे ख्याल में आ जाए। भागे, दौड़े, तड़फड़ाए, पसीना-पसीना हो जाए। घबड़ा जाए। खून की रफ्तार बढ़ जाए। रक्तचाप बढ़ जाए। हृदय की धड़कन होने लगे। बेचैन हो जाए। फिर कोई उसे कहे, घबड़ाओ मत। यह लालटेन हाथ में लो और चलो। वह आदमी कहे कि मैं चलूंगा बाद में। मैं आपसे पूछता हूं कि आपने लालटेन लेकर उस सांप को देखा है? अगर आपने लालटेन लेकर उस सांप को देखा है, तो मुझे यह बताइए कि सांप और रस्सी में क्या संबंध है? तो वह आदमी जिसके हाथ में लालटेन है, क्या कहेगा? वह कहेगा, जब लालटेन लेकर वहां कोई जाता है, तो रस्सी ही रह जाती है; सांप होता ही नहीं। और जब अंधेरे में कोई जाता है, तो सांप होता है; रस्सी होती ही नहीं।
लेकिन एक आदमी खबर देता है रस्सी की और एक आदमी खबर देता है सांप की,
तो सुनने वाले को लगता है कि दो चीजें हैं, सांप है और रस्सी है। फिर वह पूछता है, सांप और रस्सी के बीच संबंध क्या है? फिर बुद्धिमान लोग हैं हमारे पास, जो संबंध के लिए बड़े-बड़े शास्त्र निर्मित करते हैं कि क्या संबंध है।
न, वे भी नहीं गए हैं। उन्होंने भी खबर सुनी है दो तरह के लोगों से। अज्ञानी तो कम से कम सांप देखकर लौटा है। वे उतने भी नहीं गए हैं कि सांप भी देखकर लौट आएं। वे अपने घर में ही बैठकर खबरों का हिसाब जोड़ रहे हैं। कुछ लोग कहते हैं, सांप है; कुछ लोग कहते हैं, रस्सी है! तो जरूर दो चीजें हैं, इन दोनों के बीच क्या संबंध है?
सारी दुनिया में इन दो के बीच, दो के नाम कुछ भी हों--संसार हो, मोक्ष हो; आत्मा हो, पदार्थ हो; माइंड हो, मैटर हो--कुछ भी नाम हों, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। दो के बीच संबंध क्या है? दुनिया में सैकड़ों दर्शनशास्त्र विकसित हुए हैं। कोई कहता है, दोनों पैरेलल हैं, समानांतर हैं। कोई कहता है, दोनों के बीच संबंध है। कोई कहता है, दोनों के बीच कोई भी संबंध नहीं है, दोनों अपने स्वभाव से ही वर्तन करते रहते हैं। कोई कहता है कि एक झूठ है, दूसरा सत्य है। कोई कहता है, दूसरा झूठ है, पहला सत्य है। लेकिन ये सब वे ही लोग हैं, जिन्होंने प्रकाश ले जाकर देखा नहीं कि वहां दो हैं भी! कृष्ण कहते हैं कि अज्ञान, अंधकार मिट जाता है। इस बुद्धियोग के द्वारा जो ज्योतिर्प्रज्ञा प्रकट होती है, जो ज्योति प्रकट होती है, अंधकार मिट जाता है।
इस अंधकार मिट जाने में दो नहीं रह जाते, एक ही रह जाता है। शायद यह भी कहना ठीक नहीं कि एक रह जाता है, क्योंकि एक से हमें तत्काल संख्या का बोध होता है। इसलिए इस देश ने बड़ा कीमती शब्द खोजा, अद्वैत। यह भी नहीं कहा कि एक रह जाता है। कहा कि बस, दो नहीं रह जाते। क्योंकि एक रह जाता है, इसमें भी ऐसा लगता है कि हमें संख्या का आग्रह है। और जब भी आप एक का सोचेंगे, तो दो का तत्काल ख्याल आएगा।
एक का कोई अर्थ ही नहीं होता, अगर दो न होते हों। एक का कुछ अर्थ ही होता है दो के संदर्भ में। इसलिए फिर जिन्होंने जाना था प्रकाश में, उन्होंने इतना ही कहा कि दो नहीं हैं वहां। एक है, यह भी हम नहीं कहते। हम इतना ही कहते हैं, दो वहां नहीं हैं। वे दोनों वहां नहीं हैं, जो तुमने जाने हैं, जो तुमने सुने हैं। वहां कुछ है, एक्स, अज्ञात, रहस्यमय, और वह जानने से ही जाना जा सकता है। कहे हुए वक्तव्य, सुने हुए वचन, पढ़े हुए शब्द, उसको नहीं जनाते हैं।

धर्म एक अंतर-क्रांति है, एक अल्केमी है, एक कीमिया है, जिसमें आदमी अपने को बदले और जानने के नए तलों पर स्थापित हो, नए प्रकाश और नई आंखें उपलब्ध हों, नई ज्योति और नया चैतन्य आविर्भूत हो, तो दिखाई पड़ता है।
हम सब जानने के पहले जानना चाहते हैं। इससे इस दुनिया में बहुत-सा मिथ्या, बहुत-सा फाल्स, सूडो ज्ञान प्रचलित हो जाता है। हम सब जानने के पहले जानना चाहते हैं! पक्षी उड़ने के पहले जानना चाहता है कि उड़ना क्या है! तैरने के पहले हम जानना चाहते हैं कि स्वाद क्या है उस तैरने का! स्वतंत्रता के पहले, आकाश में पंख फैलाने के पहले, हम जानना चाहते हैं, स्वतंत्रता का अर्थ क्या है!
तब हमें बताने वाले लोग भी मिल जाते हैं। क्योंकि दुनिया में जब किसी चीज की मांग हो, डिमांड हो, तो सप्लाई भी हो जाती है। अर्थशास्त्री कहते हैं कि जिस चीज की भी मांग करो, कोई न कोई देने वाला जरूर मिल जाएगा। बस मांग होनी चाहिए; बाजार का नियम है।
तो जब हम मांग करते हैं कि बिना जाने हमें जानना है, तो पंडितों का एक बड़ा वर्ग है सारी दुनिया में, जो आपको बिना जाने जनाने के लिए राजी है। जो कहता है, क्या जरूरत है! ठीक है; यह रही किताब, ये रहे शब्द; इन्हें कंठस्थ कर लो। इनको पी जाओ। इनको याद कर लो। इनको दोहराने लगो। तोतों की तरह इनको रट लो। ज्ञान हो जाएगा!
हमारे पास ऐसा ज्ञान है। कभी आपने सोचा है कि आपका ईश्वर, आपकी आत्मा तोते की तरह रटा हुआ ज्ञान है! आपके पिता से आपको मिल गया है। कृपा करके आप अपने बेटे को भी दे जाएंगे। कोई आपको रटा गया, आप किसी और को रटा देंगे। लेकिन अनुभव की, खुद की प्रतीति, खुद के साक्षात्कार की एक किरण भी भीतर नहीं है!
इसीलिए तो धर्म की इतनी चर्चा होती है और धर्म इतना व्यर्थ मालूम होता है। और धर्म का इतना-इतना व्यापक काम चलता है, और परिणाम कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता। सारी दुनिया में प्रकाश की चर्चा है और घनघोर अंधकार है! और जहां देखो वहां परमात्मा का विचार चल रहा है--मंदिर में, मस्जिद में, चर्च में, गुरुद्वारे में। सब जगह प्रभु की स्तुति चल रही है, और प्रभु की कहीं भी कोई झलक किसी आंख में दिखाई नहीं पड़ती! अजीब धोखा है!
और आदमीयत अपने को धोखा देने में इतनी कुशल मालूम पड़ती है कि जिसका हिसाब नहीं। जो है ही नहीं हमारे जीवन में बिल्कुल, उसकी हम कितनी चर्चा कर रहे हैं! और चर्चा से ही तृप्त हैं। और चर्चा करके सोच रहे हैं, समाप्त हुआ काम। एक औपचारिक बात है। कर लेते हैं, सुन लेते हैं बचपन से, फिर उसे दोहराए चले जाते हैं! फिर जिंदगीभर कभी ख्याल भी नहीं करते कि जो हम कह रहे हैं, उन शब्दों के पीछे कोई प्राण हैं? उन्हें हमने जाना?
मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जो अपने एक-एक शब्द को तौलेगा। ईश्वर को मैंने जाना हो, तो ही इस शब्द को होंठ पर लाऊं। अन्यथा यह शब्द बहुत कीमती है और उन होंठों पर लाने के योग्य नहीं है, जिन होंठों ने सिर्फ बासे शब्द को उधार ले लिया हो और दोहरा रहे हों।
आत्मा मैंने जानी है? तो मत करें उपयोग उसका, शब्द को ही मत उपयोग करें। अगर शब्द से आप बच सकें, तो शायद बेचैनी अनुभव हो कि मैं भी तो जानूं कि क्या है यह? लेकिन हम शब्दों से इतने राजी हैं, इतने राजी हैं! यह लंबी कंडीशनिंग है।
एक आखिरी बात। रूस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ, पावलव। उसने कंडीशंड रिफ्लेक्स का एक सिद्धांत प्रस्तावित किया। कीमती सिद्धांत है। और आत्यंतिक रूप से सही नहीं है, फिर भी बहुत दूर तक सही है। एक कुत्ते के सामने वह रोटी करता था, रोटी देता था और तभी घंटी बजाता था। रोटी देखकर कुत्ते की लार टपकती थी, तभी वह घंटी भी सुनता था। फिर पंद्रह दिन के बाद रोटी तो नहीं दी, सिर्फ घंटी बजाई और कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी।
अब घंटी से लार के टपकने का कोई भी संबंध नहीं है। कितनी ही घंटी बजाओ, कुत्ता लार नहीं टपकाएगा। लेकिन यह पावलव का कुत्ता लार टपकाने लगा। तो पावलव कहता था, यह कंडीशनिंग हो गई, यह संस्कार हो गया। रोटी दी, कुत्ते की लार टपकी। रोटी के साथ घंटी बजी, कान ने घंटी सुनी। रोटी और घंटी संयुक्त

हो गए, एसोसिएटेड हो गए। अब रोटी तो नहीं दी, सिर्फ घंटी बजाई। घंटी बजते ही कान में घंटी पड़ी, लार की ग्रंथियों ने लार छोड़नी शुरू कर दी।
हम भी करीब-करीब शब्दों के साथ इसी तरह कंडीशंड हो गए हैं। मंदिर दिखा, हाथ जोड़ लिए। यह बिल्कुल कंडीशनिंग है। बचपन से पिता के साथ गए होंगे, कहा कि मंदिर है, पिता ने हाथ जोड़े, आपने हाथ जोड़ लिए। अब कंडीशनिंग हो गई। अब मंदिर दिखता है, हाथ जुड़ जाता है। आप सोचते हैं, आप बड़े धार्मिक हैं! यह सिर्फ घंटी बजी और लार टपकने लगी!
इतना आसान नहीं! हाथ जोड़े, चले गए। निपटारा हो गया मंदिर से। कभी कोई उत्सव आ गया धर्म का, मना लिया। तो धर्म एक सामाजिक कृत्य होकर रह जाता है। इससे जागना पड़े। इससे जागना पड़े, तो हम किसी दिन जान पाएं उस प्रकाश को, उस अमृत को, उस आशीर्वाद को, उस लोक को, जिसकी कृष्ण जैसे लोग चर्चा करते हैं। वह हमारे बिल्कुल निकट है, बस जरा ही मुड़ने की बात है। और हम अपने इस तथाकथित बंधे हुए मन से जरा भी हिल सकें, तो वह किनारे ही है हमारे। एक छलांग में वह हमें उपलब्ध हो जाए।
लेकिन हम इस मन को ही पकड़कर बैठे रहें, तो शब्दों की घंटियां बजती रहेंगी और अनुभव की झूठी लार टपकती रहेगी, कहीं उसका कोई संबंध नहीं है। किसी ने कहा, ईश्वर; किसी ने कहा, गीता; और हमारे भीतर जरूर कोई घंटी बज जाती है।
मैं इधर हैरान हुआ। अगर मैं गीता के नाम से वही बात कहूं, तो घंटी बज जाती है आपके भीतर। और अगर गीता का नाम न लूं और वही बात कहूं, कोई घंटी नहीं बजती! यही बात मैं कुरान का नाम लेकर कहूं, मुसलमान के भीतर घंटी बजने लगती है! यही बात गीता का नाम लेकर कहूं, घंटी बंद हो जाती है! आश्चर्यजनक है। बहुत आश्चर्यजनक है!
ऐसा बंधा हुआ, ऐसा तोते जैसा मन, यंत्र जैसा मन, धार्मिक नहीं हो सकता।
इस मन को तोड़ना, इस मन को रोकना, इस मन के पार होना जरूरी है।
आज इतना ही।
लेकिन कोई उठेगा नहीं। पांच मिनट बैठें। संन्यासी कीर्तन करेंगे।
राम-नाम का प्रसाद लें, और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
पांचवां प्रवचन

कृष्ण की भगवत्ता और डांवाडोल अर्जुन

अर्जुन उवाच
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।। 12।।
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।। 13।।
सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।। 14।।
इस प्रकार श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला, हे भगवन्, आप परम ब्रह्म और परम धाम एवं परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं, वैसे ही देवऋषि नारद तथा असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास और स्वयं आप भी ऐसा मेरे प्रति कहते हैं।
और हे केशव, जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस समस्त को मैं सत्य मानता हूं। हे भगवन्, आपके लीलामय स्वरूप को न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं।

कृष्ण ने जो भी अर्जुन को कहा, वह बुद्धि से मानने जैसा नहीं है; तर्क उसके विरोध में जाएगा, विचार उस पर संदेह करेंगे। अहंकार अस्वीकार करना चाहेगा उस सबको। क्योंकि कृष्ण ने जो कहा है, उससे ज्यादा कठिन बात, अहंकार को मानना, दूसरी नहीं हो सकती।
कृष्ण भी वैसे ही हड्डी, मांस, मज्जा से बने हैं, जैसे हड्डी, मांस, मज्जा से अर्जुन बना है। कृष्ण को भी वैसे ही भूख लगती है, जैसी अर्जुन को लगती है। कृष्ण भी वैसे ही थकते हैं और विश्राम करते हैं, जैसा अर्जुन थकता है और विश्राम करता है। कृष्ण को अर्जुन मान सकता है महामानव सरलता से, लेकिन ईश्वर मानने में बड़ी कठिनाई है। ईश्वर मानने का अर्थ ही ठीक से हम समझ लें, तो कठिनाई भी समझ में आ जाए।
जब हम एक किसी व्यक्ति को महामानव मानते हैं, तो भी हम अपने और उसके बीच जो अंतर देखते हैं, वह क्वांटिटी का, डिग्रीज का, क्रम का, परिमाण का है। हमारे जैसा ही, हमारे ही आयाम में, हमसे थोड़ा ज्यादा। लेकिन जैसे ही हम किसी व्यक्ति को भगवान मानते हैं, हमारा उससे सब संबंध टूट जाता है। और हमारे और उसके बीच जो अंतर है, वह क्वांटिटेटिव नहीं, क्वालिटेटिव हो जाता है। वह फिर गुण का अंतर है। फिर वह परिमाण और मात्रा का भेद नहीं है। फिर हमारे और उसके बीच कोई सेतु, कोई संबंध नहीं है। वह दूसरे ही लोक का अस्तित्व है। हमारे और उसके बीच एक अलंघ्य खाई है।
इसलिए किसी व्यक्ति को महामानव मान लेने में अड़चन नहीं है, महात्मा मान लेने में अड़चन नहीं है। हमसे संबंध नहीं टूटता। हमारे ही रास्ते पर कोई हमसे दो कदम आगे होता है, कोई दस कदम आगे होता है। अहंकार को तकलीफ होती है इसमें भी कि किसी को मैं आगे मानूं! लेकिन फिर भी अहंकार इससे नष्ट नहीं होता। हम किसी को अपने से आगे मान सकते हैं।
कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपने से किसी को आगे मानने में भी अहंकार को तृप्ति मिलती है। वह तृप्ति जरा सूक्ष्म है। जिसे हम अपने से आगे मानते हैं, यह मानने के कारण ही हम उससे संयुक्त हो जाते हैं। और यह मानने के कारण ही हम उसको पहचानने वाले हो जाते हैं। और यह मानने के कारण ही हम भी अपने भविष्य में कभी उस जैसा होने की संभावना का अहंकार पोषित कर सकते हैं।
लेकिन किसी व्यक्ति को ईश्वर मानने में हमारी सारी तर्क-सरणी टूट जाती है, हमारी सारी अंतर्व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है। ईश्वर मानने

का अर्थ ही यह हुआ कि वह हमसे बिल्कुल भिन्न है। भिन्नता इतनी गहरी है कि हम उसे समझ भी नहीं पा सकते कि वह क्या है।
कृष्ण ने जो भी कहा है, वह असंभव है। असंभव है बुद्धि के लिए। अर्जुन उसके उत्तर में जो कह रहा है, वह बहुत सोचने जैसा है। और जैसा ऊपर से दिखाई पड़ता है, वैसा उसका अर्थ नहीं है। और जैसा भी आपको अर्थ दिखाई पड़ता रहा होगा, थोड़ा गहरे उतरेंगे, तो उससे बिल्कुल विपरीत अर्थ पाएंगे।
अर्जुन ने कृष्ण की ये सारी बातें सुनकर कि मैं परमात्मा हूं; मैं ही सबमें व्याप्त हूं; सब कुछ मेरे ही द्वारा धारण किया गया है; समस्त ऋषियों में मेरे ही भाव प्रकट हुए हैं; और समस्त श्रेष्ठताओं और समस्त शक्तियों का मैं ही आधार और बीज हूं; और जहां भी जीवन में कोई सुगंध ऊंचाई छूती है, और जब भी कोई शिखर गौरीशंकर होता है, तब उस श्रेष्ठता की अंतिम स्थिति में जो खिलता है, जो फूल खिलता है, वह मैं ही हूं। मैं ही इस जीवन का आभिजात्य, मैं ही इस जीवन का रस, मैं ही इस जीवन का प्राण, मैं ही इस जीवन का केंद्र हूं। ये बातें कृष्ण ने कहीं, जो बड़ी असंभव हैं किसी बुद्धि को मानने के लिए। अर्जुन ने जो उत्तर दिया, इसलिए बहुत सोचने जैसा है।
इस प्रकार कृष्ण के वचनों को सुनकर अर्जुन ने कहा, हे भगवन्, आप परम ब्रह्म और परम धाम एवं परम पवित्र हैं। आपको सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवऋषि नारद तथा असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास और स्वयं आप भी ऐसी ही घोषणा मेरे प्रति करते हैं। और हे केशव, जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस समस्त को मैं सत्य मानता हूं। हे भगवन्, आपके लीलामय स्वरूप को न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं।
ठीक ऊपर से देखने पर लगेगा कि अर्जुन ने सब कुछ स्वीकार कर लिया। काश, अर्जुन यह सब कुछ स्वीकार कर ले, तो गीता यहीं समाप्त हो जाती; आगे गीता निष्प्रयोजन है। फिर कहने को कुछ और बचता नहीं, और समझाने को भी कुछ बचता नहीं। आखिरी बात पूरी हो गई। अल्टिमेट, जो आत्यंतिक घटना घटनी चाहिए अर्जुन के भीतर, वह घट गई। लेकिन गीता समाप्त नहीं होती है और कृष्ण को और भी श्रम लेना पड़ता है। यह वक्तव्य जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा नहीं होगा, इसीलिए। इसमें तीन बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं।
अर्जुन कहता है कि आप परम ब्रह्म, परम धाम, परम पवित्र हैं, क्योंकि ऐसा ही ऋषियों ने भी कहा है, महर्षियों ने भी कहा है।
अर्जुन को अभी भी यह सीधी प्रतीति नहीं है। अभी भी गवाह की जरूरत है; साक्षी की, विटनेस की जरूरत है। अर्जुन मानता है, क्योंकि सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों के भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी आपको स्वीकार करते हैं। देवऋषि नारद--ये बड़े नाम हैं; उस युग के बड़े नाम हैं--असित और देवल और महर्षि व्यास, और इतना ही नहीं, आप स्वयं भी मेरे प्रति ऐसा ही कहते हैं।
ध्यान रहे, जब भी हमें साक्षी की, गवाह की जरूरत पड़ती है, तो उसका अर्थ होता है, सत्य का साक्षात्कार सीधा नहीं है। अर्जुन यह नहीं कहता कि ऐसा मैं अनुभव करता हूं। अर्जुन कहता है, जिनकी बात मानी जा सके, वे भी ऐसा ही कहते हैं। अर्जुन कहता है, आप जो कह रहे हैं, वह प्रामाणिक मालूम पड़ता है; क्योंकि जो भी विचारशील हैं, जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने भी ऐसा ही कहा है। यह इमीजिएट, यह सीधा-सीधा अनुभव नहीं है। कहीं ऐसा अगर हो कि महर्षि व्यास ऐसा न कहें, और देवल और असित इनकार कर दें, और नारद कह दें कि नहीं, ये कृष्ण भगवान नहीं हैं, तो अर्जुन की क्या गति हो? तो अर्जुन डांवाडोल हो जाए।
उसका सत्य, उसका अपना सत्य नहीं है, गवाहों का सत्य है। किन्हीं की गवाही पर वह अपनी मान्यता को निर्धारित कर रहा है। गवाही बहुत मजबूत है।
साधारण आदमी की यही मनोदशा है। उसके पास अपना कोई सत्य नहीं होता।
कोई और कहता है, तो वह मान लेता है। कोई और बदल जाएगा कल, तो वह भी बदल जाएगा।

लेकिन महर्षि व्यास जो कहते हैं, वह सत्य कहते हैं, यह अर्जुन कैसे जानेगा! बड़ी मजे की बात है। तब अर्जुन खोजेगा कि और कौन-कौन ऋषि हैं, जो महर्षि व्यास को महर्षि मानते हैं! वह भी निर्भर करेगा किसी गवाही पर।
यह तो इनफिनिट रिग्रेस है, इसमें तो कहीं कोई उपाय नहीं हो सकता। अ को
आप मानते हैं, क्योंकि ब कहता है। ब को आप मानते हैं, क्योंकि स कहता है। स को आप मानते हैं, क्योंकि द कहता है। लेकिन आप दूसरे पर निर्भर हैं। और जो मान्यता दूसरे पर निर्भर है, वह कभी भी गहरी नहीं हो सकती। क्योंकि जब कृष्ण को सीधा सामने पाकर सीधा नहीं माना जा सकता, तो महर्षि व्यास के वक्तव्य को कैसे गहरे में माना जा सकता है?
कृष्ण सामने खड़े हैं--यह बहुत मजे की बात है--यह ऐसी स्थिति है कि अंधा सूरज के सामने खड़ा हो और कहे कि हां, मैं मानता हूं कि तुम सूरज हो और तुममें प्रकाश है, क्योंकि अ ने भी ऐसा कहा है, ब ने भी ऐसा कहा है, स ने भी ऐसा कहा है! बड़े-बड़े ज्ञानी भी यही कहते हैं कि सूरज में प्रकाश है; और तुम भी मेरे प्रति कहते हो कि तुम प्रकाशवान हो!
लेकिन अंधे को खुद दिखाई नहीं पड़ रहा। क्योंकि अगर अंधे को खुद दिखाई पड़ता हो, तो गवाही की कोई भी जरूरत नहीं है।
सत्य के लिए गवाही की कोई भी जरूरत नहीं है। केवल असत्य के लिए गवाही
की जरूरत पड़ती है। सत्य तो स्वयं ही अपनी गवाही है। और अगर सत्य स्वयं अपनी गवाही नहीं दे सकता, तो फिर और कौन उसकी गवाही दे सकेगा?
अर्जुन को प्रतीति सीधी नहीं है। अर्जुन अभिभूत है, प्रभावित है, लेकिन बड़े गवाहों के नाम से; सीधे कृष्ण से नहीं। अगर उसे पता चल जाए कि महर्षि व्यास ने नहीं कहा है ऐसा, तो उसके सब आधार डगमगा जाएं, उसकी श्रद्धा का पूरा भवन गिर जाए।
दूसरे की गवाही पर निर्भर जो भी व्यक्ति जीता है, वह बहुत दरिद्र है, उसके पास सीधी देखने की आंख नहीं है। एक बात।
दूसरी बात; अर्जुन कृष्ण को प्रेम करता है, यह जरूर सच है। और प्रेम करता है इसीलिए उसने, अर्जुन ने उन लोगों की गवाहियां चुन ली हैं, जो कृष्ण को भगवान कहते हैं। अगर अर्जुन कृष्ण को प्रेम न करे, तो वह दूसरे गवाह चुनेगा, जो भगवान कृष्ण को नहीं कहते। और ऐसा नहीं है कि दूसरे गवाह नहीं हैं।
कृष्ण के चचेरे भाई नेमिनाथ जैनियों के तीर्थंकर हैं। वे जैन-दीक्षा लेकर जैन संन्यासी हो गए थे। और फिर जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में एक स्थान पर पहुंच गए। लेकिन आप जानकर हैरान होंगे कि जैन मानते हैं कि कृष्ण ने इतना पाप किया और करवाया कि वे सातवें नर्क में सड़ रहे हैं! बहुत कठिनाई मालूम पड़ेगी।
जैनों की दृष्टि से बात में थोड़ा मजा है, सोचने जैसा मजा है। क्योंकि जैन यह कहते हैं कि अर्जुन तो भाग रहा था और अहिंसक होना चाहता था। कहता था, नहीं करूंगा युद्ध। इन अपने लोगों को काटने से क्या है सार? और धन भी पाकर क्या मिलेगा? और राज्य भी मिल गया, तो क्या होगा? वह तो विरत हो रहा था, विराग जग रहा था। वह तो छोड़कर जा रहा था युद्ध को। वह तो संन्यास, त्याग, पलायन में प्रवेश कर रहा था। लेकिन कृष्ण ने उसे समझा-बुझाकर युद्ध में जूझने को राजी कर लिया।
निश्चित ही, महाभारत का अगर कोई भी पाप है, तो कृष्ण के नाम जाएगा, अर्जुन के नाम नहीं जा सकता--अगर कोई पाप है। अर्जुन तो भाग ही रहा था। यह पूरी गीता अर्जुन को समझाने के लिए कृष्ण ने कही है कि वह युद्ध में खड़ा रहे; भागे न। अगर कोई पुण्य है, तो वह कृष्ण के नाम जाएगा; अगर कोई पाप है, तो कृष्ण के नाम जाएगा। अब यह हम पर निर्भर करेगा कि हम उसे पुण्य मानें या पाप मानें।
जैनों की दृष्टि में चूंकि अहिंसा कसौटी है समस्त पाप-पुण्य की; चूंकि भयंकर हिंसा हुई, इसलिए पाप हुआ। जिम्मेवार कृष्ण हैं। इसलिए जैनों ने बड़ी हिम्मत की है। हिम्मत की बात है। कृष्ण जैसे व्यक्ति को नर्क में डालना हिम्मत की बात है। हाथ में तो हमारे है, क्योंकि किताब हम लिखते हैं, नर्क हमारे हैं। कृष्ण नर्क में हैं या नहीं, इसका तो कोई जानने का उपाय

नहीं है। लेकिन जैन की दृष्टि में कृष्ण नर्क में होने चाहिए। तो सातवें नर्क में उनको डाला है।
लेकिन पीड़ा तो जैनों को भी मन में रही है, क्योंकि आदमी तो लाजवाब था; उनके सिद्धांत से मेल नहीं खाया। आदमी तो गजब का था, प्रतिभा तो उसकी अनूठी थी। सिद्धांत से मेल नहीं खाया, इसलिए सातवें नर्क में डाला है। लेकिन अपराध भी भीतर मन में लगा होगा कि यह आदमी नर्क में डालने जैसा नहीं है, स्वर्ग में बिठाने जैसा है। इसलिए फिर उन्होंने एक तरकीब की व्यवस्था की। आदमी का मन बड़ी चालाकियां करता है, बड़े गणित बिठाता है।
तो जैनों ने एक नियम बनाया कि कृष्ण इस युग में तो सातवें नर्क में हैं, लेकिन आने वाले कल्प में जैनों के पहले तीर्थंकर होंगे! एक बैलेंस, एक संतुलन हो गया। श्रेष्ठतम वे जो कर सकते थे, वह यह कि आने वाले कल्प में जब सृष्टि विनष्ट हो जाएगी और पुनर्निर्मित होगी, तो जो पहला तीर्थंकर होगा जैनों का, वह कृष्ण की आत्मा ही पहली तीर्थंकर होगी।
इस महाभारत की हिंसा में उलझने के कारण तीर्थंकर की हैसियत के आदमी
को सातवें नर्क में डालने की मजबूरी है। लेकिन इस दुख को भोगकर और अनुभव से गुजरकर ऐसी भूल कृष्ण अब दुबारा नहीं करेंगे। आदमी तो गजब के हैं, अब यह भूल उनसे दुबारा नहीं होगी। तो वे पहले तीर्थंकर हो सकते हैं।
निश्चित ही, अर्जुन के मन में अगर कृष्ण के प्रति प्रेम न होता, तो उसने गवाही दूसरी चुनी होतीं। ये तीन-चार जो गवाहों के नाम लिए हैं, ये ही गवाह नहीं थे, और भी गवाह थे। वे लोग भी थे, जिन्होंने कृष्ण को नर्क में डाला है।
हम अपने प्रेम से अपनी गवाही चुन लेते हैं। अर्जुन का प्रेम है कृष्ण
के प्रति, लगाव है। उसने जो कृष्ण के अनुमोदन में हैं, उन लोगों के नाम चुन लिए हैं। लेकिन यह प्रेम श्रद्धा नहीं है, यह मित्र के प्रति प्रेम है। यह लगाव समान तल पर है। अर्जुन कहता है कि मानता हूं, आप जो भी कहते हैं, सत्य मानता हूं। लेकिन यह मान्यता सीधी नहीं है, यह बात ठीक से समझ लें।
काश यह मान्यता सीधी होती, तो उसी क्षण गीता समाप्त हो जाती। बात पूरी
हो गई थी। फिर कृष्ण का आदेश मानने के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। लेकिन अभी भी आदेश माना नहीं जा सकता। अर्जुन कहता है कि आप भगवान हैं, लेकिन अभी भी संदेह किए चला जाएगा। और जब कृष्ण बुद्धि से उसे सब जगह से काट-छांट डालेंगे और जब उसकी बुद्धि को कोई उपाय नहीं मिलेगा, तो वह कहेगा कि ऐसे मेरी तृप्ति नहीं होती। आप तो अपना विराट भगवान का रूप दिखाएं, तब शायद! नहीं, अभी उसका स्वयं का राजी होना नहीं हुआ है। बुद्धि से गवाह जुटाकर वह अपने को समझा रहा है। इस सूत्र में जगह-जगह उसकी खबर है।
ऋषि तो कहते हैं कि आप परम ब्रह्म हैं; और इतना ही नहीं, स्वयं आप भी ऐसा मेरे प्रति कहते हैं। वह कृष्ण को भी गवाहियों की कतार में खड़ा कर रहा है। वह इनकी बात भी न मानता। लेकिन बड़ी मुश्किल है। कृष्ण खुद कह रहे हैं कि मैं भगवान हूं। तो वह कहता है कि और आप भी ऐसा ही मेरे प्रति कहते हैं। तो उसकी हिम्मत नहीं जुट पाती कि वह संदेह खड़ा करे। लेकिन संदेह उसके भीतर है।
जिसके भीतर संदेह नहीं है, वह गवाह नहीं जुटाएगा। गवाह हम जुटाते इसलिए हैं कि भीतर के संदेह को काटने का और कोई उपाय नहीं है। भीतर के संदेह जितने बड़े होंगे, उतने बड़े गवाह हम जुटाएंगे।
अर्जुन को अगर सड़क चलता हुआ कोई भी आदमी कह दे कि कृष्ण भगवान हैं, तो
वह मानेगा नहीं; उसका संदेह बड़ा है। जब महर्षि व्यास ही तराजू पर न बैठकर कहें कि हां, ये भगवान हैं, तब तक वह मानेगा नहीं!
जितना बड़ा हो संदेह, उतनी बड़ी गवाही चाहिए। यह थोड़ा उलटा मालूम पड़ेगा!
हम जितनी बड़ी गवाही खोजते हैं, उतने बड़े संदेह की खबर देते हैं। अगर संदेह बिल्कुल न हो, तो गवाही की बिल्कुल जरूरत न पड़ेगी। अगर संदेह शून्य हो, तो सारी दुनिया भी विपरीत गवाही दे, तो भी कोई अंतर नहीं पड़ेगा।
विवेकानंद रामकृष्ण के पास गए पूछने कि क्या ईश्वर है? रामकृष्ण को कहना चाहिए था कि महर्षि फलां कहते हैं कि है, उपनिषद कहते हैं कि है, वेद

कहते हैं कि है। ऐसा कहना चाहिए था। ऐसा किसी भी पंडित के पास विवेकानंद जाते, तो वह यही कहता। गए भी थे वे। रवींद्रनाथ के पिता के पास गए थे। महर्षि देवेंद्रनाथ बड़े ज्ञानी थे, बड़े पंडित थे। उनके पास भी विवेकानंद, रामकृष्ण से मिलने के पहले, गए थे। आधी रात--गंगा में बजरे पर महर्षि का निवास था--तो कूदकर आधी रात अंधेरे में बजरे पर चढ़ गए; द्वार खोला। रात आधी; महर्षि अपने ध्यान में बैठे थे आंख बंद करके। जाकर कालर पकड़कर उनका गला हिलाया और कहा कि मैं यह पूछने आया हूं, क्या ईश्वर है? महर्षि समझा सकते थे, बता नहीं सकते थे। तर्क दे सकते थे, खुद का कोई अनुभव नहीं था। तो महर्षि ने कहा, युवक, बैठो। मैं तुम्हें शास्त्रानुसार समझाऊंगा। लेकिन विवेकानंद छलांग लगाकर वापस गंगा में कूद गए। महर्षि ने आवाज दी कि लौट आओ, मैं तुम्हें सब तरह से समझाऊंगा। विवेकानंद ने कहा, समझने मैं नहीं आया हूं। अगर आप जानते हों, तो हां कह दें, या न कह दें। आप जानते हों, तो बोलें, अन्यथा चुप रह जाएं। क्योंकि शास्त्र तो मैं भी पढ़ लूंगा। देवेंद्रनाथ की हिम्मत न जुटी कहने की कि हां, मैं जानता हूं।
बाद में विवेकानंद कहते थे कि देवेंद्रनाथ की झिझक ने सब कुछ कह दिया। जानते थे बहुत, लेकिन वह सब किसी और के द्वारा जानते थे; सीधी कोई प्रतीति न थी।
फिर यही युवक रामकृष्ण के पास गया। उतनी ही अकड़ से, उतने ही जोर से। रामकृष्ण को भी हाथ पकड़कर पूछा है कि ईश्वर है? लेकिन हालत बिल्कुल बदल गई। जैसे देवेंद्रनाथ कंप गए थे आधी रात इसका सवाल सुनकर; रामकृष्ण ने जब देखा आंख उठाकर विवेकानंद की तरफ, तो विवेकानंद खुद कंप गए। रामकृष्ण ने कहा, है या नहीं, यह छोड़ो। तुम्हें जानना हो तो बोलो? और अभी जानना है? हाथ-पैर कंप गए विवेकानंद के। विवेकानंद ने कहा कि मैं जरा सोचकर आऊं। यह मैं सोचकर नहीं आया! रामकृष्ण ने कहा, है या नहीं, यह सवाल बेकार है। तुम्हें जानना हो, तो मैं जना सकता हूं।
रामकृष्ण ने विवेकानंद का हाथ पकड़ लिया। इस बातचीत में विवेकानंद ने
जो हाथ पकड़ा था, वह छूट गया था। रामकृष्ण ने हाथ पकड़ लिया और कहा कि ऐसे नहीं जाने दूंगा। जब आ ही गए हो, तो अच्छा होगा, जानकर ही जाओ! विवेकानंद ने कहा है कि फिर मेरी हिम्मत रामकृष्ण से कभी कुछ पूछने की न पड़ी। क्योंकि यहां पूछना आग से खेलना था--सीधा।
रामकृष्ण ने नहीं कहा कि उपनिषदों ने कहा है, वेद ने कहा है, बुद्ध ने कहा है, कृष्ण ने कहा है। बेकार हैं बातें। अगर रामकृष्ण को खुद ही पता है, तो ये सब गवाहियां हैं या नहीं, निर्मूल्य है। और अगर रामकृष्ण को खुद पता नहीं है, तो दुनिया में सबने कहा हो, तो भी उनकी सबकी गवाहियों का जोड़ भी सत्य नहीं बन सकता। कितनी ही गवाहियों का जोड़ भी सत्य नहीं बन सकता; और एक छोटे-से सत्य को भी सारी दुनिया के गवाह मिलकर विपरीत कहें, तो भी असत्य नहीं कर सकते।
लेकिन यह अर्जुन जो कह रहा है, इसकी बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि उस पर ही आगे की पूरी समझ निर्भर करेगी। अर्जुन को भरोसा जरा भी गहरे में नहीं है, ऊपर-ऊपर है। लगाव है उसका। मानना चाहता है कि कृष्ण भगवान हों; मान नहीं पाता है। अपने को मनाना भी चाहता है। यह चेष्टा वास्तविक है, प्रामाणिक है। चाहता है कि मान ले कि कृष्ण भगवान हैं, इसलिए गवाही भी जुटाता है। लेकिन फिर भी गवाहियां ऊपर ही रह जाती हैं। और तब वह कहता है, स्वयं आप भी ऐसा ही मेरे प्रति कहते हैं।
और हे केशव, जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस समस्त को मैं सत्य मानता हूं।
यह मानना जानना नहीं है। यह मानना वस्तुतः मानना नहीं है, क्योंकि इतने बड़े सत्य को मानते ही तो जीवन रूपांतरित हो जाता है। यह तो मानते ही अर्जुन का दूसरा जन्म हो जाए। लेकिन अर्जुन वही का वही रहता है यह मानने के बाद भी।
जिस धर्म को मानने के बाद आपका जीवन न बदले, तो आप समझना कि आपने धर्म
को माना नहीं। जिस आग में हाथ डालें और हाथ भी न जले, तो समझना कि वह आग

झूठी होगी, सपने की होगी, कल्पना की होगी, कागजी होगी। होगी नहीं। चित्र पुता होगा आग का, उसमें आप हाथ डाल रहे हैं।
ऐसा अगर अर्जुन जान ले कि कृष्ण भगवान हैं, तो अर्जुन वैसे ही खो जाएगा, जैसे बूंद सागर में खो जाती है। इसी क्षण खो जाएगा।
लेकिन यह भी उसकी चेष्टा है, यह मानना भी उसका बौद्धिक प्रयास है। यह
भी प्रयत्न है, यह भी एक श्रम है, यह भी एक कोशिश है। और इसलिए कोशिश कभी भी गहरी नहीं जाती, ऊपर-ऊपर रह जाती है; और भीतर विपरीत दशा मौजूद रहती है। भीतर विपरीत दशा मौजूद रहती है। वह विपरीत दशा अर्जुन के भीतर भी मौजूद है। यद्यपि उसे थोड़ा आनंद आ रहा है यह बात कहने में कि इस समस्त को मैं सत्य मानता हूं।
हे भगवन्, आपके लीलामय स्वरूप को न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं।
इससे उसके अहंकार को थोड़ा आनंद भी आ रहा है, लेकिन मैं जानता हूं। न देवता जानते हैं, न दानव जानते हैं। आपके इस लीलामय स्वरूप को कोई भी नहीं जानता, लेकिन मैं, अर्जुन, जानता हूं। यह उसकी सारी मान्यता भी उसके गहन अहंकार को संपुष्ट करती है। मैं जानता हूं! इसीलिए वह माने ले रहा है। इसमें एक बात ध्यान देने योग्य है कि बहुत बार हम इसलिए मान लेते हैं
कि मानने से अहंकार पुष्ट होता है। इसलिए आप देखकर हैरान होंगे कि अगर आपको नास्तिकों के बीच में छोड़ दिया जाए, तो आप नास्तिक हो जाएंगे। आपको आस्तिकों के बीच में छोड़ दिया जाए, आप आस्तिक हो जाएंगे। क्योंकि जिनकी भीड़ होती है, उनके विपरीत जाने में अहंकार को तकलीफ होती है।
रूस उन्नीस सौ सत्रह के पहले ऐसा ही आस्तिक था, जैसा भारत आज है। और करीब-करीब सब तरह से हालत ठीक वैसी है भारत की, जैसी उन्नीस सौ सत्रह के पहले रूस की थी। परम आस्तिक था रूस। चर्चों में भीड़ होती थी। लोग धर्म-प्रवचन सुनते थे। बाइबिल पढ़ते थे। मस्जिदों में प्रार्थना करते थे। बड़े आस्तिक लोग थे!
फिर क्रांति हुई और कम्युनिस्टों ने आस्तिकता के विपरीत पहली दफा दुनिया में एक राष्ट्र निर्मित किया। दस साल के भीतर आस्तिक खो गए! हजारों साल पुराने आस्तिक दस साल में पिघलकर बह गए; उनका पता चलना बंद हो गया। समाज नास्तिक हो गया। जो कल आस्तिक होकर जीसस की पूजा करते थे, वे ही नास्तिक होकर लेनिन के चरणों में सिर रख दिए। जो कल चर्च और जेरूसलम की तरफ नमस्कार करते थे, या मक्का और मदीना की तरफ जिनके सिर झुकते थे, उनके ही सिर क्रेमलिन के लाल सितारे की तरफ झुकने लगे। सारा मुल्क नास्तिक हो गया।
बड़ी हैरानी की बात है! इतनी सस्ती बात है कि पूरा का पूरा मुल्क दस साल, दस-पंद्रह साल में आस्तिक से नास्तिक हो जाए! नास्तिक होना आसान हो गया, आस्तिक होना कठिन हो गया।
अभी आपकी आस्तिकता, हमारी आस्तिकता भी ऐसी ही है। क्योंकि आस्तिक होना आसान है, इसलिए हम आस्तिक हैं। और नास्तिक होना आसान हो जाए, तो हम नास्तिक हो जाएं। जो भी कनवीनिएंट है। हमारा धर्म एक तरह की कनवीनिएंस है, एक तरह की सुविधा है। जिस बात में सुविधा होती है, वह हम करते रहते हैं। मंदिर जाने में सुविधा होती है, तो हम करते रहते हैं।
एक मित्र मेरे पास आए थे कुछ दिन हुए। उन्होंने कहा कि मुझे भरोसा बिल्कुल नहीं है, न मंदिर में, न भगवान में। लेकिन लड़की की शादी करनी है, इसलिए मंदिर जाना पड़ता है। और किसी से कह भी नहीं सकता कि मेरा भगवान में कोई भरोसा नहीं है, क्योंकि छोटे बच्चे हैं। इन सबको पालना और बड़ा करना है।
एक सामाजिक कृत्य है, एक सामाजिक सुविधा है। और फिर अहंकार है। अहंकार को जिसमें भी तृप्ति मिलती हो, अहंकार मानने को राजी हो जाता है।
अर्जुन को सुख मालूम हो रहा है। क्योंकि न देवता जानते हैं, न दानव जानते हैं; कोई भी नहीं जानता कि कृष्ण क्या हैं, क्या है उनका रहस्य, लेकिन मैं मानता हूं।

ये दो बातें ध्यान में रखने की हैं इस सूत्र में। एक तो अर्जुन मानता नहीं, गहरे में अस्वीकार है। उस अस्वीकार को भरने की, गवाही से, चेष्टा है।
हम अपने मतलब की गवाही सदा खोज लेते हैं।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक तीर्थयात्रा पर निकला था। अकेला था। रास्ते में एक मौलवी और साथ हो लिया। फिर एक योगी भी साथ हो लिया। फिर तीनों एक गांव में रुके। लेकिन मौलवी ने कहा कि मेरा तो अभी नमाज का समय है, और योगी ने कहा कि अभी तो मैं अपने योगासन, अपनी साधना करूंगा। तो नसरुद्दीन से कहा कि तू जाकर गांव से कुछ थोड़ी-सी भिक्षा जुटा ला!
तो नसरुद्दीन कुछ पैसे जुटाकर हलुवा खरीदकर ले आया। आते ही उसने कहा
कि बेहतर हो कि हम जल्दी इस हलुवे का विभाजन कर लें। और स्वभावतः पहला हिस्सा मुझे मिलना चाहिए, क्योंकि इस हलुवे को उपस्थित करने में मैंने साधन का काम किया है। लेकिन मौलवी ने कहा कि अभी तो मुझे भूख नहीं है, और योगी ने कहा कि मैं तो सूरज डूबने के पहले ही सिर्फ तीन दिन में एक बार भोजन करता हूं, इसलिए सांझ को ही भोजन लूंगा। तो अभी रखो, अभी हम यात्रा करें, सांझ को देखेंगे।
सांझ भी आ गई, लेकिन तब सवाल बड़ा गहन यह हो गया कि उस हलुवे को बांटा किस तरह जाए! मौलवी ने कहा कि मैं एक धर्म का दीक्षित पुरोहित हूं, तो पहला हक और बड़ा हक मेरा है। और योगी ने कहा, आप हों कितने ही दीक्षित पुरोहित, लेकिन मुझसे बड़ी योग की आपकी कोई संपदा नहीं है। मैं समाधि को उपलब्ध हो चुका हूं, इसलिए हक पहला मेरा है। और नसरुद्दीन ने कहा कि आप भला कितने ही पहुंच गए हों, लेकिन हलुवा लाने में साधन रूप मैं ही सिद्ध हुआ हूं।
बात इतनी झगड़ने की हो गई कि सांझ भी हो गई, सूरज भी डूब गया। और तब तो योगी ने कहा कि अब सुबह ही कुछ हो सकता है, क्योंकि सूरज डूब चुका है; मैं सुबह सूरज उगने पर ही भोजन ले सकता हूं। तो यह तय पाया गया कि हम तीनों सो जाएं और जो रात सबसे अच्छा सपना देखे, श्रेष्ठतम, सुबह हम अपने सपने कहें, जो श्रेष्ठतम सपना देखे, वही हलुवे का मालिक हो, और वह जिसको जितना दे दे। वे रात सो गए।
सुबह ब्रह्ममुहूर्त में ही तीनों उठ आए। मौलवी ने कहा कि मैंने देखा
कि मेरे धर्म का संस्थापक मेरे सिर पर हाथ रखे हुए सपने में खड़ा है। और मुझे आशीर्वाद दे रहा है और मुझसे कह रहा है कि तुझसे श्रेष्ठ शिष्य मेरा कोई दूसरा नहीं है।
योगी ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। क्योंकि मैंने देखा कि मैं परम मोक्ष में प्रवेश कर गया सपने में और मेरे ऊपर फूलों की अनंत वर्षा हो रही है। और ऐसी शांति है कि जिसको कभी कोई बुद्ध उपलब्ध हो पाता है। मैं उसका दर्शन करके सपने से लौटा हूं।
दोनों ने मुल्ला नसरुद्दीन से कहा कि तुम्हारा क्या है? उसने कहा कि मेरा तो सपना बड़ा साधारण है। मेरा गुरु, सूफियों का गुरु खिज्र, मुझे दिखाई पड़ा। उसने कहा कि मुल्ला नसरुद्दीन, उठ। तू मेरा शिष्य है, तो मेरी आज्ञा मान, इसी वक्त उठ और हलुवा खा। दिस वेरी मोमेंट! गुरु की आज्ञा मानने के लिए मजबूरी हो गई। मैं आधी रात उठकर हलुवा खा चुका हूं।
आदमी अपने मतलब से सब कुछ खोजता है। उसके सपने भी उसके मतलब से निर्मित होते हैं, उसके सत्य भी। उसकी कल्पनाएं भी उसके मतलब से जन्मती हैं, उसके सिद्धांत भी। आदमी बहुत जटिल, बहुत जटिल घटना है।
अर्जुन की जटिलता को ख्याल में लें। जटिलता यह है कि वह मानना भी नहीं चाहता कि कृष्ण भगवान हैं और मानना भी चाहता है, ईदर-ऑर। दोनों उसके सामने हैं। और ऐसे दोनों ही हम सबके सामने सदा होते हैं।
हम सब का ही प्रतीक है अर्जुन। हम सबके भीतर ही ऐसा द्वंद्व है। हम मानना भी चाहते हैं और नहीं भी मानना चाहते हैं। हम करना भी चाहते हैं और नहीं भी करना चाहते हैं। हम जीना भी चाहते हैं और नहीं भी जीना चाहते हैं। हम शांत भी होना चाहते हैं और नहीं भी होना चाहते हैं। दोनों विरोध हमारे भीतर एक साथ खड़े हुए हैं। और हम जीवनभर यही करते रहते हैं। कि जैसे कोई एक सिक्का हो आपके पास, तो कभी उसे उलटा कर लें और कभी उसे सीधा कर लें। दूसरा

पहलू नीचे दब जाता है, लेकिन मौजूद रहता है। फिर ऊब जाते हैं एक पहलू से, तो दूसरा ऊपर कर लेते हैं। हम जिंदगीभर इस द्वंद्व के बीच ही डोलते रहते हैं। हम सबका मन एक ही साथ विपरीत को करना चाहता है। हम श्रद्धा भी करना चाहते हैं और अश्रद्धा भी हमारी गहरी है। यह जटिलता है। और इस जटिलता को बिना समझे जो चलेगा, वह इस जटिलता के बाहर कभी भी नहीं हो पाएगा। इस जटिलता को जो समझ लेगा, वह इसके बाहर हो सकता है।
अर्जुन को भी पता नहीं है। यह बहुत अनकांशस, यह बहुत अचेतन है। अगर अर्जुन से भी हम यह कहें कि नहीं, ये तू जो गवाहियां इकट्ठी कर रहा है, ये इसलिए इकट्ठी कर रहा है कि तुझे संदेह है। तो वह भी चौंकेगा कि आप क्या कह रहे हैं! मैं भगवान मानता हूं। और अगर कृष्ण जिद्द करें कि नहीं, तू मानता नहीं है। तो वह और भी जिद्द करेगा कि मैं मानता हूं।
लेकिन उसकी जिद्द भी यही बताएगी। हम जिद्द ही उन बातों की करते हैं, जिनके विपरीत हमारे भीतर कोई स्वर होता है। जितने जिद्दी लोग होते हैं, वे द्वंद्वग्रस्त लोग होते हैं। जिसके भीतर का द्वंद्व विसर्जित हो जाता है, उसकी जिद्द भी चली जाती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में गांव में मजिस्ट्रेट बना दिया गया था, आनरेरी मजिस्ट्रेट। पहला ही मुकदमा आया, तो एक पक्ष ने अपनी कहानी प्रस्तुत की। मुल्ला इतना अभिभूत और प्रभावित हो गया, तो उसने कहा कि बिल्कुल ठीक, बिल्कुल सत्य! कोर्ट के क्लर्क ने झुककर मुल्ला से कहा, आप यह क्या कर रहे हैं! अभी दूसरा, दूसरा पहलू तो आपने सुना ही नहीं! अभी एक ही आदमी बोला है; अभी इसका दुश्मन मौजूद है। और मजिस्ट्रेट को इस तरह का वक्तव्य देना उचित नहीं है। मुल्ला ने कहा, दूसरे का भी सुन लेते हैं।
दूसरे ने उसके खिलाफ सारी बातें कहीं और मुल्ला इतना प्रभावित हो गया
कि उसने कहा कि बिल्कुल ठीक, बिल्कुल सत्य! क्लर्क ने झुककर कहा कि महानुभाव, आप कर क्या रहे हैं! थोड़ा सोचिए-विचारिए। और दोनों ही एक साथ सत्य कैसे हो सकते हैं? पहला भी सत्य, दूसरा भी सत्य! मुल्ला क्लर्क से इतना प्रभावित हो गया, उसने क्लर्क से कहा कि तुम जो कह रहे हो, वह बिल्कुल सत्य है। दोनों सत्य कैसे हो सकते हैं? बिल्कुल ठीक कह रहे हो।
हमें कठिनाई मालूम पड़ेगी कि यह आदमी नासमझ है। लेकिन हम सब ऐसे ही आदमी हैं। हां, इतने स्पष्ट हम नहीं हैं।
मुल्ला ने तीनों बातों में कह दिया कि तीनों सत्य हैं। अगर हम होते,
तो हम थोड़ी होशियारी करते। हम एक में कहते, सत्य। दूसरा भी हमें ठीक लगता, तो उसे फिर हम छिपाते, क्योंकि यह इनकंसिस्टेंट हो जाएगा। जब पहले को सत्य कह दिया, तो अब दूसरे को सत्य कैसे कहें! तो दूसरे को हम दबाते। और तीसरे को तो हम कहते ही कैसे! क्योंकि यह बात बिल्कुल पागलपन की हो जाएगी। लेकिन हमारा मन भी ऐसा ही चलता है। ऐसा ही चलता है।
कृष्ण को कोई अगर नर्क में डालने की बात कहे, वह भी हमें सत्य मालूम पड़ सकती है। नहीं तो कुछ लोगों ने डाला ही क्यों होता! उनको सत्य मालूम पड़ी है। और आप भी अगर जिद्द न करें और समझने की कोशिश करें और दूसरे पहलू को बिल्कुल भूल जाएं कि आप कृष्ण को भगवान मानते हैं--मानकर ही बैठे हैं, तब तो बहुत मुश्किल है--तो आपको भी दलील में कुछ रस मालूम पड़ेगा कि बात में कुछ सचाई है। यही आदमी तो जिम्मेवार है सारी हिंसा का, हत्या का, उपद्रव का। तो नर्क में डालना ठीक मालूम पड़ता है। और अगर इसको भी नर्क में नहीं डालते, तो जो छोटी-मोटी हत्या कर रहे हैं, इनको काहे के लिए डालना!
लेकिन अगर कृष्ण के भगवान होने की तरफ विचार करें, तो वह बात भी उतनी
ही बलशाली मालूम पड़ती है। वहां भी मन हां कहने की कोशिश करेगा कि बिल्कुल ठीक है। और फिर अगर कोई आपसे कहे कि दोनों ठीक? दोनों कैसे ठीक हो सकते हैं! तो निश्चित आपको कहना पड़ेगा कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप; दोनों ठीक कैसे हो सकते हैं!
यह हमारा मन ऐसा काम करता है। लेकिन हम संगत होने की दृष्टि से एक को ऊपर रखते हैं, दूसरे को नीचे दबा देते हैं। जिसको हम नीचे दबा देते हैं, आज नहीं कल वह बदला लेगा। वह ऊपर उभरेगा, वह निकलकर बाहर आएगा। और जिसे हमने

आज ऊपर रखा है, उससे हम ऊब जाएंगे। सब चीजों से आदमी ऊब जाता है। और जिन चीजों के साथ रहता है सचेतन रूप से, उनसे जल्दी ऊब जाता है। तो जिसको आपने ऊपर रखा है, थोड़ी देर में दिल बदल जाएगा और मन ऊब जाएगा; फिर नीचे की बात ज्यादा सार्थक मालूम होने लगेगी। इस तरह मन घड़ी के पेंडुलम की तरह डोलता रहता है।
अर्जुन इस सूत्र में दोनों बातें कह रहा है। अगर आपको दोनों बातें दिखाई पड़ जाएं, तो आगे गीता को समझना बहुत सुगम हो जाए। कृष्ण को दोनों बातें दिखाई पड़ रही हैं। इसलिए गीता समाप्त नहीं की गई। गीता को जारी रखना पड़ा है। कृष्ण को पता है कि अर्जुन जो कह रहा है, यह अभी भी उसका अपना सत्य नहीं है।
और उधार सत्य, दूसरे के सत्य, असत्य से भी बदतर होते हैं। असत्य भी अपना हो, तो उसमें एक प्रामाणिकता होती है, एक सिंसिअरिटी होती है। और सत्य भी दूसरे का हो, तो इनसिंसिअर होता है, अप्रामाणिक होता है। दूसरे के सत्य का क्या अर्थ? मेरा असत्य भी मेरा अनुभव बनेगा। दूसरे का सत्य भी मेरा अनुभव नहीं बन सकता है।
महर्षि व्यास क्या कहते हैं, इससे अर्जुन का क्या लेना-देना? और महर्षि व्यास को मानने का अर्जुन को कारण क्या है? कृष्ण को मानने में जिसे कठिनाई हो रही हो, वह महर्षि व्यास को इतनी सुविधा से कैसे माने ले रहा है?
नहीं; वह ऊपर से लीपापोती कर रहा है। वह अपने मन को समझा रहा है। वह कोशिश कर रहा है कि मान जाऊं कि कृष्ण भगवान हैं। लेकिन भीतर प्रबल प्रवाह है अहंकार का। वह कहता है कि यह कैसे माना जा सकता है?
और ध्यान रहे, क्षत्रिय का अगर कोई सबसे ज्यादा विकसित हिस्सा है, तो
वह अहंकार है। वही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। क्षत्रिय का अगर कोई सबसे विकसित हिस्सा है, तो वह अहंकार है। वही उसकी कमजोरी भी है। वही उसकी हिंसा है, वही उसकी कलह है। उसी को वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। और अर्जुन तो कहना चाहिए, क्षत्रियों में श्रेष्ठतम क्षत्रिय है; शुद्धतम अहंकार है। उसके पास जो अस्मिता है, जो ईगो है, वह शुद्धतम क्षत्रिय की है। उसको बहुत मुश्किल है यह बात मानने की कि कृष्ण भगवान हैं। उसे सिर उनके चरणों में रखना बहुत कठिन है। अति कठिन है।
लेकिन कृष्ण की प्रतिभा, कृष्ण की आभा, कृष्ण का प्रकाश भी उसे छूता है। कृष्ण का प्रेम, उनकी अनुकंपा भी उसे स्पर्शित करती है। उसकी हृदय की पंखुड़ियां उनकी निकटता में खिलती भी हैं। उसके भीतर कुछ प्रतिध्वनित भी होता है। उनको पास पाकर वह जानता है कि सिर्फ आदमी के निकट नहीं है। यह कहीं गहरे में एहसास भी होता है। एक तल पर इनकार भी चलता है, एक तल पर इसका स्वीकार भी होता है। और इन दोनों द्वंद्व के बीच में फंसा हुआ अर्जुन है। यह द्वंद्व इस वक्तव्य में पूरी तरह साफ है। लेकिन एक मजा वह ले लेना चाहता है, और वह मजा यह है कि कुछ भी हो, आप जो कहते हैं, वह मैं सत्य मानता हूं। और देवता और दानव भी जिसे नहीं जान पाते, वह भी कम से कम मैं तो मानता हूं।
इस मानता शब्द पर भी थोड़ा विचार कर लेना उपयोगी है। आप मानते किन चीजों को हैं, कभी आपने ख्याल किया है?
आप उन्हीं चीजों को मानते हैं, जिन पर आपको शक होता है। आप कभी कहते हैं, घोषणा करते हैं कि मैं सूरज में विश्वास करता हूं? आप कभी घोषणा करते हैं कि पृथ्वी पर मेरा पक्का विश्वास है? कभी आप कहते हैं कि शरीर में मेरी बड़ी श्रद्धा है?
न, आप कहते हैं, आत्मा में मेरी बड़ी श्रद्धा है। परमात्मा में मेरा बड़ा विश्वास है। मोक्ष में, मैं मानता हूं कि मोक्ष है।
कभी आपने ख्याल किया है कि आप उन्हीं चीजों पर मान्यता का बल डालते हैं, जिनको आप नहीं जानते हैं। जिनको मानना बिल्कुल असंभव मालूम पड़ता है, उन्हीं को आप कहते हैं, मैं मानता हूं। और जिनको मानना बिल्कुल आसान है, प्रत्यक्ष है, उनको आप कभी मानने की बात नहीं करते।

शरीर को आप जानते हैं, आत्मा को आप मानते हैं। यह फर्क समझ लें। पदार्थ को आप जानते हैं, परमात्मा को आप मानते हैं। जिस दिन परमात्मा भी जानना बनता है और जिस दिन आत्मा भी जानना बन जाती है, उसी दिन, उसी दिन आपके भीतर एकस्वर का जन्म होता है। अन्यथा आपके भीतर द्वंद्व और कलह मौजूद ही रहेंगे।
फिर जो आदमी जितना मान्यता में कमजोर होगा, उस मान्यता को वह जिद्द से पूरा करता है। इसलिए कमजोर आस्था वाले लोग डाग्मैटिक हो जाते हैं। जितनी कमजोर आस्था वाले लोग होंगे, उतने ज्यादा मतांध होंगे। क्योंकि उन्हें खुद से ही डर लगता है कि अगर कहीं दूसरा मेरी मान्यता को खंडित कर दे या गलत कर दे, तो उन्हें खुद ही पता है कि हम तो भीतर तैयार ही हैं कि अगर कोई गलत कर दे, तो हम भी गलत मान लेंगे। इसलिए किसी की बात मत सुनो, विपरीत विचार को मत सुनो, विपरीत शास्त्र को मत पढ़ो।
हिंदुस्तान में... हिंदुस्तान को हम कहते हैं, बहुत उदार देश है। लेकिन एक अनुदार धारा भी इसके नीचे गहरे में प्रवाहित रही है। और हमारा मन होता है अच्छी-अच्छी बातें मान लेने का, लेकिन खतरनाक है। क्योंकि बुरी बातें भी भीतर प्रवाहित होती हैं, और उनको अगर हम भूले बैठे रहें, तो वे नासूर बन जाती हैं, घाव बन जाती हैं; भीतर फोड़े पैदा करती हैं।
हिंदू शास्त्रों में लिखा है, और ऐसा ही जैन शास्त्रों में भी लिखा है, और ऐसा ही बौद्ध शास्त्रों में भी लिखा है। करीब-करीब वक्तव्य एक से हैं। वह मैं आपको कहूं।
शास्त्रों में लिखा है हिंदू, जैनों और बौद्धों के; वक्तव्य एक से हैं। लिखा है कि अगर कोई जैन मंदिर हो और हिंदू, मंदिर के सामने से गुजर रहा हो और पागल हाथी हमला कर दे, तो पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना बेहतर है, लेकिन जैन मंदिर में शरण लेना ठीक नहीं है! ठीक ऐसा ही जैन शास्त्रों में भी लिखा है कि पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना बेहतर, लेकिन हिंदू देवालय में शरण लेना बेहतर नहीं है। कैसा यह डर! कैसा यह भय! ये तो खैर हिंदू और जैन तो दो धर्म हैं, लेकिन राम-भक्त हैं जो कान में अंगुली डाल लेंगे, अगर कोई कृष्ण का नाम ले! कृष्ण-भक्त हैं, जो अंगुली डाल लेंगे, अगर कोई राम का नाम ले!
सुना है मैंने एक बौद्ध भिक्षुणी के संबंध में, कि उसके पास एक स्वर्ण
की बुद्ध की प्रतिमा थी। वह रोज उसकी पूजा करती, धूप जलाती, धुआं देती, फूल चढ़ाती। एक बार उसे चीन के बड़े बौद्ध मंदिर में ठहरने का मौका मिला। दस हजार बुद्धों का मंदिर, उस मंदिर का नाम है; उसमें दस हजार बुद्ध की छोटी- बड़ी प्रतिमाएं हैं। वहां वह ठहरी। कोने-कोने में बुद्ध की प्रतिमा है, दीवाल-दीवाल में बुद्ध की प्रतिमा है। दस हजार प्रतिमाएं हैं। प्रतिमाओं के सिवाय मंदिर में कुछ भी नहीं है।
जब उसने सुबह अपने बुद्ध की--अपने बुद्ध की--प्रतिमा रखी और धूप जलाई,
तो उसे लगा कि धूप तो उड़ जाएगी और दूसरे बुद्धों की नाक में चली जाएगी। और अपने बुद्ध की धूप और दूसरे बुद्धों की नाक में चली जाए! तो उसने एक बांस की पोंगरी बनाई। धूप के ऊपर पोंगरी लगाई और अपने बुद्ध की नाक के पास पोंगरी लगाई। बुद्ध का मुंह काला हो गया। हो ही जाएगा। हो ही जाएगा! सुगंध तो न मिली, मुंह काला हो गया। और मतांध भक्तों ने सबके मुंह काले कर दिए हैं--चाहे राम, चाहे बुद्ध, चाहे कृष्ण, चाहे क्राइस्ट, चाहे मोहम्मद--सबके मुंह काले कर दिए हैं। इसमें भी भय पकड़ता है कि दूसरा बुद्ध! बुद्ध की दूसरी प्रतिमा, वह भी दूसरा बुद्ध!
मैं एक गांव में रहता था। वहां गणेशोत्सव पर बड़ी गणेश की प्रतिमाएं निकलती हैं, प्रवाहित करने के लिए, विसर्जन करने के लिए। लेकिन नियमित बंधा हुआ क्रम है। ब्राह्मणों के मुहल्ले की प्रतिमा आगे होती है, चमारों के मुहल्ले की प्रतिमा पीछे होती है।
एक वर्ष ऐसी भूल हो गई कि ब्राह्मणों की प्रतिमा के आने में देर लग गई
और चमारों के टोले की प्रतिमा पहले आ गई, तो जुलूस के आगे हो गई। तो जब ब्राह्मणों की प्रतिमा आई, तो उन्होंने कहा, हटाओ चमारों के गणेश को पीछे!

चमारों के गणेश! ब्राह्मणों के गणेश, बात ही अलग है। चमार और ब्राह्मण
तो ठीक, गणेश भी चमारों के और ब्राह्मणों के! बेचारे चमारों के गणेश को पीछे जाना पड़ा। अपना-अपना भाग्य! चमारों के गणेश हो, पीछे जाना ही पड़ेगा! यह मतांधता, यह संकीर्णता, यह अनुदारता पैदा होती है। भीतर एक भय है। भीतर एक भय है कि कहीं दूसरा सही न हो। कहीं दूसरे की बात सुनाई पड़ जाए, वह सही न हो। अपना तो कोई सत्य नहीं है, भीतर तो कोई सत्य नहीं है। दूसरे पर ही निर्भर है। कहीं औरों की बात सुनकर डांवाडोल न हो जाऊं। इसलिए सुनो ही मत, पढ़ो ही मत, समझो ही मत, दूसरे को जानो ही मत। और दूसरे से लड़ते भी रहो, और दूसरे से बचते भी रहो, और अपने को ही अंधे की तरह ठीक मानो और सबको गलत मानो।
यह सारा का सारा खेल एक बहुत मनोवैज्ञानिक बीमारी है। और वह बीमारी
यह है कि मुझे ठीक पता नहीं है कि सत्य क्या है। तो जब तक मैं दूसरों को असत्य सिद्ध करता रहूं, तभी तक मुझे भरोसा रहता है कि मैं सत्य हूं। और अगर मैं दूसरों की भी गौर से सुनने लगूं, तो मेरे भीतर सब डांवाडोल हो जाता है कि मैं सत्य हूं या नहीं हूं! सत्य क्या है?
मुल्ला नसरुद्दीन जिस राजधानी में था, वहां बहुत बेईमानी बढ़ गई। और राजधानी में बेईमानी बढ़ेगी ही, क्योंकि बेईमान सब राजधानियों में इकट्ठे हो जाते हैं। सब चोर, सब डाकू इकट्ठे हो जाते हैं। अभी जयप्रकाश जी वहां चंबल में छोटे डाकुओं का समर्पण बड़े डाकुओं के प्रति करवा रहे हैं!
तो राजधानी थी, डाकू इकट्ठे हो गए थे। सम्राट बहुत चिंतित था कि कैसे इनको हटाया जाए। गांव के बुद्धिमानों से पूछा, कोई रास्ता न मिला। फिर किसी ने कहा कि वह मुल्ला नसरुद्दीन भी अपनी तरह का एक बुद्धिमान है। शायद, हमारी बुद्धि काम नहीं करती, उसकी काम कर जाए। उसे बुलाया। सम्राट ने उससे पूछा कि क्या करें, लोग असत्यवादी होते जा रहे हैं!
तो नसरुद्दीन ने कहा, इसमें क्या कठिनाई है! जो असत्य बोलते हैं, कम से
कम एक असत्य बोलने वाले को पकड़कर रोज फांसी लगा दो चौरस्ते पर, लटका दो। तहलका छा जाएगा, लोग घबड़ा जाएंगे, फिर कोई असत्य-वसत्य नहीं बोलेगा। सम्राट ने कहा, बिल्कुल दुरुस्त। तो कल राजधानी के द्वार पर सिपाही तैनात रहेंगे और जो आदमी असत्य बोलता हुआ पकड़ा जाएगा, वह द्वार पर ही सूली पर लटका दिया जाएगा। नसरुद्दीन ने कहा, तो फिर मैं कल सुबह द्वार पर ही मिलूंगा। सम्राट समझा कि शायद वह अपने सिद्धांत को प्रतिपादित होता हुआ देखने के लिए द्वार पर आएगा।
जब सुबह कल द्वार खुला नगर का, तो नसरुद्दीन अपने गधे पर प्रवेश किया। सम्राट भी मौजूद था। सम्राट के हत्यारे भी मौजूद थे। फांसी का तख्ता लटका दिया गया था। सम्राट ने नसरुद्दीन से पूछा, नसरुद्दीन, सुबह-सुबह गधे पर कहां जा रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, सूली के तख्ते पर चढ़ने। सम्राट ने कहा कि झूठ बोल रहे हो! तो नसरुद्दीन ने कहा कि तय हुआ था कि जो झूठ बोलेगा, उसको सूली पर चढ़ा देंगे। तो चढ़ा दो सूली पर, अगर मैं झूठ बोल रहा हूं। सम्राट ने कहा, यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। अगर तुम्हें सूली पर चढ़ाऊं, तो तुम सच बोल रहे हो। और अगर तुम्हें छोड़ दूं, तो मैंने झूठ बोलने वाले को छोड़ दिया।
तो नसरुद्दीन ने कहा कि यही समझाने के लिए कि कौन तय करेगा कि क्या सत्य और क्या असत्य है! फांसी लगाना तो बहुत आसान है झूठ बोलने वाले को, लेकिन तय कौन करेगा, कौन सत्य है, कौन असत्य है! नसरुद्दीन ने सम्राट से कहा कि पहले अपना ही पता लगाने की कोशिश करो कि सत्य हो कि असत्य, तब कहीं दूसरे का कुछ हिसाब करना।
कठिन है। लेकिन कठिन इसीलिए है कि भीतर कोई क्रिस्टलाइजेशन, कोई केंद्रीकरण नहीं है। भीतर हम खाली, कोरे हैं; कचरे से भरे हैं। दूसरों ने जो डाल दिया है, उससे भरे हैं। अपनी कोई अनुभूति न होने से हमारे पैर के नीचे कोई जमीन नहीं है। इसलिए हम नीचे देखने में भी डरते हैं। हम दूसरों को बताते रहते हैं, तुम गलत हो, तुम गलत हो, वह असत्य है। लेकिन हम कभी यह फिक्र नहीं करते कि मेरे पास भी कोई मेरा सत्य है!

और जब तक कोई आदमी अपने सत्य की तलाश में न लगे, तब तक महर्षियों ने क्या कहा है, व्यास क्या कहते हैं, खुद कृष्ण भी क्या कहते हैं, इसका मूल्य बड़ा नहीं है। अर्जुन क्या अनुभव करता है, इसका मूल्य है। कृष्ण क्या कहते हैं, इसका कोई मूल्य अर्जुन के लिए नहीं है। अर्जुन क्या अनुभव करता है, इसका मूल्य है। और उसकी अनुभूति इस सूत्र में जैसी प्रकट होती है, वह न तो गहरी है, न एकस्वर वाली है, न उसमें सामंजस्य है। उसमें विपरीत एक साथ मौजूद हैं। दिखाई नहीं पड़ते हैं, वही खतरा है। वही खतरा है।
अगर दिखाई पड़े कोई द्वंद्व, तो हम उसके बाहर हो सकते हैं। दिखाई न पड़े,
तो बड़ा खतरा है। अर्जुन को भी पता नहीं है कि वह क्या कह रहा है। हम को भी पता नहीं है।
जब आप मंदिर में जाकर कहते हैं कि हे प्रभु, मैं आप में श्रद्धा रखता हूं और समर्पण करता हूं। आपको भी पता नहीं है, आप क्या कह रहे हैं! क्योंकि जो आप कह रहे हैं, वह बड़ा क्रांतिकारी वक्तव्य है। अगर सच है, तो आप उस दुनिया में प्रवेश कर जाएंगे, जो अमृत की है, आनंद की है। और अगर झूठ है, तो आपके साधारण झूठ उतना नुकसान नहीं करेंगे, जो आपने दुकान पर बोले हैं, लेकिन यह मंदिर में बोला गया झूठ भयंकर है।
क्या आपने कभी इसकी फिक्र की कि हम जो भी श्रद्धा के, भक्ति के, समर्पण
के वक्तव्य देते हैं, उनमें हमारे प्राणों की कोई भी गहरी छाप होती है! बिल्कुल नहीं होती है। सच तो यह है कि हम अपनी अश्रद्धा से इतने घबड़ा जाते हैं कि ऊपर से श्रद्धा का रंग पोत लेते हैं। नास्तिक भीतर छिपा है। आस्तिक हमारे वस्त्रों से ज्यादा गहरा नहीं है।
इस जमीन पर आस्तिक खोजना कठिन है, हालांकि आस्तिक सब दिखाई पड़ते हैं।
और इस जमीन पर ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो नास्तिक न हो। यद्यपि नास्तिक एकदम से दिखाई नहीं पड़ता। यह मजा है। इसलिए दुनिया नास्तिक है। और एक-एक आदमी से मिलिए, तो वह आस्तिक है! सबका जोड़ नास्तिकता है। और सब अलग-अलग आस्तिक होने का दावा किए चले जाते हैं। उनकी जिंदगी में हम उतरें, तो नास्तिकता के सिवाय कहीं कुछ नहीं मिलता।
साईं, शिरडी के साईं के जीवन में एक उल्लेख है। उनके एक भक्त ने कहा कि
अब तो मैं सभी में परमात्मा को देखने लगा हूं। तो साईं बाबा ने कहा कि अगर तुम सबमें परमात्मा को देखने लगे होते, तो इस भरी दोपहरी में मुझे नमस्कार करने किसलिए आते हो? कहीं भी नमस्कार कर लेना था। अगर मैं ही तुम्हें सब जगह दिखाई पड़ने लगा हूं, तो इस भरी दोपहरी में इतनी दूर आने की क्या जरूरत थी? मैं वहीं तुम्हें मिल जाता; मैं वहीं था।
वह जो भक्त था, रोज भोजन लेकर आता था बाबा के लिए। और जब तक वे भोजन न
कर लेते, तब तक वह खुद भी भोजन नहीं करता था।
तो साईं बाबा ने कहा, कल से अब तुम भोजन लेकर मत आना, मैं वहीं आ जाऊंगा। तुम मुझे पहचान लेना, क्योंकि तुम्हें दिखाई पड़ने लगा है! वह भक्त बड़ी मुश्किल में पड़ा। भोजन की थाली लगाकर वह अपने द्वार के वृक्ष के नीचे बैठ गया। अब वह प्रतीक्षा कर रहा है। और एक कुत्ता उसे परेशान करने लगा। भोजन की सुगंध, वह कुत्ता बार-बार आने लगा। और वह डंडे से कुत्ते को मार-मारकर भगाने लगा। वक्त बीतने लगा और साईं बाबा का कुछ पता नहीं, तो फिर वह थाली लेकर पहुंचा उस मस्जिद में, जहां साईं बाबा रहते थे।
अंदर गया, तो देखा कि साईं बाबा की आंख से आंसू बह रहे हैं। तो पूछा कि
आप आए नहीं? और मैं राह देखता रहा। साईं बाबा ने कहा, मैं आया था। मेरी पीठ देख! पीठ पर उसकी लकड़ी के निशान थे, जो उसने कुत्ते को लकड़ियां मारी थीं। मैं आया था। तू तो कहता था, सबमें तू देखने लगा, इसलिए मैंने सोचा, किसी भी शक्ल में जाऊंगा, तू पहचान लेगा। तो मैं कुत्ते की शक्ल में आया था। उस भक्त ने कहा, जरा भूल हो गई। ऐसे तो मैं सबमें आपको देखने लगा हूं, लेकिन जरा कुत्ते में देखने का अभी अभ्यास नहीं है। अब आइएगा, बराबर पहचान लूंगा।
फिर दूसरे दिन हुआ वही। लेकिन इस बार कुत्ता नहीं आया, एक कोढ़ी आ गया।
और उसने दूर से कहा, दूर रहना! यहां बाबा का भोजन रखा है; अपवित्र मत कर देना! दूर रह, छाया मत डाल देना! लेकिन वह कोढ़ी सुनता ही नहीं है, पास आए

चला जाता है। तो वह अपनी थाली लेकर भागा और कोढ़ी उसके पीछे भाग रहा है। और वह थाली लेकर भाग रहा है साईं बाबा की तरफ।
जब वह भीतर पहुंचा, तो देखा, वहां साईं बाबा नहीं हैं। पीछे लौटकर देखा, तो कोढ़ी की जगह साईं बाबा खड़े हैं। और साईं बाबा ने कहा, लेकिन तू पहचानता ही नहीं है! उसने कहा, नया-नया रोज-रोज अभ्यास करवाते हैं! आज पक्का कर लिया था कि कुत्ते में देखेंगे, और आप कोढ़ी होकर आ गए! कल आइए। अभ्यास धर्म नहीं है। चेष्टा करके कोई बात दिखाई पड़ने लगे, उसका कोई मूल्य नहीं। दिखाई पड़े।
यह अर्जुन चेष्टा कर रहा है। व्यास ने कहा है, देवल ने कहा है; इसने कहा है, उसने कहा है। और फिर आप भी कहते हैं, तो मैं मानता हूं, आप जो कहते हैं, वह सत्य ही कहते हैं। यह चेष्टा है, यह अभ्यास है! यह प्रयत्न है मान लेने का कि कृष्ण भगवान हैं। लेकिन भीतर कोई स्वर बजे चला जा रहा है कि नहीं। उसी को दबाने के लिए सब उपाय हैं।
आदमी की यह जो दोहरी व्यवस्था है, डबल बाइंड, यह बड़ी जटिल है, यह गांठ बड़ी गहरी है। इसलिए ऊपर से आप कहते हैं कि मैं बहुत प्रेम करता हूं, और भीतर झांककर देखेंगे, तो प्रेम का कोई पता नहीं। ऊपर से कहते हैं, मेरी श्रद्धा अपार है। और भीतर देखेंगे, तो उतनी ही अपार अश्रद्धा मौजूद है। ऊपर से कुछ, भीतर से कुछ! हर आदमी दो में बंटा है।
और जब तक आदमी दो में बंटा है, तब तक किसी भी स्थिति में भगवत्ता को पहचानना संभव नहीं है। जब आदमी के भीतर का जोड़ यह दो का समाप्त हो जाता है और एक ही पैदा होता है। जब आदमी के भीतर एक निर्मित होता है, तब भगवत्ता को कहीं भी पहचान लेना--पहचान लेना कहना ठीक नहीं, तब भगवत्ता को कहीं भी न पहचानना असंभव है। वह सब जगह मौजूद है। सब जगह मौजूद है। सब जगह मौजूद है। फिर ऐसा नहीं है कि उसे देखना पड़े, और फिर ऐसा भी नहीं है कि गवाहियां खोजनी पड़ें।
यहां एक मजे की बात है और वह यह कि अगर विज्ञान का अतीत खो जाए, तो विज्ञान का सारा भवन गिर जाए। अगर हम न्यूटन को अलग कर लें, गैलीलियो को अलग कर लें, तो न्यूटन और गैलीलियो के हटते ही आइंस्टीन जमीन पर गिर जाएगा। आइंस्टीन खड़ा नहीं हो सकता अपने पैरों पर।
विज्ञान एक परंपरा है, एक ट्रेडीशन है। और मजे की बात है कि धर्म को हम परंपरा कहते हैं, विज्ञान को परंपरा नहीं कहते। विज्ञान परंपरा है, एक ट्रेडीशन है, एक कलेक्टिव एफर्ट। बहुत लोगों का उसमें हाथ है। अगर उसमें से एक ईंट खींच लें, तो ऊपर का शिखर नीचे गिर जाएगा।
लेकिन धर्म परंपरा नहीं है, धर्म वैयक्तिक अनुभव है। अगर अतीत के सारे महापुरुष भी धर्म के विलीन हो जाएं और एक भी न हुए हों, तो भी आप धार्मिक हो सकते हैं इसी वक्त। क्योंकि धार्मिक होना निजी अनुभव है। किसने कहा है और नहीं कहा है, अगर वे सब खो जाएं, अगर दुनिया में सारे धर्म-ग्रंथ नष्ट हो जाएं, तो भी धर्म नष्ट नहीं होगा।
यह मजे की बात है। अगर विज्ञान की एक किताब भी खो जाए, तो बाकी सब किताबें अस्तव्यस्त हो जाएंगी। और सब किताबें खो जाएं, तो विज्ञान बिल्कुल नष्ट हो जाएगा। क्योंकि विज्ञान निर्भर करता है दूसरों के वक्तव्यों पर। उसकी एकशृंखला है; कड़ी से कड़ी जुड़ी है। अगर पीछे की कड़ी खोती हैं, तो यह कड़ी निर्मित नहीं हो सकती।
आप सोचते हैं, अगर साइकिल न बनी हो दुनिया में, तो हवाई जहाज नहीं बन सकता। अगर बैलगाड़ी न बनी हो, तो चांद पर पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। हालांकि बैलगाड़ी से कोई चांद पर नहीं पहुंचता। लेकिन बैलगाड़ी अगर न बनी होती, तो चांद पर पहुंचने का कोई भी उपाय नहीं है। जिसने बैलगाड़ी बनाई थी, वह भी चांद पर पहुंचाने में उतना ही अनिवार्य अंग है, जितना चांद पर उतरने वाला आदमी।
लेकिन धर्म की बात बिल्कुल अलग है। अगर महावीर न हों, बुद्ध न हों, कृष्ण न हों, राम न हों, कोई अंतर नहीं पड़ता। कोई अंतर नहीं पड़ता। आप चाहें तो उनके बिना धार्मिक हो सकते हैं। क्योंकि धार्मिक होना निजी सत्य का साक्षात्कार है। उसका परंपरागत सत्य से कुछ लेना-देना नहीं है।

यह अर्जुन अभी भी जो बात कर रहा है, परंपरा की बात कर रहा है। अभी तक इसे निजी कोई बोध नहीं है।
परमात्मा सामने खड़ा हो, और कैसी फीकी-फीकी बातें अर्जुन कर रहा है! कृष्ण के सामने क्या है अर्थ व्यास का? कृष्ण के सामने क्या है अर्थ देवल ऋषि का, देव ऋषियों का? कृष्ण के सामने क्या है अर्थ? ऐसे जैसे सूरज सामने खड़ा हो और कोई दीए को लेकर गवाहियां देता हो कि निश्चित, मैं दीए में देखकर कहता हूं कि तुम सूरज हो। ये गवाहियां ऐसी हैं।
लेकिन अर्जुन को ख्याल नहीं है। वह सोच रहा है, बड़े-बड़े नाम ला रहा है वह, बड़े वजनी। वजनी वे हैं अर्जुन के लिए, कृष्ण के सामने वे दीए की तरह व्यर्थ हैं। सूरज के सामने जैसे दीया खो जाए; कोई अर्थ नहीं है। उनका मूल्य ही इतना है कि अंधेरा जब हो गहन, तब वे रोशनी देते हैं। और जब सूरज ही सामने हो, तो उनका कोई भी उपयोग नहीं है।
लेकिन अर्जुन उनकी गवाहियां ला रहा है, कृष्ण को बहुत अदभुत लगा होगा!
आज तक कृष्ण और बुद्ध को कैसा लगा है, उन्होंने कोई वक्तव्य दिए नहीं हैं। लेकिन कृष्ण को बहुत हैरानी का लगा होगा कि मैं सामने खड़ा हूं और अर्जुन कह रहा है कि महर्षि व्यास भी कहते हैं कि आप भगवान हो। मैं भी मानता हूं; और भी मानते हैं। जैसे कि उसके मानने पर निर्भर हो कृष्ण का भगवान होना! हम सबको यह ख्याल है कि अगर हम न मानें और हमारी वोट न मिले, तो भगवान गए! हमारे ऊपर निर्भर हैं। हम मानते हैं, तो भगवान हैं। हम नहीं मानते, तो दो कौड़ी की बात; समाप्त हो गई।
आपके मानने पर कोई निर्भर बात नहीं है। किसी के मानने पर कोई निर्भर बात नहीं है। भगवत्ता एक सत्य है। और उस सत्य को जो इस भांति घूम-फिरकर चलेगा, वह सीधा न जाकर व्यर्थ ही चक्कर काट रहा है। केंद्र के आस-पास परिधि पर घूम रहा है, भटक रहा है, परिभ्रमण कर रहा है; केंद्र को चूक रहा है।
यह अर्जुन सामने नहीं देख रहा, कौन खड़ा है। यह घूम रहा है। यह चारों तरफ चक्कर लगाकर कह रहा है कि ठीक है; परिक्रमा कर रहा हूं। और लोग भी कहते हैं! मत इकट्ठे कर रहा है। लेकिन सामने जो खड़ा है, उससे चूक रहा है।
हम सबकी भी अवस्था यही है। परमात्मा सदा ही सामने है-- सदा ही। क्योंकि जो भी सामने है, वही है। लेकिन हम पूछते हैं, परमात्मा कहां है? हम पूछते हैं, किस शास्त्र को खोलें कि परमात्मा का पता चले? किस गुरु से पूछें कि उसकी खबर दे? और वह सामने मौजूद है। और हम बिना गुरु से पूछे उसको नहीं देख सकते! और हम बिना शास्त्र पढ़े उसकी तरफ आंख नहीं उठा सकते!
जो सामने नहीं देख सकता उसकी मौजूदगी, वह शास्त्र में कैसे देखेगा? जो उसे नहीं देख सकता, वह गुरु को कैसे पहचानेगा कि यह रहा गुरु!
लेकिन हम चक्करों में घूमते हैं। चक्कर बड़े-छोटे, अपने-अपने पसंद के
हम बनाते हैं और उनमें घूमते हैं। मंदिर में परिक्रमा होती है। बीच में मूर्ति होती है, चारों तरफ परिक्रमा होती है। हम परिक्रमा में ही घूमते रहते हैं जन्मों-जन्मों। उस बीच की मूर्ति से हमारा कोई संबंध ही नहीं हो पाता। बीच की मूर्ति सदा ही मौजूद है।
ये कृष्ण अर्जुन के सामने ही मौजूद हों, ऐसा नहीं है। वे हर अर्जुन के सामने मौजूद हैं। और अर्जुन जो कर रहा है, वही हर अर्जुन करता है; इनडायरेक्ट प्रूफ्स खोजता है।
ईसाई विचारक एनसेल्म ने ईश्वर के लिए चार प्रमाण जुटाए हैं, कि वह है,
ये चार प्रमाण हैं। एनसेल्म बेचारा आस्तिक नहीं है। यद्यपि ईसाइयत मानती है कि एनसेल्म के जो तर्क हैं, बड़े कीमती हैं और आस्तिकता पश्चिम में उन पर ही टिकी है। लेकिन मैं कहता हूं, वह आस्तिक नहीं है। क्योंकि उसने जो तर्क दिए हैं, वे बचकाने हैं। और उन तर्कों से अगर ईश्वर सिद्ध होता है, तो वे सब तर्क काटे जा सकते हैं।
वे सब तर्क काटे जा सकते हैं। ऐसा कोई भी तर्क नहीं है दुनिया में, जो काटा न जा सके। अतर्क्य तर्क होता ही नहीं। और जो भी तर्क एक तरफ गवाही देता है, वही तर्क दूसरी तरफ भी गवाही दे सकता है। तर्क पक्षधर नहीं होते; तर्क वेश्याओं की तरह होते हैं; प्रोफेशनल! तर्क तो किसी के भी साथ खड़ा हो

जाता है! तर्क की कोई अपनी श्रद्धा नहीं होती। जहां जरूरत पड़े, जो खींच ले, तर्क उस तरफ खिंच जाता है।
इसलिए अगर कोई सोचता हो तर्क से, जैसे एनसेल्म ने तर्क दिए हैं ईश्वर
के होने के, वे सब तर्क काट दिए गए हैं। कोई भी काट सकता है। एक स्कूल का बच्चा भी, जो थोड़ा तर्क जानता है, उनको काटकर रख देगा। तर्क से ईश्वर का कोई संबंध नहीं है, गवाही से ईश्वर का कोई संबंध नहीं है।
बुद्ध के पास एक आदमी आया है और वह बुद्ध से कहता है कि जीवन के बाद, मृत्यु के बाद भी जीवन बचता है? अगर आप गवाही दे दें, तो मैं मान लूं। बुद्ध ने कहा, अगर मैं गवाही दे दूं, तो फिर तुझे और भी गवाहियों की जरूरत पड़ेगी, जो कहें कि बुद्ध झूठा आदमी नहीं है। फिर तुझे उन गवाहियों का भी पता लगाना पड़ेगा कि वे झूठ तो नहीं बोल रहे हैं; कोई सांठ-गांठ तो नहीं है बुद्ध से भीतरी; कोई लेन-देन तो नहीं है!
एक अंग्रेज विचारक भारत आया था, कुछ योगियों, साधुओं के संबंध में चमत्कार की बातों का पता लगाने। एक योगी के संबंध में सुना कि उसकी उम्र नौ सौ वर्ष है। तो वह बहुत चकित हुआ। मिरेकल था, चमत्कार था। नौ सौ वर्ष! बात झूठ होनी चाहिए।
गया, वहां बड़ी भीड़-भाड़ थी। बड़े भक्त थे। बड़ा उत्सव चल रहा था। उसकी हिम्मत न पड़ी। एक आदमी के पास बैठकर उसने थोड़ा मित्राचार, थोड़ी दोस्ती बढ़ाई। फिर जब बातचीत शुरू हो गई, तो उसने पूछा कि क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि आप इनके शिष्य हैं? उसने कहा, हां। क्या मैं पूछ सकता हूं कि इनकी उम्र कितनी है? मैंने सुना, नौ सौ वर्ष है! उस शिष्य ने कहा, मैं कुछ ज्यादा नहीं कह सकता। मैं सिर्फ पांच सौ वर्ष से इन्हें जानता हूं।
तब उसने अपना सिर पीट लिया कि अब मुसीबत खड़ी हुई। अब मैं किससे पता लगाऊं कि इनकी उम्र कितनी है! और इसका अंत कहां होगा?
जब भी हम कोई इनडायरेक्ट विटनेस, परोक्ष गवाही की तलाश में जाते हैं,
तब हम भ्रांति में जा रहे हैं।
अच्छा होता अर्जुन सीधा कृष्ण की आंखों में आंखें डालकर खड़ा हो जाता। छोड़ता व्यास को, छोड़ता देवल को, छोड़ता ऋषि-मुनियों को, सीधा कृष्ण की आंख में आंख डालकर खड़ा हो जाता। तो अर्जुन जितना जान लेता, उतना इन गवाहियों से, कितनी ही ये गवाहियां हों, कभी भी नहीं जाना जा सकता।
लेकिन सामने देखने की हिम्मत शायद उसकी नहीं है। शायद वह डरता है कि कहीं सामने देखकर सच में ही पता न चल जाए कि कृष्ण भगवान हैं। वह भी भय है। वह भी भय है। क्योंकि कल हम यह भी कह सकते हैं कि व्यास को गलती हुई होगी। जिम्मेवारी हमारी क्या? व्यास ने कहा था, इसलिए हमने मान लिया था। लेकिन अगर हमें ही दिखाई पड़ जाए, तो फिर जिम्मेवारी सीधी हो जाती है। फिर मैं ही जिम्मेवार हो जाता हूं। वह भी भय है; वह भी डर है।
ये सारे डर हैं। और हर आदमी के डर हैं। यहां अर्जुन को मैं मानकर चल रहा हूं कि वह जैसे आदमी के भीतर का, सबके भीतर का, सार-संक्षिप्त है। है भी। और कृष्ण को मानकर चल रहा हूं कि जैसे वे आज तक इस जगत में जितनी भगवत्ता के लक्षण प्रकट हुए हैं, उन सबका सार-संक्षिप्त हैं। कृष्ण जैसे इस जगत में जो भी भगवान होने जैसा हुआ है, उस सबका निचोड़ हैं। और अर्जुन जैसे इस जगत में जितने भी डांवाडोल आदमी हुए हैं, उन सबका निचोड़ है। इसलिए गीता जो है, वह दो व्यक्तियों के बीच ही चर्चा नहीं है; दो अस्तित्वों के बीच, दो दुनियाओं के बीच, दो लोकों के बीच, दो अलग-अलग आयाम जो समानांतर दौड़ रहे हैं, उनके बीच चर्चा है। इसलिए दुनिया में गीता जैसी दूसरी किताब नहीं है, क्योंकि इतना सीधा डायलाग, ऐसा सीधा संवाद नहीं है। रामायण है, वह राम के जीवन की लंबी कथा है। बाइबिल है, वह जीसस के अनेक-अनेक अवसरों पर अनेक-अनेक अलग-अलग लोगों को दिए गए वक्तव्य हैं। कुरान है, वह ईश्वर का संदेश है मनुष्य-जाति के प्रति, मोहम्मद के द्वारा निवेदित। लेकिन कोई भी डायलाग नहीं है सीधा।
गीता सीधा डायलाग है। मैं-तू की हैसियत से दो दुनियाएं सामने खड़ी हैं। एक तरफ सारी मनुष्यता का डांवाडोल मन अर्जुन में खड़ा है और एक तरफ सारी भगवत्ता अपने सारे निचोड़ में कृष्ण में खड़ी है। और इन दोनों के बीच

सीधी मुठभेड़ है, सीधा एनकाउंटर है। यह बहुत अनूठी घटना है। इसलिए गीता एक अनूठा अर्थ ले ली है। वह फिर साधारण धार्मिक किताब नहीं है। उसको हम और किसी किताब के साथ तौल भी नहीं सकते। वह अनूठी है।
लेकिन अगर हम उसके इस गहरे आयाम में प्रवेश करें और अर्जुन की पर्त-पर्त तोड़ते चले जाएं, तो ही हमें ख्याल में आएगा।
तो अर्जुन के साथ कई बार मैं नाहक ज्यादा कठोर हो जाऊंगा, सिर्फ इसलिए ताकि मनुष्य की पर्त-पर्त का ख्याल आ जाए। और अर्जुन पूरा उघड़ जाए, तो ही कृष्ण को हम पूरा उघाड़ सकते हैं। और जिस अर्थ में अर्जुन का द्वंद्व स्पष्ट हो, उसी अर्थ में कृष्ण का संदेश और संवाद भी स्पष्ट हो सकता है। आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट रुकें। और कल कीर्तन जब हो रहा था, आप उठ-उठकर पास आ गए। उससे तकलीफ होती है। अपनी जगह ही पांच मिनट बैठे रहें। इतनी तो कम से कम आत्मा प्रकट करें कि पांच मिनट बैठे रह सकते हैं। वहीं बैठे रहें।
कीर्तन जब समाप्त हो, तभी उठें।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
छठवां प्रवचन

स्वभाव की पहचान

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।। 15।।
वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि।। 16।।
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया।। 17।।
हे भूतों को उत्पन्न करने वाले, हे भूतों के ईश्वर, हे देवों के देव,
हे जगत के स्वामी, हे पुरुषोत्तम, आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं।
इसलिए हे भगवन्, आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने
के लिए योग्य हैं, जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं।
हे योगेश्वर, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं और हे भगवन्, आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं।

अर्जुन का मन हो कितना ही जटिल, कितनी ही हों द्वंद्व की पर्तें भीतर,
पर अर्जुन सरल व्यक्तित्व है। जटिलता है बहुत, लेकिन अपनी जटिलता के प्रति किसी धोखे में अर्जुन नहीं है। और अपनी जटिलता को भी प्रकट करने में स्पष्ट और ईमानदार है। शायद यही उसकी योग्यता है कि कृष्ण का संदेश उसे उपलब्ध हो सका।
बीमार भी होते हैं हम, तो भी स्वीकार करने का मन नहीं होता। बीमारी को
भी छिपाते हैं। और जो बीमारी को भी स्वीकार न करता हो, उसके स्वस्थ होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। क्योंकि जिसे मिटाना है, उसे स्वीकार करना जरूरी है। और जिसे मिटाना है, उसे ठीक से पहचानना भी जरूरी है। जिससे मुक्त होना है, उसे जाने बिना मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है।
दो तरह की ईमानदारियां हैं। एक ईमानदारी है, जो हम दूसरों के प्रति रखते हैं। वह ईमानदारी बहुत बड़ी ईमानदारी नहीं है; कामचलाऊ है, ऊपरी है। एक और ईमानदारी है गहरी, जो व्यक्ति अपने प्रति रखता है। वह ईमानदारी खोजनी बड़ी मुश्किल है। पहली ईमानदारी ही खोजनी बहुत मुश्किल है, दूसरी तो और भी मुश्किल है।
अपने प्रति ईमानदार होना बड़ा कठिन है, क्योंकि हम सबने अपने संबंध में कुछ धारणाएं, कुछ प्रतिमाएं बना रखी हैं। और अगर हम अपने प्रति ईमानदार हों, तो हमारी ही निर्मित प्रतिमाएं हमारे हाथों ही खंडित हो जाती हैं। हम जो भी अपने को समझते हैं, वह हम हैं नहीं। हम जो भी अपने को मानते हैं, उससे हमारा दूर का भी संबंध नहीं है। और जो हम हैं, वह इतना पीड़ादायी है कि उसे देखने की हिम्मत भी हम नहीं जुटा पाते हैं। जो हमारी वास्तविकता है, जो हमारा यथार्थ है, उसको हम आंख गड़ाकर देखने का भी साहस नहीं रखते हैं।
और धार्मिक जीवन का प्रारंभ तो उसी व्यक्ति का हो सकेगा, जो अपने प्रति ईमानदार है, जो अपने यथार्थ को जानने का साहस जुटा पाता है। जो जैसा है, वैसा ही अपने को उघाड़कर देख सकता है। चाहे हो कितना ही विकृत, और चाहे कितना ही हो गहन अंधेरा, और चाहे कितने ही रोग हों भीतर, और चाहे कितनी ही हो विक्षिप्तता, लेकिन जो उस सबको शांत भाव से देखने को तैयार है, स्वीकार करने को कि ऐसा मैं हूं, वही व्यक्ति धार्मिक हो सकता है। अपने प्रति ईमानदारी धार्मिक व्यक्ति का पहला कदम है।
अर्जुन जटिल है, उलझा हुआ है। जैसा कि कोई भी मनुष्य जटिल है और उलझा हुआ है। मनुष्य होने के साथ ही वैसी जटिलता अनिवार्य है। लेकिन अर्जुन उसे छिपाने को आतुर नहीं है। जानकर उसे भुलाने की भी उसकी चेष्टा नहीं है।
अनजाने जटिलता है, लेकिन जानकर अर्जुन उससे मुक्त होने के लिए भी आतुर है।

न उसे खुद भी पता चलता हो, लेकिन अपने प्रति वह विनम्र है। और जो भी उसके भीतर हो रहा है, वह उसे कृष्ण से कहे चला जाता है।
इस सूत्र में कुछ बातें उसने बड़े मूल्य की कही हैं। साधक की तरफ से समझने योग्य! जो खोजने निकलते हैं परमात्मा को, उनके लिए बहुत मूल्य की! कई बार तो ऐसा हो सकता है कि कृष्ण का वचन भी उतना मूल्यवान न हो। क्योंकि कृष्ण का वचन तो आत्यंतिक है, अंतिम है। जब हम पहुंचेंगे, तब हम उसे जानेंगे। ऐसा हो सकता है कि बहुत बार अर्जुन का वक्तव्य बहुत कीमती हो, कृष्ण से भी ज्यादा कीमती हो, हमारे लिए। सत्य उतना नहीं है वह, जितना कृष्ण का वक्तव्य होगा। न वह आत्यंतिक कोई अनुभूति है, लेकिन अर्जुन जहां खड़ा है, वहीं हम सब खड़े हैं। तो अर्जुन को समझ लेना, उसके वक्तव्य को समझ लेना, खुद को समझने के लिए बहुत कीमती है। और खुद को जो समझ ले, वह किसी दिन कृष्ण को भी समझ पा सकता है।
इस सूत्र में दो-तीन बातें महत्वपूर्ण हैं, क्रमशः उन्हें हम समझें। अर्जुन ने कहा, हे भूतों को उत्पन्न करने वाले, हे भूतों के ईश्वर, हे देवों के देव, हे जगत के स्वामी, हे पुरुषोत्तम, आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं।
अर्जुन ने इस सूत्र के पहले कहा कि आप जो भी कहते हैं, उसे मैं सत्य मानता हूं। अगर अर्जुन यह कहे कि उसे मैं सत्य जानता हूं, तो वह बेईमानी हो जाएगी। उसने कहा, मैं सत्य मानता हूं। यह ईमानदार वक्तव्य है। उसने यह नहीं कहा कि ऐसा मैं जानता हूं। उसने इतना ही कहा है कि आप जो कहते हैं, उसे मैं सत्य मानता हूं। मेरी चेष्टा है, मेरा प्रयत्न है, मेरा भाव है। यह सत्य हो, यह सत्य होना चाहिए, ऐसी मेरी आकांक्षा है। चाहता हूं कि आप जो भी कहते हैं, वह सत्य हो। मानता हूं कि वह सत्य है।
लेकिन अर्जुन को इस कहते क्षण में भी शायद भीतर की उस दूसरी पर्त का
भी अनुभव हुआ होगा कि यह मैं जानता नहीं हूं। इसलिए उसने इस वक्तव्य में बहुत गहरी बात कही है। उसने कहा है कि आप स्वयं ही अपने से अपने को जानते हैं। मैं चाहूं भी जानना, तो कैसे जान सकता हूं! मैं कहूं भी कि जानता हूं, तो वह असत्य होगा। आप अपने से ही अपने को जानते हैं।
इस वक्तव्य के कई आयाम हैं।
जगत में दो तरह की चीजें हैं। एक तो वे चीजें हैं, जो पर-प्रकाशित हैं।
हम यहां बैठे हैं। अगर बिजली का प्रकाश बंद हो जाए, तो मैं आपको दिखाई नहीं पडूंगा, आप मुझे दिखाई नहीं पड़ेंगे। आप मुझे दिखाई पड़ते हैं, आपके होने की वजह से ही नहीं। आपका होना जरूरी है, लेकिन काफी नहीं। प्रकाश भी चाहिए, तो आप मुझे दिखाई पड़ते हैं। आप हों और प्रकाश न हो, तो आप मुझे दिखाई न पड़ेंगे। आपके दिखाई पड़ने में आपकी मौजूदगी जरूरी है, और प्रकाश भी जरूरी है। क्योंकि प्रकाश होगा, तो ही आप दिखाई पड़ेंगे। आप प्रकाश से प्रकाशित होंगे, तो ही दिखाई पड़ेंगे। मैं भी दिखाई आपको नहीं पडूंगा, प्रकाश नहीं होगा तो। गहन अंधकार छा जाए यहां, फिर कोई किसी दूसरे को दिखाई नहीं पड़ेगा। दूसरा पर-प्रकाशित है। दूसरे को देखने, जानने के लिए एक और प्रकाश की जरूरत है।
लेकिन कितना ही अंधेरा हो जाए, आप अपने को तो मालूम पड़ते ही रहेंगे। कितना ही गहन अंधेरा हो जाए, क्या इतना अंधेरा भी हो सकता है कि मैं खुद कहूं कि अब मुझे अपना पता नहीं चलता, अंधेरा बहुत ज्यादा है! आप मुझे पता नहीं चलेंगे; मैं आपको पता नहीं चलूंगा। लेकिन मैं स्वयं को पता चलता रहूंगा; आप स्वयं को पता चलते रहेंगे। तो आपके स्वयं के होने की जो प्रतीति है, उसके लिए किसी दूसरे प्रकाश की जरूरत नहीं है; आपका होना काफी है।
एक बहुत प्रसिद्ध सूफी हसन के जीवन में उल्लेख है कि वह अपने गुरु के पास गया। दो और मित्र उसके साथ सत्य की खोज पर निकले थे। वे तीनों अपने गुरु के पास गए। उन तीनों ने कहा कि हम जानना चाहते हैं, आत्मा क्या है? उनका गुरु उस समय कबूतरों को दाने डाल रहा था। उसने एक-एक कबूतर पकड़कर तीनों को दे दिया और उन तीनों से कहा कि तुम ऐसी जगह जाओ जहां कोई देखता न

हो, और कबूतर की गर्दन मरोड़कर आ जाओ; मार डालो। फिर पीछे हम आगे की खोज पर चलेंगे। यह तुम्हारा पहला पाठ!
एक युवक सीढ़ियों से नीचे उतरा। पास की गली में गया। देखा, कोई भी नहीं है। कबूतर को मरोड़ा और वापस आ गया। दूसरा युवक खोजबीन किया। गली में गया। लेकिन उसे लगा कि प्रकाश है और मैं मरोडूं, और तभी कोई खिड़की से झांककर देख ले, या अचानक कोई गली में आ जाए, तो रात तक रुकूं, अंधेरा हो जाने दूं। रात अंधेरा जब हो गया, तब वह एक गली में गया और उसने कबूतर की गर्दन मरोड़ दी और रात आकर गुरु के चरणों में कबूतर रख दिया।
लेकिन हसन, तीसरे युवक का तीन दिन तक कोई पता न चला। दोनों मित्र राह देखते हैं, गुरु राह देखता है। तीसरे दिन गुरु ने उन दोनों को कहा कि अब तुम हसन को खोजकर लाओ कि वह कहां है!
हसन ने सब तरह की कोशिश की। गली में जाकर देखा। लगा, कोई भी देख लेगा। अंधेरे में जाकर देखा। गहन अंधेरे में गया, तो भी कबूतर की आंखें! जब भी कबूतर को मरोड़ने जाता, कबूतर की आंखें अंधेरे में भी उसे दिखाई पड़तीं। तो उसने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली और कबूतर की आंखों पर भी पट्टी बांध दी और नीचे एक तलघरे में उतर गया, जहां गहन अंधेरा था। और जब उसने कबूतर की गर्दन पर हाथ रखा, तब उसे ख्याल आया, कोई न देखता हो, लेकिन मैं तो जान ही रहा हूं, मैं तो देख ही रहा हूं।
तीन दिन बाद उसके साथी उसे पकड़कर लाए। उसने कबूतर गुरु के चरणों में
रख दिया। और उसने कहा कि क्षमा करें, यह काम हो नहीं सकता। क्योंकि कहीं भी मैं जाऊं, मैं तो देखता ही रहूंगा। और यह भी हो सकता है कि मैं भी न देखूं, लेकिन कबूतर तो मौजूद रहेगा ही। ऐसा भी कोई उपाय हो सकता है कि मैं बहुत दूर हट जाऊं; कबूतर के गले में रस्सी बांध दूं; तलघरे में लटका दूं; मैं पार निकल जाऊं और वहां से रस्सी खींचकर उसकी गर्दन दबा दूं। लेकिन कबूतर तो कम से कम, एक गवाह तो रहेगा ही। तो मैं ऐसी कोई जगह नहीं खोज पाया, जहां कोई भी गवाह न हो। मुझे आप क्षमा कर दें। मैं इस पहले पाठ में असफल हुआ।
उसके गुरु ने कहा, तुम ही सफल हुए हो। तुम्हारे दो साथी असफल हो गए हैं। और अब तुम्हारा दूसरा पाठ शुरू होगा। तुम्हारे दो साथियों को मैं विदा कर देता हूं। उसके गुरु ने कहा कि आत्मज्ञान की दिशा में पहला पाठ यही है कि आत्म-ज्ञान स्व-प्रकाशित है। चाहे कुछ भी करो, स्वयं को जानने को भुलाया नहीं जा सकता। एक तो मौजूद रह ही जाएगा। और यह सूत्र तुम्हारे ख्याल में आ गया है।
आत्मा स्व-प्रकाशित है। पदार्थ पर-प्रकाशित है और चेतना स्व-प्रकाशित है। ये दो अस्तित्व हैं, जो हमें दिखाई पड़ते हैं। चेतना के लिए किसी और के जानने की जरूरत नहीं; चेतना स्वयं को ही जानती है।
ऐसा ही समझें कि एक दीया जल रहा है। दीया जलता है, तो सारे कमरे को प्रकाशित करता है। दीया बुझ जाए, तो कमरा दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन दीया जलता है, तो अपने को भी प्रकाशित करता है। उस दीए को जानने के लिए किसी दूसरे दीए की जरूरत नहीं पड़ती। चेतना अपने को ही जानती और अनुभव करती है। और सब चीजों को जानने के लिए किसी और की जरूरत पड़ती है।
इसी कारण आत्मा का कोई विज्ञान नहीं बन पाता। इसे थोड़ा समझ लें।
इसी कारण वैज्ञानिक चिंतक आत्मा को स्वीकार नहीं कर पाते। क्योंकि वे कहते हैं कि जब तक हम आब्जर्व न करें, निरीक्षण न करें, प्रयोग न करें, तब तक हम कैसे मानें कि आत्मा है! और जब भी हम निरीक्षण करते हैं किसी वस्तु का, तो वह पदार्थ होती है। जो निरीक्षण करता है, वह आत्मा होता है। और जो निरीक्षण करता है, उसका निरीक्षण करने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए वैज्ञानिक आत्मा को स्वीकार करने को राजी नहीं हो पाते। उनकी अपनी मजबूरी है। उन्होंने विज्ञान की जो परिभाषा स्वीकार की है, उसी परिभाषा ने सीमा बना दी है। वे जिसका निरीक्षण कर सकें, वही वैज्ञानिक तथ्य हो सकेगा। तब फिर जो निरीक्षण करता है, वह कभी भी वैज्ञानिक तथ्य नहीं हो सकता। परिभाषा ने ही वर्जित कर दिया।
वे कहते हैं, जिस पर हम प्रयोग कर सकें, उसको ही हम तथ्य मानेंगे। लेकिन जो प्रयोग करता है, उसका हम क्या करें! निश्चित ही, जब प्रयोग होता

है, तो कोई प्रयोग भी करता है। और जब निरीक्षण होता है, तो कोई निरीक्षक भी है। और जब आब्जर्वेशन हो रहा है, तो कोई आब्जर्वर भी है। लेकिन विज्ञान कहता है कि जब तक हम टेबल पर सामने रखकर निर्णय न ले सकें, निष्कर्ष न ले सकें, विश्लेषण न कर सकें, तब तक कुछ भी कहना मुश्किल है।
अगर यह ही विज्ञान की परिभाषा रहने को है, तो फिर हम आत्मा के संबंध में कभी भी विज्ञान निर्मित न कर पाएंगे, और विज्ञान कभी आत्मा के सत्य की घोषणा न कर पाएगा। या तो हमें विज्ञान की परिभाषा बढ़ानी होगी और विज्ञान की परिभाषा में यह भी सम्मिलित करना होगा कि जो जाना जाता है वही नहीं, जो जानता है वह भी, उसका भी अस्तित्व है।
अर्जुन कृष्ण से कह रहा है कि आप ही आपको जानते हैं।
कृष्ण का अर्थ हुआ, परम चैतन्य, चेतना की शुद्धतम अवस्था। तो अर्जुन कहता है, मैं उसे जानूं भी तो कैसे जानूं? मेरे ज्ञान से आप नहीं जाने जा सकते। आप तो स्वयं ही प्रकाशित हैं, और आप ही अपने को जानने वाले हैं। मैं आपको कैसे जानूं? और मैं अगर आपको जानूं भी, तो आपका शरीर ही जान पाता हूं; आपका पदार्थगत हिस्सा ही दिखाई पड़ता है। आपकी वाणी सुनाई पड़ती है; वह नहीं दिखाई पड़ता, जो बोलता है। आपकी आंखें दिखाई पड़ती हैं; वह नहीं दिखाई पड़ता, जो आंखों से देखता है। आपका हाथ अपने हाथ में ले लेता हूं। लेकिन हाथ तो पदार्थ है। वह मेरी पकड़ में नहीं आता, जो हाथ के भीतर जीवन है। मैं आपको सब तरफ से पहचान लेता हूं, लेकिन यह पहचान बाहरी है। मैं कितना ही आपको जानता रहूं, यह जानना आपके आस-पास है। लेकिन आप चूक जाते हैं। आप तक मैं नहीं पहुंच पाता हूं। आप मेरी पकड़ के बाहर रह जाते हैं। आप तो अपने को ही जानते हैं। आप ही अपने को जानते हैं। मैं आपको कैसे जान सकता हूं!
इसलिए भक्तों ने कहा है, ज्ञानियों ने कहा है कि परमात्मा को तब तक नहीं जाना जा सकता, जब तक आप स्वयं परमात्मा न हो जाएं। परमात्मा होकर ही उसे जाना जा सकता है।
इससे एक दूसरी बात भी ख्याल में ले लें।
जगत में दो तरह के ज्ञान हैं। एक ज्ञान है, जिसे बर्ट्रेंड रसेल ने एक्वेनटेंस कहा है, परिचय कहा है। और दूसरा ज्ञान है, जिसे बर्ट्रेंड रसेल ने नालेज कहा है, ज्ञान कहा है। परिचय और ज्ञान। जब हम किसी चीज को बाहर से देखते हैं, तो वह परिचय है, एक्वेनटेंस है, ज्ञान नहीं है।
आप एक फूल को देखते हैं, तो आप क्या करेंगे? बाहर से देखेंगे, उसकी सुगंध लेंगे, उसका रूप देखेंगे, उसकी आकृति। अगर कवि हुए, तो उसे प्रेम करेंगे। गायक हुए, तो गीत गाएंगे उसके सौंदर्य का। अगर पारखी हुए, तो आनंदित हो जाएंगे, नाच उठेंगे। लेकिन यह फूल के बाहर से ही हो रहा है। अगर वैज्ञानिक हुए, तो फूल को तोड़कर विश्लेषण करके, उसके केमिकल्स, उसके तत्वों को अलग-अलग बोतल में बंद करके, लेबल लगाकर रख देंगे कि इन-इन चीजों से मिलकर बना है यह फूल। इतना रस है इसमें। इतना पानी है। इतना खनिज है। इतना लोहा है। वह सब आप रख देंगे।
लेकिन यह भी जानना बाहर से ही होगा। फूल के भीतर प्रवेश नहीं हुआ। फूल
एक आब्जेक्ट रहा। आप जानने वाले, अलग रहे, बाहर रहे। अगर कवि की तरह जाना, तो थोड़े निकट आए, लेकिन फिर भी दूर रहे। क्योंकि निकटता भी दूरी का एक नाम है। कितने ही निकट आ जाएं, दूरी तो बनी ही रहती है।
मेरे ये दोनों हाथ बिल्कुल भी निकट आ जाएं, तो भी दोनों के बीच स्पेस
तो रहती है, जगह तो रहती है, फासला तो रहता है। अगर फासला न रहे, तो दोनों हाथ एक ही हो जाएं, फिर दो न रह जाएं। दो का मतलब ही है कि बीच में फासला कितना ही कम हो, लेकिन फासला है। और वह कम नहीं है फासला। फासला बड़ा है, भारी है। फासला इतना बड़ा है कि कितना ही उपाय करें, वह मिटता नहीं। हम कितने ही करीब ले आएं, मिटता नहीं।
वैज्ञानिक कहते हैं कि अणु-अणु के बीच में भी ऐसा फासला है, जितना सितारों के बीच में। अनुपात वही है, भारी फासला है। जमीन से सूरज कोई दस करोड़ मील दूर है। यह फासला बड़ा मालूम पड़ता है, दस करोड़ मील दूर! बीच में इतना शून्य है। अगर हम अणु में प्रवेश करें, तो अणु के भी इलेक्ट्रान और न्यूट्रान के बीच, अगर हम न्यूट्रान को जमीन के बराबर बड़ा मान लें, तो उसकी

और इलेक्ट्रान की दूरी इतनी ही हो जाती है, जितनी जमीन और सूरज की है। अनुपात फासला इतना ही बड़ा है। दो अणु भी पास-पास नहीं हैं, जो बिल्कुल पास मालूम पड़ रहे हैं।
हमारे हाथ जब बिल्कुल पास हैं, तब भी भारी फासला है। और फासला कभी मिटता नहीं है। दो के बीच दूरी बनी ही रहती है। निकटता भी दूरी का एक नाम है। कह सकते हैं, निकटता कम से कम दूरी है। और दूरी कम से कम निकटता है। और कोई ज्यादा फासला नहीं है।
कितने ही पास से हम जानें, दूरी है। उसी दूरी को वैज्ञानिक भी मिटाने
की कोशिश करता है। वह चीर-फाड़ करके पदार्थ के भीतर घुस जाता है। फूल को तोड़ डालता है। क्योंकि नहीं तोड़ेंगे, तो भीतर प्रवेश नहीं हो सकेगा।
तोड़कर भी हम पार ही रहते हैं, भीतर नहीं पहुंच पाते। फूल टूट जाता है, दूरी उतनी ही रहती है; फासला कम नहीं होता। सच तो यह है कि कवि ज्यादा करीब पहुंच जाता है फूल के, बजाय वैज्ञानिक के। हालांकि वैज्ञानिक अपने औजारों से भीतर घुसने की कोशिश करता है।
क्या आपको ख्याल है कि आपको अगर किसी ने प्रेम किया हो, तो वह आपके हृदय के ज्यादा करीब है, बजाय उस सर्जन के जो आपके हृदय का आपरेशन करेगा। हृदय का आपरेशन करने वाला बिल्कुल आपके हृदय में हथियार डाल देगा। फिर भी उतने करीब नहीं है, जितना वह, जिसने आपको प्रेम किया है।
कवि निकट आ सकता है। वैज्ञानिक भी निकट आने की कोशिश करता है। लेकिन निकट कोई भी आ नहीं पाता; फासला बना रहता है; दूरी बनी रहती है।
प्रेमियों के बीच में भी दूरी बनी रहती है! कितने ही बड़े प्रेमी हों, बड़ी दूरी बनी रहती है। दो प्रेमी बिल्कुल सटकर आस-पास बैठे हों। पूर्णिमा की रात हो। बड़े गीत गाते हों। प्रेम की चर्चा करते हों। फिर भी फासला भारी बना रहता है। भारी फासला बना रहता है। और इसलिए प्रेमी भलीभांति अनुभव करते हैं कि जितने करीब आते हैं, उतनी दूरी बढ़ती हुई मालूम पड़ती है। क्योंकि उतना ही अनुभव होता है कि करीब आ गए और फिर भी करीब आए नहीं। तो अनुभव होता है कि दूरी और बढ़ गई।
इसलिए सभी प्रेम असफल हो जाते हैं। सभी कहता हूं! सिर्फ उन प्रेमों को छोड़ देता हूं, जिनको असफल होने का मौका ही नहीं मिलता। अगर दो प्रेमियों को करीब आने का मौका ही न मिले, तो वे कभी असफल न होंगे। क्योंकि उनको वहम बना ही रहेगा कि करीब आ सकते थे, मौका नहीं मिला। लेकिन जिन प्रेमियों को भी करीब आने का मौका मिल जाए, वे असफल होंगे ही; असफलता सुनिश्चित है। क्योंकि करीब आकर पता चलेगा, करीब आ गए, और करीब नहीं आए। पास आ गए, और दूरी बनी है! और तब पीड़ा भारी हो जाती है।
कितने ही हम पास आ जाएं किसी चीज के, परिचय ही होता है, ज्ञान नहीं होता। ज्ञान का तो एक ही उपाय है और वह यह है कि हम उस चीज के साथ एक हो जाएं, एकाकार हो जाएं।
यह बड़ा कठिन है। असंभव मालूम पड़ता है। प्रेमी भी सफल नहीं हो पाते अपने प्रेम-पात्र के साथ एक होने में। कवि भी सफल नहीं हो पाता, चित्रकार भी सफल नहीं हो पाता फूल के साथ एक होने में।
इसलिए सिर्फ धर्म के अतिरिक्त सभी कुछ परिचय है। सिर्फ धर्म ही ज्ञान
का द्वार है। क्योंकि धर्म एक ऐसी प्रक्रिया को खोजा है--जिसे मैंने ध्यान कहा; योग कहें, समाधि कहें--ऐसी प्रक्रिया है, जहां एक चेतना की लौ दूसरी चेतना की लौ में लीन हो जाती है।
स्वभावतः, दो शरीर एक नहीं हो सकते, लेकिन दो आत्माएं एक हो सकती हैं।
दो शरीर इसलिए एक नहीं हो सकते कि उनकी सीमाएं हैं। और उनकी सीमाएं मौजूद रहेंगी। दो आत्माएं एक हो सकती हैं, क्योंकि आत्मा की कोई सीमा नहीं है। जितनी सीमा तरल होगी, उतनी एकता आसान है। दो पत्थर के टुकड़ों को हम पास रख दें, तो वे एक नहीं हो पाते, क्योंकि उनकी सीमा मजबूत है। हम दो पानी की बूंदों को पास रख दें; वे एक हो जाती हैं। उनकी सीमा तरल है; सीमा सख्त नहीं है।

शरीर की सीमा पत्थर की तरह सख्त है। आत्मा की सीमा पानी की तरह तरल है। शायद पानी की तरह कहना भी ठीक नहीं, भाप की तरह। भाप की तरह। दो भाप के गुब्बारे उड़ें आकाश में, एक गुब्बारा हो जाता है। कोई बाधा नहीं है।
एक कमरे में हम दो दीए जला दें; दोनों का प्रकाश एक हो जाता है। कहीं कोई टकराहट भी नहीं होती। हजार दीए जला दें हम एक ही कमरे में, तो भी कमरे में कोई कांपिटीशन, कोई प्रतिस्पर्धा खड़ी नहीं होगी, कि दीए कहने लगें कि बहुत हो गया, इनफ, रुको अब! इस कमरे में ज्यादा दीए की रोशनी नहीं समा सकती। यहां तो एक दीया पहले से ही रोशन कर रहा है। अब दूसरा दीया यहां कैसे आ सकता है! दूसरा दीया आ जाए, उसकी रोशनी भी पहले दीए की रोशनी से एक हो जाती है। तीसरा आ जाए, उसकी भी एक हो जाती है। चौथा आ जाए, उसकी भी एक हो जाती है। दीए अलग रह जाते हैं, रोशनी एक हो जाती है।
शरीर अलग रह जाते हैं ध्यान में, आत्मा एक हो जाती है। इसलिए अगर एक कमरे में बीस लोग ध्यान कर रहे हों, तो बीस शरीर होते हैं, आत्मा एक होती है। अगर ध्यान कर रहे हों तो! अगर विचार कर रहे हों, तो बीस शरीर होते हैं और हजार आत्माएं होती हैं। अगर विचार कर रहे हों तो! तब तो एक-एक आदमी के भीतर अनेक आत्माएं हो जाती हैं। इतने खंड, इतने टुकड़े हो जाते हैं। लेकिन अगर ध्यान कर रहे हों, तो सब शून्य हो जाता है।
बुद्ध के जीवन में उल्लेख है कि बुद्ध एक महानगरी के पास विश्राम को रुके। दस हजार भिक्षु उनके साथ हैं। उस नगर का राजा है अजातशत्रु। नाम है उसका अजातशत्रु, ऐसा व्यक्ति जिसका शत्रु पैदा ही न हुआ हो। जिसका शत्रु अजन्मा है, ऐसा उसका नाम है। ऐसा बहादुर आदमी भी था वह। लेकिन तलवार पर जिनकी बहादुरी निर्भर होती है, शरीर की ताकत पर जिनकी बहादुरी निर्भर होती है, वे कितने ही बहादुर हों, भीतर तो कमजोर होंगे ही।
अजातशत्रु को उसके आमात्यों ने, उसके मंत्रियों ने कहा कि बुद्ध का आगमन हुआ है, आप भी उनके दर्शन को चलें। तो अजातशत्रु ने कहा, चलूंगा। लेकिन मेरे साथ मेरी फौज भी चलेगी। मंत्रियों ने कहा, यह उचित न होगा। बुद्ध के पास फौज लेकर क्या जाना? आप अकेले ही चलें। दस-पांच आपके साथी, मित्र, परिवार के चल सकते हैं। फिर भी अजातशत्रु को डर लगा कि पता नहीं, कोई शड्यंत्र न हो! कहीं ये मंत्री किसी उपद्रव में न ले जा रहे हों। फिर उसने सारा पता लगाया। बुद्ध आए हुए हैं। दस हजार भिक्षु ठहरे हैं गांव के बाहर ही, आम्रवन में।
तो एक सांझ वह गया। रास्ते पर ही उसने अपना रथ छोड़ दिया, अपने मंत्रियों के साथ आगे बढ़ने लगा। मंत्रियों ने कहा कि बस यह जो वृक्षों की पंक्ति दिखाई पड़ रही है, इसके उस पार ही बुद्ध के दस हजार भिक्षुओं का डेरा है! वृक्षों की पंक्ति करीब आने लगी। अजातशत्रु ने चौंककर अपनी तलवार बाहर निकाल ली और अपने मंत्रियों से कहा कि मुझे कुछ संदेह मालूम पड़ता है! जहां दस हजार लोग रुके हों, वहां आवाज तो जरा-सी भी नहीं हो रही है! यह नहीं हो सकता। दस हजार लोग रुके हों इस पंक्ति के पार, तो भारी बाजार मच जाएगा। मुझे कुछ शक मालूम पड़ता है, यह कोई धोखा है।
मंत्रियों ने कहा कि आप तलवार भीतर रखें। शक मालूम पड़ता हो, तो बाहर
भी रखें। थोड़ा और आगे चलें। दस हजार लोग ही ठहरे हैं। लेकिन ये लोग और तरह के लोग हैं। जिनको आपने बाजार में देखा है, उस तरह के लोग नहीं हैं।
और जब अजातशत्रु बुद्ध के पास गया, तो चकित हो गया। वहां दस हजार लोग बैठे थे वृक्षों के तले। चुप थे, आंखें उनकी बंद थीं। बुद्ध से अजातशत्रु ने पूछा है कि ये दस हजार लोग इतने चुप क्यों बैठे हैं? तो बुद्ध ने कहा है, क्योंकि इस समय ये दस हजार नहीं हैं। क्योंकि इस समय ये दस हजार नहीं हैं; इस समय ये ध्यान में हैं।
ध्यान का अर्थ हुआ कि हमारी जो आत्मा है, वह जब शांत हो जाती है, तो तरलता से आस-पास फैल जाती है, जुड़ जाती है, एक हो जाती है।
ज्ञान, अगर ज्ञान का हम यही अर्थ करते हों कि किसी वस्तु को उसके केंद्र से जानना, परिधि से नहीं; उसके बाहर से नहीं, उसके प्राणों में, उसके अंतस्तल में डूबकर जानना। अगर ज्ञान की यही परिभाषा हो, तो धर्म के अतिरिक्त ज्ञान का और कोई स्रोत नहीं है। क्योंकि धर्म ही उस कला का

जन्मदाता है, जो आपकी सीमाओं को तोड़ डालती है और आपको असीम के साथ एक होने का अवसर, सुविधा और संभावना जुटा देती है।
अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं। मैं कैसे आपको जान सकता हूं! मैं दूर हूं। मैं बाहर हूं। मैं और हूं। आप कृष्ण हैं, मैं अर्जुन हूं। फासला है, मैं मान ही सकता हूं।
ध्यान रहे, इसी को मैं उसकी ईमानदारी कह रहा हूं। आप अपने मानने को भी जानना कहने लगते हैं, तब बेईमानी हो जाती है। अगर आप भी कहें कि मैं ईश्वर को मानता हूं, जानता नहीं; तो मैं कहूंगा, आप ईमानदार आदमी हैं, और किसी दिन धार्मिक भी हो सकते हैं।
लेकिन हम मानने की बात ही नहीं करते। हम कहते हैं, मैं जानता हूं कि ईश्वर है! इतना ही नहीं, हम ईश्वर--जिसको हम सिर्फ मानते हैं, जानते नहीं-- उसके लिए लड़ सकते हैं, काट-पीट कर सकते हैं, हत्याएं कर सकते हैं। लोग मंदिर जलाते हैं, मस्जिद जलाते हैं, गिरजे तोड़ डालते हैं। इतना पक्का है उनका जानना कि दूसरे का गलत होना इतना सही है कि अगर हत्या भी करनी पड़े, तो वे पीछे नहीं हटते।
मानने वाले लोग, जिनको कुछ भी पता नहीं है, इतने अहम्मन्य हो सकते हैं, उसका एक ही कारण है कि वे अपने मानने को जानने की भ्रांति में पड़ जाते हैं।
अपनी तरफ बेईमानी हो जाती है।
ठीक से समझ लेना चाहिए, क्या मैं मानता हूं और क्या मैं जानता हूं।
क्या है मेरा बिलीफ, मेरा विश्वास; और क्या है मेरा ज्ञान, मेरी अनुभूति; इसका फासला एकदम स्पष्ट होना चाहिए।
इसलिए अर्जुन ने कहा कि मैं मानता हूं कि आप जो कहते हैं, सत्य है। आप ईश्वर हैं। आप समस्त भूतों को उत्पन्न करने वाले, समस्त भूतों के ईश्वर, देवों के देव, हे जगत के स्वामी, हे पुरुषोत्तम! लेकिन यह सब मान्यता है मेरी। क्योंकि आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं। यह सब भी मैं कहूं, तो यह मेरा जानना नहीं है। यह मेरा भाव है, मेरा ज्ञान नहीं। यह मेरी श्रद्धा है, मेरी प्रतीति, मेरा साक्षात्कार नहीं।
इतना बारीक फासला स्पष्ट होना चाहिए साधक को, तो दूसरी घटना भी घट सकती है। जिसने ठीक से पहचाना कि क्या मेरी मान्यता है, वह फिर मान्यता से राजी नहीं होगा। फिर मान्यता में उसे घबड़ाहट होने लगेगी। फिर बेचैनी होगी उसके मन को। और फिर वह तड़फेगा कि मैं जानूं कैसे? और जानने की यात्रा पर निकलेगा।
जिस आदमी ने मानने को ही समझ लिया कि जानना है, उसकी यात्रा ही समाप्त
हो गई। वह मंजिल पर पहुंच ही गया, बिना पहुंचे! उसने पा ही लिया, बिना पाए! वह सिद्ध हो ही गया, साधन से गुजरे बिना! साधना से गुजरे बिना, उपलब्धि हो गई उसे! उसने मान लिया।
इस जगत में अधिक लोग इसलिए ठहर जाते हैं, क्योंकि आगे उपाय ही नहीं बचता। आप जान ही लेते हैं बिना जाने, तो फिर आगे यात्रा करने को कुछ बचता नहीं। एक आदमी कहता है कि मैं ईश्वर को जानता हूं, बात खतम हो गई। अब जाने को कहीं बची भी नहीं कोई जगह।
फासला कायम रखें। स्पष्टता से समझें कि यह मेरी मान्यता है, मेरा जानना नहीं। और जानना अभी शेष है, और अभी मुझे चलना होगा, और अभी मुझे संघर्ष करना होगा, और अभी मुझे बड़ा रास्ता बाकी है, जिसे पूरा करना है, और तब कहीं मैं जानने तक पहुंच पाऊंगा।
लेकिन हम आंख बंद करके यहीं बैठ जाते हैं रास्ते के किनारे। पड़ाव मंजिल बन जाता है। और अगर हमसे कोई कहे कि यह पड़ाव है, मंजिल नहीं है; यहां मत डेरा डालो; उठो! तो हम नाराज होंगे। क्योंकि यह आदमी हमारी नींद खराब करता है। क्योंकि यह आदमी हमारे विश्राम को तोड़ रहा है। क्योंकि हम मानकर बैठ गए, मजे में हो गए। शांत हो गए। झंझट मिटी। अब कहीं जाने को न रहा। अब हम विराम कर सकते हैं, विश्राम कर सकते हैं। यह आदमी कहता है कि नहीं, यह मंजिल नहीं है। यह सिर्फ रास्ते का किनारा है। उठो! तो इस आदमी पर हमें क्रोध आता है।

इसलिए इस जगत में जब भी किसी ने हम से कहा है कि तुम जहां रुके हो, वह मंजिल नहीं है, तो हम नाराज हुए हैं। चाहे जीसस, चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर, चाहे नानक, चाहे कबीर, जिसने भी हमसे कहा है कि कहां तुम बैठे हो रास्ते के किनारे! वह हमें दुश्मन मालूम पड़ा। दुश्मन इसलिए मालूम पड़ा कि हमारे घर को बर्बाद किए दे रहा है। हम घर बनाकर बैठ गए हैं। हम बड़े मजे में हैं।
मजा यह है कि हमने पा लिया है और ये लोग आते हैं और ये हमें झकझोर देते हैं। और हिलाकर घर के बाहर निकालते हैं, और कहते हैं कि यह रास्ता लंबा है अभी। और जिसे तुम घर समझ रहे हो, यह घर वैसा ही है, जैसा शुतुरमुर्ग दुश्मन को देखकर घबड़ा जाता है और सिर को रेत में खपाकर खड़ा हो जाता है। और चूंकि सिर रेत में चला जाता है, आंखें बंद हो जाती हैं, दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता, तो शुतुरमुर्ग सोचता है कि जो दिखाई नहीं पड़ता है, वह है नहीं। इसका नाम शुतुरमुर्ग का तर्क है।
शुतुरमुर्ग का अपना तर्क है कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह नहीं है। हम भी
तो यही कहते हैं। हमारे पास भी लोग हैं, वे कहते हैं, ईश्वर नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए नहीं है। शुतुरमुर्ग भी यही कहता है। सिर को गड़ा लेता है रेत में, दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता; नहीं है। बात खतम हो गई। निश्चिंत हो जाता है।
हम सब भी अपने सिर गपा लेते हैं अपनी मान्यताओं में। मान्यताओं की रेत आंखों को अंधा कर देती है। फिर हम कुछ बनकर बैठ जाते हैं, जो हम नहीं हैं। जो आस्तिक नहीं है, वह आस्तिक समझ लेता है अपने को। जो धार्मिक नहीं है, वह धार्मिक समझ लेता है अपने को। जो नैतिक नहीं है, वह नैतिक समझ लेता है। जिसे योग का कुछ भी पता नहीं है, जो दो-चार तरह शरीर को झुकाने की कलाएं सीख गया है, वह अपने को योगी समझ लेता है! जिसे ध्यान की कोई भी खबर नहीं है, वह भी आंख बंद करके दो मिनट बैठ जाता है, तो सोचता है, मैंने ध्यान कर लिया! जिसे प्रभु-स्मरण का कोई पता नहीं है, वह भी कोई राम, कृष्ण, कोई भी नाम की रटन थोड़ी देर लगा लेता है, तो सोचता है कि बस, ईश्वर-स्मरण हो गया! इस तरह हम रेत में छिपा लेते हैं अपने सिर को। अपनी बुद्धि को भी गपा लेते हैं। अंधे होकर, मान्यता को जानना समझकर, रुक जाते हैं।
जब भी कोई कबीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट हमें धक्का देगा, और कहेगा, शुतुरमुर्ग! निकालो सिर बाहर! तब हमें क्रोध आता है कि सब नींद खराब किए दे रहा है यह आदमी। फिर यात्रा करनी पड़ेगी। फिर चलना पड़ेगा। जो मिल गया था, वह फिर खो जाएगा। यह छीन लेगा।
लेकिन ध्यान रहे, जो भी आपसे छीना जा सकता है, ठीक से समझ लेना, वह आपके पास है ही नहीं। यह वक्तव्य बड़ा उलटा मालूम पड़ेगा। जो आपके पास नहीं है, केवल वही छीना जा सकता है; और जो आपके पास है, उसे छीनने का कोई भी उपाय नहीं। यह वक्तव्य पैराडाक्सिकल लगेगा, क्योंकि मैं कह रहा हूं, जो आपके पास नहीं है, केवल वही छीना जा सकता है। और जो आपके पास है, वह कभी नहीं छीना जा सकता।
जीसस ने इस वचन का उपयोग किया है। जीसस ने कहा है, जिनके पास नहीं है, उनसे छीन लिया जाएगा; और जिनके पास है, उन्हें और दे दूंगा।
उलटा लगता है। हम सबको लगेगा कि यह तो बिल्कुल इकॉनामिक्स से उलटी बात हो गई। जिसके पास नहीं है, उसे दो। जिसके पास है, उससे छीनो। यह सीधा समाजवाद का तर्क है। जिसके पास है, उससे छीनो। और जिसके पास नहीं है, उसे दो। लेकिन ये आध्यात्मिक लोग, न मालूम कैसा उलटा समाजवाद है इनका! जीसस कहते हैं, जिसके पास नहीं है, उससे छीन लिया जाएगा; और जिसके पास है, उसे और दे दिया जाएगा। निश्चित ही लेकिन यह तर्क किसी दूसरी दुनिया का है। जहां समाजवाद लागू होता है, उस दुनिया से इसका कोई संबंध नहीं है। यह इस सूत्र की बात मैं आपसे कह रहा हूं।
आपको अगर डर लगता हो कि आपका परमात्मा छिन सकता है, तो समझना, वह आपके पास नहीं है। आपको डर लगता हो कि आपका मोक्ष छिन सकता है, तो समझना, वह आपके पास नहीं है। आपको डर लगता हो कि आपकी आत्मा, आपका ज्ञान, आपकी श्रद्धा छिन सकती है, तो वह आपके पास नहीं है।

एक मित्र मेरे पास आते थे। तीसरे दिन उन्होंने मुझे पत्र लिखा और लिखा कि अब मैं दुबारा आपके पास नहीं आऊंगा। क्योंकि जब मैं आपके पास आया, उसके पहले मैं बड़ा आश्वस्त था कि जानता हूं; और आप से मिलकर मुझे नुकसान के सिवाय लाभ नहीं हुआ। क्योंकि अब मुझे शक होने लगा है कि मैं जानता भी हूं कि नहीं जानता हूं! पहले मैं बड़े मजे में था। पर अब सब मेरा मजा अस्तव्यस्त हो गया।
तो मैंने उनको खबर भेजी कि अब तुम आओ या न आओ, अब यह अस्तव्यस्तता मिट नहीं सकती। एक धोखा टूट जाए, तो आप वापस नहीं लौट सकते फिर।
जीवन का नियम है कि जो भी जान लिया जाए, उसे फिर मिटाया नहीं जा सकता। ज्ञान को मिटाने का कोई उपाय नहीं है। अगर यह भी ज्ञान हो जाए, अगर यह भी मुझे पता चल जाए कि जो मैं जानता था, वह गलत है, तो अब कोई उपाय नहीं है इससे वापस लौट जाने का। अब आगे ही बढ़ना पड़ेगा। जीवन आगे जाना ही जानता है, पीछे जाने का कोई उपाय नहीं है। विकास पीछे नहीं लौटता। लाख उपाय करें, तो भी एक इंच पीछे नहीं जा सकते।
तो मैंने उनसे कहा, अब आओ या न आओ, लेकिन जो तुम्हारे पास था, वह कभी नहीं होगा। अब तो तुम्हें आगे बढ़कर उसे पुनः प्राप्त करना होगा।
लेकिन वे चेष्टा करेंगे। फिर किसी झाड़ के नीचे, फिर किसी रास्ते के किनारे दूसरा घर बना लेंगे। पुराना भी टूट गया, कोई हर्ज नहीं। फिर दूसरा बना लें। फिर उसमें छिप जाएं।
हम सस्ते में निपटना चाहते हैं। इसलिए दुनिया में शार्टकट इतने प्रभावी हो जाते हैं। कोई भी कह देता है कि कोई दिक्कत नहीं है। माला फेर लो रोज एक बार। सब ठीक हो जाएगा। कोई कह देता है, घबड़ाते क्यों हो? मरते वक्त राम का नाम ले लेना, सब ठीक हो जाएगा। तो लोग इतने होशियार हैं कि वे कहते हैं, हम तो क्या ले पाएंगे! क्योंकि मरते वक्त तक भी उनको ऐसा नहीं लगता कि अब मर रहे हैं। मर ही जाते हैं, जब उनको पता चलता है कि मर गए! तो वे पंडितों को किराए पर रखकर उनसे राम-नाम लिवा देते हैं। गंगा-जल उनके मुंह में डाला जा रहा है! कोई उनके कान में मंत्र पढ़ रहा है!
परमात्मा को भी पाने के लिए चालबाजियां हैं! बेईमानी की भी सीमाएं नहीं हैं। असीम मालूम पड़ती है बेईमानी। एक आदमी का मुंह बंद हो गया, उसका जबड़ा बंद है। अब वह बोल भी नहीं सकता। आंख हिलती नहीं। उसके घर के लोग ढोल-ढमाल बजाकर उसको जोर से भगवान का नाम याद दिला रहे हैं, इस आशा में कि शायद इससे काम हो जाए!
धोखे नहीं चलते। और इस जमीन पर चल भी जाएं, उस पारलौकिक जगत में बिल्कुल नहीं चल सकते। कोई उपाय नहीं है चलने का। या समझ लें कि वही आदमी मरते वक्त घबड़ाकर एक दफे राम कह दे, तो कुछ हल होने वाला है? जिंदगी जिसकी राम से न भरी हो, आखिरी समय में निकला हुआ शब्द उसके हृदय से नहीं आ सकता। होंठ पर ही होगा। झूठा होगा। मतलब से होगा। और राम का नाम भी जब कोई मतलब से ले, तो बेकार हो जाता है। मतलब का मतलब कि अब उसे डर है।
एक धर्मगुरु मरने के करीब है। धर्मगुरु बड़ा था। लेकिन कितने ही बड़े धर्मगुरु हों, धर्म का तो कोई पता नहीं होता। धर्मगुरु होना आसान है, धर्म को जानना कठिन है। क्योंकि धर्मगुरु होना एक प्रशिक्षण है। वह योग्य आदमी था। प्रशिक्षित था। जानता था धर्म को। दूसरों को भी समझाता था। कभी ख्याल ही उसे नहीं आया कि जो मैं दूसरों को समझाता रहा हूं, वह मुझे भी पता है या नहीं?
मौत करीब आई, तो उसके पैर थर्राए। तब वह भूल गया कि मैंने कितने लोगों
को धर्म समझाया। उसे खुद ख्याल आया कि मुझे खुद तो पता नहीं है। गांव में और तो कोई आदमी नहीं था। मुल्ला नसरुद्दीन को उसने खबर भेजी कि तुम ज्ञानी हो। कभी मुल्ला को ज्ञानी माना नहीं था। लेकिन अब मरते वक्त उसे लगा कि गांव में और तो कोई आदमी नहीं है, यह आदमी जरूर कभी-कभी कोई ज्ञान की कोई बात कह देता है।
मुल्ला नसरुद्दीन आया। और उस धर्मगुरु ने कहा कि मैं देखता हूं कि तुम्हारे वक्तव्यों में कभी-कभी कोई मिस्टिकल, कोई रहस्यपूर्ण वक्तव्य होता है। कभी तुम ऐसी बात कह देते हो हंसी-हंसी में कि तीर की तरह उतर जाती

है। मैं मर रहा हूं। मेरे लिए कोई एकाध सूत्र कहो, जो मरते वक्त मैं पूरा कर सकूं! जिंदगी तो मेरी यों ही दूसरों को समझाने में चली गई। खुद समझने से वंचित रह गया हूं। अब मैं क्या करूं?
तो मुल्ला ने उसके कान में कहा कि तुम एक काम करो। एक छोटा-सा मंत्र तुम्हें देता हूं। कहो कि हे परमात्मा, मेरी रक्षा कर। और हे शैतान, मेरी रक्षा कर। उस आदमी ने कहा, क्या कह रहे हो? मुल्ला ने कहा, समय खोने का मौका नहीं है। वी कैन नाट टेक चांस! पता नहीं, कौन दो में से तुम्हारे काम पड़े! तुम दोनों की प्रार्थना करो। यह कोई मौका सोच-विचार का ज्यादा नहीं है। दो ही आल्टरनेटिव हैं, दो ही विकल्प हैं कि या तो तुम नर्क जाओगे या तुम स्वर्ग जाओगे। पता नहीं कहां जाओ! किसी को नाराज करना इस वक्त ठीक नहीं है। तुम दोनों का नाम ले लो। जहां भी जाओ, कहना दूसरे का भूल से लिया था। इतनी तो समझदारी करो!
सारे आदमी मरते वक्त ऐसी ही बेईमानी कर रहे हैं। किसी तरह हम धोखा देना चाहते हैं अस्तित्व को भी। लेकिन धोखे से हो नहीं सकता, क्योंकि खुद को हम कैसे धोखा दे सकेंगे? दूर से जिसने मान्यता को मान लिया हो कि यही मेरा ज्ञान है, वह इस तरह की प्रवंचना में पड़ ही जाएगा।
तो अर्जुन स्पष्ट है। उसने कहा कि क्या मेरी मान्यता है। और अब वह कहता है कि जानना भी मैं चाहता हूं। यात्रा करने को मैं उत्सुक हूं। आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं। मैं तो नहीं जान सकता हूं। जो भी मैं कह रहा हूं, पता नहीं, ठीक है या गलत है। भाव से कह रहा हूं। हृदयपूर्वक कह रहा हूं। लेकिन मेरी प्रज्ञा का इससे कोई स्पर्श नहीं है। ऐसा मैंने जाना नहीं है। ऐसी घटना नहीं घटी है कि मैं कह सकूं। मैं खुद गवाह बन सकूं, ऐसी घटना नहीं घटी है। इसलिए उसने दूसरे गवाहों के नाम लिए। कहा कि इन महर्षि ने कहा है। उन महर्षि ने कहा है। मैं खुद नहीं कह सकता। मैं खुद गवाही नहीं हो सकता हूं अभी। यह सरलता है, यह ईमानदारी है।
इसलिए हे भगवन्, आप ही अपनी उन दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने
के योग्य हैं कि जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त करके आप स्थित हैं।
मैं नहीं कह सकूंगा। मैं कितना ही कहूं कि हे भूतों को उत्पन्न करने वाले, हे सर्वभूतों के ईश्वर, हे देवों के देव, हे जगत के स्वामी, हे पुरुषोत्तम, मेरे होंठों पर ये सब शब्द ही हैं। भावपूर्ण, लेकिन शब्द ही हैं। कितने ही हृदय से कहूं, फिर भी मेरा अस्तित्व इनसे स्पर्श नहीं होता है। फिर भी ऐसा मैं नहीं जानता हूं। इसलिए आप ही उन दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने के योग्य हैं।
आप ही अपने अस्तित्व को पूरा उघाड़ें, तो उघड़े। आप ही खोलें अपने मंदिर
के द्वार, तो मैं प्रवेश करूं। मैं द्वार के बाहर कितनी ही दस्तक देता रहूं, मेरे कमजोर हैं हाथ। और मुझे यह भी पक्का पता नहीं है कि मैं दीवाल पर दस्तक दे रहा हूं कि दरवाजे पर दस्तक दे रहा हूं! और मैं कितना ही पुकारूं, मुझे यह पक्का पता नहीं कि मैं तुम्हारी तरफ मुंह करके पुकार रहा हूं कि पीठ करके पुकार रहा हूं! मैं कितना ही दौडूं, बहुत साफ नहीं है कि मैं तुम्हारी तरफ दौड़ रहा हूं कि तुमसे दूर भाग रहा हूं!
अर्जुन यह कह रहा है कि मुझ अज्ञानी से तुम्हारे संबंध में कौन-सा वक्तव्य दिया जा सकेगा! तुम ही कहो। तुम ही बता सकोगे अपनी समग्रता को, अपनी टोटेलिटी को।
यह बात सोचने जैसी है। ईश्वर के संबंध में जितने वक्तव्य दिए गए हैं,
वे सभी पार्शियल हैं, वे सभी आंशिक हैं। जितने भी वक्तव्य दिए गए हैं, वे सभी आंशिक हैं। कोई वक्तव्य समग्र नहीं है। हो भी नहीं सकता। आदमी की भाषा बहुत कमजोर है। कहने की सीमा है और होने की कोई सीमा नहीं है। उसके होने का कोई अंत नहीं है, और कहने की सीमा है। ऐसे, जैसे मैं अपनी मुट्ठी में आकाश बंद करूं। निश्चित ही, मेरी मुट्ठी में भी आकाश है; आकाश का ही एक हिस्सा है। मैं मुट्ठी में सागर को बंद करूं। निश्चित, मेरी मुट्ठी में भी सागर आता है; लेकिन सागर का एक हिस्सा ही आता है। और मेरी मुट्ठी कितनी ही बड़ी क्यों न हो, फिर भी एक अंश ही मेरे हाथ में पकड़ आता है। इसलिए ईश्वर के

संबंध में जितने वक्तव्य हैं, सभी आंशिक हैं। कोई वक्तव्य समग्र नहीं हो सकता।
अर्जुन के इस निवेदन में बड़ी गहरी वेदना है। वह वेदना यह है कि मैं कैसे कहूं और क्या कहूं! और जो भी कहूंगा, वह अधूरा होगा। तुम्हारी विभूति, तुम्हारा ऐश्वर्य अपार है। तुम्हारा होना, तुम्हारा विस्तार असीम है। न कोई आदि है, न कोई अंत। कहीं कोई छोर नहीं मिलते। कहीं सीमा खींच पाऊं, ऐसा कोई आधार नहीं मिलता। मैं कैसे तुम्हारे संबंध में कुछ कहूं! तुम्हीं अपनी समग्रता को खोल दो मेरे लिए, तो शायद मैं जान लूं।
इसमें कुछ बातें समझ लेने की हैं।
चूंकि ईश्वर के संबंध में दिए गए सभी वक्तव्य अधूरे हैं, इसलिए दो वक्तव्य कभी-कभी विरोधी भी मालूम पड़ते हैं। वे विरोधी नहीं हैं। जैसे, जिन्होंने ईश्वर को प्रेम से जाना है और जिन्होंने ईश्वर को प्रेम करके जाना है, जिनकी साधना प्रेम की ही साधना रही--प्रेम में ही पिघल जाने की, प्रेम में ही डूब जाने की, बिखर जाने की जिनकी साधना रही--उन्होंने ईश्वर का जो वर्णन किया है, वह सगुण है। होगा ही। क्योंकि प्रेम, जिसको भी प्रेम करता है, उसमें अनेक-अनेक गुणों को देखना शुरू कर देता है। प्रेम की आंख गुणों को खोज लेती है, उघाड़ लेती है। और प्रेम की आंख के साथ गुण चमककर, अत्यंत प्रखर हो जाते हैं।
इसलिए भक्तों ने, जिन्होंने प्रेम से प्रभु की तरफ यात्रा की है, और जिनके पास बुद्धि का बहुत बोझ नहीं, हृदय की उड़ान रही है, हृदय से जिन्होंने ईश्वर की व्याख्या करनी चाही है, उन्होंने फिर उसकी व्याख्या सगुण की, स्वभावतः।
लेकिन दूसरी तरफ जिन्होंने हृदय से नहीं, सीधे ज्ञान से उस तरफ कदम उठाए, और जिन्होंने राग और प्रेम का कोई भी सहारा नहीं लिया, वरन वैराग्य और शुद्धतम तर्कणा से जो जीए हैं, उन्होंने निर्गुण, निराकार। क्योंकि जो भी विचार की आत्यंतिकता को पकड़ेगा, तो निर्विकार और निराकार और शून्य अंततः उसको दिखाई पड़ना शुरू होगा।
इन दोनों की व्याख्याएं हम देखें, तो कलहपूर्ण मालूम पड़ती हैं। भक्त गुणों की चर्चा कर रहा है। और ज्ञानी कह रहा है कि निर्गुण है परमात्मा। भक्त मूर्ति बना रहा है। और ज्ञानी कह रहा है, मूर्ति! मूर्ति बाधा है। भक्त आकार दे रहा है। और ज्ञानी कह रहा है, तोड़ो आकार। आकार से कैसे पहुंचोगे निराकार तक?
भक्त जिसे प्रेम कर रहा है, उसे सजा रहा है वस्त्रों में, गहनों में, फूलों में। वह प्रेमी का निवेदन है। वह प्रेम की भाषा है। ज्ञानी बेचैन हुआ जा रहा है कि यह क्या पागलपन कर रहे हो? यह क्या बच्चों जैसी बात? प्रेम का यहां सवाल क्या है? सत्य को खोजो। सत्य को खोजना हो, तो प्रेम को हटाओ, क्योंकि प्रेम पक्षपात बन सकता है। और प्रेम वह देख सकता है, जो न हो। और प्रेम वह मान सकता है, जो अपने ही भीतर है, प्रोजेक्टेड हो। इसलिए छोड़ो प्रेम को, शुद्ध ज्ञान को पकड़ो।
इसलिए एक तरफ ईश्वर को कहने वाले लोग हैं कि वह है, लेकिन निराकार है। इस्लाम ने इतने जोर से इस परिभाषा को पकड़ लिया कि मूर्ति को तोड़ना धार्मिक काम हो गया! तोड़ दो मूर्ति को, क्योंकि मूर्ति बाधा बन रही होगी। उसकी कोई मूर्ति नहीं है।
इस्लाम जिस समय में पैदा हुआ और मक्का, जो इस्लाम का तीर्थ बना, वहां इस्लाम के पहले, मोहम्मद के पहले, तीन सौ पैंसठ मूर्तियों का मंदिर था। हर दिन की एक मूर्ति थी। हर दिन के लिए परमात्मा का एक रूप था।
तीन सौ पैंसठ मूर्तियों का मंदिर अपने तरह का अदभुत मंदिर था। और जिन्होंने तीन सौ पैंसठ मूर्तियां खोजी होंगी, उनका भी बड़ा गहरा भाव था। भाव यह था कि परमात्मा के इतने रूप हैं कि रोज भी हम एक को पूजें, तो भी वे चुकते नहीं। लेकिन रूप हैं। भक्त अरूप की तरफ तो ख्याल ही नहीं ले जा सकता। भक्त को तो पीड़ा होने लगेगी। भक्तों ने तो यहां तक प्रार्थना की है भगवान से कि न चाहिए हमें तेरा मोक्ष, न तेरा बैकुंठ, न तेरा निर्वाण। बस,

तेरा रूप हमारी आंखों में बसा रहे। तो उन्होंने तीन सौ पैंसठ मूर्तियां बनाई थीं।
लेकिन इस्लाम की दूसरी व्याख्या थी। और दोनों व्याख्याएं अपनी जगह सही हैं। यही मजा है। इस्लाम की व्याख्या थी कि मूर्ति से उसका क्या संबंध है? वह अरूप है। वह एक है। किसी भी रूप में उसको बांधो मत, नहीं तो रूप से रुक जाओगे और अरूप तक कैसे पहुंचोगे? इसलिए तोड़ दो सब रूप। वे तीन सौ पैंसठ मूर्तियां तोड़ दी गईं। मोहम्मद का कोई भी चित्र उपलब्ध नहीं है। इसीलिए उपलब्ध नहीं है मोहम्मद का कोई चित्र कि मोहम्मद का चित्र भी कहीं साधक के मार्ग में बाधा न बन जाए। कहीं ऐसा न हो कि मोहम्मद भी आड़ बन जाएं। इसलिए मोहम्मद ने कोई अपना चित्र नहीं बचने दिया।
यह ज्ञानी की एक व्याख्या है। बिल्कुल सही है। लेकिन प्रेमी की जो बिल्कुल विपरीत व्याख्या है, वह भी इतनी ही सही है। हजार और व्याख्याएं हैं। व्याख्याएं निर्भर करती हैं करने वाले पर।
और करीब-करीब हमारी हालत ऐसी है कि मैंने सुना है, एक गांव में पहली दफा हाथी आया। सांझ हो गई थी, लेकिन गांव में बड़ी उत्सुकता फैल गई, तो गांव ने अपने पांच प्रमुख आदमी चुने, जो गांव के सबसे बड़े जानकार थे और उनको भेजा कि हाथी को जाकर देखकर आएं।
सांझ हो गई। रात हो गई। अंधेरा हो गया। वे पांचों जब पहुंचे, तो अंधेरा हो गया था। उन्होंने हाथी को टटोलकर देखा। जिसके हाथ में पैर पकड़ में आया, उसने कहा कि ठीक। व्याख्या मिल गई! जिसके हाथ में कान पकड़ में आया, उसने कहा कि ठीक। व्याख्या मिल गई! जिसने पीठ पर हाथ फेरा, उसने कहा कि ठीक। व्याख्या मिल गई!
उन पांचों को व्याख्याएं मिल गईं। और जब वे पांचों गांव में पहुंचे,
तो गांव में बड़ा उपद्रव मच गया। क्योंकि गांव में पांच वक्तव्य हो गए हाथी के संबंध में। और वक्तव्य इतने बेमेल थे कि कोई कितनी ही कल्पना की चेष्टा करे, तो भी उनको जोड़ नहीं सकता था। क्योंकि एक कह रहा था कि हाथी होता है, जैसे महलों के संगमरमर के खंभे होते हैं, ठीक वैसा। उसने पैर छुए थे। एक कह रहा था, जैसे किसान अपने बड़े-बड़े सूपों में अपने धान को साफ करते हैं, वैसा है हाथी; उसने हाथी के कान छुए थे।
वे अलग-अलग व्याख्याएं लेकर आए थे। और गांव बड़ी मुश्किल में पड़ गया।
और गांव के लोगों ने कहा कि दो ही बातें हो सकती हैं। या तो तुम पांचों पागल हो गए हो, और या फिर तुम पांच चीजों को देखकर लौटे हो, एक चीज को देखकर नहीं। पर उन्होंने कहा, हम एक ही चीज को देखकर लौटे हैं। हम पांचों एक ही चीज को देखकर लौटे हैं।
तो फिर गांव के लोगों ने कहा कि फिर तुम पांचों पागल हो गए हो। क्योंकि तुम पांचों सही नहीं हो सकते। तुम कैसी बातें कर रहे हो? कहां महल का खंभा और कहां किसान का सूप! क्या संबंध है? खंभा सूप हो सकता है? सूप खंभा हो सकता है? कोई संबंध नहीं है। तब उन्होंने कहा कि फिर हम रुकें। लेकिन रुकना भी बड़ा मुश्किल था। रातभर गांव में बेचैनी रही। और भी अनेक लोग गए पीछे और टटोलकर लौटे। और गांव में पंथ हो गए। कुछ लोगों ने कहा कि ठीक है, जिसने खबर दी है कि हाथी खंभे की तरह है। गांव में पांच पंथ हो गए! और जल्दबाजी इतनी थी कि सुबह की प्रतीक्षा भी कैसे की जाए!
लेकिन सुबह जब लोगों ने हाथी देखा, तो सारे लोग अपने पर हंसने लगे कि पागल कोई और नहीं था, हम सब पागल थे। और गलती किसी की नहीं थी। गलती इतनी ही थी कि अंश को पूर्ण समझ लिया था। और विपरीत अंश भी हो सकता है पूर्ण में एक, इसकी कोई कल्पना न थी। सुबह जब लोगों ने हाथी को देखा और खंभे और सूपों को एक साथ देखा। और खंभे और सूपों के भीतर जो प्राण था, वह एक ही था।
लेकिन हाथी के संबंध में तो उस गांव की तकलीफ हल हो गई, ईश्वर के संबंध में आदमी के गांव की तकलीफ शायद ही कभी हल हो। क्योंकि ऐसी सुबह कभी नहीं होने वाली है, जब हम सब एक साथ ईश्वर को देख लें। यह सुबह वैयक्तिक है; एक-एक आदमी की होती है; और एक-एक आदमी अपनी परिभाषा लेकर आता है।
जितने आदमी ईश्वर की तरफ गए हैं, उतनी परिभाषाएं हैं। यह दूसरी बात है
कि कुछ लोग परिभाषा करने में मुखर हैं, कुशल हैं, इसलिए वे परिभाषा कर पाए।

कुछ लोग मुखर नहीं हैं, कुशल नहीं हैं, नहीं कर पाए। इसलिए उन्होंने दूसरों की अपने से मिलती-जुलती परिभाषा स्वीकार कर ली। लेकिन करीब-करीब जितने लोग... ।
अगर हम बुद्ध से पूछें, तो महावीर से कोई मेल नहीं पड़ता। अगर हम कृष्ण
से पूछें, तो मोहम्मद से कोई मेल नहीं पड़ता। अगर हम मोहम्मद से पूछें, तो राम से कोई मेल नहीं पड़ता। और जितने लोग ऊपर से मेल बिठालने की कोशिश करते हैं, उससे भी कुछ मेल पड़ता नहीं। कितने लोग समझाते हैं कि गीता में भी वही, कुरान में भी वही, बाइबिल में भी वही। निकाल-निकालकर एक-दूसरे के सूत्रों का तालमेल भी बिठालने की कोशिश करते हैं कि यह अर्थ, यह अर्थ। फिर भी तालमेल बैठता नहीं।
नहीं बैठने का कारण है। कोई कितना ही तालमेल बिठाए, जिसने समझा है कि हाथी सूप है, और जिसने समझा है कि हाथी खंभा है, इन दोनों शास्त्रों से कोई कितना ही तालमेल बिठाए, तालमेल और पागलपन का सिद्ध होगा। वह और भी कनफ्यूजन, और भी विभ्रम पैदा करेगा।
इसलिए अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मैं कुछ भी कहूं, कुछ भी मानूं, मैं आपकी समग्रता को न कह पाऊंगा! आप ही अपनी समग्रता को कहो।
कृष्ण भी जब कहने जाएंगे, तो मजे की बात यह कि समग्रता को नहीं कह सकते। क्योंकि कहना अंश का ही होता है, समग्र का नहीं होता। समग्रता इतनी बड़ी घटना है कि जब हम कहने से शुरू करते हैं, तो एक टुकड़े से शुरू करना पड़ता है।
जैसे आप यहां मौजूद हैं। एक साथ हम सब यहां मौजूद हैं। लेकिन अगर मुझे
कल बताना पड़े कि कौन-कौन मौजूद थे, तो मैं कहूंगा, राम मौजूद थे, विष्णु मौजूद थे, नारायण मौजूद थे। मुझे एक रेखा बनानी पड़ेगी। जब मैं कहूंगा, राम मौजूद थे, तो सिर्फ राम मौजूद मालूम पड़ेंगे। फिर मैं कहूंगा, विष्णु मौजूद थे, फिर नारायण मौजूद थे, फिर मैं एक-एक नाम लूंगा। आप सब इकट्ठे मौजूद हैं। जब मैं बोलूंगा, तो मुझे एक-एक बोलना पड़ेगा, लीनियर, एक रेखा में बोलना पड़ेगा; और आप सब बिना रेखा के इकट्ठे मौजूद हैं।
तो आपकी मौजूदगी की खबर अगर देनी हो वाणी से, तो फिर सीमा बननी शुरू हो जाएगी। कोई नंबर एक होगा, कोई नंबर दो, कोई नंबर तीन, कोई नंबर चार। यहां आप बिना नंबर के एक साथ मौजूद हैं। और आप ही मौजूद नहीं हैं, पशु-पक्षी मौजूद हैं, आकाश मौजूद है, तारे मौजूद हैं, पृथ्वी मौजूद है, अनंत मौजूद है यहां, इसी क्षण। सब कुछ मौजूद है। पूरा अस्तित्व मौजूद है। अगर इसकी हम चर्चा करने जाएं, तो चर्चा नहीं हो सकेगी। कृष्ण भी करेंगे, तो नहीं हो सकेगी। इसलिए अर्जुन जो शब्द उपयोग कर रहा है वह है, इसलिए हे भगवन्, आप ही अपनी उन दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने के योग्य हैं कि जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं। हे योगेश्वर, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? और हे भगवन्, आप किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं?
वह कहता है कि आप ही कह सकते हैं। लेकिन तत्क्षण जो वह जोड़ता है, वह बहुत महत्वपूर्ण है। कहता है, आप कह सकते हैं अपनी समग्रता को। लेकिन तत्क्षण वह जोड़ता है, वह कहता है, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? बड़ा महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप कहें। आप भी कहेंगे, तो पता नहीं मैं जान पाऊं, न जान पाऊं! आप कह भी देंगे, तो भी मैं समझ पाऊं, न समझ पाऊं! आप कह भी देंगे, तो भी मैं सुनूं या न सुनूं।
जीसस ने कहा है कि कान हैं तुम्हारे पास, लेकिन तुम सुनते कहां हो? आंखें हैं तुम्हारे पास, लेकिन तुम देखते कहां हो? तो जिनके पास कान हों और जो सुन सकते हों, वे सुन लें। और जिनके पास आंखें हों और देख सकते हों, वे देख लें।
कान से सुन लेना एक बात है। शब्द कान पर पड़ेगा, सुनाई पड़ जाएगा। लेकिन अर्जुन पूछता है, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? आप कह भी दें, तो भी शायद ही हल हो। मैं कैसे जानूं? आपका कहा हुआ, मेरा जानना कैसे हो जाए? उसकी विधि मुझे कहें, उसका मार्ग मुझे बताएं। और हे भगवन्, आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं? और मेरी योग्यता को

समझें, मेरी पात्रता को, मेरी संभावना को, और मैं किन भावों में आपका चिंतन करूं कि आपको जान पाऊं?
यहां बहुत-सी बातें हैं।
परमात्मा को किसी भी भाव से पाया जा सकता है, लेकिन हर व्यक्ति हर भाव
से नहीं पा सकता। सभी भावों से पाया जा सकता है उसे, लेकिन आप सभी भाव करने में समर्थ नहीं हो सकते। आपका कोई अपना भाव आपको खोजना पड़े। आपका भाव, आपका निजी भाव--जो आपका प्राण बन सकता हो, जिसका बीज आपके भीतर छिपा हो, जिसकी आपकी पात्रता हो--उस भाव से ही आप परमात्मा को खोजें, तो ही खोज पाएंगे।
लेकिन बहुत बार ऐसा होता है, हम दूसरों के भावों से उसे खोजने चलते हैं और तब हम नहीं खोज पाते। न तो कोई दूसरे की आंखों से देख सकता है, और न कोई दूसरे के हाथों से छू सकता है, और न कोई दूसरे की बुद्धि से जान सकता है। अपनी ही भाव की दशा, जिससे परमात्मा का मेल खाए, अस्तित्व से मेल खाए, जाननी और खोज लेनी जरूरी है।
हमारी जिंदगी की बड़ी से बड़ी दुर्घटना यही है कि हमें यही पता नहीं कि मैं किस पात्रता को लेकर पैदा हुआ हूं। बड़ी से बड़ी विडंबना यही है। अगर कोई, हम समझें कि इस जगत का बड़ा से बड़ा अघटनीय घट रहा है, तो वह यह है कि किसी को यह पता नहीं कि वह क्या होने को हुआ है? क्या हो सकता है? क्या है उसकी संभावना? बीज क्या है छिपा हुआ उसके भीतर? वह किस चीज का बीज है? वह चमेली का फूल बनेगा कि चंपा का फूल बनेगा? वह कौन-सा फूल बनकर परमात्मा के चरणों पर चढ़ सकता है?
अगर चमेली का फूल चंपा का फूल होने की कोशिश करता रहे, तो परमात्मा के चरण बहुत दूर हैं। क्योंकि चंपा होना ही संभव नहीं है। अगर गुलाब का फूल चमेली का फूल होने की कोशिश में पड़ा रहे, तो परमात्मा के चरण बहुत असंभव हैं। क्योंकि पहले तो वह चमेली ही नहीं हो पाएगा; चढ़ने का कोई सवाल नहीं है। मैं किस भांति चढूंगा! मेरा होने का ढंग मुझे खोजना पड़ेगा।
और एक-एक व्यक्ति का अपना निजी ढंग है। वही तो व्यक्तित्व का अर्थ है। एक-एक व्यक्ति अपने ढंग का व्यक्ति है, बेजोड़। उस जैसा कोई दूसरा नहीं है। लेकिन हम सब उधार जीते हैं, इमिटेटिव। और हम सब एक-दूसरे को उधारी थोपते चले जाते हैं। अगर मुझे भक्ति प्रीतिकर लगती है, तो मैं अपने बेटे पर भक्ति थोप दूंगा, बिना इसकी फिक्र किए कि वह उसका भाव है? अगर मुझे भक्ति अरुचिकर है, तो मैं अपने बेटे पर भक्ति का विरोध थोप दूंगा, बिना इसकी फिक्र किए कि वह उसका मार्ग है? और हम सब एक-दूसरे पर थोपते चले जाते हैं। और इतने थोपने वाले हो जाते हैं कि कठिनाई हो जाती है।
मैंने सुना है, एक छोटा बच्चा, स्कूल में उससे पूछा गया कि तू बड़ा होकर क्या बनना चाहता है? तो उसने कहा, क्या बनना चाहता हूं, इसका तो मुझे पता नहीं। एक बात पक्की है कि मैं पागल बन जाऊंगा! इंसपेक्टर ने पूछा कि यह तुझे ख्याल कैसे आया? तो उसने कहा, मेरी मां चाहती है कि मैं इंजीनियर बनूं। मेरा बाप चाहता है कि डाक्टर बनूं। मेरा भाई चाहता है कि चित्रकार बनूं। मेरी बहन कुछ और चाहती है। मेरी मौसी कुछ चाहती है। मेरी चाची कुछ चाहती है। मेरे चाचा कुछ चाहते हैं। वे सब लोग कोशिश में लगे हैं अपने- अपने ढंग से मुझे कुछ बनाने की। मुझसे तो न किसी ने पूछा है, न मुझे पता है। एक बात पक्की है कि अगर वे सब सफल हो गए, तो मैं पागल हो जाऊंगा!
हो ही जाएगा। और सफल भी न हों, तो भी पागल हो जाएगा। असफल भी हो जाएं,
तो भी लकीरें छोड़ जाएंगे।
सामान्य जीवन में तो यह हो ही रहा है। उस असामान्य जीवन की यात्रा पर
भी बड़ी गहन रेखाएं हम पर छोड़ दी जाती हैं। मैं देखता हूं कभी कि कोई आदमी जन्म से हिंदू घर में पैदा हुआ है। कोई आदमी जन्म से मुसलमान घर में पैदा हुआ है। लेकिन जन्म से धर्म का क्या संबंध? कोई भी संबंध नहीं है। अगर एक आदमी जन्म से कम्युनिस्ट के घर में पैदा हुआ है, तो कम्युनिस्ट होने की मजबूरी नहीं है। फिलहाल अभी तक तो नहीं है। आगे हो सकती है कि तुम कम्युनिस्ट बाप के बेटे हो, कम्युनिस्ट ही तुम्हें होना पड़ेगा; कि तुम्हारा खून कम्युनिस्ट का है!

खून किसी का होता नहीं। न कम्युनिस्ट का होता है, न हिंदू का होता है,
न मुसलमान का होता है। अभी तक कोई उपाय नहीं खोजा जा सका कि खून सामने आप रख दें और डाक्टर बता दे कि यह हिंदू का है। हड्डी में भी अब तक पता नहीं चलता कि हड्डी हिंदू की है कि मुसलमान की है। खोपड़ी की मज्जा को भी निकालकर जांच करो, तो कोई पता नहीं चलता कि किसकी है।
बच्चे कोई धर्म, कोई विचार, कोई पंथ, कोई मत लेकर पैदा नहीं होते। बच्चे संभावना लेकर पैदा होते हैं कुछ होने की। लेकिन हम उनके ऊपर थोप देते हैं कुछ। एक आदमी मुसलमान के घर में पैदा हुआ है। यह हो सकता है, इसके लिए कृष्ण का मंदिर भाव बन जाए। लेकिन इसको अड़चन आएगी। इसको अड़चन आएगी। मूर्ति के सामने यह नाच कैसे सकता है?
एक मुसलमान ने मुझे आकर कहा, तब मुझे ख्याल आया। उसने मुझे कहा कि मेरा तो मन होता है कि जैसे मीरा नाचती फिरी कृष्ण को लेकर, ऐसे मैं नाचता फिरूं। लेकिन मैं मुसलमान हूं! और यह तो कुफ्र है; यह तो बड़ी बुरी बात है, मूर्ति-पूजा। और यह तो नहीं हो सकता! यह तो नहीं हो सकता।
अब यह आदमी एक दुविधा में है। मैं ऐसे हिंदुओं को जानता हूं, जिनके लिए मस्जिद मंदिर से बेहतर हो। मैं ऐसे ईसाइयों को जानता हूं, जो कि कहीं और होते तो ठीक होता। लेकिन जन्म एक जकड़ बन जाता है। और तब आप अपना भाव नहीं खोज पाते। आप अपना खोज ही नहीं पाते कि कौन-सा द्वार है मेरा नैसर्गिक, जहां से मैं परमात्मा को पा सकूं।
हम सबको इसकी फिक्र नहीं है कि कोई परमात्मा को पाए। हिंदू को फिक्र
है कि हिंदू के परमात्मा को पाना है। मुसलमान को फिक्र है कि मुसलमान के परमात्मा को पाना है। अगर तुमने हिंदू का परमात्मा पा लिया, तो इससे तो बेहतर था कि न पाते परमात्मा और मुसलमान रहते। या न पाते परमात्मा और हिंदू रहते। लेकिन मुसलमान का परमात्मा पाकर क्यों अपनी जिंदगी बर्बाद कर रहे हो?
हमें परमात्मा से कोई प्रयोजन नहीं है। हमारा परमात्मा! अब परमात्मा हमारा-तुम्हारा नहीं हो सकता। कोई दो परमात्मा भी नहीं हैं। लेकिन यह हमारे मन की आज तक की व्यवस्था है। इस व्यवस्था के कारण दुनिया में धर्म के जितने फूल खिल सकते हैं, नहीं खिल पाते। इस कारण जितने लोग धार्मिक हो सकते हैं, नहीं हो पाते। धर्म तो भावगत है, जन्मगत नहीं।
इसे ठीक से समझ लें, धर्म भावगत है, जन्मगत नहीं। और जब कृष्ण ने कहा
है कि स्वभाव ही धर्म है। और स्वधर्म को छोड़कर दूसरे धर्म में जाना भयभीत करने वाला, भयावह है। तो लोग समझते हैं, इसका मतलब है कि हिंदू घर में पैदा हुए हो, तो हिंदू रहना। मुसलमान घर में पैदा हुए, तो मुसलमान रहना।
नहीं; स्वधर्म का मतलब है, अपना स्वभाव खोजना, अपना भाव खोजना, जो तुम्हें परमात्मा से मिलाने में सहयोगी हो सके। वह व्यक्तिगत ट्यूनिंग है। एक-एक व्यक्ति को अपनी तरंग खोजनी पड़ती है, अपनी वेव-लेंथ खोजनी पड़ती है, कि मेरे हृदय की तरंग किस भांति परमात्मा की तरंग से जुड़ सकती है। अर्जुन का यह पूछना बहुत मूल्यवान है कि हे योगेश्वर, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? और हे भगवन्, आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं? मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं किन-किन भावों में? किन भावों में आपको खोजूं? कैसे यह मेरे लिए सरल होगा कि जो अभी मैं मानता हूं, कल वह मेरा ज्ञान भी बन जाए? जिसे अभी मैंने बाहर से स्वीकार किया, कल भीतर से भी अनुभव करूं? जिसकी अभी मैंने चर्चा ही सुनी, कब होगा कि उसका स्वाद भी ले लूं? अभी जब मैं दूसरे की गवाही खोजता फिरता हूं, कब वह क्षण आएगा, जब मैं भी गवाह हो जाऊं? कि जो मैं कह रहा हूं, उसका मैं ही गवाह हूं!
तो दो बातें! एक तो किस विधि निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? दो बातें पूछी हैं, और दो ही विशेष हैं। किस विधि चिंतन करता हुआ? यह ज्ञान के लिए, ज्ञान की जो विधियां हैं। और दूसरा वह पूछता है, किस भाव से? वह भक्त की विधि है।
ठीक अर्थों में जगत में दो ही विराट भेद हैं मनुष्यों के, मस्तिष्क-केंद्रित और हृदय-केंद्रित। दो ही प्रकार हैं, पुरुष और स्त्रैण। जब मैं

कहता हूं पुरुष और स्त्रैण, तो पुरुष और स्त्री से मतलब नहीं है। प्रतीकात्मक है। स्त्रैण व्यक्तित्व को मैं कहता हूं, जो हृदय-केंद्रित है, वह चाहे पुरुष हो और चाहे स्त्री हो। और पुरुष उस व्यक्तित्व को कहता हूं, जो मस्तिष्क-केंद्रित हो; वह स्त्री हो चाहे पुरुष, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इन दोनों के मार्ग बिल्कुल अलग हैं।
अर्जुन को यह भी ख्याल में नहीं है। इसीलिए मैं कहता हूं, वह बहुत सरल है। उसे यह भी पता नहीं है कि मैं बुद्धिवादी हूं, कि हृदयवादी हूं; कि मैं किस मार्ग से चलूं, भाव से या ज्ञान से! वह दोनों बातें पूछ लेता है कि किस भांति चिंतन करता हुआ आपको जानूं? अगर मेरा यह मार्ग हो कि विचार के द्वार से ही मैं आप तक पहुंचूं, तो किस भांति विचार करता हुआ पहुंचूं? या अगर भाव मेरा मार्ग हो, तो मैं किस भाव के झरोखे से आपको झांकूं?
ये दो विराट धाराएं हैं। इसके छोटे-छोटे बहुत तरह के अंग हैं, लेकिन
वे गौण हैं। महत्वपूर्ण यही है। अब तक जगत में जिन लोगों ने भी पाया है परम सत्य को, उन्होंने या तो विचार की आत्यंतिक गति से या भाव की। एक तरफ बुद्ध हैं, महावीर हैं, लाओत्से हैं, क्राइस्ट हैं। एक तरफ मीरा है, चैतन्य हैं, कबीर हैं, थेरेसा है, राबिया है, इस तरह के लोग हैं। जिन्होंने भाव से पाया है, उनकी पूरी की पूरी व्यवस्था जीवन की साधना की अलग होगी, विपरीत होगी। जिन्होंने ज्ञान से पाया है, उनकी बिल्कुल विपरीत होगी।
विचार से जो चलेगा, उसके लिए ध्यान आधार होगा। विचार से जो चलेगा, उसे विचार को इतना शुद्ध, इतना शुद्ध करना है कि एक क्षण आए कि विचार शुद्ध होते-होते, होते-होते तिरोहित हो जाए। जब भी कोई चीज शुद्ध होती है, तो तिरोहित होने लगती है। जितनी शुद्ध होती है, उतनी तिरोहित होने लगती है। जब कोई चीज पूर्ण शुद्ध हो जाती है, तो वाष्पीभूत हो जाती है।
विचार इतना शुद्ध हो जाए कि विचार-मात्र रह जाए। शब्द समाप्त हो जाएं, सिर्फ विचारणा रह जाए। थाट्स चले जाएं, सिर्फ थिंकिंग मौजूद रह जाए; विचारणा की शक्ति रह जाए और विचार सब खो जाएं। आकाश रह जाए, बादल सब चले जाएं। बादल हैं विचारों की तरह। और जब सब बादल छंट जाते हैं, तो वह जो विचारक है भीतर आकाश की तरह, वह शेष रह जाता है। विचार को शुद्ध करके, शांत करके, मौन करके, क्षीण करके, विचारक अकेला रह जाए। उसको हम चाहे साक्षी का नाम दें, अवेयरनेस कहें, जागरूकता कहें, जो भी नाम दें। सिर्फ बोध-मात्र रह जाए और विचार खो जाएं। बुद्ध इसी परंपरा के अग्रगण्य प्रतीक हैं।
अर्जुन कहता है, अगर ऐसी कोई संभावना हो मेरी, तो मैं कैसे चिंतन करूं?
वह मुझे बताएं कि मैं आपको जान लूं। अगर यह न हो, तो मैं कैसे भाव करूं, ताकि मैं आपको जान लूं?
भाव--लीनता; विचार--ध्यान। और भाव--लीनता, डूबना, विसर्जित होना, समर्पण, खो जाना।
बुद्ध नाच नहीं सकते, क्योंकि नाचना बुद्ध को लगेगा, यह क्या बात हुई! सूफी फकीर नाच सकते हैं, क्योंकि वे कहते हैं, नाच-नाचकर हम उसमें खो जाते हैं।
कभी आपने छोटे बच्चों को देखा है! छोटे बच्चे अक्सर घर में करते हैं। चक्कर लगाना शुरू कर देते हैं। बड़े रोकते भी हैं उनको। और उनको हैरानी होती है, कि चक्कर आ जाएगा। गिर जाओगे। मूर्च्छित हो जाओगे। सिर टूट जाएगा। और बच्चे अपनी जगह पर खड़े होकर कील की तरह घूमना चाहते हैं। बच्चों को, अधिकतर बच्चों को रस होता है कील की तरह घूमने का। बच्चे कह नहीं सकते कि उनको क्या होता है। और बूढ़े समझते हैं कि यह घूम रहा है, अभी गिरेगा; चक्कर खा जाएगा। लेकिन बच्चे जब तेजी से चकरी की तरह घूमते हैं एक जगह, तो उन्हें शरीर अलग और आत्मा अलग मालूम होने लगती है। और बड़ा आनंद उन्हें आता है। वह बूढ़ों की समझ में नहीं आ सकता।
सूफी फकीर इसी तरह नाचते हैं। सूफी फकीरों का एक वर्ग ही है, व्हिरलिंग दरविशे.ज, नाचते हुए फकीर। वे ठीक बच्चों की तरह खड़े होकर फिरकनी की तरह नाचते हैं। तेजी से नाचते हैं। घंटों नाचते हैं। एक घड़ी आती है कि शरीर घूमता रह जाता है और चेतना खड़ी हो जाती है। शरीर लीन हो जाता है विराट में। शरीर खो जाता है।

मीरा नाचती है, चैतन्य नाचते हैं। ये अपने को डुबा रहे हैं। लेकिन अगर मोहम्मद से हम कहें, नाचना, संगीत! तो मोहम्मद कहेंगे, गलत! संगीत की बात ही मत लाना मस्जिद के करीब। संगीत की बात ही मत उठाना। क्योंकि मोहम्मद कहते हैं कि संगीत में आदमी खो जाएगा। और खोना नहीं है, जागना है।
और अगर हम मीरा से कहें, संगीत छोड़ दो! तो संगीत के छूटते ही कृष्ण और मीरा के बीच जो सेतु है, वह तत्काल टूट जाएगा। अगर हम चैतन्य से कहें कि फेंको यह तंबूरा, छोड़ो यह नाचना; बंद करो यह संगीत और गीत! तो चैतन्य का सब कुछ खो जाएगा। संगीत उनके लिए कारगर हो सकता है, जो अपने को डुबाने चले हैं, खोने चले हैं।
अब यह मजे की बात यह है कि ये बिल्कुल विपरीत मार्ग हैं। ध्यान में अपने को बचाना है पूरी तरह, सब छूट जाए, मैं ही बचूं। और भक्ति में अपने को भुलाना है पूरी तरह, सब बच जाए, मैं ही न बचूं। और मजा यह है कि दोनों एक ही जगह पहुंच जाते हैं--ये इतने विपरीत! चाहे मैं बचूं और सब खो जाए, तो भी एक बचता है। और चाहे सब बचे और मैं खो जाऊं, तो भी एक ही बचता है। और दो विपरीत छोरों से एक ही रह जाता है। द्वैत खो जाता है, और एक ही घटना घटती है। अर्जुन पूछता है, क्या है मेरी दशा? क्या है मेरी पात्रता? वह आप मुझे कहें। शायद वह पात्रता मेरी प्रकट हो, और मेरी संभावना मेरी वास्तविकता बन जाए, और मेरा बीज अंकुरित हो और खिल जाए। तो आप जो कहते हैं, वह मैं समझ पाऊं, जान पाऊं। और शायद मैं आपसे एक हो जाऊं, तो आपकी समग्रता भी मेरे लिए प्रकट हो जाए।
समग्रता तो तभी प्रकट होती है, जब कोई एक हो जाए। उसके पहले समग्रता प्रकट नहीं होती। यद्यपि जो एक हो गए हैं, वे भी समग्रता को कह नहीं सकते। इसलिए संतों ने गूंगे के गुड़ की बात कही है। संत गूंगे बिल्कुल नहीं हैं। संतों से ज्यादा बात करने वाले लोग खोजने मुश्किल हैं। संतों ने बहुत बातें की हैं; गूंगे बिल्कुल नहीं हैं। लेकिन जहां परमात्मा की बात आती है, वे कहते हैं, हम बिल्कुल गूंगे हो जाते हैं। इतना बड़ा है। इतना विशाल है कि कहें तो गलती होती है। कहा नहीं कि गलती हो जाती है! बोले नहीं कि दिखाई पड़ती है, भूल हो गई!
सुना है मैंने कि एक कवि, एक रहस्यवादी कवि समुद्र के तट पर गया था। सुबह सूरज निकला। समुद्र की लहरों पर सूरज का जाल छा गया। सुगंधित हवाएं थीं। फूलों की खुशबू थी। वृक्षों की छाया थी। वह आराम से बैठकर इस धूप और लहरों के खेल को देख रहा था। हवाएं उसके नासापुटों को छूने लगीं। रोआं- रोआं उसका आनंद से भर उठा। उसे स्मरण आया अपनी प्रेयसी का। लेकिन उसकी प्रेयसी वहां मौजूद न थी। वह बीमार थी और दूर एक अस्पताल में थी।
उसे लगा, काश, इस सुबह, इस सूरज को, इस आकाश को, इन हवाओं को, इन सागर की लहरों को--इस वातावरण में वह मेरी प्रेयसी क्षणभर को भी आ जाए, तो स्वस्थ हो जाए! लेकिन उसे लाना मुश्किल है। उसका खाट से भी उठना मुश्किल है। फिर सोचा उसने कि दूसरा उपाय यह हो सकता है कि मैं थोड़ा-सा यह वातावरण एक पेटी में बंद करूं और अस्पताल ले चलूं।
वह एक मजबूत पेटी लाया। रोआं-रंध्र भी कहीं खुला न रह जाए पेटी का, सब तरफ मोम लगाकर बंद कर दिया; मजबूत ताले डाले। हवाएं, सूरज की रोशनी, सुगंध, सब पेटी में बंद कर दीं। आकाश का छोटा-सा टुकड़ा भी बंद हो गया। ताला डालकर सब तरफ से बंद करके रंध्र, एक बहुमूल्य पत्र के साथ उसने संदेशवाहक को पेटी लेकर अस्पताल भेजा। लिखा उसने अपने पत्र में कि अनूठा है यहां सब। अदभुत है। चमत्कृत हो गया हूं। काश तू यहां होती! लेकिन उसका कोई उपाय नहीं, इसलिए थोड़ा-सा नमूना इस आकाश का, इस सुबह का, इस सूरज की किरणों का, इस पेटी में बंद करके भेजता हूं।
पत्र पहुंच गया। पेटी भी पहुंच गई। चाबी भी पहुंच गई। चाबी से पेटी खोल भी ली गई। लेकिन भीतर कुछ भी न था! जब बंद किया था, तब सब था। सूरज की किरणें भी थीं। हवाएं भी थीं। नाचता हुआ आकाश भी था। सब था। वह तरंगित पूरा वातावरण पेटी के ऊपर ही नाच रहा था। सब था; वह सब उसने बंद किया था।
लेकिन जब पेटी खोली गई, तो वहां कुछ भी न था।

होगा भी नहीं। आकाश पेटियों में बंद नहीं किए जा सकते। बंद करते ही सब बदल जाता है। अनुभूतियां भी शब्दों में बंद नहीं की जा सकतीं। बंद करते ही सब बदल जाता है। कहते ही खो जाता है सत्य।
इसलिए लाओत्से ने कहा है, अगर मैं कहूं, तो भूल होगी। क्योंकि जो कहा
जा सकता है, वह सत्य न होगा। और जो मैं कहना चाहता हूं, वह मैं सत्य ही कहना चाहता हूं। इसलिए उचित है कि मैं चुप ही रहूं।
लेकिन चुप रहने से भी तो नहीं कहा जा सकता। चुप रहने वाले लोग भी हुए हैं, फिर भी नहीं कहा जा सकता। बोलकर भी नहीं कहा जा सकता। आदमी की बड़ी बेचैनी है। लेकिन जीकर थोड़ी-सी खबर दी जा सकती है।
अगर यह कवि मुझे मिल जाए! बहुत मुश्किल है। कहां खोजें! उसके नाम-धाम
का कुछ पता नहीं, जिसने यह सब पेटी में बंद करके भेजा था। अगर यह मुझे मिल जाए, तो इससे मैं कहूं कि पेटी में बंद मत कर, एक और उपाय है। एक और उपाय है, वही एकमात्र उपाय है। तू पेटी में बंद मत कर। तू ठीक से इस आकाश को जी ले। तू ठीक से इन हवाओं को पी ले। तू ठीक से सूरज की इन किरणों को तेरी आंखों में समा जाने दे। यह सुवास, जो तुझे प्रीतिकर लगती है, तेरे रोएं-रोएं में रम जाए। यह सारा आकाश, जो तेरे चारों तरफ फैला है विराट, यह तेरे हृदय के भीतर भी समा जाए।
और फिर तू नाचता हुआ, तू ही नाचता हुआ अस्पताल पहुंच जा। तू नाच अस्पताल जाकर वैसे ही, जैसे हवा में तरंगें नाचती थीं और वृक्षों की पत्तियां नाचती थीं और फूल कंपते थे। इन सबके कंपन को, जीवित कंपन को लेकर तू ही अस्पताल नाचता हुआ पहुंच जा। तो शायद तेरा वह उन्मत्त भाव, तेरा वह हर्षोन्माद, तेरी वह समाधिस्थ दशा, तेरी प्रेयसी को खबर दे सके, कि जहां से तू आया है, वहां जाने योग्य है। इतनी खबर हो सकती है।
कृष्ण के कहने से पता नहीं चलेगा; कृष्ण के होने से पता चलता है जरूर। बुद्ध के कहने से पता नहीं चलेगा; होने से पता चलता है।
इसलिए अर्जुन पूछता है कि कैसे मैं अपनी आंखों को खोलूं तुम्हारी तरफ? कैसे मेरे कान तुम्हें सुनने में समर्थ हो जाएं? और कैसे मेरा हृदय तुम्हारी हृदय की धड़कन को अनुभव करने लगे। क्या चिंतन करूं? क्या भाव करूं? तुम्हीं मुझे कहो!
अर्जुन की सरलता स्पष्ट है। मान्यता को अगर वह मान लेता कि जान लिया,
तो अब कृष्ण से पूछने को कुछ शेष नहीं था। जाना उसने नहीं है, यह उसे पता है। और इसे वह छिपा भी नहीं रहा है, इसे वह स्पष्ट कह रहा है। इसलिए रास्ता खुल सकता है, रास्ता बन सकता है।
अभी महीनाभर हुआ, एक मित्र मेरे पास आए। कृष्णमूर्ति को सुनते हैं, बीस वर्ष से सुनते हैं। तो मुझसे आकर बोले कि सब ठीक लगता है, वे जो कहते हैं। लेकिन कुछ हुआ नहीं। बीस साल हो गए सुनते हुए। कान पक गए सुनते हुए। शब्द-शब्द याद हो गए। जो वे कहते हैं, दोहरा सकता हूं। और बिल्कुल ठीक कहते हैं, ऐसा भी समझता हूं। लेकिन कुछ होता नहीं!
तो मैंने उनसे पूछा, एक बार फिर से सोचो। जो वे कहते हैं, वह समझ गए हो? अगर समझ गए हो, तो हो जाना चाहिए। क्योंकि समझना और हो जाने में फासला नहीं है। नहीं, वे बोले, समझता तो मैं बिल्कुल पूरा हूं। समझने में रत्तीभर कमी नहीं है। लेकिन होता कुछ नहीं है!
अब इस आदमी की बड़ी कठिनाई है। इसको वहम है कि समझता हूं। क्योंकि अगर समझ ही ले कोई, तो होने में कुछ बचता नहीं, कुछ बचता नहीं। अगर मैं यह कहूं कि मुझे पक्का पता है कि दरवाजा कहां है मकान में, लेकिन जब भी मैं निकलता हूं तो दीवाल से टकरा जाता हूं। पक्का मुझे पता है कि दरवाजा कहां है। समझता हूं कि दरवाजा कहां है। लेकिन जब निकलता हूं, तो दीवाल से टकरा जाता हूं। बीस साल से समझता हूं कि दरवाजा कहां है! तो हम उस आदमी से क्या कहेंगे, कि तुम्हारी समझ में कहीं भूल होगी। अगर तुम्हें पक्का पता है कि दरवाजा कहां है, तो फिर दीवाल से टकराने का सवाल कहां है, निकल जाओ। वह कहता है कि समझता तो पूरा हूं, लेकिन जब भी चलता हूं, तो दीवाल में ही सिर लगता है जाकर!

इसके समझने में ही बुनियादी भूल है। लेकिन यह मानने को तैयार नहीं कि मैं समझता नहीं हूं। अहंकार तैयार नहीं होता कि मैं समझता नहीं हूं।
तो मैंने उनसे कहा कि तुम अपनी समझ छोड़कर आओ, तो शायद कुछ हो सके। यह समझ महंगी पड़ रही है। और बीस साल हो गए समझते हुए, अब और क्या करोगे? और कितना समझोगे? अब समझने को भी कुछ नहीं बचा। तुम कहते हो, सब समझ लिया। अब क्या इरादे हैं?
तो उन मित्र ने कहा, इसीलिए मैं आपके पास आया हूं कि कृष्णमूर्ति जो कहते हैं, उससे अब कुछ नहीं होता। तो मैंने उनसे कहा, फिर कृष्णमूर्ति को पूरा छोड़कर आ जाओ। फिर जो मैं कहता हूं, वह करो। उन्होंने कहा, मैं तैयार हूं। मैंने उनसे कहा, तो ठीक है। कल सुबह से तुम ध्यान शुरू करो। उन्होंने कहा, ध्यान से क्या होगा? कृष्णमूर्ति तो कहते हैं, ध्यान से कुछ भी न होगा!
ये तकलीफें हैं। ये तकलीफें हैं। जिससे नहीं हुआ है, वह भी सिर पर बैठ जाएगा। उससे कर भी नहीं सकते हैं, उसको छोड़ भी नहीं सकते हैं। और समझदारी का भूत सवार है कि समझ हमारे पास है। तो मैंने उनसे कहा कि अब मैं क्या करूं? बीस साल से तुम जानते हो कि ध्यान करने से कुछ न होगा। इससे कुछ नहीं हुआ। अब थोड़ा ध्यान करके देख लो।
एक आदमी कहता है कि भक्ति से कुछ भी न होगा। उससे मैं कहता हूं कि तुम ज्ञान की चर्चा काफी कर लिए। अगर उससे हो गया हो, तो बात समाप्त हुई। मुझे कोई एतराज नहीं है। न हुआ हो, तो नाचकर, गीत गाकर भी देख लो। पता नहीं, कहां तुम्हारा हृदय तरंगित हो जाए, कहां तुम्हारा हृदय अंकुरित हो उठे। रुकावट मत बनो। बाधा मत डालो। मंदिर में भी चले जाओ, मस्जिद में भी चले जाओ। कुरान को भी देख लो, गीता को भी देख लो। बाइबिल को भी पढ़ लो। गीत भी गा लो, नाचकर भी देख लो, ध्यान करके भी देख लो। तुम्हें कुछ पता नहीं है कि कहां से हो जाए, तो सब तरफ टटोलकर देख लो। पता नहीं, कहां द्वार मिल जाए! और जहां द्वार मिल जाए, फिर अपनी बुद्धिमत्ता को एक तरफ रखो और द्वार से बाहर निकलो। नहीं तो बुद्धिमत्ता इतनी मजबूत है हमारे पास कि द्वार भी आ जाए पास, तो चूक जाता है।
सुना है मैंने, हुजबिरी एक सूफी फकीर हुआ। वह कहा करता था कि आदमी ऐसा
है कि अपने हाथ से मौके गंवाता है। एक आदमी आया हुआ था, उसने कहा कि मैं यह नहीं मान सकता। जिंदगी हो गई, हर अवसर की तलाश में हूं कि दो पैसे इकट्ठे हो जाएं। अभी तक अवसर ही नहीं आया। गंवाने का सवाल नहीं है। मैं अवसर की तलाश में हूं, लेकिन अवसर ही नहीं आया। गंवाने का कहां सवाल है? हुजबिरी ने कहा, किसी दिन देखेंगे।
एक दिन हुजबिरी ने उस आदमी को कहा कि मैं उस पार जा रहा हूं नदी के, उस झाड़ के नीचे बैठूंगा सांझ, तुम मिलने आ जाना। और अपने दूसरे भक्तों को कहा कि एक घड़े में सोने की मोहरें भरकर, बीच पुल पर रख दो। जब यह आदमी आए, तब वहां रख देना और दूर खड़े होकर देखते रहना।
वह आदमी आया। वह पुल के बीच तक आया। और ठीक बीच के करीब आते-आते उस आदमी ने आंखें बंद कर लीं, और बीच का हिस्सा उसने आंखें बंद करके पार किया। घड़े को छोड़ आया। जो लोग खड़े थे, वे भी बहुत चकित हुए कि हद्द हो गई! यह हुजबिरी ने कोई चमत्कार किया? कोई जादू किया? कि यह आदमी भी गजब का है कि आधे पुल तक तो आंखें खोले आया और जब घड़ा बिल्कुल पास था, तो उसने आंखें बंद कर लीं! घड़े को लेकर वे हुजबिरी के पास पहुंचे। वह आदमी भी पहुंचा। हुजबिरी ने पूछा कि कहो, वह घड़ा बीच में रखा था, तुम्हें दिखाई पड़ा? उसने कहा, कौन-सा घड़ा! हुजबिरी के मित्रों ने कहा कि घड़ा कैसे दिखाई पड़ेगा! जहां घड़ा दिखाई पड़ता, उसके पहले ही इस आदमी ने आंखें बंद कर लीं। हम तो चकित हुए। हुजबिरी ने उससे पूछा कि तुमने आंखें क्यों बंद कर लीं? उसने कहा कि मुझे एक ख्याल आया कि जरा आंख बंद करके पुल पार करके देखें, कैसा होता है! ऐसे ही मौज आ गई कि जरा आंख बंद करके चलकर देखें।
हुजबिरी ने कहा कि घड़ा रखवाया था तेरे लिए। लेकिन जैसा मैं समझता हूं
कि तूने जिंदगीभर अवसर खोए हैं, तो जरूर तेरा मन कोई तरकीब निकाल लेगा और

तू अवसर खो देगा। ऐसा मैं विचार करता था, वह ठीक हो गया। तूने तरकीब निकाल ली कि जरा आंख बंद करके देखें।
हमारा मन हमारी आदतों का जोड़ है। और हमने जो भी अब तक किया है, वह मन का यंत्रवत हिस्सा हो गया है। अगर आप एक तरफ असफल हुए हैं, तो आप दूसरी तरफ भी जाएंगे अपनी सारी असफलता की आदत को ले जाएंगे। और वहां भी असफल होकर सिद्ध करेंगे कि हमें कोई सफल कर ही नहीं सकता। असफलता भी आपका सम्मान बन गई है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो आदमी असफल होता रहता है, वह सफलता से डरने लगता है, क्योंकि प्रतिष्ठा का सवाल है। वह लोगों से कहता रहता है, असफलता ही मेरा भाग्य है। सारी दुनिया मेरे खिलाफ है। नियति मेरे विपरीत है, परमात्मा मेरे विपरीत काम कर रहा है! यह वह इतनी दफे कह चुका होता है कि अब उसे डर लगता है कि कहीं मैं सफल न हो जाऊं। नहीं तो मेरे पुराने वक्तव्यों का क्या होगा! तो अगर सफलता हाथ में भी आती हो, तो वह चूक जाएगा, छोड़ देगा; और फिर कहेगा कि देखो, नियति, भाग्य! मेरे को सफलता मिलने वाली ही नहीं है।
अपने ही दुश्मन बनकर हम जीते हैं। अपने मित्र बनकर जीने की बात है। अर्जुन के इस सूत्र में अर्जुन ने अपने तरफ अपनी मित्रता बड़ी साफ जाहिर की है। वह कृष्ण से हाथ जोड़कर कह रहा है कि मुझे पता नहीं है। मानता मैं हूं, ज्ञान मुझे नहीं है। आप मुझे बता दें। और जो भी उपाय हो, जो भी उपाय हो, जो मुझे मौजूं पड़ जाए, जिससे मेरा तालमेल बैठ जाए, ताकि मैं आपको जान सकूं और आपकी समग्रता को अनुभव कर सकूं।
आज इतना ही। फिर कल हम बात करेंगे।
लेकिन उठें न। पांच मिनट कीर्तन में सम्मिलित हों, फिर जाएं। आपका मन कहे भी कि चलो, चलकर देखें, तो भी नहीं। पांच मिनट बैठे रहें।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
सातवां प्रवचन

शास्त्र इशारे हैं

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हिशृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।। 18।।
श्रीभगवानुवाच
हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।। 19।।
अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।। 20।।
और हे जनार्दन, अपनी योगशक्ति को और परम ऐश्वर्य रूप विभूति को फिर भी विस्तारपूर्वक कहिए, क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है।
इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे कुरुश्रेष्ठ,
अब मैं तेरे लिए अपनी दिव्य विभूतियों को प्रधानता से कहूंगा, क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है।
हे अर्जुन, मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं।

अर्जुन ने कृष्ण से पुनः कहा, और हे जनार्दन, अपनी योगशक्ति को और परम ऐश्वर्य रूप विभूति को फिर भी विस्तारपूर्वक कहिए, क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है।
कृष्ण के वचन हों, या बुद्ध के, या क्राइस्ट के, सुनते हुए कभी भी किसी
की उनसे तृप्ति नहीं होती है। ऊपर से देखने पर लगेगा कि वचन इतने प्रीतिकर हैं, इतने अमृतमयी हैं, इतने मधुर हैं, कि कितना ही सुनो उन्हें, तृप्ति नहीं होती है। यह बहुत ऊपरी अर्थ हुआ। गहरे में देखने पर, ये वचन ऐसे हैं कि सुनकर इनसे कभी तृप्ति नहीं हो सकती; वरन अतृप्ति और बढ़ेगी। तृप्ति होना तो दूर, और अतृप्ति बढ़ेगी, और बेचैनी बढ़ेगी, और प्यास बढ़ेगी। क्योंकि ये वचन जिस बात की खबर देते हैं, जैसे-जैसे उसकी खबर बढ़ने लगती है, वैसे- वैसे प्यास भी बढ़ने लगती है उसे पाने की।
और वह जो जलाशय है, इन वचनों में केवल उसकी छाया है। वह जो तृप्ति का स्रोत है, इन वचनों में केवल उसकी ओर इशारा है। अगर कोई वचनों से ही तृप्त होना चाहे, तो कभी तृप्त न हो सकेगा। चलना पड़ेगा उस ओर, जिस ओर ये वचन इशारा करते हैं, इंगित करते हैं। जहां ये ले जाना चाहते हैं, वहां कोई पहुंचे तो तृप्ति होगी।
लेकिन ये वचन भी बहुत प्रीतिकर हैं, अमृतमयी हैं। और कोई इनको सुनने
के लिए भी रुका रह सकता है। तब तृप्ति तो कभी न होगी, बल्कि ये वचन भी एक नशे का काम कर सकते हैं।
बुद्ध के पास आनंद चालीस वर्षों तक था। चालीस वर्ष लंबा समय है। और बुद्ध के निकटतम शिष्यों में से था। और इन चालीस वर्षों में बुद्ध ने जो भी बोला, एक शब्द भी बोला, तो आनंद ने वे सारे शब्द सुने थे, पर उसकी भी तृप्ति नहीं होती। और जब बुद्ध की मृत्यु करीब आई, तो आनंद छाती पीटकर रोने लगा। और बुद्ध ने कहा कि रोने का क्या प्रयोजन है? जो मैंने कहा है, अगर तू उसे समझ गया, तो मृत्यु होती ही नहीं है। जो मैंने कहा है, अगर तूने उसे पाया, तो रोने का कोई भी कारण नहीं है; ये आंसू बंद कर।
लेकिन आनंद को बुद्ध की बातें सुनाई भी नहीं पड़ीं। वह गहन दुख में है।
वह छाती पीटकर रो रहा है। और वह कह रहा है कि आपकी मृत्यु करीब आती, तो मेरे तो प्राण टूटते हैं। आपके अमृतमय वचन फिर कब सुनने को मिलेंगे? अब कब, कितने जन्मों के बाद आप जैसे व्यक्ति का दर्शन होगा? अब कब और कहां? कितनी यात्रा के बाद आपकी शीतल छाया में बैठने को मिलेगा? मेरी तो अभी तृप्ति नहीं हुई है, और आप जाने और विदा लेने को तैयार हो गए हैं!

तो बुद्ध ने आनंद को कहा है कि तेरी तृप्ति, चालीस वर्ष से निरंतर तू मुझे सुनता है, अगर तू चालीस जन्मों तक भी सुनता रहे, तो भी नहीं होगी।
क्योंकि तृप्ति तो होगी चलने से, यात्रा करने से, पहुंचने से। मैं मंजिल की बात कर रहा हूं, वह बात प्रीतिकर लगती है। भविष्य दिखाई पड़ता है उसमें। स्वयं की संभावनाएं कभी वास्तविक हो सकती हैं, इसकी अनुभूति होती है, प्रतीति होती है, आभास मिलता है। लेकिन वह आभास तृप्ति नहीं दे सकता।
हम कितनी ही जल की चर्चा सुनें, और चाहे वह चर्चा कृष्ण या बुद्ध ही क्यों न करते हों, तो भी प्यास नहीं मिट सकती है। बल्कि जल की चर्चा से प्यास और बढ़ जाएगी; और सोई होगी, तो जग जाएगी; और छिपी होगी, तो प्रकट हो जाएगी। और जल की चर्चा और उसकी महिमा, हमारे प्राणों को एक अभीप्सा दे देगी, आग जलने लगेगी भीतर।
तो एक तो ऊपरी अर्थ है। जैसा आमतौर से कोई गीता को पढ़ेगा, तो वही दिखाई पड़ेगा। वह अर्थ है कि वचन इतने मधुर हैं कि सुनकर तृप्ति नहीं होती, अर्जुन और भी सुनना चाहता है। लेकिन कितना ही सुनता रहे, यह तृप्ति कभी होगी नहीं।
और एक मजे की बात है। जिन वचनों को सुनने से कभी तृप्ति नहीं होती, उसका अर्थ ही यह हुआ कि वे वचन किसी ऐसी जगह की तरफ इशारा कर रहे हैं, जहां पहुंचकर ही तृप्ति हो सकती है। और जिन वचनों को सुनकर तृप्ति हो जाती है, उन वचनों से ऊब और बोर्डम पैदा हो जाएगी। जिन वचनों को सुनकर तृप्ति हो जाती है, उनसे ऊब पैदा हो जाएगी।
यह बहुत मजे की बात है कि इस पृथ्वी पर सभी तरह के वचन सुनकर ऊब पैदा होने लगेगी; सिर्फ उन वचनों को छोड़कर, जिन्हें सुनने से ही कुछ भी नहीं मिलता है, सिर्फ प्यास ही मिलती है।
शायद धर्मशास्त्र की परिभाषा मेरी दृष्टि में यही है। धर्मशास्त्र मैं उस शास्त्र को कहता हूं, जिसे पढ़कर, जिसे समझकर, तृप्ति न मिले, और अतृप्ति बढ़ जाए। जिस शास्त्र को पढ़कर तृप्ति मिले, वह साहित्य होगा, धर्मशास्त्र नहीं। जिस शास्त्र को पढ़कर सुख मिले, वह साहित्य की बड़ी कृति होगी, कलाकृति होगी, लेकिन धर्मशास्त्र नहीं। धर्मशास्त्र तो प्यास देगा, जलन देगा, आग देगा, सारे प्राण जलने लगेंगे। और अतृप्त हो जाएंगे आप। आमतौर से हम सुनते हैं कि धार्मिक आदमी बड़े संतुष्ट होते हैं। वह बात अधूरी है और एक अर्थ में झूठी है। वे हमें संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं उन चीजों के संबंध में, जिन चीजों के संबंध में हम असंतुष्ट हैं। और हमें उनका असंतोष दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि वे उन चीजों के संबंध में असंतुष्ट हैं, जिनकी हमारे मन में कोई वासना नहीं है। लेकिन धार्मिक आदमी महा असंतुष्ट होता है। परमात्मा को पाने को, मुक्ति पाने को, सत्य पाने को, उसके प्राण एक लपट बन जाते हैं असंतोष के।
हां, धन पाने में उसका असंतोष नहीं होता। यश पाने में उसका असंतोष नहीं होता। उसके पास जो भी है, वह संतुष्ट मालूम पड़ता है। लेकिन इसका कारण बहुत गहरा है। इसका कारण यह है कि उसका सारा असंतोष परमात्मा पर लग जाता है। इन छोटी-मोटी चीजों पर असंतोष देने को उसके पास बचता नहीं। लेकिन हमें वह संतुष्ट मालूम पड़ता है। क्योंकि जिन चीजों से हम परेशान हैं, अगर हमारा एक पैसा खो जाए, तो हम असंतुष्ट होते हैं; उसका सब भी खो जाए, तो भी असंतुष्ट नहीं मालूम पड़ता। तो हम कहते हैं, कितना संतोषी आदमी है! लेकिन हमें उसके भीतर की आग का कोई भी पता नहीं है। यह संतोष उस भीतरी असंतोष का ही परिणाम है।
यहां एक फर्क ख्याल में ले लेना चाहिए।
कुछ लोग अपने को समझा-बुझाकर संतुष्ट रहते हैं। उनका संतोष बिल्कुल
ही मिथ्या होता है। जब तक आपके जीवन में एक परम असंतोष न जगे, तब तक आपका बाहरी संतोष झूठा होगा। जब तक आपकी सारी असंतोष की शक्ति परमात्मा की तरफ न लग जाए, तब तक संसार के प्रति आपकी संतोष की बातें सिर्फ धोखा होंगी।
आदमी अपने को समझा-बुझाकर संतुष्ट हो सकता है। भयभीत आदमी डरता भी है।
चिंतित आदमी परेशान भी होता है। तनावग्रस्त आदमी पीड़ा भी अनुभव करता है।

इन सारी पीड़ाओं, चिंताओं और भय के कारण कोई व्यक्ति अपने को समझा-बुझाकर संतुष्ट भी हो सकता है। लेकिन वह संतोष झूठा है।
वास्तविक संतोष का जन्म होता है भीतर के एक गहरे असंतोष से। एक नए आयाम में, एक न्यू डायमेंशन में जब आपकी सारी असंतोष की आग दौड़ने लगती है, तब आप बाहर के प्रति बिल्कुल संतुष्ट हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि आपने संतोष धारण कर लिया, बल्कि इसलिए कि बाहर की चीजें असंगत और व्यर्थ हो गई हैं। उनका कोई भी मूल्य नहीं रहा है। वे निर्मूल्य हो गई हैं। उनसे अब कोई बेचैनी नहीं होती। इतनी बड़ी बेचैनी पैदा हो गई है कि छोटी बेचैनियां व्यर्थ हो गई हैं।
लेकिन धर्मशास्त्र को पढ़ने से आपको कोई तृप्ति नहीं मिल सकती। आपको अतृप्ति मिलेगी। नई अतृप्ति मिलेगी। एक नई खोज की आकांक्षा जगेगी।
तो धर्मशास्त्र मैं कहता हूं उस शास्त्र को, जो आपके सारे असंतोष को इकट्ठा करके परमात्मा की ओर लगा दे। जो आपकी सारी वासनाओं को खींच ले और एक ही वासना में निमज्जित कर दे। जो आपकी सारी इच्छाओं को इकट्ठा कर ले, एकाग्र कर ले और एक ही आयाम में प्रवाहित कर दे। जो आपके प्राणों की सारी बिखरी हुई किरणों को इकट्ठा कर ले और एक लपट बन जाए और वह लपट प्रभु की यात्रा पर, परम सत्य की यात्रा पर निकल जाए।
यह जो असंतोष है, वही अर्जुन को भी अनुभव हो रहा है। लेकिन शायद उसे साफ नहीं है। शायद उसने जब यह वचन कहा है, तो उसका भी प्रयोजन यही है कि आपके वचन बहुत मधुर हैं, बहुत प्रीतिकर हैं, सुन-सुनकर भी मन भरता नहीं; आप इन्हें और कहे जाएं।
लेकिन अर्जुन को पता हो या न पता हो, ये कृष्ण के वचन जन्मों-जन्मों तक
भी वह सुनता रहे, तो भी इनको सुनकर ही संतोष नहीं मिलेगा। इनके अनुकूल रूपांतरित होना पड़ेगा, इनके अनुकूल अर्जुन को बदलना पड़ेगा। और अगर इनके अनुकूल अर्जुन बदल जाए, तो अर्जुन स्वयं कृष्ण हो जाएगा। कृष्ण हो जाए, तो ही संतुष्ट हो सकेगा। उसके पहले कोई संतोष नहीं है। उसके पहले अतृप्ति बढ़ती चली जाएगी।
इसलिए वह कहता है कि हे जनार्दन, अपनी योगशक्ति को, अपने ऐश्वर्य को, अपनी विभूतियों को फिर से विस्तारपूर्वक कहिए।
अभी-अभी कृष्ण ने बातें कही हैं, अभी-अभी--ऐश्वर्य की, योग की, विभूति की, परमात्मा की परम शक्ति की, उसके परम विस्तार की। लेकिन अर्जुन कहता है, और विस्तार से कहिए। आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती। और एक बात ध्यान देने की है कि अर्जुन कहता है, विस्तारपूर्वक कहिए। हम सबको यह ख्याल होता है कि अगर कोई बात हमारी समझ में न आती हो, तो विस्तारपूर्वक समझाने से शायद समझ में आ जाए। यह भ्रांति है। दो तरह की बातें हैं इस जगत में। कुछ बातें हैं, जो आपको विस्तारपूर्वक कही जाएं तो आपकी समझ में आ जाएंगी। और कुछ बातें हैं, जो विस्तारपूर्वक कही जाएं तो आपको पहले जितनी समझ में आती थीं, उतनी समझ भी खो जाएगी!
जैसा मैंने कल आपको कहा कि दो प्रकार के ज्ञान हैं, परिचय और ज्ञान।
जो बातें परिचय की हैं, उनको विस्तार से कहने पर वे समझ में आ जाएंगी। क्योंकि परिचय का ही सवाल है, थोड़ा और विस्तार से बताएंगे, तो ख्याल में आ जाएगा। लेकिन जिसे मैंने ज्ञान कहा, जानना कहा, वह जानना आपको विस्तार से कितना ही कहा जाए, समझ में नहीं आएगा। बल्कि जितना विस्तार से आप सुनेंगे, उतना ही पता चलेगा, कम समझ में आ रहा है।
मौलुंकपुत्त, एक बहुत बुद्धिमान और पंडित आदमी, बुद्ध के पास गया। ज्ञानी था और ज्ञान के दंभ से भी भरा था। जानता था शास्त्रों को और यह भी जानता था कि मैं जानकार हूं। बुद्ध के पास वह आया और उसने बुद्ध से कहा कि मुझे कुछ ज्ञान की बातें दें। मैं भिक्षा का पात्र लेकर आया हूं; मुझे कुछ ज्ञान दें।
बुद्ध ने कहा, तेरा भिक्षा का पात्र पहले से ही बहुत भरा हुआ है और ज्ञान तेरे पास जरूरत से ज्यादा है। सच तो यह है कि ज्ञान के कारण तुझे अपच हो गया है। अगर मैं तेरा कल्याण करना चाहता हूं, तो पहले तो मुझे तेरा

ज्ञान तुझसे छीनना पड़ेगा। और अगर मैं तुझे पुनः अज्ञानी बनाने में समर्थ हो जाऊं, तो शायद तेरे जीवन में कोई घटना घट सके, जहां ज्ञान का दीया जले। मौलुंकपुत्त को बहुत अजीब मालूम पड़ा। वह गुरुओं के पास जाता था इसलिए
कि और विस्तार से जान ले; और जो कमी रह गई हो डिटेल्स में, वह उसको भी पता कर ले। कुछ बातें चूक गई हों, उनसे भी परिचित हो जाए। किन्हीं सिद्धांतों में कुछ बातें बेबूझ रह गई हों, धुंधली हों, उन्हें भी साफ कर ले।
बुद्ध ने उससे कहा कि मैं तुझे कुछ और विस्तार से नहीं कहूंगा। तू जितना विस्तार जानता है, उसे भी छीन लेना चाहता हूं। तू खाली हो जाए, तो शायद कभी तेरे जीवन में ज्ञान की घटना घट सके।
विस्तार का मतलब ही होता है तथ्यात्मक। एक चीज के संबंध में हम और जान लें। चारों तरफ घूमकर और पता लगा लें। विस्तार का मूल्य नहीं है; विस्तार से परिचय होता है, एक्सटेंशन, फैलाव। ज्ञान विस्तार से नहीं होता, गहराई से होता है।
ज्ञान होता है इनटेंसिव, एक्सटेंसिव नहीं। ज्ञान में किसी एक ही बिंदु में गहरा उतरना पड़ता है; और विस्तार में एक बिंदु के आस-पास अनेक बिंदुओं पर यात्रा करनी पड़ती है। अगर मुझे एक फूल के संबंध में ज्यादा जानना है, तो फूल के संबंध में जितनी किताबें लिखी गई हों, उनको जानूं। और अगर मुझे फूल को जानना है, तो फूल में ही डूब जाऊं, उतर जाऊं, लीन हो जाऊं; विस्तार को छोड़ दूं।
परिचय विस्तार लेता है, ज्ञान गहराई लेता है। परिचय ऐसा है, जैसे कोई आदमी नदी के ऊपर तैरता हो, दूर तक तैरता हो। और ज्ञान ऐसा है, जैसे कोई आदमी नदी में डुबकी लगाता हो। तो डुबकी लगाने वाले को एक ही जगह डूब जाना पड़ता है। और लंबा फैलाव करने वाले को पानी की सतह पर दूर-दूर तक हाथ मारने पड़ते हैं।
जो लोग ज्ञान को विस्तार समझते हैं, वे ज्ञान से चूक जाएंगे। जो लोग ज्ञान को गहराई समझते हैं, इनटेंसिटी समझते हैं, वे लोग ज्ञान को उपलब्ध हो पाते हैं। एक छोटे-से बिंदु में पूरी तरह डूब जाने से ज्ञान उपलब्ध होता है। और बड़ी दूर तक भटकने से विस्तार उपलब्ध होता है। आप बहुत-सी बातें जान सकते हैं और फिर भी जानने से वंचित रह जाएं।
सुकरात ने मरने के पहले कहा है कि जब मैं बच्चा था, तो मैं समझता था कि मैं सब कुछ जानता हूं। जब मैं जवान हुआ, तो मैंने समझा कि बहुत कुछ है, जो मैं नहीं जानता हूं। और अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूं, तो मैं कह सकता हूं स्पष्ट घोषणा के साथ कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। बच्चा था, तब सोचता था, सब जानता हूं।
सभी बच्चे ऐसा सोचते हैं। सभी बच्चे ऐसा सोचते हैं कि सब जानते हैं।
और जो बूढ़े भी ऐसा सोचते हैं कि सब जानते हैं, समझना कि उनकी बौद्धिक उम्र ज्यादा नहीं है, बच्चों के बराबर है। जवान को शक होने लगता है। बच्चा बिल्कुल दृढ़ होता है; वह जो भी जानता है, पक्का जानता है। उसे शक ही नहीं होता अपने पर। उसे अपने अज्ञान का पता ही नहीं होता।
बच्चे अज्ञानी होते हैं, लेकिन अज्ञान का उन्हें पता नहीं होता। उनका अज्ञान ही उनके लिए ज्ञान होता है। इसलिए बच्चे इतने कम तनाव से भरे हुए मालूम पड़ते हैं। कोई बेचैनी नहीं मालूम पड़ती। वे अपने अज्ञान में थिर हैं। अपने अज्ञान में बड़ी मौज में हैं। कोई उन्हें परेशानी नहीं है कुछ जानने की; वे सभी कुछ जानते हैं।
जवान होते-होते आदमी को दिखाई पड़ना शुरू होता है कि मेरे जानने की सीमाएं हैं। और उसे यह भी दिखाई पड़ना शुरू होता है कि बचपन की जो धारणाएं थीं, उनके नीचे की जमीन हट गई। उसे यह भी पता चलना शुरू होता है कि जो निश्चित था, वह अनिश्चित हो गया। जिसे मैंने पक्का समझा था, वह भी पक्का नहीं है। जवान बेचैन होने लगता है। उसे कुछ बातें पता चलती हैं कि मैं जानता हूं, और बहुत बातें पता चलती हैं कि मैं नहीं जानता हूं।
बूढ़ा आदमी अगर ठीक से विकसित हो, तो उसे पता चलता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

सुकरात के संबंध में यूनान की एक देवी ने घोषणा कर दी थी कि सुकरात परम ज्ञानी है; उससे बड़ा ज्ञानी पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। सुकरात के गांव के लोगों ने यह खबर सुनी, वे सुकरात के पास गए और उन्होंने कहा कि धन्य हैं भाग्य हमारे कि हमारे गांव में तुम्हारा जन्म हुआ, क्योंकि देवी ने घोषणा की है कि तुम पृथ्वी पर इस समय परम ज्ञानी हो।
सुकरात ने कहा कि देवी को जाकर कहना कि उसने थोड़ी देर कर दी। जब मैं मूढ़ था और नासमझ था, तो मैं भी ऐसा ही सोचता था। अगर उसने तब घोषणा की होती, तो मुझे बड़ा आनंद आता। लेकिन अब तो मैं जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। अब एक ही ज्ञान मेरे पास बचा है कि मैं बिल्कुल अज्ञानी हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। तो जाकर देवी से कहना कि थोड़ी देर कर दी। यह सुनकर मुझे कुछ आनंद नहीं आता।
गांव के लोग परेशान हुए। एक तरफ तो उन्हें खुशी भी हुई थी कि एथेंस का नागरिक, उनके गांव का सुकरात, परम ज्ञानी घोषित हुआ। लेकिन भीतर पीड़ा भी हुई थी कि हम अज्ञानी ही रह गए और हमारे ही गांव का यह सुकरात, यह परम ज्ञानी हो गया! एक तरफ ऊपर से खुशी भी हुई थी, भीतर दर्द भी हुआ था।
सुकरात से जब यह बात सुनी, तो खुशी तो एक तरफ समाप्त हो गई, दर्द ऊपर आ गया; और वे बड़े खुश हुए। बड़े खुश हुए कि हम खुद ही जानते थे पहले से ही कि देवी से कुछ भूल हो गई है। सुकरात और परम ज्ञानी! जरूर कोई गलती हो गई है। अपने ही गांव का आदमी, भलीभांति हम जानते हैं, यह क्या जानता है!
वापस देवी के पास वे गए और उन्होंने कहा कि क्षमा करें, आपसे कुछ भूल
हो गई। क्योंकि हम सुकरात से ही स्वयं पूछकर आ रहे हैं। और सुकरात ने खुद ही कहा है कि मुझसे बड़ा अज्ञानी इस जमीन पर कोई भी नहीं है। इसलिए आप अपने वक्तव्य को बदल लें!
देवी ने कहा कि इसीलिए तो सुकरात को मैंने ज्ञानी कहा है, क्योंकि जिसको अपने परम अज्ञानी होने का ज्ञान हो जाता है, उससे बड़ा ज्ञानी जगत में कोई भी नहीं होता है। यही है कारण सुकरात को महाज्ञानी कहने का। बच्चे अज्ञानी होते हैं; उन्हें पता नहीं है। परम ज्ञानी भी बच्चों जैसा अज्ञानी हो जाता है, लेकिन उसे पता होता है। वही निर्दोषता फिर उसके जीवन में आ जाती है, जैसे उसे कुछ पता नहीं, वही इनोसेंस।
लेकिन हम सबकी भूल यही है ख्याल में कि थोड़ा और ज्यादा जान लेंगे, तो शायद ज्ञान हो जाए। जिंदगीभर हम इसी तरह संग्रह करते हैं। ज्ञान को हम संग्रह समझते हैं। इसलिए बूढ़ा आदमी सोचता है कि मैं ज्यादा जानता हूं, क्योंकि उसके पास निश्चित ही ज्यादा संग्रह होता है।
पिछले महायुद्ध में अमेरिका में लोगों को मिलिटरी में भर्ती करते वक्त लाखों लोगों की मानसिक उम्र जांची गई, तो अमेरिका के मनोवैज्ञानिक चकित रह गए। शक तो बहुत बार होता है कि लोगों की मानसिक उम्र कम होनी चाहिए, लेकिन इतनी कम होगी, यह कभी नहीं सोचा था। लाखों लोगों की मानसिक उम्र जांचने से पता चला कि आमतौर से आदमी की औसत मानसिक उम्र, मेंटल एज तेरह साल से ज्यादा नहीं होती।
शरीर की उम्र तो बढ़ती चली जाती है। सत्तर साल का आदमी हो जाता है, लेकिन मानसिक उम्र तेरह साल पर औसत रूप से रुक जाती है। जितनी तेरह साल के बच्चे के पास बुद्धिमत्ता होती है, उतनी ही सत्तर साल के आदमी के पास होती है। संग्रह अलग होता है, लेकिन बुद्धि ज्यादा नहीं होती। संग्रह ज्यादा होता है, क्योंकि सत्तर साल का अनुभव है। लेकिन जो बुद्धि संग्रह करती है, वह उतनी ही होती है, जितनी तेरह साल की। जिस बुद्धि में यह संग्रह बढ़ता चला जाता है, उस बुद्धि की क्षमता तेरह साल की ही होती है।
बड़ी दुखद बात है। लेकिन सत्तर साल का आदमी यह मानने को राजी नहीं होगा। वह कहेगा कि मैं जानता हूं। क्योंकि उसके पास विस्तार ज्यादा है। वह ज्यादा तथ्य गिना सकता है, ज्यादा अनुभव गिना सकता है। उसके पास स्मृति बड़ी है; सत्तर साल उसकी स्मृति में टंक गए।
लेकिन विस्तार से कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। वरन विस्तार से यह
भी हो सकता है कि ज्ञान की संभावना क्षीण हो जाए। इसलिए यह जानकर आप हैरान

होंगे कि इस जगत में आज तक जितनी भी महाज्ञान की घटनाएं घटी हैं, उनमें किसी बूढ़े को घटी हो, इसकी अब तक इतिहास में कोई खबर नहीं है।
यह बहुत हैरानी की बात है। बुद्ध हों, कि महावीर हों, कि जीसस हों, कि शंकराचार्य हों, कि नागार्जुन, कि वसुबंधु, कि लाओत्से, कोई भी गहरे बुढ़ापे में परमज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। ये सारी घटनाएं पैंतीस साल के करीब घटती हैं, पैंतीस साल के पहले आमतौर से या पैंतीस साल के करीब। पैंतीस साल के बाद आदमी बूढ़ा होना शुरू हो जाता है। पीक, पैंतीस साल है। अगर सत्तर साल उम्र है; तो पैंतीस साल पर आदमी शिखर पर होता है, फिर उतार शुरू हो जाता है।
अब तक, उतरती जिंदगी में बहुत कम लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। यह हैरानी की बात है। होना उलटा चाहिए। अगर विस्तार से ज्ञान बढ़ता हो, तो बुद्ध को, महावीर को, शंकर को, विवेकानंद को, इन सबको ज्ञान होना चाहिए कोई पचास-साठ साल के बाद। लेकिन अब तक ऐसा हुआ नहीं। अब तक जो भी महाज्ञान की घटनाएं घटी हैं, वे मध्य या मध्य के पहले घटी हैं।
इसका अर्थ है। कभी-कभी विस्तार बहुत बढ़ जाए, तो इतना छा जाता है धुएं
की तरह मन पर कि फिर गहराई में उतरना मुश्किल हो जाता है। आदमी इतना जान लेता है कि जानने में कहीं भी एक तरफ एकाग्र होने की उसे सुविधा नहीं रह जाती। उसका मन इतने-इतने, इतने-इतने तथ्यों में बंट जाता है और इतनी-इतनी जगह भटकने लगता है कि उसे एक जगह रुककर प्रवेश करना मुश्किल हो जाता है। विस्तार बाधा भी बन सकता है।
दो बातें, विस्तार ज्ञान नहीं है, परिचय है, और परिचय ऊपरी बात है। और दूसरी बात, बहुत विस्तार हो, तो बाधा भी बन सकती है। तैरने में कोई आदमी बहुत कुशल हो जाए, तो पैसिफिक महासागर के ऊपर भी तैर सकता है, जहां पांच मील गहराई है नीचे। लेकिन तैरने में बहुत कुशल हो जाए, तो शायद डुबकी लगाने का उसे ख्याल ही न आए।
कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि जो तैरना नहीं जानता, उसकी मजबूरी में भी डुबकी लग जाती है। लेकिन तैरने वाले की डुबकी तो लगना मुश्किल है, जब तक कि वह स्वयं न लगाए। कभी-कभी भूल से भी न तैरने वाले की डुबकी लग जाती है। इसलिए एक और दूसरी मजे की घटना आपसे कहता हूं कि इतिहास में पंडितों
को परमज्ञान हुआ हो, इसके उल्लेख न के बराबर हैं। कभी-कभी अज्ञानी भी परमज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं, लेकिन पंडित नहीं हो पाते! कबीर हैं, बेपढ़े-लिखे हैं। मोहम्मद हैं, बेपढ़े-लिखे हैं। जीसस हैं, बेपढ़े-लिखे हैं। नानक हैं, बेपढ़े-लिखे हैं। ये बेपढ़े-लिखे लोग भी कभी डुबकी लगा जाते हैं। कबीर ने डुबकी लगा ली और काशी के पंडित, जो बहुत जानते थे, और वहीं कबीर के आस-पास थे, और कबीर को एक गंवार जुलाहा समझते थे, वे डुबकी नहीं लगा पाए। वे डुबकी नहीं लगा पाए। वे इतना जानते थे कि शायद यह भूल ही गए कि अभी असली गहराई तो जानी ही नहीं है, यह सब विस्तार है--शब्दों का, शास्त्रों का, सिद्धांतों का। अर्जुन के मन में भी वही ख्याल है कि शायद तृप्ति मिल जाए, अगर और थोड़ा ज्यादा जान लूं।
ध्यान रहे, जब आप कोई चीज ज्यादा जानते हैं, तो आप तो वही रहते हैं, आपका संग्रह भर बढ़ जाता है। और जब कोई चीज आप गहरी जानते हैं, तो संग्रह नहीं बढ़ता, आप बदल जाते हैं। गहरा जानने के लिए स्वयं गहरा होना पड़ता है। ज्यादा जानने के लिए किसी को गहरा होने की जरूरत नहीं।
जैसे धन तिजोड़ी में बढ़ता चला जाता है, एक के दस हजार रुपए हो जाते हैं,
दस हजार के दस लाख हो जाते हैं। लेकिन इससे आप यह मत समझना कि जिसकी तिजोड़ी में धन बढ़ रहा है, वह आदमी धनी हो रहा है। अक्सर तो ऐसा होता है कि जितना ज्यादा धन, उतना गरीब आदमी वहां मिलेगा। जितना ज्यादा धन हो जाता है, उतना भीतर आदमी गरीब हो जाता है। और अक्सर धनी आदमी एक ही काम करते हैं, अपने धन पर पहरा देने का। काम करते-करते समाप्त हो जाते हैं। उनकी जिंदगी एक पहरेदार से ज्यादा नहीं रह जाती।
धनी आदमी कंजूस हो जाता है, क्योंकि गरीब हो जाता है। और कभी-कभी गरीब
भी इतना कंजूस नहीं होता। और जो कंजूस नहीं है, वह अमीर है। और जो कंजूस है, वह गरीब है।

ज्ञान के संबंध में भी यही घटना घटती है। कुछ लोग ज्ञान की तिजोड़ी भरते चले जाते हैं और भीतर अज्ञानी रह जाते हैं। कितना आप जानते हैं, इससे आपके ज्ञान का कोई भी संबंध नहीं है। कितने आप बदले हैं, कितने आप रूपांतरित हुए हैं, कितने आप डूबे हैं, कितने आप गहरे गए हैं, इससे आपके ज्ञान का संबंध है।
और ऐसा भी हो सकता है कि आप कहें कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं और तो भी
आप परमज्ञान को उपलब्ध हो जाएं। क्योंकि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, ऐसा जिसको ख्याल में आ जाए, उसका अहंकार तत्क्षण बिखर जाता है। मैं जानता हूं, यह भी अहंकार के लिए ईंटें बन जाती हैं। मेरे पास धन है, तो भी अहंकार मजबूत होता है। मेरे पास ज्ञान है, तो भी अहंकार मजबूत होता है। मेरे पास कुछ भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, अहंकार विलीन हो जाता है। और जहां होता है अहंकार विलीन, वहीं डुबकी लग जाती है।
अहंकार हमारा तैरना है। और जब अहंकार छूट जाता है, हाथ-पैर बंद हो जाते हैं, हम डुबकी लगा लेते हैं।
अर्जुन पूछता है, मुझे विस्तार से कहिए। सोचता है, शायद अभी मेरी समझ में नहीं आया। कृष्ण और विस्तार से कहें, तो मेरी समझ में आ जाए। और कृष्ण विस्तार से कहेंगे। इसलिए नहीं कि वे सोचते हैं कि अर्जुन की समझ में आ जाएगा। बल्कि इसलिए कि अर्जुन देख ले कि विस्तार से कहने पर भी समझ में नहीं आता है। समझ कोई बात ही और है।
समझ के लिए, दूसरे ने कितना बताया, यह मूल्यवान नहीं। समझ के लिए, मैं कितना स्वयं को बदला, नया बना, यह महत्वपूर्ण है।
उसने भी शायद यही सोचकर कहा है कि अगर और कृष्ण बहुत-से वचन कहें, तो मेरी तृप्ति हो जाए। लेकिन कृष्ण कितना ही कहें, तृप्ति नहीं होगी। क्योंकि कृष्ण जो वचन बोल रहे हैं, वे धर्म के परम वचन हैं।
अगर एक कविता को आप रोज-रोज पढ़ें, तो आप जल्दी ही ऊब जाएंगे। फिर कभी
उस कविता में आपको स्वाद न आएगा। और यही रोज विद्यालयों में, विश्वविद्यालयों में होता है। दुनिया की श्रेष्ठतम कविताएं चूंकि कोर्स में रख दी जाती हैं, इसलिए रसहीन हो जाती हैं। शेक्सपीयर और कालिदास भी दुश्मन मालूम पड़ने लगते हैं। और एक दफा जो यूनिवर्सिटी से शेक्सपीयर या कालिदास को या भवभूति को पढ़कर लौटा है, फिर दुबारा कभी उनको नहीं पढ़ेगा। भारी नुकसान हो गया। बड़े सौंदर्य की यात्रा पर ले जा सकते थे वे, लेकिन पुनरुक्ति, बार-बार पढ़ने से ऊब पैदा हो गई। श्रेष्ठतम कविता भी पुनरुक्त करने से ऊब पैदा कर देगी।
लेकिन धर्म-ग्रंथ का हम पाठ करते हैं। पाठ का मतलब है, रोज हम पुनरुक्त करते हैं। अगर आप थोड़े भी होशपूर्वक यह पाठ कर रहे हों, तो धर्म-ग्रंथ रोज-रोज आपकी प्यास को जगाएगा। इसको मैं कसौटी कहता हूं।
अगर आप रोज गीता पढ़ते हैं, और गीता पढ़-पढ़कर आपको ऊब आने लगती है, जम्हाई आती है और आंख झपने लगती हैं, तो आप समझना कि गीता आपके लिए धर्मशास्त्र नहीं है। अगर गीता को रोज-रोज पढ़कर भी आपको नई प्रेरणा मिलती है, और नई प्यास जगती है, और नई खोज शुरू होती है, और ऐसा लगता है कि तृप्ति नहीं हुई, तो ही आप समझना कि गीता आपके लिए धर्म-ग्रंथ है।
गीता को सिर लगाने से पता नहीं चलता कि वह धर्म-ग्रंथ है। गीता को नमस्कार करने से भी पता नहीं चलता कि धर्म-ग्रंथ है। गीता आपको उबाए न, ऊब पैदा न करे; और गीता में आपका रस, जितना आप गीता को पढ़ें, उतना बढ़ता चला जाए, और उतनी ही अतृप्ति मालूम पड़े, तो ही आप समझना कि गीता आपके लिए धर्म-ग्रंथ हुआ। इसलिए नियम था कि धर्म-ग्रंथ को पढ़ा न जाए, पाठ किया जाए।
पढ़ने और पाठ करने में फर्क है। पढ़ने का मतलब, एक दफा पढ़ लिया, बात समाप्त हो गई। पाठ का मतलब है, रोज-रोज किया जाए। और अगर आप वर्षों तक भी गीता का पाठ करके यह कह सकें, अनुभव कर सकें कि मुझे ऊब नहीं आती, मेरा स्वाद और बढ़ता ही चला जाता है, गीता मुझे रोज ही नई मालूम पड़ती है, तो ही आप समझना कि गीता और आपके बीच जो संबंध है, वह धर्म-ग्रंथ और आपके बीच संबंध है। और अगर आपको भी ऊब आने लगती हो, और गीता कंठस्थ हो जाती हो, और मेकेनिकली रोज आप यंत्रवत उसे दोहरा देते हों... ।

मैं देखता हूं गीता के पाठियों को, उनको फिर कौन-सा पन्ना सामने है, इसकी भी चिंता नहीं रहती। उनको कंठस्थ है। पन्ना कोई भी हो, वे दोहराए चले जाते हैं। किताब उलटी भी रखी हो, तो कोई फर्क नहीं पड़ता।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह बैठकर कुरान पढ़ रहा है। उलटी रखे हुए है! गांव में तो कोई पढ़ा-लिखा आदमी नहीं है, इसलिए किसी को पता नहीं है कि वह उलटा पढ़ता है कि सीधा पढ़ता है! एक अजनबी गांव से गुजर रहा है। मुल्ला के पास दस-पांच उसके शिष्य भी बैठे हैं। वह अजनबी भी भीड़ देखकर वहां आ गया। उसकी बेचैनी बढ़ने लगी, जब उसने देखा कि किताब उलटी रखी है और मुल्ला पढ़े जा रहा है। आखिर उससे न रहा गया। सब्र रखना मुश्किल हुआ। उसने खड़े होकर कहा कि और सब तो ठीक है। आप जो कह रहे हैं, वह भी ठीक है। लेकिन किताब आप उलटी रखकर पढ़ रहे हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मैं कोई साधारण पढ़ने वाला नहीं हूं। किताब कैसी भी हो, उलटी हो कि सीधी हो; हो कि न हो। यह किताब अपने लिए नहीं रखी है; ये लोग यहां बैठे हैं, इनके लिए रखी है। कुरान कंठस्थ है। पढ़ने की झंझट वे उठाएं, जिन्हें कुरान पता न हो, नसरुद्दीन ने कहा, कुरान मुझे पता है। पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है।
यह जो पता होना है, यांत्रिक, मशीन की तरह, इससे कोई व्यक्ति किसी धर्म-ग्रंथ से अतृप्ति नहीं पा सकता; ऊब पाएगा, परेशान हो जाएगा। भय के कारण, लोभ के कारण रोज पढ़ता रहेगा। आशा में, आकांक्षा में, कि शायद कुछ मिले, पढ़ता रहेगा। भय में, कि न पढूं तो कोई नुकसान न हो जाए, पढ़ता रहेगा। लेकिन कोई हार्दिक संबंध स्थापित नहीं होगा। धर्म-ग्रंथ का पाठ करने पर ही पता चलता है कि अगर आप ऊबें न, तो ही आप धर्म से संबंधित हो रहे हैं। आपकी प्यास रोज जगती चली जाए।
अर्जुन कहता है कि विस्तार से मैं जान लूं, और आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती। सोचता है, और सुनूं, तो तृप्ति हो जाए! लेकिन आपको पता है, हर तृप्ति के बाद ऊब, बोर्डम अनिवार्य है। हर तृप्ति ऊब में बदल जाती है। ऐसी कोई तृप्ति आपने जानी है, जो ऊब न बन जाए? गरीब आदमी धन से कभी नहीं ऊबता। ऊब ही नहीं सकता, क्योंकि धन होना चाहिए ऊबने के लिए। अमीर आदमी अगर सच में अमीर हो जाए, तो धन से ऊब जाता है। क्योंकि जो मिल जाता है, उससे ऊब पैदा होती है।
बुद्ध का जन्म हुआ, तो ज्योतिषियों ने कहा कि यह लड़का या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा या संन्यासी हो जाएगा। पिता बहुत चिंतित हुए। बुढ़ापे का बेटा था। बहुत बाद उम्र में पैदा हुआ था। एक ही बेटा था। और ज्योतिषियों ने यह क्या कहा कि संन्यासी हो जाएगा या चक्रवर्ती सम्राट होगा! तो पिता ने कहा कि मैं क्या इंतजाम करूं कि मेरा लड़का संन्यासी न हो पाए?
यह बहुत मजे की बात है। बुद्ध के पिता भी दूसरे संन्यासियों के पैर छूने जाते थे। खुद का बेटा संन्यासी न हो जाए, इसकी चिंता में पड़े हैं! आपके पड़ोस में भी कोई संन्यासी आए, तो आप पैर छूने जाएंगे। आपका बेटा संन्यासी होने लगे, आप लट्ठ लेकर दरवाजे पर खड़े हो जाएंगे!
यह बहुत मजे की बात है। यह संन्यास के प्रति आदर झूठा है। नहीं तो आपकी कामना यह हो कि आपका बेटा अगर कुछ भी हो तो पहले संन्यासी हो। लेकिन वह नहीं है। यह संन्यास के प्रति आदर झूठा है, बिल्कुल झूठा है।
बुद्ध के पिता बहुत चिंतित हुए, और उन्होंने लोगों से पूछा कि मैं क्या करूं? कैसे रोकूं इसको संन्यासी होने से? तो एक ज्योतिषी ने सलाह दी कि इसके जीवन में कभी भी दुख का अनुभव न हो पाए। यह मरे हुए आदमी को न देखे। इसके सामने कोई बूढ़ा आदमी न लाया जाए। इसके सामने कोई ऐसी पीड़ा न घटे कि इसका मन जीवन से दुखी हो जाए, खिन्न हो जाए और यह विरक्त हो जाए। ऐसा न हो। तो बुद्ध के पिता ने सारा इंतजाम किया। ऐसे महल बनाए, जहां किसी बूढ़े
के प्रवेश का निषेध था, जहां कोई बीमार अंदर नहीं जा सकता था। फूल भी वृक्ष पर कुम्हलाने के पहले अलग कर दिए जाएं, ताकि बुद्ध कुम्हलाया हुआ फूल न देख लें; कि कहीं कुम्हलाए हुए फूल को देखकर वे पूछने लगें कि अगर फूल कुम्हला जाता है, तो मैं भी तो कुम्हला नहीं जाऊंगा? वृक्ष के पत्ते सूखें, इसके पहले हटा दिए जाएं, क्योंकि बुद्ध कहीं पूछ न लें कि पत्ते सूख

जाते हैं, कहीं जीवन भी तो नहीं सूख जाएगा? मृत्यु की उन्हें खबर न मिले और जीवन की पीड़ा का उन्हें कोई बोध न हो।
सारा इंतजाम मजबूत था। सुंदरतम स्त्रियां बुद्ध के आस-पास राज्य की इकट्ठी कर दी गईं। सुंदरतम युवतियों को बुद्ध की सेवा में रख दिया गया। सब सुंदर था। सब ताजा था। जब जवान था।
और इसी कारण बुद्ध को संन्यासी होना पड़ा। इसी कारण! यह ज्योतिषी की कृपा से, जिसने सलाह दी थी। क्योंकि बुद्ध इस बुरी तरह ऊब गए इस सबसे! इस बुरी तरह ऊब गए। सुंदरतम स्त्रियां उपलब्ध थीं, इसलिए स्त्रियों की कोई कामना मन में न रही। सब सुख उपलब्ध थे, इसलिए किसी सुख की कोई वासना मन में न रही। कोई तकलीफ न थी, इसलिए सब सुविधाएं उबाने वाली हो गईं, घबड़ाने वाली हो गईं, रिपिटीटिव हो गईं, रोज पुनरुक्त होने लगीं। बुद्ध भागे। उनके भागने का बुनियादी कारण उस ज्योतिषी की सलाह थी।
अगर सब मिल जाए, तो ऊब पैदा होती है। इसलिए आज अमेरिका में जितनी ऊब है, उतनी दुनिया की किसी कौम में नहीं है। अगर अमेरिका के मनसविद से हम पूछें, तो वह कहता है कि अमेरिका की बीमारी इस समय बोर्डम है, ऊब है। और उसको तोड़ने के लिए सब उपाय किए जा रहे हैं। लेकिन वह टूटती नहीं। हर आदमी ऊबा हुआ मालूम पड़ता है।
अगर आपकी किसी चीज से तृप्ति हो जाए, तो आप ऊब जाएंगे। इस जगत में ऐसी कोई भी चीज नहीं है, कोई भी चीज नहीं है, जिसको पाकर आप ऊब न जाएंगे। हां, तभी तक रस रह सकता है, जब तक वह मिले न। जब तक दूर रहे, जब तक पाने के लिए हाथ फैला हो और हाथ में आ न गई हो कोई चीज, तभी तक आप रसपूर्ण हो सकते हैं। मिलते ही ऊब पैदा हो जाती है। इस जगत में सभी चीजें ऐसी हैं कि रोज-रोज उनका स्वाद लिया जाए, तो घबड़ाहट हो जाती है।
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन को उसके देश के सम्राट ने उसकी बातें, उसके व्यंग्य का मजा लेने के लिए अपने पास रख लिया था। पहले ही दिन सम्राट भोजन के लिए बैठा, तो नसरुद्दीन को भी साथ बिठाया था। कोई सब्जी सम्राट को बहुत पसंद आई। तो नसरुद्दीन ने कहा, आएगी ही पसंद, यह सब्जी नहीं, अमृत है। और उसने उसके गुणों की ऐसी महिमा बखान की कि सम्राट ने अपने रसोइए को कहा कि रोज यह सब्जी तो बनाना ही।
दूसरे दिन भी वह सब्जी बनी, लेकिन वैसा रस न आया। तीसरे दिन भी बनी। चौथे दिन भी बनी। और नसरुद्दीन था कि वह रोज उसकी प्रशंसा करता चला गया कि यह अमृत है। इसका कोई मुकाबला नहीं। यह बेजोड़ है जगत में। इसके स्वाद का संबंध स्वर्ग से है, पृथ्वी से नहीं।
सातवें दिन सम्राट ने थाली उठाकर फेंक दी और कहा कि नसरुद्दीन, बंद करो यह बकवास! यह सब्जी मेरी जान ले लेगी। नसरुद्दीन ने कहा कि मालिक, यह जहर है। और इसका संबंध नर्क से है! उस सम्राट ने कहा, नसरुद्दीन, तुम आदमी कैसे हो? कल तक तुम इसे स्वर्ग बताते रहे, आज यह नर्क हो गई! नसरुद्दीन ने कहा कि हुजूर, मैं नौकर आपका हूं, इस सब्जी का नहीं। तनख्वाह आपसे पाता हूं, इस सब्जी से नहीं।
लेकिन सात दिन में, जो बहुत अमृत जैसी मालूम पड़ी थी, वह जहर जैसी हो ही जाएगी।
इस जगत में कुछ भी ऐसा नहीं है, जिससे हम ऊब न जाएं। और अगर इस जगत में आपको कोई ऐसी चीज मिल जाए, जिससे आप न ऊबें, तो आप समझना कि आप धर्म के रास्ते पर आ गए। अगर इस जगत में आपको किसी ऐसी चीज की झलक मिल जाए, जिससे ऊब पैदा न हो, तो आप समझना कि प्रभु बहुत निकट है, आप कहीं पास ही हैं।
मेरे जानने में, जब तक आपको ध्यान की कोई झलक न मिले, आपको वैसी चीज नहीं मिलेगी इस जगत में, जिसके अनुभव से ऊब पैदा नहीं होती।
बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसके बाद चालीस साल तक वे शांत, मौन, ध्यान में जीए। कोई एक आदमी ने बुद्ध से पूछा है कि चालीस साल से आप ध्यान में ही रह रहे हैं, ऊब पैदा नहीं होती?
बर्ट्रेंड रसेल जैसे बुद्धिमान आदमी ने सवाल उठाया है! बर्ट्रेंड रसेल ने अपने संस्मरणों में कहीं लिखा है कि मुझे हिंदुओं के मोक्ष से बड़ा डर लगता है, क्योंकि वहां से वापसी नहीं हो सकती। लौटने का कोई उपाय नहीं

है मोक्ष से। तो बर्ट्रेंड रसेल कहता है कि अगर यह भी मान लिया जाए कि जैसा हिंदू कहते हैं कि वहां परम शांति है, और परम आनंद है; कोई दुख नहीं, कोई पीड़ा नहीं, कोई तनाव नहीं। लेकिन बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है कि यह कब तक बर्दाश्त होगा, कितने समय तक? कोई अशांति नहीं, सुख ही सुख, शांति ही शांति। लेकिन अनंत काल में तो यह भी घबड़ा देगा। फिर लौट भी नहीं सकते, यह भी एक तकलीफ है।
बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है, इससे तो संसार ही बेहतर। इसमें कुछ बदलाहट, कोई चेंज का उपाय है। इससे तो नरक भी बेहतर, वहां से कम से कम वापस तो आ सकते हैं! लेकिन यह मोक्ष? यह तो परम कारागृह हो जाएगा। और माना कि आनंद रहेगा, लेकिन आनंद भी कितनी देर तक रहेगा? आनंद ही आनंद, आनंद ही आनंद, आनंद ही आनंद! आखिर ऊब पैदा हो जाएगी और प्राण छटपटाने लगेंगे। बर्ट्रेंड रसेल को आनंद का कोई पता नहीं है, इसलिए उसे यह सवाल उठा है। उसे पता नहीं है आनंद का, इसलिए उसे सवाल उठा है। उसका सवाल बिल्कुल संगत है, क्योंकि उसे कोई अनुभव ही नहीं है कि आनंद हम कहते ही उस स्थिति को हैं, जिससे कोई ऊब पैदा नहीं होती। सुख हम कहते हैं उस स्थिति को, जिससे ऊब पैदा हो जाती है। दुख हम कहते हैं उस स्थिति को, कि जो आया नहीं कि हम घबड़ाते हैं। सुख कहते हैं उस स्थिति को, जो आ जाए, हम उसे बुलाते हैं, निमंत्रण देते हैं, और फिर बुलाकर फंस जाते हैं और घबड़ाते हैं। और आनंद हम कहते हैं उस स्थिति को, जहां न सुख होता है और न दुख, और ऊबने का कोई उपाय नहीं होता। सुख पुराना पड़ जाता है, इसलिए ऊब जाते हैं! आनंद कभी पुराना नहीं पड़ता; रोज ताजा ही बना रहता है। इसलिए उससे ऊबने का कोई उपाय नहीं है। अगर आपको जीवन में कहीं से कोई रंध्र मिल जाए, जहां से ऊब पैदा न होती हो, तो आप समझना कि आप ठीक रास्ते पर हैं, उसी पर बढ़े चले जाएं। और जिस चीज से भी ऊब पैदा होती हो, आप समझ लेना कि वह संसार का हिस्सा है, चाहे वह कुछ भी हो।
अर्जुन सोचता है कि इन अमृतमय वचनों को और-और सुनूं, तो शायद तृप्ति
हो जाए। यह तृप्ति होने वाली नहीं है। क्योंकि ये वचन उस आनंद की तरफ इशारा हैं, जिसको सुनकर नहीं समझा जा सकता, पाकर और जीकर ही समझा जा सकता है।
लेकिन कृष्ण ने कहा--अर्जुन के इस प्रकार पूछने पर कृष्ण ने कहा, हे कुरुश्रेष्ठ, अब मैं तेरे लिए अपनी दिव्य विभूतियों को प्रधानता से कहूंगा।
मेरी विभूतियां हैं अनंत। उनमें जो प्रधान हैं, उनको मैं तुझसे कहूंगा। क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है। अगर तू सोचता हो कि मैं पूरे विस्तार की बात करूं, तो यह चर्चा चलती ही रहेगी, यह कभी समाप्त नहीं हो सकती।
अभी पश्चिम में भूगोलविद, ज्यॉग्राफी के विद्वानों में एक प्रश्न चलता था। और वह प्रश्न यह था कि अगर हम हिंदुस्तान का नक्शा बनाएं, तो उसे हिंदुस्तान का नक्शा कहना चाहिए कि नहीं? क्योंकि वह हिंदुस्तान जैसा तो होता ही नहीं! नक्शा हिंदुस्तान जैसा कहां होता है? अगर बंबई का नक्शा बनाएं, तो बंबई जैसा कहां होता है? इसको बंबई का नक्शा क्यों कहना चाहिए? अगर बंबई का नक्शा कहते हैं, तो उसे बंबई जैसा होना चाहिए।
लेकिन तब बंबई के बराबर बड़ा, इतना ही बड़ा नक्शा बनाना पड़े। और अगर इतना ही बड़ा नक्शा बनाना है, तो उसका प्रयोजन ही खो गया। नक्शा तो जेब में आना चाहिए, तभी उसका प्रयोजन है। इतने बड़े नक्शे को लेकर घूमेगा कौन? अगर इतने बड़े नक्शे को लेकर घूम सकते हैं, तो बंबई को ही लेकर घूम लेंगे। नक्शे की क्या जरूरत है?
हिंदुस्तान का नक्शा अगर हिंदुस्तान के बराबर, एक्जेक्ट वैसा ही बनाना पड़े, तब हम उसको नक्शा कहें... । भाषा के लिहाज से तो तभी कहना चाहिए, जब हिंदुस्तान के नक्श को पूरा उतार दे, उसके पूरे चेहरे को उतार दे, रत्तीभर कहीं कोई फर्क न हो; पैरेलल, समानांतर, दूसरा हिंदुस्तान बनाना पड़े, तब नक्शा बने। लेकिन तब बेमानी हो गया। नक्शे का उपयोग यह है कि पूरा

हिंदुस्तान बिना जाने, एक कागज के छोटे-से टुकड़े पर भी हम जान लें कि कहां क्या है। पर उसे नक्शा कहें या न कहें?
उसे नक्शा कहना भाषा की दृष्टि से ठीक नहीं है। लेकिन वही नक्शा है, क्योंकि उपयोग उसी का हो सकता है। और नक्शे का उपयोग इतना है कि वह वास्तविक की तरफ इशारा करे।
अर्जुन कृष्ण से पूछ रहा है कि तुम अपनी महिमा को, अपने ऐश्वर्य को, उसके समग्र विस्तार में कहो।
अगर कृष्ण उसका समग्र विस्तार करने जाएं, तो वह उतना ही लंबा होगा, जितना यह अस्तित्व है। और अगर इतने लंबे अस्तित्व के मौजूद रहते हुए अर्जुन उसको नहीं समझ पा रहा है, तो कृष्ण के विस्तार को कैसे समझ पाएगा! और अगर इतने ही विस्तार को समझना है, तो यह अस्तित्व काफी है, इसको समझ लेना चाहिए। अनंत होगी वह कथा तो, उसका फिर कोई अंत नहीं हो सकता। अगर कृष्ण शुरू से ही शुरू करें और अंत पर ही अंत करें, तो न कोई शुरू होगा और न कोई अंत होगा। और यह कथा इतनी लंबी होगी कि बेमानी हो जाएगी।
तो कृष्ण इसलिए कहते हैं, प्रधानता से कुछ बातें मैं तुझसे कहूंगा। चुनकर कुछ बातें मैं तुझसे कहूंगा, जो कि इशारा बन जाएं और तुझे थोड़ी झलक दे सकें। नक्शा तेरे काम आ जाए, इतना मैं तुझसे कहूंगा। जिसके आधार पर तू वास्तविक को पाने पर निकल जाए।
लेकिन कुछ लोग गलती कर सकते हैं, नक्शे को ही वास्तविक समझ सकते हैं।
और हममें से बहुतों ने यह गलती की है। हम नक्शे को ही वास्तविक समझ लेते हैं। शब्द ही हमारे लिए यथार्थ हो जाते हैं। अगर अभी यहां कोई जोर से चिल्ला दे, आग! फायर! तो अनेक लोग भागने की हालत में हो जाएंगे, बिना इस बात की फिक्र किए कि आग है भी या नहीं। आग शब्द तो सिर्फ नक्शा है, लेकिन हमें उत्तेजित कर दे सकता है उतना ही, जितना कि आग हो, तो हम उत्तेजित हो जाएं। और धीरे-धीरे हमारी हालत ऐसी हो जाती है कि एक बार आग भी जल रही हो और कोई आग न चिल्लाए, तो हम शायद उत्तेजित न हों।
रामकृष्ण ने कहा है कि एक आदमी सुबह उनसे मिलने आया है और उन्होंने उससे पूछा कि मैंने सुना है कि तुम्हारे पड़ोसी का मकान रात गिर गया आंधी में! उसने कहा कि मुझे पता नहीं, क्योंकि मैंने सुबह का अखबार नहीं देखा! पड़ोसी का मकान, रात आंधी में गिर गया! उसने कहा कि हो सकता है, क्योंकि मैंने अभी सुबह का अखबार नहीं देखा! पड़ोसी के मकान का गिरना कम वास्तविक है, अखबार में छपी हुई सुर्खी ज्यादा वास्तविक है!
नक्शे बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। और उन चीजों के नक्शे तो बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जो हमारी आंखों में दिखाई नहीं पड़ते। परमात्मा का हमें कोई दर्शन नहीं होता। सत्य का हमें कोई पता नहीं है। नक्शे ही नक्शे हैं हमारे पास। मोक्ष का हमें कोई पता नहीं है। अस्तित्व की गहराई का हमें कोई पता नहीं है। बस नक्शे हैं। नक्शों को सम्हाले हुए लोग बैठे हैं और विवाद करते रहते हैं कि किसका नक्शा सही है। और नक्शों के इतने दबाव में दब जाते हैं कि यात्रा असंभव ही हो जाती है, मुश्किल ही हो जाती है।
यह जो कृष्ण का कहना है कि पूरे विस्तार से अपनी समग्रता को कहने का कोई भी उपाय नहीं है। मैं कुछ बातें प्रधानता से कहूंगा। कुछ बातें चुन लूंगा। अनंत है मेरा ऐश्वर्य, उसमें से कुछ लक्षण चुन लूंगा।
वे लक्षण भी कृष्ण ने वैसे ही चुने हैं--जो हम आगे देखेंगे-- जो अर्जुन
की समझ में आ सकें। अर्जुन की जगह कोई दूसरा व्यक्ति होता, तो कृष्ण को दूसरे लक्षण चुनने पड़ते। अर्जुन की जगह अगर एक चित्रकार होता, तो कृष्ण को दूसरे लक्षण चुनने पड़ते। अर्जुन की जगह अगर एक कवि होता, तो कृष्ण को दूसरे लक्षण चुनने पड़ते। अर्जुन की जगह अगर एक संगीतज्ञ होता, तो कृष्ण को दूसरे लक्षण चुनने पड़ते।
इसलिए भी बड़ी कठिनाई धर्मशास्त्रों में पैदा हुई। क्योंकि मोहम्मद जिनसे बात कर रहे हैं, उनको हम भूल गए। कुरान हमारे पास है। कृष्ण जिससे बात कर रहे हैं, उसका हमें ख्याल न हो, तो बड़ी भूल हो जाती है। मोहम्मद को हम नहीं समझ पाते, कम से कम गैर-मुसलमान मोहम्मद को नहीं समझ पाते। उसकी

सारी कठिनाई एक ही है कि उन्हें पता नहीं कि मोहम्मद किससे बात कर रहे हैं। और कई दफा हमें अड़चन होती है। अड़चन ऐसी होती है कि समझ में नहीं पड़ता कि यह कैसी बात मोहम्मद ने की है!
मोहम्मद ने कहा है कि कोई आदमी चार शादियां करे, तो न्याययुक्त है। हमको बहुत बेहूदी लगती है। हम दो शादी तक के लिए न्याययुक्त मानने को तैयार नहीं। चार शादी को न्याययुक्त मोहम्मद कहते हों, तो हमें बहुत अड़चन होती है। पर हम भूल जाते हैं कि मोहम्मद किन लोगों से कह रहे हैं। जो बीस-पच्चीस स्त्रियां रख सकते थे, उन लोगों से वे कह रहे हैं।
अगर अनुपात निकालने जाएं, तो पच्चीस स्त्रियां जिस मुल्क में लोग रख सकते थे, उनसे चार की बात कहनी काफी न्यूनतम है, बहुत न्यून है। चार भी उन्हें बहुत कम मालूम पड़ेगा, बहुत मुश्किल मालूम पड़ेगी। और हमें समझना और भी कठिन हो जाएगा कि मोहम्मद ने खुद ने नौ विवाह किए! तो हमें और अड़चन हो जाएगी। हम सोच ही नहीं सकते, इस मुल्क में हम सोच नहीं सकते कि महावीर नौ विवाह कर सकते हैं!
लेकिन मोहम्मद ने नौ विवाह किए। और बड़े मजे की बात यह है कि उनमें से
नौ में से सिर्फ एक स्त्री से ही उनके स्त्री जैसे संबंध थे। और आठ स्त्रियां आपकी पत्नियां हों और उनसे आपका पत्नी जैसा संबंध न हो, यह कोई छोटी साधना नहीं है। सब स्त्रियां छोड़कर भाग जाना ज्यादा आसान है। और मोहम्मद ने कोई भी स्त्री तकलीफ में थी, तो उससे ही शादी कर ली।
मोहम्मद की पहली शादी भी बड़े हैरानी की है। मोहम्मद की उम्र छब्बीस वर्ष थी और पहली पत्नी की उम्र चालीस वर्ष थी। छब्बीस वर्ष का युवक चालीस वर्ष की स्त्री से शादी कर रहा है! इस शादी में कोई भी स्त्रैण आकर्षण काम नहीं कर रहा है। लेकिन हमें समझना कठिन पड़ता है। लेकिन जिन लोगों के बीच मोहम्मद हैं और जिस भांति के लोगों से वे बात कर रहे हैं, और जिनके जीवन को बदलने की कोशिश कर रहे हैं, उनको जब तक हम सामने न रख लें, तब तक अड़चन होगी। अर्जुन से कृष्ण जो कुछ भी कहेंगे आगे, उसमें आप ध्यान रखना कि वह एक क्षत्रिय से चर्चा हो रही है, एक योद्धा से चर्चा हो रही है। और क्षत्रिय किस भाषा को समझ सकता है, उसी भाषा में चर्चा होगी। उन्हीं गुणों को चुनकर कृष्ण अर्जुन से कहेंगे।
क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है, इसलिए मैं चुनाव कर लूंगा और थोड़ी-सी बातें तुझसे कहूंगा। हे अर्जुन, मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं। तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं।
वे जो कहेंगे, उसकी भूमिका इन दो शब्दों में, इन दो पंक्तियों में आ गई। आगे वे विस्तार से कहेंगे। इन दोनों पंक्तियों को हम ठीक से समझ लें, तो आगे की बात आसान होगी।
मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं।
जब भी हम किसी को देखते हैं, तो उसकी परिधि दिखाई पड़ती है, केंद्र नहीं। सर्कमफ्रेंस दिखाई पड़ती है, सेंटर नहीं। आप मुझे देख रहे हैं, मेरी परिधि दिखाई पड़ रही है। मेरे घर की दीवालें दिखाई पड़ रही हैं, मैं आपको दिखाई नहीं पड़ रहा हूं। मैं आपको देख रहा हूं, तो आपका मकान दिखाई पड़ता है, आप दिखाई नहीं पड़ते। आपका शरीर दिखाई पड़ता है, आप दिखाई नहीं पड़ते। आपका केंद्र तो आपके भीतर कहीं छिपा है, गुप्त, गहन।
कृष्ण कहते हैं कि वह जो छिपा हुआ हृदय है, वह जो गहन केंद्र है सबके भीतर, वही मैं हूं।
इसके बहुत मतलब हुए। पहला मतलब तो यह कि जब तक हमें अपने भीतर के केंद्र का कोई स्मरण न आए, तब तक कृष्ण की सत्ता और अस्तित्व को हम न समझ पाएंगे। यह तो ठीक है कि मैं जब आपको देखता हूं, तो आपका शरीर मुझे दिखाई पड़ता है, आपका केंद्र नहीं दिखाई पड़ता। मजा तो यह है कि आपको भी अपना केंद्र नहीं दिखाई पड़ता! आप भी अपने को आईने मैं जैसा देखते हैं, उसी भांति पहचानते हैं। अगर आपने जिंदगी में आईना न देखा होता, तो आप अपने को पहचान भी नहीं सकते थे कि आप कौन हैं। आप भी अपने को इस भांति पहचानते हैं, जैसे किसी दूसरे को बाहर से देखकर पहचानते हों।

बहुत तरह के आईनों का हम उपयोग करते हैं। एक तो आईना है, जो हमारे स्नानगृह में टंगा होता है। उसमें हम अपनी शक्ल देख लेते हैं। लेकिन वह कोई बहुत खास आईना नहीं है। और सूक्ष्म आईने हैं। लोगों की आंखों में हम अपने को देखते हैं।
अगर कोई आदमी आपसे कह देता है, आप बहुत अच्छे हैं, बड़े सुंदर हैं, आप तत्क्षण सुंदर और अच्छे हो जाते हैं। और कोई आदमी आपसे कह देता है कि शक्ल तो देखो कभी अपनी आईने में! तुम्हें देखकर संसार से विराग उत्पन्न होता है! तत्काल आपके भीतर कोई चीज गिर जाती है और टूट जाती है।
दूसरों की आंखों में देख-देखकर आप अपनी प्रतिमा निर्मित करते हैं। आपको अपने केंद्र का कुछ भी पता नहीं है। दूसरे आपके संबंध में क्या कहते हैं, उसकी ही कतरन इकट्ठी करके आप अपनी प्रतिमा बना लेते हैं। इसलिए हम दूसरों पर निर्भर होते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि अगर हम ऐसा करेंगे, तो लोग क्या कहेंगे!
लोग क्या कहेंगे! लोगों का कहना आपकी आत्मा है। लोग जो कहते हैं, वही
आप हैं। अगर लोग अच्छा कहते हैं, तो आप अच्छे हैं। अगर लोग बुरा कहते हैं, तो आप बुरे हैं। आप भी कुछ हैं? या सिर्फ लोगों के कहने का जोड़ ही आप हैं! हर आदमी डरा हुआ है लोगों से। हम पड़ोसियों से जितने डरते हैं, उसका कोई हिसाब नहीं। घबड़ाए रहते हैं। उनको देखकर चलते हैं। उनको देखकर उठते हैं। उनको देखकर कपड़े पहनते हैं। उनको देखकर बोलते हैं। हर आदमी चारों तरफ से अपने पड़ोसियों के हाथों से घिरा है। हर आदमी की गर्दन पर पड़ोसियों की फांसी है। और ऐसा नहीं है कि आपके पड़ोसी की फांसी ही आपके ऊपर है। आप भी अपने पड़ोसी की गर्दन पर ऐसी ही फांसी रखे हुए बैठे हैं। सब आदमी एक-दूसरे से उलझे हैं। घबड़ाहट रहती है कि कोई जरा-सा कोई भाव बदल दे, तो हमारी सारी की सारी जीवन की मेहनत, सारी कमाई व्यर्थ हो जाए! क्यों?
ये भी आईने हैं। इनमें देखकर हम समझते हैं कि अपने को समझा। हमें अपने केंद्र का भी कोई पता नहीं है। हमने अपने को भी बाहर से ही देखा है। कभी आपने अपने शरीर का ख्याल किया है भीतर से? तो आप घबड़ा जाएंगे।
महावीर अपने साधकों को एक ध्यान करवाते थे। वह था, शरीर को भीतर से देखना। एकदम से तो ख्याल में नहीं आएगा कि शरीर को भीतर से देखने का क्या मतलब?
आप अपने घर के बाहर खड़े हो जाएं और बाहर से देखें। तो आपको दीवाल की बाहरी पर्त दिखाई पड़ती है, न तो घर का फर्नीचर दिखाई पड़ता है, न घर के भीतर की दीवालों पर लटकी हुई तस्वीरें दिखाई पड़ती हैं। घर के भीतर का कुछ दिखाई नहीं पड़ता। घर के बाहर का हिस्सा दिखाई पड़ता है। फिर आप भीतर जाएं, तो बाहर का हिस्सा दिखाई नहीं पड़ता। अब आपको भीतरी दीवाल दिखाई पड़नी शुरू होती है। अब आपको भीतर का फर्नीचर दिखाई पड़ना शुरू होता है।
महावीर कहते थे, अपने को भीतर से देखो, तो हड्डियां, मांस-मज्जा, यह सब दिखाई पड़ेगा। बाहर से देखोगे, तो सिर्फ चमड़ी दिखाई पड़ेगी। चमड़ी केवल बाहर की दीवाल है। भीतर! भीतर काफी फर्नीचर है। लेकिन भीतर से हमने अपने को कभी नहीं देखा। महावीर कहते थे, आंख बंद करो और भीतर से अपने को एहसास करो कि तुम बीच में खड़े हो। अब क्या है वहां?
तो अगर महावीर का ध्यान करने वाला एकदम विरक्त हो जाए और शरीर में उसका आकर्षण खो जाए और आसक्ति न रहे, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। उसके लिए चेष्टा भी नहीं करनी पड़ती।
अभी तो महावीर को मानने वाला जो साधु है, वह भी चेष्टा कर रहा है। लड़ रहा है अपने शरीर से कि वासना छूट जाए। लेकिन उसे भी पता नहीं कि वासना बाहर से लड़ने से नहीं छूटेगी। भीतर से शरीर दिख जाए, तो यह वासना छूट जाती है। क्योंकि भीतर सिवाय फिर गंदगी के और कचरे के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। और तब हैरानी होती है कि इस कचरे को, इस गंदगी को, इस सबको मैंने समझा है अपना होना!
और जो आदमी अपने शरीर को भीतर से देखने में समर्थ होता है, वही आदमी अपने केंद्र को भी देख पाएगा। क्योंकि केंद्र का मतलब है, अब और भीतर चलो।

अब शरीर को बिल्कुल छोड़ दो; और उसको देखो, जो सब देखता है। अब उसको जानो, जो सब जानता है। अब उस बिंदु पर खड़े हो जाओ, जो साक्षी है, जो देख रहा है शरीर की हड्डी-मांस-मज्जा को। अब इसको ही पहचानो, यही केंद्र है।
कृष्ण कहते हैं, मैं सबके हृदयों में स्थित आत्मा हूं।
तो यह पहला कीमती वक्तव्य है, जिसमें परमात्मा के अस्तित्व की पूरी बात आ जाती है। लेकिन यह हमारे ख्याल में न आए। और अगर हमको ख्याल में भी आए, तो हम शायद सोचते होंगे कि जो हृदय हमारा धड़क-धड़क कर रहा है, उसी हृदय की बात है।
उस हृदय की कोई भी बात नहीं है। इस हृदय को वैज्ञानिक हृदय मानने को तैयार भी नहीं हैं और वे ठीक हैं। वे कहते हैं, यह तो फेफड़ा है। और वे ठीक कहते हैं। यह तो सिर्फ पंपिंग स्टेशन है, जहां से आपके खून की सफाई होती रहती है चौबीस घंटे। सांस जाती है, खून आता है, सफाई होती रहती है। यह तो सिर्फ पंप करने का इंतजाम है। यह हृदय नहीं है। यह तो सिर्फ फेफड़ा है, फुफ्फुस है। यांत्रिक है। इसलिए प्लास्टिक का फेफड़ा लग जाता है और आपमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा।
ध्यान रखना, आप यह मत सोचना कि आपका हृदय निकालकर और प्लास्टिक का लगा दिया, तो आप प्रेम न कर पाएंगे। और मजे से कर पाएंगे। कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि यह आपका हृदय नहीं है। यह हृदय नहीं है। हृदय तो उस केंद्र का नाम है--इस फेफड़े से तो हमारा शरीर चलता है--हृदय उस केंद्र का नाम है, जिससे हमारा अस्तित्व धड़कता है। आत्मा का नाम हृदय है।
इसलिए इस तरह की योग में प्रक्रियाएं हैं कि योगी चाहे तो थोड़ी चेष्टा करके हृदय की धड़कन बंद कर लेता है। हृदय की धड़कन बंद हो जाती है, लेकिन योगी मरता नहीं है। हृदय की धड़कन बंद होने से मरने का कोई गहरा संबंध नहीं है। हम मर जाते हैं, क्योंकि हमें पता नहीं कि अब इस हृदय को फिर से कैसे धड़काएं। लेकिन चेष्टा से इस हृदय को रोका जा सकता है और पुनः धड़काया जा सकता है।
ब्रह्मयोगी ने उन्नीस सौ तीस में आक्सफोर्ड में, कलकत्ता में, रंगून में, कई विश्वविद्यालयों में अपने हृदय के धड़कन के बंद करने के प्रयोग किए। वे दस मिनट तक अपने हृदय को बंद कर लेते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में दस डाक्टरों ने जांच की और लिखा। क्योंकि ब्रह्मयोगी ने कहा था कि जब मेरा हृदय बंद हो जाए, तब आप लिखना कि मैं जिंदा हूं या मर गया, और दस्तखत कर देना। दस डाक्टरों ने उनके डेथ सर्टिफिकेट पर दस्तखत किए कि यह आदमी मर गया; मरने के सब लक्षण पूरे हो गए।
और दस मिनट बाद ब्रह्मयोगी वापस लौट आए। हृदय फिर धड़कने लगा। सांस फिर चलने लगी। नाड़ी फिर दौड़ने लगी। और ब्रह्मयोगी ने वह जो सर्टिफिकेट था उसे जब मोड़कर खीसे में रखा, तो उन डाक्टरों ने कहा कि कृपा करके यह सर्टिफिकेट वापस दे दें, क्योंकि इसमें हम भी फंस सकते हैं! हमने लिखकर दिया है कि आप मर चुके। तो ब्रह्मयोगी ने कहा कि इसका अर्थ यह हुआ कि तुम जिसे मृत्यु कहते हो, वह मृत्यु नहीं है।
निश्चित ही, जिसे डाक्टर मृत्यु कहते हैं, वह मृत्यु नहीं है। जहां तक
हम संबंधित हैं, वह मृत्यु है। क्योंकि हम अपने को बाहर से जानते हैं, फेफड़े से जानते हैं, हृदय से नहीं। शरीर से जानते हैं, आत्मा से नहीं। परिधि से जानते हैं, केंद्र से नहीं। परिधि तो मर जाती है। और डाक्टर उसी को मृत्यु कहते हैं। और हमें केंद्र के अस्तित्व का कोई पता नहीं है, इसलिए हम भी उसे मृत्यु मानते हैं।
यह सिर्फ मान्यता है। अगर हमें अपने केंद्र का पता चल जाए, तो फिर कोई मृत्यु नहीं है। कोई मृत्यु नहीं है। मृत्यु से बड़ा झूठ इस जगत में दूसरा नहीं है। लेकिन मृत्यु से बड़ा सत्य कोई भी नहीं मालूम पड़ता। और मृत्यु से बड़ा सुनिश्चित सत्य कोई भी मालूम नहीं पड़ता। मृत्यु बड़ा गहन सत्य है। जहां हम जीते हैं, बाहर, वहां मृत्यु सब कुछ है। अगर हम भीतर जा सकें, तो जीवन सब कुछ है।
बाहर है मृत्यु, भीतर है जीवन। उस जीवन की सूचना ही कृष्ण देते हैं कि
सब जीवन में, जहां-जहां जीवन है, वहां मैं हूं। यह एक बात। दूसरी बात इस

सूत्र में छिपी है, वह भी ख्याल में ले लें। कृष्ण यह कहते हैं कि सबके हृदय में, सबकी आत्माओं में मैं हूं।
इसका अर्थ यह हुआ कि हम शरीर से ही अलग-अलग हैं, भीतर से हम अलग-अलग नहीं हैं। हमारा जो भेद है, हमारी जो भिन्नता है, वह शरीर की है, भीतर का कोई भेद नहीं है। नहीं तो फिर कृष्ण सबके भीतर नहीं हो सकते। फिर परमात्मा सबके भीतर नहीं हो सकता। इसका यह मतलब हुआ कि हमारी परिधियां अलग-अलग हैं, हमारा केंद्र एक है। हमारी सर्कमफ्रेंस अलग-अलग है, पर हमारा सेंटर एक है। यह जरा गणित के लिए मुश्किल हो जाएगी बात। यह कठिन हो जाएगी बात। क्योंकि हमको लगता है कि जब हमारी परिधि अलग है, तो हमारा केंद्र भी अलग होगा। इसलिए हम सब सोचते हैं, हमारी आत्माएं भी अलग-अलग हैं। जो सोचते हैं कि उनकी आत्माएं अलग-अलग हैं, उन्हें आत्मा का अभी कोई भी पता नहीं। अभी वे शरीर से ही अपने अलग-अलग होने को मानकर कल्पना करते हैं, अनुमान करते हैं कि आत्मा भी अलग-अलग होगी।
जिस दिन कोई अपने केंद्र को जानता है, उस दिन उसे पता चलता है कि शरीर
ही अलग-अलग हैं, आत्मा एक ही विस्तार है।
करीब-करीब ऐसा कि यहां इतने बिजली के बल्ब जल रहे हैं। ये सब बल्ब अलग-अलग जल रहे हैं। और कोई नहीं कह सकता कि ये सब बल्ब एक हैं। निश्चित अलग-अलग हैं। और अगर एक बल्ब को मैं तोड़ दूं, तो सब बल्ब नहीं टूट जाएंगे। इसलिए सिद्ध होता है कि बल्ब अलग था। बाकी बल्ब जिंदा हैं, और शेष हैं। मैं मर जाऊं, तो आप नहीं मरते। साफ है कि मैं अलग हूं, आप अलग हैं।
लेकिन इनके भीतर जो बिजली दौड़ रही है, वह एक है। ये बल्ब अलग-अलग हैं
और इनके भीतर जो ऊर्जा दौड़ रही है, वह एक है। और अगर ऊर्जा बंद कर दी जाए, तो सब बल्ब एक साथ बंद हो जाएंगे। बल्ब अगर तोड़ें, तो एक बल्ब टूटेगा, तो दूसरा नहीं टूटेगा; जलता रहेगा, जलता रहेगा। लेकिन अगर ऊर्जा बंद हो जाए, तो सब बल्ब एक साथ बंद हो जाएंगे।
हम सब बल्ब की भांति हैं। हमारा शरीर एक बल्ब है। भीतर जो ऊर्जा प्रवाहित है, वह एक है। उस ऊर्जा को कृष्ण कहते हैं, वह ऊर्जा, वह एनर्जी, वह सर्वव्यापी आत्मा मैं हूं। सबकी आत्माओं में, सबके हृदय में, मैं हूं। इसलिए दूसरी बात इस सूत्र में ख्याल में ले लेने जैसी है, कि बाहर है भेद, भीतर अभेद है। बाहर हैं भिन्नताएं, भीतर अभिन्नता है। बाहर है द्वैत, अनेकत्व; भीतर एक है, अद्वैत।
जो बाहर से ही जीएगा, वह कभी भी अनुभव नहीं कर सकता कि जब वह दूसरे को चोट पहुंचा रहा है, तो अपने को ही चोट पहुंचा रहा है। जो बाहर से जीएगा, वह कभी नहीं सोच सकता कि जब वह दूसरे का अहित कर रहा है, तो अपना ही अहित कर रहा है। लेकिन जो भीतर से जीएगा, उसे तत्क्षण दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा कि चाहे मैं अहित करूं किसी का, अहित मेरा ही होता है। और चाहे मैं हित करूं किसी का, हित भी मेरा ही होता है। क्योंकि मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। मैं ही हूं।
अगर महावीर को, या बुद्ध को इतनी करुणा और इतने प्रेम का आविर्भाव हुआ, तो उस करुणा और प्रेम के आविर्भाव का केवल एक ही कारण है कि दिखाई पड़ना शुरू हुआ कि मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।
तो कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं सब भूतों के हृदय में सबका आत्मा। और संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं। यह दूसरी बात! उनका प्रारंभ भी मैं हूं, उनका मध्य भी मैं हूं, और उनका अंत भी मैं हूं।
इसे हम थोड़ा-सा, दो-तीन आयामों से समझ लें। यह भारत की संभवतः एक विशिष्ट दृष्टि है, जिसे दूसरी जगह पाना थोड़ा मुश्किल है, थोड़ा कठिन है। जब हम यह कहते हैं कि आदि, मध्य और अंत, तीनों ही परमात्मा है, तो हम समस्त चीजों को परमात्मा के भीतर इकट्ठा कर लेते हैं। हम कुछ भी छोड़ते नहीं। बुराई को भी हम बाहर नहीं छोड़ते, भलाई को भी बाहर नहीं छोड़ते। अंधेरे को भी भीतर ले लेते हैं, प्रकाश को भी भीतर ले लेते हैं। क्योंकि हम समस्त अस्तित्व को उसके सब आयामों में, प्रारंभ में, मध्य में, अंत में, तीनों में परमात्मा को स्वीकार करते हैं।

इसमें थोड़े चिंतक, जो इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाएं, उनको कठिनाई लगती है। वे कहेंगे कि आदमी जब पाप में है, तब परमात्मा नहीं है। वे कहेंगे, आदमी जब अज्ञान में है, तब परमात्मा नहीं है। आदमी जब कर्मों में घिरा हुआ है, पाप से, अंधकार से डूबा हुआ है, तब परमात्मा नहीं है। वे यह भी मान ले सकते हैं कि यह बीज रूप से परमात्मा है। जब शुद्ध हो जाएगा, तो हम इसे परमात्मा कहेंगे। अभी अशुद्ध अवस्था में है। ये इतना भी मान लें, तो भी वे यह कहेंगे कि जो अशुद्धि है, वह परमात्मा नहीं है। जो पाप है, वह परमात्मा नहीं है। जो बुरा है, वह परमात्मा नहीं है। वे अस्तित्व को दो हिस्सों में काटेंगे। एक भला अस्तित्व होगा, जिसे वे परमात्मा से जोड़ेंगे; और एक बुरा अस्तित्व होगा, जिसे परमात्मा से अलग कर देंगे।
इसलिए कुछ धर्मों को शैतान भी निर्मित करना पड़ा है। शैतान का अर्थ है, जो-जो बुरा-बुरा है इस जगत में, वह शैतान के जिम्मे छोड़ दिया। जो भला-भला है, वह परमात्मा के जिम्मे ले लिया।
ऐसा विचार कमजोर है। और ऐसा परमात्मा भी, ऐसे विचार का परमात्मा भी अधूरा होगा। क्योंकि बुराई के होने के लिए भी परमात्मा का सहारा चाहिए। बुराई भी हो सकती है, तो परमात्मा के सहारे ही हो सकती है। अस्तित्व मात्र उसी का है। और अगर हम एक बार ऐसा स्वीकार कर लें कि बुराई का अपना अस्तित्व है, तो फिर बुराई को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसका अपना निजी अस्तित्व है। उसे परमात्मा नष्ट नहीं कर सकता।
और अगर हम ऐसा समझ लें कि परमात्मा में और शैतान में कोई संघर्ष चल रहा है, तो फिर कोई तय नहीं कर सकता कि अंतिम विजय किसकी होगी। और जहां तक रोज का सवाल है, तो यही दिखाई पड़ता है कि निन्यानबे मौकों पर शैतान जीतता है। एकाध मौके पर परमात्मा भूल-चूक से जीत जाता हो, बात अलग है। लेकिन निन्यानबे मौके पर शैतान जीतता हुआ मालूम पड़ता है! अगर हम इतिहास का अनुभव लें, तो हमें यही मानना पड़ेगा कि अंत में दिखता है, शैतान ही जीतेगा, परमात्मा जीत नहीं सकता। अगर हम शैतान को एक अलग अस्तित्व मान लें, तो यह संघर्ष शाश्वत हो जाएगा।
लेकिन हिंदू चिंतन शैतान जैसी किसी अलग व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। लेकिन फिर जटिल हो जाता है और सूक्ष्म हो जाता है, क्योंकि बात फिर आसान नहीं रह जाती। यह बिल्कुल आसान है, काले को काला और गोरे को गोरा कर देना। अंधेरे को अलग, प्रकाश को अलग कर देना, बहुत आसान है; सीधा-साफ है। लेकिन हिंदू चिंतन कहता है, सभी कुछ परमात्मा है। यह जरा मुश्किल है। लेकिन यही वैज्ञानिक है। अगर हम वैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहेगा, अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। अंधेरे का मतलब है, कम से कम प्रकाश। प्रकाश भी अंधेरे का एक रूप है। प्रकाश का अर्थ है, कम से कम अंधेरा। शायद प्रकाश और अंधेरे में समझने में कठिनाई होती है। विज्ञान कहता है, गर्मी और ठंडक एक ही चीज के दो नाम हैं, दो चीजें नहीं हैं।
कभी ऐसा करें कि एक हाथ को बर्फ पर रखकर ठंडा कर लें और एक हाथ को सिगड़ी पर रखकर जरा तपा लें और फिर दोनों हाथों को एक ही बाल्टी के भरे हुए पानी में डाल दें। तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे; उसी मुश्किल में, जिसमें ऋषि पड़ गए, जब उनको अनुभव हुआ अस्तित्व का। तब आपसे अगर मैं पूछूं कि बाल्टी का पानी ठंडा है या गरम? तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे।
एक हाथ कहेगा ठंडा और एक हाथ कहेगा गरम। क्योंकि सब अनुभव सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। अगर आपने एक हाथ ठंडा कर लिया है, तो पानी उस हाथ को गरम मालूम पड़ेगा। जो हाथ आपने गरम कर लिया है, उस हाथ को वही पानी ठंडा मालूम पड़ेगा। दोनों हाथ आपके ही हैं। आप क्या वक्तव्य देंगे कि पानी ठंडा है या गरम? तो आप कहेंगे, एक हाथ कहता है ठंडा और एक हाथ कहता है गरम। और अगर एक ही चीज के संबंध में दो हाथ दो खबर देते हैं, तो इसका मतलब हुआ कि ठंडक और गर्मी दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज है।
बुराई और भलाई भी दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज है। जिसको हम बुरा आदमी कहते हैं, उसका मतलब है, कम से कम भला। और जिसको हम भले से भला आदमी कहते हैं, वह भी कम से कम बुरा है। इसलिए आप बुरे से बुरे आदमी में भलाई खोज सकते हैं, और भले से भले आदमी में बुराई खोज सकते हैं।

ऐसा भला आदमी आप नहीं खोज सकते, जिसमें बुराई न हो। और ऐसा बुरा आदमी नहीं खोज सकते, जिसमें भलाई न हो। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि बुराई और भलाई एक ही चीज के दो विस्तार हैं, एक ही चीज का तारतम्य है। दोनों एक का ही, और उस एक का नाम हमने परमात्मा दिया है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, प्रारंभ भी मैं ही हूं, मध्य भी मैं ही हूं, अंत
भी मैं ही हूं। संसार भी मैं ही हूं, मोक्ष भी मैं ही हूं, शरीर भी मैं ही हूं, आत्मा भी मैं ही हूं। इस जगत में जो भी है, वह मैं हूं।
इसे हम ऐसा समझें, तो आसान हो जाएगा।
हिंदू चिंतन के लिए अस्तित्व और परमात्मा पर्यायवाची हैं, सिनानिम हैं। इसलिए जब हम कहते हैं, ईश्वर है, तो गहन विचार की दृष्टि से पुनरुक्ति हो जाती है। जब हम कहते हैं, गॉड इ.ज, ईश्वर है, तो पुनरुक्ति हो जाती है। क्योंकि है का मतलब हिंदू विचार में ईश्वर है। जो भी है, वह ईश्वर है। होना ही ईश्वर है। अगर इसको हम ऐसा तोड़ें, जब हम कहते हैं, ईश्वर है, तो इसका अर्थ हुआ, है है। या इसका अर्थ हुआ, ईश्वर ईश्वर। यह पुनरुक्ति है। अस्तित्व ही परमात्मा है। साधक के लिए इसका बहुत गहरा मूल्य है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब आपको बुराई भी दिखाई पड़े, तब भी आप परमात्मा को विस्मरण मत करना। और गहरी से गहरी बुराई में भी अगर आप परमात्मा को देखते रहें, तो आपके लिए बुराई रूपांतरित हो जाएगी। अगर आप गहन से गहन अंधेरे में भी प्रकाश को स्मरण रख सकें, तो अंधेरा तिरोहित हो जाएगा, विपरीत विलीन हो जाएंगे।
लेकिन हमारी तकलीफ है। हम बुरे से, जिसको हम बुरा समझते हैं, उससे घिरे हुए लोग हैं। फिर जब हम बुरे से परेशान हो जाते हैं, तो उसको छोड़कर उसके विपरीत हम भले होने की कोशिश में लगते हैं। हमारी भलाई हमारी बुराई के विपरीत यात्रा होती है। इसलिए हमें लगता है कि बुरे और भले उलटे हैं, एक-दूसरे के विपरीत हैं। लेकिन जो दोनों के पार खड़े होकर देखता है, उसे पता चलता है, वे एक ही चीज के दो छोर हैं।
हमारी जिंदगी तो विपरीत की तरफ चलती रहती है। आज हम बाएं जाते हैं; घबड़ा जाते हैं बाएं जाने से, तो दाएं जाने लगते हैं। शायद हम सोचते हैं कि दाएं जाना बाएं के विपरीत है। लेकिन दायां और बायां एक ही आकाश के आयाम हैं। उत्तर जाते हैं, घबड़ा जाते हैं, दक्षिण जाने लगते हैं; तो सोचते हैं, दक्षिण उत्तर के विपरीत है। लेकिन उत्तर और दक्षिण दोनों एक ही आकाश के छोर हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है, आखिरी क्षण है। उसके मित्र उससे पूछते हैं कि नसरुद्दीन तुम किस भांति दफनाए जाना पसंद करोगे? हमें कुछ कह दो, तो हम उस अनुसार तैयारी करें! तो नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे तुम शीर्षासन करता हुआ दफना देना; सिर नीचे, पैर ऊपर; अपसाइड डाउन! मित्र बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा, क्या कह रहे हो? ऐसा हमने कभी किसी का दफनाया जाना सुना नहीं! नसरुद्दीन ने कहा कि पैर नीचे सिर ऊपर इस जमीन पर काफी रहकर देख लिया, कुछ पाया नहीं; अब उलटा प्रयोग करके देखें। सो फॉर दि नेक्स्ट वर्ल्ड, आई वांट टु बी अपसाइड डाउन; वह जो दूसरा लोक है, वहां हम सिर के बल होना चाहते हैं। एक तो यह अनुभव कर लिया, यह बेकार पाया। अब इससे उलटा कर लें।
लेकिन क्या आपने ख्याल किया है कि चाहे आप सिर के बल खड़े हों और चाहे पैर के बल, आप ही खड़े होते हैं, जो एक है। चाहे सिर के बल खड़े हो जाएं, चाहे पैर के बल खड़े हो जाएं; शरीर उलटा हो जाता है, आप जरा भी उलटे नहीं होते; सेंटर अपनी जगह वैसा का वैसा ही रहता है।
बुरे में भी परमात्मा भला उलटा खड़ा हो, इससे ज्यादा कोई फर्क नहीं है। भले में सीधा खड़ा हो, बुरे में उलटा खड़ा हो। और उलटा और सीधा भी परिभाषा की बात है। किसको हम उलटा कहें? किसको हम सीधा कहें? यह भी हम पर निर्भर करता है कि हम कैसे खड़े हैं! अगर आप शीर्षासन लगाकर खड़े हों, तो सारी दुनिया आपको उलटी मालूम पड़े। यह आप पर निर्भर करता है। वह भी सापेक्ष है।
लेकिन हिंदू चिंतना इस बात की गहरी से गहरी पकड़ रखती है कि अस्तित्व
एक है। और हम किसी चीज को नहीं कहते कि वह परमात्मा नहीं है। किसी भी बात

को हम परमात्मा से नहीं काटते कि वह परमात्मा नहीं है। हम परमात्मा के अतिरिक्त और किसी को भी स्वीकार नहीं करते। हमारा परमात्मा सभी को आच्छादित कर लेता है, बाहर और भीतर से घेर लेता है।
उस एक के लिए कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं, तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं।
शेष हम कल बात करेंगे।
लेकिन कोई उठे नहीं। पांच मिनट कीर्तन का प्रसाद लें और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
आठवां प्रवचन

सगुण प्रतीक--सृजनात्मकता, प्रकाश, संगीत और बोध के

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी।। 21।।
वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।। 22।।
और हे अर्जुन, मैं अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु और ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूं तथा मैं वायु देवताओं में मरीचि नामक वायु देवता और नक्षत्रों में नक्षत्रों का अधिपति चंद्रमा हूं।
और मैं वेदों में सामवेद हूं, देवों में इंद्र हूं और इंद्रियों में
मन हूं, भूत-प्राणियों में चेतनता अर्थात ज्ञान-शक्ति हूं।

जो नहीं कहा जा सकता, उसे भी प्रतीक से कहने के उपाय किए जाते हैं। और जिसे बताया नहीं जा सकता, जो अज्ञात है, उसकी ओर भी, जो हम जानते हैं उसके माध्यम से इंगित किए जा सकते हैं। इस सूत्र को समझने के पहले इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है।
ईश्वर अज्ञात है। नहीं; उसका हमें कोई भी पता नहीं है। लेकिन जो हमें पता है, क्या उसके आधार पर हम उस अज्ञात के संबंध में कुछ इशारे भी कर पा सकते हैं या नहीं? एक छोटे बच्चे को भाषा पढ़ानी पड़ती है, तो भाषा तो उसे अज्ञात होती है। लेकिन कहीं से शुरू करना पड़ेगा। जो उसे ज्ञात होता है, उसके आधार पर ही शुरू करना पड़ेगा।
छोटे बच्चे के लिए हमें प्रतीक चुनने पड़ते हैं। अगर छोटे बच्चों की किताब आप देखते हैं, तो आपको साफ मालूम होगा, शब्द होते हैं कम, चित्र होते हैं ज्यादा। चित्र ही प्रमुख होते हैं, शब्द गौण होते हैं। चित्रों के आधार पर ही शब्दों को समझाने की कोशिश होती है। क्योंकि बच्चे का मन चित्र को तो समझ पाता है, शब्द को नहीं समझ पाता है। शब्द अभी अज्ञात है। लेकिन चित्र? चित्र बच्चा देख सकता है।
मनुष्य का जो मन है, वह पहले चित्रों की भाषा में सोचता है, फिर शब्दों
की भाषा विकसित होती है। और अभी भी रात जब आप सपने देखते हैं, तो चित्रों की भाषा में देखते हैं, क्योंकि सपने में आप अपनी शिक्षा-दीक्षा सब भूल जाते हैं। जो भाषा आपको सिखाई गई है प्रतीकों की, संकेतों की, गणित की, व्याकरण की, वह सब आप भूल जाते हैं। सपने में आप फिर प्रिमिटिव हो जाते हैं, सपने में फिर उन पुरानी अवस्थाओं में पहुंच जाते हैं, जहां हम चित्रों से सोच सकते हैं।
दुनिया की जो प्राचीनतम भाषाएं हैं, वे चित्रों वाली हैं। जैसे चीनी है, वह चित्र की भाषा है। अभी भी उसके पास वर्णाक्षर नहीं हैं। बहुत कठिन है, क्योंकि हर चीज का चित्र, बहुत लंबी प्रक्रिया है। अगर चीनी भाषा को किसी को पढ़ना हो, तो कम से कम दस वर्ष तो लग ही जाएंगे और तब भी प्राथमिक ज्ञान ही होगा। कम से कम एक लाख शब्द-चित्र तो याद होने ही चाहिए साधारण ज्ञान के लिए भी। हर चीज का चित्र है। जो प्राचीनतम भाषा होगी, वह चित्रों में होगी।
बच्चों का मन प्राचीनतम मन है। वे चित्रों से समझते हैं। तो हमें कहना पड़ता है, ग गणेश का। ग से गणेश का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि ग गधे का भी उतना ही है। लेकिन गणेश का या गधे का चित्र हम बनाएं, तो बच्चे को ग समझाना आसान हो जाता है। पुरानी किताबों में गणेश का चित्र होता था, नई किताबों में गधे का चित्र है, इसलिए मैं कह रहा हूं। क्योंकि सेक्युलर है गवर्नमेंट, धर्म-निरपेक्ष है राज्य। गणेश का चित्र नहीं बना सकते! तो पुरानी किताबों में ग गणेश का होता था, नई किताबों में ग गधे का है।
ग को समझाना हो, तो गणेश को रखना पड़ता है। फिर जब बच्चा समझ लेगा, तो गणेश को छोड़ देगा, ग रह जाएगा। अगर बाद में भी आप पढ़ते वक्त हर बार कहें कि

ग गणेश का, तो फिर पढ़ना मुश्किल हो जाएगा। फिर गणेश को भूल जाना पड़ेगा और ग को याद रखना पड़ेगा। लेकिन ग को याद करने में पहले गणेश का उपयोग लिया जा सकता है, लिया जाता है। और अब तक कोई शिक्षा-पद्धति विकसित नहीं हो सकी, जिसमें हम बिना चित्रों का उपयोग किए बच्चों को शब्दों का बोध करा दें। कृष्ण ने मौलिक बात कह दी है कि मैं समस्त आत्माओं में आत्मा हूं। मैं समस्त आत्माओं का केंद्र हूं। मैं समस्त हृदयों का हृदय हूं। मेरा ही विस्तार है सब कुछ--आदि भी, मध्य भी, अंत भी।
लेकिन वह बहुत गहरा भाव है और अर्जुन को भी पकड़ में नहीं आएगा। इसलिए कृष्ण अब चित्रों का प्रयोग करते हैं, और चित्रों के माध्यम से उस भाव की तरफ इशारा करते हैं। अर्जुन जो चित्र समझ सकेगा, निश्चित ही उनका ही उपयोग किया गया है।
कृष्ण ने कहा, और हे अर्जुन, मैं अदिति के पुत्रों में विष्णु हूं।
इस प्रतीक को हम समझें।
तीन नाम से हम निरंतर परिचित रहे हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश। हिंदू चिंतना में ब्रह्मा सृजन के प्रतीक हैं, महेश विसर्जन के, अंत के, विनाश के और विष्णु मध्य के, विस्तार के। विष्णु सम्हालते हैं अस्तित्व को। जो सम्हालने की शक्ति है, वह विष्णु का नाम है। जो जन्म की शक्ति है, सृजन की, वह ब्रह्मा। और जो विनाश की, प्रलय की शक्ति है, वह शिव या महेश।
इन तीन शब्दों को हिंदुओं ने बहुत मौलिक मूल्य दिया है। क्योंकि हिंदू चिंतना को ऐसा हजारों-हजारों वर्ष पहले ख्याल में आया कि अगर हम सारे अस्तित्व को मोटे-मोटे हिसाब से बांटें, तो अस्तित्व तीन हिस्सों में बंट जाता है। इस अस्तित्व में कुछ तो होनी चाहिए सृजनात्मक ऊर्जा, क्रिएटिव एनर्जी, अन्यथा जगत हो नहीं सकेगा। और यह सृजनात्मक शक्ति ही अगर जगत में हो, तो फिर विश्राम असंभव हो जाएगा। इसलिए विनाश की भी उतनी ही मूल्यवान शक्ति, डिस्ट्रक्टिव एनर्जी भी जगत में होनी चाहिए, तभी दोनों में संतुलन होगा।
लेकिन अगर ये दोनों ही शक्तियां हों, तो बीच में मौका अस्तित्व को बचने का बचेगा ही नहीं। एक तीसरी शक्ति भी चाहिए, जो अस्तित्व को सम्हालती हो। जन्म के और मृत्यु के बीच में जो अस्तित्व को सम्हालती हो; सृजन के और प्रलय के बीच में जो अस्तित्व को धारण करती हो, वैसी एक तीसरी शक्ति भी चाहिए।
ये तीन मौलिक शक्तियां हैं। इन तीन मौलिक शक्तियों के प्रतीक और शब्द-चित्र ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं।
हिंदुओं की यह अंतर्दृष्टि धीरे-धीरे इतनी व्यापक और मूल्यवान सिद्ध हुई कि करीब-करीब जगत में जहां भी इस विचार की खबर पहुंची, वहां-वहां तीन शक्तियों का स्वीकार हो गया। जैसे ईसाइयत तीन शक्तियों को स्वीकार करती है, गॉड दि फादर, गॉड दि सन और दोनों के बीच में एक तीसरी शक्ति, होली घोस्ट। नाम कोई भी दिए जा सकते हैं। नाम का चुनाव निजी है। लेकिन त्रिमूर्ति का यह भाव ईसाइयत स्वीकार करती है। उसको वे ट्रिनिटी कहते हैं। ये जो तीन अस्तित्व की शक्तियां हैं, इनके बिना अस्तित्व नहीं हो सकता है, इसकी स्वीकृति ईसाइयत के धर्म-विचार में भी है।
और आधुनिक विज्ञान ने भी पदार्थ के विश्लेषण पर, बहुत चकित होकर जाना
कि पदार्थ के विश्लेषण पर तीन ही शक्तियां शेष रह जाती हैं। जैसे ही हम परमाणु का विस्फोट करते हैं, विश्लेषण करते हैं, तो इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान, ये तीन अंतिम अस्तित्व हमारे हाथ में आते हैं। और मजे की बात तो यह है कि इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान, इन तीनों का भी व्यावहारिक रूप वही है, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश का है। उन तीनों का काम भी वही है। उनमें एक विधायक है, एक विनाशक है, और एक तटस्थ है। उसमें एक सृजनात्मक है, एक समाप्त करने वाला है और एक सम्हालने वाला है।
अगर हम धर्म की दिशा से यात्रा करें, तो जो शब्द हम चुनते हैं, वे वैयक्तिक होते हैं, पर्सनल होते हैं। क्योंकि धर्म चित्रों में सोचता है। इसलिए हमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन को बनाया है। हमने तीनों की

त्रिमूर्ति बनाई है, जिनमें शरीर एक है और चेहरे तीन हैं। इस बात की सूचना देने के लिए कि ये तीन हमें बाहर से दिखाई पड़ते हैं, भीतर से एक हैं।
इन तीनों में कृष्ण ने कहा कि मैं विष्णु हूं।
इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। इन तीनों में कृष्ण ने कहा कि मैं विष्णु हूं। सृजन एक क्षण में हो जाता है। और विनाश भी एक क्षण में हो जाता है। काल का लंबा विस्तार विष्णु के हाथ में है। सृजन हुआ, बात समाप्त हो गई; स्रष्टा का उपयोग समाप्त हो गया। और विनाशक शक्ति का उपयोग अंत में होगा, जब प्रलय होगा। इसलिए विराटतम ऊर्जा, जो काम में निरंतर आती है, वह मध्य में है, वह विष्णु है।
कृष्ण कहते हैं, इन तीनों में मैं विष्णु हूं।
हिंदुओं के सारे अवतार विष्णु के अवतार हैं। हिंदुओं ने माना है कि ईश्वर जब भी प्रकट होता है, तो वह विष्णु का अवतार है। इसे थोड़ा हम समझें कि इसका क्या प्रयोजन और क्या अर्थ होगा! क्या अभिप्राय होगा!
जब सृष्टि नहीं हुई हो, तब तो मनुष्य भी नहीं होता, और अवतार का कोई अर्थ और कोई प्रयोजन नहीं है। और जब सृष्टि विनष्ट हो गई हो, विलीन हो गई हो, तब भी अवतार का कोई प्रयोजन नहीं है। अवतार का प्रयोजन तो सृजन और अंत के बीच में, जब सृष्टि चलती हो, प्रक्रिया में हो, जीवंत हो, तभी प्रयोजन है।
शिव का अवतार, विनाश का अवतार होगा। उसकी कोई आवश्यकता मध्य में नहीं
हो सकती। और ब्रह्मा का अवतार सृजन का अवतार होगा, उसकी कोई आवश्यकता मध्य में नहीं हो सकती। और जीवन है मध्य में। प्रारंभ और अंत तो दो छोर हैं।
हम ऐसा कह सकते हैं कि ब्रह्मा और महेश तो छोर पर उपयोगी हैं, लेकिन पूरा जीवन का जो फैलाव है, वह फैलाव विष्णु का फैलाव है। इसलिए इस मध्य के काल में, जीवन के काल में जो भी ईश्वर की अवधारणाएं हैं, वे सभी अवधारणाएं विष्णु की अवधारणाएं हैं। वही शक्ति, जो जीवन को धारण करती है, वही अवतरित होगी।
इसलिए बहुत मजे की बात है, ब्रह्मा का एकाध मंदिर खोजे से मिलेगा। ब्रह्मा की पूजा भी चलती हुई मालूम नहीं पड़ती है। सृजन तो हो चुका, इसलिए ब्रह्मा भुलाए जा सकते हैं। वह बात हो चुकी। अभी ब्रह्मा का कोई संस्पर्श जीवन से नहीं है। वह घटना घट चुकी; ब्रह्मा का काम पूरा हो चुका। विष्णु की पूजा चलती है। चाहे राम के रूप में, चाहे कृष्ण के रूप में, चाहे बुद्ध के रूप में--क्योंकि हिंदू मानते हैं, बुद्ध भी विष्णु का ही अवतार हैं--अनेक-अनेक रूपों में विष्णु की पूजा चलती है, क्योंकि जीवन का प्रतिपल संबंध विष्णु से है।
शिव के भी बहुत मंदिर हैं, और शिव के भी बहुत भक्त हैं। वह घटना भी अभी घटने को है, वह भविष्य है। मृत्यु, प्रलय, वह घटना अभी घटने को है। अभी शिव भी बहुत सार्थक हैं और उनकी पूजा में भी अभिप्राय है।
आदमी तो पूजा भी करेगा, तो अभिप्राय से करेगा। इसलिए ब्रह्मा की पूजा नहीं चलती, क्योंकि कोई भी संबंध नहीं रह गया है। वह घटना घट चुकी, अतीत हो गई बात। अब ब्रह्मा की जरूरत पड़ेगी नई सृष्टि के जन्म के समय। तब भी कोई ब्रह्मा की पूजा नहीं करेगा, क्योंकि पूजा करने वाले लोग ही नहीं होंगे। जब पूजा करने वाले लोग आ जाते हैं, तो ब्रह्मा का काम समाप्त हो चुका होता है। इसलिए ब्रह्मा का भक्त खोजना जरा मुश्किल है, कठिन है, क्योंकि कोई भी संबंध हमारा उनसे जुड़ने का--हमारे लोभ से, हमारे भय से, हमारे स्वार्थ से, हमारे कल्याण से ब्रह्मा का कोई भी संबंध नहीं जुड़ता।
इसलिए यह घटना घटी है कि तीनों सृष्टि के प्रधान देवता हैं, लेकिन ब्रह्मा बिल्कुल ही उपेक्षित हैं। वे रहेंगे ही। विष्णु की सर्वाधिक पूजा होगी, क्योंकि जीवन का दैनंदिन, प्रतिपल का संबंध उनसे है। और जितने भी रूप परमात्मा के प्रकट होंगे, हिंदू कहता है कि वे सभी विष्णु के ही रूप हैं। होंगे ही। एक ही ऊर्जा जो धारण करती है, वही जीवन के इस लंबे विस्तार में बार-बार प्रवेश करेगी।
शिव का प्रयोग अंतिम होगा, लेकिन वह भी हमारा भविष्य है। और आदमी की चिंता भविष्य के लिए भी होती है, शायद वर्तमान से भी ज्यादा भविष्य के लिए

होती है। आदमी के भय और आदमी के लोभ वर्तमान से भी ज्यादा भविष्य में निर्भर होते हैं। आने वाले कल में सब कुछ निर्भर होता है। तो शिव की भी पूजा चलेगी।
लेकिन कृष्ण ने कहा कि मैं विष्णु हूं। यह जीवन का जो केंद्रीय तत्व
है सम्हालने वाला, वह मैं हूं।
इसे आप ठीक से समझ लेंगे कि यह केवल चित्रों के द्वारा, प्रतीकों के द्वारा अर्जुन को बोध देना है। कृष्ण ने गहरी बातें भी अर्जुन को कही हैं, वे शायद उसकी पकड़ में नहीं आतीं। वह कहता है, मुझे और विस्तार से कहें। विस्तार में जानने का मतलब ही यह है कि जो उसे कहा गया है, वह उसे साफ नहीं हो सका। तो कृष्ण अब बिल्कुल ठीक अर्जुन को एक बच्चे की तरह मानकर चल रहे हैं। वे उसे कह रहे हैं कि मैं विष्णु हूं।
यह अर्जुन की समझ में आ सकता है। यह आसान है। यह सरल होगा। यह हमारे जगत की भाषा का हिस्सा हो जाता है। परमात्मा--एक तो इस अवस्था में उसकी चर्चा की जा सकती है कि जहां से भी हम पहुंचने की कोशिश करें, हमारे हाथ छोटे पड़ जाएं। कितनी ही हम आंखें ऊपर उठाएं, वह हमें दूर ही मालूम पड़े। विष्णु के माध्यम से कृष्ण कहते हैं कि मैं बहुत निकट हूं। प्रतिपल मैं ही जीवन को धारण किए हुए हूं। आती हुई श्वास में भी मैं हूं, जाती हुई श्वास में भी मैं हूं। खून की रफ्तार में भी मैं हूं, वृक्ष के खिलने में भी मैं हूं। यह जो जीवन को सम्हाले हुए हूं, इस जीवन का सारा आधार मैं हूं। विष्णु का अर्थ है, जीवन का आधार। प्रतिपल, प्रतिक्षण, जो सम्हाले हुए है, वही मैं हूं। यह अर्जुन को समझना आसान हो सकेगा।
विष्णु हूं मैं, और ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूं।
जैसे भौतिक वैज्ञानिक पदार्थ की आखिरी इकाई परमाणु मानते हैं, वैसे
ही अगर हम समस्त अस्तित्व के विराट रूप को ध्यान में रखें, तो सूर्य सबसे छोटी इकाई है। जैसे परमाणु, हम पदार्थ को तोड़ते चले जाएं, तो आखिरी इकाई है, ऐसे ही अगर हम पूरे अस्तित्व की इकाई खोजने जाएं, तो सूर्य पूरे अस्तित्व की प्राथमिक इकाई है।
रात में आप आकाश को तारों से भरा हुआ देखते हैं, तो आपको ख्याल भी नहीं आता होगा कि इनमें तारा कोई भी तारा नहीं है, ये सभी सूर्य हैं। और हमारे सूर्य से बहुत बड़े सूर्य हैं। हमारा सूर्य बहुत मीडियाकर, मध्यमवर्गीय है। ऐसे तो बहुत बड़ा है, हमारी दृष्टि से। पृथ्वी से तो साठ हजार गुना बड़ा है। लेकिन और महासूर्य हैं, जिनके मुकाबले वह कुछ भी नहीं है।
ये जो रात में हमें तारे दिखाई पड़ते हैं, ये सभी सूर्य हैं। बहुत छोटे दिखाई पड़ते हैं। छोटे दिखाई इसलिए पड़ते हैं कि बहुत फासला है, लंबा फासला है। इस फासले का हम थोड़ा ध्यान रखें, तो हमें ख्याल में आए कि सूर्य को प्राथमिक इकाई, यूनिट मानने का क्या कारण है।
जमीन से अगर हम सूरज की तरफ यात्रा करें, सूरज की किरण की ही रफ्तार से यात्रा करें, तो हमें पहुंचने में कोई साढ़े नौ मिनट लगेंगे। लेकिन सूरज की किरण की रफ्तार से चलें तो! अभी तो हमारे पास जो बड़ी से बड़ी रफ्तार है, उससे भी हम पूरे जीवन भी चलते रहें, तो सूरज तक नहीं पहुंच पाएंगे। सूरज की किरण चलती है एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील! एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील! इसमें साठ का गुणा करें तो एक मिनट में, और उसमें भी साठ का गुणा करें, तो एक घंटे में।
लेकिन सूरज हमारे बहुत करीब है, साढ़े नौ, दस मिनट का फासला है। अगर हम
इन तारों की तरफ यात्रा करें, तो जो सबसे निकट तारा है, उस तक अगर हम सूरज की किरण की रफ्तार से चलें, तो हमें पहुंचने में चार साल लगेंगे। सूरज की किरण की रफ्तार से चलने में सूरज के बाद जो सबसे निकट का सूर्य है, हमें पहुंचने में चार साल लगेंगे।
अभी तक वैज्ञानिक मानते हैं कि हम उस रफ्तार से कभी चल न सकेंगे, क्योंकि उस रफ्तार पर कोई भी चीज, उतनी रफ्तार पकड़ते ही सूर्य की किरण बन जाएगी। जो भी वाहन हम उपयोग करेंगे, जो यात्रा का साधन उपयोग करेंगे, वह किसी भी धातु का हो, उतनी रफ्तार पर वह सूर्य की किरण हो जाएगा। और उसके

भीतर के यात्री भी किरण हो जाएंगे। उतनी तेज रफ्तार पर इतनी गर्मी पैदा होगी कि जो भी होगा, वह आग हो जाएगा।
इसलिए आशा नहीं है अभी कि उतनी रफ्तार पर हम कभी यात्रा कर सकेंगे। अब
तक की जो व्यवस्था है, उसमें कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती। एक ही संभावना है, जो कि अभी बिल्कुल कल्पना है, वह संभावना यह है कि सूरज की किरण की हैसियत से, सूरज की किरण बनकर ही कोई आदमी यात्रा करे और एक विशेष टेंपरेचर पर सूरज की किरण बन जाए और जब दूसरे सूरज पर पहुंचे, तो वापस टेंपरेचर पर आदमी बनाया जा सके, री-कनवर्ट किया जा सके। लेकिन वह शायद हजारों-लाखों वर्ष बाद कभी संभव हो सके।
चार वर्ष लगेंगे हमें, जो निकटतम सूर्य है वहां तक पहुंचने में। लेकिन वह निकटतम है, उससे दूर सूर्य हैं। और अब तक वैज्ञानिकों ने कोई तीन अरब सूर्यों का पता लगाया है। यह भी अंत नहीं है। यह भी केवल हमारी खोज की सीमा है, अस्तित्व की सीमा नहीं है।
इनमें जो तीन अरब सूर्य हैं, उनमें से कुछ सूर्य तो ऐसे हैं कि उनकी किरण हम तक पहुंचने में अरबों वर्ष लग जाते हैं, उसी रफ्तार से, एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड की रफ्तार से! कुछ ऐसे सूर्य हैं जिनकी किरण अब हमारी पृथ्वी पर पहुंची है, और तब चली थी, जब हमारी पृथ्वी बनी थी। हमारी पृथ्वी को बने कोई चार अरब वर्ष हुए हैं। चार अरब वर्षों में चली हुई किरण जो पहले दिन चली थी पृथ्वी के बनने पर, वह अब पहुंच पाई है!
और वैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसे भी सूर्य हैं, हमारी पृथ्वी बन जाएगी,
हम रह चुके होंगे अरबों-खरबों वर्ष और समाप्त हो जाएगी, और उनकी किरण जो चली होगी बनने के पहले, वह हमारे मिटने के बाद यहां से गुजरेगी।
उस किरण को पता ही नहीं चलेगा कि बीच में यहां एक पृथ्वी बनी, उस पर करोड़ों लोग रहे, अरबों वर्ष तक युद्ध चले, कलह चली; लोभ, भय चला; निर्माण हुआ, विनाश हुआ; उस किरण को कुछ भी पता नहीं चलेगा। वह किरण जब चली थी, तब पृथ्वी नहीं थी; और जब यहां से गुजरेगी, तब फिर पृथ्वी शून्य हो गई होगी। उस किरण के लिए इस स्थान पर कभी कोई घटना ही नहीं घटी। हमारा सारा इतिहास, लंबे से लंबा इतिहास भी उस किरण की यात्रा के बीच में पता ही नहीं चलेगा। लेकिन यह भी अंतिम सूर्य नहीं है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि इस विस्तार का कोई अंत नहीं है।
इसको अगर हम ध्यान में रखें, तो सूर्य जो है, वह इस विराट का यूनिट है, इकाई है। इस विराट को अगर हम तौलें, तो सूर्य से तौल सकते हैं। एक-एक सूर्य का अपना-अपना सौर-परिवार है। पृथ्वी है, चांद है, मंगल है, बृहस्पति है, यह सब एक सूर्य का परिवार है। वैज्ञानिक कहते हैं, ये सब सूर्य से ही पैदा हुए हैं। ये सब सूर्य के ही टुकड़े हैं। एक सूर्य के नष्ट होने पर उसका पूरा परिवार नष्ट हो जाता है। और एक सूर्य के पैदा होने पर उसका पूरा परिवार निर्मित होता है। जिस दिन हमारा सूर्य नष्ट हो जाएगा, उस दिन सब हमारे सूर्य का परिवार नष्ट हो जाएगा।
और यह कोई अनहोनी घटना नहीं है। रोज सैकड़ों सूर्यों के परिवार नष्ट होते हैं और रोज नए सैकड़ों सूर्यों के परिवार जीवित होते हैं, जन्म लेते हैं। जब एक सूर्य कहीं मरता है, तो तत्काल दूसरा सूर्य कहीं पैदा हो जाता है, क्योंकि उसकी निकली हुई सारी किरणें पुनः दूसरी जगह संगठित हो जाती हैं।
सूरज भी रोज चुकता चला जाता है। हमारी जमीन को यह सूरज कोई चार अरब वर्ष से प्रकाश दे रहा है। उसका प्रकाश रोज कम होता जा रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार हजार साल और, और सूरज का ईंधन चुक जाएगा, वह ठंडा पड़ जाएगा, बुझ जाएगा। उसके बुझते ही सब बुझ जाएगा। हमारा सौर-परिवार बुझ जाएगा।
लेकिन तब तक उसकी सारी किरणें किसी दूसरे कोने में विराट के इकट्ठी होकर नए सूर्य को जन्म दे देंगी और नया सूर्य-परिवार निर्मित हो जाएगा। जैसे एक व्यक्ति मरता है और बच्चे को जन्म दे जाता है, ऐसे ही सूरज भी मरते रहते हैं और नए सूर्यों को जन्म देते चले जाते हैं। इस विराट की व्यवस्था में सूरज छोटी से छोटी चीज है।

इसलिए कृष्ण ने कहा कि ज्योतियों में मैं किरणों वाला सूर्य हूं।
इस विराट की दृष्टि से सूर्य छोटी से छोटी चीज है, लेकिन हमारे अनुभव
और अर्जुन की समझ में आने वाली सूर्य सबसे बड़ी चीज है। सूर्य हमारे अनुभव में आने वाली सबसे विराट घटना है। अस्तित्व की दृष्टि से सूर्य सबसे छोटी चीज है। कृष्ण अगर अपनी तरफ से बोलें, तो अर्जुन की समझ में नहीं आता है। इसलिए कृष्ण अब अर्जुन की तरफ से बोल रहे हैं। सबसे छोटी चीज को वे कह रहे हैं। अर्जुन के लिए वह सबसे बड़ी है।
ध्यान रखें, सारे वक्तव्य रिलेटिव हैं, सापेक्ष हैं। जब भी हम कहते हैं छोटा और बड़ा, तो किसी की तुलना में कहते हैं। अर्जुन की दृष्टि से सूरज बड़ी से बड़ी घटना है। इससे बड़ी और कोई घटना क्या हो सकती है! कृष्ण की दृष्टि से सूरज छोटी से छोटी घटना है; छोटी से छोटी इकाई है।
बर्ट्रेंड रसेल ने एक बहुत प्यारी कहानी लिखी है। बर्ट्रेंड रसेल ने थोड़ी ही कहानियां लिखी हैं। वे कोई कहानी-लेखक नहीं थे। लेकिन कुछ बातें कहनी हों और ऐसी हों कि दर्शन की भाषा में न कही जा सकें, तो कभी-कभी कहानियों की भाषा में कही जा सकती हैं। तो रसेल ने लिखी है एक कहानी। उस कहानी को नाम दिया है, एक धर्मगुरु का दुखस्वप्न--नाइटमेयर आफ ए थियोलाजियन।
एक धर्मगुरु रात सोया और उसने स्वप्न देखा कि उसकी मृत्यु हो गई है।
तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। क्योंकि जीवन में कभी उसने कोई पाप नहीं किया था कि नर्क जाने का भय उसे लगे। न कभी झूठ बोला, न कभी बेईमानी की, न किसी का दिल दुखाया। निश्चित था कि स्वर्ग उसे मिलने वाला है। और दिन-रात ईश्वर का ही गुणगान किया। स्वाभाविक था कि उसके मन में गहरी आशा हो कि स्वर्ग के द्वार पर स्वयं ईश्वर ही मेरा स्वागत करेगा।
लेकिन जब वह धर्मगुरु स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा, तो वह बहुत मुश्किल में पड़ गया। द्वार इतना बड़ा था कि उस धर्मगुरु को उसका ओर-छोर दिखाई नहीं पड़ता था। उसने बहुत ताकत लगाकर द्वार को पीटा। लेकिन उसको खुद भी समझ में आ गया कि इतना बड़ा द्वार है, यह मेरे हाथ की आवाज भीतर तक पहुंच नहीं सकती। तब उसका चित्त उदास भी होने लगा। क्योंकि सोचा था, बैंड-बाजे के साथ ईश्वर खुद मौजूद होगा। वहां कोई भी नहीं था। न मालूम कितने वर्ष उसे बीतते मालूम पड़ने लगे। चीखता है, चिल्लाता है। रोता है। छाती पीटता है, दरवाजा पीटता है।
फिर एक खिड़की खुली और एक चेहरा बाहर झांका। हजार आंखें थीं और एक-एक आंख जैसे एक-एक सूर्य हो! वह घबड़ाकर नीचे दुबक गया और चिल्लाने लगा कि थोड़ा पीछे हट जाएं। हे परम पिता, हे परमेश्वर, आपके प्रकाश को मैं नहीं सह सकता हूं। आप थोड़ा पीछे हट जाएं।
लेकिन उस आदमी ने कहा कि क्षमा करें। आप भूल में हैं। मैं सिर्फ यहां
का पहरेदार हूं। मैं कोई परमेश्वर नहीं हूं। परमेश्वर का मैंने कभी कोई दर्शन नहीं किया। मैं सिर्फ यहां का पहरेदार हूं। परमेश्वर और मेरे बीच बड़ा फासला है। वहां तक पहुंचने की अभी मेरी सुविधा नहीं बन पाई।
तब तो वह धर्मगुरु बहुत घबड़ाया। एक कीड़े-मकोड़े की तरह दुबककर वह नीचे बैठ गया। और उसने कहा, फिर भी, आप अगर परमेश्वर तक खबर पहुंचा सकें या कोई उपाय करें, कहें कि मैं पृथ्वी से आया हूं, फलां-फलां धर्म का मानने वाला, फलां-फलां धर्म का सबसे बड़ा धर्मगुरु। लाखों लोग मेरी पूजा करते हैं, लाखों लोग मेरे चरणों में गिरते हैं। मैं आ रहा हूं, मेरी खबर कर दें। मेरा यह-यह नाम है।
तो उस द्वारपाल ने कहा कि क्षमा करें। आपके नाम का तो पता लगाना बहुत कठिन पड़ेगा। आपके संप्रदाय का भी पता लगाना बहुत कठिन पड़ेगा। आप किस पृथ्वी से आ रहे हैं, उसका नाम बताइए। उस धर्मगुरु ने कहा, किस पृथ्वी से! पृथ्वी तो बस एक ही है, हमारी पृथ्वी! उस द्वारपाल ने कहा कि आपका अज्ञान गहन है। अनंत-अनंत पृथ्वियां हैं इस विराट विश्व में। किस पृथ्वी से आते हो, इंडेक्स नंबर बोलो! तुम्हारी पृथ्वी का नंबर क्या है?

वह धर्मगुरु बड़ी मुश्किल में पड़ गया। किसी धर्मशास्त्र में भी पृथ्वी
का कोई इंडेक्स नंबर दिया हुआ नहीं था। क्योंकि सभी धर्मशास्त्र इसी पृथ्वी पर पैदा हुए हैं। और यह मानकर चलते हैं कि यही पृथ्वी सब कुछ है। धर्मगुरु को दिक्कत में देखकर उस द्वारपाल ने कहा कि अगर तुम्हें पृथ्वी का कोई नंबर याद न हो, तो तुम किस सूर्य के परिवार से आते हो, उसका इंडेक्स नंबर बोलो। किस सूर्य के परिवार से आते हो? तो कुछ खोज-बीन हो सकती है, अन्यथा बड़ी कठिनाई है।
धर्मगुरु इतना घबड़ा गया! सोचता था, उसकी भी खबर होगी परमात्मा को। बड़ा धर्मगुरु है। हजारों उसके मानने वाले हैं। सोचता था, मेरी खबर होगी। मेरे मंदिर, मेरे चर्च की खबर होगी। लेकिन यहां उस पृथ्वी का ही कोई पता नहीं। यहां उस सूर्य के लिए भी नंबर बताना जरूरी है। और तब भी उसने कहा कि अनेक वर्ष लग जाएंगे, तभी खोज-बीन हो सकती है कि आप कहां से आते हैं।
घबड़ाहट में उसकी नींद खुल गई, वह पसीने से तरबतर था। यह सपना देख रहा था।
आदमी अपने को केंद्र मान लेता है, नासमझी के कारण। आदमी अपने को मान लेता है कि मैं आधार में हूं, नासमझी के कारण। अस्तित्व बहुत विराट है। इस विराट अस्तित्व की बात तो अर्जुन के समझ में नहीं आएगी। इसलिए कृष्ण कहते हैं, समस्त ज्योतियों में, समस्त प्रकाशों में मैं सूर्य हूं। यह अर्जुन की भाषा में समझ में आ सके, वहां परमात्मा के लिए प्रतीक निर्मित करना है। इसलिए सारे धर्मों ने प्रतीक निर्मित किए। सूर्य भी बहुत धर्मों के लिए परमात्मा का प्रतीक रहा है। उसका कुल कारण इतना है कि हमारे अनुभव में सूर्य सबसे ज्यादा प्रकाशवान है। और हमारे अनुभव में सूर्य ही प्राणों का केंद्र है। और हमारे अनुभव में हमारे जीवन का समस्त आधार सूर्य है।
इसलिए हजारों साल पीछे भी हम लौट जाएं, अशिक्षित से अशिक्षित, जंगली
से जंगली आदमी का समाज रहा हो, सूर्य के लिए हाथ जोड़कर वह नमस्कार करता रहा है। सूर्य, पृथ्वी के अनेक-अनेक कोनों में परमात्मा का प्रतीक बन गया है। और फिर उस प्रतीक से हम और छोटे प्रतीक बनाते हैं। आग भी परमात्मा का प्रतीक बन गई, क्योंकि वह भी सूर्य का अंश है।
हेराक्लतु ने यूनान में कहा है कि फायर, आग ही समस्त जीवन का आधार है।
आग ही जीवन है। आग के ही विभिन्न क्रमों में जीवन प्रकट होता है और लीन होता है।
हेराक्लतु की बात हमें ठीक शायद न भी मालूम पड़े, लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि विद्युत ही जीवन है। विद्युत नई भाषा है, लेकिन विद्युत आग है। और अगर हिंदू कहते थे कि सूर्य ही जीवन है, तो यह भाषा कितनी ही पुरानी हो, लेकिन इसका अर्थ वही है। सूर्य कहे कोई, अग्नि कहे कोई, विद्युत कहे कोई, लेकिन जीवन किसी न किसी रूप में अग्नि के ही स्फुल्लिंगों से जुड़ा हुआ है।
कृष्ण कहते हैं कि मैं समस्त प्रकाशों में सूर्य हूं।
यह इशारा कर रहे हैं अर्जुन को कि तू समझ सके, सूर्य पर रुक जाना नहीं है। कृष्ण कहते हैं कि मैं समस्त प्रकाशों में सूर्य हूं। सिर्फ एक तुलना, प्रकाशों में एक इशारा, कि अर्जुन की आंख सूरज तक उठ सके, तो फिर सूरज के पार भी ले जाया जा सकता है। इसी कारण बहुत-सी भ्रांतियां हुईं।
भारत में भी हिंदू विचार ने सूर्य को परम देवता माना। लेकिन जैनों और बौद्धों ने इसका विरोध किया। उनका विरोध भी सही है और हिंदुओं का मानना भी सही है। उनका विरोध ऊपर के दृष्टिकोण से है। क्योंकि वे कहते हैं कि क्या सूरज को कहते हैं कि परमात्मा! परमात्मा बहुत विराट है, सूरज बहुत क्षुद्र है।
वह ठीक वैसा ही झगड़ा है कि वे कहते हैं कि क्या कहते हैं कि ग गणेश का!
ग तो अनंत-अनंत चीजों का है; गणेश से क्यों बांधते हैं?
लेकिन प्राथमिक चरण में ग गणेश का उपयोगी है। और प्राथमिक चरण में सूर्य भी अगर परमात्मा बन जाए, तो उपयोगी है।

सच बात यह है कि कोई भी प्रतीक, कितना ही छोटा क्यों न हो, अगर किसी की दृष्टि में ईश्वर बन जाए, तो वह व्यक्ति ऊपर उठना शुरू हो जाता है। यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि प्रतीक क्या है। महत्वपूर्ण यह है कि किसी प्रतीक को परमात्मा जानने का भाव, परमात्मा मानने का भाव अगर किसी में पैदा हो गया, तो ऊर्ध्व गति शुरू हो जाती है।
परमात्मा न मानने से, किसी भी चीज को परमात्मा मान लेना बेहतर है। वह चीज परमात्मा है या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। वह मान लेने वाला, मानने के साथ ही यात्रा पर निकल जाता है। सूर्य को भी कोई ईश्वर मानता हो, और वृक्ष को भी कोई ईश्वर मानता हो, और नदी को भी कोई ईश्वर मानता हो, तो बातें बहुत प्राथमिक मालूम होती हैं, लेकिन न मानने वाले से यह व्यक्ति भी अंतर्जीवन में ज्यादा गति कर जाएगा। कहीं भी कोई है, जहां यह सिर रख सकता है चरणों में। कहीं भी कोई है, जहां अहंकार विसर्जित हो सकता है। कहीं भी कोई है, जहां अपने से बड़ा माना जा सकता है, अपने से ऊपर देखा जा सकता है, अपने से पार जाने का रास्ता खुल जाता है।
अपने से निरंतर पार होते जाना ही साधना है। अपने से निरंतर ऊपर उठते जाना ही क्रम है। उस सीमा तक अपने से ऊपर उठते जाना है, जब तक कि अपनापन बचे। जब अपनापन बचे ही नहीं, तो जानना कि अंतिम मंजिल आ गई।
कृष्ण ने कहा कि मैं सूर्य हूं प्रकाशों में, वायु देवताओं में मरीचि हूं, श्रेष्ठतम, सबसे तीव्र गति वाला देवता हूं। नक्षत्रों में नक्षत्रों का अधिपति चंद्रमा हूं।
ये सब प्रतीक हैं। और जो भी श्रेष्ठतम है, उसकी तरफ कृष्ण इशारा कर रहे हैं।
और मैं वेदों में सामवेद हूं, देवों में इंद्र हूं, इंद्रियों में मन हूं, भूत-प्राणियों में चेतना अर्थात ज्ञान हूं।
यह अंतिम सूत्र बहुत समझने जैसा है।
वेदों में सामवेद हूं! यह बड़ी हैरानी का मालूम होता है। क्योंकि हमको लगेगा, कहना था, वेदों में ऋग्वेद हूं। प्रथम और सर्वाधिक मूल्य का समझा जाने वाला वेद तो ऋग है। कृष्ण ने क्यों कर सामवेद चुना होगा? और सब तो ठीक है कि प्रकाशों में सूर्य हूं और वायु देवताओं में मरीचि हूं, यह ठीक है। अदिति के पुत्रों में विष्णु हूं, यह ठीक है; इसमें कोई अड़चन नहीं, कोई दुविधा नहीं। लेकिन यह आखिरी वक्तव्य बहुत दुविधापूर्ण है कि मैं वेदों में सामवेद हूं। और पंडितों को बड़ी कठिनाई पड़ी है, इसको, सामवेद को श्रेष्ठतम रखने में। ऋग्वेद के ऊपर रखना इसे बहुत मुश्किल है। लेकिन कृष्ण ने यह क्यों पसंद किया होगा?
पुनः ऋग्वेद और सामवेद का सवाल नहीं है, पुनः अर्जुन का सवाल है। और अर्जुन को देखकर ही बात की जा रही है। यह भाषा अर्जुन के लिए है। और कृष्ण के व्यक्तित्व का भी सवाल है। और कृष्ण के व्यक्तित्व में भी सामवेद ही श्रेष्ठ मालूम पड़ेगा। और कृष्ण अपना तादात्म्य भी ऋग्वेद से नहीं कर पाते हैं, सामवेद से कर पाते हैं।
सामवेद संगीत का, गीत का वेद है; पांडित्य का नहीं, सिद्धांत का नहीं, गीत का, संगीत का। कृष्ण का व्यक्तित्व एक गणित के सिद्धांत की बजाय, गीत की कड़ी जैसा ज्यादा है। कृष्ण का व्यक्तित्व एक शुद्ध चिंतन, शुद्ध विचार--ऐसा कम; शुद्ध नृत्य--ऐसा ज्यादा है।
कृष्ण को हम बिना बांसुरी के सोच ही नहीं सकते। कृष्ण से छीन लें बांसुरी, तो कृष्ण का सब कुछ छिन जाता है। बुद्ध के पास बांसुरी रखें, बहुत असंगत मालूम पड़ेगी, इररेलेवेंट। बुद्ध से उसका कोई संबंध नहीं जुड़ेगा। महावीर के हाथ में बांसुरी दे दें, और महावीर सामने खड़े हों, तो आप सोच भी नहीं पाएंगे कि हाथ में जो चीज है, वह बांसुरी हो सकती है!
सुना है मैंने, एक अंग्रेज विचारक भारत आया हुआ था। वह शिव के एक मंदिर को देखने गया था। बाहर तो बड़ी धूप थी, तो उसने अपना टोप लगा रखा था। भीतर तो छाया थी गहन और ठंडक थी, तो उसने शिव की पिंडी के पास ही अपना टोप उतारकर रख दिया और मंदिर को घूमकर देखने लगा। जब वह खुद दरवाजे पर मंदिर के आया और उसने लौटकर देखा, तो अपने मित्र से जो साथ में था, एक

हिंदुस्तानी, उससे उसने पूछा कि शिव की पिंडी के पास जो चीज रखी है, वह क्या है?
तो शिव की पिंडी के पास हैट का क्या संबंध! तो उसके मित्र को ख्याल आया
कि मालूम होता है, शिव का घंटा किसी ने उलटा रख दिया है। एसोसिएशंस होते हैं। शिव के पास हैट का क्या संबंध होगा?
हम जो देखते हैं, उसमें सिर्फ देखते ही नहीं, उसमें हमारी व्याख्या भी होती है। अगर महावीर के हाथ में बांसुरी हो, तो हम सोच ही नहीं सकते कि बांसुरी है। महावीर और गीत का कोई संबंध नहीं। महावीर और काव्य में क्या लेना-देना! कृष्ण के हाथ में बांसुरी, कृष्ण के अंतरतम का प्रतीक हो जाती है।
इसलिए कृष्ण ने जब अर्जुन को कहा कि मैं वेदों में सामवेद हूं, तो यह सार्थक है। इसमें कृष्ण ने यह कहा कि शब्द और सिद्धांत और शास्त्र मैं नहीं हूं। गीत, संगीत, लय और नृत्य मैं हूं। और जीवन का जो परम रहस्य है, वह सिद्धांतों से नहीं हल होता, क्योंकि सिद्धांतों से तो एक दूरी बनी रहती है। जीवन का जो परम रहस्य है, वह तो किसी तल्लीनता में पूरा होता है। सामवेद तल्लीनता का शास्त्र है। इसलिए ऋग्वेद को कृष्ण ने नहीं कहा; सामवेद को कहा। यह खुद उनके व्यक्तित्व की भी झलक है उसमें, और अर्जुन को भी समझ में आ सके। इसे भी थोड़ा हम समझ लें कि अर्जुन की समझ में क्यों आ सके।
अर्जुन खुद भी कोई तर्क-शास्त्री नहीं है; एक योद्धा है। और कई बार हमें ऐसा भी लग सकता है कि एक योद्धा का गीत से, संगीत से क्या संबंध? विपरीत मालूम पड़ते हैं ऊपर से देखने में। कहां तलवार और कहां बांसुरी! लेकिन जो गहन अध्ययन करते हैं जीवन का, वे कहते हैं कि योद्धा भी जब युद्ध की सघनता में पूरा डूबता है, तो वैसा ही डूब जाता है, जैसा कोई संगीतज्ञ अपने संगीत में डूबता हो और जैसे कोई नर्तक अपने नृत्य में डूबता हो। जब कोई योद्धा तलवार चला रहा होता है, तो तलवार के साथ इतना एक हो गया होता है कि तलवार ही होती है, योद्धा नहीं होता। युद्ध का अपना एक संगीत है, और युद्ध का अपना एक काव्य है, और युद्ध की अपनी एक लयबद्धता है। जापान में तो समुराई होते हैं। वे ठीक जैसा भारत ने क्षत्रियों का एक गहन प्रयोग किया था, उससे भी गहन प्रयोग जापान ने समुराइयों का किया है। समुराई जापान के क्षत्रियों का नाम है। इस समुराई को तलवार चलाना भी सिखाया जाता है, नृत्य भी सिखाया जाता है, ध्यान भी सिखाया जाता है। और जब तक नृत्य, ध्यान और तलवार तीनों में कुशल न हो जाए समुराई, तब तक ठीक योद्धा नहीं माना जाता।
क्योंकि नृत्य का अर्थ ही यही है कि शरीर का एक-एक अंग जीवित हो गया।
और शरीर सिर्फ सिर से नहीं चलता है अब, शरीर का रोआं-रोआं सचेतन हो गया। एक नर्तक तो हो भी सकता है कि शरीर के किसी अंग में जड़ हो, लेकिन युद्ध के मैदान पर जहां तलवार हाथ में होगी और जीवन संकट में होगा, शरीर का एक भी अंग जड़ नहीं होना चाहिए। शरीर के सभी अंग चेतन होने चाहिए; रोआं-रोआं सजग होना चाहिए; और शरीर एक तरलता बन जानी चाहिए कि तलवार के साथ शरीर बह सके। समुराई को ध्यान भी सिखाते हैं। क्योंकि जापान में वे कहते हैं कि जो ध्यान में नहीं उतर सकता, वह बड़ा योद्धा नहीं हो सकता। क्योंकि अगर थोड़े से विचार मन में चल रहे हैं, तो तलवार और विचारों के बीच में आने से योद्धा पूरा का पूरा उतर नहीं पाएगा। विचार शांत हो जाने चाहिए, ताकि योद्धा पूरा का पूरा उतर जाए।
एक अनहोनी घटना घटती रही है जापान में। कभी अगर दो बड़े समुराई योद्धा युद्ध में उतर जाएं, तो हार-जीत तय नहीं हो पाती। क्योंकि दोनों ही इतने ध्यानपूर्वक युद्ध में उतरते हैं! और ध्यान की जब गहराई बढ़ती है, तो तलवार को चलाना नहीं पड़ता, तलवार चलना शुरू हो जाती है और हमला होने के पहले तलवार रक्षा के लिए तैयार हो जाती है।
समुराई कहते हैं कि जब दुश्मन हमला करे, तो समय इतना कम है कि उसकी तलवार आपकी गर्दन को काट जाएगी, अगर उसके हमले का ख्याल--हमला नहीं, हमले

का ख्याल ही--अगर आपका मन पकड़ ले और आपकी तलवार पहले ही आपके गले की रक्षा को उठ जाए, तो ही आप बच सकेंगे।
समुराई शास्त्र कहता है कि विचार से जो लड़ने जाएगा, वह हारेगा। ध्यान
से जो लड़ने जाएगा, वह दूसरे के विचार उसके ध्यान में प्रतिफलित होने लगते हैं। शांत मन दूसरे के विचारों को प्रतिफलन देने लगता है। इसके पहले कि दूसरे के विचार में आए कि मैं हमला करूं गर्दन पर, रक्षा की व्यवस्था हो जाएगी। इसलिए दो समुराई जब लड़ते हैं, तो तय नहीं हो पाता, जीत-हार तय नहीं हो पाती। असंभव है।
अर्जुन को भी समझ में आ सकता है यह, क्योंकि अर्जुन के शरीर को अगर हम समझें, तो वह किसी नर्तक से कम नहीं उसके पास शरीर था। नर्तक जैसा ही लोचपूर्ण, फ्लेक्सिबल शरीर चाहिए युद्ध के लिए भी। अर्जुन समझ सकता है; गीत को भी समझ सकता है; संगीत को भी समझ सकता है; नृत्य को भी समझ सकता है। एक युद्ध के नृत्य को वह जानता भी है। एक युद्ध के संगीत को भी वह जानता है। उसमें जरा भी लय टूट जाए, तो उसे पता है। जीवन के एक गहरे काव्य का उसे अनुभव है।
यह जरा कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन योद्धा जिस जीवन को अनुभव कर पाता है, उसे घर बैठे लोग कभी अनुभव नहीं कर पाते। शायद जीवन अपनी पूरी प्रगाढ़ता में युद्ध के मैदान में ही प्रकट होता है। जहां मौत चारों तरफ मौजूद हो जाती है, वहां आप पूरी इंटेंसिटी में जीवित होते हैं। जब मौत प्रतिपल आपको चारों तरफ से घेर लेती है, और किसी भी क्षण मृत्यु हो सकती है, उस दिन आपके जीवन की ज्योति पूरी भभककर जलती है। शायद युद्ध का आनंद भी वही है।
लेकिन हवाई जहाज से बम गिराने से उसका कोई संबंध नहीं है। हवाई जहाज
से बम गिराना, युद्ध का संगीत भी नष्ट हो जाता है। युद्ध की सारी कुरूपता तो मौजूद रह जाती है, और युद्ध का सारा सौंदर्य खो जाता है। आदमी-आदमी का सामने-आमने जो युद्ध था, उसकी एक शान थी, उसमें एक गरिमा थी। बंदूक भी आदमी- आदमी को दूर कर देती है, युद्ध की गरिमा खो जाती है। लेकिन दो हाथों में तलवार हों, और आमने-सामने दो जीवन लड़ते हों; दोनों शांत हों; और दोनों नृत्य से भरे हों; तो उस क्षण में वे जिस रहस्य को अनुभव कर पाते हैं, वह समाधि का ही रहस्य है।
इसलिए हमने तो इस देश में क्षत्रिय को नहीं कहा था कि वह जंगल भाग जाए समाधि के लिए।
वही कृष्ण अर्जुन को भी समझा रहे हैं कि तेरी नियति, तेरा स्वभाव क्षत्रिय का है। तू अगर जीवन के परम उत्कर्ष को भी पाएगा, तो युद्ध से ही पाएगा। भागकर तो तू जंग खा जाएगा। भागकर तो तू बेकार हो जाएगा। तू दूसरे के धर्म की तलाश कर रहा है। उससे तू अपनी नियति को नहीं पा सकता है; वह तेरी डेस्टिनी नहीं है। तू युद्ध से ही... ।
और निश्चित ही, अर्जुन जैसा व्यक्ति युद्ध के गहन क्षण में ही सत्य के क्षण को उपलब्ध होगा। जब चारों तरफ मृत्यु खड़ी होगी और जब इस मृत्यु के बीच में भी बिना किसी भय के वह संघर्ष में रत होगा; जब संघर्ष प्रतिपल चिंता पैदा करता होगा, तब भी निर्विचार, तब भी मौन और ध्यानस्थ, निर्भीक और अभय, वह युद्ध में लीन होगा, तभी, उसी गहराई में वह समाधि को जानेगा। जंगल की समाधि उसके लिए नहीं हो सकती।
कृष्ण से ज्यादा महत्वपूर्ण व्यक्ति खोजना जगत में मुश्किल है, जो व्यक्तियों के टाइप को, उनके स्वभाव को इतनी प्रगाढ़ता से पहचानता हो। अब तक मनुष्य-जाति ठीक अर्थों में व्यक्ति के प्रकार का विज्ञान विकसित नहीं कर पाई। बहुत प्रयास किए गए हैं। लेकिन अब तक कोई प्रयास बहुत गहन रूप से सफल नहीं हो सका।
अभी नए-नए, कुछ ही वर्ष पहले कार्ल गुस्ताव जुंग ने बहुत मेहनत की और व्यक्तियों के चार प्रकार बांटे। लेकिन हिंदू, व्यक्तियों के चार प्रकार लाखों वर्ष से बांटते रहे हैं। और बीसवीं सदी का कोई बड़े से बड़ा मनोवैज्ञानिक पुनः यह कहेगा कि व्यक्ति चार प्रकार के हैं... ! जब कि हिंदुस्तान में थोड़े अधकचरे पढ़े-लिखे लोग, सारी पुरानी पद्धति को तोड़ने में संलग्न हों, इस ख्याल से कि वे कोई बहुत बड़ा क्रांतिकारी कार्य कर रहे

हैं, तब पश्चिम में पुनः इस संबंध में सोच-विचार शुरू हो गया है कि व्यक्ति विभाजित है, उनके प्रकार विभाजित हैं। और जो व्यक्ति का प्रकार है, वही प्रकार उसके आनंद का मार्ग बन सकता है। दूसरे किसी भी मार्ग से जाकर वह दुख पाएगा।
और अगर आज पृथ्वी पर बहुत गहन दुख हो गया है, तो उसका बड़े से बड़ा कारण न
तो गरीबी है, क्योंकि गरीबी सदा से थी, आज से ज्यादा थी। न उसका कारण बीमारी है, क्योंकि बीमारी आज सबसे कम है, बहुत ज्यादा बीमारी इसके पहले थी। न उसका कारण अशिक्षा है, क्योंकि अशिक्षा आज न्यूनतम है। उसका गहरे से गहरा कारण एक है कि किसी व्यक्ति को पता नहीं कि उसका प्रकार क्या है। और बिना प्रकार के पता के व्यक्ति अपना गंतव्य खोज रहा है।
जो मेरी मंजिल हो ही नहीं सकती, वह मैं खोज रहा हूं। अगर न पाऊं, तो मैं दुखी रहूंगा। और अगर पा लूं, तो भी दुखी होऊंगा, क्योंकि वह मेरी मंजिल नहीं है। मैं अपनी मंजिल को खोजते हुए रास्ते में भी मर जाऊं, तो भी मुझे एक तृप्ति होगी। एक कदम भी मैं अपनी मंजिल के करीब पहुंचूं, जो मेरी नियति है, मेरा स्वभाव है, तो वह कदम मेरे लिए तृप्तिदायी हो जाएगा। लेकिन दूसरे की मंजिल पर भी मैं पहुंच जाऊं, तो भी कोई तृप्ति होने वाली नहीं है। क्योंकि तृप्ति का संबंध मंजिल से कम है, तृप्ति का संबंध आपसे ज्यादा है। जब आप और मंजिल में ताल-मेल बैठ जाता है, एक लयबद्धता आ जाती है, तब तृप्ति उपलब्ध होती है।
अर्जुन के लिए युद्ध ही उसकी मंजिल का रास्ता है।
अर्जुन समझ सकेगा कृष्ण की इस बात को, इसलिए वे कहते हैं कि मैं वेदों में सामवेद हूं। सामवेद से वे इतना ही कह रहे हैं कि मैं समस्त ध्वनियों में लयबद्धता हूं। मैं समस्त ध्वनियों में संगीत हूं। मैं समस्त शब्दों में संगीत हूं। और संगीत हो किसी शब्द में, तो मैं वहां मौजूद हूं।
देवों में इंद्र हूं और इंद्रियों में मन हूं।
देवों में इंद्र हम समझ सकते हैं। श्रेष्ठतम देव इंद्र है, देवताओं
का राजा है, इसलिए कृष्ण कहते हैं। इंद्रियों में मन हूं, यह थोड़ा समझना पड़ेगा।
साधारणतः हम सोचते हैं, इंद्रियां अलग हैं और मन अलग है। इसलिए तो हम पांच इंद्रियों की बात करते हैं। अगर हम मन को भी इंद्रिय समझें, तो हमें छः इंद्रियों की बात करनी चाहिए। हम सब कहते हैं, आदमी पंचेंद्रिय है। कृष्ण के हिसाब से आदमी के पास छः इंद्रियां हैं, पांच नहीं। मन भी एक इंद्रिय है। सूक्ष्मतम, श्रेष्ठतम, लेकिन मन भी एक इंद्रिय है।
इसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें।
आंख देखती है। कान सुनता है। हाथ छूते हैं। नाक से गंध आती है। जीभ से स्वाद आता है। ये सारी इंद्रियां इकट्ठा करती हैं। मन, इन सब इंद्रियों से जो इकट्ठा होता है, उसका नाम है। मन सभी इंद्रियों का संग्रह है। आंख देखती है आपको, आवाज कान सुनते हैं। मन तय करता है कि जिसको देखा, उसी को सुना है। क्योंकि आंख यह जोड़ नहीं कर सकती। आंख सिर्फ देख सकती है। आंख को यह पता नहीं चलेगा कि जिसको मैं देख रहा हूं, वही बोल भी रहा है। आंख को यह पता नहीं चलेगा।
कान को यह पता नहीं चलेगा कि जिसको मैं सुन रहा हूं, आंख उसी को देख भी रही है। आंख और कान के बीच कोई सेतु नहीं है। आंख और कान के बीच कोई लेन-देन नहीं है, कोई कम्युनिकेशन नहीं है। कान देख नहीं सकता, आंख सुन नहीं सकती। तो कैसे कान तय करता है कि जिसको आंख ने देखा है, उसी को मैंने सुना है! इन दोनों के बीच कोई बोलचाल नहीं है।
पांचों इंद्रियां अलग-अलग हैं। और अगर पांचों इंद्रियां बिल्कुल अलग-अलग हों, तो आप इसी वक्त टूटकर गिर जाएंगे, आपके भीतर ज्ञान की घटना ही नहीं घट पाएगी। पैर कहीं जाएंगे, आंख कुछ देखेगी, कान कुछ सुनेगा। इसको जोड़ेगा कौन? इसको इकट्ठा कौन करेगा? इसको एक फोकस कौन देगा?
मन इंद्रियों का जोड़ है। सारी इंद्रियां अपने अनुभव को मन में उंडेल देती हैं। मन उन्हें इकट्ठा कर लेता है, संयुक्त कर लेता है। उनकी

व्याख्या करता है, उनको नियोजित करता है। लेकिन मन भी एक इंद्रिय है, इसीलिए। पांचों इंद्रियों की केंद्रीय इंद्रिय है मन।
समझें कि पांच रास्ते हैं और मन उनका बीच का जोड़ है, जहां पांचों रास्ते मिल जाते हैं। मन आंख से देखता है, कान से सुनता है, हाथ से छूता है, ऐसा समझें। या ऐसा समझें कि हाथ छूते हैं, कान सुनते हैं, आंख देखती है और ये तीनों संवेदनाएं मन को उपलब्ध हो जाती हैं। मन इनको जोड़ लेता है, इकट्ठा कर लेता है। लेकिन मन इंद्रियों से जुड़ा हो, तो इंद्रियों से ज्यादा नहीं हो सकता। और मन अगर इंद्रियों का ही जोड़ करने वाला हो, तो इंद्रियों से ऊपर नहीं हो सकता। मन इंद्रियों से पार नहीं हो सकता। मन भी इंद्रियों का ही हिस्सा है।
इसलिए अगर आपकी आंख चली जाए, तो आपका मन कमजोर हो जाएगा; आपके मन की संपत्ति कम हो जाएगी। अंधे आदमी के पास जो मन होता है, उसकी संपदा कम होगी। क्योंकि आंख का कोई अनुभव उसके पास नहीं होगा। बहरे आदमी के पास जो मन होगा, उसका मन और भी संकीर्ण और दरिद्र और गरीब हो जाएगा। अगर हाथ-पैर को छूने की क्षमता भी चली जाए, लकवा लग जाए, तो मन और दरिद्र हो जाएगा। अगर आपकी पांचों इंद्रियां अलग कर दी जाएं, आपका मन तत्काल मुर्दा हो जाएगा, मर जाएगा।
मन इंद्रियों के बिना नहीं जी सकता। इंद्रियां बिना मन के नहीं जी सकतीं। अगर आपका मन बेहोश हो जाए, तो सब इंद्रियां काम बंद कर देती हैं। जब आप शराब पीते हैं, तो आपकी इंद्रियों पर अलग-अलग शराब का असर नहीं पड़ता। असर तो पड़ता है मन पर। लेकिन चूंकि केंद्रीय बिंदु बेहोश हो जाता है, सभी इंद्रियां बेकार हो जाती हैं। इंद्रियां फिर भी काम करती रहती हैं। कान फिर भी सुनता है, लेकिन मन नहीं पकड़ पाता। आंख फिर भी देखती है, लेकिन मन नहीं पकड़ पाता।
इसलिए शराबी आदमी आप देखते हैं सड़क पर चलता हुआ, एक पैर कहीं पड़ता है, दूसरा पैर कहीं पड़ता है। पैर अभी भी चलते हैं, लेकिन अब दोनों पैरों के बीच में भी जोड़ रखने वाला तत्व बेहोश होने से कोई व्यवस्था नहीं रह जाती; सब अस्तव्यस्त हो जाता है। कुछ देखते हैं, कुछ सुनाई पड़ता है। कुछ बोलते हैं। जो नहीं बोलना चाहते थे, वह निकल जाता है। जिस तरफ नहीं जाना था, वहां चले जाते हैं। जो नहीं करना था, वह कर लेते हैं।
मन समस्त इंद्रियों का सार है, सूक्ष्मतम, इसेंस। कृष्ण उसे भी इंद्रिय कहते हैं।
अर्जुन को क्यों इंद्रियों से समझाने की जरूरत पड़ी? कहना तो चाहिए कृष्ण को--उन्होंने कहा भी--कि मैं आत्मा हूं, कहा कि मैं हृदय हूं, और अब इस सूत्र में वे कहते हैं कि समस्त इंद्रियों में मैं मन हूं! यह बहुत नीचे उतरकर बात करनी पड़ रही है। पहला वक्तव्य है कि मैं हृदयों में हृदय, सबकी आत्माओं की आत्मा! और अब कृष्ण को कहना पड़ रहा है कि मैं इंद्रियों में मन। अर्जुन शायद आत्मा की बात नहीं समझ पाया। उसे शायद पता ही नहीं है कि आत्मा क्या है? शब्द सुन लिया, उसकी समझ में कुछ आया नहीं होगा। कृष्ण ने देखा होगा, उसकी आंख में कोई भाव नहीं उठा। शब्द सुन लिया उसने, लेकिन शब्द से कोई प्रतिध्वनि पैदा नहीं हुई। भीतर कोई संगीत नहीं छिड़ा। भीतर कोई तार पर चोट नहीं पड़ी। भीतर कुछ हुआ ही नहीं; सन्नाटा रहा।
आत्मा, परमात्मा, हम शब्द तो सुन लेते हैं, कान हमारे पास हैं। शब्द भीतर गूंजते हैं और निकल जाते हैं। भीतर कुछ उनसे होता नहीं। जब मैं कहूं कि आपके भीतर आत्मा है; कहूं, आपके भीतर परमात्मा है; तो आपके भीतर कुछ भी होता नहीं। और आपसे मैं कहूं कि ख्याल किया आपने, आपके खीसे में लाख रुपए का हीरा है, तब तत्क्षण कुछ होता है। आपका हाथ फौरन खीसे में जाएगा। और हीरा समझ में आता है, एकदम बात साकार हो जाती है कि क्या है। कोई रूप में अंतर नहीं रहता। कोई भूल-चूक नहीं होती। हम समझ जाते हैं, क्या है। अर्जुन शायद नहीं समझ पाया आत्मा के तल की बात, इसलिए कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों में मैं मन हूं। श्रेष्ठतम इंद्रिय हूं।
लेकिन यह बच्चे को समझाने के लिए लिया गया प्रतीक है। क्योंकि कृष्ण इंद्रियों में मन हैं, यह ठीक है, इंद्रियों की तरफ से हम सोचें तो! और जरा

पीछे हटें, तो कृष्ण मन नहीं हैं! मन के भी पीछे जो ज्ञाता है, द्रष्टा है, वह हैं। और पीछे हटें, तो द्रष्टा भी नहीं, क्योंकि द्रष्टा भी दृश्य से बंधा होता है; द्वैत का थोड़ा संबंध होता है। फिर पीछे तो सिर्फ शुद्ध चैतन्य है, सिर्फ ज्ञान की क्षमता।
महावीर ने कहा है, केवल ज्ञान, जस्ट नोइंग। फिर तो पीछे सिर्फ ज्ञान मात्र ही रह जाता है; ज्ञाता भी नहीं। लेकिन जितने हम पीछे की, गहरे की बात करें, उतना ही समझना मुश्किल हो जाता है। इसलिए दरवाजे से ही कृष्ण शुरू कर रहे हैं।
ऐसा समझें कि एक मंदिर है और मंदिर के गहन गर्भ में प्रतिमा स्थापित है। और एक आदमी से हम बात कर रहे हैं, जो कभी किसी मंदिर के भीतर नहीं गया, मंदिर के बाहर ही खड़ा है। तो कृष्ण उससे कहते हैं कि ये जो दस सीढ़ियां हैं, इसमें दसवीं सीढ़ी मैं हूं। ये सीढ़ियां दिखाई पड़ती हैं। मकान के बाहर से, मंदिर के बाहर से, सीढ़ियां दिखाई पड़ती हैं। कृष्ण कहते हैं, ये जो दस सीढ़ियां हैं, इसमें दसवीं सीढ़ी मैं हूं।
इतना भी क्या कम है कि ये नौ सीढ़ियां छूट जाएं और नौ सीढ़ियों के पार आदमी दसवीं पर पहुंच जाए, तो शायद फिर पीछे उससे कहा जा सके कि ये जो दरवाजे दिखाई पड़ते हैं, इसमें दसवां दरवाजा मैं हूं। तो नौ दरवाजे छूट जाएं, दसवें दरवाजे तक पहुंच जाए। और ऐसे क्रमशः अंततः उस जगह ले जाया जा सके, जहां वस्तुतः कृष्ण का होना है।
सीढ़ियां भी मंदिर का हिस्सा हैं, निश्चित ही। और जो प्रतिमा मंदिर के गर्भ में स्थापित है, उससे भी सीढ़ियां जुड़ी हैं, निश्चित ही। पहली सीढ़ी भी उसी से जुड़ी है; दसवीं सीढ़ी भी उसी से जुड़ी है। लेकिन सीढ़ियां प्रतिमा नहीं हैं।
पर अर्जुन मंदिर के बाहर खड़ा है। और उसकी समझ के बाहर है मंदिर के भीतर की भाषा। उससे बाहर की भाषा बोलनी पड़ती है। इस बाहर की भाषा बोलने के कारण बड़ी दुर्घटनाएं हो गई हैं। क्योंकि इन शास्त्रों को पढ़कर फिर हम ऐसा मानकर बैठ जाते हैं। क्योंकि हमको लगता है, कह तो दिया कृष्ण ने कि इंद्रियों में मन मैं हूं। तो ठीक है। तो हम मन को पकड़कर बैठ जाते हैं। दसवीं सीढ़ी की पूजा शुरू कर देते हैं।
यह कहा गया है, ताकि नौ सीढ़ियां छूटें, दसवीं पकड़े नहीं। ध्यान रखना,
यह इसलिए नहीं कहा है कि दसवीं पकड़े। यह इसलिए कहा है कि नौ छूटें। और नौ छूट जाएं, तो फिर दसवीं भी छोड़ी जा सके।
लेकिन हम बहुत मजेदार लोग हैं। हम दसवीं तो पहुंचने की बात अलग, नौ को छोड़ने की बात अलग, हम दसवीं को इतने जोर से पकड़ते हैं कि उसकी वजह से नौ भी पकड़ जाती हैं। और दसवीं पर हम इस बुरी तरह रुक जाते हैं कि हमें बाकी नौ पर भी अपना घर बनाना पड़ता है।
जब भी कोई परम सत्य को मनुष्य की भाषा में कहा जाए, तो खतरा मोल लेना है। क्योंकि यह भी हो सकता है कि भाषा को छोड़कर परम सत्य तक वह पहुंचे, और यह भी हो सकता है कि परम सत्य को छोड़े और भाषा में जो कहा गया है, उसे पकड़ ले।
मैं चांद को इशारा करूं अपनी अंगुली से। यह भी हो सकता है, आप मेरी अंगुली पकड़ लें और कहें कि यही चांद है, क्योंकि आपने ही तो कहा था कि यह रहा चांद! चांद तो मैं आकाश की तरफ बताऊं अंगुली से, और अगर आपने चांद कभी देखा न हो और देखें कि ठीक है, अंगुली बताई जा रही है और मैं कह भी रहा हूं कि यह रहा चांद, तो आप मेरी अंगुली पकड़ ले सकते हैं।
लेकिन अंगुली से चांद का कोई भी संबंध नहीं है। अंगुली से चांद बताया
जा सकता है, संबंध कोई भी नहीं है। इतना ही संबंध है कि अगर आप अंगुली को छोड़ दें और भूल जाएं और चांद को देखें, तो चांद दिखाई पड़ सकता है। लेकिन अगर आप अंगुली को ही पकड़ लें, तो चांद फिर कभी भी दिखाई नहीं पड़ेगा। इशारे पकड़ लिए जाते हैं, और जिसकी तरफ इशारा किया जाता है, वह चूक जाता है।
यह भी इशारा है कि कृष्ण कहते हैं, मैं इंद्रियों में मन हूं।
इतना भी क्या कम है कि तुम इंद्रियों से ऊपर उठो। कम से कम पांच से ऊपर उठो, छठवीं पर पहुंचो। कम से कम बाहर की इंद्रियों से ऊपर उठो, भीतर की

इंद्रिय पर पहुंचो। थोड़ा तो भीतर प्रवेश होगा। थोड़ा भी भीतर प्रवेश हो, तो और भीतर की संभावना खुल जाती है, और नए द्वार खुल सकते हैं।
लेकिन खतरा भी हम ध्यान रखें। इसे पकड़ा भी जा सकता है; जोर से पकड़ा जा सकता है। और हम जैसे लोग हैं, जो हमारी समझ में आए, उसे हम पकड़ लेते हैं। और धर्म का मामला ऐसा है कि जो-जो आपकी समझ में आए, ठीक से समझ लेना कि उसे पकड़ना नहीं है। जो-जो आपकी समझ में आए, समझ लेना ठीक से कि उसे पकड़ना नहीं है, क्योंकि आपकी समझ में बहुत बड़ी बात नहीं आ सकती। और जो आती है, वह आपकी समझ के अनुसार आएगी। और अगर आपको अपनी समझ बड़ी करनी है, तो धीरे-धीरे जो आपको समझ में आता है, उसे छोड़ना; और जो समझ में नहीं आता, उसको पकड़ने की कोशिश करना।
यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन समस्त विकास का मार्ग यही है। जो आपको समझ में आए, उसे धीरे-धीरे छोड़ना; और जो समझ में न आए, धुंधला समझ में आए, उस तरफ कदम उठाना। तो आप आगे बढ़ेंगे।
एक आदमी एक सीढ़ी पर खड़ा है। पहली सीढ़ी पर खड़ा है। दूसरी सीढ़ी पर जाना चाहता हो, तो जिस सीढ़ी पर खड़ा है, उसे छोड़ना पड़ेगा। पैर ऊपर उठाना पड़ेगा, जिस पर खड़ा है। और दूसरी सीढ़ी जो अपरिचित है, अनजान है, जिस पर कभी खड़ा नहीं हुआ, उस पर पैर रखना पड़ेगा। और जब एक पैर उस पर रख जाए, तो दूसरा पैर भी पहली सीढ़ी से हटा लेना पड़ेगा।
हमें क्रमशः अगर अंतिम की खोज करनी है, तो जो हमारे पास है, उसे धीरे- धीरे छोड़कर और हमें आगे बढ़ते जाना होगा। जो लोग बहुत भयभीत होते हैं, अज्ञात से डरते हैं; जो समझ में नहीं आता, उस तरफ कैसे जाएं; वे लोग अपनी ही समझ में कैद हो जाते हैं। उनकी छोटी-सी समझ उनके लिए यात्रा नहीं बनती, कारागृह बन जाती है।
हम सभी लोग अपनी-अपनी बुद्धि में बंद हैं। हम सब अपने-अपने कैदी हैं। जेलर भी कोई नहीं, हम ही जेलर भी हैं। हम ही कैदी हैं। हम ही कारागृह हैं। और हम ही कारागृह पर पहरा देते हैं कि कहीं कैदी बाहर न निकल जाए!
यह जो स्थिति बनती है, भय के कारण बनती है। क्योंकि जो हम जानते हैं,
वह सुरक्षित है, सिक्योर्ड है। जो हम नहीं जानते, उसमें डर लगता है, उसमें भय लगता है। लगता है, पता नहीं, ठीक चूक जाए और गलत पर पैर पड़ जाए!
लेकिन ध्यान रखना, गलत पर भी पैर पड़े, तो रुके रहने से बेहतर है। भूल
भी हो जाए, तो सदा ठीक बने रहने से और रुके रहने से बेहतर है। जो भी आदमी विकास करता है, वह भूलें करता है। करेगा ही। और अगर कोई आदमी कहता है, मुझसे भूलें होती ही नहीं; तो समझ लेना कि वह आदमी विकास कभी भी नहीं करेगा और उसने विकास किया भी नहीं। विकास करने वाला आदमी बहुत भूलें करता है। हां, एक बात है, एक ही भूल दुबारा नहीं करता। भूलें बहुत करता है; एक ही भूल दुबारा नहीं करता। और कहीं भी रुके होने से भूल करना बेहतर है। क्योंकि भूल भी सिखाती है, आगे ले जाती है।
अंधेरे में बढ़ना बेहतर है। जो रोशनी में ही घिरे रह जाते हैं--अपना छोटा-सा दीया है बुद्धि का, जितनी रोशनी पड़ती है, उसी के भीतर घेरा लगाते रहते हैं--वे जिंदगी में सत्य से वंचित रह जाएंगे। परम धन्यता उनकी कभी भी नहीं होगी। उनके ऊपर उस प्रसाद की वर्षा कभी नहीं होगी, जो उनके ऊपर होती है, जो इस प्रकाश के घेरे को तोड़कर अंधेरे में भी बढ़ते हैं।
ध्यान रहे, अंधेरे में जब हम बढ़ते हैं, तो अंधेरा भी धीरे-धीरे प्रकाश बनने लगता है। और जितना हम अंधेरे से परिचित होते हैं, आंखें जितना अंधेरे को जानने लगती हैं, उतना अंधेरे में भी दिखाई पड़ने लगता है।
और एक बार अंधेरे में देखने की क्षमता आ जाए, तो इस जगत में फिर कोई भी अंधेरा नहीं है। और एक बार अंधेरे को भी प्रकाश में बदलने की कला आ जाए, जो कि साहस से बढ़ने वाले आदमी को आ जाती है, तो इस जगत में सब जगह प्रकाश है। फिर कहीं कोई अंधेरा नहीं है।
विकासमान चाहिए चित्त। प्रतीक खतरनाक हैं, अगर हम पकड़ लें।
मैंने सुना है, एक घर में ऐसा हुआ, छोटे थे बच्चे और बाप मर गया। मां पहले मर चुकी थी। छोटे ही थे बच्चे, बड़े हुए। बाप के बाबत उन्हें कुछ ज्यादा पता नहीं था, लेकिन कुछ-कुछ बातें ख्याल रह गई थीं। और बाप की

याददाश्त रखनी थी, तो उन्होंने सोचा, कुछ तो बाप की याददाश्त में, मेमोरी में, कुछ बचा लें। क्या बचा लें?
बच्चों को इतना याद था कि पिता उनको खाना खिलाता था। मां का काम भी उसी को करना पड़ता था। फिर पीछे खुद खाना खाता था। सब बच्चों को इतना याद था कि खाने के बाद चौके के आले में उसने एक छोटी-सी लकड़ी रख रखी थी। वह उससे दांत साफ करता था। यह उन्हें कुछ भी पता नहीं था। लेकिन आले में वह लकड़ी अभी भी रखी थी। वह लकड़ी दांत साफ करने का छोटा-सा टुकड़ा था। बेटों ने सोचा कि बाप की याददाश्त रखनी है, तो इस छोटी-सी लकड़ी से क्या होगा! तो एक चंदन की बड़ी लकड़ी खुदाई करवाकर आले में उन्होंने लगा दी।
फिर बेटे बड़े हुए। वे उसकी रोज पूजा कर देते थे। क्योंकि बाप को उन्होंने रोज आले के पास जाते देखा था। वे भी रोज भोजन के बाद जाकर नमस्कार करके कभी दो फूल चढ़ा देते थे।
फिर बड़े हुए। उन्होंने बड़ा मकान बनाया; पुराना मकान तोड़ा। तो उन्होंने सोचा, आले की अब क्या जरूरत है, एक छोटा मंदिर ही बना दें। तो आले की जगह उन्होंने एक संगमरमर का मंदिर बना दिया। फिर उन्होंने सोचा, लकड़ी! अब तो हमारे पास पैसे भी हैं, तो उन्होंने एक चंदन की प्रतिमा स्थापित कर दी। वे नियमित भोजन के बाद उसकी पूजा करते थे।
सुना है मैंने, उस घर में अब भी पूजा चलती है। वह जो लकड़ी थी, वह दांत साफ करने के काम आती थी। लेकिन अब वह लकड़ी मंदिर की प्रतिमा बन गई और उसकी पूजा होती है।
अगर हम अपनी जिंदगी में तलाश करने जाएंगे, तो हमें सौ में निन्यानबे
इस तरह की चीजें मिलेंगी, जिनका कोई भी संबंध समझ और विकास से नहीं है। जिनका संबंध किन्हीं चीजों को अंधे की तरह पकड़ लेने से है। और जब कोई आदमी धर्म के जगत में किसी चीज को अंधे की तरह पकड़ लेता है, तो बहुत महंगा सौदा है। क्योंकि उसकी सारी आगे की यात्रा ठहर जाती है और रुक जाती है।
कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों में मैं मन हूं।
वे इतना ही कह रहे हैं कि तुम कम से कम पांच इंद्रियों से हटो और मन तक पहुंचो। इतना भी कुछ कम नहीं है कि तुम जानो कि कान तुम नहीं हो, बल्कि वह हो, जो कान से आवाज को सुनता है। इतना भी कुछ कम नहीं है, तुम जानो कि आंख तुम नहीं हो। आंख से जो देखता है, आंख से जो झांकता है, वह मन तुम हो। अगर इतना तुम जान लो, तो कल इतना भी समझ सकते हो कि मन भी तुम नहीं हो, मन को भी जो जानता है, मन को भी जो साक्षी-भाव से देखता है, मन का भी जो ज्ञाता है, वह तुम हो।
और इसलिए दूसरे सूत्र में उन्होंने कहा, भूत-प्राणियों में चेतना, चेतनता अर्थात ज्ञान-शक्ति हूं।
तत्क्षण! इंद्रियों में मन हूं, उसके बाद ही शीघ्र दूसरा सूत्र कहा कि
मन के भी जो पार चेतना है, जानने की क्षमता है, कांशसनेस है, वह मैं हूं। यह इसी कारण दूसरे सूत्र में तत्काल कहा, कि पहला सूत्र खतरनाक हो सकता है। कोई अपने को मन ही मान ले!
इस जगत में चार तरह के लोग हैं। एक, जो अपने को शरीर ही मानते हैं। ये बिल्कुल मकान के आस-पास ही घूमते हैं। मकान की सीढ़ियां भी नहीं चढ़ते। दूसरे, जो अपने को मन मानते हैं। ये थोड़ी-सी सीढ़ियां चढ़ते हैं, लेकिन द्वार पर अटक जाते हैं। तीसरे, जो अपने को आत्मा मानते हैं। ये और भी गहरे जाते हैं, लेकिन फिर भी जो प्रतिमा मंदिर में स्थापित है, उसके आस-पास ही चक्कर लगाते हैं। चौथे वे, जो अपने को परमात्मा ही जानते हैं। ये वे हैं, जो प्रतिमा के साथ एक हो जाते हैं। ये चार तरह के लोग हैं।
अधिकतम लोग अपने को शरीर मानते हैं। अधिकतम लोग! जो कहते हैं कि नहीं,
हम आत्मा मानते हैं, वे भी अपने को शरीर ही मानते हैं। अगर उनकी हम जीवन-चर्या देखें, तो हमें पता चल जाएगा। वे भी अपने को शरीर ही मानते हैं। उनका अगर हम व्यवहार देखें, तो हमें पता चल जाएगा, वे भी अपने को शरीर ही मानते हैं। अगर उन्हें हम कठिनाई में डाल दें, तो हमें पता चल जाएगा कि वे भी अपने को शरीर मानते हैं।

जो आदमी कहता है, मैं आत्मा हूं, आत्मा अमर है, एक छुरा उसके कंधे पर रखें और अंधेरे में उसको पकड़ लें, वह फौरन चिल्लाएगा कि मुझे क्यों मारे डाल रहे हो। वह जो कहता था, आत्मा अमर है, छुरे को देखकर कहेगा, मुझे क्यों मारे डाल रहे हो! छुरा आत्मा को नहीं मार सकता। छुरा तो शरीर को ही मार सकता है। लेकिन तब वह यह नहीं कहेगा कि क्यों मेरे शरीर को व्यर्थ काट रहे हो? वह कहेगा, क्यों मुझे मारे डाल रहे हो!
इपिटैक्टस को यूनान के सम्राट ने अपने पास बुलवाया था। क्योंकि सम्राट को किसी ने कहा कि इपिटैक्टस कहता है कि आत्मा अमर है। सम्राट शरीरवादी था। उसने इपिटैक्टस को बुलवाया और कहा कि मैंने सुना है--सोचकर जवाब देना--मैंने सुना है कि तुम कहते हो, आत्मा अमर है। मैं कोई सिद्धांत की चर्चा के लिए नहीं बुलाया हूं, मैं तो सीधी परीक्षा लूंगा। क्योंकि मैं तो मानता हूं, शरीर के सिवाय कुछ भी नहीं है।
इपिटैक्टस ने कहा, तो परीक्षा शुरू करो! क्योंकि वक्तव्य देने की क्या जरूरत है; परीक्षा ही वक्तव्य देगी। और जब तुम मानते ही नहीं हो कि शरीर के अलावा कुछ है, तो मैं समझाऊं भी तो किसको समझाऊं! तुम परीक्षा शुरू करो।
सम्राट ने दो आदमियों को आज्ञा दी और कहा कि इपिटैक्टस का एक पैर मोड़कर तोड़ डालो। इपिटैक्टस ने पैर आगे बढ़ा दिया और उन दोनों आदमियों से कहा कि इस तरह बाएं तरफ घुमाओ, जल्दी टूट जाएगा। सम्राट ने कहा, यह मैं मजाक नहीं कर रहा हूं। यह पैर सच में ही तोड़ दिया जाएगा। इपिटैक्टस ने कहा, आप मजाक कर भी नहीं सकते हैं; मैं मजाक कर सकता हूं, क्योंकि मैं पैर से अलग हूं। मैं मजाक कर सकता हूं। पैर तोड़ें।
वह पैर तोड़ दिया गया। इपिटैक्टस ने कहा कि और कुछ परीक्षा लेनी है? पैर टूट गया, और मैं साबित हूं। मैं उतना का ही उतना हूं। मैं लंगड़ा नहीं हुआ; शरीर लंगड़ा हो गया।
लेकिन जो आत्मवादी भी अपने को कहते हैं, उनके भी, उनके भी जीवन में हम झांकें, तो पता चलेगा, शरीर ही है। शरीर ही सब कुछ है।
यह जो पहली कोटि है, शरीर सब कुछ, उनके लिए कृष्ण का यह वचन उचित है। अर्जुन को ऐसा ही लग रहा है कि शरीर ही सब कुछ है। इसलिए वह कह रहा है कि कैसे मैं इन प्रियजनों को काटूं? कैसे अपनों को मारूं? कैसे यह हत्या करूं? यह मुझसे नहीं होगा। इतने लोगों को मैं मारने का पाप क्यों लूं? शरीर को ही वह जीवन मान रहा है। क्योंकि उसकी तलवार केवल शरीर को ही काट सकती है और किसी को भी नहीं। पर उसे उस सत्य का कोई भी पता नहीं है कि भीतर एक और भी अस्तित्व है, जिसको तलवार छेद नहीं सकती और आग जला नहीं सकती। पर उसका उसे कोई पता नहीं है।
इसलिए कृष्ण उससे कहते हैं कि इंद्रियों में मैं मन हूं। इंद्रियां शरीर हैं, भीतर प्रवेश करें तो मन है। लेकिन कृष्ण को भी लगा होगा कि अर्जुन को कहीं यह पकड़ न जाए, तो दूसरे ही सूत्र में वे कहते हैं, और समस्त भूतों में मैं चेतना हूं, कांशसनेस हूं।
चेतना शब्द को हम थोड़ा समझ लें। चेतना का अर्थ होता है, मैं आपको देख रहा हूं। तो मैं आपके प्रति चेतन हूं। और जिसके प्रति भी मैं चेतन हो जाता हूं, उससे मैं अलग हो जाता हूं। जिसके प्रति भी मैं चेतन हो जाता हूं, उससे मैं अलग हो जाता हूं।
मैं अपने इस हाथ को देख रहा हूं! मैं अपने इस हाथ के प्रति चेतन हूं। बाहर से ही नहीं, भीतर से भी मैं अपने इस हाथ को देख रहा हूं। इसकी हड्डी, इसकी मांस-पेशियां, इसके प्रति मैं चेतन हूं। मैं इस हाथ से भी अलग हो गया। क्योंकि चेतन मैं उसी के प्रति हो सकता हूं, जिससे मैं अलग हूं। भेद जरूरी है, फासला जरूरी है, चेतन होने के लिए।
फिर आंख बंद करके मैं अपने विचारों के प्रति भी चेतन हो सकता हूं। मैं देखता हूं कि विचार चल रहे हैं। जैसे आकाश में बादल चल रहे हों, ऐसे मन में विचार चल रहे हैं। या रास्ते पर जैसे लोग निकल रहे हों, ऐसे मन में विचार निकल रहे हैं। या फिल्म के पर्दे पर जैसे चित्र निकल रहे हों, ऐसे मन के पर्दे पर विचार निकल रहे हैं। आंख बंद करके मैं इन चलते हुए विचारों को भी

देख सकता हूं। तो मैं विचारों के प्रति भी चेतन हो गया। मैं विचारों से भी अलग हो गया।
मैं अपने मन को भी देख सकता हूं। कभी आपने ख्याल किया, जब आप क्रोध से भरे होते हैं, आंख बंद करके देखें, तो आपको पता लगेगा, आपका मन क्रोध से भरा है। कभी आप प्रेम से भरे होते हैं, आंख बंद करके मेडिटेट करें, ध्यान करें, तो आपको पता चलेगा, मन प्रेम से भरा है। कभी लोभ से, कभी कामवासना से, कभी भय से। तो आंख बंद करके अनुभव करें, तो पता चलेगा, मन किससे भरा है। मन इस समय भय हो गया, क्रोध हो गया, लोभ हो गया, काम हो गया। किसको पता चलता है? कौन चेतन होता है? कौन जानता है इसको? जो जानता है, वह अलग हो गया।
चेतना का अर्थ है, जिसके द्वारा आप जानते हैं, पहचानते हैं। जिसके द्वारा आप बोध से भरते हैं। और जिसके प्रति आप कभी चेतन नहीं हो सकते। आप सब चीजों के प्रति चेतन हो सकते हैं, लेकिन अपनी चेतना के प्रति चेतन नहीं हो सकते। आप सब चीजों के प्रति चेतन हो सकते हैं, सिर्फ अपनी चेतना के प्रति चेतन नहीं हो सकते। क्योंकि जो चेतन होगा, वही आपकी चेतना है। तो आप अपनी चेतना को आब्जेक्ट नहीं बना सकते। वह सब्जेक्ट है, वह जानने वाला है। वह कभी जाने जानी वाली चीज नहीं हो सकती।
तो चेतना का यह विचार, योग की गहनतम धारणाओं में से एक है। योग को अगर
हम एक शब्द में कहना चाहें, तो वह उसको जानने की कोशिश है, जिसके द्वारा सब जाना जाता है, और जो किसी के द्वारा भी नहीं जाना जाता। जिसके द्वारा हम जगत में सब जान सकते हैं, सिर्फ उसी को छोड़कर। उसको नहीं जान सकते। क्योंकि उसको कौन जानेगा! जानने के लिए दूरी चाहिए, फासला चाहिए, जानने वाला अलग चाहिए। ज्ञाता अलग चाहिए, ज्ञेय अलग चाहिए।
हम सब चीजों को ज्ञेय बना सकते हैं इस जगत में। आपको मैं ज्ञेय बना सकता हूं। अपने शरीर को ज्ञेय बना सकता हूं। अपने विचार को, अपने मन को, सबको ज्ञेय बना सकता हूं। सिर्फ मेरी चेतना, मेरा होश, मेरी अवेयरनेस, वह भर ज्ञेय नहीं बनती। वह हमेशा पीछे हटती चली जाती है। इट कैन नाट बी रिड्यूस्ड टु एन आब्जेक्ट, उसको हम कोई वस्तु नहीं बना सकते। वह हमेशा... । सोरेन कीर्कगार्ड ने कहा है, कांशसनेस मीन्स सब्जेक्टिविटी, अल्टिमेट सब्जेक्टिविटी, आखिरी जानना। उसके पार, पीछे नहीं हट सकते हम। हम कितने ही भागते चले जाएं, कितने ही पीछे हटें, जो हट रहा है पीछे, वही चेतना है। हम चेतना से पीछे नहीं हट सकते। चेतना से पीछे नहीं हटा जा सकता, इसीलिए चेतना हमारा स्वभाव है। और कृष्ण कहते हैं, चैतन्य, चेतनता, ज्ञान की शक्ति मैं हूं।
सूर्य से, विष्णु से बात शुरू की है उन्होंने। और पास हटते-हटते इंद्रियों, मन की बात की है। और पीछे हटते-हटते उन्होंने मौलिक आखिरी सूत्र अर्जुन को दिया कि मैं चेतना हूं।
जो व्यक्ति भी ऐसा जान ले कि मैं चेतना हूं, उसने जो भी जानने योग्य था, वह जान लिया। और जो व्यक्ति ऐसा न जान पाए कि मैं चेतना हूं, तो उसने और कुछ भी जान लिया हो, जो भी जानने योग्य है, उससे वह वंचित रह गया है। गहनतम जो हमारे भीतर केंद्र है, सबसे गहरे में छिपा हुआ जो केंद्र है, वह चैतन्य का है।
इसलिए हम परमात्मा के लक्षण में सत-चित-आनंद--सत्य उसे कहा है, चैतन्य उसे कहा है, आनंद उसे कहा है। चैतन्य को हम परमात्मा के भी केंद्र में रखे हैं। सत कहा है कि वह सत्य है, शुरू में। फिर कहा चित, चैतन्य है, बीच में। और फिर कहा आनंद, अंत में।
सत्य की हम खोज करें, तो चैतन्य हमें उपलब्ध होगा; और चैतन्य में हम स्थापित हो जाएं, तो आनंद हमारा स्वभाव होगा। यह जो चैतन्य, कांशसनेस है, यह हम कैसे उपलब्ध करें?
हम तो जीते हैं बिल्कुल सोए-सोए, मूर्च्छित। हम जो भी करते हैं, ऐसे करते हैं, जैसे नींद में कर रहे हों, नशे में चल रहे हों। आपको क्रोध आ जाता है, तो आप कहते हैं, आ गया। पता नहीं क्यों आ गया! किसी को गाली दे दी; निकल गई। कोई ऐसा नहीं कि आप होश में हैं; बेहोश चल रहे हैं। आपका बेहोश और होश के बीच डांवाडोल होता रहता है अस्तित्व। ज्यादातर बेहोशी में कभी-कभी

क्षणभर को कोई होश का क्षण आता है, नहीं तो नहीं आता। जीवन ऐसे ही गुजर जाता है।
इस बेहोशी की हालत में उस चैतन्य का पता लगाना बहुत कठिन मालूम पड़ेगा, बहुत दूर मालूम पड़ेगा। लेकिन वह इतना दूर नहीं है, जितना दूर मालूम पड़ता है। थोड़ी चेष्टा चाहिए। थोड़ी-सी चेष्टा।
रास्ते पर चल रहे हैं, होशपूर्वक चलें। जानते हुए चलें कि चलने की घटना हो रही है, मेरा बायां पैर उठा, मेरा दायां पैर उठा। ऐसा कहना नहीं है भीतर कि मेरा दायां पैर उठा, मेरा बायां पैर उठा! न; ऐसा जानना है कि यह बायां पैर उठा, यह दायां पैर उठा। इसका होश रखना है। आप रास्ते पर चलते- चलते अचानक चकित हो जाएंगे कि शरीर चल रहा है, आप नहीं चल रहे हैं। भोजन करने बैठे हैं, तो यह मैंने कौर बनाया है, यह कौर मैं मुंह में ले गया। इसको होशपूर्वक करें।
बेहोश की तरह कर रहे हैं लोग! खाना खा रहे हैं, वह एक यंत्र की तरह डालते जा रहे हैं। हो सकता है, उस वक्त वे वहां भोजन की टेबल पर मौजूद ही न हों, दफ्तर में पहुंच गए हों; या किसी अदालत में मुकदमा लड़ रहे हों; या पता नहीं, क्या कर रहे हों!
होशपूर्वक भोजन करें, तो आप थोड़े ही दिन में इस अनुभव को उपलब्ध हो जाएंगे कि भोजन शरीर में जा रहा है, आप में नहीं। क्योंकि वह जो होश है, वह आप हैं। तब आप बिल्कुल साफ देख पाएंगे कि भोजन शरीर में जा रहा है, और आप अछूते रह गए हैं, पार रह गए हैं। आप देख रहे हैं।
फिर आपको ऐसा नहीं लगेगा कि मुझे भूख लगी। आपके सोचने का, देखने का ढंग ही बदल जाएगा। फिर आप कहेंगे, मेरे शरीर को भूख लगी। और फिर आप ऐसा नहीं कहेंगे कि मैं तृप्त हो गया। आप ऐसा कहेंगे कि शरीर की तृप्ति हो गई। शरीर को प्यास लगी। फिर आप कहेंगे, शरीर बूढ़ा हो गया।
और जो आदमी चलने में जान ले कि मैं नहीं चलता, शरीर चलता है। भोजन में जान ले कि मैं नहीं करता, शरीर करता है। सोते में जान ले, मैं नहीं सोता, शरीर सोता है। वह मरते क्षण में भी जानने में समर्थ हो जाएगा, मैं नहीं मरता, शरीर मरता है। लेकिन इसको क्रमशः चैतन्य को बढ़ाए जाने से यह आत्यंतिक अनुभव उपलब्ध होता है।
आज इतना ही।
लेकिन रुकें पांच मिनट। कोई उठे न। पांच मिनट संगीत और कीर्तन में सम्मिलित हों, फिर जाएं!

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
नौवां प्रवचन

मृत्यु भी मैं हूं

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्।। 23।।
पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।। 24।।
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।। 25।।
और मैं एकादश रुद्रों में शंकर हूं और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूं, और मैं आठ वसु देवताओं में अग्नि हूं तथा शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूं।
और पुरोहितों में मुख्य अर्थात देवताओं का पुरोहित बृहस्पति मेरे को जान तथा हे पार्थ, मैं सेनापतियों में स्वामी कार्तिक और जलाशयों में समुद्र हूं।
और हे अर्जुन, मैं महर्षियों में भृगु और वचनों में एक अक्षर अर्थात ओंकार हूं तथा सब प्रकार के यज्ञों में जप-यज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ हूं।

अनंत के अनंत हो सकते हैं प्रतीक। जो सब जगह है, उसकी ओर सब दिशाओं से इशारा हो सकता है। जो अदृश्य है, अज्ञात है, तो जो भी हमें दृश्य है और जो भी हमें ज्ञात है, उस सबसे उसकी तरफ छलांग लगाई जा सकती है।
कृष्ण ने कल एक प्रयास किया, एक दिशा से उस अनंत की ओर मार्ग को तोड़ने का। आज वे दूसरा प्रयास करते हैं। बहुत बार ऐसा होता है, एक तीर चूक जाए, तो दूसरा लग सकता है। दूसरा चूक जाए, तो तीसरा लग सकता है। तीर का लगना निशान पर इस बात पर निर्भर करता है कि जिससे कही जा रही है बात, उसके हृदय और उस बात में कोई ताल-मेल पड़ जाए।
जटिलता बहुत प्रकार की है। जो बात आपसे मैं कहूं, हो सकता है, इस क्षण आपके हृदय से मेल न खाए, कल मेल खा जाए। जो बात मैं आपको कहूं, आज आपकी समझ में ही न पड़े, और हो सकता था, क्षणभर पहले कही जाती और मेल खा जाती।
आपका मन एक तरलता है। वह प्रतिपल प्रवाह में है। जैसे नदी बही जा रही
हो, ऐसा ही आपका मन बहा जाता है। किस क्षण में, किस पके हुए क्षण में, कौन-सी बात आपके हृदय को चोट करेगी और गहरी उतर जाएगी, इसका पूर्व निश्चय असंभव है।
इसलिए जिन्होंने भी उस परम सत्य की शिक्षा दी है, उन्होंने बहुत-बहुत मार्गों से उसकी तरफ इशारा किया है। किसी भी द्वार से आप पहुंच जाएं, और किसी भी झरोखे से आपकी आंख उसकी तरफ खुल जाए, और कोई भी स्वर आपके हृदय की वीणा को छू ले। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आप किस दिशा से उसे समझते हैं, यही महत्वपूर्ण है कि आप समझ लें।
शायद कृष्ण ने जो कहा, उन्होंने जो प्रतीक चुने, अर्जुन का हृदय उन्हें नहीं पकड़ पाया होगा। वे और दूसरे प्रतीक चुनते हैं।
उन्होंने अर्जुन से कहा, और हे अर्जुन, मैं एकादश रुद्रों में शंकर हूं और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूं। आठ वसु देवताओं में अग्नि और पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूं।
कल उन्होंने कहा था कि मैं विष्णु हूं अदिति के पुत्रों में। विष्णु जीवन के प्रतीक हैं। जीवन को सम्हालने के, धारण करने के, जीवन की नित जो धारा है, प्रतिपल उसे प्राण देने के, विष्णु स्रोत हैं। आज कृष्ण कहते हैं, मैं रुद्रों में शंकर हूं। शंकर मृत्यु के, प्रलय के, विनाश के प्रतीक हैं। यहां कुछ बातें समझ लेनी जरूरी होंगी। और भारतीय प्रतिभा में कैसे अनूठे अंकुर कभी-कभी खिले हैं, वे भी ख्याल में आ सकेंगे।

सारी पृथ्वी पर मृत्यु को जीवन का अंत समझा गया है, मृत्यु को जीवन का शत्रु समझा गया है, मृत्यु को जीवन का विरोध समझा गया है। भारत ने ऐसा नहीं समझा। मृत्यु जीवन की परिपूर्णता भी है, अंत ही मात्र नहीं। और मृत्यु जीवन की शत्रु दिखाई पड़ती है, क्योंकि हमें जीवन का कोई पता नहीं है। अन्यथा मृत्यु मित्र भी है। और मृत्यु कोई जीवन के बाहर से घटित होती हो, कोई विजातीय, कोई फारेन, कोई बाहर से हमला होता हो मृत्यु का, आक्रमण होता हो, ऐसी भी भारत की मान्यता नहीं। मृत्यु भी जीवन का अंतरंग भाग है। और जीवन का ही विकास है, उसकी ही ग्रोथ है। शंकर विष्णु के विपरीत नहीं हैं, और विनाश सृजन का विरोध नहीं है। विनाश और सृजन एक ही घटना के दो पहलू हैं। एक बच्चे का जन्म होता है, तो हम सोच भी नहीं सकते कि उस जन्म के साथ मृत्यु का भी प्रारंभ हो गया है। लेकिन प्रारंभ हो गया है। हम न सोच पाते हों, वह हमारे सोचने की कमी और असमर्थता है। लेकिन जन्म का दिन मृत्यु का दिन भी है। जिस दिन बच्चा पैदा हुआ, उसी दिन से मरना भी शुरू हो गया। यह एक वचन मैंने बोला, इस एक वचन के बोलने में भी आप थोड़ा मर गए हैं। आपके जीवन की धारा थोड़ी क्षीण हुई, कुछ समय चुक गया, आप मृत्यु के और करीब पहुंच गए। बच्चा जब पहली सांस लेता है, तब एक सांस कम हो गई।
तो जन्म का क्षण मृत्यु का क्षण भी है। लेकिन उन्हीं के लिए जो गहरे देख पाएं। जो इतना गहरा देख पाएं कि सत्तर साल बाद या सौ साल बाद जो घटना घटेगी, वह आज भी उन्हें झलक में आ जाए। गहरे देखने का अर्थ है, जिनकी दृष्टि पारदर्शी है। जो जन्म में भी गहरा देख सकें, उन्हें मृत्यु का क्षण भी दिखाई पड़ जाएगा।
मृत्यु विपरीत नहीं है, जन्म की सहगामिनी है। ऐसा समझें कि जैसे बायां और दायां पैर हैं, और आप एक पैर से न चल पाएंगे, दोनों पैर से ही चलना हो सकेगा। ठीक वैसे ही जन्म और मृत्यु एक ही ऊर्जा, एक ही प्राण-ऊर्जा के दो पैर हैं। और एक से चलना न हो पाएगा।
हमारी आकांक्षा होती है कि जन्म तो हो और मृत्यु न हो। वह हमारी आकांक्षा मूढ़ है, क्योंकि जीवन के सत्य के विपरीत है। जो भी चाहता है कि जन्म हो और मृत्यु न हो, उसे पता ही नहीं कि वह एक ही चीज से बचना चाहता है और उसी चीज को पाना भी चाहता है। जन्म और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और जन्म असंभव है, जिस दिन मृत्यु असंभव हो जाए। जिस दिन हम मृत्यु से बच सकेंगे, उस दिन हम जन्म से भी बच जाएंगे। जिस दिन हम मृत्यु को काट डालेंगे, उस दिन जन्म भी कट जाएगा। वे दो नहीं हैं।
अभी अर्जुन का मन मृत्यु से बहुत आच्छादित और प्रभावित है। कृष्ण ने उसे कहा कि मैं जीवन का देवता हूं, विष्णु हूं। शायद उसके हृदय पर चोट भी न पड़ी हो।
एक आदमी मर रहा हो, उससे जीवन की बात करने का कोई भी अभिप्राय नहीं है। उसके चारों ओर मौत खड़ी है। मौत तो सभी के चारों ओर खड़ी है, लेकिन सभी अपने- अपने जीवन में इतने व्यस्त हैं कि उसका दर्शन नहीं होता। लेकिन जो खाट पर पड़ा है और मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है, उसे जरा-सी भी द्वार पर आहट होती है, तो लगता है कि यम के दूत ने दस्तक दी। उसे चारों ओर मृत्यु ही दिखाई पड़ती है।
अर्जुन के सामने भी चारों तरफ मृत्यु है, प्रियजनों की, अपनों की, सगे- संबंधियों की। यह युद्ध बहुत अजीब था। इसमें दोनों तरफ मित्र ही बंटकर खड़े थे। कल जिनके साथ खेले थे, कल जिनको प्रेम किया था, कल जिनके लिए प्राण दे सकते थे, आज उनके प्राण लेने का अवसर था; उनके ही प्राण लेने का अवसर था। गुरु और शिष्य बंट गए थे। मित्र और मित्र बंट गए थे। परिवार बंट गए थे! कोई इस तरफ था, कोई उस तरफ था।
ऐसा युद्ध मुश्किल से होता है। युद्ध में बंटाव साफ होता है। एक तरफ दुश्मन होते हैं, एक तरफ मित्र होते हैं। लेकिन यह महाभारत का युद्ध अनूठा है। इसमें बंटाव साफ नहीं है; विभाजन निश्चित नहीं है। कृष्ण एक तरफ से लड़ रहे हैं, उनकी फौजें दूसरी तरफ से लड़ रही हैं! उस तरफ भीष्म हैं, द्रोण हैं, जिनके चरणों में बैठकर सब सीखा है। जिनसे सीखी है कला, वही कला उनकी मृत्यु के लिए काम में लानी है।

लेकिन एक अर्थ में महाभारत का युद्ध बड़ा प्रतीक है। मैंने आपसे कहा
कि दुनिया में ऐसा युद्ध नहीं होता। बंटाव साफ होता है। इस तरफ मित्र होते हैं, उस तरफ शत्रु होते हैं। लेकिन आपसे दूसरी बात भी मैं कहता हूं।
सभी युद्ध महाभारत जैसे होते हैं, हमें पता हो या न पता हो। बंटाव झूठा है और ऊपरी है। भीतर से तो हमारे मित्र ही उस तरफ होते हैं और इस तरफ भी होते हैं। हमारे ही संबंधी उस तरफ होते हैं, हमारे ही संबंधी इस तरफ होते हैं। महाभारत में इस झूठे बंटाव को बिल्कुल ही तोड़ डाला है। सभी युद्ध ऐसे हैं।
आज पाकिस्तान और हिंदुस्तान लड़े, तो आज साफ दुश्मन का बंटाव है। लेकिन कल! कल यह सीमा नहीं थी। और कल अगर कराची बर्बाद होता तो बंबई उतना ही दुखी होता, जितना बंबई बर्बाद होता तो कराची दुखी होता। लेकिन आज बंटाव हमने साफ कर लिया है। तो आज अगर कराची बर्बाद हो, तो हम खुश भी हो सकते हैं।
और बंबई बर्बाद हो, तो कराची में खुशियां मनाई जा सकती हैं।
दुनिया का कोई भी युद्ध गहरे में देखे जाने पर महाभारत जैसा ही है। दोनों तरफ आदमी ही खड़े हैं। और आदमी एक परिवार है। संबंध दिखाई पड़ते हों या न दिखाई पड़ते हों; क्रोध में और वैमनस्य में और ईर्ष्या में और हिंसा में, संबंध धुंधले हो गए हों, धुएं में ढंक गए हों, दूसरी बात है। लेकिन जिनके पास थोड़ी-सी साफ आंखें हैं, उन्हें हमेशा दिखाई पड़ता है कि सभी युद्ध महाभारत जैसे युद्ध हैं।
अर्जुन परेशान है। मौत चारों तरफ दिखाई पड़ती है। जीतने में भी कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता। जीतकर भी हार ही हो जाएगी। क्योंकि अर्जुन कहता है कि जिनके लिए हम जीतते हैं, अगर वे ही नहीं बचे, तो जीत का भी क्या होगा? जीतने से जिनको खुशी होगी, वे ही मर जाएंगे! हम अकेले अगर जीतकर भी खड़े हो गए, तो वह जीत किसके समक्ष होगी? किसके लिए होगी? वह अर्थहीन होगी।
एक गहरे अर्थों में जैसा महाभारत में घटित हुआ था, वैसा करीब-करीब आने वाली इस पूरी होने वाली सदी में घटित होने का डर है। करीब-करीब हम दुबारा वैसी हालत में खड़े हैं। इसलिए गीता और भी अर्थपूर्ण हो गई है। गीता बहुत समसामयिक, कनटेंपरेरी मालूम हो सकती है, अगर आपके पास समझने की थोड़ी दृष्टि हो।
महाभारत के पहले और महाभारत के बाद मनुष्यता ने एक भारी संकट से गुजरकर देखा। महाभारत के पहले आदमीयत एक शिखर और एक ऊंचाई पर थी। करीब-करीब वैसे शिखर और ऊंचाई पर, जैसा आज पश्चिम है, ऐसा पूरब था। जितने अस्त्र-शस्त्रों की हम आज खोज कर रहे हैं, करीब-करीब उनकी चर्चा महाभारत में है। नाम उनके अलग हैं, पर उनके गुणधर्म यही हैं।
महाभारत के पूर्व की जो संस्कृति थी और मनुष्य का जो विकास था, वह शिखर पर पहुंच गया था। और महाभारत के बाद उस शिखर को भारत फिर कभी नहीं छू सका। महाभारत के साथ जो पतन हुआ और महाभारत के साथ जो गिरावट हुई और संस्कृति, और सभ्यता, और विज्ञान का जो विनाश हुआ, वह फिर आज तक पूरा नहीं किया जा सका।
शायद भारत के बहुत गहरे मन में यह भी बात समझ में आ गई कि विज्ञान के इतने ऊंचे शिखर पर पहुंचने का अंतिम परिणाम बहुत बुरा हुआ है। और भारत की प्रतिभा विज्ञान के प्रति अनुत्सुक हो गई, उदासीन हो गई। भौतिक समृद्धि अंततः महाभारत में जहां ले गई, उसके बाद भारत के मन में भौतिक समृद्धि की कोई आकांक्षा नहीं रही।
भारत की दरिद्रता का बुनियादी कारण अगर हम खोजने जाएं, तो बहुत पीछे लौटना पड़ेगा। महाभारत उसका कारण है। महाभारत में हमने समृद्धि का आखिरी शिखर देखा। जो भी हो सकता था आदमी के द्वारा, समझ के द्वारा, वह हमने पा लिया था। शिक्षा थी, विज्ञान था, संस्कृति शिखर पर थी। समृद्धि थी, अतिशय समृद्धि थी। उस अतिशय समृद्धि का जो फल हमें मिला, वह बहुत कड़वा मिला।
और उसके बाद भारत के मन में एक गहरी निराशा समृद्धि के प्रति छा गई, विज्ञान के प्रति, उपकरणों के प्रति, टेक्नोलाजी के प्रति। महाभारत के बाद भारत ने फिर टेक्नोलाजी, तकनीक विकसित करना बंद कर दिया। क्योंकि

टेक्नोलाजी का आखिरी विकास जहां ले गया, वह अत्यंत दुखद सिद्ध हुआ। सब कुछ विनष्ट हुआ।
करीब-करीब आज दुनिया फिर वैसी हालत में है। पश्चिम फिर वैसे ही उपकरण पैदा कर लिया है, जिनसे मनुष्य-जाति पुनः पूरी तरह विनष्ट हो सकती है। और अगर मनुष्य-जाति विनष्ट न भी हो, तो कम से कम जो भी श्रेष्ठ है, वह विनष्ट हो जाएगा; और जो निकृष्ट है, वही बच सकेगा।
अगर आज कोई युद्ध हो, तो न्यूयार्क और बंबई और टोकियो तो नहीं बच सकते, लंदन और पेरिस तो नहीं बच सकते। हां, कहीं कोई आदिवासी जंगल में छिपा हुआ बच जाए, तो बात अलग है। संस्कृतियां तो नहीं बच सकतीं, सिर्फ आदिम कुछ टुकड़े, कबीले बच सकते हैं।
गीता इसलिए अर्थपूर्ण हो जाती है। पुनः अर्थपूर्ण हो जाती है। आज भी यही संकट सामने है। और इसलिए आज जिनके पास भी ताकत है, वे लड़ने में भयभीत हैं। क्योंकि अब तक जितने युद्ध होते थे, उनमें कोई जीतता था। कोई जीतता, कोई हारता। युद्ध में कोई अर्थ था, मीनिंग था। अब करीब-करीब वैसी ही हालत है कि अगर आज युद्ध हो, तो कोई भी जीतेगा, हारेगा, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। दोनों विनष्ट हो जाएंगे। और जो जीतकर बचेगा भी, वह अपनी जीत की खबर भी किसी को नहीं दे सकेगा! किसके लिए होगी जीत?
अर्जुन को चारों तरफ मौत दिखाई पड़ती है। जीवन की बात शायद उसे समझ में
न आई हो। इसलिए कृष्ण उससे कहते हैं, मैं रुद्रों में शंकर भी हूं। मृत्यु भी मैं हूं, महाविनाश भी मैं हूं, महाविनाश का सूत्र भी मैं ही हूं।
इसमें कई बातें समझ लेने जैसी हैं।
पहली बात, जब हम परमात्मा को विनाश की शक्ति से एक समझें, तो हमें बहुत अड़चन होगी, हमारे तर्क को बड़ी दुविधा होगी। क्योंकि हम सदा ही स्रष्टा के साथ, सृष्टि के साथ, सृजन के साथ परमात्मा को एक समझने की आदत बना लिए हैं। वह हमारे भय के कारण। हमारी समझ में आता है कि परमात्मा ने बनाया, लेकिन मिटाएगा भी परमात्मा, यह हमारी समझ में नहीं आता, क्योंकि मिटने से हमें भय लगता है।
लेकिन जो बनाएगा, वही मिटाएगा भी। और जो बनने की क्रिया होगी, उसके ही विपरीत मिटने की क्रिया भी होगी। बनना और मिटना, सृजन और संहार, दो नहीं हो सकते, एक ही प्रक्रिया के अंग होंगे। समस्त सृजन विनाश को पैदा करेगा, और समस्त विनाश नए सृजन को जन्म देता है।
और रुद्रों में शंकर हूं! तो कृष्ण यह कह रहे हैं कि विनाश से भी तू परेशान और पीड़ित मत हो। और मृत्यु भी तुझे भयभीत न करे। तू मृत्यु में भी चाहे तो मुझे देख सकता है, क्योंकि वह विनाश की अंतिम शक्ति भी मैं ही हूं। जैसे व्यक्ति के जीवन में मृत्यु है, वैसे ही सृष्टि के जीवन में विनाश है या प्रलय है। एक-एक व्यक्ति मरता है और जन्मता है, ऐसे ही सृष्टि भी जन्मती है और मरती है! जैसे व्यक्ति बच्चा होता है, फिर जवान होता है, फिर बूढ़ा होता है, फिर मरता है। एक वर्तुल, एक सर्किल पूरा करता है। वैसे ही भारतीय दृष्टि है कि समस्त जीवन भी बच्चा होता है, जवान होता है, बूढ़ा होता है, मृत्यु को उपलब्ध होता है।
पश्चिम में चिंतन की जो धारा है, वह लीनियर है, एक रेखा में है। इसलिए पश्चिम में एवोल्यूशन का ख्याल पैदा हुआ, विकास का ख्याल पैदा हुआ। डार्विन ने, हक्सले ने और दूसरे विचारकों ने विकास की धारणा को जन्म दिया। विचारणीय है कि भारत ने कभी विकास की ऐसी धारणा को जन्म क्यों नहीं दिया? पश्चिम की चिंतना मानती है कि जीवन एक रेखा में चलता है, जैसे रेल की पटरी जाती हो, एक रेखा में सीधा। लेकिन भारत मानता है, इस जगत में सीधी रेखा तो खींची ही नहीं जा सकती।
यह बहुत हैरानी की बात है। अगर आप गणित पढ़ते हैं, या ज्यामिति, या ज्यामेट्री पढ़ते हैं और यूक्लिड को समझा है आपने, तो आप कहेंगे कि गलत बात है, क्योंकि यूक्लिड कहता है कि सीधी रेखा खींची जा सकती है। दो बिंदुओं के बीच जो निकटतम दूरी है, वह सीधी रेखा है, स्ट्रेट लाइन है। लेकिन अभी पिछले पचास वर्षों में पश्चिम में नान-यूक्लिडियन ज्यामेट्री का जन्म हुआ है, और वह भारत से मेल खाती है।

नान-यूक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है कि कोई भी रेखा सीधी नहीं है। अगर
हम उस रेखा को दोनों तरफ बड़ा करते जाएं, तो अंततः पूरी पृथ्वी पर फैलकर वर्तुल बन जाएगा; किसी भी रेखा को; क्योंकि पृथ्वी गोल है। पृथ्वी पर हम कोई सीधी रेखा नहीं खींच सकते। और भी कहीं हम सीधी रेखा नहीं खींच सकते। कोई भी सीधी रेखा हमें सीधी मालूम पड़ती है, क्योंकि वह इतने बड़े वर्तुल का हिस्सा होती है कि उस वर्तुल का हमें अंदाज नहीं होता। सब सीधी रेखाएं वर्तुल के टुकड़े हैं, खंड हैं। और अगर हम उनको बढ़ाते ही चले जाएं, तो वर्तुल निर्मित हो जाएगा।
भारत का मानना रहा है सदा से नान-यूक्लिडियन। कोई रेखा सीधी नहीं है।
और जीवन की कोई गति सीधी नहीं हो सकती, क्योंकि कोई रेखा ही सीधी नहीं हो सकती। सब गति वर्तुलाकार है, सर्कुलर है। बच्चा, जवान, बूढ़ा; जन्म और फिर मृत्यु। जहां जन्म होता है, वर्तुल वहीं पूरा होकर मृत्यु बन जाता है। इसलिए बच्चे और बूढ़े बहुत अंशों में एक जैसे हो जाते हैं। और जो समाज बूढ़ों के साथ बच्चों जैसा व्यवहार करना नहीं जानता, वह समाज सुसंस्कृत नहीं है। वह समाज असंस्कृत है। लेकिन पश्चिम में बूढ़े के साथ बच्चों जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता, क्योंकि पश्चिम की धारणा है कि चीजें सीधी जा रही हैं, पीछे कुछ नहीं लौटता, वर्तुलाकार नहीं हैं। चीजें एक रेखा में बढ़ती चली जाती हैं, और जो प्रारंभ था, वह फिर कभी दुबारा नहीं मिलेगा। लेकिन भारत मानता है, सभी गतियां वर्तुल में हैं। चाहे पृथ्वी घूमती
हो सूरज के आस-पास, और चाहे पृथ्वी घूमती हो अपनी कील पर, और चाहे सूरज किसी महासूर्य का चक्कर लगाता हो, और चाहे समस्त सूर्य किसी महाकेंद्र की परिक्रमा करते हों, और चाहे ऋतुएं आती हों, और चाहे बचपन, जवानी, बुढ़ापा होता हो, सभी चीजें एक वर्तुल में घूमती हैं। यह समस्त सृष्टि भी एक वर्तुल में घूमती है। गति मात्र वर्तुलाकार है। गति का अर्थ ही सर्कुलर है।
इसलिए हमने संसार नाम दिया है इस जगत को। संसार का अर्थ होता है, दि व्हील। संसार का अर्थ होता है, चाक, घूमता हुआ।
वह जो भारत के राष्ट्रीय ध्वज पर चक्र है, वह चक्र कभी बौद्धों ने संसार के लिए निर्मित किया था। संसार एक चक्र की भांति घूमता है। और जो इस चक्र में फंसा रह जाता है, वह घूमता ही रहता है, घूमता ही रहता है। बार-बार उसी चक्र में घूमता रहता है।
तो बुद्ध ने कहा था, जो इस चक्र के बाहर छलांग लगा जाए, वही मुक्त है। जन्म और मृत्यु में जो घूमता है, वह जन्म में चक्कर लगाता रहता है बार-बार। जन्म के बाद मृत्यु होती है, ठीक वैसे ही मृत्यु के बाद जन्म पुनः हो जाता है। बचपन के बाद जवानी होती है, जवानी के बाद बुढ़ापा होता है, बुढ़ापे के बाद मृत्यु होती है; मृत्यु के बाद पुनः जन्म, पुनः बचपन, पुनः जवानी; और एक वर्तुलाकार परिभ्रमण होता रहता है।
यह हमारे छोटे-से व्यक्ति के जीवन में जैसा है, वैसा ही फैलकर विराट अस्तित्व के जीवन में भी है। जगत के जन्म को सृष्टि कहते हैं और जगत की मृत्यु को प्रलय कहते हैं। और पूरा जगत फिर प्रलय के बाद पुनः जन्म पाता है और पुनः यात्रा पर निकल जाता है।
मृत्यु को हम अंत नहीं मानते। मृत्यु को हम केवल एक गहन विश्राम मानते हैं। इसे ऐसा समझें, जैसा दिनभर आप मेहनत करते हैं और रात सो जाते हैं। भारतीय मन सदा से मानता रहा है कि निद्रा भी एक अल्पकालीन मृत्यु है। दिनभर जागते हैं, थकते हैं, रात सो जाते हैं। सुबह पुनः ताजे हो जाते हैं, पुनरुज्जीवित हो जाते हैं। फिर यात्रा पर निकल जाते हैं। जो आदमी सो न सके, वह आदमी जिंदा नहीं रह सकेगा। जो आदमी सो न सके, वह विक्षिप्त हो जाएगा, जल्दी ही थकेगा और टूट जाएगा। रोज-रोज रात मर जाना जरूरी है, ताकि सुबह नया जीवन उपलब्ध हो जाए।
इसलिए रात जो जितनी गहराई से मर सकता है, उतनी ही सुबह गहराई से जागेगा और जीवित होगा। रात जिसकी नींद मौत के जितने करीब पहुंच जाएगी, सुबह उसका जीवन उतना ही जीवन के करीब पहुंच जाएगा। अगर रात भी आप सपने ही देखते रहते हैं और अधूरे जगे रहते हैं, तो सुबह भी आप अधूरे ही उठेंगे।

सुबह आपका उठना मरा-मरा होगा। रात जो मरने की कला नहीं जानता, सुबह वह जीने की कला भी नहीं सीख पाएगा।
अगर आप आदिवासियों के पास जाएं, तो आप चकित हो जाएंगे कि लाखों आदिवासी कहते हैं कि उन्होंने कोई सपना नहीं देखा। हम तो सोच भी नहीं सकते कि कोई आदमी ऐसा भी होगा, जो रात सपना नहीं देखता! और आदिवासी जो पुराने समाज हैं, जिनका आधुनिक सभ्यता से संबंध नहीं हुआ, उनमें जब कोई आदमी सपना देखता है, तो एक रेअर, एक विशेष घटना घटती है। सारा गांव इकट्ठा होकर उस आदमी से पूछना शुरू करता है। एक अनूठी घटना है सपना। सपने का मतलब है कि इस आदमी की सोने की गहराई टूट गई, अब यह सोने में बिल्कुल मृत्यु के करीब नहीं पहुंच पाता।
रोज एक मृत्यु घटती है। अगर हम इसे और करीब लाएं, तो और समझ में आ सकेगा। जब आप श्वास भीतर लेते हैं, तब वह जीवन की होती है; और जब आप श्वास बाहर फेंकते हैं, तब वह मृत्यु की होती है। एक-एक श्वास के साथ भी मृत्यु का संबंध जुड़ा हुआ है। जब श्वास बाहर जाती है, तब आप मृत्यु के क्षण में होते हैं; और जब श्वास भीतर आती है, तब आप जीवन के क्षण में होते हैं। एक-एक श्वास में भी जन्म और मृत्यु का पैर जुड़ा हुआ है। इसलिए बाहर श्वास जाती है, उस वक्त आपकी जीवन-ऊर्जा क्षीण होती है। जब भीतर श्वास आती है, तब आप जीवंत होते हैं।
एक-एक श्वास में जन्म और मृत्यु। दिन में जन्म और रात में मृत्यु। अगर
हम इस पूरे जीवन को जन्म समझें, तो फिर एक मृत्यु। अगर हम इस पूरे जगत को जीवन समझें, तो फिर एक प्रलय। मृत्यु अनिवार्य है जीवन के साथ। मृत्यु विश्राम है, जीवन थकान है। जीवन तनाव है, जीवन श्रम है। मृत्यु विश्राम है, विराम है, पुनः जीवन-शक्तियों को पा लेना है।
यह सारा विराट विश्व भी थक जाता है! आप ही नहीं थक जाते, यह सारा विराट विश्व भी थक जाता है। आप ही बूढ़े नहीं होते; पहाड़ भी बूढ़े हो जाते हैं, पृथ्वियां भी बूढ़ी हो जाती हैं, सूरज भी बूढ़े हो जाते हैं। आप ही नहीं मरते, पृथ्वियां भी मरती हैं, सूरज भी मरते हैं, पहाड़ भी मरते हैं। इस जगत में जो भी है, वह मृत्यु और जीवन दोनों में डोलता रहता है।
तो कृष्ण ने कहा कि रुद्रों में मैं शंकर हूं--मृत्यु का, प्रलय का। लेकिन जीवन के विपरीत नहीं है मृत्यु। यही कृष्ण समझाना चाहते हैं अर्जुन को कि तू जीवन और मृत्यु को अलग-अलग करके देखता है। तू सोचता है, जीवन सदा ही हितकारी है और मृत्यु सदा ही अहितकारी है। ऐसा विभाजन भ्रांत है। ऐसा विभाजन भ्रांत है। मृत्यु विश्राम है।
जीवन तरंग का उठना है आकाश की तरफ; मृत्यु तरंग का वापस सागर में खो जाना है। तू मृत्यु से इतना भयभीत न हो और तू मृत्यु के संबंध में इतनी चिंता मत कर। वह भी मैं ही हूं। और तू यह भी मत सोच कि तेरे द्वारा यह मृत्यु हो रही है। न तेरे द्वारा यह जीवन हुआ है, न तेरे द्वारा यह मृत्यु हो सकती है।
ध्यान रखें, न तो हमारे द्वारा जीवन हुआ है, न हमारे द्वारा मृत्यु हो सकती है। लेकिन हम मान लेते हैं। अगर आप एक बच्चे को जन्म देते हैं, तो आप सोचते हैं, आपने जन्म दिया है।
आप केवल एक पैसेज थे, एक मार्ग थे, जिससे बच्चा जन्मा है। आप सिर्फ एक द्वार थे, एक राह थे, जिससे बच्चा आया है। आपने क्या जन्म दिया है? जो आदमी पिता बन जाता है, उसने कभी सोचा है कि उसने किया क्या है पिता होने के लिए? अगर हम तथ्य पर उतरें, तो पता चलेगा कि वह आदमी सिर्फ एक मार्ग था। प्रकृति ने उसका मार्ग की तरह उपयोग किया है। जीवन उसके द्वारा आया है, वह लाया नहीं है जीवन को। और सच तो यह है कि जीवन जब उसके द्वारा आता है, तो वह इतना परवश होता है! इसीलिए कामवासना इतनी प्रगाढ़ है कि आप उस पर काबू नहीं पा सकते। क्योंकि जब जीवन धक्के देता है भीतर से, तो आप बिल्कुल विवश हो जाते हैं। कामवासना में आप होते कहां हैं! प्रकृति होती है; आप नहीं होते। और इसलिए समस्त धर्म यह मानकर चलते हैं कि जब तक कोई व्यक्ति कामवासना के पार न चला जाए, तब तक प्रकृति की परवशता नष्ट नहीं होती, तब तक प्रकृति उसे पकड़े ही रखती है। और तब प्रकृति आपको मूर्च्छित कर लेती है।

और उस मूर्च्छा में आप द्वार बन जाते हैं। उस द्वार में चाहे आप मां हों और चाहे पिता हों, आप इंस्ट्रूमेंटल हैं, साधन मात्र हैं। जीवन आपका साधन की भांति उपयोग करता है और जन्म लेता है। आप स्रष्टा नहीं हैं, सिर्फ उपकरण हैं।
कृष्ण कह रहे हैं कि जीवन भी तेरे द्वारा नहीं आता और मृत्यु भी तेरे द्वारा नहीं आती। जीवन भी मेरे द्वारा है और मृत्यु भी मेरे द्वारा है। इसलिए तू बीच में चिंता में पड़ता है व्यर्थ ही। इसलिए तू बीच में उदास होता है व्यर्थ ही। इसलिए बीच में तू कर्ता बनता है व्यर्थ ही। तू कर्ता है नहीं।
कृष्ण की सारी शिक्षा का सार अगर अर्जुन को एक शब्द में कहा जा सके, तो
वह यह है कि तू अपने को उपकरण से ज्यादा जानता है, तो गलती करता है। तू मात्र एक उपकरण है, एक इंस्ट्रूमेंट है। जीवन की विराट शक्ति तेरे भीतर काम करती है, तू सिर्फ साधन है। और साधन से ज्यादा तू अपने को मत मान। तू एक बांसुरी है, जिसमें से जीवन गीत गाता है। तू बांसुरी से ज्यादा अपने को मत मान। तू एक बांस की पोंगरी है, जिससे जीवन प्रकट होता है। लेकिन तू जन्मदाता नहीं है और न ही तू मृत्युदाता है। जन्म भी मैं हूं, जीवन भी मैं हूं और मृत्यु भी मैं हूं।
यहां यह भी समझ लेने जैसा है कि हमने शंकर को विनाश का, प्रलय का, अंतिम अध्याय जो होगा जीवन का, उसका सभापति, उसका अध्यक्ष माना। उनकी अध्यक्षता में जीवन समाप्त होगा, प्रलय में डूबेगा। लेकिन शंकर के व्यक्तित्व को मृत्यु से हमने जरा भी नहीं जोड़ा। शंकर को हमने नाचता हुआ नटराज की तरह चित्रित किया है। शंकर को हमने एक महान प्रेमी की तरह चित्रित किया है।
पार्वती की मृत्यु हो गई, तो कथा है कि शंकर उसकी, पार्वती की लाश को लेकर बारह वर्ष तक घूमते रहे। लाश को लेकर! लाश ही रह गई, प्राण तो चले गए; लेकिन ऐसा सघन लगाव था, ऐसा प्रेम था, ऐसा मोह था गहरा कि उस लाश को कंधे पर लेकर वे घूमते रहे कि शायद कोई जिला दे।
कथा बड़ी मधुर है। लाश सड़ती गई--बारह वर्ष लंबा वक्त है--और एक-एक अंग पार्वती के शरीर के गिरते गए। जहां-जहां उसके अंग गिरे हैं, वहीं-वहीं भारत के तीर्थ निर्मित हुए हैं, ऐसी कथा है। जितने तीर्थ हैं, वह पार्वती का जहां-जहां एक-एक अंग गिरा, वहां-वहां एक-एक तीर्थ निर्मित हुआ है। मृत्यु का, विनाश का जो देवता है, वह जीवन के प्रति इतने मोह और इतनी आसक्ति और इतने लगाव से भरा हुआ है! और नटराज की तरह हमने उसे चित्रित किया है, नाचता हुआ! जरूर सोचने जैसा है। क्योंकि विनाश के देवता को इस भाषा में हमें चित्रित नहीं करना चाहिए। उचित होता कि हम कहते विराग, वैराग्य, सब तरह से रूखा-सूखा व्यक्तित्व हम निर्मित करते। शंकर का वैसा व्यक्तित्व नहीं है। बहुत रसभीना है। बहुत रस से डूबा हुआ है। और जीवन के प्रति इतने राग से भरा हुआ व्यक्तित्व है! यह विरोध मालूम पड़ता है।
लेकिन इस विरोध में ही भारत की अंतर्दृष्टियां छिपी हैं। भारत मानता
है कि सभी विरोधी चीजें संयुक्त होकर ही जीवन को निर्मित करती हैं।
इसे हम ऐसा समझें कि आपके भीतर जो राग की क्षमता है, वही आपकी मृत्यु
की क्षमता भी है, तब जरा आपको समझ में आएगा। आपके भीतर जो वासना है, वही मृत्यु भी है। अगर आपकी कामवासना बिल्कुल खो जाए, तो आपके भीतर से मृत्यु का भय भी बिल्कुल खो जाएगा।
हमें लगता है कि हम कामवासना से जीवन को जन्म देते हैं। निश्चित ही,
जब भी आप अपनी कामवासना से एक नए जीवन को जन्म दे रहे हैं, तब आपको पता नहीं कि आप अपनी मृत्यु को निकट भी ला रहे हैं। आपकी जो ऊर्जा जीवन के काम आ रही है, उतनी ही ऊर्जा रिक्त होकर आपकी मृत्यु का भी निर्माण कर रही है। जीवन एक सतत संतुलन है।
इसलिए जो लोग अमरत्व की तलाश में निकले, उन्होंने ब्रह्मचर्य को आधार बना लिया। उसके बनाने का कारण था। क्योंकि यह बात साफ समझ में आ गई कि मृत्यु का द्वार अगर कोई है, तो वह कामवासना है। काम ही उसका दरवाजा है। इसे मैं कुछ उदाहरण दूं तो ख्याल में आ जाए। आदमियों में उदाहरण खोजने जरा

कठिन हैं, क्योंकि आदमी के लिए यह घटना क्षण-क्षण घटती है और लंबे फासले पर घटती है। लेकिन अगर हम पशुओं और पक्षियों और कीड़े-मकोड़ों के जीवन में उतरें, तो कई बहुत अदभुत मिसालें हैं।
जैसे अफ्रीका में एक मकोड़ा होता है। वह एक ही बार संभोग कर सकता है।
संभोग करते ही मर जाता है। एक ही बार संभोग कर सकता है, लेकिन संभोग करते ही मर जाता है। वह मादा के ऊपर से मुर्दा ही उतरता है, जिंदा नहीं उतरता।
लेकिन वैज्ञानिकों ने उसके संभोग का अध्ययन किया है और बड़े चकित हुए हैं।
उनका ख्याल है कि वह मकोड़ा एक संभोग में जितना सुख--जिसको हम सुख कहते हैं--जितना सुख पाता है, उतना एक आदमी जीवन में चार हजार संभोग करके भी नहीं पाता।
एक साधारण आदमी एक जीवन में कम से कम चार हजार संभोग कर सकता है। इसको
अब जांचने के उपाय हैं। जब आप संभोग में होते हैं, तो आपके मस्तिष्क और आपके शरीर में विद्युत के जो आंदोलन होते हैं, बिजली के जो आंदोलन होते हैं, उनको नापने के अब यंत्र उपलब्ध हैं। कि कितने वोल्टेज, कितनी फ्रीक्वेंसी की वेव्स आपके भीतर बिजली की घूमती हैं। और जब आप कहते हैं कि मुझे बहुत सुख मिला, तो वेव्स बताती हैं कि कितनी गति थी उनकी; जब आप कहते हैं कि कोई सुख नहीं मिला, तो वेव्स बताती हैं कि कितनी गति थी उनकी। उस मकोड़े की जितनी गति होती है वेव्स की, अब तक कोई आदमी नहीं बता पाया। लेकिन एक ही संभोग में उसकी मृत्यु हो जाती है।
और भी पशुओं पर अध्ययन हुआ है। और अध्ययन यह कहता है कि संभोग, कामवासना एक तरफ जीवन को जन्म देती है, दूसरी तरफ मृत्यु को। जीवन और मृत्यु इतने संयुक्त हैं, सब जगह! जिससे जीवन का जन्म होगा, उसी से मृत्यु का भी जन्म होगा।
इसलिए अगर हमने शिव को, शंकर को विनाश का और मृत्यु का देवता माना, तो हमने दूसरी तरफ उनके जीवन को बहुत रंगीन, बहुत रस-भरा, बहुत मोहासक्त भी चित्रित किया है।
पार्वती के पिता राजी न थे कि शंकर को वर की तरह चुना जाए। कौन मृत्यु
के देवता को चुनने को राजी होगा! लेकिन सभी को चुनना पड़ता है। मृत्यु का ही देवता चुनना पड़ता है। पिता राजी न थे, यह स्वाभाविक था। कौन अपनी लड़की के लिए मृत्यु के देवता को चुनेगा! लेकिन कौन है ऐसा, जो मृत्यु के देवता के अतिरिक्त किसी और को चुन सकता है! और उपाय भी तो नहीं है। क्योंकि जन्म और मृत्यु संयुक्त हैं, और कामवासना मृत्यु का द्वार है।
इसलिए पिता इनकार करते रहे कि यह शादी नहीं होनी है, यह शादी नहीं करनी है। लेकिन पार्वती जिद्द पर थी, और उसे शंकर के सिवाय कोई भाता ही न था। स्वाभाविक है। क्योंकि जो मृत्यु का द्वार है, उसमें काम का आकर्षण भी इतना ही प्रबल होगा। जिसमें मृत्यु इतनी सघन है कि सारे जगत का विनाश उसके द्वारा होगा, उसमें वासना भी इतनी ही सघन होगी। यह सघनता समतुल होगी। पार्वती उत्सुक थी। पागल थी। विवाह हुआ। लेकिन पिता राजी न थे।
शंकर का आकर्षण जीवन का आकर्षण है, लेकिन शंकर देवता मृत्यु के हैं।
इस सूचना से, इस प्रतीक से हमने यह कहना चाहा है कि जीवन और मृत्यु दो चीजें नहीं हैं। मृत्यु पीछे दिखाई पड़ती है आती हुई, जीवन अभी है। लेकिन जीवन आमंत्रण है और अंततः मृत्यु की गोद ही हमारा विश्राम बनती है।
कृष्ण कहते हैं, शंकर मैं हूं। मृत्यु भी मैं हूं। विनाश भी मैं हूं।
जीवन भी मैं हूं। ऐसे वे कहते हैं कि सारे द्वंद्व के भीतर मैं हूं। और जब दोनों द्वंद्व के भीतर एक ही अस्तित्व है, तो द्वंद्व का अर्थ खो जाता है, द्वंद्व व्यर्थ हो जाते हैं।
हीगल ने पश्चिम में डायलेक्टिक्स पर बहुत काम किया है, द्वंद्व पर।
और हीगल ने कहा, सारे जगत का विकास द्वंद्वात्मक है, डायलेक्टिकल है। फिर मार्क्स ने इसी बात के आधार पर डायलेक्टिकल मैटीरियलिज्म, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और कम्युनिज्म को जन्म दिया। मार्क्स ने उसमें से छोटी-सी बात पकड़ ली और वह यह कि जैसे जीवन का विकास द्वंद्वात्मक है, वैसे ही समाज का विकास भी द्वंद्वात्मक है। गरीब और अमीर की लड़ाई है और द्वंद्व है।

लेकिन न हीगल को ख्याल है, न मार्क्स को, कि भारत और भी गहरी बात करता है। मार्क्स तो बहुत उथली बात करता है, समाज के अस्तित्व की ही। हीगल थोड़ा गहरा जाता है। और हीगल कहता है कि समस्त विकास द्वंद्वात्मक है। लेकिन भारत कहता है कि विकास ही नहीं, अस्तित्व ही द्वंद्वात्मक है। एक्झिस्टेंस इटसेल्फ इ.ज डायलेक्टिकल, सारा अस्तित्व ही द्वंद्व है। लेकिन द्वंद्व का अर्थ दो नहीं है। विपरीत दो नहीं, ऐसे दो, जो दोनों भीतर गहरे में जुड़े हैं। जैसे नदी है और दो किनारों के बीच बह रही है। हमें किनारे दो दिखाई पड़ते हैं, लेकिन नदी के नीचे हम गहरे में उतरें, तो जमीन संयुक्त है और जुड़ी है। और यह मजे की बात है कि नदी एक किनारा हो, तो बह नहीं सकती, दो किनारे चाहिए। लेकिन दो किनारे भीतर एक हैं, दो नहीं हैं। और अगर सचमुच ही दो किनारे दो हों, तो नदी दोनों के बीच की खाई में खो जाएगी, फिर भी नहीं बह पाएगी।
इसे थोड़ा समझ लें, यह थोड़ा जटिल है।
अगर एक किनारा हो, तो नदी बह नहीं सकती, दो किनारे चाहिए। लेकिन अगर सच में ही दो किनारे दो हों, तो नदी बीच की खाई में खो जाएगी, फिर भी बह नहीं सकती। इसका मतलब हुआ कि दो दिखाई पड़ने चाहिए और दो होने नहीं चाहिए। ऊपर से दो मालूम पड़ने चाहिए, भीतर से एक होने चाहिए।
इसलिए भारत ने डायलेक्टिक्स को, द्वंद्वात्मकता को एक नया अर्थ दिया। द्वंद्व ऊपरी है, अद्वंद्व भीतरी है। द्वैत ऊपर है, अद्वैत भीतर है। दो दिखाई पड़ते हैं, लेकिन वे एक के ही दो रूप हैं।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, जीवन भी मैं हूं, मृत्यु भी मैं हूं। ये दोनों किनारे मेरे हैं। लेकिन चूंकि दोनों किनारे ही मैं हूं, इसलिए दोनों किनारे दो दुश्मन नहीं हैं, बल्कि एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। इसलिए न तू जीवन की चिंता कर अर्जुन, और न तू मृत्यु की चिंता कर। तू दोनों चिंताएं मुझ पर छोड़ दे, वे दोनों मैं हूं। तू व्यर्थ बीच में आकर चिंता अपने सिर ले रहा है।
लेकिन हमें कठिनाई लगती है। लोग आमतौर से कहते हैं कि हम चिंता छोड़ना चाहते हैं, लेकिन अब तक मैंने ऐसे बहुत कम लोग देखे, जो सच में ही चिंता छोड़ना चाहते हैं। कहते हैं जरूर, लेकिन कहने से किसी को भूल में पड़ने की जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि वे कहते इसलिए हैं कि यह कहकर वे और एक नई चिंता अपने लिए पैदा करते हैं, कि मैं चिंता छोड़ना चाहता हूं! बस, और कुछ नहीं करते। एक नई चिंता, एक धार्मिक चिंता, एक नई अशांति कि मुझे शांति चाहिए!
लेकिन चिंता कोई छोड़ना नहीं चाहता। गहरे में चिंता छोड़ना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि चिंता छोड़ने का अर्थ अहंकार को छोड़ने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता है। अहंकार कोई भी नहीं छोड़ना चाहता। चिंता सभी छोड़ना चाहते हैं। और चिंता के सब फूल-पत्ते अहंकार में लगते हैं। अगर कोई चिंता पूरी छोड़ दे, तो अहंकार तत्काल छोड़ना पड़ेगा।
अर्जुन की तकलीफ क्या है? वह यह कह रहा है कि मैं कर्ता हूं। यह मैं हत्या करूंगा। यह मैं युद्ध करूंगा। यह पाप मेरे ऊपर होगा। तो मैं तो पुण्य करना चाहता हूं। मैं त्याग करता हूं। मैं तो संन्यास लेकर जंगल चला जाऊंगा। मैं तो बैठकर ध्यान, पूजा, प्रार्थना करूंगा। मैं गलत को नहीं करूंगा; ठीक को करूंगा। मैं गलत कैसे कर सकता हूं! मैं तो ठीक ही करूंगा। मैं कर्ता ही बनूंगा, तो अच्छे का बनूंगा, बुरे का नहीं बनूंगा। लेकिन कर्ता मैं रहूंगा। यही उसकी चिंता है, यही उसका संताप है।
ठीक से समझें, तो अहंकार के अतिरिक्त और कोई चिंता जगत में नहीं है।
सभी लोग कहते हैं, हम चिंता छोड़ना चाहते हैं, लेकिन अहंकार कोई नहीं छोड़ना चाहता है। इसलिए और एक नई चिंता सिर पर सवार हो जाती है कि चिंता कैसे छोड़ें! लेकिन आपको अगर कोई सच में ही कहे कि चिंता छोड़ने की यह सरल-सी, बहुत सरल-सी कीमिया है, कि आप अपने को कर्ता मत मानें और फिर आप चिंता करके दिखा दें, तो मैं समझूं। आप चौबीस घंटे के लिए तय कर लें कि मैं अपने को कर्ता नहीं मानूंगा। फिर आप चौबीस घंटे में चिंता करके बता दें, तो मैं समझूं कि आपने एक चमत्कार किया है। यह हो नहीं सकता।

चिंता आती ही उसी क्षण में है, जहां मैं कर्ता मानता हूं। जहां मैं कर्ता नहीं मानता, चिंता का कोई सवाल नहीं है। तब मैं इस विराट प्रवाह का एक अंग हो जाता हूं। और करने का सारा भार विराट पर हो जाता है, मुझ पर नहीं। फिर अच्छा हो, तो उसका है; और बुरा हो, तो उसका है। और जीवन आए, तो उसका है। मृत्यु आए, तो उसकी है। बीमारी हो तो, स्वास्थ्य हो तो, सुख हो तो, दुख हो तो; जो भी हो, उसका है। मैं उसका एक हिस्सा हूं। फिर आपको चिंता करने का उपाय नहीं बचता।
इसे ऐसा समझें कि अहंकार घाव की तरह है। उसी घाव में जरा-जरा सी चोट रोज लगती है और चिंता पैदा होती है। अहंकार एक फोड़ा है, नासूर है। उसमें जरा-सी चोट लगी... ।
और मजा ऐसा है न, कि अगर आपके पैर में कहीं चोट लग जाए, तो फिर दिनभर आपको उसी में चोट लगेगी! आपने कभी ख्याल किया? बल्कि आप चकित भी होंगे कि हद्द हो गई, रोज इसी दरवाजे से निकलता हूं, रोज इसी फर्नीचर के पास से गुजरता हूं, रोज इसी कुर्सी पर बैठता हूं, रोज इसी टेबल की टांग से मुलाकात होती है, लेकिन आज इन सबने तय क्यों कर रखा है कि मेरे पैर में ही चोट लगती है!
चोट रोज भी लगती थी, आपको पता नहीं चलती थी। क्योंकि पता चलने के लिए फोड़ा चाहिए, घाव चाहिए। चोट कल भी लगती थी, कल भी इस दरवाजे के पास से निकलते वक्त पैर में लगा था, लेकिन आपको पता नहीं चला था। क्योंकि पता चलने के लिए दरवाजे का लगना काफी नहीं है, आपके पास संवेदनशील घाव भी चाहिए जिसमें पता चले।
अहंकार एक घाव है, जिसमें प्रतिपल चोट लगती है। रास्ते से गुजर रहे हैं और कोई अपने ही कारण हंस रहा है, और आपको चोट लग जाएगी। कोई ऐसे ही मौज ले रहा है, और आपको चोट लग जाएगी। कोई दो लोग बात कर रहे हैं एक-दूसरे के कान में, और आपका अहंकार पकड़ लेगा कि आप ही के संबंध में बात की जा रही है। अहंकार, जिनके पास जितना घाव गहरा है, उनको इस जगत में ऐसा लगता है, सब कुछ उन्हीं के आस-पास हो रहा है! सब कुछ! कोई हंस रहा है, तो उनकी वजह से। कोई रो रहा है, तो उनकी वजह से। जीवन चल रहा है, तो उनकी वजह से। मृत्यु आ रही है, तो उनकी वजह से। अगर वे न होंगे, तो यह सारी सृष्टि खो जाएगी! अर्जुन भी इसी वहम में है कि उसके ही केंद्र पर यह सब कुछ हो रहा है।
सब उसके आधार पर हो रहा है। वह नहीं होगा, नहीं करेगा, या करेगा, इस पर सब कुछ निर्भर है। कृष्ण उसे एक ही बात समझा रहे हैं कि कुछ भी तुझ पर निर्भर नहीं है। सब मुझ पर निर्भर है। और जब कृष्ण कहते हैं, सब मुझ पर निर्भर है, तो उनका अर्थ है, विराट पर निर्भर है।
और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूं।
यह बात और भी कठिन है। यह कठिन इसलिए है कि हम यह भी सोच लें कि वे शंकर हैं, मृत्यु के, विनाश के देवता हैं; स्वयं मृत्यु हैं, यह भी मान लें। लेकिन आज के समाजवादी युग में यह वचन ऐसा लगेगा कि जरूर गीता में कुछ अमेरिकी गुप्तचर विभाग ने डाल दिया है। कुबेर!
कृष्ण कहते हैं, यक्ष तथा राक्षसों का धन का स्वामी कुबेर भी मैं हूं! हमारा मन होगा, इसको गीता से अलग कर डालना चाहिए। और कुछ भी रहो! कम से
कम धनपति होने की तो बात मत कहो! और वह भी कुबेर!
कुबेर के लिए कहा जाता है, उसके पास अक्षय खजाना है, अनंत खजाना है। कोई सीमा नहीं; असीम खजाना है। कुबेर का अर्थ हुआ कि इस अस्तित्व में जो सबसे ज्यादा धनी है।
तो कृष्ण की यह बात जरूर कैपिटलिस्टिक, पूंजीवादी मालूम पड़ती है। इसलिए समझना थोड़ा कठिन होगा। लेकिन हम समझें, तो बहुत महत्वपूर्ण है। गरीब आदमी कभी भी धन से मुक्त नहीं हो पाता। हो भी नहीं सकता। क्योंकि
जो आपके पास नहीं है, उससे आप मुक्त नहीं हो सकते। जो आपके पास है, उससे ही आप मुक्त हो सकते हैं। जरूरी नहीं है कि हो जाएं, लेकिन चाहें तो हो सकते हैं। जो आपके पास नहीं है, उससे मुक्त कैसे होइएगा? जो है ही नहीं, उससे आप बंधे ही रहेंगे, उससे आप घिरे ही रहेंगे। जो नहीं है, वह आपको आकर्षित करता

ही रहेगा। जो है, उससे ही छुटकारा हो सकता है। अगर दुनिया में धन की इतनी प्रतिष्ठा है, तो उसका कारण धन नहीं है, उसका कारण गरीबी है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
अगर दुनिया में धन का इतना आकर्षण है, तो उसका कारण धन बिल्कुल नहीं है; जैसा कि साधु-संत लोगों को समझाते हैं कि धन में बड़ा आकर्षण है। धन में बिल्कुल आकर्षण नहीं है। धन बहुत कम है, इसलिए आकर्षण है। गरीबी बहुत ज्यादा है, इसलिए आकर्षण है। जिस दिन जमीन पर धन ऐसा हो जाए, जैसे हवा-पानी है, उस दिन धन में कोई आकर्षण नहीं रह जाएगा। बल्कि उलटी घटना भी घटती है। जिस गांव में कोई कार नहीं है, उसमें आप कार में निकल जाएं, तो कार में आकर्षण होता है। और जिस गांव में सबके पास कार है, उसमें आप पैदल निकल जाएं, तो पैदल में आकर्षण हो जाता है।
गरीबी के कारण धन में आकर्षण है। दीनता के कारण धन में आकर्षण है। धन
हो तो धन में आकर्षण रह नहीं जाता। इसलिए इस दुनिया ने जो बड़े से बड़े निर्धन लोग देखे हैं, वे बड़े से बड़े धनी घरों में पैदा हुए हैं।
महावीर या बुद्ध या नेमिनाथ या पार्श्वनाथ, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र हैं! हिंदुओं के सब अवतार राजाओं के पुत्र हैं! बौद्धों के चौबीस बुद्ध राजाओं के पुत्र हैं! और ये सब, इनमें से कोई भी नहीं ऐसा है जो धन के पक्ष में हो। यह बड़े मजे की बात है। महावीर सड़क पर भीख मांगते हैं! बुद्ध भिक्षापात्र लिए घूमते हैं! बुद्ध ने तो अपने संन्यासियों को ही भिक्षु का नाम दिया। भिक्षु शब्द इतना आदृत हो गया--भिखारी! यह बुद्ध को भिक्षा मांगते देखकर आपको कुछ समझ में आता है कि बात क्या है?
जिसके पास धन है, वह धन से मुक्त हो जाता है। और अगर किसी के पास धन भी
है और वह मुक्त नहीं हो रहा है, तो उसका मतलब इतना ही हुआ कि उसके पास बुद्धि बिल्कुल नहीं है। धन हो और मुक्ति न आए, तो समझना कि बुद्धि बिल्कुल नहीं है। और अगर धन न हो और मुक्ति आ जाए, तो समझना कि बहुत बुद्धि है।
गरीब तो बहुत बुद्धिमान हो, तो ही धन से मुक्त हो सकता है; बहुत, अतिशय बुद्धिमान हो, तो ही मुक्त हो सकता है। क्योंकि बहुत बुद्धि हो तो ही वह सोच सकता है कि जो नहीं है, अगर होता तो क्या होता। यह बहुत दूरगामी पहुंच है। जो मेरे पास नहीं है, अगर मिल जाए तो क्या होगा, इसको समझने के लिए बहुत गहरी पकड़ चाहिए जीवन के बाबत।
गरीब तो बहुत बुद्धिमान हो, तो मुक्त हो सकता है; लेकिन अमीर अगर बिल्कुल बुद्धू हो, तो ही मुक्ति से बच सकता है। धन भी अगर आपके पास है और फिर भी धन की पकड़ नहीं छूटती, तो आप नासमझ हैं। हद्द दर्जे के नासमझ हैं! क्योंकि जो है, उस पर से पकड़ तो छूट ही जानी चाहिए।
कृष्ण ने इसमें कहा कि राक्षसों में और यक्षों में मैं धनपति कुबेर हूं।
इसमें दो बातें ख्याल में लें। एक तो यह कि राक्षस का अर्थ ही होता है, जिसकी आत्मा लोभ है, ग्रीड है। राक्षस कोई जाति नहीं है। राक्षस व्यक्तित्व है, ए टाइप आफ पर्सनैलिटी। जहां लोभ ही जिसकी आत्मा है, उस आदमी का नाम राक्षस है। जमीन पर सब तरफ राक्षस हैं, बहुत तरह के राक्षस हैं।
कृष्ण कहते हैं कि अगर राक्षसों में तू मुझसे पूछता हो, तो मैं कोई छोटा-मोटा राक्षस नहीं हूं, खुद कुबेर हूं।
लोभ है राक्षस की वृत्ति। कुबेर की हालत मिले, तो ही राक्षस मुक्त हो सकता है लोभ से, नहीं तो नहीं हो सकता। अनंत धन मिल जाए, तो ही धन की खोज बंद हो सकती है राक्षस की, नहीं तो बंद नहीं हो सकती। तो अगर इसे हम ठीक से समझें तो इसका अर्थ हुआ कि राक्षसों में एक कुबेर ही है, जो धन की पकड़ के बाहर है, लोभ के बाहर है।
लोभ के बाहर होना हो, तो दो उपाय हैं। या तो इतनी सजगता और इतनी बुद्धि
और इतनी प्रज्ञा बढ़े कि आप जहां हैं, वहीं से लोभ आपको व्यर्थ दिखाई पड़ने लगे, एक। दूसरा रास्ता यह है कि आपके लोभ की इतनी अनंत तृप्ति हो जाए; जितना लोभ मांगता है, उससे ज्यादा आपको मिल जाए; आप मांग न सकें, इतना मिल

जाए; आपकी मांग छोटी पड़ जाए, पूर्ति ज्यादा हो जाए; कुबेर की स्थिति पैदा हो जाए, तो आप लोभ के बाहर हो सकते हैं।
गरीब समाज सामूहिक रूप से कभी धार्मिक नहीं होता, व्यक्तिगत रूप से कोई धार्मिक हो सकता है। अमीर समाज सामूहिक रूप से धार्मिक होने लगता है। और अगर समाज सच में ही अमीर हो जाए, तो समाज की मौलिक वृत्ति धार्मिक होनी शुरू हो जाती है।
यह भारत भी कभी धार्मिक था। यह धार्मिक तभी था, जब सामूहिक रूप से अमीर था। आज तो अगर किसी भी मुल्क के धार्मिक होने की संभावना है, तो वह अमेरिका की है।
गरीब आदमी व्यक्तिगत रूप से धार्मिक हो सकता है, सामूहिक रूप से धार्मिक नहीं हो सकता, क्योंकि जब शरीर की ही चीजें पूरी न होती हों, तो आत्मा की आकांक्षाओं को जगने का मौका नहीं मिलता। और जब नीचे तल की जरूरतें ही पकड़े रखती हों, तो आकाश में उड़ने का अवसर नहीं होता।
धर्म आत्यंतिक विलास है, दि अल्टिमेट लक्जरी। क्योंकि इतनी ऊंची है बात, इतनी ऊंची है, इतनी शिखर की है बात कि जब नीचे से सब जड़ें टूट जाएं और जमीन से सब संबंध अलग हो जाए और आदमी हल्का होकर आकाश में उड़ सके, जमीन की कोई पकड़ न रहे जाए, तब इस आत्यंतिक शिखर को उपलब्ध होता है।
कृष्ण की बात इस संदर्भ में देखने पर समझ में आएगी। वे कहते हैं, राक्षसों में मैं कुबेर हूं। क्योंकि राक्षस जब तक कुबेर न हो जाएं, तब तक परमात्मा की तरफ उनका कोई झुकाव नहीं होता। सिर्फ कुबेर ही झुक सकता है। इससे कम में झुकाव का कोई उपाय नहीं है। जब तक आपके ऊपर इतना न थोप दिया जाए कि उसके वजन में ही आपकी वासना मरने लगे; जब तक इतना आपके ऊपर न गिर पड़े आसमान आपकी आकांक्षाओं की मांगों का, कि आप उसके नीचे ऊब जाएं, तब तक... । नहीं तो धन के इर्द-गिर्द आपका लोभ आपको घुमाता ही रहेगा, चाहे कितने
ही कष्ट उठाने पड़ें। जब तक धन का होना ही कष्ट न हो जाए, तब तक आप धन से ऊपर नहीं उठ पाएंगे। धन के कारण आप कितने ही कष्ट उठा सकते हैं।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन भारत आया। जब उसने कश्मीर में प्रवेश किया, तो उसे बड़ी भूख लगी थी और बड़ी प्यास लगी थी। और पहाड़ी रास्ता था और उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था, कोई आदमी नहीं मिल रहा था। और फिर उसे एक वृक्ष के नीचे एक गांव के बाहर एक आदमी फल बेचता हुआ दिखाई पड़ा। लाल सुर्ख फल थे; नसरुद्दीन ने कभी देखे नहीं थे। उसके मुल्क में होते भी नहीं थे।
उसने एक रुपया निकालकर उस आदमी को दिया कि कुछ फल मुझे दे दो। मैं बहुत प्यासा और भूखा हूं। उस आदमी ने पूरी ही टोकरी उसे उठाकर दे दी। नसरुद्दीन तो बहुत आनंदित हुआ। सोचा भी नहीं था कि एक रुपए में इतने फल मिल जाएंगे।
वह आदमी तो फल देकर चला गया। नसरुद्दीन उसकी जगह बैठ गया और एक फल उसने मुंह में रखा, तो आंख से आंसू झरने लगे। वह लाल मिर्च थी। आग लगने लगी मुंह में, लेकिन चबाए चला गया। गटके चला गया! भीतर पेट तक आग की लपटें फैलने लगीं।
और तब एक आदमी पास से निकला। उसने नसरुद्दीन की आंख से बहते हुए आंसू
और लाल आंखें और कंपता हुआ शरीर देखा। उसने पूछा कि तू यह पागल क्या कर रहा है! यह मिर्च है। खाना मत। रुक। अन्यथा मौत हो जाएगी। नसरुद्दीन ने कहा कि मिर्च खा कौन रहा है? अब तो मैं अपने पैसे खा रहा हूं। मिर्च का खाना तो पहली मिर्च पर ही समाप्त हो गया। लेकिन पैसे खर्च किए हैं।
हममें से भी बहुत लोगों की आंखों में जो आंसू हैं, वे पैसे खाने की वजह
से हैं। सब जला जा रहा है बाहर-भीतर; लेकिन पैसे तो खाने ही पड़ेंगे! आदमी की जिंदगी में इतनी जो पीड़ा और परेशानी और कठिनाई है... । जिनके पास पैसे नहीं हैं, उनके पास पैसे न होने से कठिनाई है, लेकिन वह कठिनाई बहुत बड़ी नहीं है। असली कठिनाई खोजनी हो, तो उन आदमियों को देखो जो पैसे खा रहे हैं! उनकी कठिनाई का कोई हिसाब नहीं है; उनकी कठिनाई का कोई अंत नहीं है।
लेकिन यह यात्रा दो ही तरह से रुक सकती है, यह पैसे खाने की यात्रा। या
तो आप बिल्कुल पैसे के सागर में गिरा दिए जाएं, जैसा कुबेर। और या फिर आपके

पास इतनी प्रज्ञा हो और इतना होश हो, इतनी बुद्धि हो, कि आप पैसे खाने से बच सकें।
कृष्ण कहते हैं, राक्षसों में मैं कुबेर हूं।
मैं वह आदमी हूं राक्षसों में, जिसके पास इतना है, इतना अनंत कि उसकी सारी वासना मर गई है। और पाने का कोई उपाय नहीं रहा। और सोचने का और कल्पना करने का उपाय नहीं रहा। कल्पना से ज्यादा जिसके पास है, ऐसा कुबेर का प्रतीक है। कुबेर का अर्थ है, जिसके पास कल्पना से ज्यादा है, वासना से ज्यादा है। कृष्ण कहते हैं, मैं कुबेर हूं।
तथा शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूं, श्रेष्ठतम; और पुरोहितों में बृहस्पति हूं, देवताओं का पुरोहित। और हे पार्थ, सेनापतियों में स्वामी कार्तिक और जलाशयों में समुद्र हूं। और हे अर्जुन, मैं महर्षियों में भृगु और वचनों में एक अक्षर अर्थात ओंकार हूं। सब प्रकार के यज्ञों में जप-यज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ हूं। इसमें दो-तीन प्रतीक बहुत कीमती हैं साधक की दृष्टि से, वह हम समझ लें।
वचनों में एक अक्षर ओंकार। ओम एक अक्षर है, लेकिन तीन ध्वनियां हैं, अ
उ म। इन तीनों की इकट्ठी जो ध्वनि है, वह है ओम। ध्वनिशास्त्र कहता है, अ उ म तीन मौलिक ध्वनियां हैं। सभी ध्वनियां इन्हीं का विस्तार हैं। तीन बीज ध्वनियां हैं, अ उ म। शेष सारी ध्वनियां इनका ही फैलाव हैं। इन तीनों को मिलाकर बनाया है ओम। तो ओम महाबीज है। ओम से तीन ध्वनियां पैदा होती हैं, अ उ म। और फिर तीन ध्वनियों से ध्वनियों का सारा संसार प्रकट होता है।
इसे थोड़ा ऐसा समझना पड़े।
आधुनिक भौतिकी, फिजिक्स कहती है कि समस्त जीवन का मौलिक आधार इलेक्ट्रांस हैं, विद्युत-कण हैं। भारतीय प्रज्ञा की खोज यह है कि समस्त अस्तित्व का मौलिक आधार ध्वनि-कण हैं, विद्युत-कण नहीं। साउंड, ध्वनि मौलिक है। पश्चिम की भौतिकशास्त्र की खोज है कि विद्युत मौलिक है।
लेकिन एक मजे की बात है कि पश्चिम का भौतिकशास्त्र कहता है कि ध्वनि
भी विद्युत का एक प्रकार है। एक विशेष प्रकार से पड़ी हुई विद्युत ही ध्वनि बन जाती है। एक विशेष लयबद्धता में विद्युत ध्वनि बन जाती है। और भारतीय शास्त्र कहते हैं कि विद्युत भी ध्वनि का एक प्रकार है। विशेष रूप से की गई ध्वनि, आग को पैदा कर देती है।
इसलिए हम कहानियां सुनते हैं तानसेन की और... । वे सब कहानियां सही हों, न हों, लेकिन उनके पीछे भारतीय दृष्टि कारण है। और वह दृष्टि यह है कि अगर एक विशेष आघात किया जाए ध्वनि का, तो अग्नि पैदा हो जाती है, विद्युत पैदा हो जाती है।
अभी पश्चिम में भी ध्वनिशास्त्र पर नवीनतम खोजें विकसित होती हैं, तो भारतीय प्रज्ञा की खोज महत्वपूर्ण होती जाती है। अब तो वे भी कहते हैं कि यह संभव है कि विशेष ध्वनियों की चोट से आग पैदा हो जाए। क्योंकि उनका कहना है कि ध्वनि भी विद्युत का एक प्रकार है।
शायद यह शब्दों का ही फासला हो। मेरे देखे शब्दों का ही फासला है। ध्वनि का प्रकार विद्युत हो या विद्युत का प्रकार ध्वनि हो, एक बात तय है कि दोनों गहरे में संयुक्त हैं। ज्यादा उचित होगा कहना कि शायद कोई तीसरी ही चीज है, जो दोनों में प्रकट होती है, ध्वनि में और विद्युत में। शायद उसे भारतीय ध्वनि कहते हैं, और उसे आधुनिक विज्ञान विद्युत कहता है। ये शायद शब्दों के फासले हैं।
इसलिए जैसे आज आइंस्टीन का सूत्र, छोटा-सा सूत्र, जो आज के पूरे विज्ञान को समाहित कर लेता है, एनर्जी इ.ज ईक्वल टु एम सी स्क्वायर। जैसा यह सूत्र आज के समस्त भौतिकशास्त्र को समाहित कर लेता है, वैसे ही ओम पूरब के सारे ध्वनिशास्त्र को समाहित कर लेता है। यह भी एक वैज्ञानिक सूत्र है। अ उ म, इन तीनों को इकट्ठा करके निर्मित हुआ है ओम। और इसके विशेष प्रयोग हैं।
और कृष्ण कहते हैं कि समस्त अक्षरों में मैं एक अक्षर हूं, ओम।

सारे शास्त्र छोड़ दो, हर्ज न होगा। सारे शास्त्र भूल जाओ, हर्ज न होगा,
एक ओम याद रह जाए, और एक ओम को अपने भीतर गुंजाने की कला याद रह जाए, और एक ओम के साथ अपने को लयबद्ध करने की क्षमता आ जाए, और ऐसी घड़ी आ जाए कि आप मिट जाओ और भीतर केवल ओम का उच्चार रह जाए, तो परमात्म-सत्ता में प्रवेश हो जाता है। क्योंकि ओम के बाद जो नीचे गिरेगा, फिर वह निर्ध्वनि, शून्य जगत में प्रवेश करता है। फिर वह परमात्मा के एकाकार, निराकार में प्रवेश कर जाता है। ओम द्वार है आखिरी।
अगर ओम से जगत की तरफ चलें, तो फिर अ उ म तीन ध्वनियां, और फिर तीन ध्वनियों से समस्त संसार का विस्तार है। अगर ओम के पीछे चलें, तो ओम के बाद शब्द, ध्वनियां सब खो जाते हैं। अंततः आप भी खो जाते हैं। सिर्फ ओंकार मात्र रह जाता है, सिर्फ ओम मात्र रह जाता है।
इसका अर्थ है कि ओम किसी मनुष्य के द्वारा पैदा की गई ध्वनि नहीं है, अस्तित्व की ध्वनि है। दि साउंड आफ एक्झिस्टेंस इटसेल्फ, अस्तित्व की ही ध्वनि है। जैसा कभी आपने सन्नाटे की ध्वनि सुनी है? रात कोई आवाज नहीं है, तो सन्नाटा मालूम पड़ता है। उसकी भी अपनी ध्वनि है। ठीक वैसे ही जब मनुष्य का सब अहंकार, सब विचार, सब शांत हो जाते हैं और गहन मौन होता है, उस मौन में, भीतरी सन्नाटे में, जो ध्वनि सुनाई पड़ती है, उसका नाम ओम है।
उस ओम में प्रवेश ही, कृष्ण कहते हैं, मुझमें प्रवेश है। समस्त अक्षरों में एकाक्षर ओंकार हूं। हजारों प्रकार के यज्ञ हैं, उन यज्ञों में जप-यज्ञ हूं।
जप को थोड़ा हम समझ लें। यज्ञ का अर्थ होता है, कोई भी योजना, कोई भी व्यवस्था, जिसके माध्यम से हम अपने और अस्तित्व के बीच सेतु निर्माण करें, एक ब्रिज बनाएं। कोई भी योजना। एक बात तय है कि हम टूटे हुए हैं। अस्तित्व से कहां जुड़े हैं, हमें पता नहीं! कैसे वापस मिलन हो, इसका पता नहीं! तो कोई मार्ग, कोई सेतु, कोई रास्ता बनाने की व्यवस्था का नाम यज्ञ है। बहुत तरह से वह व्यवस्था बन सकती है। और जिस व्यवस्था से भी आप जगत के अस्तित्व से जुड़ जाते हैं, वही व्यवस्था यज्ञ हो जाती है।
इसलिए हजारों प्रकार के यज्ञ हैं। और अगर आप ऊपर से देखेंगे, तो आपकी कुछ भी समझ में न आएगा। लगेगा क्रियाकांड है, व्यर्थ का पाखंड है। लेकिन यह तो कोई भी चीज लगेगी।
अगर एक आदमी को, आदिवासी को हम पकड़ लाएं और एक रेडियो को खोलकर उसके सामने बिछा दें, तो वह कहेगा, यह क्या पागलपन है? उसने कभी रेडियो न देखा हो और उसे पता न हो कि तारों की एक व्यवस्था भी ध्वनि को पकड़ने का उपाय बन जाती है, तो वह कहेगा, यह क्या पागलपन है!
और फिर अगर कोई एक आदमी कहे कि मैं इस यंत्र को निर्मित कर रहा हूं और तारों को जोड़ता चला जाए, तो उस आदिवासी को तो यह आदमी भी पागल मालूम पड़ेगा कि यह क्या क्रियाकांड कर रहे हो! पागल हो गए हो! इसके द्वारा तुम सोचते हो कि दूर, हजारों मील दूर दिल्ली की आवाज पकड़ोगे!
स्वभावतः, उसके कहने में भी भूल नहीं है। उसका तर्क भी उचित है, उसके अनुभव पर आधारित है। अगर रेडियो आपने भी न देखा होता, तो आप भी यही कहते। अगर बिजली आपने भी न देखी होती और आप देखते एक मैकेनिक को यहां आकर तार फैलाते हुए और वह कहता कि तारों को फैलाकर रात यहां दिन जैसा उजाला कर देंगे, तो आप भी कहते कि दिमाग खराब हो गया है।
सिगमंड फ्रायड ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि पहली दफा जब उसके गांव में बिजली आई, तो उसका एक मित्र देहात से उसके घर मेहमान हुआ। सिगमंड फ्रायड भूल गया बताना कि बिजली कैसे बुझाई जाती है बटन से। उस आदमी को तो पता नहीं था। उसने लालटेन बुझाई थी, चूल्हे की आग बुझाई थी, सब बुझाया था। लेकिन बटन से भी कोई चीज बुझने वाली है, इसकी उसे कोई कल्पना भी नहीं हो सकती थी। संकोचवश उसने पूछा भी नहीं। कई दफा ख्याल तो आया कि यह लालटेन कैसे बुझेगी! लेकिन यह सोचकर कि कोई मुझे मूढ़ समझेगा, अगर मैं पूछूं।
तो उसने सोचा सब सो जाएं, कमरा बंद करके कोई उपाय निकाल लेंगे और बुझा देंगे। कमरा बंद करके उसने बहुत उपाय किए। सब तरफ से फूंका। कुर्सी रखकर,

ऊपर चढ़कर बल्ब को फूंका। हिलाया। सब तरफ जांचा-परखा कि कोई तरकीब हो, कुछ हो। कहीं कुछ न था! उस बल्ब में कोई बुझने का उपाय ही न था!
आपको लगेगा, कैसा पागल था! लेकिन आप गलती करते हैं, उसके साथ अन्याय करते हैं। आप भी होते, यही करते। क्योंकि दूर दीवाल पर कहीं कोई छिपी हुई दरवाजे की आड़ में बटन होगी, यह ख्याल भी आए तो कैसे आए! आपको आ जाता है, क्योंकि आपको पता है। उसको पता नहीं था।
आधी रात तक उसने सब तरह के उपाय कर लिए। फिर उसने सोचा कि अब ऐसे ही आंख बंद करके पड़े रहो, अब सुबह देखा जाएगा। रातभर लेकिन बार-बार उसको ख्याल छूटे न, कि वह किसी तरह बुझ जाए तो अच्छा है।
सुबह जब फ्रायड ने उससे पूछा कि नींद तो ठीक हुई? उसने कहा, नींद तो सब ठीक हुई। लेकिन अब मैं अपनी मूढ़ता का ख्याल छोड़कर पूछता हूं कि इस लालटेन को बुझाने का भी कोई उपाय है या नहीं? रातभर इसे मैं बुझाता रहा हूं। सब मैंने अपनी बुद्धि लगा दी! फ्रायड ने जाकर बटन दबाई। वह लालटेन बुझ गई। वह आदमी चमत्कृत हो गया। उसने कहा, क्या जादू करते हो! यह क्या मंत्र है!
जिस योजना की हमें व्यवस्था का पता न हो, वह योजना व्यर्थ मालूम पड़ने लगती है। बहुत-से यज्ञ इसीलिए व्यर्थ मालूम पड़ने लगे हैं। उनके भीतर कुछ द्वार हैं। वे भी योजनाएं हैं। उन योजनाओं से भी कहीं से संबंधित होने का मार्ग है। कुछ लोग आग जलाकर बैठे हैं और घी छिड़क रहे हैं।
अब तो करीब-करीब पागलपन की हालत है, क्योंकि जो छिड़क रहे हैं, उनको भी पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। जो देख रहे हैं, उनको भी पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, कुछ भी पता नहीं। हमारे हाथ में कुछ बातें रह गई हैं अधूरी। अन्यथा उनका पूरा का पूरा विज्ञान है, पूरी साइंस है। और एक विशेष व्यवस्था से जगत के अस्तित्व में प्रवेश होने का उपाय है। उस उपाय का नाम यज्ञ है।
कृष्ण कहते हैं, इन सब उपायों में जप-यज्ञ मैं हूं, क्योंकि इन सब में सूक्ष्म और सबसे श्रेष्ठ जप-यज्ञ है।
जप-यज्ञ का अर्थ है, अपने भीतर ध्वनियों का एक ऐसा संघात निर्मित करना, ध्वनियों का एक ऐसा जाल निर्मित करना अपने भीतर कि वह जो परम ध्वनि है जगत की, उससे हमारा संबंध हो जाए। अपने भीतर ए सिस्टम आफ पर्टिकुलर साउंड पैदा करना, ताकि बाहर के जगत में जो ध्वनियों का फैलाव है, उनसे हमारा तालमेल हो जाए।
जब आप अपने भीतर कहते हैं, ओम, ओम, ओम, तब आप अपने भीतर अपने रोएं-रोएं
को एक विशेष ध्वनि से संवादित, प्रभावित कर रहे हैं। अगर यह ध्वनि व्यवस्था से की जाए, तो आपका रोआं-रोआं, आपके शरीर का कोष्ठ-कोष्ठ इससे आंदोलित हो जाएगा। अगर यह ध्वनि ठीक से की जाए, तो बहुत शीघ्र आपका पूरा शरीर एक स्टेशन, एक ब्राडकास्टिंग स्टेशन हो जाएगा। आपके पूरे शरीर से एक विशेष ध्वनि इस विस्तार में, चारों तरफ के विस्तार में आंदोलित होने लगेगी।
और जब आपका पूरा शरीर एक विशेष ध्वनि में लयबद्ध हो जाता है, तब तत्क्षण बाहर के जगत से, उस ध्वनि से मेल खाती ध्वनि और आपके बीच सेतु निर्मित हो जाता है। यह सेतु निर्मित करने का अर्थ है जप-यज्ञ।
इसलिए सारे धर्मों ने अलग-अलग रूपों में जप का प्रयोग किया है। अलग-अलग नामों का प्रयोग किया है। कोई भी हो नाम, कोई भी हो मंत्र, लेकिन मौलिक आधार यही है कि आप अपने शरीर को एक ऐसी ध्वनि की व्यवस्था में ले आएं, कि विराट जगत में जो ध्वनि चल रही हैं, उनसे आपका संबंध निर्मित हो जाए। और यह संबंध निर्मित... ।
कभी आपने ख्याल किया हो, आप मेरी बात सुन रहे हैं, अगर सच सुन रहे हैं,
तो आपको कई बातें पता नहीं चलेंगी, क्योंकि आप एक विशेष ढंग से मेरी ध्वनि से आबद्ध हो गए हैं। मैं बंद करूंगा बोलना, किसी को पता चलेगा, पैर सो गया है। घंटेभर तक उसे पता नहीं था! किसी को पता चलेगा, पैर में कंकड़ गड़ रहा है। घंटेभर से उसको कंकड़ गड़ने का पता नहीं था! किसी के हाथ में तकलीफ थी, किसी के सिर में दर्द था, वह घंटेभर भूल गया था। घंटेभर बाद मैं बोलना बंद करूंगा, दर्द वापस लौट आएगा। दर्द नहीं जाएगा; दर्द मुझे सुनकर नहीं जा

सकता। लेकिन आप एक विशेष ध्यान में आबद्ध हो गए थे, इसलिए बहुत-से द्वार आपके अनुभव के बंद हो गए और एक ही तरफ आपकी चेतना प्रवाहित हो रही थी। युद्ध के मैदान पर छुरी, तलवार, भाला भी घुस जाए, तो योद्धा को पता नहीं चलता। उसकी सारी चेतना फोकस्ड होती है। खेल के मैदान पर चोट लग जाए पैर में, हाकी लग जाए, पता नहीं चलता। खेल बंद होता है, तब पता चलता है कि खून बहा जा रहा है। क्या हुआ क्या था? आपकी चेतना एक दिशा में आबद्ध हो गई थी, सब दिशाएं बंद हो गई थीं।
जप-यज्ञ विराट की तरफ अपनी चेतना को आबद्ध करना है, फोकसिंग है, और सब तरफ से बंद हो जाना है। उस क्षण में आप किसी और लोक में प्रवेश कर जाते हैं।
कृष्ण कहते हैं, यज्ञों में मैं जप-यज्ञ हूं।
जप-यज्ञ सूक्ष्मतम है। बाहर आग जलाना स्थूल बात है, मंत्र से भीतर भी
आग जलाई जा सकती है। बाहर घी डालना स्थूल बात है, भीतर की आग में भी शीतल घी मंत्र से डाला जा सकता है। बाहर आयोजन करना स्थूल है, भीतर आयोजन करना सूक्ष्म है। सूक्ष्मतम आयोजन ध्वनि का है।
कभी आपने ख्याल किया कि अगर आपके सारे शब्द छीन लिए जाएं, तो आप क्या बचेंगे? आपके पास जितने शब्द हैं, वे सब छीन लिए जाएं, तो आप क्या होंगे? एक सिफर, एक शून्य। आप सिवाय शब्दों के और क्या हैं? अगर एक आदमी के मस्तिष्क से हम सारी ध्वनियां निकाल लें, वह आदमी पूरा का पूरा वैसा ही रहेगा, लेकिन बिल्कुल मूढ़ हो जाएगा, जड़ हो जाएगा। जीवित रहते हुए मुर्दा हो जाएगा।
आप हैं क्या? आप कुछ ध्वनियों का जोड़ हैं, कुछ शब्दों का जोड़ हैं। उससे ज्यादा आप नहीं हैं। इन्हीं शब्दों के बीच एक नए शब्द, एक नई ध्वनि की व्यवस्था को निर्मित करना है।
एक आदमी है, वह राम-राम, राम-राम अपने भीतर कह रहा है। वह कहे चला जाता है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे उसके चारों तरफ, भीतर उसके शरीर की दीवाल से राम-राम-राम सटते चले जाते हैं। राम की ध्वनि उसके शरीर की दीवाल से सब तरफ चिपकती चली जाती है। एक वक्त आता है कि एक राम-नाम का शरीर उसके भीतर पैदा हो जाता है। बाहर उसका शरीर रह जाता है, भीतर उसका अपना होना होता है। और दोनों के बीच में एक राम-नाम की... ।
लोग राम-नाम की चदरिया ओढ़ते हैं, उससे कुछ न होगा। एक भीतर ओढ़ी जाती है चदरिया, इस शरीर के भीतर। इसके ऊपर ओढ़ने से बहुत फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन अच्छा है। इसके भीतर ओढ़ने का उपाय है। और तब राम-राम सटता चला जाता है, इकट्ठा होता चला जाता है, उसकी पर्त बन जाती है भीतर। और वह पर्त बड़े अदभुत काम करना शुरू कर देती है, क्योंकि उस पर्त के साथ आप ध्वनियों के एक नए जगत में प्रवेश करते हैं। और जो बातें कल तक आपको अनुभव में नहीं आती थीं, वे आनी शुरू होती हैं; और जो कल तक अनुभव में आती थीं, वे बंद होने लगती हैं।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मैं यज्ञों में जप-यज्ञ हूं, और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ हूं।
जैसे ही कोई जप में गहरा उतरता है, वैसे ही मन के कंपन कम हो जाते हैं।
धीरे-धीरे कंपन खो जाते हैं और एक स्थिर हिमालय, एक स्थिर शिखर भीतर निर्मित हो जाता है।
आज इतना ही।
लेकिन रुकें। पांच मिनट कीर्तन कर लें। कौन जाने, इस कीर्तन की ध्वनि
से आपके और जगत के बीच कोई संबंध स्थापित हो जाए। शांत बैठें, कोई बीच में उठे न। पांच मिनट जब कीर्तन पूरा हो, तभी आप उठें।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
दसवां प्रवचन

आभिजात्य का फूल

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।। 26।।
उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।। 27।।
और सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष और देवर्षियों में नारद मुनि तथा गंधर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूं।
और हे अर्जुन, तू घोड़ों में अमृत से उत्पन्न होने वाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा और हाथियों में ऐरावत नामक हाथी तथा मनुष्यों में राजा मेरे को ही जान।

और सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारद मुनि तथा गंधर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल हूं।
एक तीसरे द्वार से कृष्ण और प्रतीकों का भी उपयोग करते हैं, वृक्षों में पीपल!
पीपल बहुत विशेष वृक्ष है। हिंदुओं की मान्यता के अनुसार ही नहीं, वनस्पतिशास्त्र के अनुसार भी। और वनस्पतिशास्त्र के अनुसार ही नहीं, अब तो मनोविज्ञान के अनुसार भी। सारे वृक्ष रात्रि में कार्बन डाइआक्साइड छोड़ते हैं, सिर्फ पीपल को छोड़कर। पीपल भर रात में कार्बन डाइआक्साइड नहीं छोड़ता है।
इसलिए किसी भी वृक्ष के नीचे रात रुकना हानिकर है, सिर्फ पीपल को छोड़कर। किसी भी वृक्ष के नीचे रात रुकने का अर्थ घातक हो सकता है। कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ जाए, तो मृत्यु भी घटित हो सकती है। इसलिए रात्रि वृक्षों के नीचे रहने की मनाही है। लेकिन पीपल के वृक्ष के नीचे रात भी रहा जा सकता है। पीपल इस अर्थ में अनूठा है। चौबीस घंटे उससे जीवन निःसृत होता है।
मनोविज्ञान के हिसाब से अब एक बहुत अनूठी बात का पता चला है। मनसविद
और शरीरशास्त्री दोनों ही निरंतर इस खोज में रहे हैं कि मनुष्य की चेतना का केंद्र कहां है। शरीर में सारी ग्रंथियों की खोज-बीन की गई है। मस्तिष्क में जिन गं्रथियों के पास चेतना की निकटता मालूम पड़ती है, उन ग्रंथियों में जो रसस्राव है, बहुत चकित करने वाली बात है कि मस्तिष्क में जिस कारण बोध और चेतना निर्मित होती है, या जिसके अभाव में आदमी बेहोश हो जाता है, उस रासायनिक तत्व की सर्वाधिक उपलब्धि पीपल वृक्ष में है। मनुष्य के भीतर जो बुद्धि है, उस बुद्धि के प्रकट होने के लिए जिस रासायनिक प्रक्रिया की जरूरत है और जिन रासायनिक तत्वों की मस्तिष्क में जरूरत है, उनकी सर्वाधिक मात्रा पीपल में उपलब्ध है।
कॉलिन विल्सन ने मजाक में ही लिखा है, लेकिन विचारपूर्ण है बात। उसने लिखा है कि बुद्ध का बुद्धत्व जिस वृक्ष के नीचे हुआ--वट-वृक्ष, वह पीपल की जाति का ही वृक्ष है--उस वृक्ष के नीचे बुद्ध का बुद्धत्व घटित होना, किसी गहरे अर्थ में वृक्ष से भी संबंधित हो सकता है। क्योंकि चैतन्य की प्रक्रिया जिस रासायनिक संभावना से बढ़ती है, वह वट या पीपल, उस तरह के वृक्षों में सर्वाधिक है।
तो बोधि-वृक्ष, सिर्फ बुद्ध के नीचे बैठने से बोधि-वृक्ष कहलाए, ऐसा नहीं। बोधि-वृक्ष सारे वृक्षों में सर्वाधिक बुद्धि की संभावना वाला वृक्ष भी है।
कृष्ण कहते हैं, वृक्षों में मैं पीपल हूं।
इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हम परमात्मा की खोज करने जाएं वृक्षों में भी, तो जहां भी बुद्धिमत्ता की छोटी-सी किरण हो, उसी से हमें खोज करनी

पड़ेगी। जहां भी बुद्धिमत्ता है, वहीं ईश्वर है। अगर वृक्ष में भी बुद्धिमत्ता की कोई किरण है, तो वहीं ईश्वर है।
वर्षों तक विज्ञान ऐसा सोचता था कि बुद्धि केवल आदमी में है, लेकिन वह बात भ्रांत सिद्ध हुई। बुद्धि पशुओं में भी है। उसकी मात्रा भिन्न होगी, उसका ढंग और होगा। उसे हम न समझ पाते हों, यह भी हो सकता है, क्योंकि हमसे पशुओं की बुद्धि का कोई संवाद नहीं है। लेकिन अब तो विज्ञान यह भी स्वीकार करता है कि पौधों में भी बुद्धि है। और पौधों के पास भी स्मृति है, मेमोरी है। और पौधे भी स्मृति को संरक्षित रखते हैं। शायद शीघ्र ही हम ये सारे रास्ते खोज लेंगे, जिनसे पौधों की स्मृति को भी खोला जा सके।
तो बोधि-वृक्ष के नीचे अगर बुद्ध को ज्ञान उत्पन्न हुआ हो, तो इस बोधि- वृक्ष को बुद्ध के इस ज्ञान के होने की घटना की भी स्मृति है। और वह वृक्ष तो अब तक बचाया जा सका है। बोधि-वृक्ष, जिसके नीच बुद्ध को ज्ञान हुआ, अब तक सुरक्षित है। क्या उस वृक्ष के अंतस्तल में, बुद्ध के जीवन में जो घटना घटी उस वृक्ष के नीचे, वह जो महाप्रकाश हुआ, उसकी कोई स्मृति संरक्षित है? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्षों की भी, पौधों की भी स्मृति है। उनका
भी बोध है और उनकी भी संवेदनशीलता है। इतना ही नहीं, वे कहते हैं... । और इस पर अब काफी प्रयोग किए जा चुके हैं, रूस में, अमेरिका में, दोनों जगह। अब ऐसे यंत्र भी निर्मित हुए हैं, जो यह बता सकें कि वृक्ष की भावदशा क्या है। जैसे आप बैठे हों और अचानक एक आदमी छुरा लेकर आपके सिर पर खड़ा हो जाए,
आप भयभीत हो जाएंगे। आपके रोएं-रोएं में भय का संचार हो जाएगा। तो अब वैज्ञानिक यंत्र उपलब्ध हैं, जो आपके पास लगे होंगे, वे तत्काल खबर दे देंगे कि आप भय से कंप रहे हैं। आपके भीतर भय दौड़ रहा है। क्योंकि जब आपके भीतर भय दौड़ता है, तो आपके शरीर की विद्युत, आपके शरीर की बिजली, एक खास ढंग से कंपित होने लगती है। वह कंपन पास के विद्युत यंत्रों में पकड़ा जा सकता है। जब आप प्रेम से भरे होते हैं, तब भी आपके भीतर दूसरे तरह के कंपन होते हैं। जब आप आनंद से भरे होते हैं, तो तीसरे तरह के कंपन होते हैं।
यह आश्चर्य की बात है, अचानक ही यह घटना घट गई। अचानक ही, एक वैज्ञानिक
को ऐसे ही ख्याल आया कि आदमी तो कंप जाता है, क्या पशु भी इसी तरह, उनके भीतर भी कुछ इसी तरह की स्थिति बनती होगी? तो उसने पशुओं पर प्रयोग किए। पशु भी इसी तरह भयभीत होते हैं, प्रेम से भरते हैं, क्रोध से भरते हैं। उसे ख्याल आया, क्या पौधे में भी यह संभव होगा?
तो उसने अपने कमरे में लाकर एक गमला रखा पौधे का, छुरा उठाकर आया पौधे
के पास कि पौधे को अब काटे, तो पता चले कि पौधे को कटते वक्त भीतर क्या होता है। लेकिन वह चकित हुआ, जब वह छुरा पास लाया, तभी उसके यंत्र ने बताया कि पौधे के प्राण भीतर वैसे ही भय से कंप रहे हैं, जैसे आदमी के प्राण भय से कंपते हैं। छुरा मारा नहीं है अभी। अभी सिर्फ छुरा लेकर वह खड़ा है। तब तो स्वीकार करना पड़ेगा कि पौधे के पास भी हमारे जैसी ही संवेदनशीलता, हमारे ही जैसी आत्मा है।
और भी आकस्मिक रूप से एक घटना घटी कि वह जिस पौधे के ऊपर छुरा लेकर खड़ा था, उसके पास रखे दूसरे पौधे में भी भय का संचार हो गया। और तब तो उसने बहुत-से प्रयोग किए। और उसने पाया कि अगर आप एक पौधे को भी जाकर बगीचे में नुकसान पहुंचाते हैं, तो आपके चारों तरफ जितने पौधे आस-पास होते हैं, वे सब भी दुखी और पीड़ित हो जाते हैं; वह पौधा तो होता ही है।
तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि पौधे की संवेदनशीलता शायद आदमी की संवेदनशीलता से भी ज्यादा शुद्ध है। क्योंकि आपके पास में कोई मारा जा रहा हो, तो जरूरी नहीं है कि आप दुखी हों; खुश भी हो सकते हैं, सुखी भी हो सकते हैं। लेकिन उस वैज्ञानिक के प्रयोगों में ऐसा कभी उसने नहीं पाया कि एक पौधे को काटा जा रहा हो, या काटे जाने की स्थिति बनाई जा रही हो, तो पास का कोई भी पौधा प्रसन्न हुआ हो। वे सभी एक साथ दुखी हो जाते हैं।
आदमी में ऐसा पाना मुश्किल है। अगर हिंदू मारा जा रहा हो, तो मुसलमान खुश हो सकता है। मुसलमान मारा जा रहा हो, हिंदू खुश हो सकता है। मित्र मारा जा रहा हो, तो दुख होता है; दुश्मन मारा जा रहा हो, तो हम प्रसन्न भी हो सकते

हैं। उस वैज्ञानिक के प्रयोगों से यह पता चला है कि पौधों में ऐसा दुर्भाव नहीं है, ऐसी ईर्ष्या और ऐसी शत्रुता-मित्रता का विभाजन नहीं है।
यह पूरा जीवन ही आत्मा से व्याप्त है। हम पहचान पाते हों, न पहचान पाते हों; हम समझ पाते हों, न समझ पाते हों; क्योंकि हमारी समझ की बड़ी छोटी- सी सीमा है। आदमी की समझ आदमी के बाहर काम नहीं पड़ती। सच तो यह है कि एक आदमी की समझ भी दूसरे आदमी के काम नहीं पड़ती। और एक आदमी की समझ भी दूसरे आदमी को समझने में असमर्थ हो जाती है।
हम सब राबिन्सन क्रूसो हैं अलग-अलग। दूसरे तक भी पहुंचना मुश्किल होता है। आपको मैं खुश देखता हूं, तो भी मैं आपकी खुशी नहीं समझ पाता कि आपके भीतर क्या हो रहा है। आपकी मुस्कुराहट देखता हूं, आपके चेहरे पर आ गई झलक देखता हूं, लेकिन आपके भीतर कौन-सा सुख घटित हो रहा है, कैसे सुख की तरंग आपके भीतर बह रही है, उसका मैं कोई अनुभव नहीं कर पाता; अनुमान लगाता हूं। वह अनुमान झूठा भी हो सकता है। क्योंकि आप अभिनय कर रहे हों, यह भी हो सकता है।
हममें से अधिक लोग अभिनय कर रहे हैं। उससे बड़ी जटिलता पैदा होती है।
हर आदमी को अपने दुख का पता होता है और दूसरे आदमी की झूठी हंसियों का पता होता है, झूठी मुस्कुराहटों का। तो हर आदमी सोचता है, मुझसे ज्यादा दुखी कोई भी नहीं। सारे लोग कितने प्रसन्न मालूम हो रहे हैं! हर आदमी सोचता है, सारे लोग प्रसन्न हैं, सारी दुनिया खुश मालूम होती है, मैं ही एक दुखी हूं, मैं ही एक परेशान हूं! यह परमात्मा मुझसे ही नाराज क्यों है!
उसे पता नहीं कि वह भी जब दूसरों के सामने मुस्कुराता है, जब सुबह उससे कोई रास्ते पर पूछता है कि कैसे हो, तो वह कहता है, बहुत अच्छा हूं, मजे में हूं, तब उसे पता भी नहीं कि भीतर उसके न कोई मजा होता है, न बहुत अच्छे की कोई खबर होती है; लेकिन उस दूसरे आदमी को वहम पैदा होगा कि बहुत मजे में है, बहुत अच्छा है। यह औपचारिक वक्तव्य था।
हमारे चेहरे औपचारिक हैं, फार्मल हैं, दूसरों को दिखाने के लिए हैं। भीतर वैसी बात नहीं है। हमारा दुख भी जरूरी नहीं कि सच्चा हो। हमारा सुख भी जरूरी नहीं कि सच्चा हो। लेकिन हम दूसरों के चेहरे ही देख सकते हैं, उनकी आत्मा को नहीं देख पाते। हम अंदाज लगा सकते हैं कि ऐसा ही हमें होता है। किसी आदमी की आंख से आंसू गिर रहे हों, तो हम अनुमान लगाते हैं, इनफरेंस करते हैं कि जब दुख होता है, तो मेरे आंसू बहते हैं। उसको भी दुख हो रहा होगा। यह जरूरी नहीं है। यह आवश्यक नहीं है। यह अनुमान है।
एक आदमी की समझ भी दूसरे के प्राणों में प्रवेश नहीं कर पाती--दूसरे आदमी की, जो कि ठीक हमारे जैसा ही है। तो अगर आदमी की समझ पशुओं में प्रवेश न कर पाए, तो कोई आश्चर्य नहीं है।
इसलिए दुनिया के बहुत-से धर्मों ने पशुओं में आत्मा ही नहीं मानी, इसलिए पशुओं को काटने में कोई अड़चन नहीं पाई। समझा कि पशु शायद आदमी के लिए ही बने हैं कि उनको काटो; वे आदमी का भोजन हैं! उसका कुल कारण इतना था कि पशुओं के पास आत्मा के होने का जो ढंग है, उससे हमारा कोई संबंध नहीं जुड़ पाता। हमारे और पशुओं के बीच कोई संवाद नहीं हो पाता। हमारी और उनकी भाषा कहीं मिल नहीं पाती। उनके संकेत हमारी समझ में नहीं आते। और इसलिए स्वभावतः, पशु हमारे लिए यंत्रवत मालूम होता है।
फिर पौधे तो और भी दूर हो जाते हैं। इसलिए पौधों को तो कोई कठिनाई हम सोच ही नहीं सकते कि उनको पीड़ा होती होगी, कि दुख होता होगा, कि सुख होता होगा, कि वे भी कभी आनंदित होकर समाधिस्थ होते होंगे, कि कभी वे भी नाचते होंगे किसी खुशी में, और कभी उनके प्राणों से भी आंसू बहते होंगे। उनके आंसू का ढंग हमें पता नहीं, उनकी मुस्कुराहट हमें पता नहीं, उनकी भाषा का कोई संकेत भी हमारे पास नहीं है।
लेकिन इस मुल्क में हमने और-और रास्तों से भी मनुष्य इतर अस्तित्व में प्रवेश करने की कोशिश की है। महावीर इतने अभिभूत हो गए थे समस्त जीवन, जहां-जहां भी अस्तित्व है, वहां-वहां जीवन है, इससे; कि उन्होंने अपने साधुओं को कहा है कि गीली जमीन पर भी मत चलना। क्योंकि गीली जमीन पर अगर घास का अंकुर भी हो गया हो, तो उस अंकुर पर भी पैर पड़ जाना हिंसा है।

उन्होंने कहा है कि कच्चे फल को तोड़कर मत खाना। क्योंकि कच्चा फल जब तोड़ा जाता है, तो वृक्ष के प्राणों में वैसी ही पीड़ा होती है, जैसे कोई आपका हाथ तोड़ ले। जब वृक्ष से फल पक जाए और गिर जाए, तभी।
महावीर की अहिंसा शायद आने वाले पचास वर्षों में पुनर्स्थापित हो सके। क्योंकि विज्ञान जो खोज कर रहा है पौधों के भीतर संवेदना की, वह महावीर को सही सिद्ध कर जाएगी कि वे ठीक कहते थे; कि वहां भी प्राण इतना ही है, जितना हमारे भीतर। वहां भी संवेदना इतनी ही है, जितनी हमारे भीतर। वहां भी आत्मा इतनी ही है, जितनी हमारे भीतर।
कृष्ण कहते हैं, वृक्षों में मैं पीपल हूं।
आपको तो अंदाज नहीं होगा, लेकिन जो लोग--बहुत कम लोग जमीन पर वृक्षों
के साथ मेहनत किए हैं--जिन्होंने पता लगाने की कोशिश की कि वृक्षों में सबसे ज्यादा प्रतिभा कहां है। तो उन सबके नतीजे पीपल जाति के वृक्षों के करीब आते हैं। पीपल बहुत प्रतिभावान, बहुत प्रज्ञावान वृक्ष है। वृक्षों में प्रज्ञा सर्वाधिक उसमें प्रकट हुई है।
इसलिए पीपल की पूजा ऐसे ही आकस्मिक शुरू नहीं हो गई थी। वह पीपल के भीतर जो प्रज्ञा की संभावना है, उसके कारण शुरू हो गई थी।
कई बार जब विज्ञान खो जाते हैं, तो हमारे हाथ में अंधविश्वास रह जाते हैं। आज भी हम पीपल के नीचे अपने परमात्मा को स्थापित करते हैं, मूर्ति को निर्मित करते हैं। आज भी हम पीपल की पूजा करते हैं, आज भी पीपल को नमस्कार कर लेते हैं, उसको सिर झुका लेते हैं। लेकिन शायद हमें पता कुछ भी नहीं कि हम क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं! और अगर पता न हो, तो हमारे नमस्कार में कोई भी अर्थ नहीं रह जाता।
पीपल को नमस्कार का एक ही अर्थ है कि प्रज्ञा कहीं भी हो, नमस्कार के योग्य है। पीपल में हो, तो भी।
लेकिन हम तो अगर मनुष्य भी हमारे पड़ोस में प्रज्ञावान हो, तो उसको भी नमस्कार करने में पीड़ा अनुभव करेंगे। और पीपल को हम नमस्कार कर लेंगे! और अगर पड़ोसी में भी प्रज्ञा हो, उसमें भी ज्ञान का जन्म हुआ हो, तो भी हमारा सिर उसके सामने नहीं झुकेगा। तो साफ है कि हमें पता नहीं कि पीपल को नमस्कार करते वक्त हम क्या कर रहे हैं। पीपल को नमस्कार करते वक्त कौन-सा विज्ञान काम कर रहा है, कौन-सा स्मरण काम कर रहा है, उसका हमें कोई भी बोध नहीं है।
अगर वृक्षों में भी प्रज्ञा स्थापित होती हो, अगर उनमें भी कहीं बुद्धि का फूल खिलता हो, तो भी हमारा सिर झुकेगा, यह भाव है। लेकिन आदमी में अगर प्रज्ञा का फूल खिले, तो हमारा तो सिर वहां भी झुकने को राजी नहीं होता। अहंकार बाधा डालता है।
और मजे की बात यह है कि जो आदमी पीपल के सामने आसानी से झुक सकता है, वह आदमी के सामने आसानी से न झुक सकेगा। क्योंकि पीपल के सामने झुकने में ऐसा हमें ख्याल ही नहीं होता है कि हम किसी के सामने झुक रहे हैं। आदमी के सामने झुकने में पता चलता है, हम किसी के सामने झुक रहे हैं।
इसलिए पत्थर की मूर्ति के सामने सिर रख देना आसान है, जिंदा आदमी के सामने सिर रखना बहुत कठिन है। इसीलिए जब गुरु मर जाते हैं, तो मूल्यवान हो जाते हैं। जब जिंदा होते हैं, तब मूल्यवान नहीं होते। क्राइस्ट मर जाएं, तो ईश्वर हो जाते हैं। जिंदा हों, तो सूली पर लटकाए जाते हैं! बुद्ध जिंदा हों, तो हम पत्थर मारते हैं। और मर जाएं, तो हम उनकी इतनी प्रतिमाएं बनाते हैं कि सारी पृथ्वी को उनकी प्रतिमाओं से भर देते हैं! क्या होगा कारण? क्या होगा राज इसके भीतर?
अगर जीसस हमारे सामने खड़े हों, तो ठीक हमारे ही जैसा आदमी सामने होता है। सिर झुकाने में हमें पीड़ा मालूम पड़ती है; कष्ट होता है; अहंकार को चोट लगती है। लेकिन क्राइस्ट मौजूद न हों, बुद्ध खो गए हों, महावीर मौजूद न हों, कृष्ण मौजूद न हों, तो हमें कोई अड़चन नहीं होती, क्योंकि सामने कोई भी नहीं होता।
लेकिन ध्यान रहे, मुर्दा गुरु कितना ही बड़ा हो, उससे उतना लाभ नहीं लिया जा सकता, जितना छोटे से छोटे जिंदा गुरु से लिया जा सकता है।

लेकिन जिंदा गुरु के सामने झुकना बहुत मुश्किल बात है। और यह हालत यहां तक पहुंच गई है कि अब अगर किसी गुरु को आपको अपने चरणों में झुकाना हो, तो उसे एक ही काम करना चाहिए, उसे कहना चाहिए, कोई मेरा पैर न छुए। कोई मेरे सामने न झुके। बल्कि अच्छा तो यह हो कि वह आपके चरणों में झुके, तो आपको लगे कि हां, यह आदमी ठीक है।
एक मित्र मुझे मिलने आए थे। उन्होंने कहा कि मैं कृष्णमूर्ति से बहुत प्रभावित हुआ। मैंने कहा, कारण क्या है प्रभावित होने का? तो उन्होंने कहा, जब मैं उनके पास मिलने गया और उनके सामने बैठकर बात करने लगा, तो उन्होंने हाथ मेरे घुटने पर रख लिया और वे अपना हाथ मेरे घुटने पर सहलाते हुए मेरे पैर पर भी ले गए।
यह उन्होंने किसी प्रेम के क्षण में किया होगा। लेकिन उनको भी पता नहीं होगा कि इस आदमी के अहंकार को रस आया; इस आदमी के अहंकार को मजा आया। इधर मैंने देखा है कि कृष्णमूर्ति के पास, जिनको हम गहनतम अहंकारी कहें, उन लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई है। और उसका कुल एक कारण है। उसका कुल एक कारण है कि कृष्णमूर्ति कहते हैं, न मैं गुरु हूं, न मैं अवतार हूं, न मैं शिक्षक हूं, न मैं तुम्हें सिखाने वाला हूं। मैं तो कुछ भी नहीं हूं। लोग चालीस-चालीस साल से उनको सुन रहे हैं। चालीस साल से निरंतर उनसे सीख रहे हैं। लेकिन यह सुनकर उनके मन को बड़ी तृप्ति मिलती है कि नहीं, कृष्णमूर्ति किसी के गुरु नहीं हैं। इसका गहरा मजा यह है कि मैं किसी का शिष्य नहीं हूं।
यह बहुत मजे की बात है। कृष्णमूर्ति जीवनभर अहंकार से मुक्त होने की बात करते हैं। ठीक बात करते हैं। लेकिन जो वर्ग उनके आस-पास इकट्ठा होता है, वह गहन अहंकार वाले लोगों का वर्ग है। उसको मजा आता है। उसे लगता है कि बिल्कुल ठीक है।
यह वर्ग महावीर और बुद्ध के पास इकट्ठा कभी भी नहीं होगा। यह वर्ग कृष्ण के पास नहीं जा सकता। क्योंकि कृष्ण कहेंगे, सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज--सब छोड़, सब धर्म-वर्म छोड़ और मेरी शरण आ। यह वर्ग कहेगा, क्या आप कह रहे हैं? आपकी शरण और हम आएं! आपमें ऐसा क्या है? आप हैं कौन? यह वर्ग जो कृष्णमूर्ति के पास इकट्ठा है, यह कृष्ण के पास इकट्ठा नहीं हो सकता। लेकिन मजे की बात यह है कि इस वर्ग को कृष्ण के पास पहुंचने से ही लाभ होगा। इस वर्ग को कृष्णमूर्ति के पास लाभ नहीं हो सकता। जो वर्ग कृष्ण के पास इकट्ठा है, वह अगर कृष्णमूर्ति के भी पास हो, तो उसको लाभ हो सकता है।
आप मेरा मतलब समझे?
अगर विनम्र आदमी कृष्णमूर्ति के पास भी इकट्ठे हों, तो उनको लाभ हो सकता है। लेकिन अहंकार वाले आदमी के अहंकार को तो और पुष्टि मिल जाती है। यह हमारी सदी ईश्वर को इनकार करने की सदी है। इसलिए नहीं कि हमको पता
चल गया है कि ईश्वर नहीं है। बल्कि इसलिए कि हमारी सदी इस पृथ्वी के इतिहास में सबसे ज्यादा अहंकारग्रस्त, सबसे ज्यादा ईगोसेंट्रिक, अहंकार-केंद्रित सदी है। हम ईश्वर को भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमसे ऊपर कोई ईश्वर हो, इसको भी हम बर्दाश्त नहीं कर सकते।
पश्चिम में एक विचार चलता है, ह्यूमनिस्ट, मानवतावादियों का। वे कहते हैं, मनुष्य के ऊपर और कोई भी सत्य नहीं है। मनुष्य आखिरी सत्य है।
लेकिन जब कोई कहता है, मनुष्य आखिरी सत्य है, तो उसका अर्थ है कि अब प्रगति का कोई उपाय न रहा। जब कोई कहता है, मनुष्य आखिरी सत्य है, तो उसका अर्थ है कि अब ऊपर आंखें उठाने की कोई जगह न रही। उसका अर्थ है कि अब हम जो हैं, अब हम वही होने को आबद्ध हैं। अब इसमें कोई क्रांति, इसमें कोई विस्फोट, इसके पार जाने का अब कोई उपाय नहीं है।
अपने से श्रेष्ठतर की तरफ जो आंख है, वह पार जाने का उपाय है, द्वार है। और जिस दिन आदमी स्वयं के पार जाना बंद कर देता है, उसी दिन आदमी सड़ जाता है, नष्ट हो जाता है।

नीत्शे ने कहा है, जिस दिन आदमी की प्रत्यंचा पर, जिस दिन आदमी के धनुष
पर दूर और आदमी के पार जाने का बाण नहीं चढ़ेगा, उसी दिन आदमी समाप्त हो जाएगा।
सदा अपने से पार जाना है। लेकिन पार जाना तभी संभव है, जब पार जाने वाली किसी बात के प्रति हमारा समर्पण हो।
ये हिंदू बहुत अदभुत लोग थे एक अर्थ में, कि अगर पीपल में भी उन्हें कोई पार जाने वाली चीज दिखाई पड़ी, प्रज्ञा की कोई झलक मिली, कोई लौ, कोई छोटा-सा दीया वहां भी दिखाई पड़ा, तो उन्होंने वहां भी अपना सिर जमीन पर रख दिया।
कोई जरूरत नहीं है आदमी को पीपल के सामने झुकने की। क्या है जरूरत? और पीपल की क्या है सामर्थ्य कि आदमी को अपने सामने झुका ले! आदमी चाहे तो काटे और सारे पीपल पृथ्वी से अलग कर दे। लेकिन असहाय पीपल के सामने भी, जिसको काटकर हटाया जा सकता है, जब आदमी ने सिर झुकाया, तो कुछ गहरा कारण था। और वह गहरा कारण यह था कि समस्त वृक्षों में पीपल के पास एक अपनी तरह की बुद्धिमत्ता है। उस बुद्धिमत्ता से संबंध भी जोड़ा जा सकता है।
यूनानी चिकित्सा के जन्मदाता लुकमान ने एक लाख वनस्पतियों के गुणधर्म लिखे हैं। बड़ी चकित करने वाली बात है। क्योंकि लुकमान के पास न तो कोई प्रयोगशाला थी, न कोई रासायनिक उपाय थे, न यंत्र थे, जिनके माध्यम से एक लाख वनस्पतियों के गुणधर्म जाने जा सकें। लुकमान तो गांव-गांव भटकने वाला फकीर था। एक झोली के सिवाय उसके पास कुछ भी न था, जिसमें उसका भिक्षा का पात्र होता। इस लुकमान को एक लाख वनस्पतियों के गुणधर्मों का पता चलना, बड़ी हैरानी की बात है। और इसके पहले किसी को भी पता न था, इसलिए किसी दूसरे से पता चला हो, इसका उपाय नहीं है।
लुकमान ने खुद जो कहा है, वह भरोसे की बात नहीं थी। लेकिन अब उस पर भरोसा आ सकता है। इसलिए मैं अक्सर कहता हूं कि हमें जल्दी गैर-भरोसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि हो सकता है, बाद की खोज-बीन हमारे संदेहों को गिरा दे। लुकमान ने कहा है कि मैंने तो पौधों से ही पूछ लिया कि तुम्हारा गुणधर्म क्या है! और तो मेरे पास कोई उपाय न था। मैं तो पौधों के पास ही आंख बंद करके ध्यानस्थ होकर बैठ जाता था। उसी से पूछ लेता था कि तू किस बीमारी में काम आ सकता है, तू मुझे बता दे! पौधा जो बता देता, वह मैं लिख लेता था। ऐसे मैंने एक लाख पौधों से पूछ लिया।
और बड़ी हैरानी की बात है कि लुकमान ने जिस पौधे का जो गुणधर्म कहा है, हमारी श्रेष्ठतम विज्ञान की प्रक्रिया भी उससे भिन्न गुणधर्म नहीं बता पाती है! वही गुणधर्म उस पौधे के हैं! उसी बीमारी पर वह काम आता है!
तो इतिहासविदों को, चिकित्साशास्त्रियों को, सभी को हैरानी रही है कि कोई कारण तो दिखाई नहीं पड़ता है कि लुकमान को पता कैसे चला। लेकिन लुकमान जो कारण बताता है, वह भी मानने योग्य मालूम नहीं पड़ता। पौधे क्या बताएंगे! लेकिन अभी अमेरिका में इस सदी में एक आदमी हुआ, कायसी। और कायसी की घटना ने सिद्ध किया कि लुकमान ने ठीक कहा होगा। क्योंकि कायसी को अचानक एक क्षमता उपलब्ध हो गई। कायसी बहुत बीमार था। और चिकित्सकों ने इनकार कर दिया। सब तरह की चिकित्सा हुई, वह ठीक नहीं हुआ, नहीं हुआ। ठीक नहीं हुआ। उन्होंने इनकार कर दिया।
कायसी इतना दुखी हो गया कि आत्मघात का सोचने लगा। एक दिन वह आत्मघात
का सोचते-सोचते बेहोश हो गया। और बेहोशी में उसने जोर से चिल्लाकर कहा कि यह-यह दवा अगर मुझे दी जाए, तो मैं ठीक हो जाऊंगा। घर के लोगों ने वह दवा नोट कर ली। चिकित्सकों से पूछा। उन्होंने कहा, ऐसी दवा का हम नाम भी नहीं जानते! यह कौन-सी दवा है! और जब कायसी होश में आया, तो उसे भी कुछ पता नहीं था कि उसने कोई दवा का नाम लिया है।
दवा की खोज-बीन की गई। वह दवा मिल गई। लेकिन दवा ऐसी थी कि बीस साल पहले किसी ने स्विटजरलैंड में उसका पेटेंट करवाया था। लेकिन बनाई नहीं गई थी। फिर कभी बाजार में आई नहीं। सिर्फ पेटेंट था उसका। कभी बाजार में विज्ञापन नहीं हुआ। कभी चिकित्साशास्त्र की किताबों में उसका नाम नहीं आया। कभी किसी डाक्टर ने किसी मरीज को वह दी नहीं। किसी ने दवा बनाई थी।

पेटेंट करवाई। और फिर वह कभी बाजार में नहीं आ सकी। वह आदमी मर गया, जिसने दवा बनाई थी। लेकिन उसका फार्मूला पेटेंट था।
उस नाम का कायसी को पता चलना एक चमत्कार था। कायसी अमेरिका में था और स्विटजरलैंड में वह पेटेंट हुआ था। वह दवा बनाई गई और कायसी उससे ठीक हो गया। तब तो कायसी के हाथ में एक सूत्र लग गया। फिर तो उसने अंदाजन एक लाख मरीजों को ठीक किया। इस सदी की यह सबसे बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना थी। जैसे लुकमान वापस आ गया हो।
कायसी किसी भी मरीज को, उसका नाम, पता आप भेज दें। वह बेहोशी में, रोज बेहोश होगा, और रोज बेहोशी में वह जवाब दे देगा, कि यह-यह दवा! कायसी विद्यार्थी नहीं था चिकित्साशास्त्र का, दवाओं के नाम भी उसे पता नहीं थे। बीमारियों का उसे कोई अंदाज नहीं था। लेकिन बेहोशी में वह बोल देता था, यह-यह दवा उपयोग आएगी। और वह दवा सदा उपयोग में आती थी। और उस दवा से ऐसे मरीज ठीक हुए, जिनको चिकित्साशास्त्र ने ठीक करने की सामर्थ्य छोड़ दी थी।
कायसी को क्या हो रहा था? रहस्यपूर्ण मामला है। कायसी भीतर चेतना के किस तल पर उतर रहा था? उसका भी कुछ साफ नहीं है। कायसी को खुद भी कोई पता नहीं था। कायसी खुद भी होश में आकर डरता था कि मैं नहीं जानता, कोई ठीक होगा या नहीं होगा। और यह दवा लेने से फायदा होगा या नुकसान होगा, इसकी मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि बेहोशी में मैंने कहा है, उसकी क्या जिम्मेवारी? यह आप अपनी जिम्मेवारी पर ले सकते हैं!
क्या कायसी और बीमारियों के बीच कोई अंतर्संबंध स्थापित हो जाता था? क्या कायसी और दवाओं के बीच कोई अंतर्संबंध स्थापित हो जाता था? कई बार तो कायसी कहता था, फलां वृक्ष की पत्तियां और फलां वृक्ष का फूल और यह-यह मिलाकर दे देने से ठीक हो जाएगा। और आदमी उसको दे देने से ठीक हो जाते थे। क्या कायसी को वनस्पतियों से कोई अंतर्संबंध स्थापित हो जाता था?
कायसी की घटना ने पुनर्विचार का मौका दिया कि शायद लुकमान ठीक कहता हो। और तब भारतीय आयुर्वेद के संबंध में भी बहुत-सी बातें साफ हो सकती हैं। क्योंकि भारतीय आयुर्वेद के पास भी जो ज्ञान उपलब्ध हुआ है, वह ज्ञान सिर्फ प्रयोगशाला से उपलब्ध हुआ हो, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। उसमें बहुत-सा ज्ञान तो वनस्पतियों के साथ सीधे संबंध, अंतर्संबंध से उपलब्ध हुआ है। क्या कोई रास्ते हैं जिनसे हम वनस्पतियों से भी संबंधित हो सकते हैं? रास्ते हैं। आप अपने भीतर जितने गहरे उतरते हैं, उतने ही आप अस्तित्व में भी गहरे उतरते जाते हैं। आप अगर एक कदम नीचे उतरें, तो आप पशुओं से संबंधित हो सकते हैं। और एक कदम नीचे उतरें, तो आप वनस्पतियों से संबंधित हो सकते हैं। और एक कदम नीचे उतरें, तो आप खनिज पदार्थों से संबंधित हो सकते हैं। आप जितने अपनी गहराई में उतरते हैं, उतने ही आप अस्तित्व के गहरे तलों से संबंधित हो सकते हैं।
कृष्ण का यह कहना कि वनस्पतियों में मैं पीपल हूं, सिर्फ प्रतीक ही नहीं है; बहुत उदबोधक है।
दूसरा प्रतीक कृष्ण कहते हैं, देवर्षियों में मैं नारद मुनि।
नारद एक अनूठा चरित्र हैं। शायद विश्व की किसी भी माइथोलाजी में नारद जैसा चरित्र नहीं है। अगर नारद को हम समझना चाहें, तो दो-तीन बातें समझें, तो ख्याल में आए कि कृष्ण को नारद से अपना संबंध जोड़ने की क्या जरूरत पड़ी होगी!
नारद पहली बात तो गंभीर व्यक्तित्व नहीं है; गैर-गंभीर व्यक्तित्व है। नारद के व्यक्तित्व में गंभीरता बिल्कुल नहीं है। जीवन को एक खेल और नाटक से ज्यादा समझने की वृत्ति नहीं है। और जीवन को एक मनोरंजन, एक उत्सव, और वह भी बहुत गैर-गंभीर ढंग से।
तो नारद के साथ कृष्ण का यह कहना कि देवर्षियों में मैं नारद हूं, कुछ बातों की सूचना है। एक तो यह सूचना है कि कृष्ण, जो गंभीर ऋषि हैं, उनके साथ अपने को नहीं जोड़ेंगे। नहीं जोड़ने का कारण है। गंभीरता भी एक तरह की बीमारी है। सीरियसनेस एक तरह की बीमारी है। और गहरी बीमारी है।

गंभीर आदमी न तो हंस सकता है, न नाच सकता है, न जी सकता है। गंभीर आदमी जीता है मरा-मरा। गंभीर आदमी की जिंदगी एक क्रमिक मौत है। गंभीर आदमी होता है आत्मघाती, स्युसाइडल। गंभीरता उसके ऊपर होती है, जैसे मरघट उसके चारों तरफ हो, जिंदगी नहीं। और गंभीर आदमी न तो प्रार्थना कर सकता है, न पूजा कर सकता है। क्योंकि पूजा और प्रार्थना, सब जीवन के उत्सव से संबंधित हैं, जीवन की गंभीरता से नहीं।
गंभीर ऋषि हुए हैं। लेकिन जो गंभीर ऋषि है, उसका अर्थ यह हुआ कि अभी जीवन के आधे हिस्से से ही उसने अपने को एक माना है, शेष आधे हिस्से से नहीं। जीवन की समग्रता से उसका संबंध नहीं है। जीवन के अधूरे हिस्से से उसका संबंध है। जो ठीक है, उससे उसका संबंध है; जो साफ-सुथरा है, उससे उसका संबंध है; जो उपयोगी है, उससे उसका संबंध है। लेकिन जो गैर-उपयोगी है, जो मात्र खेल है, जो मात्र मनोरंजन है, उससे उसका संबंध नहीं है।
हम सोच भी नहीं सकते कि ऋषि झूठ बोल सके, लेकिन नारद बोल सकते हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि ऋषि किसी को उलझाए, लेकिन नारद उलझा सकते हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि ऋषि को इसमें कुछ रस आए, उलझाने में, लेकिन नारद को रस है। तो जो गंभीर हैं, वे तो नारद को ऋषि तक मानने को राजी न होंगे।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन की आपको न मालूम कितनी बार कहानियां कहता हूं। मुल्ला नसरुद्दीन सूफियों के लिए एक बड़े से बड़ा मिस्टिक है, बड़े से बड़ा रहस्यवादी है। अधिक लोग तो समझते हैं, वह एक मूढ़ है। कोई समझता है, वह एक जोकर है, एक लोगों को हंसाने वाला व्यक्ति है। लेकिन सूफी मानते हैं कि मुल्ला नसरुद्दीन एक गहरे से गहरा रहस्यवादी संत है। और वह है।
लेकिन जीवन को गंभीरता से लेना उसका ढंग नहीं है। और बहुत बार आपके ऊपर भी मजाक करना हो, तो वह अपने ऊपर मजाक करवाता है। और बहुत बार आपकी कोई कमजोरी प्रकट करनी हो, तो वह अपनी ही कमजोरी के द्वारा उसको जाहिर करता है। बहुत बार आप पर न हंसकर, वह खुद अपने को इस हालत में रख देता है कि आप उस पर हंसें। वह पूरी मनुष्य-जाति को एक कास्मिक जोक, एक विराट मजाक समझता है।
नारद भी उसी तरह का व्यक्तित्व हैं, दूसरे पहलू से। नारद के लिए जगत
एक मंच है, एक नाटक है। और कृष्ण का नारद को चुनना, कि देवर्षियों में मैं नारद हूं, कुछ बातों की सूचना देता है।
एक, कि जगत को एक खेल और एक नाटक से जो ज्यादा समझता है, वह आदमी धार्मिक नहीं है। यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि धार्मिक आदमी जगत को बड़ी गंभीरता से लेता है, बड़ी गंभीरता से! धार्मिक आदमी जगत के प्रति बड़ा गणित का हिसाब रखता है, कैलकुलेटिंग होता है। धार्मिक आदमी मजाक में भी असत्य का उपयोग नहीं कर सकता। और धार्मिक आदमी एक-एक कदम सम्हलकर रखता है कि कहीं कोई भूल-चूक न हो जाए। धार्मिक आदमी हंसता है, तो भी सोचता है, हंसना कि नहीं हंसना!
ईसाइयों ने तो मान रखा है कि जीसस कभी हंसे ही नहीं। कभी नहीं हंसे। मैं तो नहीं मान सकता कि यह बात सच होगी, लेकिन ईसाइयत ऐसा मानती है कि जीसस कभी हंसे नहीं। क्योंकि हंसना तो प्रोफेन, बहुत अपवित्र मालूम होता है। जीसस जैसा आदमी हंसे! नहीं।
तो ईसाइयों ने जीसस का जैसा चेहरा बनाया, उदास, जैसे सारी दुनिया का बोझ उनके ऊपर है। और ईसाई मानते भी हैं कि सारी दुनिया का पाप उन्होंने अपने ऊपर ले लिया, तो निश्चित ही भारी बोझ हो जाएगा! एक आदमी का पाप ही एक आदमी के ऊपर काफी बोझ है। और जीसस सारी दुनिया का पाप अपने ऊपर ले लिए हैं! और जीसस के द्वारा सारे जगत की मुक्ति का उपाय हो रहा है! तो भारी उपक्रम है, भारी बोझ है।
लेकिन मैं मानता हूं कि जीसस को समझा नहीं जा सका। जीसस को समझना मुश्किल पड़ा है। खुद जीसस के व्यक्तित्व को हम ठीक से देखें, तो हमें पता चलेगा कि यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती है। जीसस जरूर हंसते रहे होंगे। क्योंकि जीसस अच्छे खाने से भी प्रेम करते थे, सुंदर स्त्रियों को भी पसंद करते थे, भोजन में शराब भी थोड़ी ले लेने में उन्हें कोई हर्ज न था। ऐसा

आदमी न हंसा हो, यह माना नहीं जा सकता। लेकिन इनके आस-पास जरूर कुछ गंभीर लोग इकट्ठे हो गए होंगे।
एक मजे की बात है कि दुनिया में कुछ गंभीर लोग पैथालाजिकली बीमार हैं। और ऐसे लोग धर्म की तरफ बड़ी जल्दी आकर्षित होते हैं। उसका कारण है, क्योंकि जिंदगी में उनको कहीं कोई उपाय नहीं मिलता अपनी उदासी के लिए। तो बीमार तरह के लोग मंदिरों में, मस्जिदों में और चर्चों में इकट्ठे हो जाते हैं। जिंदगी तो हंसती मालूम पड़ती है, वहां उन्हें बिल्कुल जिंदगी बेकार मालूम पड़ती है। जहां भी फूल खिलते हैं, वहां वे बिल्कुल भाग खड़े होते हैं। जहां कोई हंसता है, प्रसन्न होता है, वहां से वे हट जाते हैं।
तो बीमारों और विक्षिप्तों के समूह कहीं न कहीं तो इकट्ठे होंगे। और धर्म उनके लिए बहुत सुगम उपाय है। क्योंकि धर्म के नाम पर उदास होना, एक रेशनलाइजेशन बन जाता है, एक बुद्धियुक्त बात बन जाती है। फिर उनकी उदासी को आप बीमारी नहीं कह सकते; उनकी उदासी तपश्चर्या हो जाती है। और उनके दुख को फिर आप यह नहीं कह सकते कि तुम नाहक दुखी हो। उनका दुख एक मेटाफिजिक्स, एक दर्शनशास्त्र बन जाता है। वे दुखी यूं ही नहीं हैं, बल्कि वे दुखी लोग इकट्ठे होकर सभी हंसने वालों को पापी कहेंगे।
और हालत यह है--यह सोचने जैसी है--कि दुखी लोग हमेशा मुखर होते हैं। पीड़ित और परेशान लोग बहुत बकवासी होते हैं। वे काफी बोलने वाले लोग होते हैं। वे अपने दुख को मुखर कर देते हैं, और वे दुख के आस-पास दर्शनशास्त्र खड़े कर लेते हैं। और जो हंसता है, उसे वे कंडेम, उसे वे निंदा कर सकते हैं। अगर हम दुनिया के धर्मों का इतिहास देखें, तो बड़ी दुर्घटना मालूम पड़ती है। महावीर बहुत प्रसन्न आदमी मालूम पड़ते हैं। उनके रोएं-रोएं से प्रसन्नता की झलक है। उनके रोएं-रोएं से जो हवा उठती है, वह एक गहरे आनंद की है। लेकिन उनके आस-पास धीरे-धीरे जो वर्ग इकट्ठा होता है, वह बिल्कुल ही रुग्ण है।
कृष्ण तो बांसुरी बजाते हुए मालूम पड़ते हैं। नाचते हुए मालूम पड़ते हैं। जिंदगी से उन्हें प्रेम है। जिंदगी एक उत्सव है। और जिंदगी अपने आप में एक आनंदपूर्ण खेल है। लेकिन बांसुरी बजाने वाले आदमी के आस-पास भी ऐसे लोग इकट्ठे होने लगते हैं, जो उदास हैं, रुग्ण हैं, जिंदगी से थके हैं, परेशान हैं। धीरे-धीरे ये लोग सख्ती से संगठन निर्मित कर लेते हैं। और सारे धर्म पैदा होते हैं आनंद से, और सारे धर्म दुखी लोगों के हाथ में पड़ जाते हैं।
धर्म जब भी पैदा होता है, तो किसी विराट आनंद से पैदा होता है; और जब भी धर्म संगठित होता है, तो गलत लोग उसे संगठित कर लेते हैं। असल में आनंदित आदमी तो संगठित होना भी नहीं चाहता। आनंदित आदमी तो अकेला भी काफी होता है। लेकिन दुखी आदमी समूह इकट्ठे करने लगते हैं। उदास आदमी समूह इकट्ठे करने लगते हैं।
कृष्ण का यह वक्तव्य बहुत विचारने जैसा है कि वे कहते हैं कि मैं देवर्षियों में नारद हूं।
जिंदगी एक नाटक है। और वही है ऋषि, जो जिंदगी की पूरी नाटकीयता को समझ ले। जीवन एक खेल है, एक लीला है। उसे जो गंभीरता से लेता है, वह बीमार है। जिंदगी को जो हल्केपन से ले ले, खेल से ज्यादा मूल्य का न माने... ।
इसे हम ऐसा समझें तो आसान हो जाए। एक आदमी धन इकट्ठा करता है, बड़ी गंभीरता से। एक-एक पाई-पाई जोड़ता है। वहीं जिंदगी लगी है उसकी। सभी कुछ यही है। अगर वह एक ढेर लगा लेगा धन का, तो उपलब्धि हो जाएगी जीवन की। बड़ी गंभीरता से धन इकट्ठा करता है। फिर पाता है कि सब व्यर्थ हो गया। जिंदगी तो हाथ से चली गई, ढेर रह गया मिट्टी का। तब वह इतनी ही गंभीरता से इसका त्याग भी करता है। तब वह इसे छोड़कर भागता है।
तो मैं ऐसे साधुओं को जानता हूं, जिनके सामने आप पैसा रखें, तो वे आंख बंद कर लेंगे। मैं ऐसे साधुओं को जानता हूं, जो पैसा नहीं छुएंगे।
एक संन्यासी मुझे मिलने आए थे। उस दिन मुझे समय न था, तो मैंने कहा, कल सुबह आप मिलने आ जाएं। उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल है। उनके साथ एक सज्जन और थे। उन्होंने कहा कि अगर ये कल सुबह आने को राजी हों, तो मैं आ जाऊं। तो

मेरी कुछ समझ में न पड़ा। मैंने कहा, इनकी क्या जरूरत है? आप अकेले आ जाएं! उन्होंने कहा, बात ऐसी है कि पैसा मैं खुद नहीं रखता। तो टैक्सी वगैरह को देने-लेने के लिए इनको, ये रखते हैं पैसा।
बड़े मजे की बात है। एक ही पाप को करने के लिए दो आदमियों की जरूरत पड़ रही है! पैसा दूसरा आदमी रखता है। वह साथ आए, तो वे आ सकते हैं, क्योंकि देने वगैरह के लिए! वे पैसा नहीं छूते!
कुछ पागल हैं जो पैसा ही छूते हैं, और किसी चीज को छूने में उन्हें कुछ
रस ही नहीं आता! एक पागल ये दूसरे हैं; शीर्षासन किया हुआ पागल हैं। वे उलटा कहते हैं, हम छू नहीं सकते पैसा। लेकिन गंभीर दोनों हैं। पैसे के बाबत दोनों गंभीर हैं, सीरियस हैं। पैसा बड़ी कीमती चीज दोनों को मालूम पड़ती है। दोनों को! एक को लगता है, पैसा मोक्ष है; एक को लगता है, पैसा नर्क है। लेकिन पैसा सिर्फ पैसा है, ऐसा दोनों को नहीं लगता।
नारद इस जिंदगी में इन दोनों तरह के आदमियों से अलग आदमी हैं। दोनों
से अलग आदमी हैं। जिंदगी कोई गंभीर बात नहीं है। जैसे कोई रामलीला के मंच पर राम बन गया हो, और रावण बन गया हो।
तो रावण भी कोई रामलीला के मंच पर ऐसा नहीं समझता कि मैं कोई पाप कर रहा हूं। पाप एक ही है कि अगर वह खेल ठीक से न खेल पाए; अगर अभिनय ठीक से न कर पाए, तो एक ही पाप है। रावण होने में कोई पाप नहीं है। और न राम ही यह समझते हैं कि हम कोई बड़ा भारी पुण्य कर रहे हैं। एक ही पुण्य है कि अभिनय कुशलता से हो जाए। मंच के बाहर उतरकर बात समाप्त हो जाती है। इस झगड़े को घर तक ले जाने की कोई जरूरत भी नहीं पड़ती। मंच के पीछे भी ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। जिंदगी को लेकिन हम गंभीरता से ले लेते हैं।
जिंदगी को जो अभिनय की तरह ले पाए, उसने गहनतम सत्य को जान लिया। फिर अतियों में चुनाव नहीं होता; फिर आदमी मध्य में चल सकता है। फिर उसे एक पागलपन छोड़कर दूसरे पागलपन में उतरने की जरूरत नहीं रहती। फिर वह दोनों पागलपन छोड़ सकता है, या दोनों पागलपन के बीच हंसते हुए गुजर सकता है। नारद इस जिंदगी को एक खेल समझते हैं; एक मंच से ज्यादा नहीं। उसका कोई आत्यंतिक मूल्य नहीं है, कोई अंतिम मूल्य नहीं है। इसलिए नारद के लिए अभिनय है सब कुछ। कृष्ण के लिए भी वही बात है। कृष्ण के लिए भी जीवन एक अभिनय है। कृष्ण के लिए भी जीवन कोई गंभीर बात नहीं है।
इसीलिए हमने इस मुल्क में कृष्ण को पूर्णावतार कहा। राम को हम पूर्णावतार नहीं कह सके। कारण है। राम थोड़े गंभीर हैं। मर्यादा है, तो गंभीरता होगी। गैर-गंभीर आदमी में मर्यादा नहीं हो सकती। गैर-गंभीर आदमी मर्यादा-तोड़क होगा। इसलिए राम को हमने अवतार कहा, लेकिन पूर्ण अवतार हम न कह सके। इसलिए हिंदू चिंतन की समझ बड़ी गहरी है। हमने अवतार कहा, हमने श्रेष्ठतम जगह पर राम को रखा। लेकिन फिर भी हमने कहा, वह अंश ही अवतार हैं। पूर्ण अवतार तो हम कृष्ण को ही कह सके, क्योंकि कोई मर्यादा नहीं है। कृष्ण से ज्यादा मर्यादा-मुक्त व्यक्तित्व पृथ्वी पर हुआ ही नहीं। और अब शायद कभी हो भी न सके। क्योंकि उतना मर्यादा-मुक्त व्यक्ति पैदा हो, इसके लिए एक बड़ा मर्यादा-मुक्त समाज चाहिए। नहीं तो आप पहचान ही नहीं सकेंगे। आप भला कहते हों कि हम कृष्ण के भक्त हैं। अभी चौपाटी पर खड़े होकर बांसुरी वगैरह बजाने लगें और दो चार सखियां नाचने लगें, आप पुलिस में खबर कर दोगे, कि यह आदमी भ्रष्ट किए दे रहा है! यह तो सारा आचरण समाप्त हो जाएगा। और यह तो नीति-नियम का क्या होगा? फासला लंबा है अब, इसलिए आपको अड़चन नहीं होती।
लेकिन जिन लोगों के बीच कृष्ण पैदा हुए थे, वे लोग भी बहुत अदभुत रहे होंगे। इस आदमी में भी वे कुछ देख सके। इस मर्यादा-मुक्त, मर्यादा-शून्य व्यक्तित्व में भी उन्हें कोई झलक मिल सकी। वे लोग भी साधारण न रहे होंगे। कृष्ण को हमने कहा पूर्ण अवतार, इसलिए कि जीवन को उसकी समग्रता में उन्होंने किया है स्वीकार--समग्रता में। किसी चीज का कोई अस्वीकार नहीं है। जिसको हम आमतौर से बुरा कहें, कृष्ण के लिए उसका भी कोई अस्वीकार नहीं है।

इसलिए जो लोग कृष्ण के जीवन में कंसिस्टेंसी खोजते हैं, संगति खोजते हैं, वे बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं। और इसलिए कृष्ण को पूरा स्वीकार--कृष्ण जैसा आदमी होना तो कठिन है--कृष्ण को उनका पूरा का पूरा स्वीकार करने में भी हमारी हिम्मत नहीं होती।
अगर हम सूरदास से पूछें, तो वे कृष्ण के बालपन को ही स्वीकार करते हैं। बाद की अवस्था में सूरदास जरा पीछे हट जाते हैं, झिझक जाते हैं। क्योंकि अगर बच्चा है और स्त्रियों से छेड़खानी कर रहा है, तो हम बर्दाश्त कर सकते हैं; समझ में आ जाता है; छोड़ा जा सकता है। लेकिन जवान! तो सूरदास को भी चिंता होती है कि यह बात तो थोड़ी आगे हो जाएगी!
केशव ने हिम्मत की है कृष्ण के युवा व्यक्तित्व को पकड़ने की, लेकिन लोग केशव को गाली देते हैं। और कृष्ण के भक्त कहते हैं, केशव ने सब खराब कर डाला। लोग तो यह कहते हैं कि केशव ने अपने ही विचारों को कृष्ण में डाल दिया। यह बात सच नहीं है। यह बात सच नहीं है। केशव ने तो कृष्ण के उस युवा व्यक्तित्व को उभारा है, जो सूर से बच गया। लेकिन केशव की भी तकलीफ वही है। वे भी एक ही हिस्से को, उनके युवा प्रेम की कथा को, उनके रास को ही उभार पाते हैं, बाकी हिस्से उनको भी मुश्किल हो जाते हैं।
गांधी को कृष्ण से बहुत प्रेम था, गीता से बहुत प्रेम था। लेकिन एक बड़ी अड़चन थी उनको, कि उसमें हिंसा का मामला है। और उससे वे कभी संगति नहीं बिठा पाए। वे कहते थे कि गीता मेरी माता है, लेकिन वे कभी संगति नहीं बिठा पाए; वह सौतेली माता ही रही। संगति नहीं बिठा पाए इसलिए कि इस हिंसा का क्या होगा? गांधी की अहिंसा से इसका मेल कहां है? तो एक ही तरकीब थी--उसको मैं तरकीब कहता हूं--तो गांधी कहते थे, यह सिर्फ प्रतीक है युद्ध। यह वास्तविक युद्ध नहीं है। बुराई और भलाई के बीच प्रतीक है। इस भांति वे अपने को समझा लेते थे कि कृष्ण हिंसा को कोई सहारा नहीं दे रहे हैं। लेकिन यह बात ठीक सच नहीं है। यह महाभारत प्रतीक नहीं है। यह महाभारत वास्तविक युद्ध है। इस वास्तविक युद्ध में हिंसा हुई है। उसी हिंसा से कृष्ण भागते हुए अर्जुन को रोक रहे हैं। उसी हिंसा से डरकर अर्जुन भाग रहा है। अर्जुन को अगर रास्ते में कहीं गांधीजी मिल जाते, तो सारी कथा दूसरी होती। कृष्ण मिल गए, इसलिए सारा का सारा मामला दूसरा हुआ। पूरा इतिहास और हुआ। गांधीजी कभी भी नहीं स्वीकार कर पाए मन में कि यह युद्ध और हिंसा का क्या हो।
गांधीजी की तकलीफ कठिन थी। नब्बे परसेंट वे जैन थे और दस परसेंट हिंदू थे। गुजरात ऐसे भी नब्बे परसेंट जैन है, हिंदू हो तो भी। बचपन से गांधी के मन पर जो प्रभाव था, वह जैन का था, जैन साधु का, खासकर राजचंद्र का प्रभाव था। गांधी ने अपने तीन गुरुओं में राजचंद्र को गिनाया है। राजचंद्र को, रस्किन को, टाल्सटाय को, तीनों जैनी हैं। दो तो ईसाई हैं, लेकिन उनकी भी बुद्धि बिल्कुल जैन है। यह प्रभाव था, और फिर गीता पर प्रेम था हिंदू का।
इसलिए मामला ऐसा हो गया कि इन दोनों के बीच सारी दुविधा खड़ी हो गई और असंगति मालूम पड़ती रही। इसलिए फिर उन्होंने एक रास्ता निकाल लिया कि यह प्रतीक युद्ध है। युद्ध कभी हुआ नहीं। और कृष्ण कैसे हिंसा की बात कर सकते हैं! यह तो बुराई को मारने की बात है।
लेकिन यह बात ठीक नहीं है। यह गांधीजी की अपनी व्याख्या है, खुद की दुविधा को हल कर लेने की।
कृष्ण के साथ यह कठिनाई सदा रही है। कृष्ण ने वायदा किया था कि मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा युद्ध में, और फिर शस्त्र उठा लिया। वचन भंग हो गया! कृष्ण जैसे आदमी से हम वचनभंग की आशा नहीं करते। जब कहा था कि शस्त्र नहीं उठाएंगे, तो नहीं उठाना था। फिर शस्त्र उठा लिया! इनकंसिस्टेंसी मालूम पड़ती है। असंगत है यह आदमी!
लेकिन हमारे सोचने का ढंग गंभीर है, इसलिए मालूम पड़ती है। कृष्ण के सोचने का ढंग गैर-गंभीर है। यह खेल की बात है। इसमें बहुत गंभीर कृष्ण नहीं हैं। इसमें गंभीर होने का उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन पर एक अदालत में मुकदमा चला और मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम्हारी उम्र कितनी है? उसने कहा, चालीस साल। उस मजिस्ट्रेट ने कहा, लेकिन जहां तक मेरा ख्याल है, पांच साल पहले भी तुम पर मुकदमा चला था, और तब भी तुमने कहा था चालीस साल! तो नसरुद्दीन ने कहा कि मैं अपने वचन पर दृढ़ रहना जानता हूं। मैं कोई ऐसा आदमी नहीं हूं कि ऐसे बदल जाऊं। जो एक दफा कह दिया, कह दिया!
यह एक संगति है! कृष्ण में ऐसी संगति न खोजी जा सकेगी। कृष्ण पल-पल असंगत हैं। अगर एक ही कोई संगति है उनमें, तो वह यह है कि वह सब असंगतियों के बीच भी एक तालमेल है। अपनी असंगतियों में वे बिल्कुल संगत हैं। और किसी चीज में संगत नहीं हैं।
यह जो विराट, यह जो बहुमुखी, बहुआयामी, बहुत दिशाओं में फैला हुआ व्यक्तित्व है, इसको हमने पूर्ण कहा। राम तक को हम अपूर्ण ही कहेंगे, आंशिक कहेंगे। राम गंभीर हैं, अति गंभीर हैं।
कृष्ण का यह जो गैर-गंभीर, लीलामयी व्यक्तित्व है, उसके ही प्रतीक के लिए उन्होंने देवर्षियों में नारद को चुना।
गंधर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में कपिल मुनि हूं।
कपिल के संबंध में थोड़ी-सी बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं। कृष्ण
को समझना आसान होगा।
जगत में दो निष्ठाएं हैं। एक निष्ठा का नाम है योग, और एक निष्ठा का नाम है सांख्य। यह बड़ा हैरानी का मालूम होगा, क्योंकि कृष्ण को हम योगेश्वर कहते हैं। यह फिर असंगत बात है। कृष्ण ने जो कपिल को चुना, कपिल का योग से कोई संबंध नहीं है। कपिल योग-विरोधी हैं।
दो निष्ठाएं हैं। एक है योग। योग का मानना है कि सत्य को, परमात्मा को पाना हो, तो कुछ करना पड़ेगा। कोई अभ्यास, कोई साधन, कोई साधना, कोई प्रक्रिया, कुछ क्रिया से गुजरना पड़ेगा। बिना क्रिया से गुजरे हुए उस परमात्मा तक नहीं पहुंचा जा सकता। क्योंकि आदमी है अशुद्ध, तो किसी आग से गुजरकर उसे शुद्ध होना पड़ेगा। माना कि छिपा है उसमें वह सत्य, लेकिन वह सत्य ऐसे ही है जैसे कि सोना मिट्टी से मिला हुआ पड़ा हो। उस मिट्टी को छानकर अलग करना पड़ेगा। जलाना पड़ेगा, सोने को आग में तपाना पड़ेगा, ताकि कचरा जल जाए और शुद्ध स्वर्ण निखर आए। कुछ करना पड़ेगा। योग का मानना है, बिना कुछ किए कुछ भी नहीं हो सकता।
सांख्य का मानना इसके बिल्कुल विपरीत है। सांख्य का मानना है कि कुछ करने का सवाल ही नहीं है, मात्र जानना काफी है। सिर्फ जानना काफी है, करने का कोई सवाल नहीं है। यह कोई सोना नहीं है, जो अशुद्ध हो गया है। आदमी परमात्मा है, सिर्फ विस्मृत हो गया स्वयं को। इसे कुछ शुद्ध नहीं होना है। आदमी शुद्ध परमात्मा ही है। कोई अशुद्धि उसमें नहीं हो गई। और सांख्य का कहना है, अगर परमात्मा भी अशुद्ध हो सके, तो फिर इस दुनिया में शुद्धि का कोई उपाय नहीं है। परमात्मा का तो अर्थ ही है कि जो अशुद्ध हो ही न सके। सिर्फ विस्मरण है यह, अशुद्धि नहीं है।
इस फर्क को ठीक से समझ लें। यह विस्मरण है। आप एक नशे में हैं और भूल
गए हैं कि आप कौन हैं। या आप नींद में हैं और कोई ने आपको चौंकाकर उठा दिया और आपको याद न आया कि आप कौन हैं। या आप अपने को कुछ और समझ बैठे हैं और आपने अपना तादात्म्य वही बना लिया और आपको ख्याल में न रहा कि आप कौन हैं। यह सिर्फ एक विस्मरण है।
विवेकानंद कहते थे--पुरानी कथा है ईसप की, पंचतंत्र में भी है--कि एक सिंहनी छलांग लगाती थी एक पहाड़ी टीले से दूसरे टीले पर। वह गर्भिणी थी, और बीच छलांग में उसको बच्चा हो गया। नीचे भेड़ों का एक झुंड गुजरता था, वह बच्चा उस भेड़ों के झुंड में गिर गया। भेड़ों ने उसे बड़ा कर लिया। वह बच्चा बड़ा हो गया।
वह बच्चा था तो शेर का, लेकिन उस बच्चे को यही पता था कि मैं भेड़ हूं। भेड़ों के बीच बड़ा हुआ था, भेड़ों ने बड़ा किया था। कोई कारण भी नहीं था उसको पता चलने का कि वह सिंह है या शेर है या कुछ और है। लेकिन वह बड़ा होने लगा।
भेड़ों से ऊपर निकल गया। फिर भी उसकी मान्यता तो भेड़ों की ही रही। भेड़ें

यही सोचती थीं कि कुछ शरीर इसका थोड़ा लंबा हो गया। वह भी यही सोचता था। भेड़ों जैसा ही चलता था, भेड़ों के झुंड में ही घसर-पसर होता था। भेड़ें जहां मुड़ जातीं, भेड़ों का नेता, वहीं वह भी मुड़ जाता था। भेड़ों जैसी ही आवाज करता था।
एक दिन मुसीबत में पड़ा। भेड़ों के इस झुंड पर एक दूसरे सिंह ने हमला किया। भेड़ें भागीं। वह दूसरा सिंह यह देखकर बड़ी मुश्किल में पड़ा कि भेड़ों के बीच में एक सिंह भी भाग रहा है! न तो भेड़ें उससे भयभीत हैं, न उस सिंह को ऐसा लगता है कि भेड़ों के साथ भाग रहा है! वह दूसरा सिंह बड़ी मुश्किल में पड़ गया।
उसने पीछा किया। बामुश्किल वह इसको पकड़ पाया। भेड़ बन गए सिंह को बामुश्किल पकड़ पाया। पकड़ा, तो वह जैसे भेड़ें मिमियाने लगें, वैसा मिमियाने लगा। उस दूसरे सिंह ने कहा कि तू यह कर क्या रहा है? वह दूसरा सिंह उसे पकड़कर नदी के किनारे ले गया और उसने कहा कि जरा अपने चेहरे को पानी में झांक और मेरे चेहरे को भी साथ में पानी में देख! उस भेड़ बन गए सिंह ने पानी में झांककर दोनों चेहरे देखे और उसके भीतर से सिंह की गर्जना निकल गई। वह सिंह हो गया।
सांख्य कहता है, आदमी ऐसे ही भ्रम में है। कुछ अशुद्ध नहीं हो गया है, सिर्फ पहचान खो गई। तो उस पहले सिंह को, भेड़ बन गए सिंह को शुद्ध नहीं होना पड़ा। न काट-पीट करनी पड़ी; न कोई आसन, न कोई ध्यान, कुछ भी नहीं करना पड़ा। सिर्फ इतना बोध, स्मरण, रिमेंबरिंग कि मैं कौन हूं। सारा काम हो गया। कपिल सांख्य की दृष्टि के आधार हैं। यह बहुत मजे की बात है कि कृष्ण कहें कि मैं मुनियों में कपिल मुनि हूं। कृष्ण भी गहरे में तो यही मानते हैं और जानते हैं कि आदमी केवल भूल गया है, मात्र भूलने की दुर्घटना हुई है।
लेकिन ऐसे बहुत कम लोग हैं, जो पुनर्स्मरण कर सकें। यह भी तो हो सकता
है कि जब उस दूसरे सिंह को यह ख्याल आया कि एक सिंह भेड़ बना जा रहा है, तो वह इस सिंह को पकड़ भी ले--इस कथा में तो यह बात नहीं है--वह सिंह जाने से इनकार ही कर दे नदी तक। संभावना यही होनी चाहिए। कहानी वाले ने ख्याल नहीं किया; ईसप ने या पंचतंत्र ने ख्याल नहीं किया। संभावना तो यह होनी चाहिए कि वहीं बैठ जाए और इनकार कर दे जाने से। या चला भी जाए, तो आंख बंद कर ले घबड़ाहट से। पानी में देखे ही नहीं। तब फिर कुछ करना पड़े; तब इसको नदी तक घसीटना भी पड़े; तब शायद जबर्दस्ती इसकी आंखें भी खोलना पड़ें। तब ज्ञान काफी न हो, कुछ करना भी जरूरी हो जाए।
सौ में से निन्यानबे लोगों के लिए सांख्य का रास्ता सही मालूम हो, तो
भी चलने योग्य मालूम नहीं हो सकता। निन्यानबे प्रतिशत लोगों को तो कुछ करना ही पड़ेगा। उस करने से ज्ञान नहीं होता, लेकिन उस करने से आदमी नदी के किनारे तक पहुंच जाता है। उस करने से स्मरण नहीं आता, लेकिन उस करने से आंख खुल जाती है और स्मरण की संभावना प्रबल हो जाती है। जो चाहे, वह तो इसी वक्त भी स्मरण कर ले।
सुना है मैंने, झेन फकीर हुआ, रिंझाई। जब वह अपने गुरु के पास गया, तो उसके गुरु ने उससे पूछा कि तू कुछ होने में उत्सुक है या कुछ करने में? अगर तू कुछ करने में उत्सुक है, तो मैं तुझे कुछ क्रियाएं बताऊं। तू दस-पांच साल क्रियाएं कर। और अगर तू होने में उत्सुक है, तो इसी वक्त भी हो सकता है।
रिंझाई ने कहा कि जब इसी वक्त हो सकता हूं, तो फिर इसी वक्त हो जाने की कोई व्यवस्था मुझे दें। कैसे मैं इसी वक्त हो जाऊं?
तो उसके गुरु ने कहा, जो कैसे पूछता है, वह क्रिया के लिए पूछ रहा है। तुझे दस-पांच साल क्रिया करनी पड़ेगी। जो पूछता है कैसे? इसका मतलब है क्रिया। क्या करूं? उसके गुरु ने कहा, तू हो सकता हो परमात्मा, इसी वक्त हो जा। और कुछ करने की जरूरत नहीं है। उसने कहा कि मैं कैसे हो जाऊं? आप कहते हैं, इससे मैं कैसे हो जाऊं!
तो उसके गुरु ने उसे क्रियाएं दीं, साधनाएं दीं। दस साल तक उसने निरंतर साधना की। और दस साल के बाद जब वह गुरु के सामने आया, तो उसने कहा कि

अभी और करना है कि होना है? उसने कहा, अब काफी हो गया दस साल। मैं करने से थक भी गया। और करने से कुछ होता भी नहीं। तो उसके गुरु ने कहा, अगर तुझे यह समझ में आ गया हो कि करने से कुछ भी नहीं होता, तो तू अभी इसी वक्त हो सकता है। लेकिन कैसे मत पूछना!
और कथा यह कहती है कि जैसे ही गुरु ने हाथ ऊपर उठाया और कहा कि इसी वक्त हो सकता है, कैसे मत पूछना! रिंझाई ज्ञान को उपलब्ध हो गया।
रिंझाई से बाद में लोग पूछते थे कि तुमने क्या किया उस क्षण में, जब गुरु ने अंगुली ऊपर उठाई! उसने कहा, किया कुछ भी नहीं। लेकिन दस साल कर-करके थक गया। परेशान हो गया। करना भी व्यर्थ है; सिर्फ स्मरण ही सार्थक है। उस क्षण में सारा करना मुझसे गिर गया, और मुझे याद आया कि मैं ईश्वर हूं। होने का क्या सवाल है! करने का क्या सवाल है! यह स्मरण आते ही सारे जीवन की धारा बदल गई। अंधेरे की जगह प्रकाश हो गया। शरीर की जगह आत्मा हो गई। सीमाओं की जगह असीम हो गया।
लेकिन यह घटना मुश्किल से घटती है कभी; कभी लाख में एकाध आदमी को, कि कोई सुनकर हो जाता है। नहीं तो करने से गुजरना पड़ता है। वह करने से गुजरना जो है, उससे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। लेकिन हम उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां ज्ञान सहज फलित हो सकता है।
लेकिन कृष्ण ने ध्यान रखा है। उन्होंने कहा कि मैं कपिल मुनि हूं। आत्यंतिक सत्य तो यही है, परम सत्य तो यही है, परम दृष्टि तो यही है कि आपको कुछ भी करना नहीं है।
लेकिन हमारी भी मुसीबत है। हम इस जगत में जो भी पाते हैं, करके ही पाते हैं। धन पाना हो, तो कुछ करके पाते हैं। यश पाना हो, तो कुछ करके पाते हैं।
बिना किए न तो यश मिलता है, न बिना किए धन मिलता है। विद्या-बुद्धि, कुछ भी पाते हों, करके पाते हैं।
इस जगत में जो भी मिलता है, उसके लिए चलना पड़ता है, करना पड़ता है। इसलिए हमारी पूरी की पूरी समझ करने से बंध जाती है। हम यह सोच ही नहीं सकते कि कोई ऐसी चीज भी हो सकती है, जो न करें और मिल जाए। कुछ न करें, शांत बैठ जाएं, और मिल जाए। कुछ न करें, मौन हो जाएं, और मिल जाए।
लेकिन ऐसी भी एक चीज है और उसी चीज का नाम धर्म है--आत्मा कहें, भगवत्ता कहें, जो नाम देना चाहें। एक सत्य ऐसा भी है, जो आपके करने से नहीं मिलता।
और ध्यान रहे, जो आपके करने से मिलेगा, वह आपसे छोटा होगा। आप करके पाएंगे, वह आपसे बड़ा नहीं हो सकता। इसलिए परमात्मा करने से नहीं मिल सकता। क्योंकि अगर करने से मिलता हो, तो वह भी एक कमोडिटी, तो वह भी एक चीज, वस्तु होगी, जो आपने कर ली। तिजोड़ी में जैसे और चीजें रख दी हैं लाकर, वैसे ही एक दिन परमात्मा को भी लाकर रख दिए! वह आपकी मुट्ठी की चीज होगी, अगर आपके करने से मिल जाए। क्षुद्र हो जाएगी।
एक बात तय है कि आप जो भी करेंगे, वह आपसे बड़ा नहीं हो सकता। आप जो भी करके पाएंगे, वह आपसे छोटा होगा। अगर आपको अपने से बड़े को पाना है, तो करने से मिलने वाला नहीं है, खोने से मिलेगा। अपने को खोने से मिलेगा। अपने को छोड़ने से मिलेगा। कर्ता का भाव ही छोड़ देना पड़ेगा, कर्म भी छोड़ देना पड़ेगा। चुप बैठकर; शांत बैठकर।
एक ही है तीर्थयात्रा। जब कोई सब यात्राएं बंद कर देता है--शरीर की भी
और मन की भी--तब तीर्थयात्रा शुरू हो जाती है। एक ही है मार्ग उस तक पहुंचने का कि जब कोई सब मार्ग छोड़ देता है, और अपने ही भीतर ठहर जाता है। एक ही है दिशा उसकी, जब कोई सारी दस दिशाओं को छोड़ देता है, और ग्यारहवीं दिशा में भीतर ठहर जाता है, कोई यात्रा नहीं करता। यह है सांख्य। और दो ही जगत की निष्ठाएं हैं, योग और सांख्य।
कृष्ण कहते हैं, मैं सांख्य हूं, मैं कपिल हूं। समस्त मुनियों में, सिद्धों में, मैं कपिल हूं।
सिद्ध कहते हैं उन्हें, जिन्होंने पा लिया। पाने वाले दो तरह के लोग हैं, जिन्होंने कुछ कर-करके पाया, और जिन्होंने बिना किए पाया। कृष्ण कहते हैं, मैं वही हूं, जिन्होंने बिना किए पाया। करके पाया, तो उसका अर्थ है कि

बड़ा गहन अंधकार रहा होगा। बड़ा गहन अंधकार रहा होगा। बड़ा गहन अहंकार रहा होगा, इसलिए कर-करके।
बुद्ध के जीवन से एक घटना आपको कहूं, तो ख्याल में आ जाए कि क्या है मतलब! बुद्ध ने महल छोड़ा, राज्य छोड़ा, छः वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की। जो भी किया जा सकता था, वह सब किया। लेकिन हर करने के बाद पाया कि उपलब्धि नहीं हुई। जिस गुरु के पास गए, उसी गुरु को मुसीबत में डाल दिया, क्योंकि गुरु ने जो-जो कहा... ।
गुरुओं को एक सुविधा रहती है उन लोगों की वजह से, जो केवल सुनते हैं और करते नहीं। उनसे बड़ी सुविधा रहती है। गुरु को अड़चन नहीं आती उन लोगों से, जो रोज सुनकर चले जाते हैं और कभी करते नहीं। क्योंकि वे झंझट नहीं देते। यह बुद्ध जिस गुरु के पीछे पड़ गया, वही गुरु दिक्कत में आ गया। क्योंकि गुरु ने जो कहा, वही इसने करके दिखाया। और करने के बाद कहा कि अभी मुझे मिला नहीं! और इसके करने में तो इतनी निष्ठा थी, और इसका करना तो इतना वास्तविक था कि गुरु भी यह हिम्मत नहीं जुटा सकता था कहने की कि तुमने गलत किया या पूरा नहीं किया। गुरु से भी ज्यादा कुशल था इसका करना। तो गुरु हाथ जोड़ लेते। गौतम को कहते कि जो मैं जानता था, वह मैंने करवा दिया। अगर इससे नहीं होता, तो मुझे क्षमा करो, कहीं और जाओ!
अगर आप करने लगें, तो दुनिया में गुरुओं की संख्या एकदम कम हो जाए। एकदम! दुनिया में जो इतनी भीड़ है गुरुओं की, वह आपकी कृपा से है। जो-जो गुरु कहते हैं, अगर आप करके बता दें, तो गुरु भाग खड़े हों, क्योंकि उनको भी पता चल जाए कि कुछ हो नहीं रहा है। आप कभी करते नहीं, इसलिए गुरु की कभी परीक्षा नहीं हो पाती कि वह जो कह रहा है, वह हो भी सकता है या नहीं। वह कहे चला जाता है, क्योंकि कोई करने वाला भी नहीं आता।
बुद्ध से गुरुओं ने क्षमा मांगी। वह बड़ी महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा
कि क्षमा करो। और अगर कभी तुम्हें मिल जाए, तो हमें भी खबर कर देना। लेकिन अब यहां से तुम जाओ! क्योंकि हम जो जानते थे, हम जो करा सकते थे, वह हमने करा दिया। और तुमसे ज्यादा योग्य शिष्य हमने कभी पाया नहीं। लेकिन मजबूरी है, इसके आगे हमें कुछ पता नहीं।
तो बुद्ध, जितने गुरु उस समय उपलब्ध हो सकते थे बिहार में, एक-एक गुरु
के द्वार पर भटक लिए। छः साल में उन्होंने सब कर डाला, जो भी किसी ने कहा। कभी नहीं कहा कि इससे क्या होगा! किया पहले। और जब नहीं हुआ तो कहा कि कर लिया मैंने पूरा और हो नहीं रहा है।
छः साल के अथक श्रम के बाद वे उस जगह पहुंच गए, जहां सांख्य शुरू होता है, योग समाप्त हो जाता है। छः साल के बाद थककर एक दिन सुबह वे स्नान करने निरंजना नदी में उतरे। शरीर बिल्कुल कृश हो गया है। उपवास लंबे किए हैं। अनाहार किया है। शरीर को तपाया है, सुखाया है, जलाया है। निरंजना से निकलते वक्त वे इतने अशक्त थे कि नदी की धार को पार न कर सके और तट पर चढ़ने में मुसीबत मालूम पड़ी। पैर जवाब दे गए। तो एक वृक्ष की जड़ को पकड़कर रुके रहे।
उस क्षण उन्हें ख्याल आया कि शरीर को सताकर, गलाकर, सब करके कुछ पाया नहीं। और हालत यह हो गई कि इस छोटी-सी नदी निरंजना को मैं पार नहीं कर पाता हूं, और भवसागर को पार करने का विचार कर रहा हूं! यह नहीं होगा। किसी तरह नदी के बाहर निकले।
तो जिस तरह छः साल पहले उन्होंने राज्य छोड़ दिया था, महल छोड़ दिया था,
उस दिन उन्होंने करना छोड़ दिया। योग छोड़ दिया। त्याग छोड़ दिया। उस दिन उन्होंने सब जो छः साल में किया था, वह भी छोड़ दिया। भोग पहले छोड़ चुके थे, त्याग भी छोड़ दिया। धन की दौड़ पहले छोड़ चुके थे, धर्म की दौड़ भी छोड़ दी। उस दिन उन्होंने तय कर लिया कि अब कुछ करना ही नहीं है। अब मैं जो हूं, हूं। और नहीं हूं, तो नहीं हूं।
मिला तो नहीं करने से। तो यह तो वे सोच ही नहीं सकते थे कि न करने से मिल जाएगा। जब करने से नहीं मिला, तो यह तो ख्याल भी नहीं आ सकता था कि न करने से मिल जाएगा। इसका तो उन्हें भी पता नहीं था। छोड़ दिया। लेकिन एक बात तय हो गई कि अब कुछ करना नहीं है। अब जो है, ठीक है। स्वीकार है। जैसा

भी हूं। अज्ञानी, तो अज्ञानी। अंधेरा, तो अंधेरा। पाप, तो पाप। जो भी है, जैसा भी है, स्वीकार है। अब मुझे कुछ पाना नहीं, कुछ खोजना नहीं।
ऐसी चित्त की दशा बड़ी अनूठी है। उस रात जब वे सोए, तो शायद जमीन पर इस तरह की शांति में बहुत कम लोग कभी-कभी सोते हैं। कोई तनाव ही न था। कुछ पाना नहीं था, तो कोई तनाव भी नहीं था। सुबह उठकर पाने की कोई आकांक्षा ही नहीं थी। सुबह हो तो ठीक, न हो तो ठीक। भविष्य मिट गया। उस रात, बुद्ध ने बाद में कहा है, कि मैं पहली दफा सोया, एक फूल की तरह, हल्का। कुछ नहीं था। न पीछा रहा; सब अतीत मिट गया; सब बेकार था। और सब भविष्य मिट गया, क्योंकि अब कुछ पाने की इच्छा न थी।
सुबह पांच बजे भोर उनकी नींद खुली। जब भीतर कोई भी तनाव न हो, तो आंख निर्मल हो जाती है। जब भीतर कोई तनाव न हो, तो आंखों पर से सब धुआं खो जाता है। आंख शुद्ध हो जाती है, साफ हो जाती है, पारदर्शी हो जाती है। आंख खुली उनकी। भोर का आखिरी तारा डूब रहा था। उस तारे को डूबता हुआ वे देखते रहे, देखते रहे। तारा डूब गया, और उनको ज्ञान हो गया।
बुद्ध को ज्ञान हुआ, योग भी छोड़ देने पर। क्योंकि योग भी एक तनाव है। क्रिया भी एक तनाव है। कुछ करते रहना भी एक तनाव है; एक बेचैनी है। तो बुद्ध ने कहा है कि मैंने पाया तब, जब पाने की भी इच्छा मेरे भीतर नहीं रही। मिला तब, जब मिलने की भी कोई भावना मेरे भीतर न थी।
इसलिए बुद्ध तो एकदम से चौंक ही गए कि यह क्या हुआ! और यह कहां छिपा था इतने दिन तक, जो आज दिखाई पड़ गया! यह छिपा था अपनी ही क्रिया की ओट में।
यह छिपा था अपने ही कर्ता की ओट में। यह छिपा था, मैं कर रहा हूं कुछ,
उस अहंकार की ही आड़ में। कोई करना न था। कोई कर्ता नहीं। कोई कर्म नहीं। मन बिल्कुल शून्य हो गया। उस शून्य में खिल गया यह फूल।
और जब बुद्ध से किसी ने पूछा कि आपको क्या मिल गया है कि आप इतने आनंदित हैं? तो बुद्ध ने कहा, मिला मुझे कुछ भी नहीं। जो मिला ही हुआ था, उसका पहली दफा पता चला है। जो मिला ही हुआ था, उसका पता चला है। मिला मुझे कुछ भी नहीं।
सांख्य का यही अर्थ है। सांख्य का यही अर्थ है कि जो मिलेगा, वह मिला
ही हुआ है। जो जानेंगे कभी हम, वह मौजूद है अभी, इसी क्षण। उसे कहीं बाहर से पाना नहीं है। वह अशुद्ध भी नहीं है कि उसे शुद्ध करना है। सिर्फ लौटकर, शांत होकर, मौन होकर, उसे देखना है।
कृष्ण कहते हैं, सिद्धों में मैं कपिल मुनि हूं।
और हे अर्जुन, घोड़ों में उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, हाथियों में ऐरावत नामक हाथी और मनुष्यों में मैं ही सम्राट हूं।
अर्जुन जिस तरह भी समझ सके, कृष्ण हर एक कोटि में जो भी श्रेष्ठतम संभावना है, उसकी तरफ इशारा कर रहे हैं। लेकिन एक बात कीमती समझ लेने जैसी है कि घोड़ा हो, कि हाथी हो, कि वृक्ष हो, कृष्ण के मन में कोई दुर्भाव नहीं है। कृष्ण को कहते हुए जरा भी ऐसा संकोच नहीं मालूम पड़ता है इसमें कि मैं घोड़ों में फलां घोड़ा हूं, हाथियों में फलां हाथी हूं। जरा भी संकोच मालूम नहीं पड़ता। अन्यथा इसे कहने की कोई जरूरत न थी।
कृष्ण के लिए निकृष्ट और श्रेष्ठ, छोटा और बड़ा, ऐसा कुछ भी नहीं है। कृष्ण कहते हैं, मैं सभी के भीतर हूं। लेकिन जिस कोटि में भी आभिजात्य प्रकट होता है, जिस कोटि में भी कोई व्यक्तित्व पूरी खिलावट को उपलब्ध होता है, वहां तू मेरी प्रतीति आसानी से कर सकेगा। अगर तू घोड़ों को ही समझना चाहता हो, तो घोड़ों में भी मैं हूं। अगर तू हाथियों को समझना चाहता हो, तो हाथियों में भी मैं हूं। अगर वृक्षों को समझना चाहता हो, तो वृक्षों में भी मैं हूं। और कहां आसानी होगी तुझे जानने को, उस तरफ मैं इशारा किए देता हूं।
अर्जुन ने कृष्ण से पूछा है कि मैं किस-किस भाव में आपको खोजूं? कहां- कहां खोजूं? कैसे देखूं? तो वे कहते हैं, कहीं भी। अगर घोड़े भी खड़े हों, तो वहां भी मैं मौजूद हूं। वहां भी तू देख लेना। तो मैं तुझे सूत्र दिए देता हूं। अगर हाथी खड़े हों, तो वहां भी मैं मौजूद हूं। तुझे सूत्र दिए देता हूं कि कहां तू मुझे खोज लेगा। अगर वृक्षों की पंक्ति हो, तो वहां भी मैं मौजूद

हूं। तू जहां भी खोजना चाहे, मैं मौजूद हूं। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां मैं नहीं हूं। लेकिन जहां भी तू मुझे खोजेगा, वहां आसानी होगी तुझे कि तू श्रेष्ठतम को देख।
ऐसा है कि एक बीज पड़ा हो यहां और एक फूल भी पड़ा हो यहां; आपको बीज दिखाई नहीं पड़ेगा, फूल दिखाई पड़ेगा। हालांकि बीज भी कल फूल बन सकता है। लेकिन बीज दिखाई नहीं पड़ेगा, फूल दिखाई पड़ेगा। बीज में भी फूल है। और हाथियों में भी कृष्ण वैसे ही हैं, जैसे ऐरावत में। और पौधों में भी वैसे ही हैं, जैसे पीपल में। लेकिन पीपल में देखना आसान होगा, वहां व्यक्तित्व खिला हुआ है। ऐरावत में देखना आसान होगा, वहां व्यक्तित्व खिला हुआ है। फूल जहां है, वहां पहचान आसान होगी; बीज में पहचान मुश्किल होगी। इसलिए कृष्ण गिनाते जा रहे हैं कि कहां-कहां, कहां-कहां मैं खिल गया हूं।
और ऐसा आप मत सोचना कि मनुष्यों में ही खिलावट होती है। पशुओं में भी होती है, पौधों में भी होती है। और ऐसा भी आप मत सोचना कि मनुष्यों में ही श्रेष्ठ मनुष्य और निकृष्ट मनुष्य होते हैं। पौधों में भी होते हैं, पशुओं में भी होते हैं।
बुद्ध ने अपने पिछले जन्म की एक कथा कही है, और उसमें कहा है कि पिछले
एक जन्म में मैं हाथी था। उनके एक शिष्य ने पूछा कि आप हाथी थे! फिर आप मनुष्य कैसे हुए? ऐसा कौन-सा कृत्य था, जिससे आप हाथी के जीवन से यात्रा करके मनुष्य हो सके? तो बुद्ध ने जो कृत्य कहा है, वह समझने जैसा है। उस कृत्य के कारण वह हाथी विशेष हो गया।
बुद्ध ने कहा, जंगल में लगी थी आग। भयंकर थी आग। सारे पशु-पक्षी भागते थे। मैं भी भाग रहा था। एक वृक्ष के नीचे मैं सांस सम्हालने को रुका एक क्षण को, और मैंने एक पैर ऊपर उठाया कि आगे बढूं। तभी मैंने देखा कि एक झाड़ी से एक खरगोश भागकर आया और मेरे पैर के नीचे जो जगह थी, जो मेरे पैर उठाने से खाली हो गई थी, वहां आकर सिकुड़कर, सुरक्षा में मेरे पैर के नीचे बैठ गया।
फिर मेरे मन को हुआ कि अगर मैं पैर नीचे रखूं, तो यह खरगोश मर जाएगा। फिर मेरे मन को हुआ कि अपने को बचाने को तो मैं भाग रहा हूं, और इसको मार डालूं! तो जैसा मेरा बचना महत्वपूर्ण है, वैसा ही इसका बचना भी महत्वपूर्ण है। और फिर मुझे ख्याल आया कि इतने भरोसे से मेरे पैर की छाया में जो आकर बैठ गया है, यह अब उचित न होगा कि उसके भरोसे को तोड़ दूं।
तो मैं पैर को वैसा ही किए खड़ा रहा। आग निकट आती चली गई और अंततः मैं जलकर मर गया। उस दिन तो मुझे पता नहीं था कि इसका कोई फायदा होगा। लेकिन उस कृत्य के कारण ही मैं मनुष्य हुआ हूं। वह जो एक छोटा-सा कृत्य था, उसके कारण ही मैं मनुष्य हुआ हूं।
अगर हम पशुओं को भी गौर से देखें, तो आपको पता चलेगा, उनमें भी व्यक्तित्व है। श्रेष्ठ, निकृष्ट उनमें भी है। उनमें भी आपको ब्राह्मण और शूद्र मिल जाएंगे। अब तो हम आदमियों में भी मिटाने की कोशिश कर रहे हैं; लेकिन उनमें भी आपको ब्राह्मण-शूद्र मिल जाएंगे। वहां भी आपको लगेगा कि कोई वृत्ति और ही है।
रमण महर्षि के आश्रम में जब भी रमण बोलते थे--जब भी वे बोलते थे--तो उनके सुनने वालों में एक गाय भी नियमित आती थी। यह वर्षों तक चला। दूसरों को तो खबर हो जाती थी, गाय को तो कोई खबर भी नहीं की जा सकती थी। दूसरों को पता होता कि आज रमण पांच बजे बोलेंगे। गाय को कैसे खबर होती! गाय को कौन खबर करने वाला था! लेकिन पांच बजे, दूसरे चाहे थोड़ी देर-अबेर पहुंचें, गाय ठीक समय पर उपस्थित हो जाती।
जब गाय मरी, तो रमण ने कहा कि वह मुक्त हो गई। और रमण ने गाय के साथ वही व्यवहार किया, जो उन्होंने सिर्फ एक और व्यक्ति के साथ किया जीवन में और फिर कभी नहीं किया। जब उनकी मां मरी, तो जो व्यवहार उन्होंने किया, वही व्यवहार उन्होंने उस गाय के मरने पर किया। और दोनों की पूरी की पूरी अंत्येष्टि ठीक वैसे ही की; जैसी अपनी मां की की, वैसी उस गाय की की।
कोई ने रमण से पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं एक गाय के लिए! उन्होंने कहा, वह तुम्हें गाय दिखाई पड़ती थी। तुम आदमी दिखाई पड़ते हो, इससे ही आदमी

नहीं हो जाते। वह गाय दिखाई पड़ती थी, इसलिए सिर्फ गाय ही नहीं थी। वह गायों में बड़ी श्रेष्ठ थी। उसने एक दूसरा आयाम छू लिया था। और वह मुक्त हो गई। तो कृष्ण का यह कहना कि घोड़ों में भी मैं हूं, कभी तो बहुत ऐसा लगेगा
कि कैसी बात है! कुछ और प्रतीक कृष्ण को नहीं मिले! ये घोड़े और हाथी और वृक्ष, यह क्या बात है! लेकिन यह बहुत विचारपूर्वक है।
अस्तित्व जहां भी है, वहीं परमात्मा है। लेकिन अर्जुन से उन्होंने कहा कि तू पहचान सकेगा अस्तित्व को जहां खिलता है फूल, बीज तुझे नहीं दिखाई पड़ सकते।
आज इतना ही। फिर हम कल बात करेंगे।
लेकिन बैठें पांच मिनट। नाम-स्मरण में सम्मिलित हों और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
ग्यारहवां प्रवचन

काम का राम में रूपांतरण

आयुधानामहं वज्रं घेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः।। 28।।
अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।। 29।।
प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।। 30।।
और हे अर्जुन, मैं शस्त्रों में वज्र और गौओं में कामधेनु हूं और संतान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव हूं, सर्पों में सर्पराज वासुकि हूं।
तथा मैं नागों में शेषनाग और जलचरों में उनका अधिपति वरुण देवता हूं
और पितरों में अर्यमा नामक पित्रेश्वर तथा शासन करने वालों में यमराज मैं हूं।
और हे अर्जुन, मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गिनती करने वालों में समय हूं तथा पशुओं में मृगराज सिंह और पक्षियों में गरुड़ मैं ही हूं।

और हे अर्जुन, शस्त्रों में वज्र, गौओं में कामधेनु, और जीवन की उत्पत्ति का हेतु कामदेव मैं हूं।
परसों रात्रि शिव पर बोलते हुए मैंने आपसे कहा था कि मृत्यु के वे प्रतीक हैं, विनाश की शक्ति वे हैं। साथ ही प्रेम और काम भी उनके जीवन में उतना ही गहरा है।
एक मित्र को चोट लगी होगी इस बात से, तो उन्होंने मुझे पत्र लिखा है कि
यह आपने ठीक नहीं किया। हमारे पूज्य देव को, महादेव को आपने काम और प्रेम से संयुक्त किया। कल उनका पत्र मिला था, मैं कल चुप रह गया, क्योंकि आज यह सूत्र आने को था। उन्होंने यह भी लिखा है कि शंकर ने तो, शिव ने तो कामदेव को भस्म कर दिया था। कैसे आप उनमें काम की बात कहते हैं? तो पहले उन्हें थोड़ा-सा उत्तर दे दूं और फिर इस सूत्र को समझाने में लगूं।
काम को भी भस्म तभी किया जा सकता है, जब काम हो; नहीं तो काम को भस्म नहीं किया जा सकता। भस्म भी हम उसे ही कर सकते हैं, जो मौजूद हो। और मजे की बात तो यह है कि काम को केवल वही भस्म कर सकता है, जिसमें काम इतना प्रगाढ़ हो कि अग्नि बन जाए। छोटे-मोटे काम की वासना वाला आदमी काम को भस्म नहीं कर पाता। काम की भी लपट चाहिए।
और यह दृष्टि, कि काम के होने से कोई देवता अपमानित हो जाता है, अपनी
ही नासमझी पर निर्भर है। क्योंकि कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं कि जीवन की उत्पत्ति का कारण कामदेव मैं हूं। उन मित्र को बड़ी तकलीफ होगी। तब तो शिव ने जिसको भस्म किया होगा, वे कृष्ण हैं! और उनको तो भारी पीड़ा होगी कि कृष्ण अपने ही मुंह से कहते हैं कि मैं कामदेव हूं।
लेकिन सत्यों को समझना हो, तो पीड़ाओं की तैयारी चाहिए। और जो सत्य को समझने की हिम्मत न रखते हों, उन्हें उस तरफ आंख ही बंद कर लेनी चाहिए। उस तरफ प्रयास ही नहीं करना चाहिए।
कुछ मौलिक बातें आपसे कहूं, तब यह सूत्र आपकी समझ में आ सके। यह सूत्र कठिन मालूम पड़ेगा। इसलिए नहीं कि कठिन है, इसलिए कि हमारी बुद्धि न मालूम कितनी व्यर्थ की धारणाओं से भरी है। और न मालूम कितनी निंदाएं और न मालूम कितने विक्षिप्त ख्याल हमारे मन को घेरे हुए हैं।
जीवन की समस्त उत्पत्ति काम से ही है। जगत की सृष्टि भी काम से ही है। सृजन का सूत्र ही काम है। अगर ब्रह्मा ने भी जगत को उत्पन्न किया, तो शास्त्र कहते हैं, कामना पैदा हुई। काम का जन्म हुआ ब्रह्मा में, तो ही उत्पन्न होगा कुछ। इस जगत में जब भी कुछ पैदा होता है, तो पैदा होने का सूत्र ही काम है।

और ऐसा नहीं है कि बच्चे ही जब पैदा होते हैं, तभी काम की शक्ति काम आती है। नहीं, कुछ और भी पैदा होता है--एक कविता पैदा होती है, एक चित्र पैदा होता है, एक मूर्ति निर्मित होती है--जहां भी कोई व्यक्ति कुछ सृजन करता है, तो उसके भीतर जो ऊर्जा, जो शक्ति काम में आती है, वह काम ही है। उत्पत्ति मात्र काम है। सृजन मात्र काम है।
इसलिए जो लोग इस सत्य को बिना समझे काम से शत्रुता में लग जाएंगे, उनका जीवन निष्क्रिय, और उनका जीवन सृजनहीन, और उनका जीवन एक लंबी मृत्यु हो जाएगी। काम से ही सब उत्पन्न होता है।
लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि काम में ही सब समाप्त हो जाता है। काम के पार जाया जा सकता है। लेकिन वह पार जाना भी काम के ही मार्ग से होता है; वह सृजन भी कामवासना के ही मार्ग से होता है।
कामवासना क्या है और यह कामदेव की धारणा क्या है?
शायद पूरी पृथ्वी पर हिंदू धर्म अकेला धर्म है, जिसने काम को भी अपनी जीवन-दृष्टि में समाहित किया है। यह बड़े साहस की बात है। क्योंकि सामान्यतया धर्म काम के विरोधी हैं। और हम सोच भी नहीं सकते कि कोई ईसाई परम पुरुष कह सके कि मैं कामदेव हूं। हम सोच भी नहीं सकते कि कोई जैन धारणा इस बात की स्वीकृति दे सके ईश्वर को कहने की कि मैं कामदेव हूं। यह असंभव है, सोचना भी असंभव है। लेकिन कृष्ण इसे सहजता से कह रहे हैं। और बड़े साहस की बात है।
साहस की इसलिए है कि हम केवल कामवासना के एक ही रूप से परिचित हैं। और इसलिए जब भी कामवासना का ख्याल भी हमारे मन में आता है, तो जो चित्र हमारे सामने मौजूद होता है, वह हमारी ही कामवासना के अनुभव का है। हमें कामवासना के दूसरे रूप का कोई पता ही नहीं है।
एक ही ऊर्जा है मनुष्य के भीतर, उसे हम कोई भी नाम दें। अगर वही ऊर्जा नीचे की तरफ प्रवाहित होती है, तो कामवासना और सेक्स बन जाती है। और वही ऊर्जा अगर ऊपर की तरफ प्रवाहित होने लगती है, तो अध्यात्म, कुंडलिनी, हम जो भी नाम देना चाहें। वही ऊर्जा; शक्ति वही है; सिर्फ आयाम, दिशा बदल जाती है।
नीचे की ओर गिरती हो वही शक्ति, तो वासना हो जाती है; ऊपर की ओर उठती हो वही शक्ति, तो आत्मा हो जाती है। नीचे की ओर गिरती हो, तो दूसरों को पैदा करती है; ऊपर की ओर उठने लगे, तो स्वयं को जन्म देती है। नीचे की ओर बहना हो उसे, तो किसी और को आधार बनाना पड़ता है; ऊपर की ओर बहना हो, तो स्वयं ही आधार होना पड़ता है। नीचे की ओर बहती हो काम-ऊर्जा, तो जननेंद्रिय के मार्ग से प्रकृति में लीन हो जाती है; और अगर ऊपर की ओर बहने लगे, तो सहस्रार से लीन होकर ब्रह्म में लीन हो जाती है।
काम-ऊर्जा दो स्थानों से विलीन होती है। या तो जननेंद्रिय से, जो कि पहला चक्र है; और या सहस्रार से, जो अंतिम चक्र है। ये दो छोर हैं आपके व्यक्तित्व के। काम-केंद्र से आप प्रकृति से जुड़े हैं और सहस्रार से आप परमात्मा से जुड़े हैं। लेकिन शक्ति एक ही है।
लेकिन हमारी हालत ऐसी है कि जिस आदमी को आग का एक ही परिचय हो, घर जल जाने का, वह सोच भी नहीं सकता कि आग रोटी भी पकाती है; और वह सोच भी नहीं सकता कि रात के अंधेरे में आग प्रकाश भी देती है; और वह सोच भी नहीं सकता कि ठंड से मरते हुए आदमी के लिए आग जीवन भी हो जाती है। जिसका एक ही अनुभव हो कि उसने आग से मकान को जलते और बरबाद होते देखा हो, उसे आग के दूसरे रूपों का कोई भी पता नहीं होता।
हम कामवासना के एक ही रूप को जानते हैं, जिससे हम अपनी जीवन-शक्ति को क्षीण होते देखते हैं। हम एक ही रूप को जानते हैं, जिसके कारण हमारे जीवन में सारी विपत्तियां और सारे उपद्रव खड़े होते हैं। हम एक ही रूप को जानते हैं, जिससे हमारे आस-पास संसार निर्मित होता है। हम एक ही रूप जानते हैं, जिससे क्रोध, लोभ, भय, ईर्ष्या, वैमनस्य, सबका जन्म होता है। हम कामवासना का अधोगामी रूप ही जानते हैं।
इसलिए अगर कोई कहे कि कृष्ण भी कामदेव हैं, तो हमें बहुत घबड़ाहट होती है। क्योंकि काम का जो रूप हम जानते हैं, वह सोचकर भी हमें घबड़ाहट होती है।

हम तो चाहेंगे कि कृष्ण कामवासना के बिल्कुल ऊपर हों, बिल्कुल दूर हों, उनको छू भी न जाए। यह हमारा ही अनुभव है, जिसके कारण हम ऐसा सोचते हैं। लेकिन कृष्ण जब कहते हैं, मैं कामदेव हूं, तो वे कामवासना के दूसरे रूप को भी समाहित कर रहे हैं। वह दूसरा रूप ही हमारी दृष्टि में नहीं है, इसलिए हमें अड़चन और कठिनाई होती है। जैसे काम की शक्ति, सेक्स एनर्जी बाहर की तरफ बहती है, नीचे की तरफ बहती है, दूसरे शरीरों की तरफ बहती है--यह बहाव का एक ढंग है।
और ध्यान रहे, दुनिया में ऐसा कोई भी बहाव नहीं है, जो विपरीत न बह सके। अगर मैं चलकर आपके पास आ सकता हूं, तो लौटकर आपसे दूर भी जा सकता हूं। ऐसा कोई भी रास्ता नहीं है, जो एक ही तरफ चलता हो। जिस रास्ते से चलकर आप यहां तक आए हैं, उसी से चलकर आप अपने घर वापस लौट जाएंगे। कोई ऐसा दरवाजा नहीं है, जिससे आप बाहर आते हों और उसी से आप भीतर न जा सकते हों। हर द्वार, हर मार्ग, हर प्रवाह दो आयामों में होता है, दो दिशाओं में होता है। आप पीछे लौट सकते हैं।
कामवासना का हम एक ही द्वार जानते हैं और एक ही रूप, दूसरे की तरफ प्रवाहित होने वाला। और ध्यान रहे, जब भी कोई दूसरे की तरफ प्रवाहित होता है, तो परतंत्र हो जाता है। इसलिए कामवासना गहरे में हमारे लिए एक परतंत्रता है। इसलिए जो लोग भी स्वतंत्र होना चाहते हैं, मुक्त होना चाहते हैं, उनका संघर्ष कामवासना से शुरू हो जाता है।
इस दुनिया में गहरी से गहरी गुलामी सेक्स की गुलामी है। दूसरे आदमी
पर निर्भर होना पड़ता है। दूसरा अपने से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। दूसरे के इर्द-गिर्द चक्कर काटना पड़ता है, परिक्रमा करनी पड़ती है। एक गहरी गुलामी है।
इसलिए जो लोग भी मुक्ति की दिशा में चलते हैं, उनका मन अगर वितृष्णा
से भर जाता हो कामवासना से, तो आश्चर्य नहीं है; तर्कयुक्त है, स्वाभाविक है। लेकिन शत्रुता से भर जाने से कुछ भी न होगा। और लड़ने से भी कुछ न होगा। मजे की बात है! अगर मुझे स्त्री आकर्षित करती है या पुरुष आकर्षित करता है या कोई मुझे आकर्षित करता है, तो लड़ने वाला, जो मुझे आकर्षित करता है, उससे भागेगा। लेकिन मैं कहीं भी भाग जाऊं, जो मेरे भीतर आकर्षित होता था, वह मेरे साथ ही रहेगा।
मैं एक स्त्री को छोड़कर भाग सकता हूं, एक पुरुष को छोड़कर भाग सकता हूं, लेकिन जो भी मेरे भीतर प्रवाहित होता था नीचे की ओर, वह मेरे साथ ही चला जाएगा। वह अ को छोड़ देगा तो ब पर आकर्षित होगा, ब को छोड़ देगा तो स पर आकर्षित होगा। और मैं यह भी कर सकता हूं कि सबको छोड़कर निपट जंगल में बैठ जाऊं, तो मेरी कल्पना में ही मैं उन सबको पैदा करना शुरू कर दूंगा, जो मेरे आकर्षण के बिंदु बन जाएंगे।
स्त्रियों को छोड़कर भाग जाने से कोई स्त्रियों से मुक्त नहीं होता। स्त्रियों के बीच रहकर कभी मुक्त हो भी जाए, भागकर तो मुक्त होना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि जिससे हम भागते हैं, वह हमारा पीछा करता है कल्पना में।
और ध्यान रहे, कोई भी स्त्री वस्तुतः इतनी सुंदर नहीं है, जितनी कल्पना में सुंदर हो जाती है। न कोई पुरुष इतना सुंदर है, जितना कल्पना में सुंदर हो जाता है। कल्पना कहीं फ्रस्ट्रेट ही नहीं होती; कल्पना को कहीं विषाद का क्षण ही नहीं आता! वास्तविक अस्तित्व में तो हम सब विषाद को उपलब्ध हो जाते हैं।
जो शरीर कल बहुत सुंदर मालूम पड़ता था, दो दिन बाद साधारण मालूम पड़ने लगेगा। चार दिन बाद उससे ही घबड़ाहट होने लगेगी। पंद्रह दिन के बाद उससे भागने का मन भी होने लगेगा। लेकिन कल्पना में ऐसा क्षण कभी नहीं आता। कल्पना बड़ी सुगंधित है। कल्पना के शरीरों से न पसीना बहता है। न कल्पना के शरीरों से दुर्गंध आती है। न कल्पना के शरीर झगड़ते हैं, लड़ते हैं। कल्पना के शरीर तो आपकी ही कल्पनाएं हैं, आपको कभी भी दुख नहीं देते। लेकिन वास्तविक शरीर तो दुख देंगे। वास्तविक व्यक्ति तो दुख देंगे। वास्तविक व्यक्तियों के बीच तो कलह और संघर्ष होगा।

इसलिए जो लड़ने में लग जाएगा, वह भागेगा। लेकिन जो समझने में लगेगा, वह अपनी धारा को बदलेगा, भागेगा नहीं। दूसरे से भागने का कोई प्रयोजन नहीं है। मेरी ही शक्ति जो दूसरे की तरफ प्रवाहित होती है, वह मेरी तरफ प्रवाहित होने लगे, यह है सवाल।
और जब काम की ऊर्जा अपनी तरफ बहनी शुरू होती है, स्व की तरफ बहनी शुरू होती है, पर की तरफ नहीं, तब हमें कामवासना का वास्तविक अर्थ और प्रयोजन पता चलता है। तब हमें पता चलता है कि जिसे हमने जहर समझा था, वह अमृत हो जाता है। और तब हमें पता चलता है कि जिसे हमने परतंत्रता समझा था, वही हमारी स्वतंत्रता बन जाती है। और तब हमें पता चलता है कि जिसे हमने नर्क का द्वार समझा था, वही हमारी मुक्ति का द्वार भी है।
जब कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं, तो इस सारी दृष्टि को सामने रखकर
कह रहे हैं।
काम की ऊर्जा हमारी शक्ति का नाम है। हम जो भी हैं, काम की ऊर्जा के संघट हैं। अगर हमारी ऊर्जा बाहर बहती रहे, तो बिखर जाती है, दूर फैलती चली जाती है। अगर यही ऊर्जा भीतर आने लगे, तो संगठित होने लगती है, इंटीग्रेट होने लगती है, क्रिस्टलाइज होने लगती है, केंद्रित होने लगती है। और धीरे- धीरे जब सारी बाहर जाने वाली ऊर्जा स्वयं पर ही आकर इकट्ठी हो जाती है, तो जो क्रिस्टलाइजेशन, जो सेंटरिंग, जो केंद्रीयता हमारे भीतर पैदा होती है, वही हमारी आत्मा का अनुभव है।
जिस व्यक्ति की कामवासना बाहर भटकती जाती है, उसका अनुभव संसार का अनुभव है, आत्मा का अनुभव नहीं। और जिस व्यक्ति की ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती जाती है, संगठित होती चली जाती है, अंततः एक ऐसा बिंदु निर्मित हो जाता है वज्र की भांति, जो बिखर नहीं सकता। उस अनुभव के साथ ही हम पहली दफा आत्मा के जगत में प्रवेश करते हैं या ब्रह्म के जगत में प्रवेश करते हैं। लेकिन वह भी सृजन है, अपना ही सृजन। वह भी जन्म है, अपना ही जन्म।
बुद्ध के पास जब कोई भिक्षु आता था, तो वे उससे पूछते थे, तेरी उम्र कितनी है? एक भिक्षु आया बुद्ध के पास और बुद्ध ने उससे पूछा, तेरी उम्र कितनी है? उसने कहा, केवल चार दिन!
उम्र उसकी कोई सत्तर वर्ष मालूम होती थी। बुद्ध थोड़े चौंके, और लोग भी चौंके। बुद्ध ने दुबारा पूछा कि कहीं कुछ भूल-चूक सुनने-समझने में हो गई है, तेरी उम्र कितनी है? उस आदमी ने कहा कि मैं पुनः कहता हूं, मेरी उम्र है चार दिन। बुद्ध ने कहा, तुम कोई व्यंग्य करते हो? मजाक करते हो?
उसने कहा कि नहीं, चार दिन पहले ही आपको सुनते क्षण में मुझे अपने होने का पहली दफा पता चला, वही मेरा जन्म है। उसके पहले तो मैं था ही नहीं। संसार था, मैं नहीं था। मैं तो अभी चार दिन पहले पहली दफे हुआ हूं। और अभी बहुत कमजोर हूं, एक छोटे शिशु की तरह हूं। अभी आपके सहारे की मुझे जरूरत है। अभी आपकी छाया की मुझे जरूरत है। अभी मैं बिखर सकता हूं। अभी बहुत कोमल तंतु हूं। लेकिन जन्म मेरा अभी चार दिन पहले हुआ है।
उस दिन बुद्ध ने कहा था, भिक्षुओ, आज से हमारे भिक्षुओं की उम्र को नापने की यही व्यवस्था होगी। तुम अपनी उस उम्र को छोड़ देना, जब तुम नहीं थे। तुम उसी उम्र को गिनना, जब से तुम हुए हो। जिस दिन तुम अपने को जानो, उसी दिन को समझना तुम्हारा जन्म। माता-पिता ने तुम्हारे जिसको जन्म दिया था, वह तुम नहीं हो।
माता-पिता एक शरीर को जन्म देते हैं। लेकिन स्वयं को जन्म देना हो, तो स्वयं ही देना पड़ता है। यह जन्म घटित होता है, जब काम की ऊर्जा भीतर की ओर प्रवाहित होनी शुरू होती है।
यह सारा जगत आज विक्षिप्त है। मनसविद कहते हैं--फ्रायड या जुंग या एडलर--वे कहते हैं कि यह सारी विक्षिप्तता का निन्यानबे प्रतिशत कारण कामवासना है। वे ठीक ही कहते हैं। लेकिन उनका निदान तो ठीक है, उनका इलाज ठीक नहीं है। उनकी डायग्नोसिस बिल्कुल सही है, लेकिन वे जो दवाएं बताते हैं, वे ठीक नहीं हैं।
उनका ख्याल है, यह सारा मनुष्य इतना पीड़ित है, यह अतिशय कामुकता के कारण। इतनी कलह और इतनी ईर्ष्या और इतना संघर्ष और इतना लोभ, इस सबके भीतर

अगर हम प्रवेश करना शुरू करें, तो निश्चित ही केंद्र पर कामवासना मिलेगी। तो फ्रायड कहता है कि यह कामवासना को ठीक से तृप्त करने का उपाय न हो, तो आदमी विक्षिप्त होता चला जाएगा। तो कामवासना को ठीक से तृप्त होने का उपाय होना चाहिए।
यह भी थोड़ी दूर तक ठीक है। लेकिन कामवासना को तृप्त करने के कितने ही उपाय किए जाएं, आदमी कामवासना की तृप्ति से कभी भी शांत नहीं होता। हो नहीं सकता। कामवासना को रूपांतरित किए बिना आदमी कभी भी शांत नहीं हो सकता। एक ट्रांसफार्मेशन चाहिए।
यह कामवासना जो बाहर की तरफ दौड़ती है, इसकी कितनी ही तृप्ति का उपाय किया जाए, कोई तृप्ति उपलब्ध नहीं होती। बल्कि एक और नया खतरा पश्चिम में फ्रायड को मानकर फलित हुआ है। और वह यह कि पचास साल पहले, फ्रायड के पहले पश्चिम में ख्याल था लोगों को कि कामवासना तृप्त हो जाएगी, तो लोग बड़े शांत, संतुष्ट हो जाएंगे। क्योंकि अगर उसी की अतृप्ति से बेचैनी है, तो तृप्ति से शांति हो जाएगी।
लेकिन आज अमेरिका में उसे तृप्त करने की सर्वाधिक सुविधाएं उपलब्ध हो
गई हैं, संभवतः पृथ्वी पर कहीं भी नहीं थीं। सब तरह की स्वतंत्रता, एक परमिसिव सोसाइटी, सब तरह से मुक्त करने वाला समाज पैदा हो गया है। लेकिन अनूठा अनुभव हुआ। अतृप्तियां पुरानी अपनी जगह हैं, और एक नई अतृप्ति पैदा हो गई है। वह है, कामवासना की व्यर्थता का बोध। पुरानी अतृप्ति में कम से कम एक आशा थी कि कभी कहीं कोई कामवासना तृप्त होगी, तो मन शांत हो जाएगा। अब वह भी आशा न रही। अतृप्ति पुरानी अपनी जगह खड़ी है, एक नई अतृप्ति, और ज्यादा गहरी, कि यह कामवासना ही बिल्कुल व्यर्थ है, फ्यूटायल है। इसमें कुछ होने वाला नहीं है।
आज पश्चिम का आदमी ऐसी बेचैनी में है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। वह रहेगा, क्योंकि फ्रायड का वक्तव्य अधूरा है। फ्रायड के साथ बुद्ध को और कृष्ण को और महावीर को भी जोड़ना अनिवार्य है। फ्रायड का निदान बिल्कुल ठीक है, लेकिन फ्रायड का उपचार ठीक नहीं है।
कृष्ण या बुद्ध या महावीर कामवासना को रूपांतरित करने की व्यवस्था देते हैं। और जब कामवासना रूपांतरित होती है, तो फिर उसको कामवासना न कहकर हम कामदेव कहते हैं।
इस फर्क को आप समझ लें।
जब तक कामवासना नीचे की तरफ बहती है, तब तक कामवासना एक राक्षस की तरह होती है, एक दानव की तरह। चूसे चली जाती है आदमी को। पीए चली जाती है। उसकी सारी शक्तियों को खींचे चली जाती है। उसे रुग्ण और दीन और दरिद्र किए चली जाती है। खोखला कर देती है भीतर से। सब सत्व खिंच जाता है, फिंक जाता है, और आदमी धीरे-धीरे एक चली हुई कारतूस की तरह हो जाता है। मरने के पहले ही आदमी मर जाता है।
बूढ़े आदमी को खालीपन का अनुभव होता है, जैसे भीतर कुछ भी नहीं है। वह खालीपन कुछ और नहीं है, कामवासना ने सारी शक्तियों को अपशोषित कर लिया है। जवान आदमी को भरापन मालूम पड़ता है। वह भरापन भी कुछ नहीं है, वह भरापन भी कामवासना का ही भराव है। बूढ़े और जवान आदमी में उतना ही फर्क है, जितना भरी हुई कारतूस में और चल गई कारतूस में है। और कोई ज्यादा फर्क नहीं है। न तो जवान भरा हुआ है, न बूढ़ा खाली है। भ्रांति उस ऊर्जा की वजह से हो रही है। भरे आदमी तो केवल वे ही हैं, जिनकी काम-ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित होनी शुरू होती है। उन्हीं के लिए फुलफिलमेंट है, उन्हीं के लिए आप्तता है। जिस दिन कामवासना ऊपर की तरफ प्रवाहित होती है, उस दिन कामदेव हो जाती है। इसलिए शायद हम अकेली कौम हैं जमीन पर, जिन्होंने कामवासना को भी देवता की स्थिति दी है। उसको भी देव कहने की हिम्मत जुटाई है। लेकिन वह रूपांतरित है; ऊपर उठ गया है। दूसरे से संबंध छूट गया है। शक्ति अपने ही भीतर प्रवाहित होने लगी है, अपने ही अंतस्तल में। अंतर्यात्रा पर निकल गई है।
कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं; समस्त जीवन के सृजन का मूल आधार मैं हूं।

और कामदेव कहने की क्या जरूरत! वे कोई और देवताओं का नाम भी ले सकते थे। देवों में कामदेव का ही नाम लेने का प्रयोजन भी है। क्योंकि कामदेव के ऊपर जो उठ जाए... । मैंने पहले आपसे कहा, काम-राक्षस। ऐसा हम करें शब्द का प्रयोग, नीचे की तरफ बहती काम-ऊर्जा। फिर कामदेव, ऊपर की तरफ बहती हुई काम-ऊर्जा। कामदेव के भी ऊपर जो उठ जाए, वह देवताओं से पार हो जाता है।
बाहर की तरफ बहती ऊर्जा, काम-राक्षस। भीतर की ओर बहती हुई ऊर्जा, कामदेव। और कहीं भी बहती हुई ऊर्जा नहीं, ठहरी हुई ऊर्जा; न बाहर, न भीतर, समस्त गति को खो दिया हो ऊर्जा ने; ठहर गई ऊर्जा; थिर हो गई ऊर्जा; जैसे कि दीए की लौ ठहर जाए, हवा का कोई झोंका न हो; उस स्थिति में आदमी कामदेव के भी ऊपर उठ जाता है।
इसलिए साधक को पहले दूसरे की परेशानी रहती है कि दूसरा खींचता है। फिर अंतिम परेशानी आती है कि स्वयं का खिंचाव है। उसके भी पार जाकर, द्वंद्व के पार आदमी हो जाता है।
जो व्यक्ति कामदेव के पार हो जाता है, वह देवताओं के पार हो जाता है।
इसलिए हमने, बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो कथाएं कहती हैं कि समस्त देवता उनके चरणों में सिर रखकर मौजूद हुए। क्या हो गया बुद्ध को कि देवता उनके चरणों में सिर रखें! क्योंकि देवता, कितने ही ऊपर हों, कामदेव के ऊपर नहीं होते। लेकिन जब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो वह काम के अंतिम रूप से ऊपर चला जाता है। फिर देवता भी नीचे पड़ जाते हैं। फिर देवता भी बुद्ध को नमस्कार करने आते हैं।
बुद्ध को अंतिम क्षण में, या महावीर को अंतिम क्षण में, या जीसस को अंतिम क्षण में, जो आखिरी संघर्ष है, जो आखिरी पार होना है, वह काम ही है। काम के जो पार हो गया, वह देवत्व के पार हो गया। वह फिर भगवत्ता में सम्मिलित हो गया।
तीन कोटियां हैं। मनुष्य हम उसे कहें, जिसकी कामवासना नीचे की ओर बहती है। देव हम उसे कहें, जिसकी कामवासना ऊपर की ओर बहती है या भीतर की ओर बहती है। भगवान हम उसे कहें, जिसकी कामवासना बहती नहीं--न बाहर न भीतर, न नीचे न ऊपर। ये तीन कोटियां हैं।
इसलिए बुद्ध को हम भगवान कहते हैं। भगवान कहने का कुल कारण इतना है कि
अब वे देव के भी पार हैं।
कृष्ण कहते हैं, मैं देवताओं में कामदेव हूं। अगर देवताओं में ही मुझे खोजना हो, तो तुम काम में खोजना। क्योंकि काम ही सृजन का मौलिक आधार है। जगत में जो भी घटता है, सुंदर, शुभ, सत्य, वह सब काम की ऊर्जा का ही प्रतिफलन है। चाहे कोई गीत पैदा होता हो सुंदर, चाहे कोई चित्र बनता हो सुंदर, और चाहे कोई व्यक्तित्व निर्मित होता हो सुंदर, वह सब काम-ऊर्जा का ही फैलाव है। इस जगत में जो भी सुंदर है और शुभ है, वह सब काम की ऊर्जा की ही लहरें हैं।
हमने ही अकेले पृथ्वी पर ऐसे मंदिर बनाए, खजुराहो, कोणार्क, जहां हमने भीतर परमात्मा को स्थापित किया और भित्ति-चित्रों पर काम के अनूठे-अनूठे चित्र खोदे। असंगत मालूम पड़ता है। खजुराहो के मंदिर में प्रवेश करें, तो घबड़ाहट मालूम होती है। मंदिर, जहां प्रभु को स्थापित किया है भीतर, उसकी भित्ति, उसकी दीवालों पर संभोग के, मैथुन के, काम के चित्र खुदे हैं, मूर्तियां निर्मित हैं! और ऐसी मूर्तियां पृथ्वी पर किसी ने कभी नहीं बनाईं। बाप बेटी के साथ मंदिर में प्रवेश करने में घबड़ाता है। भाई भाई के साथ जाने में डरेगा। बेटा मां के साथ मंदिर में जाने में भयभीत होगा। इस भय और डर के कारण शायद हम कहेंगे कि ये मंदिर ठीक नहीं बने, गलत बने हैं। गांधीजी के एक भक्त थे, पुरुषोत्तमदास टंडन। उनका सुझाव था गांधीजी
को कि इन मंदिरों पर मिट्टी ढांककर इनको दाब देना चाहिए। गांधीजी को भी बात तो जंचती थी कि ढांक दिए जाएं ये मंदिर; ये भारतीय संस्कृति को विकृत करते हुए मालूम पड़ते हैं।
जिनको भारतीय संस्कृति का कोई पता नहीं है, उन्हीं को ऐसा लगेगा। लेकिन नहीं हो सका वह, क्योंकि खजुराहो जगत-ख्याति का मंदिर है और भारत का टूरिज्म का बड़ा धंधा खजुराहो और कोणार्क जैसे मंदिरों पर निर्भर है। अगर

बाहर से पर्यटक देखने न आते हों इन मंदिरों को, और इन मंदिरों की जगत-ख्याति न हो, तो हमने जरूर इन पर मिट्टी ढांक दी होती, इनको पूर दिया होता, इनको मिटा दिया होता।
इतना हमें क्यों डर लगता है? मां अपने बेटे के साथ इस मंदिर में जाने में भयभीत क्यों होती है? क्योंकि हम जीवन के तथ्यों को स्वीकार नहीं करते। हम जीवन के तथ्यों को झुठलाते हैं; हम बेईमान हैं। जीवन की सीधी सचाइयों के प्रति हम बहुत बेईमान हैं। नहीं तो बात ही क्या है? जब कोई मां बनती है किसी बेटे की, तभी काम-ऊर्जा के कारण बनती है। जब कोई बाप बनता है किसी बेटे का, तो काम-ऊर्जा के कारण बनता है।
लेकिन काम-ऊर्जा के प्रति हमने इस तरह के छिपाव खड़े किए हैं कि हम दुनिया में बात ही नहीं होने देते। जो मौलिक है सत्य, उसको हम ऐसे छिपाते हैं, जैसे वह घटता ही नहीं है। उस घबड़ाहट के कारण ये मंदिर हमें प्रवेश करने में डर पैदा करवाते हैं।
यह मंदिर बहुत सत्य है। सत्य, नग्न रूप से सत्य है। और विचार करके इसे निर्मित किया गया है। दीवाल के बाहरी हिस्सों पर कामवासना के चित्र हैं। और मंदिर इस बात का प्रतीक है कि जब तक तुम्हारा मन दीवाल के बाहर के चित्रों में लीन हो, तब तक भीतर प्रवेश नहीं हो सकेगा। जिस दिन तुम्हें बाहर मंदिर की दीवाल पर खुदे हुए मैथुन के गहन चित्र जरा भी आकर्षित न करें, उसी दिन तुम भीतर आना, उसी दिन तुम परमात्मा के मंदिर में प्रवेश कर सकोगे।
संसार इस मंदिर के बाहर खुदे हुए चित्रों की परिधि है। और जब तक किसी
का मन कामवासना में डोल रहा है, तब तक वह मंदिर में प्रवेश नहीं हो सकता। और कामवासना में डोलने के दो ढंग हैं। या तो कामवासना के लिए डोल रहा हो, या कामवासना से भयभीत होकर डरकर डोल रहा हो।
जो आदमी इस मंदिर के पास जाता है और आंखें गड़ाकर इन चित्रों को देखने लगता है, वह भी उनसे उलझा है; और जो इन चित्रों को देखकर आंखें नीची करके दुबककर अंदर घुस जाता है, वह भी इन्हीं चित्रों से उलझा हुआ है। जो आदमी इन चित्रों के पास से ऐसे गुजर जाता है, जैसे चित्र हों ही न, वही आदमी मंदिर में प्रवेश के योग्य है। कामवासना से जो पार नहीं जाता, वह मंदिर में प्रवेश नहीं पा सकता है।
लेकिन कामवासना का विरोध करके कोई कभी पार नहीं गया है। इस जगत में समझने के अतिरिक्त पार जाने का कोई भी उपाय नहीं है। लड़ते हैं नासमझ, जानते हैं समझदार। और जानना ताकत है। ज्ञान शक्ति है।
बेकन ने कहा है, नालेज इ.ज पावर। सभी अर्थों में सही है। जहां भी ज्ञान है, वहीं शक्ति है। और जिस चीज का हमें ज्ञान है, हम उसके मालिक हो सकते हैं। और जिसका हमें ज्ञान नहीं है, हम उससे चाहे भयभीत हों, चाहे पराजित हों, चाहे उसके गुलाम रहें, चाहे उससे डरकर भागते रहें, हम उसके मालिक कभी भी न हो सकेंगे।
आकाश में बिजली कौंधती है, आज हम उसके मालिक हो गए हैं। वैसे ही ठीक कामवासना और भी बड़ी बिजली है, जीवंत बिजली है, उसके भी मालिक होने का उपाय है। लेकिन मालिक केवल वे ही हो सकते हैं, जो उसके प्रति भी सदभाव रखकर चलें।
जब कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं, तो सदभाव रखा जा सकता है। तब कोई विरोध, तब कोई निंदा का सवाल नहीं है। तब यह भी शक्ति परमात्मा की है, और इस शक्ति का कैसे अधिकतम उपयोग हो सके, और कैसे यह शक्ति जीवन के लिए मंगलदायी हो जाए, और कैसे यह शक्ति हमारी मृत्यु का कारण न बने, वरन परम जीवन में प्रवेश का द्वार हो जाए, इसकी दिशा में मेहनत की जा सकती है। सिर्फ अकेले हिंदुस्तान ने एक विज्ञान को जन्म दिया जिसका नाम तंत्र है। एक पूरे विज्ञान को जन्म दिया, जिसके माध्यम से काम की ऊर्जा ऊर्ध्वगामी हो जाती है। और जिसके अंतिम प्रयोगों से काम-ऊर्जा थिर हो जाती है, उसका प्रवाह समाप्त हो जाता है।
कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई कामवासना में पड़ा रहे। काम को भी दिव्य बनाना है, तभी यह कृष्ण के कामदेव की बात समझ में आएगी। उसे भी दिव्यता देनी है।
हमारा तो काम पशुता से भी नीचे चला जाता है; दिव्यता तो बहुत दूर की बात है। पशुओं की कामवासना में भी एक तरह की स्वच्छता है। और पशुओं की कामवासना में भी एक तरह की सरलता है, एक निर्दोष भाव है। आदमी की कामवासना में उतना निर्दोष भाव भी नहीं है। आदमी की कामवासना, लगती है, पशुओं से भी नीचे गिर जाती है! क्या कारण होगा?
क्योंकि पशुओं की कामवासना उनकी शुद्ध शारीरिक घटना है। और आदमी की कामवासना शारीरिक कम और मानसिक ज्यादा है। मानसिक होने से विकृत है। मानसिक होने से विकृत है, सेरिब्रल होने से विकृत है। एक आदमी संभोग में उतरे, यह निर्दोष हो सकता है। लेकिन एक आदमी बैठकर और संभोग का चिंतन करे, यह विकृत है, यह बीमार है।
तीन संभावनाएं हैं। या तो कामना, काम की शक्ति, प्रकृत हो, नेचुरल हो। अगर नीचे गिर जाए, तो विकृत हो जाए, अननेचुरल हो जाए। अगर ऊपर बढ़ जाए, तो संस्कृत हो जाए, सुपरनेचुरल हो जाए। प्रकृत कामवासना दिखाई पड़ती है पशुओं में, पक्षियों में। इसलिए नग्न पक्षी भी हमारे मन में कोई परेशानी पैदा नहीं करता। लेकिन कुछ लोग इतने रुग्ण हो सकते हैं कि नग्न पशु-पक्षी भी परेशानी पैदा करें।
अभी मैंने सुना है कि लंदन में बूढ़ी औरतों के एक क्लब ने एक इश्तहार लगाया हुआ है। और उसमें कहा है कि सड़क पर कुत्तों को भी नग्न निकालने की मनाही होनी चाहिए।
अब बूढ़ी स्त्रियों को सड़क पर नग्न कुत्तों के निकलने में क्या एतराज होगा? इस एतराज का संबंध कुत्तों से कम, इन स्त्रियों से ज्यादा है। इनके मन में कहीं कोई गहरा विकार है। वही विकार प्रोजेक्ट होता है।
हम बच्चे को देखते हैं नग्न, तो तकलीफ नहीं होती। बड़े आदमी को नग्न या बड़ी स्त्री को नग्न देखते हैं, तो पीड़ा क्या होती है? वह पीड़ा कोई विकार है। वह नग्न व्यक्ति में है, ऐसा नहीं; वह हमारे भीतर है।
आदिवासी हैं, उनकी स्त्रियां अर्द्धनग्न हैं, करीब-करीब नग्न हैं, लेकिन किसी को कोई विकार पैदा होता मालूम नहीं होता। और हमारी स्त्रियां इतनी ढंकी हुई हैं, जरूरत से ज्यादा ढंकी हुई हैं, बल्कि इस ढंग से ढंकी हुई हैं कि जहां-जहां ढांकने की कोशिश की गई है, वहीं-वहीं उघाड़ने का इंतजाम भी किया गया है। हमारा ढांकना उघाड़ने की एक व्यवस्था है। हम ढांकते हैं, लेकिन उस ढांकने में बीमारी है। इसलिए जो-जो हम ढांकते हैं, उसे हम दिखाना भी चाहते हैं। तो ढांकने से भी हम दिखाने का इंतजाम कर लेते हैं।
हमारी ढंकी हुई स्त्री भी रुग्ण मालूम पड़ेगी। एक आदिवासी नग्न स्त्री
भी रुग्ण मालूम नहीं पड़ेगी। वह प्रकृत है, पशुओं जैसी प्रकृत है।
एक और नग्नता भी है। एक पशुओं की नग्नता है, एक हमारी नग्नता है--कपड़ों में ढंकी। एक महावीर की नग्नता भी है। महावीर भी नग्न खड़े हैं। लेकिन उनकी नग्नता से किसी को कोई बेचैनी नहीं मालूम पड़ेगी। और अगर बेचैनी मालूम पड़े, तो जिसे मालूम पड़ती है, वही जिम्मेवार होगा। महावीर की नग्नता फिर बच्चे जैसी हो गई, फिर इनोसेंट हो गई। अब महावीर की नग्नता में, आदमी के ढंके होने से ऊपर जाने की स्थिति आ गई। अब ढांकने को भी कुछ न बचा। अगर हम महावीर से पूछें कि आप नग्न क्यों खड़े हैं? तो वे कहेंगे, जब ढांकने को कुछ न बचा, तो ढांकना भी क्या है!
हम ढांक क्या रहे हैं? हम अपने शरीर को नहीं ढांक रहे हैं। अगर बहुत गौर से हम समझें, तो हम अपने मन को ढांक रहे हैं। और चूंकि शरीर कहीं खबर न दे दे हमारे मन की, इसलिए हम शरीर को ढांके हुए बैठे हैं। लेकिन जब कोई डर ही न रहा हो, शरीर की तरफ से कोई खबर मिलने का उपाय न रहा हो, क्योंकि मन में ही कोई उपाय न रहा हो, तो महावीर नग्न होने के अधिकारी हो जाते हैं।
तीन संभावनाएं हैं। अगर कामवासना विकृत हो जाए, जैसी कि आज जगत में हो
गई है... एकदम विकृत मालूम पड़ती है, और चारों तरफ से घेरे हुए है हमें। चाहे

आप फिल्म देख रहे हों, तो भी कामवासना अनिवार्य है। चाहे आप अखबार पढ़ रहे हों, चाहे आप किताब पढ़ रहे हों, चाहे कहानी पढ़ रहे हों, और यह तो छोड़ दें, अगर आप साधु-संतों के प्रवचन भी सुन रहे हों, तो भी कामवासना अपना निषेधात्मक रूप प्रकट करती रहती है।
यह बहुत मजे की बात है कि मैंने बहुत-सी किताबें देखी हैं उन लोगों की
भी जिन्होंने पोर्नोग्राफी, जिन्होंने अश्लील साहित्य लिखा है, और स्त्री-पुरुषों के अंगों की नग्न चर्चा की है। उन साधु-संतों की किताबें भी मैंने देखी हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुषों के अंगों की चर्चा की है निंदा के लिए। लेकिन बड़े मजे की बात है, कोई पोर्नोग्राफर इतने रस से चर्चा नहीं कर पाता, जितने साधु-संत कर पाते हैं। इतना रस नहीं मालूम पड़ता। कोई अश्लील लिखने वाला इतने रस से चर्चा नहीं करता।
यह विकृत रस है। भीतर दमन है, भीतर दबाया है, जबरदस्ती की है, वह पीछे
से निकलता है।
झेन कथा है एक। दो फकीर, एक बूढ़ा और एक युवा, एक नदी के पास से गुजरते हैं। बूढ़ा फकीर आगे है; भिक्षु है बौद्ध। एक युवा लड़की खड़ी है नदी के किनारे। और वह उस बूढ़े से कहती है कि मुझे नदी के पार जाना है, और मैं डरती हूं। और उस बूढ़े का मन हुआ कि हाथ से सहारा देकर नदी पार करा दे। लेकिन यह सोचा उसने कि हाथ का सहारा दे दे, कि भीतर वासना पूरी तरह खड़ी हो गई। वह घबड़ा गया। लड़की से नहीं, अपने से घबड़ा गया। आंखें नीची कर लीं और नदी पार हो गया।
नदी के उस पार जाकर उसे ख्याल आया कि मैं तो बूढ़ा आदमी हूं और मेरा अपने ऊपर संयम है, इसलिए लड़की का हाथ मैंने नहीं पकड़ा। हमारे सब संयम इसी तरह के कमजोर हैं। लेकिन मेरे पीछे जो युवा संन्यासी आ रहा है, कहीं वह इस भूल में न पड़ जाए, जिसमें मैं पड़ा जा रहा था, पड़ते-पड़ते बचा, बाल-बाल बचा। लौटकर उसने देखा, तो उसकी तो छाती बैठ गई। वह युवा संन्यासी उस लड़की को कंधे पर बिठाकर नदी पार कर रहा है!
उस लड़के ने, उस युवा संन्यासी ने लड़की को किनारे के पार उस तरफ छोड़ दिया। फिर वे दोनों अपने आश्रम की तरफ चलने लगे। मीलभर का रास्ता, बूढ़े ने एक शब्द भी नहीं बोला। आग जल रही है उसके भीतर। द्वार पर मोनेस्ट्री के, आश्रम के द्वार पर उसने रुककर उस युवक से कहा कि याद रखो, तुमने जो पाप किया है, वह मुझे गुरु को जाकर बताना ही पड़ेगा।
उस युवक ने पूछा, कौन सा पाप! कैसा पाप! उस बूढ़े ने कहा, उस लड़की को कंधे पर बिठालना। वह युवा संन्यासी हंसने लगा। उसने कहा, मैं तो उसे कंधे से नदी के उस पार उतार भी आया, आप उसे अभी भी कंधे पर लिए हुए हैं! यू आर स्टिल कैरीइंग हर। अभी भी आप उसे खींच रहे हैं!
चाहे सिनेमागृह में जाएं, तो एक रूप है वासना का। और मंदिर में जाकर चर्चा सुनें, तो यह खींचने वाला रूप है वासना का। लेकिन सब तरफ वासना घेरे हुए है। सब तरफ वासना घेरे हुए है। यह तो रुग्ण मालूम होती है अवस्था; पशु से भी नीचे गिर गई अवस्था मालूम पड़ती है।
इससे ऊपर उठा जा सकता है। लेकिन उठने के लिए पहली ध्यान रखने की बात जरूरी जो है, वह यह है कि जो भी इससे लड़ने लगेगा, वह ऊपर नहीं उठ पाएगा। क्योंकि जिससे हम लड़ते हैं, उसमें हमारा रस निर्मित होता है। आप अपने मित्र को भी भूल सकते हैं; शत्रु को भूलना इतना आसान नहीं है। मित्र को भूल जाने में इतनी कठिनाई नहीं है, मित्र भूल ही जाते हैं, समय भुला देता है। लेकिन शत्रु! शत्रु को भुलाना बहुत मुश्किल है।
जिससे आप लड़ते हैं, उससे चौबीस घंटे लड़ना पड़ता है। और एक बड़ी कीमिया
की बात है भीतरी कि जिससे आप बहुत दिन तक लड़ते हैं, आप उसके जैसे ही हो जाते हैं। किसी से भी लड़कर देखें आप। अगर दो-चार साल किसी दुश्मन से आपकी दुश्मनी चल जाए, तो चार साल के बाद आप पाएंगे कि आप अपने दुश्मन जैसे हो गए।
दो मित्र भी इतने एक से नहीं होते, जितने दो शत्रु अंत में एक से हो जाते हैं। क्योंकि जिससे लड़ना पड़ता है, उसकी ही तरकीबें काम में लानी पड़ती हैं। और जिससे लड़ना पड़ता है, उसी की भाषा काम में लानी पड़ती है। और जिससे

लड़ना पड़ता है, उसका सत्संग भी करना पड़ता है। और जिससे लड़ना पड़ता है, चौबीस घंटे चेतना में उसका भाव बना रहता है।
इसलिए कामवासना से लड़ने वाले लोग एक बहुत मानसिक व्यभिचार में पड़ जाते हैं। भीतर व्यभिचार चलने लगता है। उनके सपने विकृत हो जाते हैं। अगर हम साधुओं के सपने देखें, तो हम बहुत घबड़ा जाएं। वैसे सपने कारागृहों में बंद अपराधी भी नहीं देखते हैं। सपने! अगर हम सपनों में प्रवेश कर सकें, तो हमें बहुत घबड़ाहट होगी। अच्छे आदमी बुरे सपने देखते हैं। बुरे आदमी इतने बुरे सपने नहीं देखते। कोई कारण नहीं है देखने का। बुरा वे दिन में ही कर लेते हैं; रात में करने को बचता नहीं। अच्छा आदमी जो दिनभर रोक लेता है... । कभी आपने उपवास किया हो, तो रात में आपको राजमहल में भोजन का निमंत्रण मिलेगा ही; जाना ही पड़ेगा। वह जो आपने दिन में रोक लिया है, वह रात सपने में आपका मन पूरा करेगा।
आप यह मत सोचना कि सपना है, इसका क्या मूल्य?
सपना भी आपका है, किसी और का नहीं है। और सपना आपसे पैदा होता है। जैसे आपसे कर्म पैदा होता है, वैसे ही स्वप्न भी आपसे पैदा होता है। अगर मैं एक आदमी की हत्या करता हूं दिन में, तो मैं उतना ही जिम्मेवार हूं, जितना मैं हत्या करने का सपना देखूं तब। अदालत मुझे नहीं पकड़ेगी, वह दूसरी बात है। लेकिन सपना भी मुझमें ही पैदा होता है, जैसे कर्म मुझमें पैदा होता है। कर्म भी मेरा है, स्वप्न भी मेरा है।
और मजा यह है कि कर्म तो मैं किसी दूसरे से भी करवा सकता हूं, सपना मैं किसी दूसरे से नहीं दिखवा सकता। मैं किसी की हत्या करवाना चाहूं तो एक आदमी को भी रख सकता हूं, लेकिन मेरा सपना मैं ही देख सकता हूं, दूसरा नहीं देख सकता; नौकर नहीं रखे जा सकते। इसका मतलब यह हुआ कि कर्म से भी गहरा संबंध सपने का मुझसे है। सपने के लिए तो मैं निपट जिम्मेवार हूं। और कोई जिम्मेवार नहीं है।
यह जो हमारे चित्त की रुग्णता पैदा होती है, वह है दमन, संघर्ष, वैमनस्य, शत्रुता, अज्ञान से भरा हुआ।
कामवासना कामदेव बन जाती है, अगर हम शांत, मौन, प्रेम से उस ऊर्जा को समझने की कोशिश करें, जो हमारे भीतर वासना बन गई है। और फिर उसे ऊपर उठा ले जाने का विज्ञान है। उसको बदलने का इंच-इंच शास्त्र है। फिर हम उसे बदलना शुरू करें।
कभी दो-चार छोटे प्रयोग करें, आप चकित हो जाएंगे। जब भी आपको कामवासना उठे, तब आप अपना ध्यान तत्क्षण सहस्रार के पास ले जाएं। आंख बंद कर लें, और अपने ध्यान को दोनों आंखों को ऊपर ले जाएं और अनुभव करें कि आपकी चेतना खोपड़ी के छप्पर से लग गई है। एक सेकेंड, और आप अचानक पाएंगे कि वासना तिरोहित हो गई। जब भी वासना उठे, तब तत्क्षण अपनी चेतना को खोपड़ी के पास ले जाएं, और आप पाएंगे, वासना तिरोहित हो गई। कितनी ही प्रगाढ़ वासना उठी हो, एक क्षण में विलीन हो जाएगी। क्योंकि वासना को चलने के लिए आपकी चेतना के सहयोग की जरूरत है।
और जो लोग इस तरह जीना शुरू कर देते हैं, कि उनकी चेतना धीरे-धीरे-धीरे सतत ऊपर की ओर प्रवाहित रहने लगती है, उनमें वासना पैदा होनी बंद हो जाती है। और अंततः चेतना की डोर को पकड़कर वासना की ऊर्जा ऊपर चढ़ने लगती है। और जिस दिन वासना ऊपर चढ़ती है, उस दिन जीवन में जैसे आनंद का अनुभव होता है, वैसा हजारों संभोगों में भी नहीं हो सकता। क्योंकि हर संभोग शक्ति को खोना है और हर समाधि शक्ति को पाना है।
नीचे उतरना, अपनी चेतना के तल को भी नीचे गिराना है। ऊपर उठना, अपनी चेतना के तल को भी ऊपर उठाना है। और जितने हम ऊपर उठते हैं और जितने हम हल्के होते हैं, उतने गहन आनंद में प्रवेश होता है।
जिस दिन कोई व्यक्ति अपनी खोपड़ी के पार भी अपनी चेतना को ले जाने में समर्थ हो जाता है, उस दिन उसे अनंत आनंद की उपलब्धि होती है।
इसे हम ऐसा समझ सकते हैं, जब कोई व्यक्ति अपनी ऊर्जा को काम-केंद्र से नीचे गिराता है, तब उसे सुख का आभास होता है; और जब कोई व्यक्ति अपनी काम-

184

ऊर्जा को सहस्रार से आकाश में तिरोहित करता है, तब उसे आनंद का अनुभव होता है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं। समस्त जन्म, समस्त सृजन मेरे
ही द्वारा है। मैं ही हूं।
यह जीवन को स्वीकार करने का अदभुत सूत्र है।
अल्बर्ट श्वीत्जर ने संभवतः इस सदी का हिंदू धर्म के ऊपर सबसे गहरा क्रिटिसिज्म, सबसे गहरी आलोचना लिखी है। अल्बर्ट श्वीत्जर इस सदी के दो- चार विचारशील लोगों में एक था। और उसके विचार का मूल्य है, और उसकी आलोचना विचारणीय है। उसने कहा है कि हिंदू धर्म लाइफ निगेटिव है, जीवन को अस्वीकार करता है, जीवन का निषेध करता है, जीवन का शत्रु है, जीवन को स्वीकार नहीं करता।
निश्चित ही श्वीत्जर को कुछ भूल हो गई है। और श्वीत्जर की भूल का कारण है। क्योंकि श्वीत्जर गांधी को पढ़कर समझता है कि वे हिंदू धर्म के प्रतीक हैं। श्वीत्जर महावीर और बुद्ध को पढ़कर समझता है कि वे हिंदू धर्म के प्रतीक हैं। श्वीत्जर को अगर हिंदू धर्म समझना है, तो उसे कृष्ण को पढ़ना चाहिए। न तो महावीर और न बुद्ध और न गांधी, ये हिंदू धर्म के प्रतीक नहीं हैं। और इनको पढ़ने से ऐसा वहम पैदा हो सकता है, ऐसा भय पैदा हो सकता है कि जीवन का निषेध है, जीवन का विरोध है। कृष्ण को पढ़ने पर पता चलेगा कि जीवन का इतना समग्र स्वीकार कहीं और संभव नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं।
काम की जहां स्वीकृति हो गई, वहां जीवन स्वीकार हो जाता है। और जहां काम की अस्वीकृति हुई, वहां जीवन का अस्वीकार हो जाता है।
बड़े मजे की बात है। श्वीत्जर ईसाई है। ईसाइयत ज्यादा जीवन निषेधक है। ईसाइयत में जीवन का ज्यादा विरोध है। ईसाइयत में काम, सेक्स पाप है। मूल पाप है, महापाप है। और श्वीत्जर ईसाई है और फिर वह देख पाता है कि हिंदू धर्म जीवन निषेधक है, तो वह गांधी को समझने चल पड़ता है, तो भूल होगी। भूल इसलिए होगी कि गांधी पर जो प्रभाव हैं जीवन निषेध के, वे रस्किन और टाल्सटाय के द्वारा ईसाइयत से आए हुए प्रभाव हैं।
एक बहुत मजे की घटना पश्चिम में घटी है कि पश्चिम ने जीवन के विरोध का सबसे बड़ा प्रयोग किया था ईसाइयत के द्वारा। ईसाइयत में भयंकर विरोध है। हम राम के साथ सीता को खड़ी कर सकते हैं, और राम को भगवान मान सकते हैं। हम कृष्ण के साथ गोपियां नाचती हों, तो बिना एतराज किए कृष्ण को भगवान मान सकते हैं। ईसाइयत नहीं मान सकती। ईसाइयत तो मानती ही है कि कामवासना ही इस जगत में पाप का कारण है। इसलिए कामवासना से हट जाना है। और हट जाने का मतलब गहरा दमन है।
दो हजार साल में ईसाइयत ने पश्चिम में कामवासना का इस बुरी तरह दमन किया कि आज उस दमन का प्रतिफल पश्चिम में आ रहा है। जब कोई चीज बहुत दबाई जाती है, तो उसका प्रतिकार और रिएक्शन और प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। ईसाइयत ने जिस चीज को खूब दबाया था जोर से, आज वह जोर से फैलकर पैदा हो गई है। आज पश्चिम में जो वासना का खुला खेल है, उसमें जिम्मेवार पश्चिम के आज के लोग कम और दो हजार साल के वे लोग ज्यादा हैं, जिन्होंने वासना को बिल्कुल दबाने का पागलपन से भरा हुआ आग्रह किया।
श्वीत्जर की आलोचना अनुचित है। लेकिन उसके कारण हैं, क्योंकि ऐसे लोग भारत में जरूर हुए हैं, जो जीवन निषेधक हैं। लेकिन भारत की मूल धारा जीवन निषेधक नहीं है। भारत की मूल धारा जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करती है, उसकी पूर्णता में स्वीकार करती है। जीवन जैसा है, भारत उसको अंगीकार करता है और फिर अंगीकार के द्वारा उसे रूपांतरित करता है।
इस भेद को ठीक से समझ लें। आप किसी चीज से लड़ सकते हैं बदलने के लिए, आप किसी चीज को स्वीकार कर सकते हैं बदलने के लिए। स्वीकार करके जो बदलाहट है, वह गहरी होती है। लड़कर जो बदलाहट है, वह गहरी नहीं होती। क्योंकि जिससे आप लड़ते हैं, उसे आप समझ ही नहीं पाते। समझने के लिए मैत्री चाहिए।
कामवासना से भी मैत्री चाहिए।

कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं। वे यह कहते हैं कि यह पूरा जीवन मुझसे ही पैदा होता है। यह जीवन का सारा खेल मेरा ही खेल है। और यह सब दिव्य हो सकता है। इसलिए अपने को इससे संयुक्त करते हैं।
सर्पों में वासुकि हूं, नागों में शेषनाग, जलचरों में वरुण देवता हूं, पितरों में पित्रेश्वर तथा शासन करने वालों में यमराज हूं।
यह प्रतीक बहुत कीमती है; वैसा ही, जैसा कामदेव, वैसा ही यमराज। इसे हम थोड़ा समझ लें।
शासन करने वालों में यमराज, मृत्यु का दूत, मृत्यु का शासक! शासन करने वालों में कृष्ण को कोई और न सूझा! बड़े शासक हो गए हैं। पृथ्वी ने बड़े शासक देखे हैं। स्वर्ग भी शासकों को जानता है। लेकिन कृष्ण को यमराज क्यों शासकों में श्रेष्ठ मालूम पड़ा? कुछ कारण हैं।
एक, इस जगत में मृत्यु के सिवाय और कुछ भी निश्चित नहीं है। इस जगत में अगर कोई एक चीज सुनिश्चित है, एब्सोल्यूटली सर्टेन, तो वह मृत्यु है। बाकी सब चीजें अनिश्चित हैं। हो भी सकती हैं, न भी हों। मृत्यु होगी ही। मृत्यु न हो, ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता।
जीवन में बाकी सब हेजार्ड है, सब अनिश्चित है। जीवन में सब ऐसा है, जैसे कोई कागज की नाव समुद्र की लहरों पर कहीं भी डोल रही हो। कहीं भी जा सकती है; पूरब भी जा सकती है, पश्चिम भी जा सकती है; बड़ी लहरों पर, छोटी लहरों पर। यह नाव कहीं भी डोल सकती है। तरंगों के हाथ में सब अनिश्चित है। एक बात सुनिश्चित है कि यह नाव कागज की डूबेगी। उतनी बात निश्चित है। और वह निश्चय बदला नहीं जा सकता। मृत्यु सर्वाधिक सुनिश्चित तथ्य है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, शासकों में मैं यमराज हूं। क्योंकि उसके शासन में जरा भी शिथिलता नहीं है, जरा भी अपवाद नहीं है। सब चीजों में अपवाद हो सकता है; उसके शासन में अपवाद नहीं है। उसका शासन निरपवाद है। कानून वहां पूरा है, उसमें रत्तीभर फर्क नहीं है।
दूसरी बात, एक आदमी अमीर हो सकता है, एक गरीब हो सकता है। एक आदमी बुद्धिमान हो सकता है, एक आदमी बुद्धिहीन हो सकता है। एक आदमी सुंदर हो सकता है, एक आदमी असुंदर हो सकता है। हम चेष्टा करके कल सारी संपत्ति बांट दें, सभी आदमियों के पास बराबर संपत्ति हो जाए, तब भी दो बराबर संपत्ति वाले आदमियों का सुख बराबर नहीं होता। हम संपत्ति बांट दें, तो हम संपत्ति को भूल जाएंगे, सौंदर्य पीड़ा देने लगेगा। बुद्धि पीड़ा देगी। कोई ज्यादा बुद्धिमान होगा, कोई कम बुद्धिमान होगा।
जीवन में समानता असत्य है, होती ही नहीं। सोशलिज्म एक सपना है, जो कभी पूरा नहीं होता, और न कभी पूरा हो सकता है। लेकिन एक सुखद सपना है। देखने में मजा आता है। समाजवाद कभी पूरा नहीं हो सकता है जीवन में, क्योंकि जीवन असमानता है। सब तरह से जीवन असमान है। दो व्यक्ति जरा भी समान नहीं हैं। प्रकृतिगत एक-एक व्यक्ति अलग-अलग असमान है। सिर्फ जगत में एक ही सोशलिज्म निश्चित है, वह मृत्यु का समाजवाद है। मृत्यु के समक्ष सब समान है।
जीवन में सब असमान है, मृत्यु के समक्ष सब समान है। गरीब और अमीर, बुद्धिमान और मूढ़, सुंदर और असुंदर, सफल और असफल, स्त्री और पुरुष, बच्चे और बूढ़े, काले और गोरे, नीग्रो और अंग्रेज, कोई भी--मृत्यु इस जगत में अब तक पाई गई एकमात्र सोशलिस्टिक डिक्टेटरशिप है, एकमात्र समाजवादी तंत्र उसी के पास है। वहां सब समान है।
मृत्यु सबको समान कर देती है। उसका शासन पक्षपात नहीं मानता। अमीर यह नहीं कह सकता कि थोड़ी देर रुक, क्योंकि मैं अमीर हूं। अभी थोड़ी देर से आना, क्योंकि इस वक्त मेरी पार्टी हुकूमत में है! अभी फुरसत नहीं मिलने की, क्योंकि अभी मैं मिनिस्टर हूं। नहीं, यह कोई भी उपाय नहीं है। गरीब भिखारी हो कि सम्राट हो, हारा-पराजित आदमी हो कि विजेता हो, मृत्यु के समक्ष पक्षपात नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, शासकों में मैं यमराज। न कोई पक्षपात है, न कोई अनिश्चितता है; न कोई भेदभाव है, न कोई अपवाद है। मृत्यु अनूठी घटना है। और मुझे ऐसा लगता है कि अगर हम किसी दिन सच में ही सफल हो जाएं पूर्ण समाजवाद लाने में--हो नहीं सकते--हो जाएं, सब कुछ समान कर दें, तो यह पृथ्वी

मरघट के जैसी लगेगी, जिंदगी के जैसी नहीं। क्योंकि अगर हम सब समान करने में सफल हो जाएं, तो जिंदगी मौत जैसी मालूम पड़ेगी। मौत ही समान हो सकती है। जिंदगी के होने का ढंग ही असमानता है, इनइक्वालिटी। चेष्टा करके हम कुछ-कुछ इंतजाम कर सकते हैं, लेकिन वे इंतजाम झूठे होंगे।
वे इंतजाम ऐसे ही होंगे, जैसे यहां बैठे सारे लोगों के चेहरे पर मैं नीला रंग पोत दूं, तो एक अर्थ में समानता आ गई कि सभी के पास नीले चेहरे हैं। लेकिन उस नीले रंग के पीछे चेहरों की पृथकता कायम रहेगी। और उस नीले रंग के पीछे भी कोई सुंदर होगा और कोई कुरूप होगा, और कोई बूढ़ा होगा और कोई जवान होगा। बस, नीला रंग भर एक थोपा हुआ ऊपर से समान हो जाएगा।
हम आर्थिक समानता दुनिया पर थोप सकते हैं, लेकिन भीतर सब असमान होगा। असल में समानता एक थोपी हुई चीज है, क्योंकि व्यक्ति न समान पैदा होते, न समान जीते; बस समान मरते हैं।
मृत्यु का शासन इस अर्थ में, शायद किसी भी और शासन से तुलना नहीं किया
जा सकता।
कृष्ण ने कहा कि तथा शासन करने वालों में मैं यमराज हूं।
तो मुझसे पक्षपात नहीं चाहा जा सकता, इसका अर्थ हुआ यह। इसका अर्थ हुआ
कि जो परमात्मा से पक्षपात मांग रहे हैं, वे पागल हैं। पक्षपात नहीं मिल सकता। जो परमात्मा से प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि उनके लिए अपवाद बना दिया जाए, वे गलती पर हैं। कोई अपवाद नहीं हो सकता।
हम सब इसी कोशिश में लगे हैं कि परमात्मा हमारे लिए अपवाद हो। सबके साथ कुछ भी करे, हमें छोड़ दे। सबके पाप माफ करे न करे, हमारे माफ कर दे। हम ऐसे हिसाब में लगे हैं कि सबको तो उनके पापों का दंड ठीक से मिले और हमारे पाप हमें क्षमा कर दिए जाएं, क्योंकि हम गंगास्नान कर आए हैं! या हम रोज पूजा करते हैं, कि हम रोज माला फेरते हैं। हम कुछ रिश्वत दे रहे हैं। हम एक नारियल चढ़ा देते हैं। हम फूल रख आते हैं परमात्मा के चरणों में। हम कुछ रिश्वत दे रहे हैं। हम उसे फुसला रहे हैं कि मेरे साथ कुछ जरा अपनेपन का ख्याल करो। मुझ पर कुछ पक्षपात करो। कुछ मेरे साथ अपवाद करो। सबके नियम मुझ पर मत लगाना।
नहीं, यह कुछ भी नहीं हो सकता। कृष्ण कहते हैं, शासन करने वालों में मैं यमराज हूं। नियम पूरा होगा, पूरा किया जाएगा। नियम बिल्कुल तटस्थ है। महावीर ने तो बड़ी मजे की बात की है। महावीर ने इसीलिए कहा कि नियम चूंकि इतना तटस्थ है, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है, नियम काफी है। महावीर ने परमात्मा की जरूरत ही अस्वीकार कर दी। उन्होंने कहा, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं।
थोड़ा सोचने जैसा है। महावीर ने कहा कि नियम इतना शाश्वत है, इतना अचल
है कि नियम काफी है। परमात्मा की बीच में क्या जरूरत है? नियम अपना काम करता रहेगा। जो बुरा करेगा, वह बुरा पाएगा। जो पहाड़ से कूदेगा, वह नीचे टकराकर मर जाएगा। जो जमीन की कशिश का ख्याल नहीं रखेगा, उसके पैर टूट जाएंगे। जो भोजन नहीं करेगा, वह मर जाएगा। जैसे ये नियम शाश्वत हैं, वैसे ही जीवन का अंतरस्थ नियम भी शाश्वत है।
इसलिए महावीर ने कहा, भगवान को, परमात्मा को बीच में क्यों रखना! क्योंकि परमात्मा को बीच में रखने से अड़चन होगी। अड़चन यह होगी कि या तो परमात्मा यह कहेगा कि नियम तो पूरा होगा, मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूं। तब वर्चुअली उसका होना न होना बराबर है। और अगर परमात्मा को होना है, तो वह कहेगा, कोई फिक्र नहीं, तू मेरा भक्त है, तो तुझे मैं माफ किए देता हूं, दूसरे को माफ नहीं करूंगा; तो अन्याय होगा।
तो महावीर ने कहा, परमात्मा को बीच में रखने से उपद्रव होगा, क्योंकि परमात्मा और नियम, दो के बीच तकलीफ होगी। अगर परमात्मा नियम बदल ही नहीं सकता, तो उसका होना न होना बराबर है। और अगर वह नियम बदल सकता है, तो जिंदगी बिल्कुल बेकार है। क्योंकि उसका मतलब यह हुआ कि जो सच बोलता है, वह भी नर्क में पड़ सकता है, अगर परमात्मा उसके पक्ष में न हो। और जो झूठ बोलता है, वह भी स्वर्ग में जा सकता है, अगर परमात्मा उसके पक्ष में हो।

इसलिए महावीर ने तो कहा, नियम काफी है। पर महावीर ने नियम को ही परमात्मा मान लिया।
कृष्ण भी वही कह रहे हैं। कृष्ण कह रहे हैं कि तू ख्याल रखना अर्जुन, मैं शासन करने वालों में यमराज हूं। न कोई अपवाद हो सकता है, न कोई भेद हो सकता है, न कोई रियायत हो सकती है, न कोई सुविधा हो सकती है। नियम तो पूरा लागू होगा। और उतनी ही सख्ती से लागू होगा, जैसे मौत लागू होती है। उसमें कोई भेद-भाव नहीं किया जा सकता। नियम का अर्थ ही खो जाता है, जब उसमें भेद-भाव किया जाता है।
तो कृष्ण कहते हैं, यमराज हूं मैं। मृत्यु की तरह सुनिश्चित मेरा शासन है।
और हे अर्जुन, मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गिनती करने वालों में समय हूं। पशुओं में मृगराज, पक्षियों में गरुड़ हूं।
ये दो छोटे प्रतीक और समझ लेने जैसे हैं।
मैं दैत्यों में प्रह्लाद हूं! प्रह्लाद जन्मा तो दैत्यों के घर में।
लेकिन घर में जन्मने से कुछ भी नहीं होता। घर बंधन नहीं है। प्रह्लाद दैत्य के घर में जन्मता है और परम भक्ति को उपलब्ध हो जाता है। शायद दैत्यों के घर में जो नहीं जन्मे हैं, वे भी इतनी भक्ति को उपलब्ध नहीं हो पाते। प्रह्लाद जैसा भक्त खोजना बिल्कुल मुश्किल है।
यह बड़े मजे की बात है। दैत्य के घर में जन्मा हुआ बच्चा परम भक्त हो गया; और सदगृहस्थों, सज्जनों और देवताओं के घर में जन्मे बच्चे भी प्रह्लाद के मुकाबले एक नहीं टिक पाते। इससे कुछ बातें निकलती हैं।
एक, आप कहां पैदा होते हैं, किस परिस्थिति में, यह बेमानी है, इररेलेवेंट है। लेकिन हम सब यही रोना रोते रहते हैं कि परिस्थिति ऐसी है, क्या करें? परिस्थिति ही ऐसी है, मैं कर क्या सकता हूं? और अभी तो इस सदी में यह रोना इतना भयंकर हो गया है कि अब किसी को कुछ करने का सवाल ही नहीं है।
एक आदमी चोर है, तो इसलिए चोर है, क्योंकि परिस्थिति ऐसी है। और एक आदमी हत्या करता है, तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं, वह क्या कर सकता है! उसकी बचपन से सारी अपब्रिंगिंग, उसका पालन-पोषण जिस ढंग से हुआ है, उसमें वह हत्या ही कर सकता है! सब कुछ परिस्थिति पर निर्भर है।
मार्क्स ने कहा है, आदमी तय नहीं करता समाज को, समाज तय करता है आदमी को। आदमी निर्माण नहीं करता परिस्थितियों का, परिस्थितियां निर्माण करती हैं आदमी का।
ध्यान रखें, धर्म और धर्म के विरोध में जो भी धारणाएं हैं, उनके बीच यही फासला है। धर्म कहता है, आदमी निर्माण करता है सब कुछ, परिस्थिति का और अपना। और धर्म के विपरीत जो धारणाएं हैं, वे कहती हैं, आदमी कुछ निर्माण कर नहीं सकता, परिस्थितियां सब निर्माण करती हैं, अपना भी और आदमी का भी। इसलिए मार्क्स कहता है, परिस्थिति बदलो, तो आदमी बदल जाएगा। इसलिए सारी दुनिया में कम्युनिज्म परिस्थिति बदलने की कोशिश में लगा है कि आदमी बदल जाए।
धर्म कहता है, परिस्थिति कितनी ही बदलो, आदमी नहीं बदलेगा। आदमी को बदलो, तो परिस्थिति बदल जा सकती है। आदमी ज्यादा कीमती है, चेतना ज्यादा मूल्यवान है। परिस्थिति जड़ है। आदमी मालिक है।
और इसलिए कृष्ण कहते हैं, राक्षस दैत्यों के घर में पैदा हुआ, दैत्यों में प्रह्लाद मैं हूं।
सारी परिस्थिति विपरीत थी। सारी परिस्थिति विपरीत थी। वहां भक्त होने का कोई उपाय न था। उपाय ही न था, और प्रह्लाद इतना गहरा भक्त हो सका। दूसरी बात आपसे कहता हूं, जब विपरीत परिस्थिति हो, तब ऊपर से जो विपरीत दिखता है, उसका अगर उपयोग करना आता हो, तो वह अनुकूल हो जाता है। असल में विपरीत परिस्थिति बन जाती है चुनौती। अगर प्रह्लाद को कहीं अच्छे आदमी के घर में पैदा कर देते, तो शायद इतना बड़ा भक्त न हो पाता। और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अच्छे आदमियों के बच्चे इसीलिए बिगड़ जाते हैं कि अच्छे आदमी अच्छे होने की चुनौती नहीं देते, बुरे होने की चुनौती देते हैं।

गांधी का बड़ा लड़का मुसलमान हो गया था, गांधी की वजह से। आदमी अच्छे थे, एकदम अच्छे थे। लेकिन अच्छे होने पर इतना आग्रह था कि उनके बड़े लड़के हरिदास के मन में यह आग्रह गुलामी जैसा मालूम होने लगा। यह मत खाओ, वह मत पीयो। इतने वक्त सोओ, इतने वक्त उठो। सारी जिंदगी जकड़ दी।
वह जकड़न इतनी भारी हो गई कि उस पूरे के पूरे को तोड़कर हरिदास भाग खड़ा हुआ। जैसे प्रह्लाद भाग खड़ा हुआ अपने बाप से, वैसे हरिदास भाग खड़ा हुआ अपने बाप से। हरिदास अब्दुल्ला गांधी हो गया, मुसलमान हो गया। मांस खाने लगा, शराब पीने लगा। कसम खा ली कि ब्रह्ममुहूर्त में उठना ही नहीं, चाहे कुछ भी हो जाए। नींद भी खुल जाए, तो भी नहीं उठना। रात देर से ही सोना है, इसका नियम बना लिया। वह जो-जो गांधी ने थोपा था, उस-उस के विपरीत चला गया। ध्यान रखना आप, आपका बहुत अच्छा होना कहीं आपके बच्चों के लिए विपरीत चुनौती न हो जाए। इसलिए अच्छे घरों में अच्छे बच्चे पैदा नहीं हो पाते। बुरे घरों में अक्सर अच्छे बच्चे पैदा हो पाते हैं। अच्छे घरों में अच्छे बच्चे पैदा नहीं हो पाते। अच्छे बाप अच्छे बच्चे पैदा करने में बड़े असमर्थ सिद्ध होते हैं।
उसका कुल रहस्य इतना है कि वे इतने जोर से अच्छाई थोपते हैं कि अगर बच्चा बुद्धू हो तो ही मान सकता है, और बुद्धू हो तो बहुत आगे नहीं जाता। थोड़ा बुद्धिमान हो, रिबेलियस हो जाता है, बगावती हो जाता है। उसका भी अपना अहंकार है, अपनी अस्मिता है। अगर बहुत ज्यादा दबाव डाला, तो एक सीमा के बाद या तो आदमी टूट ही जाता है, तो मिट जाता है; और या फिर भाग खड़ा होता है, विपरीत यात्रा पर निकल जाता है।
शायद प्रह्लाद के लिए भी सहयोगी हुआ पिता का होना। इससे जो मैं मतलब निकालना चाहता हूं, वह यह कि आप कभी यह मत कहना कि परिस्थिति बुरी है, इसलिए मैं अच्छा नहीं हो पा रहा हूं। सच तो यह है कि परिस्थिति बुरी हो, तो अच्छे होने की संभावना ज्यादा होनी चाहिए, क्योंकि चुनौती है।
हां, अगर कोई आदमी मुझसे कहे कि परिस्थिति इतनी अच्छी है कि मैं अच्छा नहीं हो पा रहा, तो मुझे तर्कयुक्त मालूम पड़ता है। ठीक कह रहा है। बेचारा क्या कर सकता है? परिस्थिति इतनी अच्छी है, अच्छा हो भी कैसे सकता है! लेकिन जब कोई आदमी कहता है कि परिस्थिति बुरी है, इसलिए अच्छा नहीं हो
पा रहा है, तो वह सिर्फ अपनी नपुंसकता, अपनी इंपोटेंस घोषित कर रहा है। उसका मतलब यह है कि वह कुछ भी नहीं हो सकता। जब परिस्थिति इतनी विपरीत है, तब भी अगर तुम अकड़कर खड़े नहीं हो सकते उसके विरोध में, तो तुम कभी भी खड़े नहीं हो सकोगे।
इसका यह मतलब हुआ कि जिसके पास समझ हो, वह विपरीत परिस्थिति को भी अनुकूल बना लेता है। और जिसके पास नासमझी हो, वह अनुकूल परिस्थिति को भी खो देता है।
कृष्ण कहते हैं, मैं प्रह्लाद हूं दैत्यों में।
प्रह्लाद से ज्यादा खिला हुआ, शांत और मौन और निर्दोष फूल कहां है? लेकिन दैत्यों के बीच में! पर ऐसे यह उचित ही है। कमल भी खिलता है, तो कीचड़ में! और कमल यह नहीं चिल्लाता फिरता कि कीचड़ में मैं कैसे खिलूं, बहुत गंदी कीचड़ नीचे भरी पड़ी है! कमल खिल जाता है। उसी कीचड़ से रस खींच लेता है, उसी कीचड़ से सुगंध खींच लेता है। उसी कीचड़ से रंग खींच लेता है। और उस कीचड़ के पार हो जाता है। न केवल उस कीचड़ के पार हो जाता है, बल्कि उस पानी के भी पार हो जाता है जिससे प्राण पाता है। खिलता है खुले आकाश में।
हम सोच भी नहीं सकते कि कमल और कीचड़ में कोई बाप-बेटे का संबंध है, कमल
और कीचड़ में कोई उत्पत्ति और जन्म का संबंध है। कमल और कीचड़ को एक साथ रखिए, समझ में भी नहीं आएगा कि इन दोनों के बीच कोई सेतु, कोईशृंखला है। लेकिन कीचड़ ही कमल है। और हर कीचड़ से कमल हो सकता है। कीचड़ के लिए बैठकर जो रोता रहता है, वह नाहक ही अपने आलस्य के लिए कारण खोज रहा है।
कीचड़ से कमल हो जाते हैं। और जिंदगी में जहां भी कीचड़ हो, समझ लेना कि यहां भी कोई न कोई कमल खिल सकता है। कोई भी कीचड़ हो, समझ लेना, कमल खिल सकता है।
यह कमल के खिलने का अवसर है।

लेकिन हम सब ऐसे लोग हैं, हम खिलना ही नहीं चाहते। खिलने में शायद श्रम मालूम पड़ता है, मेहनत मालूम पड़ती है। हम जो हैं, वही रहना चाहते हैं। इसलिए हम इस तरह के तर्क खोज लेते हैं, जिन तर्कों के आधार से हम जो हैं, वही बने रहने में सुविधा मिलती है।
हम कहते हैं, क्या कर सकते हैं, परिस्थिति अनुकूल नहीं है! सब तरफ विरोध है, सब तरफ प्रतिकूलता है, बढ़ने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए हम नहीं बढ़ पा रहे हैं। ऐसे तो हम शिखर पर पहुंच सकते थे, सुमेरु पर्वत के शिखर पर बैठ सकते थे, लेकिन परिस्थिति ही नहीं है।
परिस्थिति कभी भी नहीं होगी। परिस्थिति कभी भी नहीं थी। जो परिस्थिति
के पार नहीं उठ सकता, वह किसी भी परिस्थिति में इसी रोने को लेकर बैठा रहेगा।
कृष्ण कहते हैं, मैं प्रह्लाद हूं दैत्यों में।
जहां ईश्वर का नाम लेने की भी मनाही थी, वहां प्रह्लाद केवल नाम के ही सहारे ईश्वर को पा लिया। इसे थोड़ा समझें, क्योंकि हमें तो कोई मनाही नहीं है। जितनी मौज हो लें, रोज अपनी कुर्सी पर बैठ जाएं और ईश्वर का नाम लेते रहें।
बड़े मजे की बात है! प्रह्लाद ईश्वर के नाम से पा लिया। और आप काफी लेते रहते हैं। लोग अपने बच्चों का नाम ईश्वर पर इसीलिए रख लेते हैं--किसी का नाम राम, किसी का नारायण--कि दिनभर बुलाते रहें। लेकिन बुलाने का परिणाम यह होता है कि नारायण को चांटा भी लगाना पड़ता है, गाली भी देनी पड़ती है। ये सब परिणाम होते हैं, और कुछ नहीं होता।
नाम तो लोग रखते थे भगवान पर बच्चों का इसलिए कि दिन में अकारण ही, अनायास ही, बिना वजह के भगवान का नाम आ जाए। लेकिन जो फल होता है, वह कुल इतना ही होता है कि नारायण नाहक पिटते हैं, नाहक गाली खाते हैं! और धीरे- धीरे जब नारायण को गाली देने की भी क्षमता आ जाती है, तो फिर असली नारायण भी मिल जाएं, तो गाली ही निकलेगी। आदतें हैं।
लेकिन प्रह्लाद को तो कोई अवसर भी न था, भगवान के नाम के लेने की मनाही थी। उस बीच वह आदमी भगवान के नाम के ही सहारे जीवन को इतनी उत्कृष्टता पर ले जा सका, इसका कारण क्या होगा?
इसका कारण यह है कि जीवन की जो डायनेमिक्स, जीवन का जो गत्यात्मक रूप है, वह हम नहीं समझते हैं। अगर आपको भी बंद कर दिया जाए एक कोठरी में और सख्त मनाही कर दी जाए कि राम का नाम मत लेना, तब आपके हृदय की बहुत गहराई से राम का नाम आएगा। क्योंकि यह आपकी स्वतंत्रता की घोषणा होगी। और आपको बिठाया जाए और कहा जाए कि लो राम का नाम! जैसा कि मां-बाप बिठाल रहे हैं बच्चों को ले जा ले जाकर कि लो राम का नाम! बच्चे जबरदस्ती ले रहे हैं, कहीं कोई गहराई पैदा नहीं होती। कहीं कोई गहराई नहीं पैदा होती। जीवन की गत्यात्मकता बड़ी उलटी है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को बचपन से ही उसके घर के परिवार
के लोग उलटी खोपड़ी मानते थे। अगर उसकी मां को कहना हो कि भोजन कर लो, तो कहना पड़ता था कि आज उपवास करो! अगर उसकी मां को कहना पड़ता हो कि बाहर खेलने मत जाओ, तो कहना पड़ता था कि आज बाहर ही खेलो; भीतर मत आओ! जो भी करवाना हो, उससे उलटी आज्ञा देनी पड़ती थी।
नसरुद्दीन बड़ा हो गया। यह आज्ञा उलटी जारी रही। फिर वह अठारह साल का जिस दिन हुआ, उस दिन उसका बाप और नसरुद्दीन दोनों अपने गधों को लेकर नदी पार हो रहे थे छोटे-से पुल से। नसरुद्दीन का जो गधा था, उस पर शक्कर लदी थी और शक्कर का झोला बाईं तरफ बुरी तरह झूल रहा था। और ऐसा लगता था कि अब बोरा गिरा, नदी में अब गिरा--बाईं तरफ। बाप को बोरा हटवाना था दाईं तरफ। तो बाप ने कहा, बेटे नसरुद्दीन, बोरा दाईं तरफ गिर रहा है, बाईं तरफ जरा सरका दे। उलटी खोपड़ी था!
लेकिन उस दिन नसरुद्दीन ने बाईं तरफ ही सरका दिया। बोरा तो गिरा, बोरे
के साथ गधा भी नदी में गिर गया। बाप ने कहा कि नसरुद्दीन, यह कैसा उलटा चरित्र! आज तूने यह क्या किया! नसरुद्दीन ने कहा, आपको पता नहीं, मैं अठारह साल का हो गया, अडल्ट! अब मैंने बचपन की आदतें बदल दी हैं। अब मैं समझ

जाऊंगा कि तुम जो कह रहे हो, उससे उलटा नहीं करूंगा; तुम्हारा जो मतलब है भीतर, उसका उलटा करूंगा। अब मैं अडल्ट हो गया हूं। तुम जो कह रहे हो, उसका उलटा, तुमने बचपन में मुझे काफी धोखा दे लिया। अब मैं समझ गया हूं। अब तुम्हारा जो मतलब है भीतर, उसका उलटा करूंगा। अब तुम जरा सोच-समझकर आज्ञाएं देना।
आदमी का डायनेमिक्स, आदमी के जीवन की गति जो है, वह पोलेरिटीज में होती है, ध्रुवीयता में होती है, वैपरीत्य में होती है। हम सब विपरीत की तरफ झुकते चले जाते हैं।
यह प्रह्लाद की घटना विचारणीय है। इसलिए अपने बच्चों पर अच्छाई जबरदस्ती मत थोपना। नहीं तो बच्चे बुराई की तरफ हट जाएंगे। इसलिए बहुत डेलिकेट है मामला। इतना ही डेलिकेट, जैसी नसरुद्दीन के बाप को मुसीबत हुई। इसका यह मतलब नहीं है कि आप बुराई थोपना बच्चे पर। बहुत डेलिकेट है, नाजुक है। अच्छाई थोपना मत। और अच्छाई को खिलने में सहयोग देना, थोपना मत। बुराई की इतने जोर से निंदा मत करना कि बुराई में रस पैदा हो जाए। निंदा से रस पैदा होता है। बुराई का इतना निषेध मत करना कि निमंत्रण बन जाए।
किसी दरवाजे पर लिख दो कि यहां झांकना मना है, फिर कोई महात्मा भी वहां से बिना झांके नहीं निकल सकता। झांकना ही पड़ेगा। और अगर महात्मा चले गए बिना झांके, तो फिर किसी बहाने उनको लौटना पड़ेगा। और अगर हिम्मत न पड़ी कि कहीं भक्तगण देख न लें कि वहां झांककर देखते हो, जहां झांकना मना है, तो रात सपने में वे जरूर वहां आएंगे। उस पट्टी को झांकना ही पड़ेगा। वह मजबूरी, वह आब्सेशन हो जाता है।
बुराई को आब्सेशन मत बना देना। भलाई को इतना मत थोपना कि उसके विपरीत भाव पैदा हो जाए।
इसलिए बच्चे को बड़ा करना एक बहुत डेलिकेट बात है, बहुत नाजुक बात है।
और अब तक आदमी सफल नहीं हो पाया है। बच्चे को ठीक से बड़ा करने में आदमी अभी भी असफल है। अभी भी शिक्षा की सारी व्यवस्थाएं गलत हैं। क्योंकि बहुत नाजुक मामला है। और उस नाजुकपन को समझने में बड़ी कठिनाई है। बड़ी से बड़ी कठिनाई तो यह है कि हमें इस बात का ख्याल ही नहीं है कि आदमी के भीतर गति कैसे पैदा होती है?
यह प्रह्लाद के भीतर जो गति पैदा हुई, यह प्रह्लाद के पिता की वजह से पैदा हुई। और चूंकि वह दैत्यों के घर में पैदा हुआ था, इसलिए जब विपरीत चला, तो ठीक दैत्यों से उलटा सारे भक्तों को पार कर गया।
कृष्ण कहते हैं, मैं प्रह्लाद हूं दैत्यों में।
और गिनती करने वालों में समय हूं, टाइम।
यह आखिरी बात हम ख्याल में ले लें।
समय के कुछ लक्षण हैं। एक, कि आपको एक क्षण से ज्यादा कभी नहीं मिलता; कभी नहीं। आपके हाथ में एक क्षण ही होता है, बस। जब एक क्षण निकल जाता है, तब दूसरा मिलता है। जब दूसरा निकल जाता है, तब तीसरा मिलता है। आपके हाथ में दो क्षण एक साथ कभी नहीं होते।
समय भी बड़ा कैलकुलेटर है। समय से ज्यादा ठीक गिनती करने वाला कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। एक-एक व्यक्ति को एक-एक क्षण से ज्यादा कभी नहीं मिलता; कोई इसमें धोखा नहीं दे सकता। कोई कितना ही बड़ा महायोगी हो, और कोई कितना ही बड़ा धनी हो, और कोई कितना ही बड़ा ज्ञानी हो, कितना ही बड़ा वैज्ञानिक हो, वह समय को डिसीव नहीं कर सकता कि उससे दो क्षण एक साथ ले ले। बस, एक ही क्षण हाथ में आता है।
कभी आपने रेत की घड़ी देखी है? रेत की घड़ी में से रेत का एक-एक दाना नीचे गिरता रहता है। उसमें तो कभी भूल हो सकती है, क्योंकि आदमी की बनाई हुई घड़ी है और रेत के दाने छोटे-बड़े भी होते हैं। तो कभी कोई दो दाने भी गिर सकते हैं। लेकिन समय की घड़ी में से कभी भी दो दाने नहीं गिरते। एक ही क्षण आपके हाथ में होता है, नपा-तुला। और पूरी जिंदगी!
तो कृष्ण कहते हैं कि मैं समय हूं गिनती करने वालों में।
इससे ज्यादा सूक्ष्म गिनती किसी की भी नहीं है। और हिंदू दृष्टि से एक-एक व्यक्ति के क्षण गिने हुए हैं। कोई भी व्यक्ति अपने गिने हुए क्षण

से ज्यादा नहीं जी सकता। हिंदू हिसाब से जिंदगी की सीमा पिछली जिंदगी के कर्मों से नियत होती है। मैंने जो पिछले जन्म में किया है, वह मेरी इस जिंदगी के समय को तय करता है। मैं समय तो तय कर चुका हूं।
इसलिए ऐसा भी होता है, जैसे बुद्ध को ज्ञान हुआ, तब वे उस स्थिति को पहुंच गए कि उसके बाद जीने का कोई भी कारण न था। कोई भी कारण नहीं था। बुद्ध को जीने का क्या कारण! कोई वासना न रही, तो जीने का कोई कारण न रहा। लेकिन चालीस साल जीना पड़ा।
बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप अब क्यों जी रहे हैं? क्योंकि न कुछ आपको करना है, न कुछ पाना है। जो पाना था पा लिया, जो करना था कर लिया। अब कुछ भी बचा नहीं शेष। आप पूर्ण हो गए, तो अब आप क्या कर रहे हैं?
तो बुद्ध ने कहा कि वह पिछले जन्म में जो उम्र पा ली है, उसे पूरा करना पड़ेगा। वह चालीस साल मुझे जीना पड़ेगा। क्योंकि समय न तो एक क्षण कम करता है, और न एक क्षण ज्यादा, वह मुझे पूरा करना पड़ेगा। तो चालीस साल अब मैं जीऊंगा।
यह जीना वैसे ही है जैसे कि आपने साइकिल पर पैडिल मारा, फिर आप पैडिल रोक दिए, लेकिन साइकिल थोड़ी दूर आगे चली जाएगी। मोमेंटम! इतनी देर जो आपने साइकिल को पैडिल मारा, साइकिल ने थोड़ी शक्ति अर्जित कर ली। अब आप पैडिल न भी मारें, तो साइकिल एकदम से नहीं रुकेगी, थोड़ी दूर चली जाएगी।
बुद्ध कहते हैं कि अब मैं जो अर्जित कर लिया हूं जन्मों-जन्मों में,
वह चालीस साल की गति अभी काम करेगी, यह शरीर का यंत्र चलता रहेगा। उसमें क्षणभर कम-ज्यादा नहीं किया जा सकता।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, गिनती करने वालों में मैं समय हूं। न क्षण ज्यादा हो सकता है, न कम हो सकता है। न एक क्षण से ज्यादा किसी को मिल सकता है, न एक खोए हुए क्षण को वापस पाया जा सकता है। समय का गणित बिल्कुल पक्का है।
यह कुछ कारण से कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से। ये प्रतीक ऐसे ही नहीं चुन लिए हैं। अर्जुन को यही ख्याल है कि इनको मैं मार डालूंगा, ये जो दुश्मन इकट्ठे हैं। कृष्ण कह रहे हैं, मैं समय हूं गिनती करने वालों में। एक क्षण पहले तू किसी को मार नहीं सकता और एक क्षण ज्यादा जिलाने का कोई उपाय नहीं है। जो मरेंगे, उनका समय चुक गया था। जो बचेंगे, उनका समय बचा था। तू केवल निमित्त है। इससे ज्यादा तू नहीं है।
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें। कीर्तन में सम्मिलित हों और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
बारहवां प्रवचन

शस्त्रधारियों में राम

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झशाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी।। 31।।
सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।। 32।।
और मैं पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूं तथा मछलियों में मगरमच्छ हूं और नदियों में श्रीभागीरथी गंगा, जाह्नवी हूं।
और हे अर्जुन, सृष्टियों का आदि, अंत और मध्य भी मैं ही हूं। तथा मैं विद्याओं में अध्यात्म-विद्या अर्थात ब्रह्म-विद्या एवं परस्पर में विवाद करने वालों में तत्व-निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद हूं।

मैं पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूं। इन प्रतीकों को थोड़ा हम समझें।
वायु इस जगत में सर्वाधिक स्वतंत्र है। और स्वतंत्रता ही पवित्रता है। वायु कहीं बंधी नहीं है, कहीं ठहरी नहीं है, कहीं उसका लगाव नहीं है, कहीं उसकी आसक्ति नहीं है। वायु एक सतत गति है।
तो पहली बात, जहां भी लगाव होगा, वहीं अपवित्रता शुरू हो जाएगी। जहां
भी आसक्ति होगी, जहां भी ठहरने का मन होगा, जहां पड़ाव मंजिल बन जाएगा, वही अपवित्रता शुरू हो जाएगी।
जीवन की सारी दुर्गंध, जीवन की सारी कुरूपता, जहां-जहां हम ठहर जाते हैं और जकड़ जाते हैं, वहीं से पैदा होती है। जीवन जहां भी प्रवाह को खो देता है, गति को खो देता है, और जहां ठहर जाता है, जड़ हो जाता है... ।
जैसे नदी बहती है, तो नदी पवित्र होती है। और डबरा बहता नहीं, अपवित्र
हो जाता है। डबरे में भी वही जल है, जो नदी में है। लेकिन नदी में प्रवाह है, बहाव है, जीवन है। डबरा मृत है, मुर्दा है, कोई गति नहीं है। डबरा सड़ता है, दुर्गंधित होता है और नष्ट होता है। स्वभावतः, अपवित्र हो जाता है। कृष्ण कहते हैं, पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं।
पहली बात, पवित्रता वहीं ठहरती है, जहां प्रवाह सतत हो। पवित्रता वहीं ठहरती है, जहां कोई लगाव, जहां कोई रुकाव, जहां कोई ठहराव न आ जाए। पवित्रता वहीं ठहरती है, जहां कोई फिक्सेशन, प्राणों का अवरुद्ध होना न हो। जिसके प्राण भी वायु की तरह हैं--कहीं ठहरे हुए नहीं, कहीं रुकते नहीं, कहीं बंधते नहीं, कहीं कोई आसक्ति निर्मित नहीं करते--वही केवल पवित्रता को उपलब्ध हो पाएगा।
पुराने अति प्राचीन समय से संन्यासी को प्रवाहवत जीवन व्यतीत करने को कहा गया है। नदी की तरह बहता रहे। महावीर ने अपने संन्यासियों को कहा है कि वे तीन दिन से ज्यादा कहीं रुकें नहीं। तीन दिन के पहले हट जाएं। थोड़ा सोचने जैसा है। क्योंकि तीन दिन का यह राज महावीर को कैसे पता चला होगा, कहना मुश्किल है।
लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि आदमी को किसी भी जगह मन के लगने में कम से कम तीन दिन से ज्यादा का समय चाहिए। आप अगर एक नए कमरे में सोने जाएंगे, तो तीन रातें आपको थोड़ी-सी बेचैनी रहेगी, चौथी रात आप ठीक से सो पाएंगे। कहीं भी किसी नई स्थिति को पुराना बना लेने के लिए कम से कम तीन दिनों की जरूरत है। कम से कम। थोड़ा ज्यादा समय भी लग सकता है।
महावीर ने अपने संन्यासी को कहा है कि वह तीन दिन से ज्यादा एक जगह न रुके। इसके पहले कि कोई अपना मालूम पड़ने लगे, उसे हट जाना चाहिए। क्योंकि जहां लगा कि कोई अपना है, वहीं जंजीर निर्मित हो जाती है। और जिसके प्राणों पर जंजीर पड़ जाती है, उन प्राणों में कुरूपता और दुर्गंध और सड़ांध शुरू हो जाती है। डबरा बनना शुरू हो गया प्राणों का।

संन्यासी का अर्थ है, जो अपने को डबरा नहीं बनने देता। गृहस्थ का इतना
ही अर्थ है कि जो अपने को डबरा बनाने का पूरा आयोजन कर लेता है। चाहे तो गृहस्थ भी प्रवाहित रह सकता है, लेकिन उसे थोड़ी कठिनाइयां होंगी। उसे बहुत होश रखना पड़े, तो ही वह डबरा बनने से रुक सकता है। अन्यथा सब चीजें धीरे-धीरे जम जाएंगी, फ्रोजन हो जाएंगी और उनके बीच वह भी जम जाएगा। लेकिन हम सब तो यही कोशिश करते हैं कि जितने जल्दी जम जाएं, उतना अच्छा। जमने में सुविधा है, सुरक्षा है, कनवीनियंस है। गैर-जमे होने में असुविधा है, असुरक्षा है। रोज नए के सामने पड़ना पड़ता है, तो रोज नई बुद्धि की जरूरत पड़ती है। हम सब जम जाना चाहते हैं। जमे हुए आदमी का पुरानी बुद्धि से काम चल जाता है, नए की कोई आवश्यकता नहीं होती।
हम सब नए से भयभीत होते हैं। कुछ भी नया हो, तो चिंता पैदा होती है। क्योंकि पुराने के साथ कैसा व्यवहार करना, वह तो हम जानते हैं; नए के साथ फिर से व्यवहार सीखना पड़ता है। पुराना तो मृत, यंत्रवत हो जाता है। पुराने को तो हम ऐसे करते हैं जैसे कोई रोबोट, कोई मशीन का आदमी कर रहा हो। उसमें हमें फिर बुद्धिमत्ता की, चेतना की, होश की, कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। हम करते चले जाते हैं।
आप अपने घर जब आते हैं, तो आपको सोचना नहीं पड़ता, बाएं मुडूं, दाएं मुडूं। आप मुड़ते चले जाते हैं। यह काम शरीर ही कर लेता है। इसके लिए आपको कुछ, किसी तरह के होश की जरूरत नहीं होती। शराबी भी शराब पीकर अपने घर पहुंच जाता है। कितने ही हाथ-पैर डोलते हों, वह भी अपने घर का जाकर द्वार-दरवाजा खटखटाने लगता है। यह यंत्रवत है। इसके लिए कोई सोच-विचार की जरूरत नहीं है।
इसलिए जितने हम जम जाते हैं, उतना ही सोच-विचार से छुटकारा हो जाता है। विचार बड़ा कष्टपूर्ण है। इसलिए दुनिया में कोई भी आदमी विचार नहीं करना चाहता, विचार से बचना चाहता है। इसी वजह हमारा प्रवाह समाप्त हो जाता है।
कृष्ण कहते हैं, पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं।
तो वायु का पहला लक्षण तो यह है कि वह कहीं ठहरती नहीं। आई भी नहीं, कि गई। आ भी नहीं पाई, कि जा चुकी। आना भी नहीं हो पाया, कि जाना हो गया। वायु कहीं भी मेहमान नहीं बनती; स्पर्श करती है और हट जाती है।
संन्यासी वायु की तरह होना चाहिए। रुके न। जरूरी नहीं है कि वह मकान बदलता रहे, क्योंकि मकान बदलने से कुछ भी नहीं होता। मकान बदलकर भी रुकना हो सकता है। मकान बदलकर भी रुकना हो सकता है, क्योंकि रुकने के बड़े इंतजाम हैं। अब एक आदमी रोज मकान बदल लेता है, लेकिन रोज अपने को तो नहीं बदलेगा, तो वहीं जड़ हो जाएगा।
एक संन्यासी घर छोड़ देता है, लेकिन उस घर में जो भी सीखा था, वह तो साथ
ही लेकर चलता है। मजे की घटना घटती है दुनिया में कि संन्यासी भी हिंदू होता है, मुसलमान होता है, जैन होता है, ईसाई होता है। ये रुके होने के लक्षण हैं। संन्यासी को तो सिर्फ संन्यासी होना चाहिए।
हिंदू होने का मतलब है, उस घर से अभी बंधन है, जहां बड़ा हुआ था, जहां पाला गया था, जहां शिक्षा दी गई थी। जैन होने का मतलब है, उस घर से अभी बंधन है, जहां यह धर्म दिमाग में डाला गया था। जहां ये विचार डाले गए थे, वहां से अभी लगाव है। घर छोड़ दिया, लेकिन घर की जो आत्मा थी, वह अभी पीछा कर रही है; घर का जो प्रेत है, वह अभी पीछा कर रहा है। वह पीछा करेगा।
संन्यासी तो वह है, जिसका न कोई घर है, न कोई धर्म है। संन्यासी तो वह है, जिसका कोई भी नहीं। जो यह नहीं कहता कि ईसा मेरे हैं, कि बुद्ध मेरे हैं, कि महावीर मेरे हैं, कि कृष्ण मेरे हैं। या तो सभी कुछ उसका है, या कुछ भी उसका नहीं है। इन दो के अलावा उसके लिए कोई उपाय नहीं है। तो फिर वह वायु की तरह हो जाएगा।
तो वायु का पहला लक्षण है कि कहीं रुकती नहीं।
दूसरा लक्षण है वायु का कि दिखाई नहीं पड़ती, और है। वह और भी गहरी बात है। वायु है, अनुभव होती है, दिखाई नहीं पड़ती। स्पर्श होता है, प्रतीति

होती है, पकड़ में नहीं आती। पकड़ में नहीं आती, इसलिए बांधना मुश्किल है, रोकना मुश्किल है, परतंत्र करना मुश्किल है।
कृष्ण कहते हैं, पवित्र करने वालों में मैं वायु की भांति हूं।
जितनी पवित्रता होगी, उतनी ही ट्रांसपैरेंसी हो जाएगी। जितनी पवित्रता होगी, उतना ही आर-पार दिखाई पड़ने लगेगा। अगर आपने कोई पवित्र कांच देखा हो, बिल्कुल शुद्ध, तो कांच भी दिखाई नहीं पड़ेगा। आर-पार सब दिखाई पड़ेगा, बीच में कोई भी बाधा न होगी। वायु की पवित्रता उसकी पारदर्शिता भी है।
एक बहुत पुरानी इजिप्त में लोकोक्ति है कि जब कोई व्यक्ति परम पवित्र
हो जाता है, तो उसकी छाया नहीं बनती। जब वह चलता है धूप में, तो उसकी छाया नहीं बनती।
यह सिर्फ इसी बात के लिए इशारा है। छाया तो बनती है महावीर की भी और कृष्ण की भी और बुद्ध की भी। लेकिन इजिप्त की यह बड़ी प्राचीन कहावत कहती है कि जो पावन, परम पवित्र हो जाता है, उसकी छाया नहीं बनती। यह सिर्फ इस बात की सूचना देता है कि जो इतना पवित्र हो जाता है कि जिसके भीतर कोई अशुद्धि न रह गई हो, तो उसके आर-पार दिखाई पड़ने लगता है। और जिसके आर-पार दिखाई पड़ने लगे, उसकी छाया नहीं बनेगी। छाया नहीं बनेगी, यह केवल प्रतीक है।
महावीर के आर-पार दिखाई पड़ता है। महावीर एक दरवाजे की भांति हैं, खुले हुए। और हम एक दीवाल की भांति हैं, हमारे आर-पार कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हमें खुद नहीं दिखाई पड़ता, दूसरे को दिखाई पड़ना तो बहुत मुश्किल है। हम खुद एक ठोस दीवाल हैं पत्थरों की, जिसमें अपने को ही खोजना हो, तो भी बहुत मुश्किल है। कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
यह उसी मात्रा में दीवाल बिखरती चली जाती है, जिस मात्रा में मन पवित्र होता है। और जिस दिन मन वायु की तरह हो जाता है, कोई भी अपवित्रता नहीं रह जाती, ट्रांसपैरेंट हो जाता है, आर-पार दिखाई पड़ने लगता है। वायु का होना और दिखाई न पड़ना, संतत्व भी ऐसा ही है। होता है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता।
सुना है मैंने, एक मुसलमान फकीर के जीवन में कहा गया है। फकीर परमज्ञान को उपलब्ध हो गया, तो फरिश्ते उतरे, और उन्होंने उस फकीर को कहा कि परमात्मा ने हमें भेजा है कि तुम कोई वरदान मांग लो। तुम जो चाहो! तुम पर प्रभु प्रसन्न हैं। तो उस फकीर ने कहा, लेकिन अब! अब तो कोई चाह न रही। देर करके तुम आए। जब चाह थी बहुत, कोई आया नहीं पूछने। और अब जब चाह न रही, तब तुम आए हो?
उन देवताओं ने कहा, हम आए ही इसीलिए हैं। जब चाह नहीं रह जाती, तभी तुम इतने पवित्र होते हो कि तुमसे पूछा जा सके कि कुछ चाहते हो? चाह के कारण ही तो हमारे और तुम्हारे बीच दरवाजा बंद था। चाह गिर गई, इसलिए दरवाजा खुला। अब हम तुमसे पूछने आए हैं कि तुम कुछ मांग लो।
उस फकीर ने कहा, लेकिन अब मैं क्या मांग सकता हूं! लेकिन जितनी फकीर जिद्द करने लगा कि मैं कुछ भी नहीं मांग सकता, उतने ही फरिश्ते जिद्द करने लगे कि कुछ मांग लो।
जिंदगी ऐसी ही उलटी है। जो लोग जितनी जिद्द करते हैं कि यह चाहिए, उतना ही चूकते चले जाते हैं। जो दौड़ते हैं पाने को, खो देते हैं। और जो पाने का ख्याल ही छोड़ देते हैं, उनके पीछे सब कुछ दौड़ने लगता है।
उन देवताओं ने चरण पकड़ लिए और कहा कि परमात्मा हमसे कहेगा कि तुम इतना
भी न समझा पाए! वापस जाओ। तुम कुछ मांग लो। तो उस फकीर ने कहा कि तुम्हीं कुछ दे दो, जो तुम्हें लगता हो। तो उन देवताओं ने कहा कि हम तुम्हें वरदान देते हैं कि तुम जिसे भी छू दोगे, वह बीमार होगा तो स्वस्थ हो जाएगा, मुर्दा होगा तो जीवित हो जाएगा। अगर सूखे पौधे को तुम छू दोगे, तो अंकुर निकल आएंगे।
उस फकीर ने कहा, इतनी तुमने कृपा की, थोड़ी कृपा और करो। और वह कृपा यह
कि मेरे छूने से यह न हो, मेरी छाया के छूने से हो। मैं जहां से निकल जाऊं, मेरी छाया पड़ जाए सूखे वृक्ष पर, वह हरा हो जाए, लेकिन मुझे उसका पता न चले।

अगर मेरे छूने से होगा, तो मेरा अहंकार पुनः निर्मित हो सकता है। मुझे पता न चले। नहीं तो यह तुम्हारा वरदान, मेरे लिए अभिशाप हो जाएगा। मुझे पता न चले। मेरी शक्ति का मुझे पता न चले। मेरे संतत्व का मुझे पता न चले। मेरे रहस्य का मुझे पता न चले। यह जो चमत्कार प्रभु मुझे दे रहा है, यह मुझे पता न चले।
वह फकीर चलता गांव में, सूखे वृक्षों पर छाया पड़ जाती, वे हरे हो जाते। कभी किसी बीमार पर उसकी छाया पड़ जाती, वह स्वस्थ हो जाता। लेकिन न तो उस फकीर को पता चलता और न उस बीमार को पता चलता, क्योंकि छाया के पड़ने से यह घटना होती।
यह तो कहानी है, लेकिन सूफी फकीर कहते हैं कि जब भी कभी कोई संत पैदा होता है, तो न उसे खुद पता होता है कि मैं संत हूं, न किसी और को पता चलता है।
पता चलना, ठोस हो जाना है। पता न चलना, तरल होना है, विरल होना है, हवा
की तरह होना है। जिन्हें हमने भगवान भी कहा है, बुद्ध या महावीर को, उन्हें खुद कुछ भी पता नहीं है। वे निर्दोष बच्चों की भांति हैं।
हवा की तरह पवित्रता भी है, अनसेल्फकांशस; अनकांशस नहीं, अनसेल्फकांशस। अचेतन नहीं; अहंकार का जरा भी बोध नहीं है। अहंकार की चेतनता जरा भी नहीं है। और दिखाई नहीं पड़ना। जो भी चीज दिखाई पड़ने लगती है, वह पदार्थ बन जाती है। दिखाई पड़ना पदार्थ का गुण है, मैटर का गुण है। चैतन्य का गुण होना है, दिखाई पड़ना नहीं।
इसलिए हमें शरीर दिखाई पड़ते हैं, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। हमें पत्थर दिखाई पड़ते हैं, प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। जो भी हमें दिखाई पड़ता है, वह पदार्थ है। जो नहीं दिखाई पड़ता, वही परमात्मा है।
वायु हमें दिखाई नहीं पड़ती, पर है। और अगर हमें किसी को सिद्ध करना हो
कि वायु है, तो हम उसकी आंखों का उपयोग न कर सकेंगे। और अगर कोई जिद्द ही करे कि मेरे सामने प्रत्यक्ष करो, तो हम कठिनाई में पड़ जाएंगे। यद्यपि जो हमसे कह रहा है कि वायु को प्रत्यक्ष करो, वह भी वायु के बिना एक क्षण जी नहीं सकता है। एक श्वास आनी बंद होगी, तो प्राण निकल जाएंगे। वायु ही उसका प्राण है, जीवन है। लेकिन फिर भी वायु को सामने रखा नहीं जा सकता, प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। हम अनुभव कर सकते हैं। लेकिन किसी के शरीर में लकवा लग गया हो और उसे स्पर्श का कोई बोध न होता हो, तो हवाएं बहती रहें, उसे कोई पता नहीं चलेगा। वह श्वास भी लेगा, उसी से जीएगा और पता नहीं चलेगा।
कहते हैं कि मछलियों को सागर का पता नहीं चलता। नहीं चलता होगा। क्योंकि सागर में ही पैदा होती हैं, सागर में ही बड़ी होती हैं, सागर में ही समाप्त हो जाती हैं। उन्हें पता नहीं चलता होगा, क्योंकि जो इतना निकट है और सदा निकट है, उसका पता चलना बंद हो जाता है।
वायु सदा निकट है, चारों तरफ घेरे हुए है। वही हमारा सागर है, जिसमें
हम जीते हैं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा भी ठीक ऐसा ही है, चारों तरफ घेरे हुए है। उसके बिना भी हम क्षणभर नहीं जी सकते। वायु के बिना तो हम जी भी सकते हैं, उसके बिना हम क्षणभर नहीं जी सकते। वह हमसे वायु से भी ज्यादा निकट है। वह हमारे प्राणों का प्राण है। लेकिन उसका भी हमें कोई पता नहीं चलता।
कृष्ण कहते हैं, पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं। और शस्त्रधारियों में राम हूं।
यह बहुत प्यारा प्रतीक है।
राम के हाथ में शस्त्र बहुत कंट्राडिक्टरी है। राम जैसे आदमी के हाथ में शस्त्र होने नहीं चाहिए। राम का चित्र आप थोड़ा ख्याल करें। राम के शरीर का थोड़ा ख्याल करें। राम की आंखों का थोड़ा ख्याल करें। राम के व्यक्तित्व का थोड़ा ख्याल करें। शस्त्रों से कोई संबंध नहीं जुड़ता।
राम, शस्त्रों के साथ, बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। न तो राम के मन में हिंसा है, न राम के मन में प्रतिस्पर्धा है, न राम के मन में ईर्ष्या है। न राम किसी को दुख पहुंचाना चाहते हैं, न किसी को पीड़ा देना चाहते हैं। फिर

उनके हाथ में शस्त्र हैं। उनके हाथ में एक कमल का फूल होता, तो समझ में आता। उनके हाथ में शस्त्र, बिल्कुल समझ में नहीं आते।
जब भी मैं राम का चित्र देखता हूं, और उनके कंधे में लटका हुआ धनुष देखता हूं और उनके कंधे पर बंधे हुए तीर देखता हूं, तो राम के शरीर से उनका कोई भी संबंध नहीं मालूम पड़ता। राम का शरीर एक कवि का, एक काव्य का, एक काव्य की प्रतिमा मालूम होती है। राम की आंखें प्रेम की आंखें मालूम होती हैं। राम पैर भी रखते हैं, तो ऐसा रखते हैं कि किसी को चोट न लग जाए। राम का सारा व्यक्तित्व फूल जैसा है। और कंधे पर बंधे हुए ये तीर, और हाथ में लिए हुए ये धनुष-बाण, ये कुछ समझ में नहीं आते! इनका कोई मेल नहीं है, इनकी कोई संगति नहीं है।
राक्षस के हाथ में, रावण के हाथ में शस्त्र सार्थक मालूम होते हैं, संगत मालूम होते हैं। वहां गणित ठीक बैठता है। महावीर के हाथ में तीर का न होना, तलवार का न होना संगत मालूम होता है। गणित वहां भी ठीक है। महावीर हैं या बुद्ध हैं, उनके हाथ में कुछ भी नहीं है, कोई शस्त्र नहीं है। रावण के हाथ में शस्त्र हैं, सारा शरीर शस्त्रों से ढंका है, यह भी ठीक है।
राम कुछ अनूठे हैं। ये आदमी बुद्ध जैसे और इनके हाथ में शस्त्र रावण जैसे, यह बड़ा विरोधाभासी है। और कृष्ण को यही प्रतीक मिलता है कि शस्त्रधारियों में मैं राम हूं! बहुत शस्त्रधारी हुए हैं। शस्त्रधारियों की कोई कमी नहीं है। राम को क्यों चुना होगा? जानकर चुना है, बहुत विचार से चुना है, बहुत हिसाब से चुना है।
शस्त्र खतरनाक है रावण के हाथ में। इसे थोड़ा समझेंगे। थोड़ी बारीक है
और बात थोड़ी कठिन मालूम पड़ेगी।
शस्त्र खतरनाक है रावण के हाथ में, क्योंकि रावण के भीतर सिवाय हिंसा
के और कुछ भी नहीं है। और हिंसा के हाथ में शस्त्र का होना, जैसे कोई आग में पेट्रोल डालता हो। यह हम समझ जाएंगे। यह हमारी समझ में आ जाएगा। इस दुनिया की पीड़ा ही यही है कि गलत लोगों के हाथ में ताकत है। गलत आदमी उत्सुक भी होता है शक्ति पाने के लिए बहुत।
बेकन ने कहा है, पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली। शक्ति लोगों
को व्यभिचारी बना देती है और पूर्ण रूप से व्यभिचारी बना देती है। बेकन की यह बात ठीक है। लेकिन बेकन ने इसका जो कारण दिया है, वह ठीक नहीं है। बेकन सोचता है कि जिनके हाथ में भी शक्ति आ जाती है, शक्ति के कारण वे करप्ट हो जाते हैं। यह बात गलत है। वे करप्ट हो जाते हैं, यह तथ्य है; लेकिन शक्ति के कारण करप्ट हो जाते हैं, यह गलत है। क्योंकि हमने राम के हाथ में भी शक्ति देखी है और करप्शन नहीं देखा, व्यभिचार नहीं देखा; शक्ति का कोई व्यभिचार नहीं देखा।
तब बात कुछ और है। तथ्य तो ठीक है कि हम देखते हैं कि जिनके हाथ में शक्ति आती है, वे व्यभिचारी हो जाते हैं। लेकिन इसका कारण शक्ति नहीं है। इसका बुनियादी कारण यह है कि व्यभिचारी ही शक्ति के प्रति आकर्षित होते हैं। लेकिन कमजोर आदमी अपने व्यभिचार को प्रकट नहीं कर पाता, जब शक्ति हाथ में आती है, तब वह प्रकट कर पाता है। शक्ति के कारण व्यभिचार पैदा नहीं होता, प्रकट होता है।
आप कमजोर हैं, आपके भीतर हिंसा है; दूसरा आदमी मजबूत है, आप हिंसा नहीं
कर पाते। फिर एक बंदूक आपके हाथ में दे दी जाए, अब दूसरा आदमी कमजोर हो गया, अब आप ताकतवर हैं, अब हिंसा होगी।
चरित्र की असली परीक्षा तभी है, जब शक्ति पास में हो। जिनके पास शक्ति नहीं है, उनके चरित्र का कोई भरोसा नहीं है। उनका चरित्र केवल कमजोरी हो सकती है।
इसलिए इस दुनिया में जितने चरित्रवान लोग दिखाई पड़ते हैं, निन्यानबे प्रतिशत तो कमजोरी की वजह से चरित्रवान होते हैं। इसलिए इतने चरित्रवान भी दिखाई पड़ते हैं, इतनी चरित्र की बात भी होती है और दुनिया रोज चरित्रहीनता में उतरती जाती है।

कमजोर आदमी को ताकत दो और उसका चरित्र बह जाएगा। सबसे पहली जो दुर्घटना होगी, वह चरित्र की हत्या हो जाएगी। कमजोर आदमी को किसी तरह की ताकत दो--धन दो, पद दो, राजनीति की कोई सत्ता दो--सारा चरित्र बह जाएगा।
हम इस मुल्क में भलीभांति जानते हैं। जिनको आजादी के पहले हमने चरित्रवान समझा था, ठीक आजादी के बाद एक रात में उनके चरित्र बह गए। जो सेवक की तरह बिल्कुल भोले-भाले मालूम पड़ते थे, वे सत्ताधिकारी की तरह ठीक चंगेज और तैमूर के वंशज सिद्ध होते हैं। क्या हो जाता है रातभर में? क्या शक्ति लोगों को नष्ट कर देती है?
नहीं, लोग कमजोरी की वजह से केवल चरित्रवान थे। हाथ में ताकत आती है
और सब चरित्र खो जाता है। परीक्षा शक्ति के बाद ही पता चलती है।
निश्चित ही, शक्ति पाने के लिए कमजोर लोग उत्सुक होते हैं। होते ही वे हैं। मनसविद कहते हैं कि जिनके भीतर इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स है, जिनके भीतर हीनता का भाव है, वे ही लोग पदों की तरफ आकर्षित होते हैं। इसलिए अगर इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स से पीड़ित लोगों को देखना है, तो किसी भी देश की राजधानी में वे मिल जाएंगे। सब वहां मिल जाएंगे इकट्ठे।
जिनके भी मन में यह भय है कि मैं क्षुद्र हूं, मैं कुछ भी नहीं हूं, वे किसी पद पर बैठकर अपने और दूसरों के सामने सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं कुछ हूं। नोबडी वांट्स टु बी नोबडी। कोई नहीं पसंद करता कि मैं कोई भी नहीं हूं। हर एक के भीतर ख्याल है कि मैं कुछ हूं। कुछ हूं, लेकिन यह किसको कहूं, कैसे कहूं, जब तक कि हाथ में ताकत न हो। हाथ में ताकत हो, तो कहूं कि मैं कुछ हूं।
सिर्फ वे ही लोग ताकत की दौड़ से बच सकते हैं, जो बिना कहे भीतर हीनता
की ग्रंथि से मुक्त हो जाते हैं। जिनके भीतर हीन होने का भाव ही तिरोहित हो जाता है, वे ही लोग दूसरे से श्रेष्ठ होने की कोशिश बंद कर देते हैं!
यह बड़े मजे की बात है। इस जगत में श्रेष्ठ लोग ही श्रेष्ठ बनने की कोशिश नहीं करते। हीन लोग श्रेष्ठ बनने की कोशिश करते हैं।
राम के हाथ में शस्त्र गलत आदमी के हाथ में शस्त्र हैं। गलत इसलिए कह रहा हूं कि रावण के हाथ में तो ठीक आदमी के हाथ में हैं। रावण की आत्मा और शस्त्रों के बीच सेतु है, संबंध है, एक हार्मनी है, एक संगीत है। राम और शस्त्र के बीच कोई सेतु नहीं है। एक खाई है, अलंघ्य खाई है, अनब्रिजेबल गैप है। वही राम की खूबी भी है। शस्त्र हैं और राम हैं, और उन दोनों के बीच कोई सेतु नहीं है। रावण के हाथ में ठीक मालूम पड़ते हैं शस्त्र, लेकिन खतरनाक हैं। क्योंकि जब भीतर हिंसा हो और शस्त्र हाथ में हों, तो हिंसा गुणित होती चली जाएगी, मल्टीप्लाइड हो जाएगी।
पिछले महायुद्ध में फ्रांस पर जब हमला हुआ, तो फ्रांस की एक पहाड़ी पूरी तरह ध्वस्त हो गई। और युद्ध के बाद जब उस पहाड़ी में खुदाई की जा रही थी, तो एक बहुत हैरानी की घटना घटी। उस पहाड़ी में खुदाई करते वक्त आधुनिक युग के बमों के पड़े हुए शेल एक गुफा में उपलब्ध हुए हैं, जो पत्थरों में छिद गए थे। और वहीं पच्चीस हजार वर्ष पुराने पत्थर के औजार भी उस गुफा में पड़े थे। वे दोनों एक साथ उपलब्ध हुए। पच्चीस हजार साल पुराना पत्थर का औजार और आधुनिक युग के बम की खोल, वे दोनों एक साथ एक ही गुफा में उपलब्ध हुईं।
पच्चीस हजार साल पहले आदमी पत्थर से मार रहा था, आदमी यही था। पच्चीस हजार साल बाद यह बमों से मार रहा है, आदमी वही है। विकास आदमी का जरा नहीं हुआ, लेकिन पत्थर के औजार से एटम बम तक विकास हो गया! आदमी वही है।
इसलिए लोग कहते हैं कि मनुष्यता विकसित हो रही है, वह जरा संदिग्ध बात है। अस्त्र-शस्त्र विकसित हो रहे हैं, यह निस्संदिग्ध बात है। मनुष्यता विकसित होती नहीं दिखाई पड़ती। एवोल्यूशन, विकास, वस्तुओं का हो रहा है। पच्चीस हजार साल पहले जिस आदमी ने पत्थर के औजार से किसी की हत्या की होगी और पच्चीस हजार साल बाद जिसने बम से हत्या की, इनके हत्या करने का पैमाना बड़ा हो गया। पत्थर के औजार से आप एकाध को मार सकते थे, एटम से आप लाखों को एक साथ मार सकते हैं। एक हाइड्रोजन बम कोई एक करोड़ आदमियों को एक साथ मार सकता है। और अभी जमीन पर पचास हजार हाइड्रोजन बम तैयार हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि तैयारी जरूरत से ज्यादा हो गई। वे कहते हैं कि हमारे पास इतने बम हैं अब, जितने आदमी नहीं हैं मारने को! एक-एक आदमी को सात-सात बार मारना पड़े, तो हमारे पास इंतजाम है। हालांकि एक आदमी एक ही दफे में मर जाता है! लेकिन राजनीतिज्ञ बहुत हिसाब लगाते हैं! कोई बच जाए एक दफा, दुबारा, तिबारा, तो हम सात बार मार सकते हैं एक आदमी को। इक्कीस अरब आदमियों को मारने का इंतजाम है अभी, आबादी कोई तीन, साढ़े तीन अरब है। इक्कीस अरब आदमियों को मारने का इंतजाम है। और यह इंतजाम रोज बढ़ता जाता है। आदमी विकसित हुआ नहीं मालूम पड़ता, लेकिन ताकत विकसित हुई मालूम पड़ती है।
हिंसा हो भीतर, वैमनस्य हो भीतर, प्रतिस्पर्धा हो भीतर, शत्रुता हो भीतर, तो अस्त्र-शस्त्र घातक हैं। यह तो हमारी समझ में आ जाएगा। एक तरफ रावण है, जिससे शस्त्रों का मेल है, यह खतरनाक है। दूसरी तरफ बुद्ध और महावीर हैं। ये भी बिल्कुल गणित के फार्मूले की तरह साफ हैं। जैसे ये आदमी हैं, इनके पास वैसा ही सब कुछ है; इनके पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं है। भीतर प्रेम है, हाथ में तलवार नहीं है।
ये आदमी अपने लिए खतरनाक नहीं हैं, किसी के लिए खतरनाक नहीं हैं। लेकिन नकारात्मक रूप से समाज के लिए ये भी खतरनाक हो सकते हैं। नकारात्मक रूप से! क्योंकि इसका मतलब यह हुआ कि बुरे आदमी के हाथ में ताकत रहेगी और अच्छा आदमी ताकत को छोड़ता चला जाएगा। जाने-अनजाने यह बुरे आदमी को मजबूत करना है। महावीर की कोई इच्छा नहीं है, बुद्ध की कोई इच्छा नहीं है कि बुरा आदमी मजबूत हो जाए। लेकिन बुद्ध और महावीर का शस्त्र छोड़ देना, बुरे आदमी को मजबूत करने का कारण तो बनेगा ही। अच्छा आदमी मैदान छोड़ देगा, बुरा आदमी ताकतवर हो जाएगा।
दुनिया में जितनी बुराई है, उसमें सिर्फ बुरे लोगों का हाथ होता, तो
भी ठीक था, उसमें अच्छे लोगों का हाथ भी है। यह बात मैं कह रहा हूं, थोड़ी समझनी कठिन मालूम पड़ेगी। क्योंकि अच्छे आदमी का सीधा हाथ नहीं है, अच्छे आदमी का हाथ परोक्ष है, इनडायरेक्ट है। अच्छा आदमी छोड़कर चल देता है। अच्छा आदमी लड़ाई के मैदान से हट जाता है। अच्छा आदमी, जहां भी संघर्ष है, वहां से दूर हो जाता है। बुरे आदमी ही शेष रह जाते हैं। और बुरे आदमी ताकत पर पहुंच जाते हैं, तो पूरे समाज को बुरा करने का कारण होते हैं।
इसलिए कृष्ण राम को चुन रहे हैं, यह बहुत सोचकर कही गई बात है। राम दोहरे हैं, आदमी बुद्ध जैसे और शक्ति रावण जैसी।
और शायद दुनिया अच्छी न हो सकेगी, जब तक अच्छे आदमी और बुरे आदमी की ताकत के बीच ऐसा कोई संबंध स्थापित न हो। तब तक शायद दुनिया अच्छी नहीं हो सकेगी। अच्छे आदमी सदा पैसिफिस्ट होंगे, शांतिवादी होंगे, हट जाएंगे। बुरे आदमी हमेशा हमलावर होंगे, लड़ने को तैयार रहेंगे। अच्छे आदमी प्रार्थना-पूजा करते रहेंगे, बुरे आदमी ताकत को बढ़ाए चले जाएंगे। अच्छे आदमी एक कोने में पड़े रहेंगे, बुरे आदमी सारी दुनिया को रौंद डालेंगे। थोड़ा हम सोचें, राम जैसा आदमी सारी पृथ्वी पर खोजना मुश्किल है। एक अनूठा आयाम है राम का। एक अलग ही डायमेंशन है। क्राइस्ट, बुद्ध, महावीर खोजे जा सकते हैं। रावण, या हिटलर, या नेपोलियन, या सिकंदर खोजे जा सकते हैं। राम बहुत अनूठा जोड़ हैं। आदमी बुद्ध जैसे, हाथ में ताकत रावण जैसी। कृष्ण कहते हैं, शस्त्रधारियों में मैं राम हूं।
बुराई में भी सब बुराई नहीं है; और भलाई में भी सब भलाई नहीं है। बुराई में भी ताकत तो भली है, और भलाई में भी ताकत की कमी बुरी है। भले को भी शक्तिशाली होना चाहिए। इस जगत में बुराई कम होगी तभी, जब भला भी शक्तिशाली हो। तभी होगी कम, जब भला भी शक्ति को निर्मित करे। भला शक्ति से भाग जाए, तो वह बुरे आदमी को बुरा होने की सुविधा दे रहा है, मार्ग दे रहा है। वह साथी और संगी बन रहा है--बिना जाने, बिना इच्छा के।
इसलिए राम को, कृष्ण कहते हैं कि मैं शस्त्रधारियों में राम हूं।
मैं भला हूं बुद्ध जैसा, लेकिन मैं बुरा भी हो सकता हूं रावण जैसा।
बुरा हो सकता हूं का मतलब यह कि मैं बुरे के साथ ठीक उसके ही तल पर युद्ध ले

सकता हूं। ठीक उसके ही स्थान पर उससे जूझ सकता हूं। ठीक उसके ही उपकरणों का उपयोग कर सकता हूं।
लेकिन एक बात ध्यान देने जैसी है कि राम जैसा व्यक्ति ही रावण के शस्त्रों का उपयोग कर सकता है। कोई दूसरा व्यक्ति उपयोग करेगा, तो चाहे जीते, चाहे हारे, रावण ही जीतेगा। अगर कोई दूसरा व्यक्ति रावण से लड़ने जाए और रावण के ही शस्त्रों का उपयोग करे, तो चाहे रावण जीते और चाहे वह दूसरा व्यक्ति जीते, कोई जीते, कोई हारे, रावण ही जीतेगा। क्योंकि इस युद्ध में वह दूसरा आदमी धीरे-धीरे रावण जैसा ही हो जाएगा।
रावण की असली पराजय यही है कि रावण राम को अपने जैसा नहीं बना पाया। असली पराजय यही है। राम राम ही बने रहे। उनके व्यक्तित्व में जरा-सी एक कली भी नहीं सूखी। उनका फूल फूल जैसा ही खिला रहा। उनकी तलवार, उनके हाथ के शस्त्र, उनके भीतर की मनुष्यता में जरा-सा भी फर्क न ला पाए। वही रावण की हार है; वहीं रावण पराजित हो गया है। अगर राम भी रावण जैसे हो जाएं, तो जीत भी लें, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई फर्क नहीं पड़ता।
हमने दूसरे महायुद्ध में देखा। दूसरे महायुद्ध में हमने देखा कि हिटलर से जो लोग लड़े थे, वे युद्ध के दौरान ठीक हिटलर जैसे, बल्कि उससे भी एक कदम आगे चले गए। हिटलर तो झिझकता रहा अणु शस्त्रों का निर्माण करने, बनाने और उनका उपयोग करने में। लेकिन अमेरिका कर सका।
और इसलिए सोचा था कि हिटलर की हार के बाद, फासिज्म की हार के बाद दुनिया में बड़ी शांति आ जाएगी। वह बिल्कुल नहीं आई। दुनिया में युद्ध का सिलसिला वैसा ही जारी रहा। और जो कल के मित्र थे, जो युद्ध में हिटलर को हराने को दोस्त की तरह लड़े थे, वे हिटलर के हारते ही दुश्मन की तरह खड़े हो गए।
हिटलर हारा जरूर, लेकिन सारी दुनिया को हिटलर की छाया से भर गया। उसकी हार वास्तविक नहीं है। हिटलर हारा जरूर, लेकिन सारी दुनिया को फासिस्ट कर गया। एक-एक आदमी के प्राण में फासिज्म का जहर डाल गया। इसलिए हिटलर किसी भी दिन रिवाइव हो सकता है, उसमें कोई अड़चन नहीं है। एक-एक प्राण में उसका बीज है। वह कहीं से भी प्रकट हो सकता है। हिटलर की हार हो नहीं सकी। क्योंकि जो लोग उससे लड़े, वे लोग भी व्यक्तित्व की दृष्टि से उससे भिन्न नहीं थे।
रावण हारा, क्योंकि जिसके हाथों हारा, वह आदमी रावण के तल का न था। इसलिए रावण प्रसन्न है कि राम के हाथ से उसकी मृत्यु घटित हुई। यह अनूठी बात है। रावण प्रसन्न है कि राम के हाथों उसकी मृत्यु हुई। रावण प्रसन्न है कि अब मुक्ति में क्या बाधा रही होगी! अगर खुद राम मुझे मारने को आए हों, इस शरीर से मुझे विदा करते हों, तो मेरे मोक्ष में बाधा ही क्या है!
राम से शत्रुता नहीं है; विरोध है, संघर्ष है। लेकिन राम की ऊंचाई का रावण को बोध है। राम की भिन्नता का भी पता है।
कृष्ण कहते हैं, मैं शस्त्रधारियों में राम हूं।
मैं शस्त्र भी ले सकता हूं, लेकिन उससे मैं नहीं बदलता। शस्त्र मुझे नहीं बदल सकता है, यह उनका प्रयोजन है। मैं कुछ भी करूं, मेरा करना मेरी आत्मा को नहीं बदल सकता है, यह उनका अभिप्राय है।
ध्यान रखें, हम जो भी करते हैं, उसका जोड़ ही हमारी आत्मा है। राम जो भी करते हैं, उसका जोड़ उनकी आत्मा नहीं है। राम जो भी करते हैं, वह एक तल पर है और उनकी आत्मा बिल्कुल दूसरे तल पर है। राम के कृत्यों से हम राम की आत्मा का पता नहीं लगा सकते। राम की आत्मा का पता हो, तो हम राम के कृत्यों को समझ सकते हैं।
कृत्यों से हमारी आत्मा का पता चल जाता है। और हमारे पास दूसरी कोई आत्मा नहीं है। आपने जो-जो किया है, वह अगर अलग कर लिया जाए, तो आप बिल्कुल शून्य हो जाएंगे। राम ने जो भी किया है, उसे अलग कर लिया जाए, राम में कोई कमी नहीं पड़ेगी। राम का करना, हम समझें ठीक से, तो बिल्कुल बाहरी घटना है। भीतर कुछ भी नहीं घटता है। भीतर कुछ भी नहीं घटता है। इसलिए एक अनूठी घटना राम के जीवन में है, जिसे समझना लोगों को मुश्किल पड़ा है।

राम सीता के चोरी जाने से रावण से लड़ने गए। स्वभावतः, हमें लगेगा कि सीता से भारी आसक्ति रही होगी! अन्यथा राम को और सीताएं भी मिल सकती थीं।
राम को क्या कमी हो सकती थी सुंदर स्त्रियों की, वे उपलब्ध हो सकती थीं। राम को भारी आसक्ति रही होगी, लगाव रहा होगा, तब तो इतने बड़े युद्ध में इतनी झंझट में उतरे। और जब तक सीता को वापस न ले आए, तब तक हमें लगता होगा, कि दिन-रात सो न सके होंगे; बेचैन रहे होंगे; परेशान रहे होंगे।
लेकिन फिर दूसरी घटना बहुत मुश्किल में डाल देती है। एक धोबी की जरा-
सी चर्चा, वह भी किसी के द्वारा सुनी गई! एक धोबी का अपनी पत्नी से यह कह देना कि मैं कोई राम नहीं हूं कि तू महीनों और सालों घर से नदारद रहे और मैं तुझे वापस घर में रख लूं! उसकी पत्नी एक रात घर से नदारद रह गई होगी। तो मैं कोई राम नहीं हूं! यह खबर राम को लगना और सीता का जंगल में छुड़वा देना। यह जरा असंगत मालूम पड़ता है। यह आदमी सीता के लिए इतना बड़ा युद्ध लेने गया। इस आदमी ने अपने प्राण सीता के लिए युद्ध में लगा दिए। यह आदमी लड़ा, वर्षों शक्ति और श्रम व्यय किया, और एक धोबी के कहने से इस आदमी ने सीता को जंगल में छुड़वा दिया!
इस आदमी के कृत्यों से हम इस आदमी को नहीं समझ सकते। यह आदमी क्या करता है, इससे इसकी आत्मा का पता नहीं चलेगा। नहीं तो इन दोनों बातों में मेल बिठाना मुश्किल है। यह आदमी क्या है, उसे हम समझ लें, तो इसके कृत्यों की व्याख्या हो सकती है।
सीता का चोरी जाना युद्ध का कारण नहीं है, केवल युद्ध का बहाना है। सीता के लिए युद्ध नहीं किया गया है। ज्यादा समझ की बात तो यह है कि शायद युद्ध के लिए सीता को चोरी करवाने की व्यवस्था की गई हो। समझ में भी ऐसा ही आता है। क्योंकि राम एक सोने के मृग के पीछे भागते हैं शिकार करने। आप भी धोखे में न आते। हालांकि सोना बहुत आकर्षित करता है, लेकिन सोने का मृग आपको भी दिखाई पड़ता, तो आप समझते, कोई धोखा है। राम को तो सोने का मृग क्या धोखा दे सकता था!
यह जाना आयोजित है। यह जाना जानकर है। यह जाना समझ-बूझकर है। सीता चुराई जा सके, इसके लिए सुविधा देनी जरूरी है। वह जो गलत है, वह गलत कर सके, तभी उसकी गलती प्रकट होती है। वह जो बुरा है, उसे बुरे होने का पूरा मौका दिया जाए, तो ही उसकी बुराई प्रकट होती है। रावण सीता को चुराकर ही झंझट में पड़ गया। उसकी बुराई शिखर पर पहुंच गई, उसका पाप का घड़ा पूरा भर गया। और तब उसे विनष्ट किया जा सकता है।
एक ख्याल आपको शायद न हो। भारतीय मन बहुत अनूठा है और कई बार पश्चिम में उसको समझना मुश्किल हो जाता है। कथा यह है कि वाल्मीकि ने रामायण पहले लिखी, राम बाद में हुए। यह बात निश्चित ही असंगत मालूम पड़ती है। लेकिन भारतीय मन में बड़े और ख्याल हैं।
राम का व्यक्तित्व एक विराट योजना का हिस्सा मात्र है। वह योजना पहले
से नियोजित है, वह योजना पहले से तैयार है। राम सिर्फ एक अभिनेता हैं उस योजना में। इसलिए सीता चोरी जाती है, तो युद्ध को चले जाते हैं। और एक धोबी एतराज उठाता है, तो सीता को जंगल भेज देते हैं। राम जैसे इन किन्हीं कृत्यों के बीच में नहीं हैं। बाहर खड़े हैं। जैसे ये सारे कृत्य एक अभिनय के मंच पर किए जा रहे हैं, जिनसे राम का कुछ लेना-देना नहीं है। जो करना जरूरी है, वे कर रहे हैं। जो होना चाहिए, वह हो रहा है। लेकिन वे बाहर खड़े हैं। उनकी आत्मा इनमें से किसी से भी छू नहीं जाती। कोई चीज उनको स्पर्श नहीं कर रही है।
कृष्ण का यह कहना कि मैं धनुर्धारियों में, शस्त्रधारियों में राम हूं, इस बात की खबर देना है कि मैं जो करता हूं, उससे तू मेरा पता नहीं लगा सकेगा। मेरा होना, मेरे करने के पार है। वह जो अस्तित्व है मेरा, वह मेरे कृत्य से बहुत ऊपर है।
हमारी हालत उलटी है। हमारा अस्तित्व हमारे कृत्य से भी नीचे होता है। उसे हम समझ लें, तो राम की बात हमारे ख्याल में आ जाए।
रास्ते पर आप जाते हैं और एक भिखारी आपसे पैसा मांगता है। अगर आस-पास कोई न हो, तो आप भिखारी की बिना फिक्र किए आगे बढ़ जाते हैं। लेकिन अगर चार

लोग देखने वाले हों और प्रतिष्ठा का सवाल आ जाए, तो आप भिखारी को दो पैसे दे देते हैं। वह आप भिखारी को नहीं देते, अपनी प्रतिष्ठा को देते हैं। इसलिए भिखारी भी अकेले आदमी को नहीं घेरते। दो-चार मित्र साथ में हों,
तो पैर पकड़ लेते हैं। क्योंकि वह तीन की आंखों से ही पैसा मिलने वाला है, क्योंकि उन तीन के सामने यह भी तो जरा अपमानजनक है कि दो पैसे न दे सके। आपका कृत्य तो मालूम होता है कि आपने दया की, लेकिन आपका अस्तित्व आपके कृत्य से नीचे होता है। आपकी आत्मा आपके कृत्य से भी नीची होती है। दान वह नहीं है।
जहां अहंकार तृप्त हो रहा हो, वहां दान नहीं है, वह चाहे छोटा हो, चाहे बड़ा। जब तक अहंकार ही न दिया जाए, तब तक दान नहीं है। अहंकार के लिए कुछ दिया जाए, तो दान नहीं है। उसका संबंध दूसरे से नहीं है। आप जब भिखारी को देते हैं, तो उसका संबंध भिखारी से नहीं है, अपने से है। आप अपने अहंकार में दो पैसे डाल रहे हैं, ताकि अहंकार और मजबूत हो जाए। भिखारी का पात्र तो केवल आपके लिए एक निमित्त है।
लेकिन भिखारी को दो पैसे मिल जाते हैं। उसे प्रयोजन नहीं कि आपने किसलिए दिए। भिखारी को यह भी लग सकता है कि आपने दया की। हालांकि किसी भिखारी को ऐसा नहीं लगता। और जब आप देकर चले जाते हैं, तो भिखारी हंसता है कि ठीक बेवकूफ बनाया। उसका भी अपना अहंकार है, आपका ही नहीं है। वह भी भलीभांति जानता है कि किस तरह के लोग बुद्धू बन जाते हैं, किस हालत में बन जाते हैं। वह भी पीछे से हंसता है। सामने तो दुआ देता दिखाई मालूम पड़ता है। मानता तो वह उसी आदमी को है, जो बिना दिए अकड़कर चला जाता है। मानता तो वह भी उसी को है। समझता है कि इसको मैं बना नहीं पाया।
हमारा कृत्य भी हमारी आत्मा से ऊपर मालूम पड़ता है। आप किसी को नमस्कार करते हैं और कहते हैं, मिलकर बड़ी खुशी हुई। और भीतर आपको कोई खुशी नहीं हो रही होती। बल्कि दुख भी हो रहा होता है कि इस दुष्ट की शक्ल सुबह से कहां से दिखाई पड़ गई!
आपका कृत्य आपकी आत्मा से बड़ा मालूम पड़ता है। आप जो कहते हैं, जो करते हैं, वही काफी ऊंचा है। आप जो हैं, और भी नीचा है।
राम ठीक इसके विपरीत हैं। वे जो कर रहे हैं वह बहुत नीचा है। वे जो हैं, वह बहुत ऊपर है। कृष्ण कहते हैं, मैं जो कर रहा हूं, उससे मुझे मत तौलना। मैं शस्त्रधारियों में राम जैसा हूं।
मछलियों में मगरमच्छ, नदियों में गंगा हूं। और हे अर्जुन, सृष्टियों
का आदि, अंत और मध्य भी मैं ही हूं।
गंगा के प्रतीक को भी समझने जैसा है। गंगा के साथ हिंदू मन बड़े गहरे में जुड़ा है। गंगा को हम भारत से हटा लें, तो भारत को भारत कहना मुश्किल हो जाए। सब बचा रहे, गंगा हट जाए, भारत को भारत कहना मुश्किल हो जाए। गंगा को हम हटा लें, तो भारत का सारा साहित्य अधूरा पड़ जाए। गंगा को हम हटा लें, तो भारत के न मालूम कितने ऋषियों के नाम खो जाएं। गंगा को हम हटा लें, तो हमारा तीर्थ ही खो जाए, हमारे सारे तीर्थ की भावना खो जाए।
गंगा के साथ भारत के प्राण बड़े पुराने दिनों से कमिटेड हैं, बड़े गहरे में जुड़े हैं। गंगा जैसे हमारी आत्मा का प्रतीक हो गई है। मुल्क की भी अगर कोई आत्मा होती हो और उसके प्रतीक होते हों, तो गंगा ही हमारा प्रतीक है। पर क्या कारण होगा गंगा के इस गहरे प्रतीक बन जाने का कि हजारों-हजारों वर्ष पहले कृष्ण भी कहते हैं कि नदियों में मैं गंगा हूं?
गंगा कोई नदियों में विशेष उस अर्थ में नहीं है। गंगा से बड़ी नदियां हैं, गंगा से लंबी नदियां हैं। गंगा से बड़ी विशाल नदियां पृथ्वी पर हैं। गंगा कोई लंबाई में, विशालता में, चौड़ाई में, किसी दृष्टि से कोई बहुत बड़ी गंगा नहीं है। कोई बहुत बड़ी नदी नहीं है। ब्रह्मपुत्र है, और अमेजान है, और ह्वांगहो है, और सैकड़ों नदियां हैं, जिनके सामने गंगा फीकी पड़ जाए।
पर गंगा के पास कुछ और है, जो पृथ्वी पर किसी भी नदी के पास नहीं है। और
उस कुछ और के कारण भारतीय मन ने गंगा के साथ एक ताल-मेल बना लिया। एक तो बहुत मजे की बात है कि पूरी पृथ्वी पर गंगा सबसे ज्यादा जीवंत नदी है, अलाइव। सारी नदियों का पानी आप बोतल में भरकर रख दें, सभी नदियों का पानी

सड़ जाएगा, गंगा भर का नहीं सड़ेगा। केमिकली गंगा बहुत विशिष्ट है। उसका पानी डिटेरिओरेट नहीं होता, सड़ता नहीं, वर्षों रखा रहे। बंद बोतल में भी वह अपनी पवित्रता, अपनी स्वच्छता कायम रखता है।
ऐसा किसी नदी का पानी पूरी पृथ्वी पर नहीं है। सभी नदियों के पानी इस अर्थों में कमजोर हैं। गंगा का पानी इस अर्थों में विशेष मालूम पड़ता है, उसका विशेष केमिकल गुण मालूम पड़ता है।
गंगा में इतनी लाशें हम फेंकते हैं। गंगा में हमने हजारों-हजारों वर्षों से लाशें बहाई हैं। अकेले गंगा के पानी में, सब कुछ लीन हो जाता है, हड्डी भी। दुनिया की किसी नदी में वैसी क्षमता नहीं है। हड्डी भी पिघलकर लीन हो जाती है और बह जाती है और गंगा को अपवित्र नहीं कर पाती। गंगा सभी को आत्मसात कर लेती है, हड्डी को भी। कोई भी दूसरे पानी में लाश को हम डालेंगे, पानी सड़ेगा। पानी कमजोर और लाश मजबूत पड़ती है। गंगा में लाश को हम डालते हैं, लाश ही बिखर जाती है, मिल जाती है अपने तत्वों में। गंगा अछूती बहती रहती है। उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
गंगा के पानी की बड़ी केमिकल परीक्षाएं हुई हैं, वैज्ञानिक। और अब तो
यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो गया है कि उसका पानी असाधारण है।
यह क्यों है असाधारण, यह भी थोड़ी हैरानी की बात है। क्योंकि गंगा जहां
से निकलती है, वहां से बहुत नदियां निकलती हैं। गंगा जिन पहाड़ों से गुजरती है, वहां से कई नदियां गुजरती हैं। तो गंगा में जो खनिज और जो तत्व मिलते हैं, वे और नदियों में भी मिलते हैं। फिर गंगा में कोई गंगा का ही पानी तो नहीं होता, गंगोत्री से तो बहुत छोटी-सी धारा निकलती है। फिर और तो सब दूसरी नदियों का पानी ही गंगा में आता है। विराट धारा तो दूसरी नदियों के पानी की ही होती है।
लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि जो नदी गंगा में नहीं मिली, उस वक्त उसके पानी का गुणधर्म और होता है और गंगा में मिल जाने के बाद उसी पानी का गुणधर्म और हो जाता है! क्या होगा कारण? केमिकली तो कुछ पता नहीं चल पाता। वैज्ञानिक रूप से इतना तो पता चलता है कि विशेषता है और उसके पानी में खनिज और केमिकल्स का भेद है। विज्ञान इतना ही कह भी सकता है। लेकिन एक और भेद है, वह भेद विज्ञान के ख्याल में आज नहीं तो कल आना शुरू हो जाएगा। और वह भेद है, गंगा के पास लाखों-लाखों लोगों का जीवन की परम अवस्था को पाना। यह मैं आपसे कहना चाहूंगा कि पानी, जब भी कोई व्यक्ति, अपवित्र व्यक्ति पानी के पास बैठता है--अंदर जाने की तो बात अलग--पानी के पास भी बैठता है, तो पानी प्रभावित होता है। और पानी उस व्यक्ति की तरंगों से आच्छादित हो जाता है। और पानी उस व्यक्ति की तरंगों को अपने में ले लेता है।
इसलिए दुनिया के बहुत धर्मों ने पानी का उपयोग किया है। ईसाइयत ने बप्तिस्मा, बेप्टिज्म के लिए पानी का उपयोग किया है।
जीसस को जिस व्यक्ति ने बप्तिस्मा दिया, जान दि बेप्टिस्ट ने, उस आदमी
का नाम ही पड़ गया था जान बप्तिस्मा वाला। वह जोर्डन नदी में--और जोर्डन यहूदियों के लिए वैसी ही नदी रही, जैसी गंगा हिंदुओं के लिए--वह जोर्डन नदी में गले तक आदमी को डुबा देता, खुद भी पानी में डूबकर खड़ा हो जाता, फिर उसके सिर पर हाथ रखता और प्रभु से प्रार्थना करता उसके इनीशिएशन की, उसकी दीक्षा की।
पानी में क्यों खड़ा होता था जान? और पानी में दूसरे व्यक्ति को खड़ा करके क्या कुछ एक व्यक्ति की तरंगें और एक व्यक्ति के प्रभाव और एक व्यक्ति की आंतरिक दशा का आंदोलन दूसरे तक पहुंचना आसान है?
आसान है। पानी बहुत शीघ्रता से चार्ज्ड हो जाता है। पानी बहुत शीघ्रता से व्यक्तित्व से अनुप्राणित हो जाता है। पानी पर छाप बन जाती है।
लाखों-लाखों वर्ष से भारत के मनीषी गंगा के किनारे बैठकर प्रभु को पाने की चेष्टा करते रहे हैं। और जब भी कोई एक व्यक्ति ने गंगा के किनारे प्रभु को पाया है, तो गंगा उस उपलब्धि से वंचित नहीं रही, गंगा भी आच्छादित हो गई है। गंगा का किनारा, गंगा की रेत के कण-कण, गंगा का पानी, सब, इन लाखों

वर्षों में एक विशेष रूप से स्प्रिचुअली चार्ज्ड, आध्यात्मिक रूप से तरंगायित हो गया है।
इसलिए हमने गंगा के किनारे तीर्थ बनाए। इसलिए लोग गंगा की यात्रा करते रहे। इसलिए लोग सोचते थे कि गंगा में जाकर पाप धुल जाएंगे। वह पाप गंगा की वजह से नहीं धुल सकते, लेकिन गंगा के पास जो मिल्यु है, गंगा के पास जो वातावरण है, वह जो लाखों-लाखों वर्षों की छाया है, उस छाया में जरूर आप अगर अपने हृदय के द्वार खोलें, तो आप दूसरे आदमी होकर वापस लौट सकते हैं। गंगा एक आध्यात्मिक यात्रा भी है, एक नदी ही नहीं।
और इस तरह के बहुत-से प्रयोग हुए हैं।
जैनों के बाईस तीर्थंकर पार्श्वनाथ हिल्स पर निर्वाण को उपलब्ध हुए हैं। एक ही पर्वत पर बाईस तीर्थंकर निर्वाण को उपलब्ध हुए हैं, चौबीस तीर्थंकर में से। यह आकस्मिक नहीं मालूम होता, क्योंकि बाईस तीर्थंकर चौबीस में! हजारों साल का फासला है। इन हजारों साल में ये बाईस व्यक्ति अपने मरने के क्षण में एक छोटी-सी पहाड़ी पर पहुंच गए!
यह पूर्व नियोजित है, आयोजित है। उस पूरे पहाड़ को चार्ज करने की चेष्टा जैन तीर्थंकरों ने की है। वह पूरा पहाड़--जब एक तीर्थंकर अपने शरीर को छोड़ता है, तो यह घटना उस घटना से बड़ी है, जब एक अणु का विस्फोट होता है। लेकिन वह हमें पता चल गई है; अभी दूसरी घटना हमें पता नहीं चली है। वैज्ञानिक अब कहते हैं कि एक अणु के विस्फोट से इतनी ऊर्जा पैदा होती
है कि सारी पृथ्वी आग से भर जाए। हिरोशिमा में जो अणु का विस्फोट हुआ, उसमें एक लाख बीस हजार आदमी पांच सेकेंड में राख हो गए। अणु आंख से दिखाई नहीं पड़ता, इतनी छोटी चीज है। और अणु के विस्फोट का मतलब क्या है? अणु के विस्फोट का मतलब है कि अणु तीन, इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान से मिलकर बनता है। उन तीनों को अलग कर दिया जाए, तो जिस शक्ति के द्वारा वे तीनों जुड़े थे, वह शक्ति रिलीज हो जाती है, मुक्त हो जाती है। वही शक्ति एक लाख बीस हजार आदमियों को पांच सेकेंड में राख कर देती है।
एक छोटा-सा अणु जो आंख से दिखाई नहीं पड़ता! अगर हम अणु को समझना चाहें,
तो अगर एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखें, तो आपके बाल की मोटाई के बराबर होंगे। एक इतना छोटा-सा अणु एक लाख बीस हजार आदमियों को राख कर देता है विस्फोट से।
और जब एक तीर्थंकर की आत्मा उसके शरीर से छूटती है, तो जो शक्ति आत्मा
को और शरीर को बांधे हुए थी, वह रिलीज होती है, पहली दफा। करोड़ों-करोड़ों वर्षों से यह आदमी शरीर से बंधा रहा है। अब इसकी आत्मा सदा के लिए शरीर को छोड़ रही है। शरीर और इसको बांधने वाली जो शक्ति थी, वह छूटेगी। वही शक्ति इस पहाड़ पर बिखर जाएगी।
बाईस तीर्थंकर जाकर उस पहाड़ को इलेक्ट्रिफाइड कर दिए, वह पहाड़ मैग्नेटिक हो गया। फिर इसके बाद लाखों वर्षों तक लोग उस पहाड़ की तीर्थयात्रा करते रहे हैं, इस आशा में कि वह मैग्नेटिज्म, वह चुंबक, उनके प्राणों को भी छू ले और स्पर्श कर ले।
जैसा जैनों ने प्रयोग किया है पार्श्वनाथ हिल्स पर, ठीक वैसा ही प्रयोग हिंदुओं ने गंगा के किनारे किया है।
अरब में एक गांव है, कुफा। उस गांव में अब तक मुसलमान के अतिरिक्त कोई
भी प्रवेश नहीं पा सका, सिर्फ एक आदमी को छोड़कर, पूरे इतिहास में चौदह सौ साल के। मुसलमान के अतिरिक्त उस गांव में प्रवेश नहीं हो सकता, और साधारण मुसलमान भी प्रवेश नहीं पा सकता है। असाधारण रूप से, वस्तुतः जो मुसलमान हो, सच में जिसका हृदय रूपांतरित हुआ हो और परमात्मा के लिए समर्पित हो गया हो, और जिसने जाना हो कि एक ही अल्लाह है, वही प्रवेश पा सकता है। सिर्फ एक आदमी, एक अंग्रेज खोजी बर्टन उसमें प्रवेश पा सका है गैर-मुसलमान। लेकिन उसको भी गैर-मुसलमान कहना ठीक नहीं है। क्योंकि बीस साल उसने मुसलमान साधना की, सिर्फ उस गांव में प्रवेश पाने के लिए। और जब वह बिल्कुल मुसलमान हो गया, नाममात्र को ही बर्टन रह गया, चमड़ी भर अंग्रेज की रह गई और सब तरह से वह मुसलमान हो गया, तब उसे प्रवेश मिला।

मुसलमानों ने इस गांव को प्रयोग किया है चार्ज करने का। इन चौदह सौ वर्षों में उन्होंने एक अनूठी छोटी-सी जगह निर्मित की है। उसमें प्रवेश पाते ही कोई आदमी रूपांतरित हो जाए, ऐसी व्यवस्था की है। उसमें वे ही लोग प्रवेश पा सकते हैं, जो बहुत गहन प्रार्थना में उतर गए हैं। वह सारा वातावरण उससे प्रभावित हो जाता है। कण-कण उनके प्रभाव को पी लेता है, आत्मसात कर लेता है।
कृष्ण कहते हैं, मैं नदियों में गंगा हूं।
गंगा साधारण नदी नहीं है, एक आध्यात्मिक यात्रा है, और एक आध्यात्मिक प्रयोग। लाखों वर्षों तक लाखों लोगों का उसके निकट मुक्ति को पाना, परमात्मा के दर्शन को उपलब्ध होना, आत्म-साक्षात्कार को पाना! लाखों लोगों का उसके किनारे आकर अंतिम घटना को उपलब्ध होना! वे सारे लोग अपनी जीवन-ऊर्जा को गंगा के पानी पर उसके किनारों पर छोड़ गए हैं।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मैं नदियों में गंगा हूं।
और हे अर्जुन, सृष्टियों का आदि, अंत और मध्य मैं ही हूं। तथा विद्याओं में अध्यात्म-विद्या अर्थात ब्रह्म-विद्या, और परस्पर विवाद करने वालों में तत्व-निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद, तर्क मैं ही हूं, न्याय मैं ही हूं।
ये दो बातें बहुत बहुमूल्य हैं। विद्याओं में अध्यात्म-विद्या। अनंत विद्याएं हैं, लेकिन अध्यात्म-विद्या गुणात्मक रूप से भिन्न है।
अगर कोई फिजिक्स का जानकार हो जाए, कोई केमिस्ट्री का जानकार हो जाए, कोई गणित को जान ले, कोई ज्योतिष को जान ले, कोई संगीत को जाने--हजार विद्याएं हैं--कोई किसी भी विद्या में कितना ही पारंगत हो जाए, स्वयं तो अंधेरे में ही खड़ा रहता है। कितना ही बड़ा संगीतज्ञ हो और कितना ही संगीत जान ले, लेकिन खुद के स्वरों से अपरिचित होता है। सब स्वरों को साध ले, खुद की आत्मा अनसधी रह जाती है। सब वाद्यों को बजा ले, एक भीतर की वीणा सूनी ही पड़ी रह जाती है। कोई कितना ही बड़ा गणितज्ञ हो, और कितनी ही संख्याओं को जान ले, अनंत संख्याओं का हिसाब उसके मन में सरलता से हल होने लगे, लेकिन एक संख्या स्वयं की, वह अनगिनी रह जाती है।
सुना होगा आपने कि दस अंधों ने एक बार नदी पार की थी। बाढ़ आई नदी थी बरसा की। पार तो वे कर गए, फिर उन्हें ख्याल आया कि कोई अंधा रास्ते में बह न गया हो! तो उन्होंने गिनती की थी। लेकिन कठिनाई वही हुई, जो सभी आदमियों के साथ होती है। गिनती नौ होती थी, क्योंकि हर गिनने वाला अपने को छोड़ जाता था। गिनता था एक से नौ तक। और जब सभी ने गिनकर देख लिया और सभी ने पाया कि संख्या नौ होती है, तो निर्णय हो गया कि एक आदमी खो गया है।
हम सब निर्णय इसी तरह तो लेते हैं! डेमोक्रेटिक निर्णय इसी तरह तो होते हैं! जब दस आदमी सभी के सब कह रहे हों कि नौ हैं, तो अब कोई उपाय न रहा। वे छाती पीटकर रोने लगे थे कि उनका साथी कोई खो गया।
पास से कोई गुजरा है और उसने पूछा कि क्या कारण है तुम्हारे इस तरह जार-जार रोने का? तो उन अंधों ने कहा, हम दस निकले थे उस पार से, एक साथी खो गया। हम नौ हैं! उस आदमी ने आंख डाली। देखा, वे दस थे। उसने कहा, जरा देखूं, तुम्हारी गिनती करने में कोई भूल तो नहीं? उन्होंने गिनती करके बताई, तो वह समझ गया भूल। भूल वही है, जो सब आदमियों की भूल है। हर एक अपने को गिनना छोड़ जाता है।
तो उस आदमी ने कहा कि एक तरकीब का मैं उपयोग करता हूं, इससे चमत्कार घटित होगा और दसवां आदमी मौजूद हो जाएगा। मैं हर एक को चांटा मारूंगा जोर से। जिसको मैं चांटा मारूं, वह बोले एक। जब मैं दूसरे को चांटा मारूं दो, तो वह बोले दो। जब मैं तीसरे को चांटा मारूं तीन, तो वह बोले तीन। और ऐसे मैं दसवें को मौजूद कर दूंगा।
उसने दसों को चांटे मारे। उनकी व्यर्थ पिटाई भी हुई, लेकिन वे आनंदित
भी बहुत हुए। और दसों नाचने लगे और उस आदमी को धन्यवाद देने लगे कि तुम्हारी बड़ी कृपा है कि तुमने दसवां मौजूद कर दिया।
समस्त साधनाएं आपको चांटा मारने से ज्यादा नहीं हैं। जिसमें आपको एक का... । और कुछ नहीं है। और समस्त गुरु आपको सिवाय चांटा मारने के और कुछ भी

नहीं करते हैं, कि किसी तरह आपका वह जो खो गया आदमी है, वह आपके ख्याल में आ जाए। वह अभी भी मौजूद है; वह कहीं खो नहीं गया है। वे दस ही थे, लेकिन हर एक अपने को गिनना भूल जाता था।
सारी विद्याएं दूसरों को गिनती हैं, स्वयं को छोड़कर। सब विद्याएं दूसरे को जानती हैं, स्वयं को छोड़कर। इसलिए सभी विद्याओं के भीतर गहन अविद्या छिपी रहती है। इसलिए एक आदमी गणित का बहुत बड़ा पारंगत विद्वान हो जाता है, लेकिन जिंदगी के मामले में ऐसा ही मूढ़ होता है, जैसे कोई और मूढ़ है। एक आदमी बड़ा वैज्ञानिक हो जाता है। वैज्ञानिक तो ठीक है, यहां तक हालत होती है कि एक आदमी बड़ा मनोवैज्ञानिक हो जाता है, बड़ा साइकोलाजिस्ट हो जाता है, मन के संबंध में सब जान लेता है, लेकिन खुद के मन के संबंध में वैसा ही दीन और कमजोर होता है, जैसा कोई और।
खुद फ्रायड, जिसने पूरे जीवन यौन और यौन से संबंधित सारी बीमारियों
का अध्ययन किया और यौन की सारी विकृतियों का अध्ययन किया, उसने भी लिखा है कि पचास साल की उम्र में भी एक दिन अचानक रास्ते से गुजरती हुई एक स्त्री को देखकर धक्का देने का मन हो गया। यह आदमी ईमानदार है। हमारे मुल्क का कोई आदमी होता तो ऐसा कभी बताता नहीं। पर उसने लिखा है कि हैरानी की बात है कि अब पचास साल की उम्र में भी रास्ते पर एक स्त्री को देखकर धक्का लगाने का मन मेरा हुआ है।
अगर आप फ्रायड से पूछें, तो क्रोध के संबंध में वह सब जानता है। लेकिन अगर उसको गाली दे दें, तो वह इतना क्रोधित हो जाता था कि बिल्कुल पागल हो जाए।
यह मजे की बात है। मनोविज्ञान भी आप जान ले सकते हैं, वह भी दूसरे के बाबत है। अपने संबंध में उसका कुछ लेना-देना नहीं है। स्वयं आदमी अपरिचित ही रह जाता है।
अध्यात्म-विद्या उसकी विद्या है, जिससे हम स्वयं को जानते हैं। और तब
यह भी हो सकता है कि एक अध्यात्म ज्ञानी कुछ भी और न जानता हो।
रामकृष्ण दूसरी क्लास तक पढ़े हैं। शास्त्र ठीक से पढ़ नहीं सकते। बातें भी जो करते हैं, वे ग्रामीण की हैं। लेकिन वे उस विद्या को जानते हैं, कृष्ण जिसके साथ अपना तादात्म्य कर रहे हैं। कबीर जुलाहे हैं। नानक पढ़े-लिखे नहीं हैं। मोहम्मद को क ख ग भी नहीं आता। दस्तखत भी मोहम्मद नहीं कर सकते हैं। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि मैं विद्याओं में अध्यात्म-विद्या हूं।
क्योंकि मान्यता यह है कि जिसने सब जान लिया और स्वयं को न जाना, उसके जानने का उपयोग क्या? और जिसने कुछ भी न जाना और स्वयं को जान लिया, उसने सब जान लिया। क्योंकि अंततः जीवन का जो परम आनंद है, वह स्वयं को जानने से घटित होगा। और अंततः मृत्यु के भी पार जाने वाला जो अमृत सूत्र है, वह स्वयं को जानने से घटित होगा। और अंततः सब जाना हुआ जो हमारा पराया है, वह पड़ा रह जाएगा; जो मेरे साथ जा सकेगा, वह मेरा स्वयं का बोध है।
मृत्यु के पार जिसे न ले जाया जा सके, उसे हम ज्ञान नहीं मानते। हम तो ज्ञान उसे मानते हैं कि लपटों में जब शरीर भी जल जाए, तब भी मेरा ज्ञान न जले। आग भी मेरे ज्ञान को न जला सके, मृत्यु भी मेरे ज्ञान को नष्ट न कर सके, तो ही वह ज्ञान है। अन्यथा उस ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है।
तो हम सब जान लें, वह जानना ऊपरी है। उपयोगी हो सकता है, लेकिन आत्यंतिक उसका मूल्य नहीं है। अंततः वह व्यर्थ हो जाएगा। इसलिए हम बड़े से बड़े पंडित को भी, जो बहुत जानता हो, मरते वक्त वैसा ही दीन हो जाते देखते हैं, जैसा कोई भी मर रहा हो। मृत्यु बता देती है कि आपने कुछ जाना कि नहीं जाना। मृत्यु खबर दे देती है।
हिंदुस्तान से सिकंदर जब वापस लौटता था। तो उसके गुरु ने, अरस्तू ने उसे कहा था कि हिंदुस्तान से एक संन्यासी को लेते आना आते वक्त।
अरस्तू महाज्ञानी था। ज्ञानी, पंडित के अर्थ में। बहुत जानता था। सच
तो यह है कि पश्चिम में जितने विज्ञान विकसित हुए, सबका पिता अरस्तू है।
सबका! जितने विज्ञान विकसित हुए, सबकी आधारशिलाएं अरस्तू रख गया। एक

अकेले आदमी ने इतने विज्ञानों को कभी जन्म नहीं दिया। इसलिए अरस्तू अदभुत है।
लेकिन उसने भी सिकंदर को कहा था कि जब तुम आओ हिंदुस्तान से, तो बहुत कुछ लूटकर लाओगे, एक संन्यासी को भी साथ ले आना। एक संन्यासी को मैं देखना चाहता हूं। मैं उस आदमी को देखना चाहता हूं, जिसने स्वयं को जान लिया है। यह अरस्तू इतना बड़ा ज्ञानी था, तर्क का पिता था। पश्चिम का जो लाजिक है, वह अरस्तू से पैदा हुआ। अब भी वही काम में आता है, दो हजार साल हो गए। इतना ज्ञानी था, लेकिन स्वयं का तो कोई ज्ञान न था। तो हालत उसकी यह थी कि सिकंदर की गुलामी की वजह से, क्योंकि सिकंदर तो सम्राट था। हालांकि अरस्तू गुरु था! लेकिन इस तरह की कहानियां हैं कि सिकंदर शिष्य था, वह कभी- कभी अरस्तू को कहता कि अच्छा तुम घोड़ा बनो, मैं तुम्हारे ऊपर सवार होकर जरा चलूं, तो अरस्तू घोड़ा बनकर सिकंदर को चलाता था।
सिकंदर ने सोचा कि जब अरस्तू जैसे आदमी को मैं घोड़ा बनाकर चलता हूं,
तो संन्यासी एक क्या, दस-पचास पकड़वा लाऊंगा।
जब वह हिंदुस्तान से लौटने लगा, तब उसे ख्याल आया। जिस गांव में वह ठहरा था, उसने आदमी भेजे कि कोई संन्यासी हो तो पकड़ लाओ। गांव के लोगों से सिपाहियों ने पूछा, तो गांव के लोगों ने कहा, जो तुम्हारी पकड़ में आ जाए, समझ लेना, वह ले जाने योग्य नहीं है! तो वे बड़ी मुश्किल में पड़े। उन्होंने कहा, फिर कौन है ले जाने योग्य? तो गांव के लोगों ने कहा, एक आदमी है, लेकिन सिकंदर एक क्या, हजार सिकंदर भी उसको ले जा सकें, यह बहुत मुश्किल है! उन्होंने कहा, उसी का पता बता दो। तो उन्होंने कहा, नदी के किनारे एक नग्न संन्यासी है, उसे तुम ले जाओ।
सिपाही गए, उन्होंने कहा कि महान सिकंदर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ चलें। शाही सम्मान के साथ हम आपको यूनान ले जाएंगे। जो भी आपकी सुविधा, हम सब करेंगे। आप शाही अतिथि होंगे। महल में ही आप ठहरेंगे। सिकंदर के विशेष मेहमान होंगे।
वह फकीर हंसने लगा और उसने कहा कि आज्ञा! आज्ञा तो हमने किसी की भी माननी बंद कर दी। जिस दिन हमने आज्ञा माननी बंद की, उसी दिन तो हम संन्यासी हुए। जब तक हम किसी न किसी की आज्ञा मानते थे, तब तक हम गृहस्थ थे। सिकंदर को कह दो कि तुम गलत आदमी के पास आ गए। उन्होंने कहा, आपको पता नहीं, सिकंदर खतरनाक है। वह क्रोधी है। वह गर्दन काट दे सकता है। तो उसने कहा, तुम सिकंदर को ही बुला लाओ--उस संन्यासी ने कहा--क्योंकि बड़ा मजा आएगा! सिकंदर ने सुना, तो सिकंदर नंगी तलवार लेकर गया। भारत में सिकंदर की यात्रा में यह सबसे कीमती घटना है। वह तलवार लेकर गया और उसने संन्यासी से कहा कि मैं आदमी कठोर हूं। हां और न में जवाब चाहता हूं। साथ चलते हो, ठीक। अन्यथा यह गर्दन को काट देता हूं।
उस फकीर ने कहा, तुम काट दो। जहां तक मेरा सवाल है, इस गर्दन को तो मैं उसी दिन छोड़ चुका, जिस दिन मैंने संन्यास लिया। मेरी तरफ से यह कटी हुई है।
और तुमसे मैं कहता हूं कि जब गर्दन कटकर गिरेगी, तो तुम भी देखोगे कि गिर रही है और मैं भी देखूंगा कि गिर रही है। क्योंकि मैं इस गर्दन से अलग हूं। तुम देर मत करो। बेकार समय मत गंवाओ। क्योंकि मैं भी आदमी साफ-सुथरा हूं। तलवार बाहर निकालो और गर्दन काटो। तुम अपने काम पर जाओ। तुम अपनी यात्रा पर, मैं अपनी यात्रा पर!
सिकंदर ने तलवार वापस रख ली और उसने अपने सिपाहियों से कहा कि इस आदमी
को मारने का कोई अर्थ नहीं है। हम केवल उसी को मार सकते हैं, जो मृत्यु से डरता हो। मारा ही उसको जा सकता है। मरता ही वही है, जो मृत्यु से डरता है। इस आदमी को मारने का कोई अर्थ नहीं। नाहक हमें ही पछतावा होगा। और पीछे हम ही चिंता में पड़ेंगे। यह आदमी चिंता में पड़ने वाला नहीं दिखाई पड़ता है। यह मेरी ही नींद हराम कर देगा। इसकी गर्दन मुझे ही बार-बार याद आती रहेगी, और मेरी ही रास्ते की यात्रा खराब हो जाएगी।
ब्रह्म-विद्या, अध्यात्म-विद्या का अर्थ है, वह विद्या, वह सुप्रीम साइंस, जिससे हम उसे जान लेते हैं, जो हम हैं। जिससे हम उसे जान लेते हैं,

जो सब जान रहा है। जिससे हम उसे जान लेते हैं, जिसकी कोई मृत्यु नहीं, जिसका कोई जन्म नहीं।
श्वेतकेतु लौटा वापस, अध्ययन करके समस्त शास्त्रों का। जो भी जानने योग्य था, जान आया। निश्चित ही, जानने की अकड़ आ गई। जब वह गांव के भीतर प्रविष्ट हुआ, उसके पिता ने देखा अपने मकान से, श्वेतकेतु अकड़ा हुआ चला आ रहा है। पंडित की अकड़! आया, तो पिता ने कहा कि मालूम होता है, तू सब जानकर आ गया! श्वेतकेतु ने कहा, सब जानकर आ गया जो भी जानने के लिए था। जितनी विद्याएं थीं, सब सीख आया हूं।
उसके पिता ने कहा, बस, एक सवाल तुझसे मुझे पूछना है। तूने उसे भी जाना
या नहीं, जिससे सब जाना जाता है? उसने कहा, यह तो कोई विद्या मैंने सुनी नहीं! मेरे गुरु ने इसके बाबत कोई बात नहीं की!
तो उसके पिता ने कहा, तू वापस लौट जा। तू उसको जानकर लौट, जिसे बिना जाने सब जानना बेकार है। और जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। श्वेतकेतु वापस लौट गया।
ब्रह्म-विद्या का अर्थ वह विद्या है, जिससे हम उसे जानते हैं, जो सब जानता है। गणित आप जिससे जानते हैं, फिजिक्स आप जिससे जानते हैं, केमिस्ट्री आप जिससे जानते हैं, उस तत्व को ही जान लेना ब्रह्म-विद्या है। जानने वाले को जान लेना ब्रह्म-विद्या है। ज्ञान के स्रोत को ही जान लेना ब्रह्म-विद्या है। भीतर जहां चेतना का केंद्र है, जहां से मैं जानता हूं आपको, जहां से मैं देखता हूं आपको; जिससे मैं देखता हूं, उसे भी देख लेना, उसे भी जान लेना, उसे भी पहचान लेना, उसकी प्रत्यभिज्ञा, उसका पुनर्स्मरण ब्रह्म-विद्या है।
कृष्ण कहते हैं, विद्याओं में मैं ब्रह्म-विद्या हूं।
इसलिए भारत ने फिर बाकी विद्याओं की बहुत फिक्र नहीं की। भारत के और विद्याओं में पिछड़े जाने का बुनियादी कारण यही है। भारत ने फिर और विद्याओं की फिक्र नहीं की, ब्रह्म-विद्या की फिक्र की।
लेकिन उसमें अड़चन है, क्योंकि ब्रह्म-विद्या जानने को कभी लाखों- करोड़ों में एक आदमी उत्सुक होता है। पूरा देश ब्रह्म-विद्या जानने को उत्सुक नहीं होता। और भारत के जो श्रेष्ठतम मनीषी थे, वे ब्रह्म-विद्या में उत्सुक थे। और भारत का जो सामान्यजन था, उसकी कोई उत्सुकता ब्रह्म-विद्या में नहीं थी। उसकी उत्सुकता तो और विद्याओं में थी। लेकिन सामान्यजन और विद्याओं को विकसित नहीं कर सकता। विकसित तो परम मनीषी करते हैं, और परम मनीषी उन विद्याओं में उत्सुक ही न थे।
इसलिए भारत ने बुद्ध को जाना, महावीर को, कृष्ण को, पतंजलि को, कपिल को, नागार्जुन को, वसुबंधु को, शंकर को जाना भारत ने। ये सारे के सारे, इनमें से कोई भी आइंस्टीन हो सकता है। इनमें से कोई भी प्लांक हो सकता है। इनमें से कोई भी किसी भी विद्या में प्रवेश कर सकता है। लेकिन भारत का जो श्रेष्ठतम मनीषी था, वह परम विद्या में उत्सुक था। और भारत का जो सामान्यजन था, उसकी तो परम विद्या में क्या उत्सुकता हो सकती है! उसकी उत्सुकता दूसरी विद्याओं में है। लेकिन वह विकसित नहीं कर सकता। विकसित तो परम मनीषी करते हैं।
पश्चिम में दूसरी विद्याएं विकसित हो सकीं, क्योंकि पश्चिम के जो बड़े मनीषी हैं, वे और विद्याओं में उत्सुक हैं। इसलिए एक अदभुत घटना घटी। पश्चिम ने सब विद्याएं विकसित कर लीं और आज पश्चिम को लग रहा है कि वह आत्म-अज्ञान से भरा हुआ है। और पूरब ने आत्म-ज्ञान विकसित कर लिया और आज पूरब को लग रहा है कि हमसे ज्यादा दीन और दरिद्र और भुखमरा दुनिया में कोई भी नहीं है।
हमने एक अति कर ली, परम विद्या पर हमने सब लगा दिया दांव। उन्होंने दूसरी अति कर ली। उन्होंने आत्म-विद्या को छोड़कर बाकी सब विद्याओं पर दांव लगा दिया। बड़ी उलटी बात है। वे आत्म-अज्ञान से पीड़ित हैं और हम शारीरिक दीनता और दरिद्रता से पीड़ित हैं।
यह जो परम विद्या है, इस परम विद्या और सारी विद्याओं का जब संतुलन हो,
तो पूर्ण संस्कृति विकसित होती है। इसलिए न तो पूरब और न पश्चिम ही पूर्ण

संस्कृतियां विकसित कर पाए। फिर भी अगर चुनाव करना हो, अगर फिर भी चुनाव करना हो, तो परम विद्या ही चुनने जैसी है, सारी विद्याएं छोड़ी जा सकती हैं।
क्योंकि और सब पाकर कुछ भी पाने जैसा नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, मैं परम विद्या हूं सब विद्याओं में।
लेकिन यह बात आप ध्यान रखना, और विद्याओं का वे निषेध नहीं करते हैं,
और विद्याओं में जो श्रेष्ठ है, उसकी सूचना भर दे रहे हैं। वे यह नहीं कह रहे हैं कि सिर्फ अध्यात्म-विद्या को खोजना है, बाकी सब छोड़ देना है।
यह भी सोचने जैसा है कि अध्यात्म-विद्या परम विद्या तभी हो सकती है,
जब दूसरी विद्याएं भी हों। नहीं तो वह परम विद्या नहीं रह जाएगी। आप कोई मंदिर का अकेला सोने का शिखर बना लें और दीवालें न हों, तो समझ लेना कि शिखर जमीन में पड़ा हुआ लोगों के पैरों की ठोकर खाएगा। मंदिर का स्वर्ण-शिखर आकाश में उठता ही इसलिए है कि पत्थर की दीवालें उसे सम्हालती हैं। अध्यात्म-विद्या का शिखर भी तभी सम्हलता है, जब और सारी विद्याएं दीवालें बन जाती हैं और उसे सम्हालती हैं।
अब तक हम कहीं भी मंदिर नहीं बना पाए। हमने शिखर बना लिया, पश्चिम ने मंदिर बना लिया। जब तक हमारा शिखर पश्चिम के मंदिर पर न चढ़े, तब तक दुनिया में पूर्ण संस्कृति पैदा नहीं हो सकती।
और अंतिम बात।
कृष्ण ने कहा, एवं परस्पर विवाद करने वालों में तत्व-निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद, तर्क, न्याय मैं हूं।
तर्क दो तरह के हैं। एक तो तर्क है, जिसमें हम दूसरे को गलत सिद्ध करना चाहते हैं। वह क्या कह रहा है, उससे कोई संबंध नहीं है। दूसरे को गलत करना चाहते हैं, वह क्या कह रहा है, उससे कोई संबंध नहीं है। एक तो तर्क है, जिसमें हम अपने अहंकार को सिद्ध करना चाहते हैं, दूसरे को गलत करना चाहते हैं।
इसलिए कई दफा ऐसा होता है कि आपकी ही बात भी अगर दूसरा कह रहा हो, तो भी
आप उसको गलत सिद्ध किए बिना नहीं मान सकते। दूसरा सदा गलत होता है! होना चाहिए। आप सदा सही हैं। अपने लिए आप कुछ भी तर्क का उपयोग करते हैं। लेकिन यह सत्य की जिज्ञासा से नहीं, यह केवल अहंकार की तृप्ति के लिए है।
ऐसा तर्क भ्रष्ट तर्क है। इसको भारत कुतर्क कहता है। यह कितना ही विकसित हो जाए, इससे कोई मनुष्य के जीवन में रूपांतरण नहीं होता।
एक और तर्क भी है, जो हम सत्य की खोज के लिए करते हैं। तब यह सवाल नहीं
है कि दूसरा गलत कह रहा है। तब सवाल यह है कि सही क्या है? कौन कह रहा है, यह मूल्यवान नहीं है। क्या है सही, यही मूल्यवान है। कोई भी सही कह रहा हो, तो हम तर्क की कोशिश करते हैं, उस सही की जांच के लिए। तर्क तो एक कसौटी है। जैसे कोई सोने को कसता है कसौटी पर, ऐसे ही तर्क विचार की क्षमता, निर्णय और निर्णय का शास्त्र एक कला है। उस पर कसना है, कि जो भी कहा जा रहा है, वह कितने दूर तक सही है।
लेकिन हम नहीं कस पाते, क्योंकि हम सही को तो पहले से ही जानते हैं! हम
सब मानते हैं कि सत्य तो हमें पता ही है। इसलिए अगर दूसरा हमसे मेल खा रहा है, तो सही है। और अगर हमसे मेल नहीं खा रहा है, तो गलत है। हम कसौटी हैं। हम कसौटी नहीं हो सकते। तर्क कसौटी है। और तर्क तो बिल्कुल निष्पक्ष कसौटी है, अपने को भी उसी पर कसो और दूसरे को भी उसी पर कसो। और डबल बाइंड, दोहरा चित्त न हो, दूसरे के लिए कुछ और, हमारे लिए कुछ और।
सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर के बाहर बैठा है। और गांव का जो मौलवी है, वह मस्जिद से नमाज पढ़कर लौट रहा है। अचानक बरसा आ गई, तो वह तेजी से भागा। मुल्ला ने कहा कि ठहरो! शर्म नहीं आती, धार्मिक आदमी होकर और भागते हो? वह मौलवी भी थोड़ा घबड़ाया कि धार्मिक आदमी होने से भागने का क्या लेना-देना! उसने कहा, क्या मतलब? मुल्ला ने कहा, परमात्मा पानी बरसा रहा है और तुम भागकर परमात्मा का अपमान कर रहे हो? किसका पानी है यह? यह जल किसका है?

मौलवी भी डर गया, और अपनी इज्जत की रक्षा के लिए और पड़ोसियों को पता न
चल जाए कि परमात्मा के पानी का अपमान हुआ; वह आहिस्ता-आहिस्ता घर पहुंचा, तरबतर पानी में। सर्दी पकड़ गई, बुखार आ गया, निमोनिया हो गया।
तीन दिन बाद वह अपनी खिड़की में बैठा है अपनी दुलाई ओढ़े हुए। देखा कि नसरुद्दीन बाजार से लौट रहा है। पानी की थोड़ी-सी बूंदें आईं। नसरुद्दीन भागा। उस मौलवी ने चिल्लाकर कहा कि ठहर नसरुद्दीन! भगवान का अपमान कर रहा है? नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं; भगवान का पानी गिर रहा है, कहीं मेरा पैर उस पर न पड़ जाए और अपमान न हो जाए, इसलिए घर जा रहा हूं!
यह डबल बाइंड माइंड है। इसमें तर्क सदा अपने लिए है। इसमें सचाई से कोई प्रयोजन नहीं है। सदा तर्क अपने लिए है।
कृष्ण कहते हैं, वैसा मैं तर्क नहीं हूं। सत्य के निर्णय के लिए जो आतुर हैं, सत्यनिष्ठ, जिन्हें इससे प्रयोजन नहीं है कि पक्ष में पड़ेगा कि विपक्ष में, मैं हारूंगा कि जीतूंगा; जिन्हें प्रयोजन इतना है कि सत्य क्या है, उसकी परख हो जाए, उसका पता चल जाए; ऐसे सत्य के लिए किया गया वाद, ऐसे सत्य की जिज्ञासा के लिए किया गया तर्क मैं हूं।
इसलिए भारत में तर्क को हमने एक बहुत ही और ढंग से लिया।
यूनान ने तर्क को विकसित किया, लेकिन सोफिस्ट्री की तरह। यूनान में स्कूल थे सोफिस्टों के, जो लोगों को तर्क करना सिखाते थे पैसे लेकर। कोई भी फीस दे दे, वह छः महीने, साल भर, दो साल में तर्क की शिक्षा दे देंगे। तर्क की शिक्षा का मतलब यह था कि तुम किसी को भी हराना चाहो, तो हरा सकते हो। किसी को भी। यह सवाल नहीं है कि किसको हराना है। तुम्हें हम तरकीबें सिखा देते हैं, इनमें तुम किसी को भी फंसा ले सकते हो, कोई भी हार जाएगा। एक बहुत बड़ा सोफिस्ट था, जीनो। जीनो ने घोषणा कर रखी थी कि किसी को भी हराना हो, तो मैं तर्क की शिक्षा देता हूं। और वह इतना आश्वस्त था कि जब भी वह किसी विद्यार्थी को लेता था अपनी तर्क की शिक्षा के लिए, तो उससे आधी फीस लेता था। और कहता था, आधी तब देना, जब तुम किसी से तर्क में जीत जाओ। एक विद्यार्थी आया, अरिस्तोफेनीज, और उसने आधी फीस दी, और गुरु से शिक्षा ली दो साल। और दो साल के बाद गुरु राह देखने लगा कि वह किसी से तर्क में जीते, तो आधी फीस ले ले। लेकिन अरिस्तोफेनीज ने उस दिन से किसी से विवाद ही नहीं किया। यहां तक कि अगर उससे कोई कहे दिन में भी कि रात है, तो वह कहे, हां। क्योंकि अगर वह जीत जाए, तो वह आधी फीस चुकानी पड़े।
जीनो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने कहा, यह तो लड़का कुछ ज्यादा चालबाज है! जीनो के शिष्य ने, अरिस्तोफेनीज ने कहा कि मैं फीस देने वाला नहीं हूं, जब तक मैं जीतूं न। और जीतने का कोई कारण नहीं, क्योंकि मैं हर हालत में सरेंडर कर देता हूं। कोई कुछ भी कहे, हां! मैं न कहता ही नहीं, विवाद होगा ही नहीं, जीत का सवाल नहीं है।
लेकिन गुरु भी ऐसे हार नहीं मान सकता था। उसने अदालत में मुकदमा चलाया। उसने अदालत में मुकदमा चलाया, और अपील की अदालत से कि यह मेरी आधी फीस नहीं चुकाया है, वह मुझे मिलनी चाहिए। इसकी शिक्षा पूरी हो गई।
और उसकी तरकीब यह थी कि अदालत तो कहेगी कि यह अभी पैसा नहीं चुकाएगा, क्योंकि अभी शर्त पूरी नहीं हुई। यह अभी पहला विवाद नहीं जीता है। तो जीनो का ख्याल था कि मैं अरिस्तोफेनीज से कहूंगा कि अदालत ने तुझे जिता दिया, तू पहला विवाद जीत गया। आधी फीस मुझे दे दे। अगर अदालत निर्णय देगी अरिस्तोफेनीज के पक्ष में कि अभी फीस नहीं दी जा सकती, तो भी मैं फीस ले लूंगा, क्योंकि वह जीत गया, पहला विवाद जीत गया।
लेकिन अरिस्तोफेनीज भी उसी का शिष्य था। उसने कहा, अगर अदालत कहेगी
कि तुम जीत गए, तब तो मैं पैसा देने वाला नहीं हूं, क्योंकि मैं अदालत से प्रार्थना करूंगा कि इसमें अदालत का अपमान है। और अगर मैं हार गया, तब तो देने का सवाल ही नहीं है। क्योंकि पहला ही विवाद हार गया।
अदालत ने फैसला भी दे दिया कि अरिस्तोफेनीज को पैसा देने की जरूरत नहीं है, क्योंकि अभी उसने कोई विवाद ही नहीं किया, जीत का कोई सवाल नहीं है।

बाहर आते ही जीनो ने कहा, अरिस्तोफेनीज, अब पैसा दे दो, क्योंकि तुम पहला विवाद अदालत में मुझसे जीत गए। अरिस्तोफेनीज ने कहा कि गुरु, मैं आपका ही शिष्य हूं। आप भूल जाते हैं। मैं अदालत का अपमान कभी भी नहीं कर सकता, चाहे मेरे प्राण चले जाएं!
यह सोफिस्ट्री है। सोफिस्ट्री का मतलब होता है, वितंडा। उसमें आप कुछ
भी कर सकते हैं। और दोनों तरफ तर्क चल सकते हैं।
कृष्ण कहते हैं, ऐसे तर्क नहीं, लेकिन वह तर्क जो सत्य की खोज के लिए किया जाता है। तो मैं वाद, सत्य के खोजियों के लिए किया जाने वाला वाद हूं।
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें। प्रभु-नाम लें और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
तेरहवां प्रवचन

मैं शाश्वत समय हूं

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।। 33।।
मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।। 34।।
बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।। 35।।
तथा मैं अक्षरों में अकार और समासों में द्वंद्व नामक समास हूं, तथा अक्षय काल और विराट स्वरूप सबका धारण-पोषण करने वाला भी मैं ही हूं।
और हे अर्जुन, मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूं तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं।
तथा मैं गायन करने योग्य श्रुतियों में बृहत्साम और छंदों में गायत्री छंद तथा महीनों में मार्गशीर्ष महीना और ऋतुओं में वसंत ऋतु मैं हूं।

मैं अक्षरों में अकार और समासों में द्वंद्व नामक समास हूं तथा अक्षय काल और विराट स्वरूप सब का धारण-पोषण करने वाला भी मैं ही हूं। हे अर्जुन, मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूं।
कुछ नए प्रतीक, कुछ नई दिशाओं से, वही अर्जुन को फिर-फिर कहने की कोशिश कृष्ण की है। सत्य तो एक है, समझाया बहुत प्रकार से जा सकता है। और जो समझ सकते हैं, वे बिना प्रकार के भी समझ ले सकते हैं। और जो नहीं समझ पाते, अनंत-अनंत प्रकारों से भी समझाने से कुछ हल नहीं होता है। फिर भी कृष्ण जैसे व्यक्ति सतत चेष्टा करते हैं--एक द्वार से न दिखाई पड़े, दूसरे द्वार से; दूसरे द्वार से न दिखाई पड़े, तीसरे द्वार से। कृष्ण जैसे व्यक्तियों का श्रम अथक है, और धैर्य अनंत है।
इस सूत्र में कृष्ण कहते हैं, मैं अक्षय काल।
अस्तित्व में सभी कुछ क्षणिक है और सभी कुछ क्षीण हो जाता है। सभी कुछ परिवर्तित होता है। कुछ भी शाश्वत नहीं मालूम होता, सिवाय परिवर्तन के।
सब कुछ परिवर्तित होता है, सिवाय परिवर्तन के। सब कुछ बदल जाता है, एक बदलाहट ही स्थिर बात है। जो भी है, वह दूसरे क्षण भी वही नहीं रह जाता है।
इसे थोड़ा हम समझ लें, तो काल की अक्षरता और उसका अक्षय स्वरूप हमारे ख्याल में आ जाए।
जो भी है, दूसरे क्षण वही नहीं रह जाता है।
यूनान में विचारक हुआ है, हेराक्लतु। हेराक्लतु ने कहा है, एक ही नदी में दो बार उतरना असंभव है। यू कैन नाट स्टेप ट्वाइस इन दि सेम रिवर। कैसे उतरिएगा एक ही नदी में दो बार? जब दुबारा आप उतरने जाएंगे, नदी बह चुकी है। जिस जल को आपने पहली बार स्पर्श किया था, अब आप उसे दुबारा स्पर्श न कर पाएंगे।
लेकिन हेराक्लतु ने कोई अतिशयोक्ति नहीं की। यह ओवर स्टेटमेंट नहीं है, अंडर स्टेटमेंट है। उसने कुछ कहा, वह कहा जाना चाहिए उससे कम है। सचाई तो यह है कि यू कैन नाट स्टेप ईवेन वंस इन दि सेम रिवर। एक बार भी एक ही नदी में उतरना असंभव है। क्योंकि जब आपका पैर नदी की ऊपर की सतह को छूता है, तब तक नीचे का पानी बह चुका; और जब आपका पैर एक कदम नीचे जाता है, तब तक ऊपर का पानी बह चुका। नदी बह रही है, बहने का नाम नदी है। बहाव सतत है।
जीवन की नदी भी वैसी ही सतत है, वैसा ही बहाव है। जीवन में भी दुबारा उसी जगह खड़े होना असंभव है। और दुबारा वही देखना भी असंभव है, जो देखा।
हमें भ्रांति लेकिन होती है। हम सोचते हैं, रोज वही सूरज निकलता है।

वही सूरज रोज नहीं निकल सकता है। सूरज रूपांतरित हो रहा है प्रतिपल। सूरज जलती हुई आग है। और जैसे लपटें प्रतिपल बदल रही हैं, जैसे दीए की लौ प्रतिपल बदल रही है, ऐसा ही सूरज भी प्रतिपल बदल रहा है।
सांझ आप एक दीया जलाते हैं, सुबह सोचते हैं, उसी दीए को बुझा रहे हैं;
तो आप गलती में हैं। सांझ जो दीया जलाया था, वह तो न मालूम कितनी बार बुझ चुका। लौ प्रतिपल खो रही है आकाश में; नई लौ उसकी जगह स्थापित होती चली जा रही है। लेकिन यह इतनी तीव्रता से हो रहा है, यह लौ का प्रवाह इतना त्वरित है कि दो लौ के बीच में आप खाली जगह नहीं देख पाते। इसलिए सोचते हैं, एक ही लौ रातभर जलती रही; सुबह हम उसी दीए को बुझा रहे हैं।
अगर उसी दीए को सुबह बुझा रहे हैं, तो रातभर जो तेल जला, वह कहां गया? रातभर तेल जलता रहा और दीए की लौ बदलती रही। सुबह आप दूसरी ही लौ बुझा रहे हैं। वही लौ नहीं, जो आपने सांझ जलाई थी। निश्चित ही, उसीशृंखला की लौ है, उसी लौ की संतान है, लेकिन वही लौ नहीं है।
सूरज भी ऐसा ही बदल रहा है। छोटा-सा दीया बदल रहा है इतनी तेजी से। उतना बड़ा सूरज और भी बड़ी तेजी से बदल रहा है। सुबह रोज वही सूरज नहीं उगता।
और आप सोचते हों, सुबह रोज वही पृथ्वी दिखाई पड़ती है, तो भी गलती में हैं।
और आप सोचते हों कि रोज उन्हीं वृक्षों के पास से आप गुजरते हैं, तो भी आप भूल में हैं। सब बदल रहा है। बदलाहट इतनी तीव्र है कि आपको दिखाई नहीं पड़ती।
जैसे बहुत तेजी से बिजली का पंखा चल रहा हो, तो उसकी पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़तीं। वैज्ञानिक कहते हैं कि इतनी तेजी से बिजली का पंखा चलाया जा सकता है कि आप अगर गोली भी मारें, तो बीच की जगह से नहीं निकले, पंखड़ी में ही लगे। वैज्ञानिक कहते हैं, इतनी तेजी से भी बिजली का पंखा चलाया जा सकता है कि आप उस पर बैठ जाएं और आपको पता न चले कि पंखा चल रहा है।
सब कुछ इतनी ही तेजी से चल रहा है। आप जिस जमीन पर बैठे हैं, वह भी तेजी से, जमीन का एक-एक टुकड़ा भाग रहा है। आपके मकान की दीवाल की ईंट का एक-एक अणु तीव्रता से गतिमान है। कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है। सब चीजें चल रही हैं। तेजी इतनी ज्यादा है कि आपको दिखाई नहीं पड़ती।
और अगर यही सब बदल रहा होता, तब भी ठीक था। सुबह सूरज तो दूसरा होता ही है, जमीन दूसरी होती है, वृक्ष दूसरे होते हैं, आकाश दूसरा होता है, आप भी दूसरे होते हैं। रात जो सोया था, वही आदमी सुबह नहीं जगता। आपकी जीवन धारा भी बह रही है। प्रतिपल बह रही है। आपमें भी सब बदल जाता है।
आप कभी ख्याल किए हैं कि अगर मां के पेट में जो आपकी तस्वीर थी, पहले दिन मां के पेट में जो अणु निर्मित हुआ था, जो कि आप आज हो गए हैं, अगर वह आपके सामने रख दिया जाए, तो आप इन आंखों से उसे देख भी न सकेंगे। बड़ी खुर्दबीन की जरूरत पड़ेगी। और फिर भी कोई उपाय नहीं है कि आप पहचान लें कि कभी मैं यह रहा होऊंगा। लेकिन कभी आप वही थे।
और फिर एक दिन आप जल जाएंगे और राख का एक ढेर रह जाएगा। अगर आज वह ढेर आपके सामने रख दिया जाए, तो भी आप मानने को राजी न होंगे कि यही मैं हो जाऊंगा। आपको भरोसा न होगा कि यह और मैं! लेकिन वही आप हो जाएंगे। और हो जाएंगे जब मैं कह रहा हूं, तो आप ऐसा मत सोचना कि यह कल होने वाली बात है, वही आप हो रहे हैं।
हमारी भाषा हमें बहुत-सी भूलों में ले जाती है, क्योंकि भाषा एक तरह
का फिक्सेशन का ख्याल देती है कि चीजें ठहरी हुई हैं। हम कहते हैं, वृक्ष है। कहना चाहिए, वृक्ष हो रहा है। हम कहते हैं, नदी है। कहना चाहिए, नदी हो रही है। हम कहते हैं, बच्चा है। कहना चाहिए, बच्चा हो रहा है। हम कहते हैं, मृत्यु आएगी। कहना चाहिए, मृत्यु आ रही है।
सब कुछ हो रहा है। प्रत्येक वस्तु एक घटना है, वस्तु नहीं। कोई वस्तु वस्तु नहीं है, घटना है। घटना का अर्थ है, प्रक्रिया है। इस जगत में प्रक्रियाएं हैं, वस्तुएं नहीं। घटनाएं हैं, वस्तुएं नहीं। सब कुछ हो रहा है। प्रवाह है। इस प्रवाह के बीच में अगर कोई एक चीज अक्षय है, तो वह समय है, काल है।

यह बहुत मजे की बात है। अगर इस परिवर्तन के बीच में कोई चीज थिर है, तो
वह परिवर्तन है। यह उलटा मालूम पड़ेगा। लेकिन जीवन के गहरे सत्य सभी पैराडाक्सिकल हैं, उलटे होते हैं। ऐसा हम कहें तो समझ में आ जाएगा, इस जगत में अगर कोई चीज नहीं मरती है, तो वह मृत्यु है। बाकी सब चीजें मरती हैं। और इस जगत में एक ही चीज अक्षय है, जो क्षीण नहीं होती, वह समय है। सब बदलता रहता है।
लेकिन ध्यान रहे, बदलने की प्रक्रिया समय में घटती है। समय न हो, तो बदलाहट नहीं हो सकती। आप अपने घर से यहां तक आए, आने में घंटाभर लगा। अगर समय न हो, तो आप यहां नहीं पहुंच सकते। एक घंटा चाहिए, तब आप यहां पहुंच सकते हैं। समझ लें कि समय समाप्त हो गया, तो फिर आप यहां से हिल भी न सकेंगे। क्योंकि हिलने में भी समय लगेगा। फिर आप श्वास भी न ले सकेंगे, क्योंकि श्वास लेने में भी समय की जरूरत है।
इस जगत में जो कुछ हो रहा है, उस सबके लिए समय अनिवार्य है। सब चीजें समय के भीतर हो रही हैं। सभी के होने में समय छिपा हुआ है। अस्तित्व समय के साथ एक है। सब चीजें बदल रही हैं, बदलाहट समय के भीतर हो रही है। समय भर नहीं बदलता, क्योंकि समय किसके भीतर बदलेगा! समय को बदलने के लिए फिर एक और समय चाहिए।
गणितज्ञ उस पर विचार करते हैं, तो वे कहते हैं, टाइम ए को अगर बदलना हो,
तो फिर टाइम बी चाहिए। अगर टाइम बी को बदलना हो, तो फिर टाइम सी चाहिए। समय एक को बदलना हो, तो समय दो चाहिए। समय दो को बदलना हो, तो समय तीन चाहिए। यह तो फिजूल की बात हो जाएगी। और समय को हम अंत तक खींचते चले जाएं, तो भी एक समय हमें मानना पड़ेगा, जो नहीं बदलता है। जैसे, इसे हम और तरह से समझें, तो आसान हो जाए।
आप बैठे हैं जमीन पर। आपके बैठने के लिए जगह चाहिए। बिना जगह के आप नहीं बैठ सकते। आपके होने के लिए आकाश चाहिए, जगह चाहिए, स्थान, स्पेस चाहिए। तब एक सवाल उठता है, जो दर्शनशास्त्री पूछते रहे हैं कि आकाश को होने के लिए भी तो फिर कोई और स्थान चाहिए पड़ेगा। आकाश को होने के लिए कोई महाआकाश चाहिए। लेकिन फिर यह इनफिनिट रिग्रेस होगी, इसका कोई अंत न होगा। फिर उस महाआकाश के लिए कोई और महाआकाश चाहिए।
इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि आकाश सब चीजों के लिए चाहिए, सिर्फ आकाश
को छोड़कर। आकाश के लिए कोई स्थान की जरूरत नहीं। आकाश स्वयं स्थान है। सब चीजों के लिए आकाश जरूरी है। आकाश के लिए कुछ और जरूरी नहीं है।
ठीक वैसे ही, सब परिवर्तन के लिए समय जरूरी है, सिर्फ समय के परिवर्तन
के लिए समय जरूरी नहीं है। कहना चाहिए कि जैसे स्थान आकाश है, ऐसे ही परिवर्तन समय है। और समय के लिए कोई और चीज की आवश्यकता नहीं है। वैज्ञानिक, विशेषकर अल्बर्ट आइंस्टीन, समय और आकाश दोनों को जोड़कर एक
नई धारणा निर्मित किए हैं, जो आधुनिक फिजिक्स की धारणा है। आइंस्टीन ने एक नया प्रस्ताव रखा। वह प्रस्ताव भारत के लिए बहुत पुराना है। और वह प्रस्ताव पश्चिम में बहुत कीमती सिद्ध हुआ। आधुनिक विज्ञान उसी प्रस्ताव के आस-पास निर्मित हुआ है। वह प्रस्ताव यह है कि समय और आकाश भी दो नहीं हैं, एक ही चीज हैं। तो आइंस्टीन ने कहा कि समय भी आकाश का एक आयाम है।
यह थोड़ी कठिन गणित की धारणा है।
आकाश के तीन आयाम आइंस्टीन ने कहे हैं। तीन आयाम। कोई भी चीज हो, तो लंबाई होगी, चौड़ाई होगी, गहराई होगी। किसी भी चीज के होने के लिए ये तीन आयाम जरूरी हैं, लंबाई, चौड़ाई, गहराई। ये थ्री डायमेंशन आकाश के हैं। आइंस्टीन ने कहा कि चौथा आयाम, चौथा डायमेंशन समय है। किसी भी चीज के होने के लिए एक चौथी दिशा भी है, परिवर्तन। लंबाई चाहिए, चौड़ाई चाहिए, गहराई चाहिए और अगर वह चीज है, तो एक परिवर्तन की प्रक्रिया चाहिए। वह चौथा आयाम है टाइम।
तो आइंस्टीन ने कहा, टाइम इ.ज दि फोर्थ डायमेंशन आफ स्पेस, वह आकाश का
ही चौथा आयाम है। और तब उसने एक ही शब्द निर्मित किया स्पेसियोटाइम। एक ही अस्तित्व है, समय और आकाश का, क्योंकि किसी भी चीज के होने के लिए परिवर्तन जरूरी है। अस्तित्व मात्र परिवर्तन का प्रवाह है।

कृष्ण कहते हैं, मैं अक्षय काल हूं। मैं वह समय हूं, जो कभी चुकता नहीं।
सब चीजें चुक जाती हैं, समय भर नहीं चुकता। सूरज चुक जाते हैं, बुझ जाते हैं। पृथ्वियां चुक जाती हैं, बूढ़ी हो जाती हैं, मर जाती हैं। बड़े-बड़े तारे होते हैं, बिखर जाते हैं। अगर हम इस विराट अस्तित्व में खोजने चलें, तो सभी चीजें बनती हैं, बिखरती हैं। सिर्फ एक समय बनने में भी मौजूद रहता है, बिखरने में भी मौजूद रहता है। जन्म में भी मौजूद रहता है, मृत्यु में भी मौजूद रहता है। सिर्फ एक समय अक्षय रूप से मौजूद रहता है। उसकी मौजूदगी सदा है।
इसलिए महावीर ने तो आत्मा का नाम ही समय रख दिया। महावीर ने तो आत्मा
का नाम ही समय रख दिया। महावीर ने कहा, आत्मा यानी समय, अस्तित्व यानी समय। इसलिए अगर आपने कभी जैनियों का शब्द सुना हो, तो वे ध्यान को कहते हैं सामायिक। प्रार्थना को वे कहते हैं सामायिक। सामायिक का अर्थ है, समय में प्रवेश कर जाना, आत्मा में डूब जाना। टु बी इन दि इटरनल टाइम, वह जो अनंत समय है, उसके साथ एक हो जाना। यह सामायिक शब्द ध्यान से भी ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि जो व्यक्ति उस शाश्वत समय में एक हो गया, वह परमात्मा से एक हो गया।
कृष्ण कहते हैं, मैं अक्षय काल हूं।
हम सब समय से अपने को भिन्न समझते हैं। हम सब समय से अपने को अलग समझते हैं। हम सब ऐसा समझते हैं कि समय कोई चीज है, जिसमें से हम गुजर रहे हैं। या समय कोई चीज है, जो हमारे पास से गुजर रहा है। हमारी जो धारणा है वह यही है। एक आदमी बैठकर कहता है कि समय पास कर रहा हूं, समय काट रहा हूं। उसे पता नहीं कि वह समय को नहीं काट रहा है, अपने को काट रहा है। समय को आप कैसे काटिएगा! कोई छुरी-तलवार नहीं जो समय को काट सके। समय आपको काट सकता है, आप समय को नहीं काट सकते। लेकिन लोग कहते हैं! बैठकर ताश खेल रहे हैं। वे कहते हैं, समय काट रहे हैं! उनको पता नहीं कि ताश खेलकर समय उनको काट रहा है।
आप समय को छू भी नहीं सकते, काटना तो बहुत दूर है। समय का आपको कोई अनुभव भी नहीं होता, काटना तो बहुत दूर है। आप सिर्फ अपने को काट सकते हैं। समय तो अक्षय है, कटेगा भी नहीं। आपके काटे नहीं कटेगा। अब तक किसी के काटे नहीं कटा है। और सब काटने वाले विलीन हो जाते हैं। सब काटने वाले आते हैं और खो जाते हैं। और समय शाश्वत अपनी जगह बना रहता है।
समय की यह शाश्वतता, यह इटरनिटी, कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं।
इस जगत में अगर किसी चीज को अक्षय का प्रतीक मानें हम, तो वह समय है।
बाकी सब चीजें क्षय हो जाती हैं। समय में जितनी चीजें हैं, वे सभी क्षय हो जाती हैं, सिर्फ समय को छोड़कर। समय पर मृत्यु का कोई प्रभाव नहीं है।
इसलिए हमने, विशेषकर भारत ने, समय को और मृत्यु को भी एक मान लिया है।
इसलिए मृत्यु को भी हम काल कहते हैं और समय को भी काल कहते हैं।
सिर्फ समय की कोई मृत्यु नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर समय मृत्यु
से अलग होता, तो समय की भी मृत्यु घटित होती। समय मृत्यु के साथ एक है।
इसलिए मृत्यु की तो क्या मृत्यु होगी! मृत्यु तो कैसे मरेगी? इसलिए हमने मृत्यु को भी काल का नाम दिया।
महावीर ने आत्मा को काल का नाम दिया, हमने समय को भी काल कहा, हमने मृत्यु को भी काल कहा। इनके पीछे कारण हैं।
मृत्यु भी एक शाश्वतता है। और अगर हम गौर से देखें, तो मृत्यु सिर्फ
एक शब्द है। समय के द्वारा हम काट दिए जाते हैं। जब हम पूरे काट दिए जाते हैं, तो उस घटना को हम मृत्यु कहते हैं। और तो मृत्यु कुछ भी नहीं है। मृत्यु और कुछ भी नहीं है।
जैसे नदी की धार बहती हो और जमीन कट जाती है, और धीरे-धीरे जमीन बह जाती है, सॉइल इरोजन हो जाता है। ऐसा ही हमारा अस्तित्व समय की धार में कटता जाता है, कटता जाता है, इरोजन हो जाता है। एक दिन हम पाते हैं कि हम बह गए, कण-कण होकर बह गए। जिस दिन हम पूरे बह जाते हैं, उन दिन हम कहते हैं, मृत्यु हो गई। लेकिन समय हमें प्रतिपल बहाए ले जा रहा है। हम प्रतिपल बह रहे हैं।

हम रुक भी नहीं सकते। रुकने का कोई उपाय नहीं है। यह होने का ढंग है,
यह नियति है। इसमें रुकने का कोई उपाय नहीं है। बहना ही होगा। जो इस बहने से लड़ने लगेगा, वह और जल्दी टूट जाएगा। जो इस बहने को रोकने की कोशिश करेगा, वह और भी जल्दी नष्ट हो जाएगा। उसकी कोशिश ऐसी ही होगी, जैसे कोई नदी की तीव्र धार के विपरीत बहने की कोशिश करता हो। वह और जल्दी थक जाएगा और धार उसे जल्दी बहा ले जाएगी।
समय के साथ एकता साध लेनी, परमात्मा के साथ एकता साध लेनी है। लेकिन समय के साथ एकता साधने का अर्थ है, परिवर्तन को स्वीकार करने की क्षमता। जो भी हो जाए, उससे राजी हो जाने का गुण। जो भी घटित हो, उसके साथ पूरा आत्मैक्य। कहीं कोई विरोध न हो; समय जो भी ले आए, उसके साथ पूरा तालमेल। बीमारी आ जाए, तो बीमारी। बुढ़ापा आ जाए, तो बुढ़ापा। मृत्यु आने लगे, तो मृत्यु। कहीं कोई विरोध नहीं। भीतर कहीं कोई विरोध नहीं। जो भी हो, उसके साथ पूरा आत्मैक्य। तो आप समय को जान पाएंगे कि समय क्या है।
लेकिन हम सब लड़ रहे हैं। हम सब समय से हटने की कोशिश कर रहे हैं। हट नहीं सकते, वह आकांक्षा संभव नहीं होगी, लेकिन हमारी चेष्टा वही है।
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन को उसके घर के बाहर लोगों ने पकड़ा और कहा कि तुम यहां क्या कर रहे हो! वह वृक्ष के नीचे बैठकर कुछ सोच-विचार में लीन था। कहा कि तुम्हारी पत्नी नदी की बहती धार में गिर गई है। और धार तेज है और वर्षा के दिन हैं, और ज्यादा देर नहीं लगेगी कि समुद्र में तुम्हारी पत्नी पहुंच जाएगी। भागो!
मुल्ला भागा। कपड़े फेंककर नदी में कूदा और नदी की उलटी धार में जोर से हाथ मारने लगा। लोगों ने चिल्लाकर कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो? अगर पत्नी बहेगी, तो बहने का एक ही ढंग है कि वह नीचे की तरफ जाएगी, जहां धार जा रही है। और तुम उलटे जा रहे हो?
मुल्ला ने कहा, मैं अपनी पत्नी को तुमसे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूं। उलटा जाना उसकी आदत है। उसके साथ तीस साल रह चुका हूं। सारी दुनिया गिरकर नदी में अगर सागर की तरफ जाती होगी, तो मेरी पत्नी नहीं जा सकती, वह उलटी जा रही होगी!
हम सारे लोग ही लेकिन वैसे हैं। अगर हम जीवन की धार को देखें, तो हम सब उलटे तैरने की कोशिश करते हैं। उलटे तैरने में एक मजा जरूर है, उसी कारण हम तैरते हैं। उलटे तैरने में अहंकार निर्मित होता है। अगर मैं दो हाथ उलटे मार लेता हूं, तो लगता है, मैं कुछ हूं। धार के विपरीत, प्रवाह के विपरीत, मैं कुछ हूं। और अगर प्रवाह में बहता हूं, तो फिर मैं कुछ भी नहीं हूं!
अगर कोई आदमी उलटी धार में तैरकर गंगोत्री पहुंच जाए, तो सारे दुनिया
के अखबार उसकी फोटो छापेंगे। और कोई आदमी गंगोत्री से बहकर सागर में पहुंच जाए, कोई अखबार छापने वाला नहीं मिलेगा। उलटा अगर हम दो हाथ जीत पाते हैं, तो विजय मालूम पड़ती है।
लेकिन ध्यान रहे, समय की धार में कोई भी उलटा नहीं तैर सकता। नदी की धार में दो हाथ कोई मार भी ले। समय की धार में उलटा नहीं तैर सकता। क्योंकि समय पीछे बचता ही नहीं कि आप उसमें तैर सकें। नदी तो पीछे भी होती है। समय तो विलीन हो जाता है। एक ही क्षण आपको मिलता है, पिछला क्षण तो विलीन हो जाता है। अतीत तो बचता नहीं कि आप पीछे जा सकें। सिर्फ भविष्य ही बचता है। आगे ही जा सकते हैं, पीछे जाने का कोई उपाय नहीं।
लेकिन मन पीछे जाने की कोशिश करता रहता है। उस विपरीत दौड़ में अहंकार निर्मित जरूर होता है, लेकिन हम समय के साथ एक होने का जो गहन अनुभव है, उससे वंचित हो जाते हैं।
धार के साथ बह जाएं, कोई बाधा न डालें। नदी की धार के साथ एक हो जाएं।
और जीवन जो भी ले आए, उसे परम आनंद से स्वीकार कर लें। उसमें रंचमात्र भी नकार न हो। उसमें रंचमात्र भी अस्वीकार न हो। उसमें शिकायत न हो। ऐसे ही आदमी का नाम धार्मिक आदमी है, जिसके मन में जीवन के प्रति शिकायत नहीं है। मंदिर जाने वाला आदमी धार्मिक नहीं है। क्योंकि हो सकता है, मंदिर वह सिर्फ शिकायत के लिए जा रहे हों। अधिक लोग तो मंदिर शिकायत के लिए जाते हैं। अधिक लोगों की प्रार्थनाएं यह बताती हैं कि भगवान, तुझसे ज्यादा तो

हम समझते हैं! तू जो कर रहा है, वह गलत है। हम जो चाहते हैं, वह कर! हमारी प्रार्थनाएं, हमारे मंदिर, हमारी पूजाएं, हमारी मस्जिदें, हमारी शिकायतों के घर हैं।
लेकिन जो आदमी शिकायत लेकर मंदिर गया है, वह मंदिर जा ही नहीं सकता। मंदिर में प्रवेश का तो एक ही मार्ग है कि कोई शिकायत न हो। जीवन ने जो दिया है, जीवन ने जो किया है, जीवन जैसा है, उसमें परम हर्ष हो, उसके स्वीकार में परम उत्सव हो, तब आप बहेंगे। और आपके और समय के बीच जो दुविधा मालूम पड़ती है, वह विलीन हो जाएगी। आप समय के साथ एक हो जाएंगे। इस समय के साथ जो एक होने की घटना है, उस घटना में ही आपको काल के अक्षय स्वरूप का बोध होगा। यह इटरनल टाइम क्या है!
अभी आप जिस समय को जानते हैं, वह घड़ी का समय है; उसका अक्षय काल से कोई संबंध नहीं है। घड़ी का समय, आपका निर्मित समय है। घड़ी का समय, आपका बनाया हुआ समय है। वह समय नहीं है। हमने दिन को चौबीस घंटों में बांट लिया है। हमने घंटे को साठ मिनटों में बांट लिया है। हमने मिनट को साठ सेकेंडों में बांट लिया है। यह हमारी व्यवस्था है। इससे मूल समय का कोई संबंध नहीं है। इससे हम कामचलाऊ समय को निर्मित कर लिए हैं। इसी को अगर आप समय समझते हैं, तो आप भूल में हैं, आप गलती में हैं।
समय तो उसी दिन आपको पता चलेगा, जिस दिन आप तथाता को, टोटल एक्सेप्टेंस को उपलब्ध हो जाएंगे। उस दिन, यह कृष्ण जो काल का अक्षय स्वरूप कह रहे हैं, यह आपके अनुभव में आएगा।
कभी चौबीस घंटे ही ऐसा करें कि बहकर देखें, तैरें मत। धार्मिक आदमी तैरता नहीं है; अधार्मिक आदमी तैरता है। धार्मिक आदमी बहता है। बहता है, कहना भी शायद ठीक नहीं। क्योंकि बहता है, इसमें भी ऐसा लगता है कि कुछ करता है। नहीं, धार्मिक आदमी धार के साथ एक हो जाता है। धार जहां ले जाती है, वहीं चला जाता है।
लाओत्से ने कहा है कि मैंने एक सूखे पत्ते को देखा। वर्षों तक मैंने ध्यान किया। वर्षों तक मैंने पूजा की, प्रार्थना की। वर्षों तक मैंने उसको खोजा। लेकिन उसका मुझे कोई पता नहीं मिला। फिर एक दिन मैं बैठा था।
पतझड़ के दिन थे, सूखे पत्ते वृक्षों से गिरकर उड़ रहे थे। और तब मैंने उस मौन शांत दोपहरी में देखा सूखे पत्तों को। और उसी दिन मुझे राज मिल गया। हवा सूखे पत्ते को बाएं ले जाए, तो सूखा पत्ता बायां चला जाता था। दाएं ले जाए, तो दाएं चला जाता था। ऊपर ले जाए, तो आकाश में उठ जाता था।
जमीन पर पटक दे, तो नीचे विश्राम करने लगता था। सूखे पत्ते की अपनी कोई मर्जी ही न थी। सूखे पत्ते की अपनी कोई आकांक्षा न थी। सूखे पत्ते के हृदय में कोई भाव ही न था कि मैं कहां जाऊं। हवाएं जहां ले जाएं, वहीं जाने को राजी था। सूखे पत्ते ने अपना अस्तित्व ही खो दिया था।
हमारी वासनाएं ही हमारा अस्तित्व हैं। हमारी आकांक्षाओं का जोड़ ही हमारा तथाकथित होना है। सूखा पत्ता हवाओं के साथ एक हो गया था। हवाएं आकाश में उठातीं, तो सिंहासन पर विराजमान होकर आनंदित होता। हवाएं नीचे गिरा देतीं, तो धूल में विश्राम करता, आनंदित होता।
लाओत्से ने कहा, बस उस दिन से मैं भी सूखा पत्ता हो गया। और जिस दिन से मैं सूखा पत्ता हो गया हूं, उस दिन से मैंने दुख नहीं जाना, अशांति नहीं जानी। और जिस दिन से मैं सूखा पत्ता हो गया हूं, उस दिन से मुझे सत्य खोजना नहीं पड़ा; सत्य मौजूद ही था, वह मेरे अनुभव में आ गया है।
काल की यह अक्षयता अनुभव में आए, तो परमात्मा का गहनतम रूप स्मरण में आना शुरू होता है।
हे अर्जुन, मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण भी हूं। मृत्यु भी मैं हूं, जन्म भी मैं हूं।
इसे थोड़ा हम समझें।
मजे की बात है कि हम कभी ख्याल में नहीं लाते, जन्म आपका होता है, कभी आपने सोचा? जन्म एक घटना है, जिसके संबंध में आप कुछ भी नहीं कर सकते। करेंगे भी कैसे, क्योंकि जन्म के बाद ही आप हो सकते हैं। जन्म के पहले कोई आपसे पूछता भी नहीं कि आप जन्म लेना चाहते हैं! जन्म के पहले आपका कोई भी

चुनाव नहीं हो सकता। होगा भी कैसे? जब जन्म ही नहीं हुआ, तो आपका चुनाव क्या है? जन्म आपको मिलता है। इट इ.ज ए गिफ्ट, वह एक दान है, एक भेंट है। अस्तित्व आपको जन्म देता है। जन्म आपके हाथ की बात नहीं है। जन्म के संबंध में आप कुछ भी नहीं कर सकते। आपके निर्णय की कोई संगति ही नहीं है। आप जब भी हैं, जन्म के बाद हैं। जन्म के पहले आप नहीं हैं। निश्चित ही, जन्म आपका नहीं हो सकता।
मृत्यु भी आपकी नहीं है। जैसे जन्म आपके हाथ से घटित नहीं होता, वैसे
ही मृत्यु भी आपके हाथ से घटित नहीं होती। मृत्यु भी विराट का ही हाथ है, और जन्म भी विराट का ही हाथ है। जो आपको जन्म देता है, वही आपको मृत्यु में खींच लेता है।
इसलिए अगर समस्त जगत के धर्मों ने आत्महत्या का विरोध किया है, तो उसका कारण है। आत्महत्या को अगर बड़े से बड़ा पाप कहा है, तो उसका कारण है। जन्म तो आप नहीं ले सकते, लेकिन आत्महत्या कर सकते हैं। और जो काम परमात्मा को ही करना चाहिए, जब आप करते हैं, तब महापाप घटित होता है। जन्म तो आप नहीं ले सकते, उसका कोई उपाय नहीं है; लेकिन मृत्यु आप चुन सकते हैं। लेकिन जब आप जन्म नहीं चुन सकते, तो आपको मृत्यु चुनने का कोई हक नहीं रह जाता।
बुद्ध ने कहा है किसी दूसरे संदर्भ में, एक दूसरे पहलू से, यही बात। बुद्ध को एक गांव के पास से गुजरते वक्त लोगों ने कहा कि उस रास्ते पर मत जाएं। वहां एक आदमी बिल्कुल पागल हो गया है। और उस आदमी ने कसम खा ली है कि जो भी आदमी इस रास्ते से निकलेगा, उसकी गर्दन काटकर उसकी अंगुलियों का हार पहन लूंगा। उसने नौ सौ निन्यानबे आदमी मार डाले हैं। और वह कहता है, जब तक हजार पूरे न हो जाएंगे, तब तक मेरा व्रत पूरा नहीं होगा! उस डाकू का नाम अंगुलिमाल था। अंगुलियों की मालाएं पहन रखी थीं उसने। आप उस रास्ते मत जाएं, वह रास्ता निर्जन हो गया है, अब वहां कोई नहीं जाता है। महीनों से उस तरफ कोई नहीं गया है।
बुद्ध ने कहा, अगर मुझे पता न होता, तो शायद मैं दूसरे रास्ते से भी चला जाता। लेकिन अब जब कि मुझे पता है, तो मुझे जाना ही पड़ेगा। वह अंगुलिमाल बड़ी मुश्किल में होगा। उसको हजार पूरे करने हैं, और कोई आदमी जाता भी नहीं! कुछ उसका भी तो सोचो। और अगर मैं न जाऊंगा, तो फिर कौन जाएगा? तो बुद्ध उस रास्ते पर चल पड़े। संगी थे, साथी थे, जो कहते थे कि जन्म-मरण का साथ है, वे भी थोड़े पीछे होने लगे। यह उपद्रव का मामला था। यह कविता में ठीक है कि जन्म-मरण का साथ है। वस्तुतः स्थिति आ जाए, तो जन्म-मरण के साथी सबसे पहले पीछे हट जाते हैं।
अंगुलिमाल ने दूर से देखा बुद्ध को आते हुए। उसे भी दया आई। वह आदमी न
था दया करने वाला। उसे भी दया आई कि यह भिक्षु भूल से आ गया मालूम होता है। पर गांव के लोगों ने जरूर रोका होगा, यह फिर भी पागल है। यह मुझसे भी ज्यादा पागल मालूम पड़ता है!
वह अपने फरसे पर धार रख रहा है। और बुद्ध उसके रास्ते के करीब-करीब पगडंडी चढ़ने लगे। और बुद्ध की वैसी निर्दोष आंखें, बुद्ध का वैसा बच्चों जैसा व्यक्तित्व, बुद्ध की वह सरलता, अंगुलिमाल ने फरसे पर धार रखते नीचे देखा। उसको भी लगा कि यह आदमी निश्चित ही गलत आ गया।
उसने भी चिल्लाकर कहा कि ऐ भिक्षु, रुक जा वहीं। आगे मत बढ़। शायद तुझे पता नहीं कि मैं अंगुलिमाल हूं! बुद्ध ने कहा, मुझे पता है। शायद तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं! और बुद्ध बढ़ते ही गए। अंगुलिमाल ने फरसे को सूरज की धूप में चमकाकर कहा कि नासमझ भिक्षु, तुझे पता नहीं है कि मैंने कसम ली है आदमियों को काटने की, और तू आखिरी आदमी है। तुझको काटकर मेरा व्रत पूरा हो जाएगा। मैं तुझे छोडूंगा नहीं। अगर मेरी मां भी आती हो, तो भी मैं हजार वाला व्रत पूरा करने वाला हूं। इसलिए तू लौट जा, आगे मत बढ़। एक कदम भी आगे मत बढ़। रुक जा वहीं! बुद्ध ने कहा कि मुझे तो बहुत समय हो चुका, जब मैं रुक गया। अंगुलिमाल, मैं तुझसे कहता हूं कि तू रुक जा। और बुद्ध चलते ही रहे। अंगुलिमाल ने जाना कि निश्चित ही यह आदमी पागल है और मुझसे ज्यादा पागल है। बैठे हुए आदमी को कहता है कि तू रुक जा! खुद चलता है और कहता है,

लंबा समय हुआ तब से मैं रुक गया हूं! बुद्ध करीब आ गए, अंगुलिमाल का भी मन हुआ कि जरा इससे बात कर ली जाए। इस आदमी का मतलब क्या है! उसने पूछा, तुम्हारा मतलब क्या है रुक जाने का! तुम चलते हुए कहते हो कि मैं रुक गया! बुद्ध ने कहा, जब मन ही रुक गया, तो शरीर के चलने, न चलने से क्या होगा!
तू बैठा हुआ दिखाई पड़ता है, लेकिन जितने जोर से तेरा फरसा चल रहा है, उससे भी ज्यादा जोर से तेरा मन चल रहा है। इसलिए मैं कहता हूं, अंगुलिमाल, तू ही रुक जा। मैं तो रुक गया हूं।
अंगुलिमाल का भी हाथ जरा ढीला हो गया। लेकिन फिर उसे याद आई कि पता नहीं वह हजार का व्रत पूरा हो, न हो। आदमी कोई आए, न आए! उसने कहा, कुछ भी हो, दया मेरे मन भी आती है, लेकिन फिर भी मैं अपने व्रत से बंधा हूं। और मैं तुम्हें काटूंगा। बुद्ध ने कहा, काटने के पहले मेरी एक छोटी-सी आकांक्षा है मरते आदमी की, वह तू पूरी कर दे। यह जो सामने वृक्ष लगा है, इसका एक पत्ता तोड़कर मुझे दे दे।
अंगुलिमाल ने जाना कि आदमी बिल्कुल ही पागल है। यह भी कोई इच्छा है मरते वक्त! उसने वहीं से फरसा ऊपर मारा। एक पत्ता क्या, हजार पत्ते टूटकर नीचे गिर गए। बुद्ध ने कहा, यह आधी आकांक्षा पूरी हो गई, आधी और पूरी कर दे। इनको वापस जोड़ दे! अंगुलिमाल ने कहा, मैं पहले ही समझ गया था कि तू पागल है। टूटे हुए पत्ते जोड़े नहीं जा सकते!
तो बुद्ध ने कहा, जितनी अकड़ से तूने काटा था, उससे तो ऐसा लगता था कि तू जोड़ भी सकेगा। इतनी अकड़ से तूने काटा था कि कोई बड़ा काम कर रहा है! यह तो बच्चे भी कर देते। यह तो बच्चे भी कर देते, जो तूने किया है इतनी अकड़ से। इसमें अकड़ क्या थी! जोड़ दे, तो समझूं। और अगर न जोड़ सकता हो, तो फिर मैं तुझसे कहता हूं, तू मेरी गर्दन काट। लेकिन थोड़ा सोच लेना, एक पत्ता भी जो नहीं जोड़ सकता है, वह गर्दन काटने का हकदार है? अब तू अपना फरसा उठा ले और तू गर्दन काट डाल। लेकिन जिसे तू बना नहीं सकता था, उसे मिटाने का तुझे कोई हक न था।
अंगुलिमाल का फरसा नीचे गिर गया और उसका सिर बुद्ध के पैरों पर गिर गया।
जीवन में हिंसा, हत्या अगर बुरी कही गई है, तो उसका कुल कारण इतना है
कि तुम जन्म अपने को नहीं दे सकते। आत्महत्या का अगर सारे धर्मों ने विरोध किया है, तो कुल कारण इतना है कि तुम जब अपने को जन्म नहीं दे सकते, अपने जन्म के मालिक नहीं हो, तो तुम अपनी मृत्यु के मालिक कैसे हो सकते हो! वह मालकियत छीननी, परमात्मा के खिलाफ बड़े से बड़ा पाप है।
इस संदर्भ में आपको मैं कहना चाहूंगा, पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक आल्बेयर कामू ने अपनी एक किताब की शुरुआत इस वाक्य से ही की है कि मनुष्य के समक्ष आत्महत्या ही सबसे बड़ी दार्शनिक समस्या है, दि ओनली मेटाफिजिकल प्राब्लम बिफोर मैन इ.ज स्युसाइड।
अब आल्बेयर कामू, सार्त्र, काफ्का और हाइडेगर, पश्चिम के आधुनिकतम, श्रेष्ठतम विचारक ऐसा मानते हैं कि एक ही तो स्वतंत्रता है आदमी को कि वह आत्महत्या कर ले। और तो कोई स्वतंत्रता नहीं मालूम पड़ती। इसलिए वे कहते हैं कि आत्महत्या का हक होना चाहिए। हम और कुछ तो कर ही नहीं सकते। जीवन पा नहीं सकते, जन्म पा नहीं सकते। एक काम ही हम कर सकते हैं, आत्महत्या का। वही तो हमारी स्वतंत्रता है। उसका हक होना चाहिए। कोई आदमी अपनी आत्महत्या करना चाहे, तो उसे हक होना चाहिए।
उनकी बात तर्कयुक्त मालूम होती है। लेकिन उनकी बात जीवन के विराट तर्क के साथ मेल नहीं खाती। क्योंकि जिस चीज का हम प्रारंभ नहीं कर सकते, उसका अंत भी उसी के हाथों में छोड़ देना उचित है, जिसने प्रारंभ किया है। कृष्ण कहते हैं, मृत्यु भी मैं हूं, जन्म भी मैं हूं। जन्म का कारण भी मैं, मृत्यु का कारण भी मैं।
थोड़ी कठिनाई होगी यह जानकर कि अर्जुन पूछ सकता है कृष्ण से, तो फिर मैं इन लोगों को कैसे मारूं? इनकी हत्या मैं क्यों करूं? यह तत्क्षण ख्याल में उठेगा। जब बुद्ध अंगुलिमाल को कहते हैं कि जिसे तू जोड़ नहीं सकता, उसे तू काट नहीं सकता। मत काट, क्योंकि जोड़ने का तू हकदार नहीं है। अर्जुन के

मन में भी यह सवाल तो उठ ही सकता है कि जिनको मैं जिला नहीं सकता, जन्म नहीं दे सकता, उनको मैं मारूं कैसे? यही अर्जुन कह ही रहा है, यही उसकी समस्या है।
कृष्ण इस समस्या को जिस पर्सपेक्टिव, कृष्ण जिस परिप्रेक्ष्य से इस सारी स्थिति को देखते हैं, वे अर्जुन से यह कह रहे हैं कि तेरा यह मानना कि तू इन्हें मार रहा है, वह भी भ्रांति है, क्योंकि मारने वाला मैं हूं। वह भ्रांति भी तू मत पाल। वह सिर्फ तेरी भ्रांति है। तू मार भी नहीं सकता। इसका मतलब यह हुआ कि जो आदमी आत्महत्या कर रहा है, वह भी सिर्फ भ्रांति में है कि मैं अपने को मार रहा हूं। वस्तुतः कोई अपने को मार नहीं सकता, जब तक कि मौत ही मारने को न आ गई हो, जब कि परमात्मा का ही हाथ न आ गया हो। जब आपको मरने का ख्याल आता है, वह ख्याल भी आपका नहीं होता। वह भी उसी स्रोत से आता है, जिस स्रोत से जन्म आता है। सिर्फ आपको भ्रांति हो सकती है। और वह भ्रांति आपको लंबे चक्कर में डाल सकती है।
इस जगत में भ्रांतियों के अतिरिक्त हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। सत्य हमारे हाथ में नहीं है, हम सत्य के हाथ में हैं। हमारे हाथ में सिर्फ भ्रांतियां हो सकती हैं। सत्य हमारे हाथ में नहीं है, हम सत्य के हाथ में हैं। हमारे हाथ में सिर्फ भ्रांतियां हो सकती हैं, झूठ हो सकते हैं। एक आदमी सोचता है, मैंने अपने को मार लिया या मार रहा हूं। उसका सोचना भ्रांत है। लेकिन भ्रांतियां बढ़ सकती हैं, और आदमी समझ सकता है कि उसने यह कर लिया। हम जिंदगीभर इसी तरह की भ्रांतियां रखते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह बैठकर बहुत चिंतन में लीन है। और उसकी पत्नी ने पूछा कि इतना क्या सोच-विचार में पड़े हो? तो मुल्ला ने कहा, मैं यह सोच रहा हूं कि आदमी जब मरता होगा, तो उसके भीतर क्या होता होगा? कैसे पक्का होता होगा कि मैं मर गया? समझो कि मैं मर जाऊं, तो मैं कैसे जानूंगा कि मैं मर गया? उसकी पत्नी ने कहा कि छोड़ो मूढ़ता की बातें। जब मरोगे, तो एकदम पता चल जाएगा, हाथ-पैर ठंडे हो जाएंगे बर्फ जैसे! पंद्रह दिन बाद मुल्ला जंगल में लकड़ियां काट रहा है। अपने गधे को उसने एक झाड़ से बांध दिया है और लकड़ियां काट रहा है। सर्द सुबह है और बर्फ पड़ रही है। उसके हाथ-पैर ठंडे होने लगे। उसने सोचा, निश्चित, मौत करीब है। कहा था पत्नी ने कि अपने आप पता चल जाएगा। जब हाथ-पैर ठंडे होंगे, अपने आप जान जाओगे कि मरने लगे। फिर उसने सोचा कि मरे हुए आदमी लकड़ियां तो कभी काटते देखे नहीं गए, तो लकड़ी काटना इस वक्त उचित नहीं है। कुल्हाड़ी छोड़कर वह जमीन पर लेट गया। लेटते ही से और ठंडा होने लगा। बर्फ पड़ रही है जोर की। उसने कहा कि निश्चित ही मौत आ गई!
उसे लेटा हुआ और मरा हुआ देखकर दो भेड़ियों ने उसके गधे पर हमला कर दिया, जो उसके पीछे ही झाड़ से बंधा है। मुल्ला ने अपने मन में कहा, कोई हर्ज नहीं, अगर आज मैं जिंदा होता, तो मेरे गधे के साथ ऐसी स्वतंत्रता तुम नहीं ले सकते थे! काश, मैं जिंदा होता! यू कुडंट हैव टेकेन सच लिबर्टी विद माई ऐस। लेकिन अब कोई बात ही नहीं है, मैं मर ही गया हूं!
आदमी अगर अपनी आत्महत्या भी कर रहा है, तो वह ऐसी ही भ्रांति में है कि मैं कर रहा हूं। लेकिन जिंदगीभर करने का हम भ्रम पालते हैं, इसलिए मौत में भी हम पाल सकते हैं। हम जिंदगीभर सोचते हैं, यह मैं कर रहा हूं। यह मैं कर रहा हूं। यह मैं कर रहा हूं! हम तो यहां तक सोचते हैं कि सांस भी मैं ले रहा हूं। जी भी मैं रहा हूं!
नहीं, आप सांस भी नहीं ले रहे हैं, जी भी आप नहीं रहे हैं। अगर आप ही सांस लेते होते, तो मौत तो कभी आ ही नहीं सकती। मौत दरवाजे पर आ जाती, आप कहते, अभी मैं सांस लेना बंद नहीं करता, मैं लेता ही रहूंगा। लेकिन सांस बाहर जाएगी, नहीं लौटेगी, आप भीतर नहीं ले सकेंगे। जीवन आपसे नहीं चल रहा है, आपकी बहुत गहराई से चल रहा है। जहां से जीवन चल रहा है, वही परमात्मा है; जहां से मौत आती है, वही परमात्मा है। आप सिर्फ बीच की एक लहर हैं।
तो कृष्ण अर्जुन से यह कह रहे हैं कि न तू जन्म दे सकता है, न तू मृत्यु
दे सकता है। अगर तू इस सत्य को समझ ले, तो फिर तू निमित्त मात्र है। मौत भी

हो तेरे द्वारा, तो वह मेरे से ही होगी। और जन्म भी हो तेरे द्वारा, तो भी मेरे से ही होगा। अंततः मैं हूं। तू बीच में एक निमित्त मात्र है।
इसलिए बहुत हैरानी की बात है कि गीता ऐसे तो दिखाई पड़ती है कि हिंसा में ले जाती है, लेकिन गीता से परम अहिंसक दृष्टि खोजनी बहुत मुश्किल है। लेकिन वह अहिंसा महावीर की अहिंसा से मेल नहीं खाएगी। वह अहिंसा बुद्ध की अहिंसा से भी मेल नहीं खाएगी। मेरे देखे कृष्ण की अहिंसा, बुद्ध और महावीर की अहिंसा से ज्यादा गहरी जाती है। क्योंकि वह मौलिक हिंसा का जो आधार है अहंकार, उसी को तोड़ डालती है।
जब एक आदमी यह सोचता है कि मैं अहिंसा कर रहा हूं, तब भी हिंसा होती है; क्योंकि मैं अहिंसा कर रहा हूं, तो भी अहंकार मजबूत होता है। मैं मार रहा हूं तो भी, मैं बचा रहा हूं तो भी। अगर मुझे यह ख्याल हो जाए कि मैंने बचाया, तो भी अहंकार वही है। भाषा वही है। कभी-कभी भाषा एक-सी हो, तो भी हमें ख्याल नहीं आता। कभी-कभी भाषा अलग हो, तो भी दोनों के भीतर एक ही तत्व हो सकता है।
मुल्ला नसरुद्दीन भारत आया था और एक योगी के द्वार पर रुका। थका- मांदा था, सोचा उसने, विश्राम मिल जाए। बड़ा भवन था, विश्रामकक्ष था, योगी के बड़े शिष्य थे। मुल्ला आकर पास बैठा; एक मुसलमान फकीर पास आकर बैठा; प्रभावशाली व्यक्ति। योगी भी बहुत आनंदित हुआ कि चलो, अब मुसलमान भी मेरे पास आने लगे। थोड़ी देर योगी की बातचीत सुनी, जो शिष्यों से चल रही थी। योगी समझा रहा था जीव-दया। जीव-दया की बात समझा रहा था। कह रहा था कि समस्त जीव एक ही परिवार के हैं। समस्त जीवन जुड़ा हुआ है। इसलिए दया ही धर्म है। जब योगी बोल चुका, तो मुल्ला ने भी खड़े होकर कहा कि आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। एक बार मेरी जाती हुई जान एक मछली ने बचाई थी।
योगी तो एकदम हाथ जोड़कर उसके चरणों में बैठ गया। उसने कहा कि धन्य! मैं बीस साल से साधना कर रहा हूं, लेकिन अभी तक मुझे ऐसा प्रत्युत्तर नहीं मिला कि किसी पशु ने मेरी जान बचाई हो। मैंने कई पशुओं की जान बचाई है, लेकिन किसी पशु ने मेरी जान बचाई हो, अब तक ऐसा मेरा भाग्य नहीं है। तुम धन्यभागी हो! तुम्हारी बात से मेरा सिद्धांत पूरी तरह सिद्ध हो जाता है। तुम रुको यहां, विश्राम करो यहां।
तीन दिन मुल्ला नसरुद्दीन की बड़ी सेवा हुई। और तीन दिन योगी की बहुत-
सी बातें नसरुद्दीन ने सुनीं। चौथे दिन योगी ने कहा कि अब तुम पूरी घटना बताओ, वह रहस्य, जिसमें एक मछली ने तुम्हारी जान बचा दी थी! नसरुद्दीन ने कहा कि आपकी इतनी बातें सुनने के बाद मैं सोचता हूं कि अब बताने की कोई जरूरत नहीं है।
योगी नीचे बैठ गया, नसरुद्दीन के पैर पकड़ लिए और कहा, गुरुदेव, आप बचकर नहीं जा सकते। बताना ही पड़ेगा वह रहस्य, जिसमें एक मछली ने आपकी जान बचाई! नसरुद्दीन ने कहा, अच्छा यह हो कि वह चर्चा अब न छेड़ी जाए। वह विषय छेड़ना ठीक नहीं है। योगी तो बिल्कुल सिर रखकर जमीन पर लेट गया। उसने कहा कि मैं छोडूंगा नहीं गुरुदेव! वह रहस्य तो मैं जानना ही चाहूंगा। क्या आप मुझे इस योग्य नहीं समझते?
नसरुद्दीन ने कहा, नहीं मानते, तो मैं कहे देता हूं। मैं बहुत भूखा था
और एक मछली को खाकर मेरी जान बची! एक मछली ने मेरी जान बचाई!
शब्द एक से हों, इससे भ्रांति में पड़ने की जरूरत नहीं है। एक से शब्दों के भीतर भी बड़े विभिन्न सत्य हो सकते हैं। और कई बार विभिन्न शब्दों के भीतर भी एक ही सत्य होता है; उससे भी भ्रांति में पड़ने की जरूरत नहीं है। शब्दों की खोल को हटाकर सदा सत्य को खोजना जरूरी है।
महावीर और बुद्ध जिस अहिंसा की बात कहते हैं, वह इतने पर रुक जाती है
कि दूसरे को मत मारो। अच्छी है बात। गहरी है बात। धार्मिक है। साधक के लिए बड़ी उपयोगी है। लेकिन कृष्ण एक कदम और आगे जाते हैं। वे कहते हैं, यह मान्यता ही कि तुम मार सकते हो, यह भी हिंसा है। यह मान्यता ही कि तुम मार सकते हो या बचा सकते हो, यह भी हिंसा है। परम अहिंसा तो तब है, जब तुम जानते हो कि मारे तो, बचाए तो, परमात्मा है; मैं बीच में निमित्त से ज्यादा नहीं हूं। तब परम अहिंसा है।

हे अर्जुन, मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूं। तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं।
पहली दफा, इन प्रतीकों में कृष्ण ने स्त्रियों का प्रतीक भी पहली दफा उल्लिखित किया है। स्त्रियों में भी अगर परमात्मा खोजना हो, तो कहां खोजा जा सकेगा? अगर स्त्रियों में भी परमात्मा की झलक पानी हो, तो वह कहां पाई जा सकेगी? कीर्ति में! और कीर्ति का स्त्री से क्या संबंध है? और कीर्ति क्या है?
स्त्री को जब भी हम देखते हैं, खासकर आज के युग में जब भी स्त्री को हम देखते हैं, तो स्त्री दिखाई नहीं पड़ती, सिर्फ वासना दिखाई पड़ती है। स्त्री को हम देखते ही हैं एक वासना के विषय की तरह, एक आब्जेक्ट की तरह। स्त्री को हम देखते ही ऐसे हैं, जैसे बस भोग्य है, उसका कोई अपना अर्थ, अपना कोई अस्तित्व नहीं है।
और स्त्री को भी निरंतर एक ही ख्याल बना रहता है, वह भोग्य होने का। उसका चलना, उसका उठना, उसका बैठना, उसके वस्त्र, सब जैसे पुरुष की वासना को उद्दीपित करने के लिए चुने जाते हैं। चाहे स्त्री को इस बात की सचेतनता भी न हो, इसकी कांशसनेस भी न हो कि वह जिन कपड़ों को पहनकर रास्ते पर निकली है, वे धक्के खाने का आमंत्रण भी हैं। शायद धक्का खाकर वह नाराज भी हो, शायद वह चीख-पुकार भी मचाए, शायद रोष भी जाहिर करे; लेकिन उसे ख्याल न आए कि उस धक्के में उसका भी उतना ही हाथ है, जितना मारने वाले का है। उसके वस्त्र, उसका ढंग, उसके शरीर को सजाने औरशृंगार की व्यवस्था अपने लिए नहीं मालूम पड़ती, किसी और के लिए मालूम पड़ती है।
इसलिए उसी स्त्री को घर में देखें, उसके पति के सामने, तब उसे देखकर विराग पैदा हो। उसी स्त्री को बीच पर देखें, भीड़ में, तब उसे देखकर राग पैदा हो। पति इसीलिए तो विरक्त हो जाते हैं। स्त्रियां जिस रूप में उनको दिखाई पड़ती हैं, कम से कम उनकी स्त्रियां, पड़ोसियों की स्त्रियों में आकर्षण बना रहता है। लेकिन उनकी स्त्रियां जिस रूप में दिखाई पड़ती हैं... । क्योंकि स्त्री भी धीरे-धीरे, टेकन फार ग्रांटेड दोनों हो जाते हैं कि ठीक है। लेकिन जब स्त्री भीड़ में निकलती है, तब उसकी सारी की सारी दृष्टि अपने को एक कामवासना का विषय मानकर चलती है। और दूसरे पुरुष भी उसको यही मानकर चलते हैं।
कीर्ति का अर्थ है, जिस स्त्री में ऐसी दृष्टि न हो। ऑनर जिसको अंग्रेजी में कहते हैं, इज्जत जिसे उर्दू में कहते हैं। कीर्ति का अर्थ है, ऐसी स्त्री, जो अपने को वासना का विषय मानकर नहीं जीती; जिसके व्यक्तित्व से वासना की झंकार नहीं निकलती। तब स्त्री को एक अनूठा सौंदर्य उपलब्ध होता है। और वह सौंदर्य उसकी कीर्ति है, उसका यश है। आज वैसी स्त्री को खोजना बहुत मुश्किल पड़ेगा। बहुत मुश्किल पड़ेगा।
कीर्ति एक आंतरिक गुण है, एक भीतरी सौंदर्य है। उस सौंदर्य का नाम कीर्ति है, जिसे देखकर वासना शांत हो, उभरे नहीं।
यह थोड़ा कठिन मामला है। यह थोड़ा कठिन मामला है। लेकिन एक बात हम समझ सकते हैं कि अगर स्त्री वासना को उभाड़ सकती है, तो शांत क्यों नहीं कर सकती? जो भी उभाड़ बन सकता है, वह शांत करने वाला शामक भी बन सकता है। अगर स्त्री अपने ढंगों से वासना को उत्तेजित करती है, प्रज्वलित करती है, तो अपने ढंगों से उसे शांत भी कर दे सकती है।
वह जो शांत करने वाला सौंदर्य है, कि दूसरा व्यक्ति वासनातुर होकर भी
आ रहा हो, विक्षिप्त होकर भी आ रहा हो, तो स्त्री की आंखों से, उस सौंदर्य का जो दर्शन है, उसके व्यक्तित्व से, उसकी जो छाया और झलक है, जो उसकी वासना पर पानी डाल दे और आग बुझ जाए। उसका नाम कीर्ति है।
लेकिन हम जो कीर्ति से मतलब लेते हैं, कहते हैं कि फलां स्त्री की इज्जत चली गई, उसमें सब लोग यही सोचते हैं कि इज्जत लेने वाला ही जिम्मेवार होगा। पचास परसेंट तो होगा ही। लेकिन सिर्फ पचास परसेंट ही होगा। उसमें इज्जत खोने की तैयारी भी है। और सच तो यह है कि जिस स्त्री की इज्जत को खोने के लिए कोई उत्सुक नहीं है, वह बड़ी बेचैन हो जाती है। वह

परेशान हो जाती है। उसको लगेगा कि वह है ही नहीं, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है।
यह बड़े मजे की बात है। आदमी का माइंड इस तरह डबल बाइंड है, दोहरा बंधा हुआ है। हम खींचते भी हैं, और हटाते भी हैं। हम पुकारते भी हैं, और दुत्कारते भी हैं। एक तरफ हम चाहते हैं, लोग आकर्षित भी हों। और दूसरी तरफ हम चाहते हैं कि लोग हमें वासना का बिंदु भी न मानें!
अभी अमेरिका में स्त्रियों के नए आंदोलन हैं, लिब मूवमेंट्स हैं, जिनमें स्त्रियां कोशिश कर रही हैं कि हमें वासना की वस्तु न समझा जाए। उनका यह आंदोलन भी चलेगा कि उन्हें वासना की वस्तु न समझा जाए, और उनका व्यक्तित्व और उनके रहने का ढंग और जीवन, सब वासना की वस्तु ही बनने की चेष्टा होगी।
कीर्ति स्त्री के भीतर उस गुणवत्ता का नाम है, जहां वासना पर पानी गिर जाता है। कीर्ति का अर्थ हुआ कि जिस स्त्री के पास बैठकर आपकी वासना तिरोहित हो जाए। इसलिए हमने मां को इतना मूल्य दिया। कीर्ति के कारण मां को हमने इतना मूल्य दिया, मातृत्व को इतना मूल्य दिया।
पुराने ऋषियों ने आशीर्वाद दिए हैं, बड़े अजीब आशीर्वाद! नववधू को आशीर्वाद दिया है, पुराने ऋषियों के उल्लेख हैं कि आशीर्वाद दिए हैं, कि दस तेरे पुत्र हों और अंत में तेरा पति तेरा ग्यारहवां पुत्र हो जाए। और जब तक पति भी तेरा पुत्र न हो जाए, तब तक तू जानना कि तूने स्त्री की परम गरिमा उपलब्ध नहीं की।
पति पुत्र हो जाए! अदालतों में ऐसे मुकदमे हैं, जहां पुत्र पति हो गया है। हर वर्ष दुनिया की अदालतों में ऐसे सैकड़ों मुकदमे होते हैं।
यह जो पति भी पुत्र हो जाए जिस गुण से, जिस आंतरिक धर्म से, उसका नाम कीर्ति है।
कृष्ण कहते हैं, स्त्रियों में मैं कीर्ति।
निश्चित ही, बहुत दुर्लभ गुण है; खोजना बहुत मुश्किल है। अभिनेताओं
और अभिनेत्रियों के जगत में कीर्ति को खोजना बिल्कुल मुश्किल है। और मंच पर जो अभिनय कर रहे हैं, वे तो कम अभिनेता हैं; उनकी नकल करने वाला जो बड़ा समाज है इमीटेशन का, वे सड़क पर, चौराहों पर भी अभिनय कर रहे हैं।
इस सदी में अगर सर्वाधिक किसी के गुणों को चोट पहुंची हो, तो वह स्त्री है। क्योंकि उसके किन गुणों का मूल्य है, उनकी धारणा ही खो गई है। उन गुणों की धारणा ही खो गई है। कीर्ति का हम कभी सोचते भी नहीं होंगे। आप बाप होंगे, आपके घर में लड़की होगी। आपने कभी सोचा भी नहीं होगा कि इस लड़की के जीवन में कभी कीर्ति का जन्म हो। आपने लड़की को जन्म दे दिया और आप अगर उसमें कीर्ति का जन्म नहीं दे पाए, तो आप बाप नहीं हैं, सिर्फ एक मशीन हैं उत्पादन की।
लेकिन कीर्ति बड़ी कठिन बात है। और गहरी साधना से ही उपलब्ध हो सकती है। जब किसी पुरुष में वासना तिरोहित होती है, तो ब्रह्मचर्य फलित होता है। और जब किसी स्त्री में वासना तिरोहित होती है, तो कीर्ति फलित होती है। कीर्ति काउंटर पार्ट है। स्त्री में कीर्ति का फल लगता है, फूल लगता है, जैसे पुरुष में ब्रह्मचर्य का फूल लगता है।
स्त्री में ठीक पुरुष जैसा ब्रह्मचर्य फलित नहीं हो सकता। कारण हैं उसके। अगर पुरुष ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो, तो उसकी सारी वीर्य-ऊर्जा आत्मसात होने लगती है। लेकिन स्त्री की जो काम-ऊर्जा है, वह अनिवार्य रूप से उसके मासिक धर्म में स्खलित होती रहेगी। वह यंत्रवत है। इसलिए स्त्री की काम-ऊर्जा उस तरह से अंतस में तिरोहित नहीं हो सकती, जैसे पुरुष की काम-ऊर्जा तिरोहित हो सकती है।
पुरुष की काम-ऊर्जा जब अंतस में तिरोहित हो जाती है, तो तेज पैदा होता है। वही तेज ब्रह्मचर्य है। स्त्री की व्यवस्था अन्यथा है शरीर की।
बायोलाजिकली उसकी शरीर की व्यवस्था अलग है। मासिक धर्म उसकी स्वेच्छा का हिस्सा नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लें।

पुरुष की वीर्यशक्ति उसकी स्वेच्छा पर निर्भर है। स्त्री की कामशक्ति उसकी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है। वह स्वेच्छा से उसमें कुछ भी नहीं कर सकती। वह उसके शरीर का हिस्सा है। इसलिए स्त्री को जब ब्रह्मचर्य में उतरना हो, तो उसकी ब्रह्मचर्य की साधना पुरुष की ब्रह्मचर्य की साधना से भिन्न होगी। पुरुष के ब्रह्मचर्य की साधना में वीर्य का ऊर्ध्वीकरण होगा। पुरुष की जो ऊर्जा है, वह पाजिटिव है, एग्रेसिव है, आक्रामक है, लेकिन स्वेच्छा पर निर्भर है। उसका ऊर्ध्वीकरण हो सकता है। लेकिन स्त्री की काम-ऊर्जा का ऊर्ध्वीकरण नहीं होता, क्योंकि उसकी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है।
इसीलिए महावीर ने तो कहा कि स्त्रियां मोक्ष न जा सकेंगी, क्योंकि महावीर का जोर पूरा ब्रह्मचर्य की साधना पर था। इसलिए महावीर ने स्त्रियों को मोक्ष जाने के लिए नहीं कहा। उन्होंने कहा कि स्त्री को एक बार पुरुष का जन्म लेना पड़ेगा, पुरुष की पर्याय में आना पड़ेगा, फिर वह मुक्त हो सकती है। सीधी स्त्री के शरीर से स्त्री मुक्त नहीं हो सकती है। उसका कुल कारण इतना था कि महावीर की जो पूरी प्रक्रिया थी, वह पुरुष के ब्रह्मचर्य की थी।
लेकिन कीर्ति की साधना अलग है, वह ठीक ब्रह्मचर्य के जैसी है। अगर कोई स्त्री कीर्ति को उपलब्ध हो जाए, तो पुरुष के शरीर की कोई भी जरूरत नहीं है। स्त्री के शरीर से ही मोक्ष उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन कीर्ति की प्रक्रिया बिल्कुल और होगी।
कीर्ति की प्रक्रिया का अर्थ है कि स्त्री के मन में जितनी तीव्रता
से मातृत्व का भाव गहन हो जाए। उसकी साधना मां की साधना होगी। वह पूरे जगत की मां हो जाए। उसके मन में एक ही भाव तरंगित होता रहे, मां होने का। स्त्री होने का भाव छूट जाए, पत्नी होने का भाव छूट जाए, सिर्फ मां होने का भाव गहन होता चला जाए। जिस दिन स्त्री के भीतर मां होने की धारणा इतनी गहन हो जाए कि अगर कोई कामातुर पुरुष भी उसके पास आकर उसके हृदय से लग जाए, तो भी उसे अपने बेटे का ही स्मरण हो। वह उसके सिर पर वैसा ही हाथ रख सके, जैसे बेटा उसके पास आ गया हो। उसके भीतर न कोई भय पैदा हो, न कोई चिंता पैदा हो, न कोई घबड़ाहट पैदा हो; वह उसको बेटे की तरह छाती से लगा ले।
और यह अदभुत बात है कि अगर कोई भी स्त्री किसी पुरुष को बेटे की तरह छाती से लगा ले, पुरुष की वासना तत्क्षण वहीं क्षीण हो जाएगी। वहीं, उसी वक्त क्षीण हो जाएगी। क्योंकि स्त्री का जो आमंत्रक रूप है, वह अगर खो जाए, तो पुरुष तत्काल पाएगा कि वह शांत हो गया है।
इस गुण का नाम कीर्ति है। और जब यह गुण विकसित होता है, तो स्त्री पर
भी एक तेज आता है। उस पर भी एक अनूठा सौंदर्य आता है। उस सौंदर्य का कोई संबंध शरीर के सौंदर्य से नहीं है।
कुरूप से कुरूप स्त्री में भी अगर कीर्ति फलित हो जाए, तो उसकी सारी शारीरिक कुरूपता के भीतर से सौंदर्य की आभा फूटने लगती है। उसकी कुरूपता को लोग देख ही न पाएंगे, उसके भीतर का सौंदर्य इतना हावी हो जाएगा। और सुंदरतम स्त्री को भी, अगर कीर्ति न हो, तो उसकी सुंदरता ऊपर चमड़ी पर होती है। और थोड़ी ही देर में भीतर की कुरूपता दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। इसलिए आज अगर पश्चिम में स्त्री-पुरुष के बीच के सारे संबंध टूट गए हैं, दिन दो दिन से ज्यादा नहीं टिक सकते। महीने दो महीने टिक जाएं, तो काफी लंबे हैं। साल दो साल टिक जाएं, तो मानना चाहिए कि महान घटना है। उसका कारण सिर्फ इतना ही है कि सौंदर्य एकदम छिछला है।
और पश्चिम में आज सुंदरतम स्त्रियां हैं, संभवतः पृथ्वी पर सर्वाधिक सुंदर स्त्रियां हैं। लेकिन सौंदर्य छिछला है। स्किनडीप! जितनी चमड़ी की गहराई है, उतनी ही सौंदर्य की गहराई है। और जैसे ही कोई व्यक्ति करीब आता है, थो.ेडे दिन में ही चमड़ी के सौंदर्य के पार जो विराट कुरूपता छिपी है, वह दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। वही सारे संबंधों को क्षीण कर जाती है और तोड़ जाती है।
कृष्ण कहते हैं, स्त्रियों में मैं कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति... ।

श्री भी स्त्रैण गुण है, जैसे कीर्ति। कीर्ति एक साधना है। और जब कीर्ति फलित होती है, और जब कीर्ति में फूल लगते हैं, और जब कीर्ति घनी होती है, और जब कीर्ति केवल मातृत्व नहीं रह जाती, बल्कि जब स्त्री को यह बोध भी मिट जाता है कि मैं स्त्री हूं... क्योंकि मां का बोध भी स्त्री का ही बोध है। और कितना ही ऊंचा हो, मां होकर भी स्त्री स्त्री तो बनी ही रहती है। लेकिन जब कभी ऐसी घटना घटती है, कीर्ति के आगे के कदम पर जब कि स्त्री को यह बोध भी नहीं रह जाता कि वह स्त्री है, तब उसमें श्री का फूल खिलता है। तब उसमें एक सौंदर्य आता है। उस सौंदर्य को हम अपार्थिव कह सकते हैं। वह कभी किसी मीरा में दिखाई पड़ता है। कभी किसी मरियम में वह दिखाई पड़ता है। बहुत मुश्किल से!
श्री, कृष्ण कहते हैं, स्त्रियों में श्री मैं हूं।
लेकिन जब कभी वह फूल खिलता है--मुश्किल से खिलता है--लेकिन जब कभी वह फूल खिलता है, तो स्त्री स्त्री नहीं होती। पुरुष के प्रति पुरुष होने का जो ख्याल है, वह भी खो जाता है। और जिन मुल्कों ने इस श्री को उपलब्ध करने की क्षमता पा ली थी, उन मुल्कों ने अपने ईश्वर की धारणा स्त्री के रूप में की, मां के रूप में की। जिन मुल्कों में स्त्रियों की साधना इस जगह तक पहुंची कि इस आंतरिक, आत्मिक श्री को उपलब्ध हो गई, उन मुल्कों ने अपने परमात्मा की जो धारणा है, वह पुरुष के रूप में नहीं की है।
इसे हम समझें थोड़ा।
जर्मनी अपने मुल्क को फादरलैंड कहता है, पितृभूमि! हम अपने मुल्क को मातृभूमि कहते हैं, मदरलैंड कहते हैं। जर्मनी ने कभी भी श्री जैसी घटना नहीं देखी। उसने पुरुषों का बड़ा विकास देखा है। पुरुष के जो गुण हैं, जर्मनी में अपने चरम शिखर को पहुंचे हैं। इसलिए जर्मनी का अपने मुल्क को फादरलैंड कहना ठीक है। पितृभूमि! स्त्री गौण है, उसने कभी वैसी चरम स्थिति नहीं पाई।
पश्चिम में पुरुष के गुणों ने बड़ी गहनता से विकास किया। लेकिन पूरब
ने स्त्री के गुणों को बड़ी गहनता से विकसित किया। और मजे की बात यह है कि पुरुष के गुण विकसित हो जाएं, तो अंतिम परिणाम युद्ध होगा, क्योंकि पुरुष के सारे गुण योद्धा के गुण हैं। और पुरुष का जो परम ऐश्वर्य है, वह उसके योद्धा होने में प्रकट होता है।
फ्रेडरिक नीत्शे ने कहा है कि जब मैं रास्ते पर सैनिकों को चलते देखता हूं, पंक्तिबद्ध, उनके जूतों की एक स्वर से गिरती आवाज, एक लय में बंधी, उनकी संगीनों पर चमकती हुई सूरज की किरणें, उनकी पंक्तिबद्ध संगीनों पर पड़ती सूरज की झलक, तब जैसे सौंदर्य का मैं अनुभव करता हूं, ऐसा सौंदर्य मैंने कोई और दूसरा नहीं देखा। पुरुष के गुण अगर विकसित होंगे, तो वे ऐसे ही होंगे।
अभी पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने कहना शुरू किया है कि हमें पुरुष के गुणों के साथ स्त्री के गुणों को भी विकसित करना जरूरी है। नहीं तो संतुलन टूट गया है।
पूरब ने स्त्री के गुणों को बड़ी गहराई से परखा और विकसित किया। और मैं मानता हूं कि अगर दोनों में चुनाव करना हो, तो स्त्री के गुण ही विकसित करने चाहिए, क्योंकि सब पुरुषों को स्त्री से ही पैदा होना पड़ता है। और अगर स्त्री अविकसित हो, तो पुरुष कभी विकसित नहीं हो पाते। और सब पुरुषों को स्त्री के पास ही बड़ा होना पड़ता है। पुरुष की जिंदगी स्त्री के आस-पास ही व्यतीत होती है--चाहे वह मां हो, चाहे वह पत्नी हो, चाहे वह बहन हो, चाहे बेटी हो--स्त्री के इर्द-गिर्द घूमती है। स्त्री केंद्र है, पुरुष परिधि है; वह आस-पास वर्तुलाकार घूमता है। अगर स्त्री के गुण विकसित न हों, तो समाज बहुत दीन हो जाता है।
श्री जो है, स्त्री का चरम उत्कर्ष है। वह उसकी आत्मा है। जब उसमें स्त्रैणता का भाव भी चला जाता है, तब वह दिव्य हो जाती है। कृष्ण कहते हैं, वह मैं हूं।
वाक्, वाणी! स्त्रियों को हम बहुत बातचीत करते देखते ही हैं। शायद बातचीत ही उनका धंधा है। लेकिन वाक से इस बातचीत का मतलब नहीं है। यह

विकृति है स्त्री के गुण की, जो दिखाई पड़ती है। स्त्रियां चुप बैठी दिखाई पड़ें, यह मिरेकल है, चमत्कार है।
मैंने सुना है कि लंदन में एक बार एक प्रतियोगिता हुई कि कोई सबसे बड़ी झूठ बोले। उस आदमी को प्रथम पुरस्कार मिला, जिसने कहा, मैंने एक बगीचे की बेंच पर दो स्त्रियों को घंटेभर तक चुप बैठे देखा! कहते हैं, उसे पहला पुरस्कार मिल गया झूठ बोलने का। यह हो ही नहीं सकता। इसके होने का कोई उपाय ही नहीं है। स्त्रियां बातचीत में लगी हैं!
लेकिन वाक बातचीत नहीं है। वाक तो तब प्रकट होता है, जब स्त्री अपने अस्तित्व में परम मौन को उपलब्ध होती है। जब वह बिल्कुल मौन हो जाती है, तब उसकी जो वाणी है, वह बहुमूल्य हो जाती है। तब उसकी वाणी ऋचाएं बन जाती हैं। लेकिन जो स्त्री मौन नहीं हो सकती, वह कभी वाक को उपलब्ध नहीं होगी। इसलिए स्त्री का गुण उसका चुप होना, उसका मौन होना है। उसका इतना मौन होना है कि पता चले कि जैसे उसके पास वाणी ही नहीं है। स्त्री में सब अच्छा लगता है, लेकिन उसकी बातचीत बिल्कुल बकवास और उबाने वाली होती है। सुंदर से सुंदर स्त्री थोड़ी देर में बहुत घबड़ाने वाली हो जाती है, अगर वह बातचीत करती चली जाए।
मौन की एक गरिमा है। असल में शब्द भी आक्रमण है। शब्द भी दूसरे पर हमला है। मौन अनाक्रमण है।
सुना है मैंने, वाचस्पति विवाह करके आए। पर वे तो धुनी आदमी थे और बारह वर्षों तक वे तो भूल ही गए कि पत्नी घर में है। कथा बड़ी मीठी है। वाचस्पति लिख रहे थे ब्रह्मसूत्र पर अपनी टीका। वे सुबह से सांझ और रात, आधी रात तक टीका लिखने में लगे रहते। पत्नी को घर ले आए। पिता ने कहा, शादी करनी है। पिता बूढ़े थे। सुखी होते थे। शादी करके घर आ गए। पत्नी घर में चली गई। वाचस्पति अपनी टीका लिखने में लग गए। बारह वर्ष! उन्हें ख्याल ही न रहा, वह जो शादी हो गई, और पत्नी घर में आ गई। वह सब बात समाप्त हो गई। लेकिन उन्होंने एक निर्णय किया था कि जिस दिन यह ब्रह्मसूत्र की टीका पूरी हो जाएगी, उस दिन मैं संन्यास ले लूंगा। बारह वर्ष बाद आधी रात टीका पूरी हो गई। अचानक वाचस्पति की आंखें पहली दफा टीका को छोड़कर इधर-उधर गईं। देखा कि एक सुंदर-सा हाथ पीछे से आकर दीए की ज्योति को ऊंचा कर रहा है। सोने की चूड़ियां हैं हाथ पर।
लौटकर उन्होंने देखा, और कहा, कोई स्त्री इस आधी रात में मेरे पीछे! पूछा, तू कौन है? स्त्री ने कहा कि धन्य मेरे भाग्य कि आपने पूछा। बारह वर्ष पहले मुझे आप विवाह करके ले आए थे, तब से मैं प्रतीक्षा कर रही हूं कि कभी आप जरूर पूछेंगे कि तू कौन है! पर इतनी देर तू कहां थी? उसने कहा कि मैं रोज आती थी। जब दीए की लौ कम होती, तब बढ़ा जाती थी। दीया सांझ जला जाती थी, सुबह हटा लेती थी। आपके काम में बाधा न पड़े, इसलिए आपके सामने कभी नहीं आई। आपके काम में रंचमात्र बाधा न पड़े, इसलिए कभी मैंने कोशिश नहीं की कि बताऊं मैं भी हूं। मैं थी, और आप अपने काम में थे।
वाचस्पति की आंखों में आंसू आ गए। उन्होंने कहा, अब तो बहुत देर हो गई। क्योंकि मैंने तो निर्णय किया है कि जिस दिन जिस क्षण टीका पूरी हो जाएगी, उसी क्षण घर छोड़कर संन्यासी हो जाऊंगा। अब मैं तेरे लिए क्या कर सकता हूं! तूने बारह वर्ष प्रतीक्षा की और आज की रात मेरे जाने का वक्त है! अब मैं उठकर बस घर के बाहर होने को हूं। अब मैं तेरे लिए क्या कर सकता हूं? वाचस्पति की आंख में आंसू... ।
उनकी स्त्री का नाम भामती था। इसलिए उन्होंने अपनी ब्रह्मसूत्र की टीका का नाम भामती रखा है। भामती से कोई संबंध नहीं है। उनकी ब्रह्मसूत्र की टीका का नाम भामती से कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन अपनी टीका का नाम उन्होंने भामती रखा है। बड़ी अदभुत टीका है।
वाचस्पति अदभुत आदमी थे। कहा कि बस, तेरी स्मृति में भामती इसका नाम
रख देता हूं और घर से चला जाता हूं। लेकिन तू दुखी होगी। उनकी पत्नी ने कहा, दुखी नहीं, मुझसे ज्यादा धन्यभागी और कोई भी नहीं। इतना क्या कम है कि आपकी आंखों में मेरे लिए आंसू आ गए! मेरा जीवन कृतार्थ हो गया।

इतनी ही बात वाचस्पति की अपनी स्त्री से हुई है। लेकिन यह बारह साल के मौन के बाद ये जो थोड़े से शब्द हैं, इनको हम वाणी कह सकते हैं, वाक कह सकते हैं। स्त्री के परम मौन से जब कुछ निकलता है! लेकिन उसका परम मौन होना बड़ा मुश्किल है।
कृष्ण कहते हैं, मैं वाक हूं, स्मृति हूं, मेधा हूं, धृति हूं, क्षमा हूं।
स्मृति। पुरुष के पास एक तरह की स्मृति होती है, स्त्री के पास दूसरे तरह की। शायद मनोवैज्ञानिक राजी भी न हों। क्योंकि वे कहें, एक ही तरह की स्मृति होती है।
नहीं होती है। स्त्री-पुरुष के पास एक तरह का कुछ भी नहीं होता। पुरुष
की स्मृति बौद्धिक होती है, स्त्री की स्मृति अस्तित्वगत होती है, टोटल होती है।
अगर पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है, तो उसके स्मरण में इतना ही
रह जाता है कि मैंने प्रेम किया था। यह एक स्मृति होती है, मेंटल, मन में। लेकिन स्त्री ने अगर किसी को प्रेम किया है, तो उसके रोएं-रोएं और कण-कण में यह स्मृति समा जाती है। उसके पूरे व्यक्तित्व में रम जाती है, भर जाती है। और जब स्त्री याद करती है कि किसी ने मुझे प्रेम किया, किसी को उसने प्रेम किया, तो यह बौद्धिक बात नहीं होती, इसमें पूरा अस्तित्व समाहित होता है! वह पूरी की पूरी इसमें मौजूद होती है।
इसलिए पुरुष चाहें, तो बहुत स्त्रियों को भी प्रेम कर सकते हैं; स्त्रियों के लिए बहुत पुरुषों को प्रेम करना स्वभावतः कठिन और असंभव है। पुरुष के लिए सभी घटनाएं बुद्धि में हैं। बुद्धि एक हिस्सा है। स्त्री के लिए सारी घटनाएं उसके पूरे व्यक्तित्व में हैं। उसका रोआं-रोआं इकट्ठा है।
मनसविद इतना तो मानते हैं कि पुरुष की कामवासना उसके काम-केंद्र में निहित होती है, लेकिन स्त्री की कामवासना उसके पूरे शरीर में फैली होती है। स्त्री का पूरा शरीर इरोटिक है, पूरा शरीर। और उसकी सारी स्मृति पूरी है। उसकी स्मृति में बौद्धिक स्मरण, ऐसा नहीं है।
और जो स्मृति पूरी हो इतनी, उसका गुण ही दूसरा हो जाता है। उसका आयाम, उसका अर्थ, अभिप्राय दूसरा हो जाता है।
कृष्ण कहते हैं, मैं स्त्रियों में स्मृति हूं। समग्रता की, इंटिग्रेटेड, पूरी, पूर्ण। स्त्री याद करती है, बुद्धि से नहीं, विचार से नहीं, अपने पूरे होने से, टोटल बीइंग।
इसलिए एक पिता है और एक मां है। पिता एक बिल्कुल औपचारिक संस्था मालूम होती है। न भी हो, चल सकता है। पशुओं में नहीं भी होती है, तो भी चलता है। लेकिन मां एक औपचारिक संस्था नहीं है। मां और बेटे का संबंध एक स्मृति मात्र नहीं है बुद्धि की; एक सारे अस्तित्व का लेन-देन है। मां के लिए उसका बेटा, उसका ही टुकड़ा है, उसका ही फैला हुआ हाथ है।
अगर एक बेटे की हत्या कर दी जाए और मां को पता भी न हो, तो भी मां के प्राण आंदोलित हो जाते हैं। अब तो इस पर बड़े वैज्ञानिक परीक्षण हुए हैं। एक सैनिक मरता है युद्ध में और उसकी मां बेचैन हो जाती है हजारों मील दूर। पिता पर कोई असर नहीं पड़ता। पिता का अस्तित्वगत संबंध नहीं है। मेरा बेटा है, यह एक बौद्धिक स्मृति है। और कल अगर एक चिट्ठी मिल जाए, जिससे पता चले कि नहीं, किसी और का बेटा है, तो पिता का सारा संबंध टूट जाएगा, विलीन हो जाएगा। वह संबंध गणित का है, हिसाब का है। बहुत गहरा और आंतरिक नहीं है। इसलिए कोई पुरुष अगर पिता न भी बने, तो कोई भेद नहीं पड़ता। कोई भेद नहीं पड़ता; व्यक्तित्व में कोई कमी नहीं आती। इसलिए पुरुष की उत्सुकता पिता बनने की कम और पति बनने की ज्यादा होती है। स्त्री की उत्सुकता भी अगर पत्नी बनने की हो, तो उसे स्त्री होने का रहस्य पता नहीं है।
स्त्री की उत्सुकता मौलिक रूप से मां बनने की है। अगर वह पति को भी स्वीकार करती है, तो मां बनने के मार्ग पर। और अगर कोई पुरुष पिता बनना भी स्वीकार करता है, तो पति की मजबूरी में। कोई उत्सुकता पुरुष को पिता बनने की वैसी नहीं है। और अगर कभी रही भी है, तो उसके कारण अवांतर रहे हैं। जैसे

धन है, संपत्ति है, जायदाद किसकी होगी! क्या नहीं होगा! बेटा चाहिए, तो यह सब सम्हालेगा। या क्रियाकांड और धर्म के कारण, कि अगर पिता मर जाएगा और बेटा नहीं होगा, तो अंतिम क्रिया कौन करेगा? और फिर पानी कौन चढ़ाएगा? लेकिन ये सब गणित के संबंध हैं। इन सबमें हिसाब है। ये परपजिव हैं।
मां का संबंध उसके बेटे से नान-परपजिव है, निष्प्रयोजन है। वह उसके ही अस्तित्व का फैलाव है। अगर बेटा मरता हो, तो मां का हृदय पीड़ित हो जाता है, दुखी हो जाता है, चिंतित हो जाता है।
और मनुष्यों में ही नहीं, अभी पशुओं पर भी प्रयोग किए हैं रूस में उन्होंने। खरगोश को काटते हैं और उसकी मां मीलों दूर है और उसके हृदय में असर पड़ते हैं। उसकी हृदय-गति बढ़ जाती है। वह कंपने लगती है। उसकी आंख में आंसू आ जाते हैं। यंत्रों से अब तो इसकी परीक्षा हो चुकी है कि पशुओं की मां भी किसी अज्ञात मार्ग से प्रभावित होती है। कोई इतनी गहरी स्मृति है, जिसको हम बायोलाजिकल कहें, साइकोलाजिकल नहीं; जिसको हम मानसिक न कहें, बल्कि कहें कि जैविक; उसके रोएं-रोएं में भरी हुई है।
कृष्ण कहते हैं, स्त्रियों में मैं स्मृति हूं।
कारण से कहते हैं। अगर कोई व्यक्ति ऐसी ही स्मृति से परमात्मा की तरफ
भर जाए, तो ही उसे उपलब्ध होता है; ऐसी अस्तित्वगत स्मृति से। ऐसा खोपड़ी में राम-राम कहने से कुछ भी नहीं होता। जब रोआं-रोआं कहने लगे, धड़कन-धड़कन कहने लगे। कहना ही न पड़े और सबमें गूंजने लगे भीतर, कहने की जरूरत ही न रह जाए, होना ही उसका स्मरण बन जाए, तब, तब परमात्मा उपलब्ध होता है।
मेधा, धृति, क्षमा।
धृति का अर्थ है, धीरज, धैर्य, स्थिरता। पुरुष बहुत अधीर है। बहुत अधीर है। शायद बायोलाजिकल कारण भी है। शायद उसकी जो वीर्य-ऊर्जा है, वह भी अधीर है। इसलिए उसका पूरा व्यक्तित्व अधीर है। स्त्री शांत है, थिर है, धैर्य से भरी है।
अभी तक हम सोचते रहे थे ऐसा कि पुरुष शक्तिशाली है। एक हिसाब से है। मस्कुलर, पेशीगत उसकी सामर्थ्य ज्यादा है। अगर लड़ने जाए, तो स्त्री से ज्यादा शक्तिशाली है। लेकिन यह तो मापदंड की बात हुई, एक क्राइटेरियन की बात हुई। किसी और हिसाब से स्त्री पुरुष से ज्यादा शक्तिशाली है।
जहां तक थिरता का सवाल है, जहां तक सहने का सवाल है, सहनशीलता का सवाल है, धैर्य का सवाल है... । आपको पता नहीं होगा, आपको ख्याल नहीं होगा कि नौ महीने एक मां अपने बेटे को अपने पेट में ढोती है। एक पुरुष को नौ दिन भी ढोना पड़े, तो उसे पता चले! अगर पुरुष को गर्भ ढोना पड़े, तो गर्भपात नियम हो जाए। फिर बच्चे को मां बड़ा करती है। एक रात जरा छोटे बच्चे को अपने बिस्तर पर सुलाकर देखें, तब आपको पता चलेगा कि वह आपको पागल कर देगा।
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को लेकर एक दिन बच्चों को घुमाने की गाड़ी में लेकर निकला है। बच्चा रो रहा है। और नसरुद्दीन बार-बार कहता है, नसरुद्दीन, शांत हो जा! नसरुद्दीन, शांत हो जा! नसरुद्दीन, शांत हो जा! एक बूढ़ी औरत नसरुद्दीन की तकलीफ देखती है। सोचती है कि उसका बेटा, जिसका नाम नसरुद्दीन होगा, रो रहा है, इसलिए उसको शांत कर रहा है!
वह बूढ़ी आकर कहती है कि बेटा तो बड़ा प्यारा है। इसका नाम नसरुद्दीन है? नसरुद्दीन ने कहा, इसका नाम नहीं है नसरुद्दीन। नसरुद्दीन मेरा नाम है। और मैं अपने से कह रहा हूं, शांत हो जा, शांत हो जा। मन तो इसकी गर्दन दबाने का हो रहा है! नसरुद्दीन, शांत हो जा। यह मेरी खोपड़ी खाए जा रहा है! स्त्री का धैर्य एक अर्थ में अनंत है। उसकी सहने की क्षमता भी बहुत है। आप जिस तकलीफ में टिक न सकेंगे, उसमें स्त्री टिकती है।
इसलिए आपको पता है कि स्त्रियों की उम्र पुरुषों से पांच साल ज्यादा है! औसत उम्र। स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं, पुरुषों की बजाय। और अगर बीमार भी पड़ती हैं, तो उसका कारण शारीरिक कम और मानसिक ज्यादा होता है। स्त्रियों की बीमारी को रेसिस्ट करने की क्षमता मेडिकली सिद्ध हो गई है कि बहुत ज्यादा है। स्त्रियां कई बीमारियों को बिना तकलीफ के पार हो जाती हैं, बीमारियां प्रवेश नहीं कर सकती हैं। पुरुष बहुत जल्दी से बीमार हो जाता है। उसकी मस्कुलर ताकत ज्यादा है।

लेकिन मस्कुलर ताकत का तो वक्त भी गया। इसलिए आने वाली दुनिया में स्त्री रोज ताकतवर होती जाएगी। सौ साल के भीतर... । क्योंकि मस्कुलर ताकत का वक्त गया। न तो अब शेर से लड़ने जाना पड़ता है, न लकड़ी काटने जाना पड़ता है। वह सब काम तो मशीन करने लगी। पुरुष के जितने काम थे, मशीन करने लगी। और स्त्री का कोई भी काम अभी तक मशीन करने में समर्थ नहीं है।
आने वाले सौ साल में स्त्री आपके ऊपर उठती जाएगी। उसकी ताकत बड़ी होती जाएगी। होती ही जाएगी। क्योंकि आपका काम तो, आप एक अर्थ में अब बेकार हैं।
अगर आटोमेटिक पूरा जगत हो जाता है सौ वर्षों में, तो पुरुष बेकार है। उसके बिना काम चल सकेगा। स्त्री बेकार अभी नहीं हो सकती। उसके कुछ और ही गुण हैं, जो अनिवार्य हैं।
कृष्ण कहते हैं, धृति मैं हूं, क्षमा मैं हूं।
स्त्री के व्यक्तित्व में जिस मात्रा में प्रेम है, उसी मात्रा में क्षमा है। जितना ज्यादा प्रेम होगा, उतनी क्षमा होगी। जितना ज्यादा धैर्य होगा, उतनी क्षमा होगी। और जितना ज्यादा मातृत्व होगा, उतनी क्षमा होनी ही चाहिए। पुरुष को क्षमा अभ्यास करनी पड़ती है। स्त्री की क्षमा सहज घटित होती है। वह उसका स्वभाव है।
लेकिन अब तक ऐसा हुआ कि मनुष्य-जाति ने पुरुषों को केंद्र मानकर काम चलाया। इसलिए हम कहते हैं मनुष्य-जाति, इसलिए हम कहते हैं मैनकाइंड, सब पुरुष के नाम हैं। सब पुरुष के नाम हैं! स्त्री को हम पुरुष में सम्मिलित कर लेते हैं।
लेकिन वह भूल हो गई। स्त्री का अपना व्यक्तित्व है, पुरुष से बिल्कुल अलग। और जब तक इस पृथ्वी पर स्त्री के व्यक्तित्व के जिन गुणों की कृष्ण ने यहां बात की है, वे भी सारे विकसित नहीं हो जाते, तब तक दुनिया एक इम्बैलेंस, एक असंतुलन में रहेगी। पुरुष का पलड़ा बहुत भारी होकर नीचे बैठ गया है। और स्त्री के गुण विकसित नहीं हो पाए हैं।
और अब एक दुर्घटना घट रही है दुनिया में कि स्त्रियां इस लंबी परेशानी से पीड़ित होकर एक प्रतिक्रिया में उतर रही हैं और वे कोशिश कर रही हैं पुरुषों जैसा हो जाने की। वह बड़ी से बड़ी दुर्घटना है, जो मनुष्य-जाति के ऊपर घट सकती है। स्त्रियां कोशिश कर रही हैं पुरुष जैसा हो जाने की-- कपड़े-लत्तों से, व्यक्तित्व से, ढंग से, बात से। जो-जो व्यवस्था पुरुष को है, वही-वही उनको भी होनी चाहिए।
भूल है उसमें, क्योंकि स्त्री का व्यक्तित्व बुनियादी रूप से अलग है। उसे भी हक होना चाहिए खुद के विकसित करने का, उतना ही जितना पुरुष को है। लेकिन पुरुष जैसा विकसित होने का हक बहुत महंगा सौदा है। और अगर स्त्रियां पुरुष जैसी होती हैं, तो हम इस दुनिया को बिल्कुल बेरौनक कर देंगे। कुछ गुण एकदम खो जाएंगे, जो स्त्रियों के ही हो सकते थे।
आज पश्चिम में कीर्ति नहीं हो सकती स्त्रियों में। श्री नहीं हो सकती। क्षमा नहीं हो सकती। धृति नहीं हो सकती। जिस स्मृति की मैंने बात कही, वैसी समग्र स्मृति नहीं हो सकती। क्योंकि वह हर मामले में पुरुष के साथ, जैसा पुरुष है, वैसा करने की कोशिश में लगी है।
इसमें नुकसान पुरुष को होने वाला नहीं है। इसमें नुकसान स्त्री को ही
हो जाएगा। क्योंकि वह नंबर दो की ही पुरुष हो सकती है। पुरुष तो हो नहीं सकती; सेकेंडरी, नंबर दो की पुरुष हो सकती है। और नंबर दो की पुरुष होकर वह एकदम कुरूप और विकृत हो जाएगी।
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन एक भीड़ में खड़ा है। टिकट खरीदने लोग खड़े हैं एक क्यू में सिनेमागृह के पास। सामने के व्यक्ति से, बड़ी देर हो गई है, वह कुछ बात करना चाहता है। उसने कहा कि देखते हैं, कैसा जमाना बिगड़ गया! सामने देखते हैं उस लड़के को, जो खिड़की के करीब पहुंच गया। लड़कियों जैसे कपड़े पहन रखे हैं! मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोसी व्यक्ति ने कहा, क्षमा करें, आप भूल में हैं। वह लड़का नहीं है, लड़की ही है। नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हारे पास क्या मापदंड है इतनी दूर से! मुझे बिल्कुल लड़का मालूम होता है! उसने कहा, क्षमा करिए। वह मेरी ही लड़की है। लड़की है, लड़का नहीं; मेरी ही लड़की है। तब तो नसरुद्दीन ने कहा कि क्षमा करिए। मुझसे बड़ी भूल हो गई! कपड़े

की वजह से यह भूल हो गई। तो आप उसके पिता हैं! उस व्यक्ति ने कहा, माफ करिए। आप फिर भूल कर रहे हैं, मैं उसकी मां हूं!
स्त्रियां कपड़े पुरुषों जैसा पहनें, चलें पुरुषों जैसा, उठें पुरुषों जैसा, पुरुष का व्यवसाय करें, पुरुष के ढंग से जीएं, पुरुष सिगरेट पीएं तो वे सिगरेट पीएं, पुरुष गालियां बकें तो वे गालियां बकें! अमेरिका में स्त्रियां उन अपशब्दों का प्रयोग कर रही हैं, जिनका कभी भी स्त्रियों ने नहीं किया था। लेकिन अगर पुरुष के बराबर समानता चाहिए, तो करना ही पड़ेगा। जो पुरुष कर रहा है, वही करना पड़ेगा।
तो जो पुरुष के अत्याचार से भी नहीं मिटा था, वह उनकी नासमझी से बिल्कुल मिट जाएगा। स्त्रियों के गुण अलग हैं।
इसलिए कृष्ण ने उचित ही किया कि स्त्रियों के गुण अलग से गिनाए और कहा
कि अगर मुझे तुझे स्त्रियों में खोजना हो तो तू कीर्ति में, श्री में, वाक में, स्मृति में, मेधा में, धृति में और क्षमा में मुझे देख लेना।
अर्जुन ने पूछा है कि किन भावों में मैं आपको देखूं? कहां आपको खोजूं? कहां आपके दर्शन होंगे? तो स्त्रियों में अगर देखना हो, तो इनमें खोज लेना।
तथा मैं गायन करने योग्य श्रुतियों में बृहत्साम, छंदों में गायत्री छंद तथा महीनों में मार्गशीर्ष का महीना, ऋतुओं में वसंत ऋतु हूं।
अंतिम, वसंत ऋतु पर दो शब्द हम ख्याल में ले लें।
ऋतुओं में खिला हुआ, फूलों से लदा हुआ, उत्सव का क्षण वसंत है।
परमात्मा को रूखे-सूखे, मृत, मुर्दा घरों में मत खोजना। जहां जीवन उत्सव मनाता हो, जहां जीवन खिलता हो वसंत जैसा, जहां सब बीज अंकुरित होकर फूल बन जाते हों, उत्सव में, वसंत में मैं हूं।
ईश्वर सिर्फ उन्हीं को उपलब्ध होता है, जो जीवन के उत्सव में, जीवन के
रस में, जीवन के छंद में, उसके संगीत में, उसे देखने की क्षमता जुटा पाते हैं। उदास, रोते हुए, भागे हुए लोग, मुर्दा हो गए लोग, उसे नहीं देख पाते। पतझड़ में उसे देखना बहुत मुश्किल है। मौजूद तो वह वहां भी है। लेकिन जो वसंत में भी उसे नहीं देख पाते, वे पतझड़ में उसे कैसे देख पाएंगे? वसंत में जो देख पाते हैं, वे तो उसे पतझड़ में भी देख लेंगे। फिर तो पतझड़ पतझड़ नहीं मालूम पड़ेगी; वसंत का ही विश्राम होगा। फिर तो पतझड़ वसंत के विपरीत भी नहीं मालूम पड़ेगी; वसंत का आगमन या वसंत का जाना होगा। लेकिन देखना हो पहले, तो वसंत में ही देखना उचित है।
शायद पृथ्वी पर हिंदुओं ने, अकेला ही एक ऐसा धर्म है, जिसने उत्सव में प्रभु को देखने की चेष्टा की है। एक उत्सवपूर्ण, एक फेस्टिव, नाचता हुआ; छंद में, और गीत में, और संगीत में, और फूल में!
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें। कीर्तन में सम्मिलित हों और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
चौदहवां प्रवचन

परम गोपनीय--मौन

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।। 36।।
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।। 37।।
दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।। 38।।
हे अर्जुन, मैं छल करने वालों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूं तथा मैं जीतने वालों का विजय हूं और निश्चय करने वालों का निश्चय एवं सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव हूं।
और वृष्णिवंशियों में वासुदेव अर्थात मैं स्वयं तुम्हारा सखा और पांडवों में धनंजय अर्थात तू एवं मुनियों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूं।
और दमन करने वालों का दंड अर्थात दमन करने की शक्ति हूं, जीतने की इच्छा वालों की नीति हूं और गोपनीयों में अर्थात गुप्त रखने योग्य भावों में मौन हूं, तथा ज्ञानवानों का तत्व-ज्ञान मैं ही हूं।

हे अर्जुन, मैं छल करने वालों में जुआ, प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव, जीतने वालों का विजय, निश्चय करने वालों का निश्चय, सत्पुरुषों का सात्विक भाव हूं।
हैरानी होगी यह सोचकर कि कृष्ण कहते हैं कि मैं छल करने वालों में जुआ हूं।
शायद जीवन में सभी कुछ छल है। और जीवन की जो छल-स्थिति है, वह जैसी जुए में प्रकट होती है, वैसी और कहीं नहीं। जीवन जुआ है और जुए में जीवन का जो मायिक रूप है, जो छल है, वह अपनी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति को उपलब्ध होता है। इसे थोड़ा हम समझें, तो आसानी हो। और यह कीमती है।
जीवनभर हम कोशिश करते हैं जो भी पाने की, उसे कभी पा नहीं पाते हैं। लगता है कि मिलेगा। लगता है कि अब मिला। लगता है कि बस, अब मिलने में कोई देर नहीं। और हर बार निशाना चूक जाता है। और मृत्यु के क्षण में आदमी पाता है कि जो भी चाहा था, वह कुछ भी नहीं मिला। सिर्फ अपनी वासनाओं की राख ही हाथ में रह जाती है।
मरते क्षण में जो पीड़ा है, वह मृत्यु की नहीं, वह व्यर्थ गए जीवन की होती है। जो लोग जीवन को, जीवन की सार्थकता को, जीवन के आनंद को पा लेते हैं, वे मृत्यु से पीड़ित होते हुए नहीं देखे जाते। उन्हें तो मृत्यु एक विश्राम मालूम होती है। लेकिन अधिकतम लोग तो मृत्यु से पीड़ित होते देखे जाते हैं।
हम सबको यही लगता है कि वे मृत्यु से दुखी हो रहे हैं। वह गलत है। वे दुखी हो रहे हैं इसलिए कि वह जीवन चला गया, जिसमें पाने के बहुत मन्सूबे थे, बड़ी आकांक्षाएं थीं, बड़े दूर के सपने थे। बड़े तारे थे, जिन तक पहुंचना था और कहीं भी पहुंचना नहीं हो पाया। और आदमी इस पूरी दौड़ में बिना कहीं पहुंचे रास्ते पर ही मर जाता है। पड़ाव भी उपलब्ध नहीं होता, मंजिल तो बहुत दूर है।
मृत्यु का जो दंश है, जो पीड़ा है, वह जीवन की व्यर्थता के कारण है।
इसलिए बुद्ध को हम दुखी नहीं देखते मरते क्षण में। सुकरात को हम दुखी नहीं देखते। महावीर को हम पीड़ित नहीं देखते। मृत्यु उन्हें मित्र की तरह आती हुई मालूम पड़ती है। लेकिन हमें शत्रु की तरह आती मालूम पड़ती है।
क्यों? क्योंकि हमारी वासनाएं तो पूरी नहीं हुईं; हमें अभी और समय चाहिए।
हमारी इच्छाएं तो अभी अधूरी हैं। अभी हमें और भविष्य चाहिए।

ध्यान रहे, भविष्य न हो तो हमारी इच्छाओं को फैलने की जगह नहीं रह जाती। भविष्य तो चाहिए ही, तभी हम अपनी इच्छाओं की शाखाओं को फैला सकते हैं। वर्तमान में इच्छा नहीं होती, इच्छा सदा भविष्य में होती है। वासनाओं का जाल तो सदा भविष्य में होता है, वर्तमान में कोई वासना का जाल नहीं होता। अगर कोई व्यक्ति शुद्ध वर्तमान में हो, अभी, यहीं हो, तो उसके चित्त में कोई वासना नहीं रह जाएगी।
वासना हो ही नहीं सकती वर्तमान में। वासना तो होती ही कल है, आने वाले
कल में, आने वाले क्षण में। वासना का संबंध ही भविष्य से है। जो लोग गहरे में खोजते हैं, वे तो कहते हैं कि भविष्य ही इसीलिए मन पैदा करता है, क्योंकि बिना भविष्य के वासनाओं को फैलाएगा कहां। भविष्य कैनवस का काम करता है, जिसमें वासनाओं के सपने फैल जाते हैं।
इसलिए जो लोग वासनाओं से मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिए एक ही प्रक्रिया है और वह यह है कि भविष्य को छोड़ दो और वर्तमान में जीयो। वर्तमान से आगे मत बढ़ो। जो क्षण हाथ में है, उसको ही जी लो; आने वाले क्षण का विचार ही मत करो। जब वह आ जाएगा, तब जी लेंगे।
जो आदमी मोमेंट टु मोमेंट, क्षण-क्षण जीने लगता है, उसके चित्त में वासना का उपाय नहीं रह जाता। वासना के लिए भविष्य का विस्तार चाहिए।
मौत दुख देती है, क्योंकि मौत के साथ पहली दफा हमें पता चलता है, अब कोई भविष्य नहीं है। मौत दरवाजा बंद कर देती है भविष्य का, वर्तमान ही रह जाता है। और वर्तमान में तो सिर्फ टूटे हुए वासनाओं के खंडहर होते हैं, राख होती है, असफलताओं का ढेर होता है, विषाद होता है, संताप होता है। कोई वासना की पूर्ति का तो उपाय नहीं दिखता, और थोड़ा भविष्य चाहिए।
महाभारत में कथा है ययाति की। ययाति सौ वर्ष का हुआ। बड़ा सम्राट था, उसके सौ बेटे थे। अनेक उसकी पत्नियां थीं, बड़ा साम्राज्य था। सौ वर्ष का हुआ, मौत उसके द्वार पर आई, तो ययाति ने कहा कि एक क्षण रुक। अभी तो मेरा कुछ भी काम पूरा नहीं हुआ। अभी तो मैं वहीं खड़ा हूं, जहां जन्म के दिन खड़ा था। यह भी कोई आने का वक्त है! अभी तो कोई भी सपना सत्य नहीं हुआ। अभी तो सभी बीज बीज ही हैं। अभी कोई बीज अंकुरित नहीं हुआ। मुझे समय चाहिए। मृत्यु ने मजाक में ही ययाति से कहा, अगर तेरा कोई पुत्र तुझे अपना जीवन दे दे, तो मैं उसे ले जाऊं और तुझे छोड़ जाऊं! ययाति ने अपने सौ पुत्रों को कहा कि जीवन तुम मुझे दे दो, मेरा जीवन अधूरा रह गया है। तुम मेरे बेटे हो, मैंने तुम्हें पैदा किया। तुम्हें ही पैदा करने और बड़े करने में तो मैंने जीवन गंवाया। तुम्हारे लिए ही तो मैं नष्ट हुआ। तुम मुझे अपना जीवन दे दो; मौत मुझे छोड़ने को राजी है।
लेकिन बेटों की अपनी वासनाएं थीं, जो और भी अधूरी थीं। बेटों को तो और
भी समय चाहिए था। लेकिन एक छोटा बेटा राजी हो गया। बड़े बेटे समझदार थे, अनुभवी थे; वे कोई भी राजी नहीं हुए। और उन्होंने कहा कि आपको ऐसा कहते संकोच भी नहीं होता! आप भी मरने को राजी नहीं हैं! और आप तो सौ वर्ष भी जी लिए, हम तो अभी इतना भी नहीं जीए हैं। और हमसे आप मरने के लिए कहते हैं! लेकिन एक छोटा बेटा राजी हो गया। ययाति ने उससे पूछा भी कि तू क्यों राजी हो रहा है? उसने कहा कि मैं इसलिए राजी हो रहा हूं कि अगर सौ वर्ष जीकर भी आपकी वासना तृप्त नहीं हुई, तो मैं भी इस मेहनत में नहीं पडूंगा। सौ वर्ष बाद मरना ही है, तो मेरी जिंदगी बेकार चली जाएगी, अभी कम से कम इतने तो काम आ रही है कि आप कुछ दिन और जी लेंगे।
फिर भी ययाति को न सूझा! अपनी जिंदगी कठिनाई में हो, तो फिर हम किसी की
भी जिंदगी ले सकते हैं। हम कितना ही कहते हों कि बाप बेटे के लिए जीता है। हम कितना ही कहते हों, भाई भाई के लिए, मित्र मित्र के लिए; लेकिन ये बातें हैं। मौत सामने खड़ी हो जाए, तो सब बदल जाता है।
बेटा राजी हो गया। बेटा मर गया, ययाति और सौ साल जीया। ये सौ साल कब निकल गए, पता न चले। मौत फिर द्वार पर आ गई, तभी ययाति को ख्याल आया। और उसने मौत से कहा, इतनी जल्दी! क्या सौ वर्ष पूरे हो गए? मेरी वासनाएं तो उतनी की उतनी ही अधूरी हैं; रंचमात्र भी फर्क नहीं पड़ा।

इस बीच ययाति के और पुत्र हो गए थे। मौत ने कहा कि फिर किसी पुत्र को पूछ लो, अगर कोई राजी हो।
और कथा बड़ी अदभुत है कि ऐसा दस बार हुआ और ययाति हजार साल जीया। और हजार साल बाद जब मौत आई, तब भी ययाति ने वही कहा कि इतनी जल्दी! अभी मुझे समय चाहिए।
मौत ने उसे कहा, ययाति, कितना ही समय तुम्हें मिले, वासनाएं पूरी नहीं होंगी। समय छोटा पड़ जाता है। समय जो कि अनंत है, वासनाओं से छोटा पड़ जाता है। मौत जब भी द्वार पर आई, ययाति कंपने लगा।
हम सब की भी वही दशा है। और ययाति की कथा हमें लगेगी कि काल्पनिक है, लेकिन समझने जाएं, तो हम भी इस तरह बहुत-से जन्म ले चुके हैं और बहुत हजारों वर्ष जी चुके हैं। हमारी भी यह कोई पहली जिंदगी नहीं है। हर जिंदगी में हमने यही किया है। फिर समय मांगा है, हमें फिर जन्म मिल गया है। हर बार वासना अधूरी रही है। हम पुनर्जन्म पा गए हैं। और हर बार जब मौत आती है, तो हम फिर उतने के उतने अधूरे हैं। कहीं कुछ भरता नहीं है।
मृत्यु घबड़ा देती है, क्योंकि भविष्य समाप्त हो जाता है। और तब जिंदगी की व्यर्थता दिखाई पड़ती है, लेकिन तब कोई प्रयोजन नहीं। तब कोई अर्थ नहीं। तब जिंदगी लगती है एक जुआ थी, जिसमें हम हारे।
जुए की एक खूबी है, वह इसलिए मैंने इतनी बात कही। जुए में कोई कभी जीतता नहीं; यही उसका छल है। और हरेक जीतता हुआ मालूम पड़ता है, यही उसका छल है। हरेक जीतने की आकांक्षा से जुए के पासे फेंकता है और हर एक को लगता है कि जीत निश्चित है। लेकिन जुए में कोई कभी जीतता नहीं। और जो जीतते हुए मालूम भी पड़ते हैं, वे केवल और बड़ी हारों की तैयारी कर रहे होते हैं।
जुए में जो हारता है, वह सोचता है, इस बार हार गया, भाग्य ने साथ न दिया, अगली बार जीत निश्चित है। और हारता चला जाता है। कभी-कभी जीत की झलक भी मिलती है। वह जीत की झलक और बड़ी हारों का आयोजन करवा देती है। उस झलक से लगता है कि जीत भी हो सकती है।
जो जीत जाता है, वह सोचता है कि एक बार जीत जाऊं, तो फिर रुक जाऊं। लेकिन जो एक बार जीत जाता है, रुकना असंभव है। क्योंकि जीत का जो स्वाद मन को लग जाता है, और जीतने की आकांक्षा प्रबल हो जाती है। वही आकांक्षा हार में ले जाती है। जो हारता है, वह सोचता है, अगली बार जीत जाऊंगा। जो इस बार जीतता है, वह सोचता है, जीत मेरे भाग्य में है; हर बार जीत जाऊंगा। और अंततः जुआ ही चलता रहता है। सभी उसमें हारने वाले ही सिद्ध होते हैं।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, छलों में मैं जुआ हूं।
वह शुद्धतम छल है। कभी कोई जीतता नहीं, अंततः कोई जीतता नहीं। आखिर में हाथ खाली रह जाते हैं। खेल बहुत चलता है लेकिन, हार-जीत बहुत होती है। कोई हारता, कोई जीतता; कोई बनता, और कोई मिटता! बहुत खेल होता है। रुपये- पैसे इससे उसके पास जाते हैं। उससे इसके पास जाते हैं, बड़ा लेन-देन होता है। और आखिर में कोई जीतता नहीं। सिर्फ जीतने की और हारने की इस दौड़ में लगे हुए सभी लोग टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं, हार जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।
इसलिए जुआ जिंदगी का प्रतीक है। सारी जिंदगी जुआ है।
इसलिए आप यह मत सोचना कि जो जुआ खेल रहे हैं, वही जुआ खेल रहे हैं। ढंग हैं बहुत तरह के जुआ खेलने के! कुछ जरा हिम्मत का जुआ खेलते हैं, कुछ जरा कम हिम्मत का जुआ खेलते हैं। कुछ इकट्ठे दांव लगाते हैं, कुछ दांव छोटे-छोटे लगाते हैं। कोई बड़े दांव लगाते हैं, कोई टुकड़ों में दांव लगाते हैं। किन्हीं की जीत और हार प्रतिपल होती रहती है; किन्हीं की जीत और हार का इकट्ठा हिसाब मौत के क्षण में होता है। लेकिन हम सब जुआ खेल रहे हैं। और जब तक कोई व्यक्ति अपनी तरफ नहीं जाता, तब तक जुए में ही होता है।
इसे ऐसा समझें कि जो व्यक्ति भी दूसरे में उत्सुक है, वह जुए में ही होता है। दूसरे में उत्सुकता जुआ है, चाहे वह प्रेम की हो, चाहे धन की, चाहे यश की, पद की, प्रतिष्ठा की, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक आप दूसरे पर निर्भर हैं, तब तक आप एक गहरा जुआ खेल रहे हैं। अगर आपको दूसरे भी अपने में

उत्सुक मालूम पड़ते हैं, तो आप पक्का समझ लेना कि आप दोनों एक गहरे जुए में भागीदार हैं।
जब तक कोई व्यक्ति दूसरे की उत्सुकता से मुक्त नहीं होता और उस उत्सुकता में लीन नहीं होता, जो स्वयं की है, तब तक जुए के बाहर नहीं होता। जुआ अकेले नहीं खेला जा सकता, उसमें दूसरे की जरूरत है। इसलिए जो व्यक्ति ध्यान की एकांतता को, अकेलेपन को उपलब्ध हो जाता है, वही जीवन के जुए के बाहर होता है।
जिस काम में भी दूसरे की जरूरत हो, समझ लेना कि जुआ होगा। जो काम भी दूसरे के बिना पूरा न हो सके, समझ लेना कि जुआ होगा। जिसमें दूसरा अनिवार्य हो, समझना कि वहां दांव है। जिस क्षण आप बिल्कुल अकेले होने को राजी हों, दूसरा बिल्कुल ही अर्थपूर्ण न रह जाए, उस दिन आप समझना कि आप जुए के बाहर हो रहे हैं।
ध्यान के अतिरिक्त जुए के बाहर होने का कोई उपाय नहीं है। बाकी सब उपाय जुआ ही खेलने के हैं। यह दूसरी बात है कि कोई एक जुआ पसंद करता है, कोई दूसरा जुआ पसंद करता है। यह अपनी पसंद की बात है। लेकिन जिंदगी के आखिर में अगर कोई एक चीज आप मरते वक्त जान सकते हैं कि मैंने पा ली, तो वह आपकी ही आत्मा है। उसके अतिरिक्त आप जो भी पा लेंगे, मृत्यु आपसे छीन लेगी। सुना है मैंने कि सिकंदर जब मरा, तो उस गांव में बड़ी हैरानी हो गई थी। सिकंदर की अर्थी निकली, तो उसके दोनों हाथ अर्थी के बाहर लटके हुए थे! लाखों लोग देखने इकट्ठे हुए थे। सभी एक-दूसरे से पूछने लगे कि ऐसी अर्थी हमने कभी नहीं देखी कि हाथ और अर्थी के बाहर लटके हों। यह क्या ढंग हुआ! सांझ होते-होते लोगों को पता चला कि यह भूल से नहीं हुआ। भूल हो भी नहीं सकती थी। कोई साधारण आदमी की अर्थी न थी। सिकंदर की अर्थी थी। पता चला सांझ कि सिकंदर ने कहा था कि मरने के बाद मेरे दोनों हाथ अर्थी के बाहर लटके रहने देना, ताकि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। मेरे हाथ में भी कुछ है नहीं। वह दौड़ बेकार गई। वह जुआ सिद्ध हुआ।
और यह वही आदमी है कि मरने के दस साल पहले एक यूनानी फकीर डायोजनीज से मिला था, तो डायोजनीज ने सिकंदर से पूछा था कि कभी तुमने सोचा सिकंदर, कि अगर तुम पूरी दुनिया जीत लोगे, तो फिर क्या करोगे? तो डायोजनीज की यह बात सुनकर सिकंदर उदास हो गया था। और उसने कहा कि इससे मुझे बड़ी चिंता होती है, क्योंकि दूसरी तो कोई दुनिया नहीं है। अगर मैं यह जीत लूंगा, तो सच ही फिर मैं क्या करूंगा? अभी जीती नहीं थी उसने दुनिया। लेकिन यह पूरी दुनिया भी जीत लेगा, तो भी वासना उदास हो गई। अभी जीती भी नहीं है, अभी सिर्फ सोचकर कि पूरी दुनिया जीत लूंगा तो--सच डायोजनीज, तुम मुझे उदास करते हो--फिर मैं क्या करूंगा? दूसरी तो कोई दुनिया नहीं है, जिसको मैं जीतने निकल जाऊं! यह आदमी मरते वक्त... बहुत कुछ जीतकर मरा था। बड़ा जुआरी था, सब कुछ दांव
पर लगाया था। और बड़े ढेर लगा लिए थे जीत के। लेकिन मरते वक्त उसका यह कहना कि देख लें लोग कि मेरे हाथ खाली हैं, विचारणीय है।
सम्राट यहां भिखारी की तरह मर जाते हैं। कभी-कभी कोई भिखारी यहां सम्राटों की तरह मरता है। बुद्ध के हाथ भरे हुए हैं; सिकंदर के हाथ खाली हैं। क्या मामला है! किस चीज से सिकंदर के हाथ खाली हैं? और किस चीज से बुद्ध के हाथ भरे हुए हैं? बुद्ध ने अपने को पाने की कोशिश की है, तो हाथ भरे हुए हैं। सिकंदर ने कुछ और पाने की कोशिश की है, स्वयं को छोड़कर, तो हाथ खाली हैं।
इससे कोई संबंध नहीं है कि आप क्या पाने की कोशिश कर रहे हैं, आपकी जिंदगी एक जुआ है, अगर आप अपने को छोड़कर कुछ भी पाने की कोशिश कर रहे हैं। और आखिर में आपके हाथ खाली होंगे, आखिर में आप हारे हुए विदा होंगे। कृष्ण कहते हैं, छल करने वालों में मैं जुआ हूं।
शुद्धतम रूप जुआ है छल का। जुआरी की हम निंदा करते रहते हैं। लेकिन हम
सब जुआरी हैं। जुआरी की निंदा शायद हमारे मन में इतनी ज्यादा इसीलिए है कि हम छोटे जुआरी हैं। और जुआरी को देखकर हमारा सारा जुआ उघड़ता है और नग्न हो जाता है। जब एक जुआरी दांव लगाता है, तो हम कहते हैं, पागल हो। और हम सब पूरी जिंदगी दांव लगाकर जीते हैं, और कभी भी नहीं सोचते कि हम पागल हैं!

अपना-अपना जुआ सभी को ठीक मालूम पड़ता है। दूसरे के जुए सभी को गलत मालूम पड़ते हैं।
इस जमीन पर बड़े मजे की घटना है, हर आदमी अपने को ठीक और शेष को पागल जानता है। लेकिन तब तक जीवन में धार्मिक क्रांति घटित नहीं होती, जब तक कोई आदमी अपने को पागल जानना शुरू नहीं करता। और जब कोई आदमी यह जान लेता है कि मेरी पूरी जिंदगी, जिसको मैंने अब तक जिंदगी कहा, एक लंबा पागलपन है, उसी दिन उसकी जिंदगी में क्रांति होनी शुरू हो जाती है। जब तक आप दूसरों पर हंसते हैं, तब तक समझना, आप व्यर्थ हंसते हैं। जिस दिन आपको अपने पर हंसी आ जाए, समझना कि रास्ता बदला। अब यात्रा आपकी कुछ और हुई।
क्या है? आप क्या कर रहे हैं? लोग आपको अच्छा कहें, इसके लिए जिंदगी गंवा रहे हैं। कोई आपके मकान को बड़ा कहे, इसलिए जिंदगी गंवा रहे हैं। कोई आपकी तिजोड़ी को देख ले और उसकी आंखों में चकाचौंध पैदा हो जाए, इसलिए जिंदगी गंवा रहे हैं। कोई दूसरे की आंखों के साथ आप जुआ खेल रहे हैं।
वे दूसरे की आंखें उतनी ही पानी की बनी हैं, जितनी आपकी हैं। कल पानी
की तरह बह जाएंगी और इस जगत की रेत में उनका कोई भी पता नहीं चलेगा। और दूसरों के शब्द वैसे ही हवा के बबूले हैं, जैसे आपके; और हवा में खो जाएंगे। उनकी प्रशंसाएं, उनकी निंदाएं, सब हवा में फूट जाएंगी बबूलों की तरह और खो जाएंगी। उनका कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। और आपकी जिंदगी आप गंवा चुके होंगे।
कृष्ण की इस बात को ख्याल में ले लेने जैसा है, छल करने वालों में मैं जुआ हूं। अगर छल को ही देखना है, तो जुए में उसकी शुद्धता है। सौ फीसदी शुद्ध! फिर जिंदगी में उसकी अशुद्धता दिखाई पड़ती है। लेकिन शुद्ध वह जुए में है।
सुना है मैंने कि कनफ्यूशियस ने अपने एक शिष्य को कहा था कि ध्यान करने के पहले तू दो जगह हो आ। एक तो तू जुआघर में बैठकर देख कि लोग वहां क्या कर रहे हैं, आब्जर्व। वहां बैठ जा और देख कि लोग रातभर वहां क्या करते रहते हैं। तुझे कुछ करना नहीं है। सिर्फ निरीक्षण करना। तीन महीने तक तू जुआघर में ही बैठा रह और निरीक्षण कर। और फिर तू मुझे आकर कहना।
वह शिष्य तीन महीने बाद आया और उसने कहा कि लोग पागल हैं। कनफ्यूशियस
ने कहा कि तब मैं तुझे दूसरी साधना का सूत्र देता हूं। अब तू मरघट पर तीन महीने बैठ जा और लोगों को जलते हुए देख।
तीन महीने बाद वह शिष्य आया और उसने कहा कि मैं देखकर आया हूं। सारी जिंदगी एक जुआ है। और सारी जिंदगी का अंत मरघट पर हो रहा है। कनफ्यूशियस ने कहा कि अब तू उस गहरी यात्रा में जा सकता है।
जुए को और मौत को जो समझ ले, वह अंतर्यात्रा पर निकल सकता है।
प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव, जीतने वालों की विजय, निश्चय करने वालों का निश्चय, सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव हूं। और वृष्णिवंशियों में वासुदेव अर्थात स्वयं मैं, पांडवों में धनंजय अर्थात तू, एवं मुनियों में वेदव्यास, कवियों में शुक्राचार्य मैं ही हूं।
कृष्ण कहते हैं--अपने को भी एक प्रतीक बना लेते हैं और अर्जुन को भी--
वे कहते हैं, वृष्णिवंशियों में अगर तुझे देखना हो मुझे, अगर तुझे देखना हो प्रभु को, तो मैं तेरे सामने खड़ा हूं।
निश्चित ही, उस वंश में कृष्ण से ऊंचाई पाने वाला कोई व्यक्ति हुआ नहीं। असल में उस वंश को ही हम कृष्ण की वजह से जानते हैं। कृष्ण न हों, तो उनके पूरे वंश में किसी को भी जानने का कोई कारण नहीं रह जाता। वह जो कृष्ण का फूल खिला है उस वंश के वृक्ष पर, उस फूल की वजह से ही उस वृक्ष का भी हमें स्मरण है। वह उस वंश की श्रेष्ठतम उपलब्धि, जो नवनीत है, वह कृष्ण है। कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि जहां भी श्रेष्ठता का फूल खिलता है, वहां तू मुझे देख पाएगा। तो अगर मेरे वंश में तुझे देखना है, तो मैं तेरे सामने मौजूद हूं।
और अक्सर ऐसा होता है कि जब अंतिम फूल खिल जाता है, तो वंश नष्ट हो जाता है। क्योंकि फिर वंश के होने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। उसका प्रयोजन पूरा हो गया। इसलिए कृष्ण के साथ कृष्ण का वंश तिरोहित हो जाता

है। और इतनी श्रेष्ठता को फिर पार करना भी संभव नहीं है। इसलिए श्रेष्ठतम जो है, वह एक वंश का अंत भी होता है। आखिरी फूल खिल जाने का अर्थ है, वृक्ष की मौत भी आ गई। पूर्णता समाप्ति भी है।
कृष्ण के साथ कृष्ण का वंश समाप्त हो जाता है। उस वंश का जो निहित प्रयोजन था, पूरा हो गया। जो नियति थी, जहां तक पहुंचना था, जो आखिरी छलांग थी, लहर जहां तक आकाश में उठ सकती थी, उठ गई।
तो वे कहते हैं, अगर मेरे वंश में तुझे देखना हो, तो मैं मौजूद हूं, जहां तुझे परमात्मा दिखाई पड़ सकता है।
साथ ही एक और भी मजे की बात कहते हैं, और पांडवों में धनंजय अर्थात तू!
वह जो पांडवों का वंश है, उसमें अर्जुन भी नवनीत है, उसमें अर्जुन सार है। यह सारा महाभारत अर्जुन के इर्द-गिर्द है। यह सारा महाभारत, यह सारी कथा अर्जुन के आस-पास घूमती है।
धनंजय, अगर तुझे पांडवों में भी परमात्मा को देखना हो, तो तू खुद अपने में देख।
ये सारे प्रतीक कृष्ण ने कहे, ये दूर थे, पराए थे। कृष्ण धीरे-धीरे उस प्रतीक के पास अर्जुन को ले आए हैं, जहां वह खुद अपने में भी देख सके। ये इतने स्मरण दिलाए कि ऋतुओं में मैं वसंत हूं, कि देवताओं में कामदेव हूं। इतनी-इतनी यात्रा, अगर ठीक से समझें, तो इस गहरे प्रतीक के लिए थी कि वह जगह आ जाए कि कृष्ण अर्जुन से कह सकें कि धनंजय, पांडवों में मैं तुझमें हूं। आपको अपनी श्रेष्ठता के स्मरण के लिए भी दूसरों की श्रेष्ठता तक जाना होता है। और कभी-कभी अपने द्वार पर आने के पहले बहुत दूसरों के द्वार भी खटखटाने होते हैं। असल में हमारा आत्म-अज्ञान इतना गहन है कि हम अपने तक भी आएं, तो हमें दूसरे के द्वारा आना पड़ता है। अगर हमें अपना भी पता पूछना हो, तो हमें दूसरे से ही पूछना पड़ता है। बेहोशी अपनी ऐसी है, ऐसी गहरी है बेहोशी हमारी, कि हमें अपना तो कोई पता ही नहीं है, बस दूसरों का ही पता है! गुरु भी क्या करेगा शिष्य के लिए! जब कोई शिष्य गुरु के चरणों में सिर रखकर पूछता है, तो क्या पूछता है? और गुरु क्या बताएगा अंततः? गुरु इतना ही बता सकता है कि जिसे तू खोज रहा है, वह तू ही है। जिसकी तलाश है, वह तुझ तलाश करने वाले में ही छिपा है। और जिसकी तरफ तू दौड़ रहा है, वह कहीं बाहर नहीं, दौड़ने वाले के भीतर है। और जो सुवास, जो कस्तूरी तुझे खींच रही है और आकर्षित कर रही है, वह तेरी ही नाभि में छिपी है और दबी है।
लेकिन यह बात कृष्ण सीधी भी कह सकते थे, तब व्यर्थ होती। कृष्ण यह सीधा भी कह सकते थे कि अर्जुन मैं तुझमें हूं, तब यह बात बहुत सार्थक न होती। यह इतनी यात्रा करनी जरूरी थी। अर्जुन बहुत-बहुत जगह थोड़ी-सी झलक पा ले, तो शायद अपने भीतर भी झलक पा सकता है।
धर्मों ने जितनी विधियां खोजी हैं, वे सभी विधियां आवश्यक हैं, अनिवार्य नहीं। उनसे पहुंचा जाता है, लेकिन उनके बिना भी पहुंचा जा सकता है। उनसे पहुंचा जाता है, लेकिन उनके द्वारा ही पहुंचा जा सकता है, ऐसा नहीं है। सारी विधियां एक ही प्रयोजन से निर्मित हुई हैं कि किसी दिन आपको पता चल जाए कि जिसे आप खोज रहे हैं, वह आप ही हैं।
बड़ी अजीब खोज है! क्योंकि जब कोई खुद को खोजने लगे, तो खोज असंभव है। बिल्कुल असंभव है। खुद को कैसे खोज सकिएगा? और जहां भी खोजने जाइएगा, वहीं दूसरे पर नजर रहेगी।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गधे पर बहुत तेजी से बाजार से निकला है। लोगों ने चिल्लाकर भी पूछा कि मुल्ला इतनी जल्दी कहां जा रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, बीच में मत रोको। मेरा गधा खो गया है। पर वह इतनी तेजी में था अपने गधे पर कि गांव के लोग चिल्लाते भी रहे कि नसरुद्दीन, तुम अपने गधे पर सवार हो! लेकिन वह उसे सुनाई नहीं पड़ा।
सांझ जब वह थका-मांदा वापस लौटा। और दौड़ने की ताकत चली गई। और भागने
की हिम्मत टूट गई। जब गधा भी थक गया और खड़ा हो गया, तब नसरुद्दीन को ख्याल आया कि मैं भी कैसा पागल हूं! मैं जिसे खोज रहा हूं, उस पर सवार हूं।
गांव लौटकर उसने बाजार के लोगों से कहा कि नासमझो, तुमने कहा क्यों नहीं? मैं तो खैर जल्दी में था, इसलिए नीचे ध्यान न दे पाया। लेकिन तुम तो

जल्दी में न थे! गांव के लोगों ने कहा, हम तो चिल्लाए थे, लेकिन तुम इतनी जल्दी में थे कि तुम्हें अपना गधा दिखाई नहीं पड़ता था, तो हमारी आवाज क्या सुनाई पड़ सकती थी!
नसरुद्दीन पर हमें हंसी आ सकती है। लेकिन नसरुद्दीन का मजाक गहरा है।
हम सब किसकी तलाश में हैं? किसे हम खोज रहे हैं? क्या हम पाना चाहते हैं? हम अपने को ही खोज रहे हैं। हम खुद को ही पाना चाहते हैं। हमें यही पता नहीं कि मैं कौन हूं? मैं क्या हूं? क्यों हूं? यही हमारी खोज है। लेकिन हम दौड़ रहे हैं तेजी से। और जिस पर सवार होकर हम दौड़ रहे हैं, उसी को हम खोज रहे हैं। जो दौड़ रहा है, उसी को हम खोज रहे हैं। जब तक यह दौड़ बंद न हो जाए, हम थक न जाएं, दौड़ समाप्त न हो जाए, तब तक हमें ख्याल नहीं आएगा। हमें पता नहीं चलेगा।
ये सारे साधन जो धर्मों ने ईजाद किए हैं, आपको थकाने के हैं। ये सारी प्रक्रियाएं जो धर्मों ने विकसित की हैं, ये आपको खूब दौड़ाकर इतना थका देने की हैं कि एक दिन आप खड़े हो जाएं थककर। जिस दिन आप खड़े हो जाएं, उसी दिन आपका अपने से मिलना हो जाए, अपने से पहचान हो जाए। ठहरते ही हम जान सकते हैं, कौन हैं। दौड़ते हम नहीं जान सकते कि कौन हैं।
तेज है इतनी रफ्तार हमारी, और तेजी हमारी रोज बढ़ती जाती है। कभी हम पैदल चलते थे। फिर बैलगाड़ी पर चलते थे। फिर मोटरगाड़ी पर चलते थे। फिर हवाई जहाज पर चलते थे। अब हमारे पास अंतरिक्ष यान हैं। हमारी दौड़ की गति रोज बढ़ती जाती है।
कभी आपने ख्याल किया कि आदमी की गति जितनी बढ़ती जाती है, आदमी का आत्मज्ञान उतना ही कम होता जाता है!
नहीं, ख्याल नहीं किया होगा। इसमें कोई संबंध भी नहीं दिखाई पड़ा होगा। आदमी की जितनी स्पीड बढ़ती जाती है, गति बढ़ती जाती है, उससे उसका अपना संबंध छूटता जाता है। वह दूसरे तक पहुंचने में कुशल होता जाता है और खुद तक पहुंचने में अकुशल होता जाता है। किसी दिन यह हो सकता है कि हमारी रफ्तार इतनी हो जाए कि हम दूर के तारों तक पहुंचने लगें, लेकिन तब खुद तक पहुंचना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
नसरुद्दीन तो गधे पर सवार था, सांझ तक थक गया। हमारे अंतरिक्ष यान कब थकेंगे? और अगर हमने सूरज की किरण की गति पा ली किसी दिन, तो शायद अनंत-अनंत काल लग जाए, उस गति में हमें आत्मज्ञान का पता ही न चल सके।
इसलिए बहुत मजे की बात है, जितने गति वाले समाज होते हैं, उतने अधार्मिक हो जाते हैं। और जितने कम गति वाले समाज होते हैं, उतने धार्मिक होते हैं। जितने कम गति वाले समाज होते हैं, उतना भीतर पहुंचने की संभावना बनी रहती है। जितने गति वाले समाज हो जाते हैं, उतना बाहर जाने की संभावना तो बढ़ जाती है, खुद तक आने की संभावना घट जाती है।
आज सारी दुनिया पर घूमते हुए लोग हैं। बहुत पुरानी कहानी मुझे याद आती है।
सुना है मैंने कि ईश्वर ने सारी सृष्टि बना डाली, फिर उसने आदमी बनाया। वह बड़ा खुश था। सारी दुनिया उसने बना डाली। बहुत खुश था। सब कुछ सुंदर था। फिर उसने आदमी बनाया। और उस दिन से वह बेचैन और परेशान हो गया। आदमी ने उपद्रव शुरू कर दिए। आदमी के साथ उपद्रव का जन्म हो गया।
तो उसने अपने सारे देवताओं को बुलाया और उनसे पूछा कि एक बड़ी मुश्किल
हो गई है। यह आदमी को बनाकर तो गलती हो गई मालूम होती है। और आदमी रोज-रोज उसके दरवाजे पर खड़े रहने लगे। यह शिकायत है, वह शिकायत है। यह कमी है, वह कमी है। ईश्वर ने कहा, अब एक उपाय करो कुछ। मैं किसी तरह आदमी से बचना चाहता हूं। मैं कहां छिप जाऊं?
किसी देवता ने कहा, हिमालय पर बैठ जाएं, गौरीशंकर पर। ईश्वर ने कहा कि तुम्हें पता नहीं, कुछ ही समय बाद हिलेरी और तेनसिंग एवरेस्ट पर चढ़ जाएंगे, फिर मेरी मुसीबत फिर शुरू हो जाएगी। किसी ने कहा, तो चलें चांद पर बैठ जाएं। तो ईश्वर ने कहा, चांद पर पहुंचने में कितनी देर लगेगी! जल्दी ही आदमी चांद पर उतर जाएगा। मुझे कोई ऐसी जगह बताओ, जहां आदमी पहुंच ही न पाए।

तब एक बूढ़े देवता ने ईश्वर के कान में कहा। ईश्वर ने कहा, बिल्कुल ठीक। यह बात जंच गई। और देवताओं ने पूछा कि कौन-सी है वह बात? ईश्वर ने कहा, अब तुम उसको पूछो ही मत। क्योंकि लीक आउट हो जाए, आदमी तक पहुंच जाए, तो खतरा हो सकता है।
उस बूढ़े ने ईश्वर के कान में कहा कि आप आदमी के ही भीतर छिप जाइए। यह वहां कभी नहीं पहुंच पाएगा। एवरेस्ट चढ़ लेगा, चांद पर उतर जाएगा, भीतर खुद के... । ईश्वर ने कहा, यह बात जंच गई।
और कथा है कि तब से ईश्वर आदमी के भीतर छिप गया है। और तब से आदमी ईश्वर से शिकायत करने में असफल हो गया है। खोजता है बहुत, लेकिन मिल नहीं पाता कि उससे शिकायत कर दे, कि कोई प्रार्थना कर दे, कि कोई स्तुति कर दे। भीतर जाना--उस भीतर जाने के लिए कृष्ण धीरे-धीरे अर्जुन को एक-एक कदम अनेक-अनेक इशारों को देकर आखिरी जगह ले आए हैं, जहां वे कहते हैं, अर्जुन, हे धनंजय, पांडवों में मैं तुझमें हूं। तू अपने में ही देख ले। मत पूछ कि क्या मैं भाव करूं। मत पूछ कि कहां मैं खोजूं। सच ही खोजना चाहता है, तो मैं तेरे भीतर मौजूद हूं, तू वहीं देख ले, वहीं खोज ले।
हम सबको भी भरोसा नहीं आता इस बात का कि परमात्मा हमारे भीतर मौजूद है। आएगा भी नहीं। अगर कोई हमसे कहे कि शैतान आपके भीतर मौजूद है, तो हम थोड़ा मान भी लें। क्योंकि हमारा अपने से जो परिचय है, उससे शैतान का तो तालमेल बैठ जाता है। लेकिन कोई हमसे कहे कि परमात्मा आपके भीतर है, तो हम सोचते हैं, कोई मेटाफिजिकल, कोई ऊंचे दर्शन की बात चल रही है! इसमें कुछ है नहीं सार।
परमात्मा, मेरे भीतर! हम किसी के भी भीतर मानने को राजी हो जाएं, खुद
के भीतर मानने में बड़ी तकलीफ होगी। क्योंकि हम भीतर अपने जानते हैं कि क्या है। भीतर के चोर को हम जानते हैं। भीतर के बेईमान को हम जानते हैं। भीतर के व्यभिचारी को हम जानते हैं। कैसे हम मान लें कि परमात्मा हमारे भीतर है!
लेकिन इसका सिर्फ एक ही मतलब है कि आप भीतर को जानते ही नहीं। जिसको
आप जानते हैं भीतर, वह आपका मन है, वह वस्तुतः भीतर नहीं है, वह वास्तविक इनरनेस नहीं है। जिसको आप जानते हैं मन, वह आपका आंतरिक अंतस्तल नहीं है। वह केवल बाहर की परछाईं है, जो आपके भीतर इकट्ठी हो गई है। वे केवल बाहर से बनी हुई प्रतिक्रियाएं हैं, जो आपके भीतर इकट्ठी हो गई हैं।
ऐसा समझें कि आप जिसको मन कहते हैं, वह बाहर से ही आए हुए प्रभावों का जोड़ है। वह भीतर नहीं है। मन के भी भीतर आप हैं। अगर मैं आपको देखता हूं, तो बाहर एक दुनिया है। एक दुनिया मेरे बाहर है। फिर मैं भीतर आंख बंद करता हूं, तो भीतर विचारों की एक दुनिया है। वह भी मुझसे बाहर है। क्योंकि उसको भी मैं देखता हूं भीतर। तो विचार मुझे दिखाई पड़ते हैं; क्रोध, कामवासना मुझे दिखाई पड़ती है। जैसे आप मुझे दिखाई पड़ते हैं, ऐसे ही विचारों की भीड़ भीतर दिखाई पड़ती है। वह भी मुझसे बाहर है। मेरे शरीर के भीतर है, लेकिन मुझसे बाहर है।
आप मुझसे बाहर हैं। आंख बंद करता हूं, आपकी तस्वीर मुझे भीतर दिखाई पड़ती है, वह भी मुझसे बाहर है। और वह तस्वीर आपकी है। आपने अपने भीतर कभी कोई एकाध तस्वीर देखी है, जो बाहर से न आई हो? आपने अपने भीतर कभी कोई एकाध विचार देखा, जो बाहर से न आया हो? आपने भीतर ऐसा कुछ भी देखा है, जो बाहर का ही प्रतिफलन न हो?
तो फिर से खोज करें। आप अपने भीतर की जांच करें, तो आप पाएंगे, वह तो सब बाहर की ही कतरन, बाहर का ही कचरा, बाहर का ही जोड़ है। तो यह फिर भीतर नहीं है। यह बाहर का ही हाथ है, जो आपके भीतर प्रवेश कर गया है। अगर आपको अंतस्तल को जानना है, तो थोड़ा और पीछे चलना पड़े।
कृष्ण उसी की बात कर रहे हैं, कि धनंजय, पांडवों में मैं तेरे भीतर इसी समय मौजूद हूं।
लेकिन भीतर का अनुभव मन से नहीं होता, भीतर का अनुभव तो साक्षी से होता है। भीतर का अनुभव तो ज्ञाता से होता है। भीतर का अनुभव तो द्रष्टा से होता है। जो अपने मन को भी देखने में समर्थ हो जाता है, वह भीतर के अनुभव

को उपलब्ध होता है। और जिसे भीतर का अनुभव हो जाए, उसे फिर वसंत में देखने जाने की जरूरत नहीं, उसे फिर कामधेनु में देखने की जरूरत नहीं। फिर उसे गायत्री छंद में खोजने की जरूरत नहीं। फिर तो सभी जगह उसी का छंद है। फिर तो सभी जगह उसी का वसंत है।
एक बात ख्याल में ले लें। जब तक हमें भीतर परमात्मा नहीं दिखता, तब तक हमें उसे बाहर कहीं देखने की कोशिश करनी पड़ती है। और ध्यान रखें कि वह कोशिश कितनी ही प्रामाणिक हो, अधूरी होगी, पूरी नहीं हो सकती। वह कोशिश कितनी ही निष्ठा से भरी हो, अधूरी होगी, पूर्ण नहीं हो सकती। क्योंकि जिसने उसे अभी भीतर नहीं जाना--भीतर का अर्थ है निकटतम--जिसने उसे इतने निकटतम नहीं जाना, वह दूर उसे नहीं जान सकेगा। जो इतने पास है मेरे कि मेरे हृदय की धड़कन भी मुझसे दूर है उसके हिसाब से; मोहम्मद ने कहा है कि तुम्हारे गले में जो नस फड़कती है जीवन की, वह भी दूर है। वह परमात्मा उससे भी ज्यादा निकट है। जो इतने निकट उसको नहीं जान पाया, वह उसे दूर कैसे जान पाएगा?
और हम सब आकाश में आंखें उठाकर उसे खोजने की कोशिश करते हैं। हम अंधी आंखों से उसे खोज रहे हैं। अपने भीतर आंख बंद करके जो उसे नहीं देख पाता, वह इस विराट आकाश में आंखें खोलकर ईश्वर को देखने की कोशिश करता है! कभी भी वह कोशिश सफल न हो पाएगी।
हां, एक बात हो सकती है कि वह मानने लगे कि दिखाई पड़ रहा है। निष्ठापूर्वक मानने लगे, तो जिंदगी उसकी भली हो जाएगी, लेकिन धार्मिक नहीं। जिंदगी उसकी सदवृत्तियों से भर जाएगी, लेकिन सत्य से नहीं। जिंदगी उसकी शुभ हो जाएगी, लेकिन शुभ भी एक सपना होगा। क्योंकि जिस परमात्मा को वह देख रहा है, वह उसकी कल्पना है, उसका प्रक्षेपण है, उसका प्रोजेक्शन है। जिसने अभी अपने भीतर नहीं देखा, वह उसे कहीं भी देख नहीं सकता। लेकिन हमारी तकलीफ यह है कि हमारी नजरें बाहर घूमती हैं!
इसलिए कृष्ण ने बाहर से शुरू किया कि यहां देख, यहां देख, यहां देख। फिर वे धीरे-धीरे पास ला रहे हैं। आखिर में बहुत पास ले आए। उन्होंने कहा कि इधर मेरी तरफ देख। मेरे वंश में, मैं यहां मौजूद हूं। यह कृष्ण मौजूद है, यहां देख। वे बहुत करीब ले आए। कृष्ण और अर्जुन के बीच फासला बहुत कम है, फिर भी फासला है। फिर वे और भीतर ले गए, और अर्जुन से कहा कि अपने भीतर देख। तू भी, तू भी मेरा ही घर है। तेरे भीतर भी मैं निवास कर रहा हूं।
और एक बार कोई व्यक्ति भीतर उसकी झलक पा ले, तो सभी जगह उसकी झलक फैल जाती है। फिर ऐसा नहीं कि वसंत में ही दिखाई पड़ेगा। वसंत में तो अंधे को दिखाई पड़े, इसकी कोशिश करनी पड़ती है। फिर तो पतझड़ में भी वही दिखाई पड़ेगा। फिर श्रेष्ठ में ही दिखाई पड़े, ऐसा नहीं, निकृष्ट में भी वही दिखाई पड़ेगा। फिर तो उसके अतिरिक्त कुछ दिखाई ही नहीं पड़ेगा। फिर तो जो भी दिखाई पड़ेगा, वही होगा। क्यों?
क्योंकि जिसे भीतर दिखाई पड़ गया, उसकी सारी आंखें उससे भर जाती हैं। जिसे भीतर दिखाई पड़ गया, उसकी श्वास-श्वास उससे भर जाती है। जिसे भीतर दिखाई पड़ गया, उसका रोआं-रोआं उसी से स्पंदित होने लगता है। फिर तो वह आदमी जहां भी देखे, यही रंग फैल जाएगा। जहां भी देखे, यही ज्योति फैल जाएगी। फिर तो ऐसा हो गया, जैसे आप एक दीया लेकर चलें, तो जहां भी दीया लेकर जाएं, वहीं रोशनी पड़ने लगे। अंधेरे में चले जाएं, तो अंधेरा भी रोशन हो जाए।
ठीक जिस दिन आपके भीतर वह दिखाई पड़ने लगा, आपके भीतर दीया जल गया। अब
आप कहीं भी चले जाएं, जहां भी यह रोशनी पड़ेगी आपके दीए की, वहीं वह दिखाई पड़ेगा। अब आप अंधेरे में जाएं, तो भी वही होगा। उजाले में जाएं, तो भी वही होगा। सुबह भी वही, सांझ भी वही। जन्म में भी वही, मृत्यु में भी वही। लेकिन एक बार यह भीतर दिखाई पड़ जाए तब। और भीतर जाने के लिए कृष्ण को इतने प्रतीक चुनने पड़े।
एवं मुनियों में वेदव्यास, कवियों में शुक्राचार्य, दमन करने वाले का दंड, जीतने की इच्छा वालों की नीति, गोपनीयों में अर्थात गुप्त रखने योग्य भावों में मौन, ज्ञानवानों का तत्व-ज्ञान मैं ही हूं।
ये दो प्रतीक बहुत बहुमूल्य हैं, इन्हें हम समझें।

गोपनीयों में, गुप्त रखने योग्य भावों में मौन।
यह बड़ा उलटा मालूम पड़ेगा, क्योंकि गोपनीय तो हम किसी बात को रखते हैं।
मौन को भी कोई गोपनीय रखता है? गोपनीय तो हम किसी विचार को रखते हैं।
निर्विचार को भी कोई गोपनीय रखता है? कोई बात छिपानी हो तो हम छिपाते हैं।
मौन का तो अर्थ हुआ कि छिपाने को ही कुछ नहीं है। जब छिपाने को ही कुछ नहीं है, तो उसे हम क्या छिपाएंगे! यह सूत्र बहुत कठिन है और उन गहरे सूत्रों में से एक है, जिन पर धर्म की बुनियाद निर्मित होती है।
गोपनीयों में, गुप्त रखने योग्य में मैं मौन हूं।
कुछ मत छिपाना, लेकिन अपने मौन को छिपाना, इसका अर्थ होता है। किसी को पता न चले कि तुम्हारे भीतर मौन निर्मित हो रहा है। किसी को पता न चले कि तुम ध्यान में उतर रहे हो। किसी को पता न चले कि तुम शांत हो रहे हो। किसी को पता न चले कि तुम भीतर शून्य हो रहे हो। क्योंकि दूसरे को बताने की इच्छा भी उसे भीतर नष्ट कर देती है।
अगर एक आदमी कहता है कि मैं मौन से रहता हूं, यह कहने का जो रस है, दूसरे को बताने का जो रस है, यह जो दूसरे में रस है, इसकी वजह से मौन तो हो ही नहीं पाएगा।
एक आदमी कहता है कि मुझे तो ध्यान उपलब्ध होने लगा। लेकिन जब दूसरे से
यह कहता है... । दूसरे से कहते ही हम इसलिए हैं कि दूसरा प्रभावित हो। इसलिए वही कहते हैं, जिससे दूसरा प्रभावित हो। उस सबको तो हम छिपाते हैं, जिससे दूसरा गलत प्रभावित न हो जाए। वही सब बताते हैं, जिससे दूसरा प्रभावित हो। हमारा अच्छा चेहरा हम दूसरों को दिखाते हैं, ताकि दूसरे प्रभावित हों। लेकिन दूसरे को प्रभावित करने में जो उत्सुक है, वह ध्यान में जा ही न सकेगा। क्योंकि दूसरे को प्रभावित करने में जो रस है, उसका अर्थ है, अभी अपने से ज्यादा मूल्यवान दूसरा है। अगर मैं सोचता हूं कि फलां आदमी अगर मुझसे प्रभावित हो जाए, तो जिसको भी मैं प्रभावित करना चाहता हूं, उसे मैं अपने से ज्यादा मूल्यवान मानता हूं, इसीलिए प्रभावित करना चाहता हूं। वह प्रभावित हो जाए, तो मैं भी अपनी नजरों में ऊंचा उठ जाऊं। वह ज्यादा कीमती है मुझसे। अगर मुझे मान ले, तो मैं अपनी नजरों में भी ऊंचा उठ जाऊं। मेरी अपनी नजरों में उठने के लिए भी मुझे दूसरों को प्रभावित करना जरूरी है। ध्यान की भी जब कोई बात करता है, या कोई कहता है, मैंने ईश्वर को जान लिया, जब इसकी भी कोई चर्चा करता है किसी दूसरे से और उसे प्रभावित करना चाहता है, तो उसका अर्थ हुआ कि उसने अभी ईश्वर को पाया नहीं। अभी ईश्वर को पाने के रास्ते पर भी वह नहीं है। क्योंकि उस रास्ते पर तो वे ही जाते हैं, जो दूसरे की बिल्कुल चिंता ही छोड़ देते हैं, जिन्हें दूसरों का पता ही नहीं रह जाता।
सूफी फकीर हुआ बायजीद। जब वह अपने गुरु के पास गया, तो बहुत हैरान हुआ। जब वह अपने गुरु के पास था, तो उसने एक दिन देखा कि गांव का सम्राट आया और उसने आकर बायजीद के गुरु को कहा कि मुझे भी दीक्षा दे दें इस परम मौन में, जिसमें आप विराजमान हो गए हैं। तो बायजीद का गुरु अनाप-शनाप बातें बकने लगा। वह सदा चुप रहता था। वह मुश्किल से, कभी कोई पूछता, तो बहुत मुश्किल से महीनों में जवाब देता था। अनाप-शनाप बातें बोलने लगा!
वह सम्राट वापस चला गया। बायजीद ने अपने गुरु से पूछा कि ऐसा हमने कभी नहीं देखा। उसने आपको आकर कहा था, आप परम मौन में प्रतिष्ठित हो गए हैं, मुझे भी उसी तरफ ले चलें! बायजीद के गुरु ने कहा कि उसको पता न चल जाए कि मैं मौन में प्रतिष्ठित हो गया हूं, इसीलिए तो अनाप-शनाप बककर उसे मैंने विदा कर दिया।
बायजीद ने पूछा, अपने मौन को आप छिपाना क्यों चाहते हैं? उसके गुरु ने कहा, इस जगत में अगर कुछ भी छिपाने योग्य है, तो मौन है। क्योंकि वह अंतरतम संपदा है। और वह इतनी नाजुक संपदा है कि जरा बाहर प्रभावित करने की इच्छा से टूट जाती है और खो जाती है।
एक और सूफी फकीर हुआ है, इब्राहीम। वह बल्ख का राजा था। और जब संन्यासी हुआ और अपने गुरु के पास गया, तो उसके गुरु ने कहा कि तू पहले एक काम कर। नग्न हो जा। तो इब्राहीम अपने कपड़े छोड़कर नग्न हो गया। इब्राहीम

के साथी उसे छोड़ने आए थे, वे बड़े हैरान हुए। एक ने इब्राहीम के कान में भी कहा कि जरा पूछ भी लो कि किस लिए? इब्राहीम ने कहा कि जब समर्पण करने आ गया, तो अब प्रश्न की गुंजाइश नहीं है। फिर इब्राहीम के गुरु ने कहा कि यह चप्पल जो पड़ी है मेरी, एक उठा लो अपने हाथ में। उसने चप्पल उठा ली। और इब्राहीम से कहा कि जाओ बाजार में--उसी की राजधानी थी वह कल तक--जाओ बाजार में नग्न और अपने सिर पर चप्पल मारते जाना और एक चक्कर पूरे बाजार का लगा आना।
इब्राहीम निकल पड़ा! वह अपने को चप्पल मारता जाता। भीड़ इकट्ठी हो गई। लोग हंसी-मजाक करने लगे। लोग समझे कि पागल हो गया इब्राहीम। वह पूरा चक्कर लगाकर वापस लौट आया। इब्राहीम के गुरु ने कहा कि तेरी परीक्षा पूरी हो गई। उसके साथियों ने इब्राहीम के गुरु से पूछा कि क्या हम पूछ सकते हैं-- क्योंकि इब्राहीम तो कहता है कि पूछने का सवाल ही न रहा--क्या हम पूछ सकते हैं कि इसका प्रयोजन क्या है? तो इब्राहीम के गुरु ने कहा, इसका प्रयोजन है यह देखना कि अभी भी दूसरे क्या कहते हैं, इसकी चिंता तो भीतर नहीं रह गई! क्योंकि जो, दूसरे क्या कहते हैं, इसकी चिंता करता है, विचार करता है, योजना करता है, वह मौन में प्रवेश नहीं कर सकता।
मौन में सबसे बड़ी कठिनाई है दूसरे की मौजूदगी, जो आपके मन में सदा बनी रहती है। जब आप मौन बैठते हैं, तब भी आप मौन कहां बैठते हैं, किन्हीं दूसरों से कल्पना में बात करते रहते हैं। आदमी दो तरह की बातें करता है, वास्तविक लोगों से और काल्पनिक लोगों से। बातचीत जारी रहती है। जिनसे आप मौन में भी बात करते हैं, अगर वे कल्पना के जीव भी आपसे प्रभावित न हों, तो भी दुख हो जाता है। असली लोगों की तो हम बात छोड़ दें। आप कल्पना में किसी से बात कर रहे हों; और वह प्रभावित न हो, और कहे कि छोड़ो भी, क्या बकवास लगा रखी है! तो भी मन दुखी और खिन्न हो जाता है। सपने में भी जीतने की इच्छा बनी रहती है दूसरे को।
एक दिन आधी रात मुल्ला नसरुद्दीन नींद से उठ आया। उसकी आंखों में आंसू हैं। और उसने बड़ा हड़कंप मचा दिया। उसकी पत्नी ने पूछा कि बात क्या है? उसने कहा कि तू चुप सो। बड़ा नुकसान हो गया। सपना मैंने देखा कि एक देवता मेरे हाथ में रुपये दे रहा है। गिनती मैंने की। एक दो तीन चार पांच छः सात आठ नौ। मैंने उससे कहा कि दस तो पूरा कर दे! बस, इसी में मेरी नींद टूट गई। और अब मैं बड़ी देर से आंख बंद कर-करके कह रहा हूं कि अच्छा, चलो जी, नौ में ही राजी हैं लेकिन उसका कोई पता ही नहीं चलता। छोड़ा एक, छोड़ो भी, इतना क्या! नौ में ही राजी हैं। अभी पीछे-पीछे तो मैं और भी नीचे उतर आया; कि चलो, आठ में भी राजी हैं, सात में भी राजी हैं। करवट बदल रहा हूं, लेकिन उसका कोई पता नहीं चल रहा!
सपने में भी जिन्हें हम देख लेते हैं, वे भी हमारे लिए वास्तविकताएं हैं। उनसे भी हम संबंध जोड़ना शुरू कर देते हैं। अगर आप अपने मन की खोज करें, तो आपकी जिंदगी का अधिक हिस्सा तो सपनों में और कल्पनाओं में ही बीतता है। बहुत कम हिस्सा बाहर बीतता है। बहुत हिस्सा तो भीतर ही बीतता है।
और कभी-कभी बाहर भी जो आप बोलते हैं, वह आप भूल से बोल जाते हैं। आपको पीछे पता चलता है कि आप यह भीतर बोल रहे थे, उसी का हिस्सा जुड़ गया। किसी से भीतर बात चल रही थी, वही बाहर निकल गई। कई बार जो आप नहीं कहना चाहते बाहर, वह कह जाते हैं, क्योंकि भीतर चल रहा था। कई बार आप कहते हैं, भूल से ऐसा हो गया। लेकिन भूल से हो नहीं सकता। वे भीतर चल रही थीं पंक्तियां, तो ही आपकी जीभ से सरककर बाहर गिर सकती हैं।
भीतर एक सतत डायलाग चल रहा है, एक सतत चर्चा चल रही है अपनी ही कल्पनाओं से। मौन में जब आप बैठेंगे, तो यही आपके मौन का खंडन होगा। यही आपके मौन को तोड़ देगा।
मौन का अर्थ है, भीतर कोई विचार न रह जाए, भीतर कोई विचार का कंपन न हो, जैसे झील शांत हो गई हो, कोई लहर न उठती हो।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, गोपनीयों में मैं मौन हूं।

और यह सबसे गुप्त बात है, जिसे किसी को बताना ही मत। बताते ही यह नष्ट
हो जाती है। इसलिए बहुत बार ऐसा होता है, आपका मन बताने का एकदम होता है। और जब भी भीतर कुछ होता है, तो आप चाहते हैं, किसी को बता दें। मन बड़ी तीव्रता से करता है कि जाओ और बोल दो और किसी को कह दो।
यह मन की सहज वृत्ति है। क्योंकि जो आपको हुआ है, जब तक आप दूसरे से न
कह दें, तब तक वह वास्तविक है, इसका भी आपको भरोसा नहीं आता। जब दूसरा मान ले, तब आपको भरोसा आता है कि ठीक है।
सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन जा रहा है रास्ते से और गांव
के कुछ आवारा लड़के उसे कंकड़-पत्थर फेंककर मारने लगे। अंधेरा रास्ता है और मुल्ला को कोई उपाय नहीं सूझता, तो उसने उन लड़कों को पास बुलाया और कहा कि यहां क्या कर रहे हो? तुम्हें पता है, आज गांव के राजा ने सारे गांव को निमंत्रण दिया है। जो भी आए उसको भोजन मिलेगा। और भोजन भी क्या-क्या बना है! और वह भोजन की चर्चा करने लगा।
वे लड़के उत्सुक हो गए। लड़कों को उत्सुक देखा, तो वह खुद भी उत्सुक हो गया। और जब वह मिष्ठानों की बात करने लगा, तो लड़कों के मुंह से तो लार टपकने लगी। उसके मुंह में भी लार आ गई! फिर तो जैसे-जैसे गर्मी बढ़ती गई चर्चा की, लड़कों ने भागना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा, छोड़ो भी इसको, मुल्ला को, महल चलें! जब लड़कों को उसने दूर भागते देखा अंधेरे में, तब उसे ख्याल आया कि कहीं सच ही तो नहीं है यह बात! मुल्ला भी भागा। हो भी सकता है, कौन जाने! कौन जाने यह सच ही हो!
दूसरा जब प्रभावित होता है हमारी किसी बात से, तो हम भी प्रभावित होते हैं। म्युचुअल, एक पारस्परिक लेन-देन हो जाता है। और ये प्रभाव हमें कहां ले जाते हैं, इनका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। बहुत मुश्किल है।
दो व्यक्ति एक-दूसरे के प्रेम में पड़ जाते हैं। तो कोई भी पुरुष किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता है, तो कहता है कि तुझसे ज्यादा सुंदर इस पृथ्वी पर कोई स्त्री नहीं है। और सभी स्त्रियां इसको मान लेती हैं। मानना चाहती हैं गहरे में। और इसको सुनते से ही स्त्री सुंदर हो जाती है। भरोसा आ जाता है! और जब कोई इतना सुंदर मान रहा हो, तो वह भी सुंदर दिखाई पड़ने लगता है। और तब हम कहते हैं कि तुझसे सुंदर पुरुष, तुझसे श्रेष्ठ पुरुष, खोजना असंभव है। और तब म्युचुअल कल्पना की दौड़ शुरू होती है। और तब वे दोनों एक-दूसरे को शिखर पर उठाए चले जाते हैं। और यह शिखर जितना ऊंचा होगा, उतनी ही खाई में कल गिरेंगे। क्योंकि यह शिखर कल्पना का है।
इसलिए ध्यान रखें, प्रेम-विवाह जिस खतरे में ले जाता है, कोई विवाह नहीं ले जा सकता। और प्रेम-विवाह जिस बुरी तरह असफल होता है, कोई विवाह असफल नहीं हो सकता। उसका कारण यह नहीं है कि प्रेम-विवाह बुरा है; उसका कुल कारण इतना है कि प्रेम-विवाह एक म्युचुअल कल्पना पर निर्मित होता है। भारत में विवाह एक सफल संस्था है, क्योंकि हमने प्रेम को बिल्कुल ही काट दिया है उसमें से। कल्पना का सवाल ही नहीं, जमीन पर ही चलाते हैं आदमी को। यहां पति-पत्नी होते हैं, प्रेमी-प्रेयसी होते ही नहीं। कभी आकाश में चढ़ते ही नहीं, तो गड्ढे में गिरने का सवाल ही नहीं आता। समतल भूमि पर चलते रहते हैं।
अमेरिका में बुरी तरह विवाह अस्तव्यस्त हुआ जा रहा है। और उसका कारण
है कि विवाह की बुनियाद दो आदमी एक-दूसरे को नशे में डालकर रखते हैं। वह नशा कितनी देर चलेगा? कितनी देर चल सकता है? वह नशा जल्दी ही उतर जाता है। और इतने बड़े सपनों के बाद जब जमीन पर लौटते हैं, तो लगता है कि बेकार हो गया, धोखा हो गया। गलती हो गई, भूल हो गई। वे सब कविताएं धुआं हो जाती हैं। हम सब ऐसे ही जीते हैं लेकिन, इसलिए हमें खुशामद प्रीतिकर लगती है। क्योंकि कोई हमें भरोसा दिलाता है। बिल्कुल झूठ भी कोई आपसे कह दे, कोई आपसे कह दे कि आप जैसा बुद्धिमान आदमी नहीं है। आपके भीतर कोई आपसे कहे भी कि झंझट में मत पड़ो, यह झूठ ही मालूम पड़ता है; क्योंकि आपको अपनी बुद्धि का अच्छी तरह पता है! फिर भी इनकार करने का मन नहीं होता, मानने का मन होता है। और दस आदमी अगर इकट्ठे होकर कहने लगें, तो फिर तो इनकार करने का सवाल ही

नहीं। हजार दो हजार की भीड़ इकट्ठी हो जाए, फिर तो कोई सवाल ही नहीं। और आपको आसमान में उठाया जा सकता है।
दूसरों की आंखों में जो देख रहा है, वह भूलों में पड़ सकता है, पड़ेगा ही। साधक के लिए अनिवार्य है कि यह जो पारस्परिक लेन-देन है कल्पनाओं का, इससे हट जाए। इससे बिल्कुल हट जाए। वह सिर्फ अपने पर राजी हो जाए। वह दूसरे में तलाश करने न जाए। दूसरे से कहे भी न, क्या उसके भीतर हो रहा है। और न कहने का एक कारण और भी है, कि जैसे ही आप कहते हैं, आपकी गति अवरुद्ध हो जाती है। क्योंकि कहने का अर्थ ही यह हुआ कि आप बड़े तृप्त हो गए। जब मैं किसी से कहता हूं कि बड़ी शांति हो गई भीतर, तो उसका अर्थ है कि मैं तृप्त हो गया। गति अवरुद्ध हो जाएगी।
अगर बढ़ाए जाना है भीतर की गति को और रुक नहीं जाना है, तो मत कहें। मत कहें। इसे किसी से कहें ही मत। यह आपका ही रहस्य हो। यह आपकी निजी संपदा हो। इसका किसी को भी पता न चले। यह ऐसी कुछ बात हो कि आप और आपके परमात्मा के बीच ही रह जाए।
इसलिए इतनी सीक्रेसी, इतनी गुप्तता धर्मों ने निर्मित की है। उस सीक्रेसी के पीछे और कोई कारण नहीं है। उस गुप्तता के पीछे, गोपनीयता के पीछे और कोई कारण नहीं है। वह सहयोगी है अंतर्विकास में, इनर ग्रोथ में। कृष्ण कहते हैं, गोपनीयों में अर्थात गुप्त रखने योग्य भावों में मैं मौन हूं। अगर तुझे मुझे खोजना हो भावों में, तो तू मुझे मौन में खोजना। अर्जुन ने पूछा भी है कि किस भाव में मैं खोजूं? तो कृष्ण कहते हैं, तू मुझे मौन में खोजना। अगर तू बिल्कुल मौन हो जाए, तो तू मुझे पा लेगा। हमारे और सत्य के बीच दीवाल शब्दों की है। एक फूल के पास से आप गुजरते हैं। एक गुलाब का फूल खिला है। फूल दिखाई नहीं पड़ता है, उसके पहले गुलाब का फूल बीच में आ जाता है, शब्द बीच में आ जाता है। फूल देख भी नहीं पाते और आप कहते हैं, सुंदर है। यह सुंदर है, आपकी पुरानी आदत का हिस्सा है। आपको पता है, गुलाब का फूल सुंदर होता है, सुंदर कहा जाता है। सुना है, पढ़ा है, वह आपके मन में रम गया है। फूल को आप देख भी नहीं पाते। यह फूल जो अभी मौजूद है, इसकी पंखुड़ियां आपके हृदय को छू भी नहीं पातीं। इसकी सुगंध आपके प्राणों में उतर भी नहीं पाती। और आप कहते हैं, गुलाब का फूल है, सुंदर है। बात समाप्त हो गई। आपका संबंध टूट गया।
अगर इस गुलाब के फूल से संबंधित होना हो, तो एक छोटा-सा प्रयोग करें।
इस गुलाब के फूल को देखें, लेकिन भीतर शब्द को न आने दें। यह ध्यान का एक प्रयोग है। बैठें इसके पास, लेकिन शब्द को न आने दें। मत कहने दें अपने मन को कि गुलाब का फूल है। मत कहने दें कि सुंदर है। मत कहने दें कि बड़ी सुगंध आ रही है। मत कहने दें कि अच्छा है। कोई निर्णय नहीं। कोई वक्तव्य नहीं। शब्द को कहें कि तू चुप रह, मेरी आंखें हैं। मैं मौजूद हूं। मुझे देखने दे। लाओत्सू एक दिन सुबह घूमने गया है। लाओत्सू रोज सुबह घूमने जाता है,
एक मित्र उसके साथ जाता था। मित्र को तो पता था कि लाओत्सू से एक भी शब्द बीच में बोलना खतरनाक है। लेकिन मित्र के घर एक मेहमान था, वह उसको लेकर चला गया। लाओत्सू चुप था, मित्र चुप था, तो मेहमान भी बेचारा चुप रहा। दो घंटे की लंबी यात्रा में, जब सुबह सूर्य निकलने लगा आकाश में, और पक्षी गीत गाने लगे, और फूल खिलने लगे, तो उसने सिर्फ इतना ही कहा, कितनी सुंदर सुबह है--मेहमान ने!
लाओत्सू ने लौटकर अपने मित्र को कहा कि इस बकवासी आदमी को साथ क्यों
ले आए! उस मित्र ने कहा, हद हो गई! सिर्फ इतना ही उस बेचारे ने कहा कि कितनी सुंदर सुबह है! लाओत्सू ने कहा, लेकिन इतनी दीवाल भी बाधा बन जाती है। सूरज था। सुबह थी। हम भी थे। वह भी था। कहने की क्या जरूरत थी? कोई हम अंधे थे? कि हमको पता नहीं था कि सुबह नहीं है, कि सुंदर नहीं है? कहने की क्या जरूरत थी? उन शब्दों ने सुबह की शांति को बुरी तरह भंग कर दिया। दुबारा इसे साथ मत लाना।
यह जो लाओत्सू कह रहा है, निश्चित ही, जब सूरज उगता है और आप कह देते हैं, सुंदर है, तो आपको पता नहीं होगा कि आपके और सूरज के बीच शब्द की एक दीवाल आ गई। हटा दें शब्दों को बीच से। आप खाली हो जाएं। उधर सूरज को उगने

दें, इधर आप रह जाएं, बीच में कुछ भी न हो। तब आपको पहली दफा सूरज का संस्पर्श मिलेगा। तब पहली दफा सूरज के साथ आप आत्मसात हो जाएंगे। तब पहली दफा सूरज और आपके बीच में कोई भी नहीं होगा। सूरज और आपके बीच पहली दफा सेतु निर्मित होगा। या गुलाब के फूल और आपके हृदय के बीच पहली दफा एक संगीत निर्मित होगा।
अगर ऐसा ही मौन समस्त अस्तित्व के प्रति आ जाए, तो परमात्मा और हमारे बीच संबंध निर्मित होता है। जिस दिन शब्द न रह जाएं, समाप्त हो जाएं, अलग गिर जाएं, हम और अस्तित्व ही रह जाएं... । अस्तित्व है चारों ओर, हम हैं यहां, बीच में एक शब्दों की दीवाल है।
भाषा बड़ी उपयोगी है संसार में, बड़ी बाधा है परमात्मा में। जहां दूसरे
से संबंधित होना है, भाषा जरूरी है। जहां अपने से संबंधित होना है, भाषा खतरनाक है। जहां दूसरे से मिलना है, वहां भाषा के बिना कैसे मिलिएगा? लेकिन जहां अपने से ही मिलना है, वहां भाषा की क्या जरूरत है?
लेकिन हम दूसरे से मिल-मिलकर इतने आदी हो गए हैं भाषा के, कि जब अपने
से मिलने जाते हैं, तब भी भाषा का बोझ लेकर पहुंच जाते हैं। अगर परमात्मा से मिलना है, तो भाषा की कोई भी जरूरत नहीं है। वहां मौन ही भाषा है। वहां चुप हो जाना ही बोलना है। वहां मौन हो जाना ही संवाद है।
कृष्ण कहते हैं, भावों में अगर मुझे खोजना हो, तो मैं मौन हूं। और ज्ञानवानों का तत्व-ज्ञान मैं ही हूं।
यह आखिरी प्रतीक इस आयाम में।
ज्ञानवानों का तत्व-ज्ञान मैं ही हूं।
तत्व-ज्ञान के संबंध में थोड़ी बात मैंने आपसे कही। तत्व-ज्ञान से अर्थ शास्त्रीय ज्ञान नहीं है। तत्व-ज्ञान से अर्थ है, सत्य का निजी अनुभव, अपना अनुभव।
आस्पेंस्की रूस का एक बहुत बड़ा विचारक, गणितज्ञ, एक फकीर गुरजिएफ के पास गया। उसने गुरजिएफ से कहा कि मैं आपसे कुछ पूछने आया हूं। गुरजिएफ ने उसे एक कागज दे दिया उठाकर और कहा कि इस कागज पर पहले तुम लिख दो; जो-जो तुम जानते हो, वह तुम लिख दो। फिर तुम जो नहीं जानते, वह मुझसे पूछना। अगर तुम पहले से ही जानते हो, तो पूछने की झंझट की कोई जरूरत नहीं है। तो पहले तुम लिख दो, जो-जो तुम जानते हो। उसकी हम चर्चा ही नहीं करेंगे; उसे हम उठाएंगे ही नहीं।
आस्पेंस्की बड़ा लेखक था। और गुरजिएफ से मिलने के पहले उसने एक बहुत अदभुत किताब लिखी थी, जो दुनिया की तीन बड़ी किताबों में एक है। पश्चिम में तो उस किताब का जोड़ खोजना बहुत मुश्किल है।
उसने एक किताब लिखी थी, टर्शियम आर्गानम। और निष्ठापूर्वक, किसी अहंकार से नहीं, उसने अपनी किताब में वक्तव्य दिया था कि इसके पहले दो किताबें और लिखी गई हैं। एक किताब लिखी है अरस्तू ने, आर्गानम। आर्गानम का अर्थ होता है, पहला सिद्धांत। दूसरी किताब लिखी है बेकन ने, नोवम आर्गानम, नया सिद्धांत। और तीसरी किताब मैं लिखता हूं, टर्शियम आर्गानम, तीसरा सिद्धांत। और उसने बड़ी विनम्रता से, बिना किसी अहंकार के कहा था कि पहला सिद्धांत भी जब जगत में नहीं था, तब भी यह तीसरा सिद्धांत मौजूद था, जो मैं लिख रहा हूं।
किताब बड़ी कीमती है, बड़ी अदभुत है। और कभी-कभी हैरानी होती है कि बिना जाने भी आदमी का मस्तिष्क कितनी बड़ी चीजें लिख सकता है। उसे कोई आत्मज्ञान नहीं था। पर यह किताब ऐसी है कि पढ़कर ऐसा लगे कि यह आदमी परम ज्ञानी है।
गुरजिएफ ने कहा कि मुझे पता है कि तू कौन है आस्पेंस्की। तेरी टर्शियम आर्गानम मैंने देखी है। तेरे संबंध में मुझे खबर है। पहले तू लिख दे कि जो-जो तू जानता है, उसकी हम बात ही नहीं करेंगे। या अगर तू कहता है कि टर्शियम आर्गानम में जो-जो तूने लिखा है, वह तू जानता है, तब तो बात की कोई जरूरत नहीं है। नमस्कार!

आस्पेंस्की को ऐसा आदमी कभी मिला ही नहीं था। यह भी कोई बात हुई! गुरजिएफ ने कहा कि पास के कमरे में चला जा। मेरे सामने तुझे संकोच होगा।
यह कागज ले जा और लिख ला।
आस्पेंस्की ने लिखा है कि मैं कागज-कलम लेकर बैठ गया। जब मैं लिखने बैठता हूं, तो मेरा हाथ रुकता ही नहीं। उस दिन मेरा हाथ एकदम जाम हो गया। क्या लिखूं, जो मैं जानता हूं! जो भी लिखने की कोशिश करता हूं, भीतर से खबर आती है, यह मैं जानता कहां हूं? पढ़ा है, सुना है, समझा है। बुद्धि को पता है, मुझे कहां पता है! मेरा अनुभव, ईश्वर? कोई मेरा अनुभव नहीं। आत्मा? कोई मेरा अनुभव नहीं। ध्यान? कोई मेरा अनुभव नहीं।
वह कोरा कागज लाकर उसने गुरजिएफ को दे दिया। उसकी आंख में आंसू टपक रहे थे। उसने कहा, मुझे क्षमा करना। मुझे कुछ भी पता नहीं है। यह कोरा कागज आप ले लें।
गुरजिएफ ने कहा कि तब तू आगे बढ़ सकता है। क्योंकि जिसने तथाकथित ज्ञान को ही ज्ञान समझ लिया, वह फिर आगे नहीं बढ़ सकता। तू तत्व-ज्ञानी भी हो सकता है। अभी तक तू ज्ञानी था, अब तू तत्व-ज्ञानी भी हो सकता है। जब ज्ञानी को पता चलता है, मैं ज्ञानी नहीं हूं, तब तत्व-ज्ञान की यात्रा शुरू होती है।
और ध्यान रहे, अज्ञान इतना नहीं भटकाता, जितना तथाकथित उधार ज्ञान भटकाता है। अज्ञानी तो विनम्र होता है। उसे पता होता है, मुझे पता नहीं। लेकिन तथाकथित जो ज्ञानी होते हैं, जिनके मस्तिष्क में सिवाय शास्त्र के और कुछ भी नहीं होता। शास्त्र की प्रतिध्वनियां होती हैं। उनको यह भी ख्याल नहीं आता कि हम नहीं जानते। उनको तो पक्का मजबूत ख्याल होता है कि मैं जानता हूं। यह मैं जानता हूं, यही उनकी बाधा बन जाती है।
तत्व-ज्ञान का अर्थ है, जब निजी अनुभव हो।
कृष्ण जानते होंगे; आप गीता कंठस्थ कर लें, इससे कुछ ज्ञान नहीं होगा। बुद्ध जानते होंगे; आप धम्मपद याद कर लें, इससे कुछ होगा नहीं। यह उधार है। और ध्यान रहे, उधार ज्ञान ज्ञान होता ही नहीं। उधार ज्ञान ज्ञान होता ही नहीं। अपना ज्ञान ही सिर्फ ज्ञान है। दूसरा क्या जानता है, वह आपको सब दे दे, आपके पास ज्ञान नहीं आता, सिर्फ शब्द आते हैं। शब्द आप इकट्ठे कर लेते हैं, स्मृति में शब्द बैठ जाते हैं। फिर स्मृति को ही आप समझते हैं कि मैं जानता हूं।
स्मृति ज्ञान नहीं है। ज्ञान का अर्थ है, अनुभव। आपका ही साक्षात्कार हो, आप ही आमने-सामने आ जाएं, आपका ही हृदय जाने, जीए, धड़के, उस अनुभव में, तो ही तत्व-ज्ञान है।
कृष्ण कहते हैं, ज्ञानियों, ज्ञानवानों का तत्व-ज्ञान मैं ही हूं, अनुभव मैं ही हूं।
और यह बड़े मजे की बात है कि उस तत्व-ज्ञान में, उस निजी अनुभव में जो जाना जाता है, वही परमात्मा है। निजी अनुभव में जो जाना जाता है, वही परमात्मा है। निजी अनुभव ही परमात्मा है।
परमात्मा के संबंध में जानना परमात्मा को जानना नहीं है। टु नो अबाउट गॉड इ.ज नाट टु नो गॉड। अबाउट, संबंध में--झूठी बातें हैं। परमात्मा को ही जानना, संबंध में नहीं। उसके बाबत नहीं, उसको ही जानना तत्व-ज्ञान है। यह कब घटित होता है? अज्ञान हमारी सहज स्थिति है। फिर अज्ञान को हम ज्ञान से ढांक लेते हैं, तो भ्रांति पैदा होती है। लगता है, जान लिया।
उपनिषदों ने कहा है बड़ा बहुमूल्य सूत्र, संभवतः इससे क्रांतिकारी वचन जगत में खोजना कठिन है। और उपनिषद को लोग पढ़ते रहते हैं और उसी उपनिषद को कंठस्थ कर लेते हैं! ऐसा आदमी मजेदार है और विचित्र है।
उपनिषद ने कहा है कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं!
यह किन ज्ञानियों के लिए कहा होगा जो महाअंधकार में भटक जाते हैं! और मजा यह है कि इसी उपनिषद को लोग कंठस्थ कर लेते हैं। और इस सूत्र को भी कंठस्थ कर लेते हैं। और इस सूत्र को रोज कहते रहते हैं कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। इसको भी

कंठस्थ कर लेते हैं। सोचते हैं, इसे कंठस्थ करके वे ज्ञानी हो गए। इन्हीं ज्ञानियों के भटकने के लिए यह सूत्र है।
आदमी विचित्र है। और आदमी अपने को धोखा देने में अति कुशल है। और जब
वह खुद को धोखा देता है, तो धोखा तोड़ने का उपाय भी नहीं बचता। दूसरे को धोखा दें, तो दूसरा बचने की भी कोशिश करता है। आप खुद ही अपने को धोखा दें, तो फिर बचने का भी कोई उपाय नहीं रह जाता।
अगर कोई आदमी सोया हो, तो उसे जगाया भी जा सकता है। लेकिन कोई जागा हुआ सोया हुआ बना पड़ा हो, तो उसे जगाना बिल्कुल मुश्किल है। कैसे जगाइएगा? अगर वह आदमी जाग ही रहा हो और सोने का बहाना कर रहा हो, तब फिर जगाना बहुत मुश्किल है। नींद तोड़ देना आसान है, लेकिन झूठी नींद को तोड़ना बहुत मुश्किल है।
अज्ञानी को तत्व-ज्ञान की तरफ ले जाना इतना कठिन नहीं है, जितना पंडित को, ज्ञानी को ले जाना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि वह कहता है, मैं जानता ही हूं।
अभी परसों सुबह एक संन्यासी आए। बीस वर्ष से घूमते हैं, खोजते हैं। कहते हैं, हिंदुस्तान में ऐसा एक महात्मा नहीं, जिसके पास मैं न हो आया हूं। ऐसा एक शास्त्र नहीं, जो उन्होंने न पढ़ा हो। ऐसी एक विधि नहीं, जो वह कहते हैं, मैंने न कर ली हो।
तो मैंने उनसे पूछा, आप सब सत्संग कर लिए, सब शास्त्र पढ़ लिए, सब विधियां कर लीं, अब क्या इरादे हैं? अगर आपको पक्का हो गया है कि आपको अभी तक नहीं मिला, तो ये सब शास्त्र और ये सब सत्संग और सब विधियां बेकार गए। अब इनको छोड़ दें। और अगर मिल गया हो, तो मेरा समय खराब न करें। मुझे साफ-साफ कह दें। अगर मिल गया हो, तो ठीक है, बात समाप्त हो गई। अगर न मिला हो, तो अब इस बोझ को न ढोएं। क्योंकि एक घंटा उन्होंने मुझे ब्योरा बताया, कि वे कौन-कौन सी किताब पढ़ चुके हैं, कौन-कौन महात्मा से मिल चुके हैं, कौन-कौन सी विधि कर चुके हैं। मैंने कहा, इनसे अगर मिल गया हो, तो ठीक है। झंझट मिट गई। अगर न मिला हो, तो अब इस बोझ को न ढोए फिरें।
लेकिन यह बात उनको रुचिकर नहीं लगी। यह उनके जीवनभर की संपत्ति है।
इससे मिला कुछ नहीं। लेकिन यह अनुभव भी करना कि इससे कुछ नहीं मिला, उसका मतलब होता है कि बीस साल मेरे बेकार गए। वह भी चित्त को भाता नहीं है। बीस साल मैंने व्यर्थ ही गंवाए, वह भी चित्त को भाता नहीं है। मिला भी नहीं है। छोड़ा भी नहीं जाता, जो पकड़ लिया है।
ज्ञानी, तथाकथित ज्ञानी की तकलीफ यही है। अपना ज्ञान भी नहीं है और उधार ज्ञान सिर पर इतना भारी है, वह छोड़ा भी नहीं जाता। क्योंकि वह संपत्ति बन गई। उससे अकड़ आ गई। उससे अहंकार निर्मित हो गया है। उससे लगता है कि मैं जानता हूं। बिना जाने लगता है कि मैं जानता हूं।
यह जो स्थिति हो, तो तत्व-ज्ञान फलित नहीं होगा।
कृष्ण कहते हैं, ज्ञानियों का मैं तत्व-ज्ञान हूं। वे यह नहीं कहते कि ज्ञानियों की मैं जानकारी हूं। ज्ञानियों के पास बड़ी जानकारी, बड़ी इनफर्मेशन है। वे कहते हैं, ज्ञानियों का मैं तत्व-ज्ञान, निजी अनुभव, उनका खुद का बोध, उनका सेल्फ रियलाइजेशन, उनकी प्रतीति, उनकी अनुभूति मैं हूं। उनकी जानकारी नहीं।
यह जो अनुभूति है, यह एक बहुत अनूठी घटना है। एक छोटी-सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूं।
मैंने सुना है, और टाल्सटाय ने उस पर एक कहानी भी लिखी है, कि रूस में
एक झील के किनारे तीन फकीरों का नाम बड़ा प्रसिद्ध हो गया था। और लोग लाखों की तादाद में उन फकीरों का दर्शन करने जाने लगे। और वे फकीर महामूढ़ थे, बिल्कुल गैर पढ़े-लिखे थे। कुछ धर्म का उन्हें पता ही नहीं था। यह खबर रूस के आर्च प्रीस्ट को, सबसे बड़े ईसाई पुरोहित को लगी। उसे बड़ी हैरानी हुई। क्योंकि ईसाई चर्च तो कानूनन ढंग से लोगों को संत घोषित करता है, तभी वे संत हो पाते हैं।
यह भी बड़े मजे की बात है! ईसाई चर्च तो घोषणा करता है कि फलां आदमी संत हुआ। और जब पोप इसकी गारंटी दे देता है कि फलां आदमी संत हुआ, तभी वह संत

माना जाता है। इसलिए ईसाइयत में एक मजेदार घटना घटती है कि दो-दो सौ, तीन-तीन सौ साल हो जाते हैं आदमी को मरे हुए, तब चर्च उनको संत घोषित करता है। जिंदों को तो जला दिया कई दफा चर्च ने। जान आफ आर्क को जलाया, वह जिंदा थी तब। फिर सैकड़ों साल बाद उसको संतत्व की पदवी घोषित की, कि वह भूल हो गई, वह संत थी।
अभी संत कैसे हो गए ये! हिंदुस्तान होता तो चलता, यहां कोई भी संत हो सकता है। इसकी कोई तकलीफ नहीं है। लेकिन रूस में तकलीफ हुई कि ये संत हो कैसे गए! तो आर्च प्रीस्ट बड़ा परेशान हुआ। और जब उसे पता चला कि लाखों लोग वहां जाते हैं, तो उसने कहा, यह तो हद हो गई! यह तो चर्च के लिए नुकसान होगा। ये कौन लोग हैं! इनकी परीक्षा लेनी जरूरी है।
तो आर्च प्रीस्ट एक मोटर बोट में बैठकर झील में गया। जाकर वहां पहुंचा, तो वे तीनों झाड़ के नीचे बैठे थे। देखकर वह बड़ा हैरान हुआ। सीधे- सादे ग्रामीण देहाती मालूम पड़ते थे। वह जाकर जब खड़ा हुआ, तो उन तीनों ने झुककर नमस्कार किया, उसके चरण छुए। उसने कहा कि बिल्कुल नासमझ हैं। इनकी क्या हैसियत!
उसने बहुत डांटा-डपटा, फटकारा कि तुम यह क्यों भीड़-भाड़ यहां इकट्ठी करते हो? उन्होंने कहा, हम नहीं करते। लोग आ जाते हैं। आप उनको समझा दें। पूछा कि तुमको किसने कहा कि तुम संत हो? लोग कहने लगे। हमको कुछ पता नहीं है। तुम्हारी प्रार्थना क्या है? बाइबिल पढ़ते हो? उन्होंने कहा, हम बिल्कुल पढ़े-लिखे नहीं हैं। तुम प्रार्थना क्या करते हो? क्योंकि चर्च की तो निश्चित प्रार्थना है। तो उन्होंने कहा, हमको तो प्रार्थना कुछ पता नहीं। हम तीनों ने मिलकर एक बना ली है। तुम कौन हो बनाने वाले प्रार्थना? प्रार्थना तो तय होती है पोप के द्वारा। बिशप्स की बड़ी एसेंबली इकट्ठी होती है, तब एक-एक शब्द का निर्णय होता है। तुम कौन हो प्रार्थना बनाने वाले? तुमने अपनी निजी प्रार्थना बना ली है! भगवान तक जाना हो, तो बंधे हुए रास्तों से जाना पड़ता है! क्या है तुम्हारी प्रार्थना?
वे तीनों बहुत घबड़ा गए। कंपने लगे। सीधे-सादे लोग थे। तो उन्होंने कहा, हमने तो एक छोटी प्रार्थना बना ली है। आप माफ करें, तो हम बता दें। ज्यादा बड़ी नहीं है, बहुत छोटी-सी है।
ईसाइयत मानती है कि परमात्मा के तीन रूप हैं, ट्रिनिटी। त्रिमूर्ति परमात्मा है। परमात्मा है, उसका बेटा है, होली घोस्ट है। ये तीन रूप हैं परमात्मा के।
तो उन्होंने कहा कि हमने तो एक छोटी-सी प्रार्थना बना ली। यू आर थ्री,
वी आर थ्री, हैव मर्सी आन अस। तुम भी तीन हो, हम भी तीन हैं, हम पर कृपा करो। यही हमारी प्रार्थना है। उस पादरी ने कहा, नासमझो, बंद करो यह बकवास। यह कोई प्रार्थना है? सुनी है कभी? और तुम मजाक करते हो भगवान का कि तुम भी तीन और हम भी तीन हैं?
उन्होंने कहा, नहीं, मजाक नहीं करते। हम भी तीन हैं। और हमने सुना है
कि वह भी तीन है। उसका तो हमें पता नहीं। बाकी हम तीन हैं। और हम ज्यादा कुछ जानते नहीं। हमने सोचा, हम तीन हैं, वे भी तीन हैं, तो हम तीनों पर कृपा कर। उसने कहा कि यह प्रार्थना नहीं चलेगी। आइंदा करोगे, तो तुम नरक जाओगे। तो मैं तुम्हें प्रार्थना बताता हूं आथराइज्ड, जो अधिकृत है।
उसने प्रार्थना बताई। उन तीनों को कहलवाई। उन्होंने कहा, एक दफा और
कह दें, कहीं हम भूल न जाएं। फिर एक दफा कही। फिर उन्होंने कहा, एक दफा और। कहीं भूल न जाएं। उसने कहा, तुम आदमी कैसे हो? तुम संत हो? तो उन्होंने कहा, नहीं, हम कोशिश तो पूरी याद करने की करेंगे, एक दफा आप और दोहरा दें! उसने दोहरा दी।
फिर पादरी वापस लौटा। जब वह आधी झील में था, तब उसने देखा कि पीछे वे तीनों पानी पर भागते चले आ रहे हैं। तब उसके प्राण घबड़ा गए। उसने अपने माझी से कहा कि यह क्या मामला है? ये तीनों पानी पर कैसे चले आ रहे हैं? उस माझी ने कहा कि मेरे हाथ-पैर खुद ही कंप रहे हैं। यह मामला क्या है! वे तीनों पास आ गए। उन्होंने कहा, जरा रुकना। वह प्रार्थना हम भूल गए; एक बार और बता दो! उस पादरी ने कहा कि तुम अपनी ही प्रार्थना जारी रखो। हमारी

प्रार्थना तो कर-करके हम मर गए, पानी पर चल नहीं सकते। तुम्हारी प्रार्थना ही ठीक है। तुम वही जारी रखो। वे तीनों हाथ जोड़कर कहने लगे कि नहीं, वह प्रार्थना ठीक नहीं। मगर आपने जो बताई थी, बड़ी लंबी है और शब्द जरा कठिन हैं। और हम भूल गए। हम बेपढ़े-लिखे लोग हैं।
यह घटना टाल्सटाय ने लिखी है। ये तीन आदमी बिल्कुल पंडित नहीं हैं, विनम्र भोले-भाले लोग हैं। लेकिन एक निजी अनुभव घटित हुआ है। और निजी अनुभव के लिए कोई अधिकृत प्रार्थनाओं की जरूरत नहीं है। और निजी अनुभव के लिए कोई लाइसेंस्ड शास्त्रों की जरूरत नहीं है। और निजी अनुभव का किसी ने कोई ठेका नहीं लिया हुआ है। हर आदमी हकदार है पैदा होने के साथ ही परमात्मा को जानने का। वह उसका स्वरूपसिद्ध अधिकार है। वह मैं हूं, यही काफी है, मेरे परमात्मा से संबंधित होने के लिए। और कुछ भी जरूरी नहीं है। बाकी सब गैर-अनिवार्य है।
लेकिन जो जानकारी हम इकट्ठी कर लेते हैं, वह जानकारी हमारे सिर पर बोझ
हो जाती है। वह जो भीतर की सरलता है, वह भी खो जाती है। पंडित भी उसे पा सकते हैं, लेकिन पांडित्य को उतारकर रख दें तो ही।
और तत्व-ज्ञान मैं हूं। ज्ञान नहीं, जानकारी नहीं, सूचना नहीं, शास्त्रीयता नहीं, आत्मिक अनुभव। और निश्चित ही, उस आत्मिक अनुभव में, जहां एक भी शब्द नहीं होता, व्यक्ति होता है और अस्तित्व होता है और दोनों के बीच की सब दीवालें गिर गई होती हैं, वहां जो होता है, वही परमात्मा है। इसे हम ऐसा कहें, परमात्मा का अनुभव नहीं होता; एक अनुभव है, जिसका नाम परमात्मा है। परमात्मा का कोई अनुभव नहीं होता। ऐसा नहीं होता कि आपके सामने परमात्मा खड़ा है, और आप अनुभव कर रहे हैं। इसमें तो दूरी रह जाएगी। एक अनुभव है, जहां व्यक्ति समष्टि में लीन हो जाता है। उस अनुभव का नाम ही परमात्मा है। शायद कठिन मालूम पड़े। परमात्मा का कोई अनुभव नहीं होता, देअर इ.ज नो एक्सपीरिएंस आफ गॉड, बट ए सर्टेन एक्सपीरिएंस इ.ज नोन एज गॉड। एक खास अनुभव!
वह अनुभव क्या है? वह अनुभव है, जहां बूंद सागर में खोती है। जहां बूंद सागर में खोती है, तो बूंद को जो अनुभव होता होगा! जैसे व्यक्ति जब समष्टि में खोता है, तो व्यक्ति को जो अनुभव होता है, उस अनुभव का नाम परमात्मा है।
परमात्मा एक अनुभव है, वस्तु नहीं। परमात्मा एक अनुभव है, व्यक्ति नहीं। परमात्मा एक अनुभव है, एक घटना है। और जो भी तैयार है उस घटना के लिए, उस एक्सप्लोजन के लिए, उस विस्फोट के लिए, उसमें घट जाती है। और तैयारी के लिए जरूरी है कि अपना अज्ञान तो छोड़ें ही, अपना ज्ञान भी छोड़ दें। अज्ञान तो छोड़ना ही पड़ेगा, ज्ञान भी छोड़ देना पड़ेगा। और जिस दिन ज्ञान-अज्ञान दोनों नहीं होते, उसी दिन जो होता है, उसका नाम परमात्मा है।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट रुकें। बीच में कोई उठ जाता है, दूसरों को तकलीफ होती है। पांच मिनट और बैठें। कीर्तन के बाद जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 10
पंद्रहवां प्रवचन

मंजिल है स्वयं में

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।। 39।।
नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।। 40।।
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्।। 41।।
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।। 42।।
और हे अर्जुन, जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है वह भी मैं ही हूं, क्योंकि ऐसा वह चर और अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मेरे से रहित होवे।
हे परंतप, मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है। यह तो मैंने अपनी विभूतियों का विस्तार तेरे लिए संक्षेप से कहा है।
इसलिए हे अर्जुन, जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात ऐश्वर्ययुक्त एवं कांतियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उस को तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान।
अथवा हे अर्जुन, इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है! मैं इस संपूर्ण जगत को अपनी योग-माया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूं। इसलिए मेरे को ही तत्व से जानना चाहिए।

और हे अर्जुन, जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह मैं ही हूं, क्योंकि ऐसा वह चर और अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मेरे से रहित हो।
इस सूत्र पर कृष्ण ने बार-बार जोर दिया है। बहुमूल्य है, और निरंतर स्मरण रखने योग्य इसलिए भी। जब भी हम ईश्वर के संबंध में विचार करते हैं, तब ऐसा ही विचार में प्रतीत होता है कि ईश्वर अस्तित्व से कुछ और है। यह विचार की भूल के कारण होता है; यह विचार के स्वभाव और विचार की प्रक्रिया के कारण होता है। जब भी विचार का उपयोग किया जाता है, तो चीजें दो में टूट जाती हैं। विचार वस्तुओं को विश्लिष्ट करने का मार्ग है। तो जब भी हम सोचते हैं ईश्वर के संबंध में, तो जगत अलग और ईश्वर अलग हो जाता है। तो हम कहते हैं सृष्टि, तो स्रष्टा अलग हो जाता है।
लेकिन वस्तुतः अनुभूति में सृष्टि और स्रष्टा पृथक-पृथक नहीं हैं, वे
एक ही हैं। इसलिए पुराने अनुभव करने वाले लोगों ने कहा है कि यह सृष्टि ठीक वैसे ही है, जैसे मकड़ी अपने ही भीतर से जाले को निकालकर फैलाती है। यह जो इतना विस्तार है, यह परमात्मा से वैसे ही निकलता और फैलता है, जैसे मकड़ी का जाला उसके भीतर से निकलता और फैलता है।
यह विस्तार उसका ही विस्तार है। यह विस्तार उससे पृथक नहीं है। और एक क्षण को भी पृथक होकर इसका कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। यह है उसकी ही मौजूदगी के कारण। वह इसमें समाया है, इसीलिए इसका अस्तित्व है। वह मौजूद है, इसीलिए यह मौजूद है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम ईश्वर को अस्तित्व का पर्यायवाची मानें। अस्तित्व ही ईश्वर है।
इस बात से तो विज्ञान भी राजी होगा। इस बात से तो नास्तिक भी राजी हो जाएगा। लेकिन नास्तिक या वैज्ञानिक कहेगा, फिर ईश्वर शब्द के प्रयोग की कोई जरूरत नहीं; प्रकृति काफी है, जगत काफी है, अस्तित्व काफी है। और यहां धर्म के जगत के लिए विशेष शब्द के प्रयोग का अर्थ समझ लेना उचित है। अस्तित्व काफी है कहना, लेकिन अस्तित्व से हमारे हृदय में कोई भी आंदोलन नहीं होता। अस्तित्व से हमारे प्राणों में कोई चीज संचारित नहीं होती। अस्तित्व से हमारे हृदय की वीणा पर कोई चोट नहीं पड़ती। अस्तित्व और हमारे बीच कोई संबंध निर्मित नहीं होता। ईश्वर कहते ही हमारे हृदय में

गति शुरू हो जाती है। ईश्वर शब्द इसलिए प्रयोजित है। क्योंकि ईश्वर है, इतना काफी नहीं है कहना, आदमी ईश्वर तक पहुंचे, यह भी जरूरी है।
धर्म केवल तथ्यों की घोषणा नहीं है, वरन लक्ष्यों की घोषणा भी है। यहीं विज्ञान और धर्म का फर्क है। धर्म केवल तथ्यों की, फैक्ट्स की घोषणा नहीं है। क्या है, इतने से ही धर्म का संबंध नहीं है। क्या होना चाहिए, क्या हो सकता है, उससे भी धर्म का संबंध है।
अगर बीज हमारे सामने पड़ा हो, तो विज्ञान कहेगा, यह बीज है; और धर्म कहेगा, यह फूल है। धर्म उसकी भी घोषणा करेगा जो हो सकता है, जो होना चाहिए। और जो नहीं हो पाएगा, तो बीज के प्राण कुंठित, पीड़ित और परेशान रह जाएंगे। बीज अतृप्त रह जाएगा, अगर फूल न हो पाया तो। और बीज के प्राणों में एक गहरा विषाद, एक संताप रह जाएगा, एक अधूरापन।
विज्ञान इतना कहकर राजी हो जाता है कि अस्तित्व है। धर्म कहता है, ईश्वर और अस्तित्व समानार्थी हैं, फिर भी हम अस्तित्व नहीं कहते, कहते हैं, ईश्वर है। ईश्वर कहते ही बीज और फूल, दोनों की एक साथ घोषणा हो जाती है। जब हम कहते हैं, अस्तित्व ईश्वर है, तो हम मौलिक रूप से यह कहना चाहते हैं कि प्रत्येक ईश्वर है और हो सकता है।
कृष्ण ने कहा है, ऐसा चर और अचर कोई भी नहीं है, जो मेरे से रहित होवे। ऐसी कोई भी सत्ता नहीं है, जहां मैं मौजूद नहीं हूं।
लेकिन पत्थर की तो हम बात छोड़ दें, आदमी को भी पता नहीं चलता कि वह मौजूद है। पत्थर में भी वह मौजूद है। पत्थर को हम छोड़ दें, आदमी को भी पता नहीं चलता कि वह मेरे भीतर मौजूद है। हमें भी अनुभव नहीं होता कि वह हमारे भीतर मौजूद है। और हम भी उसे खोजने निकलते हैं, तो कहीं और खोजने निकलते हैं--काबा में, काशी में, मक्का में, मदीना में--कहीं उसे खोजने निकलते हैं। यह ख्याल ही नहीं आता कि वह यहां भीतर हो सकता है। क्या कारण होगा? कारण बहुत सहज, बहुत सरल है। जो अति निकट होता है, वह विस्मरण हो जाता है। जो बहुत निकट होता है, उसकी हमें याद ही नहीं आती। और जो भीतर ही होता है, उसका हमें पता ही नहीं चलता। हमें पता ही उन चीजों का चलता है, जो दूर होती हैं, जिनमें और हममें फासला होता है। बोध के लिए बीच-बीच में गैप, अंतराल चाहिए। हमारे और परमात्मा के बीच में कोई अंतराल नहीं है, इसलिए बोध पैदा नहीं हो पाता।
इसे थोड़ा हम समझ लें।
अगर आपको बचपन से ही शोरगुल के बीच बड़ा किया जाए, रेलवे स्टेशन पर बड़ा किया जाए, जहां दिनभर गाड़ियां दौड़ती रहती हों, और यात्री भागते रहते हों, और शोरगुल होता हो, इंजन आवाज करते हों, तो आपको उसी दिन पता चलेगा कि शोरगुल हो रहा है, जिस दिन रेलवे में हड़ताल हो जाए; उसके पहले पता नहीं चलेगा। जिस दिन सब गाड़ियां बंद हों और यात्री कोई न आएं, न जाएं, उस दिन आपको पहली दफा पता चलेगा कि शोरगुल हो रहा था। अन्यथा आप शोरगुल के आदी हो गए होंगे। आपको ख्याल में भी नहीं आएगा।
जो बात निरंतर होती रहती है, उसका हमें बोध मिट जाता है। जो बात अचानक होती है, उसका हमें बोध होता है। जो कभी-कभी होती है, उसका हमें बोध होता है। जो सदा होती रहती है, उसका हमें बोध मिट जाता है। और परमात्मा और हमारे बीच कभी भी हड़ताल नहीं होती, यही तकलीफ है। परमात्मा और हमारे बीच कभी ऐसी घटना नहीं घटती कि परमात्मा मौजूद न हो। अगर एक क्षण को भी परमात्मा गैर-मौजूद हो जाए, तो हमें पता चले।
मछली सागर में तैरती रहती है, उसे सागर का पता नहीं चलता। मछली को सागर से निकालकर रेत पर डाल दो, तब उसे पहली दफा पता चलता है कि सागर था। तब उसकी तड़फन, तब उसकी बेचैनी, तब उसके प्राणों का संकट खड़ा होता है, तब उसे पता चलता है कि जहां मैं थी, वह सागर था, वह मेरे प्राणों का आधार था। लेकिन आदमी को परमात्मा के बाहर निकालकर किसी भी रेत पर डालने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए आदमी को पता नहीं चलता कि वह परमात्मा में जी रहा है! यह अजीब सा लगेगा।
हम तो साधारणतः सोचते हैं कि परमात्मा बहुत दूर होना चाहिए, इसलिए हमें पता नहीं चलता है। वह बिल्कुल ही गलत है। दूर होता, तो पता हम चला ही

लेते। इतना निकट है, इसीलिए पता नहीं चलता। और निकटता इतनी सघन है कि कभी नहीं टूटी, इसलिए पता नहीं चलता।
दूरी कितनी ही बड़ी हो, पार की जा सकती है। और परमात्मा अगर दूर होता,
तो हमने पार कर लिया होता। और एक आदमी पार कर लेता, फिर तो हम पक्का रास्ता बना लेते। फिर कोई कठिनाई न थी। एक कृष्ण पहुंच जाते, एक बुद्ध पहुंच जाते, फिर क्या दिक्कत थी! फिर कोई कठिनाई न थी। चांद पर एक आदमी उतर गया, अब सिद्धांततः पूरी मनुष्यता उतर सकती है। अब यह कोई कठिनाई की बात नहीं रही, देर-अबेर की बात है। एक बार रास्ते का पता चल गया, तो कोई भी उतर सकता है। जापान की एक हवाई यात्रा कंपनी उन्नीस सौ पचहत्तर के लिए टिकट बेच रही है चांद के लिए! थ्योरेटिकली पासिबल हो गया, सिद्धांततः तो संभव हो गया; कोई अड़चन नहीं है। चांद पर आज नहीं कल कोई भी उतरेगा। एक आदमी उतर गया, तो कोई भी उतर जाएगा।
दूरी की यात्रा की एक खूबी है। दूरी की यात्रा में रास्ता बन जाता है।
एक आदमी पहुंच जाए, सब पहुंच सकते हैं। लेकिन परमात्मा और हमारे बीच दूरी न होने से रास्ता नहीं बन सकता। रास्ते के लिए दूरी जरूरी है। कुछ तो फासला हो, तो हम रास्ता बना लें।
इसलिए इतने लोग परमात्मा को पा लेते हैं, फिर भी रास्ता नहीं बन पाता बंधा हुआ कि जिस पर से फिर कोई भी धड़ल्ले से चला जाए। और फिर किसी को भी यह चिंता न रहे कि मुझे खोजना है। रास्ता पकड़ लिया, खोज पूरी हो ही जाएगी। ध्यान रहे, अगर रास्ता मजबूत हो, तो आपको सिर्फ चलना जानना जरूरी है। धर्म के मामले की कठिनाई यह है कि चलना तो सबको आता है, रास्ता नहीं है। और हर एक को रास्ता अपना ही बनाना पड़ता है। कोई दूसरे का रास्ता काम नहीं पड़ता। दूरी हो तो दूसरे के रास्ते काम पड़ते हैं, दूरी यहां बिल्कुल नहीं है। यहां इंचभर का फासला नहीं है।
यह बहुत पैराडाक्सिकल, विरोधाभासी दिखाई पड़ेगा। जब दूरी होती है, तो
हम पहुंच सकते हैं चलकर। और जब दूरी बिल्कुल न हो, तो हम पहुंच सकते हैं रुककर; चलकर नहीं पहुंच सकते। अगर मुझे आपके पास आना है, तो मैं चलकर आऊंगा। और अगर मुझे मेरे ही पास आना है, तो चलना फिजूल है। और अगर मैं मेरे ही पास पहुंचने के लिए चलता हूं, तो उसका मतलब, मैं पागल हूं। कोई आदमी कहे कि मैं मेरे ही पास जाने के लिए दौड़ रहा हूं, तो आप कहेंगे, वह पागल है। क्योंकि दौड़ तो और दूर ले जाएगी, पास कैसे लाएगी? पास आना हो तो सब दौड़ छोड़ देनी पड़ती है।
लेकिन यही सबसे बड़ी कठिनाई है, यह सरलता, परमात्मा का निरंतर मौजूद होना। यह भाषा में फिर भी गलत है कहना कि वह हमारे पास है, क्योंकि पास का मतलब भी थोड़ी दूरी तो होती ही है। हम वही हैं! फिर भी भाषा में दो हो जाते हैं, मैं और वह।
इसलिए ज्ञानियों ने या तो कहा कि मैं ही हूं, अहं ब्रह्मास्मि! और या कहा कि तू ही है। या तो मैं ही हूं, और या तू ही है। क्योंकि दो का उपयोग करने में फिर थोड़ा सा फासला बनता है। उतना फासला भी नहीं है।
कृष्ण का यह कहना कि सारे अस्तित्व में, होने मात्र में, मैं ही समाया हुआ हूं, इन बहुत-सी बातों की सूचना है। जिसे भी खोजना हो उसे, उसे खोजने की भूल में नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि उसे हमने कभी खोया नहीं है। जिसे हम खो दें, उसे खोज भी सकते हैं। लेकिन परमात्मा को खोने का कोई उपाय नहीं है। आप परमात्मा को खो नहीं सकते हैं।
अगर परिभाषा की तरह से कहा जाए, तो परमात्मा का अर्थ है, आपका वह हिस्सा, जिसे आप खो नहीं सकते। जो-जो हिस्से आप खो सकते हैं--शरीर आप खो सकते हैं। मन आपका कल बदल सकता है, खो सकते हैं। आंखें कल आपकी फूट सकती हैं; इंद्रियां खो सकते हैं। होश भी, जिसको हम होश कहते हैं, वह भी खो सकता है; कल आप बेहोश हो सकते हैं। लेकिन जिसे आप खो ही नहीं सकते, वही परमात्मा है आपके भीतर। आपका होना, बीइंग, आपका अस्तित्व, वह आप नहीं खो सकते। जो नहीं खोया जा सकता, वही परमात्मा है।
तब तो यह मतलब हुआ कि हम उसे खोज रहे हैं, तो हम गलती कर रहे हैं। निश्चित ही! खोजने से कोई उसे पाता नहीं। खोजने से सिर्फ एक ही बात पता

चलती है कि खोज व्यर्थ थी। खोजने से सिर्फ हम थकते हैं और रुकते हैं।
लेकिन जिस दिन हम थकते हैं और रुकते हैं, उसी दिन उसे पा लेते हैं।
तो खोज का एक उपयोग है, नकारात्मक। उससे व्यर्थता पता चल जाती है।
दौड़ना, जाना, कहीं पाने की कोशिश, वह सब व्यर्थ हो जाती है। जिस दिन हम इस हालत में आ जाते हैं कि न कुछ पाने को है, न कुछ खोजने को है, न कहीं जाने को है, और भीतर सारी गति शून्य हो जाती है, उसी क्षण हम उसे पा लेते हैं, क्योंकि उसे हम पाए ही हुए हैं। वह हमारा अस्तित्व है।
हे परंतप, मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है। यह तो मैंने अपनी विभूतियों का विस्तार तेरे लिए संक्षेप से कहा है।
ये जो इतने-इतने प्रतीक कृष्ण ने लिए और अर्जुन को इतने-इतने मार्गों
से इशारा किया, वे कहते हैं, यह तो बहुत संक्षिप्त में मैंने तुझे कुछ इशारे किए हैं। मेरी दिव्य विभूतियों का कोई अंत नहीं है।
जिसका अंत हो जाए, वह विभूति नहीं है। जिसका अंत हो जाए, वह दिव्य भी नहीं है। जिन-जिन चीजों का अंत होता है, वे-वे चीजें सांसारिक हैं। और जिन-जिन का प्रारंभ होता है, वे भी चीजें सांसारिक हैं। दिव्य से अर्थ ही वही है कि जिसका न कोई प्रारंभ है और न कोई अंत है; जिसका हम खोज नहीं सकते कि कब प्रारंभ हुआ और जिसकी हम खोज नहीं कर सकते कि कब समाप्त होगा।
इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारी खोज छोटी है। नहीं, हम कितना ही खोजें, जिसका स्वभाव ही अनादि और अनंत होना है, वही दिव्यता है, वही डिवाइननेस है।
इस जगत में जहां-जहां हमें प्रारंभ मिल जाता हो और अंत मिल जाता हो, समझ लेना कि वहां-वहां संसार है। और जहां प्रारंभ न मिलता हो और अंत न मिलता हो किसी बात का, वहीं-वहीं समझना कि परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हुई।
लेकिन हम तो परमात्मा को भी वस्तुओं की तरह देखना चाहते हैं। हम तो चाहते हैं, परमात्मा भी सामने खड़ा हो जाए, तभी हम मानें। नास्तिक यही कहता है कि कहां है तुम्हारा ईश्वर? उसे सामने कर दो; हम मान लें। उसका प्रश्न सार्थक मालूम होता है, लेकिन बिल्कुल ही व्यर्थ है। क्योंकि वह ईश्वर शब्द की परिभाषा भी नहीं समझ पाया।
ईश्वर से अर्थ ही उसका है कि जिसका कोई प्रारंभ नहीं, अंत नहीं, जिसका कोई रूप नहीं, जिसका कोई गुण नहीं, फिर भी जो है। और जितने भी गुण हैं और जितने भी आकार हैं, और जितने भी रूप हैं, सबके भीतर है।
एक फूल मैं आपको दूं और कहूं कि सुंदर है। फूल तो मैं आपको दे सकता हूं, फूल की परिभाषा भी हो सकती है, लेकिन सौंदर्य की परिभाषा में कठिनाई खड़ी हो जाएगी। और आप सब जानते हैं कि सौंदर्य क्या है। लेकिन अगर कोई पूछ लेगा, तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। आप बता न पाएंगे कि सौंदर्य क्या है। सबको अनुभव है कि सौंदर्य क्या है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसने कभी सौंदर्य का अनुभव न किया हो। कभी उगते हुए सूरज में, कभी डूबते हुए चांद में, कभी किसी फूल में, कभी किन्हीं आंखों में, कभी किसी चेहरे में, कभी किसी शरीर के अनुपात में, कभी किसी ध्वनि में, कभी किसी गीत की कड़ी में, कहीं न कहीं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने सौंदर्य का अनुभव न किया हो। लेकिन अब तक, प्लेटो से लेकर बर्ट्रेंड रसेल तक, सौंदर्य के संबंध में निरंतर चिंतन करने वाले लोग एक परिभाषा भी नहीं दे पाए हैं कि सौंदर्य क्या है!
संत अगस्तीन ने कहा है कि कुछ चीजें ऐसी हैं कि जब तक तुम नहीं पूछते, मैं जानता हूं; और तुम पूछते हो कि मुश्किल खड़ी हो जाती है। उसने कहा कि मैं भलीभांति जानता हूं कि प्रेम क्या है, लेकिन तुम पूछो और मैं मुश्किल में पड़ा। मैं भलीभांति जानता हूं कि समय, टाइम क्या है, लेकिन तुमने पूछा कि मैं मुश्किल में पड़ा।
परमात्मा इनमें सबसे गहरी मुश्किल है, सबसे बड़ी मुश्किल है। समय और प्रेम और सौंदर्य और सत्य, शुभ, ये सब अलग-अलग मुश्किलें हैं। इनकी कोई की परिभाषा नहीं हो पाती।

जार्ज ई.मूर ने--इस समय पिछले पचास वर्षों में, पश्चिम में जो सबसे ज्यादा तर्कयुक्त बुद्धि का विचारक था, श्रेष्ठतम, और पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में दो-चार आदमी उतनी तीव्र प्रतिभा के खोजे जा सकते हैं-- जी.ई.मूर ने एक किताब लिखी है, प्रिंसिपिया इथिका; नीति-शास्त्र। और दो-ढाई सौ पेजों में सिर्फ एक ही सवाल पर चिंतन किया है, व्हाट इ.ज गुड? शुभ क्या है? अच्छाई क्या है?
और दो सौ, ढाई सौ पेजों में जी.ई.मूर की हैसियत का बुद्धिमान आदमी इतनी मेहनत किया है, इतनी बारीक मेहनत किया है कि शायद मनुष्यों में कभी किसी मनुष्य ने ऐसी मेहनत शुभ के बाबत नहीं की है। और आखिर में नतीजा यह है, आखिरी जो निष्कर्ष है, वह यह है, मूर कहता है, गुड इ.ज इनडिफाइनेबल, वह जो शुभ है, उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती! ढाई सौ पेज सिर्फ इस छोटे-से सवाल पर कि शुभ क्या है? और नतीजा--जी. ई.मूर की हैसियत के आदमी का--कि शुभ की व्याख्या नहीं हो सकती!
और उसने कहा कि ऐसा ही मामला है, जैसे कोई मुझे एक फूल दे दे और मैं कहूं कि यह पीला फूल है और वह मुझसे पूछे, व्हाट इ.ज यलो? पीला क्या है? तो जैसी मैं मुश्किल में पड़ जाऊं, ऐसी मुश्किल में पड़ गया हूं।
आपसे भी कोई पूछे कि पीला क्या है, तो आप क्या कहेंगे? मूर ने तो कहा है, यलो इ.ज यलो, पीला पीला है। और ज्यादा कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन यह भी कोई कहना हुआ कि पीला पीला है! यह कोई बात हुई? तर्कशास्त्री कहते हैं, टॉटोलाजी है, यह तो पुनरुक्ति हो गई। आपने कहा, यलो इ.ज यलो। इसमें क्या मतलब हुआ, वह तो हमें पता ही था। आपने कोई नई बात नहीं कही। कहिए कि व्हाट इ.ज यलो?
तो मूर कहता है, कैसे कहें! क्योंकि अगर मैं कहूं लाल, पीला लाल है, तो गलत बात है। क्योंकि लाल लाल है। अगर मैं कहूं, पीला हरा है, तो भी गलत बात है; क्योंकि हरा हरा है! मैं पीले को और क्या कहूं पीले के सिवाय? जो भी मैं कहूंगा, वह गलत होगा। क्योंकि अगर वह पीला ही होगा, तो तुम कहोगे, पुनरुक्ति हो गई। और अगर वह पीला न होगा, तो वह परिभाषा नहीं बनाएगा
इतनी छोटी-छोटी चीजों की भी हम परिभाषा नहीं कर पाते। लेकिन परमात्मा
की हम परिभाषा पूछते हैं कि परमात्मा क्या है? पीला रंग क्या है, इसकी परिभाषा नहीं खोजी जा पाती। शुभ क्या है, पता नहीं चलता। सौंदर्य क्या है, पता नहीं चलता। पूछते हैं, परमात्मा क्या है?
ये सब जो इनडिफाइनेबल्स हैं, ये जो सब अपरिभाष्य हैं, दि टोटेलिटी आफ
आल इनडिफाइनेबल्स इ.ज गॉड। यह जो सब अपरिभाष्य है, इन सबका जो जोड़ है, वही ईश्वर है।
इसलिए बुद्ध तो किसी गांव में जाते थे, तो उनका एक शिष्य गांव में घंटा बजाकर खबर कर आता था कि बुद्ध ने ग्यारह प्रश्न तय किए हैं, कोई पूछे न। ईश्वर क्या है, यह पूछे न। ग्यारह प्रश्नों में जितने भी अपरिभाष्य हैं, वे सब बुद्ध ने तय कर रखे थे। वे कहते थे, इनको छोड़कर कुछ भी पूछो। ये पूछो ही मत।
अनेक लोग उनसे पूछते कि यही तो पूछने योग्य मालूम पड़ते हैं और आप इन्हीं पर रोक लगा देते हैं! फिर पूछने को कुछ बचता नहीं! ईश्वर मत पूछो, आत्मा मत पूछो, मोक्ष मत पूछो, यह कुछ पूछो ही मत। इन ग्यारह में, आपके सारे दार्शनिक सवालों को बुद्ध अलग कर देते थे। तो हम क्या पूछें?
तो बुद्ध कहते थे, बेहतर हो कि तुम पूछो कि ईश्वर कैसे पाया जा सकता है! पूछो कि ईश्वर कैसे जाना जा सकता है! पूछो कि ईश्वर कैसे हुआ जा सकता है! यह मत पूछो कि ईश्वर क्या है!
इसका मतलब आप समझे? ईश्वर की हम व्याख्या नहीं कर सकते, लेकिन अनुभव
कर सकते हैं। सौंदर्य की हम व्याख्या नहीं कर सकते, अनुभव हम रोज करते हैं। फूल खिलता है और हम कहते हैं, सुंदर है। और छोटा-सा बच्चा भी पूछ ले कि सौंदर्य यानि क्या? क्या मतलब सौंदर्य से? कहां है सौंदर्य इस फूल में, मुझे बताओ! हाथ रखकर, अंगुली रख दो कि यह रहा सौंदर्य।
आप पंखुड़ी पर अंगुली रखेंगे, तो लगेगा, यह भी कोई सौंदर्य हुआ! आप पूरे फूल को भी मुट्ठी में ले लेंगे, तो भी क्या आप समझते हैं, आपने सौंदर्य को

मुट्ठी में ले लिया! आप कहां से बताएंगे कि सौंदर्य यह रहा! आप उस बच्चे को कहेंगे, सौंदर्य एक अनुभव है। हो तो हो, न हो तो न हो।
और फूल से सौंदर्य का कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि कल सुबह आप कहेंगे, बड़ा सुंदर सूरज निकल रहा है। बच्चा पूछेगा कि फूल में और सूरज में कोई संबंध तो मालूम नहीं होता! कल फूल को सुंदर कहते थे, आज सूरज को सुंदर कहने लगे! कुछ तो समझ का उपयोग करो! और परसों आप कहेंगे किन्हीं आंखों में देखकर कि आंखें बड़ी सुंदर हैं। तो वह बच्चा कहेगा, अब आप बिल्कुल पागल हुए जा रहे हैं। परसों फूल को कहा था सौंदर्य। कल सूरज को कहा था सौंदर्य। आज आंखों को कहने लगे सुंदर हैं! सौंदर्य क्या है?
अगर इन तीनों में है, तो इसका मतलब हुआ कि फूल से वह समाप्त नहीं होता। सूरज पर समाप्त नहीं होता। आंखों में समाप्त नहीं होता। अगर इन तीनों में है, तो तीनों जैसा नहीं है और फिर भी तीनों के भीतर कहीं छिपा है। तीनों में अनुभव होता है और हृदय एक-सा आंदोलित होता है। लेकिन कहां फूल और कहां सूरज और कहां आदमी की आंखें! इनमें कोई संबंध दिखाई नहीं पड़ता। कोई अदृश्य फूल में भी मौजूद है, जिसे आप सौंदर्य कहते हैं। कोई अदृश्य आंख में भी मौजूद है, जिसे आप सौंदर्य कहते हैं। दोनों में कहीं कोई मेल है।
अल्बर्ट आइंस्टीन तो बड़ा गणितज्ञ था, लेकिन उसने विवाह जिससे किया, फ्रा आइंस्टीन से, वह एक कवि स्त्री थी। यह बड़ा कठिन जोड़ है। ऐसे तो पति- पत्नी के सभी जोड़ बड़े कठिन होते हैं! लेकिन यह और भी कठिन जोड़ था। दुर्घटना से ही कभी ऐसा होता है कि पति-पत्नी का जोड़ कठिन न हो, सामान्यतया तो कठिन होता ही है। लेकिन यह आइंस्टीन का जोड़ तो और मुश्किल था। आइंस्टीन तो सिर्फ गणित की भाषा ही समझता था। और कविता और गणित की भाषा में जितना फासला हो सकता है, उतना किस भाषा में होगा?
फ्रा ने, उसकी पत्नी ने, शादी के बाद जो पहला काम चाहा, वह यह कि आइंस्टीन को कुछ अपनी कविता सुनाए। उसने एक गीत लिखा था, उसने उसे सुनाया। आइंस्टीन आंख बंद करके बैठ गया। फ्रा ने समझा कि वह बहुत चिंतन कर रहा है उसके गीत पर। आखिर उसने आंख खोली और उसने कहा कि यह पागलपन है, दुबारा मुझे मत इस तरह की बात बताना। उसकी पत्नी ने कहा, पागलपन! आइंस्टीन ने कहा, मैंने बहुत सोचा... ।
क्योंकि फ्रा ने एक प्रेम का गीत लिखा था, जिसमें उसने अपने प्रेमी को, अपने प्रेमी या प्रेयसी के भाव को, चेहरे को, चांद से तुलना की थी। आइंस्टीन ने कहा, मैंने बहुत सोचा। चांद और आदमी के चेहरे में कोई भी संबंध नहीं है। कहां चांद, पागल! अगर आदमी के ऊपर रख दो, तो आदमी का पता ही न चले, अगर उसका सिर बना दो तो। और चांद के सौंदर्य का मैं सोचता हूं, तो वहां तो सिवाय खाई-खड्ड के और कुछ है नहीं। आदमी के चेहरे से चांद का क्या संबंध है?
फ्रा ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैंने समझ लिया कि हम दो अलग जातियों के प्राणी हैं और यह बातचीत आगे चलानी उचित नहीं है। यह बंद ही कर देनी चाहिए। यह विषय ही उठाना ठीक नहीं है। क्योंकि अगर सिद्ध करने जाओ, तो आदमी के चेहरे और चांद में कोई संबंध नहीं सिद्ध हो सकता। लेकिन फिर भी कभी कोई चेहरा चांद की याद दिलाता है। और कभी चांद किसी चेहरे की भी याद दिलाता है। लेकिन वह कोई और ही बात है सौंदर्य की। उसका गणित से कोई संबंध नहीं है, माप से कोई संबंध नहीं है।
ईश्वर को जब भी हम मापने चलते हैं, तभी हम आकार देते हैं। और जब भी हम पूछते हैं, कहां है ईश्वर? कैसा है ईश्वर? क्या है उसका रूप? क्या है उसका रंग? क्या है उसकी आकृति? तब हम गलत सवाल पूछ रहे हैं। सब आकृतियां जिसकी हैं, और सब रूप जिसके हैं, वही है ईश्वर।
इसे हम ऐसा समझें कि आप सागर के किनारे खड़े हो जाएं। आपने सागर कभी देखा न होगा। आप कहेंगे, बिल्कुल कैसी पागलपन की आप बात कर रहे हैं! हम सब सागर के किनारे ही रहने वाले लोग, सागर हम रोज देखते हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, सागर आपने कभी नहीं देखा। सिर्फ आपने सागर के ऊपर की उठती हुई लहरें देखी हैं। लहरें सागर नहीं हैं। लहरों में सागर है; लहरें सागर नहीं

हैं। क्योंकि सागर बिना लहरों के भी हो सकता है, लहरें बिना सागर के नहीं हो सकतीं।
लेकिन आप लहरों को देखकर लौट आते हैं और सोचते हैं, सागर को देखकर लौट आए। हर लहर में सागर है, सब लहरों में सागर है। लेकिन सागर लहरों के पार भी है, लहरों से गहरा भी है। लहरें सागर के ऊपर ही डोलती रहती हैं। सागर बहुत बड़ा है। हमने लहरें ही देखी हैं। इसलिए कोई यह भी पूछ सकता है कि किस लहर को आप सागर कहते हैं?
हमने आदमी देखे हैं। पौधे देखे हैं। पशु देखे हैं। पक्षी देखे हैं।
हम पूछते हैं कि किसको आप भगवान कहते हैं? कौन है ईश्वर?
ये सब लहरें हैं उसी एक सागर की। इन सबके भीतर जो है, इन सबके नीचे जो है, जिस पर ये लहरें उठती हैं और जिसमें ये लहरें विलीन हो जाती हैं, वह सागर परमात्मा है। वह हमने नहीं देखा; हम लहरें ही देख पाते हैं।
मैं आपको देखता हूं, लेकिन उसको नहीं देखता, जो आपके पहले भी था; आपके भीतर भी है अभी; और कल आप गिर जाएंगे, तब भी होगा। आप तो सिर्फ एक लहर हैं, जो उठी जन्म के दिन और गिरी मृत्यु के दिन; और कभी जवान थी और आकाश को छूने का सपना देखा। आप सिर्फ एक लहर हैं। लेकिन जब आप नहीं थे, आपकी आकृति नहीं थी, तब भी आप सागर में थे। और कल आपकी आकृति गिरकर लीन हो जाएगी, तब भी आप सागर में होंगे। सागर सदा होगा।
जो सदा है, वही परमात्मा है। जो कभी है, वही लहर है; और कभी नहीं हो जाता है। इसलिए परमात्मा को तो यह भी कहना ठीक नहीं है कि वह है। क्योंकि जितनी चीजों को हम कहते हैं है, वे सभी नहीं हो जाती हैं। सभी नहीं हो जाती हैं। जिसको भी हमने कहा है। कल वह नहीं हो जाएगी। और परमात्मा कभी भी नहीं नहीं होता। तो हमारा है शब्द भी बहुत छोटा पड़ जाता है।
इसलिए बुद्ध ने तो कहा कि मैं वक्तव्य ही न दूंगा। क्योंकि वक्तव्य देता हूं, तो भूल हो जाती है। अगर मैं कहूं, ईश्वर नहीं है, तो भी गलत है। और अगर मैं कहूं, ईश्वर है, तो भी गलत है। इसलिए उचित है कि मैं चुप ही रहूं, कुछ भी न कहूं।
अगर कोई आपसे सागर के किनारे पूछने लगे कि सागर किस लहर जैसा है? तो आप
भी सोचेंगे कि उचित है, चुप ही रहूं, जवाब न दूं। अगर आप यह कहें कि इस लहर जैसा है, तो भी गलती हो जाती है। अगर आप कहें कि सब लहरों जैसा है, तो भी गलती हो जाती है। क्योंकि सब लहरों से बड़ा है। और अगर आप कहें, किसी लहर जैसा नहीं, तो भी गलती हो जाती है, क्योंकि सभी लहरों में वही है। यह है तकलीफ।
कृष्ण कहते हैं, मेरे विस्तार का कोई अंत नहीं है। तो संक्षेप में तुझे कुछ लहरों के प्रतीक मैंने दिए हैं। उन लहरों के प्रतीक से भी अगर तू नीचे झांकेगा, तो तू सागर में पहुंच जाएगा।
लेकिन खतरा एक है। अगर आप लहर में डुबकी लगाएं, तो आप सागर में पहुंच जाएं। लेकिन अगर किनारे पर बैठकर लहर का चिंतन करें, तो आप कभी सागर में नहीं पहुंच सकते। और हम सब लहर का चिंतन करते हैं। और सोचते हैं कि चिंतन करते-करते कभी तो सागर में पहुंच जाएंगे। डुबकी लगानी पड़ेगी। लहर में डुबकी लगानी पड़ेगी।
कृष्ण ने जो प्रतीक दिए हैं, अगर किसी में भी डुबकी लग जाए, तो परमात्मा से संबंध जुड़ जाए। लेकिन अगर आप बैठकर चिंतन करने लगें, तो आप किनारे पर बैठ गए। विचार किनारा है जगत का। अनुभूति, कहें ध्यान, कहें समाधि, छलांग है सागर में।
इसलिए हे अर्जुन, जो-जो भी विभूतियुक्त, ऐश्वर्ययुक्त, कांतियुक्त, शक्तियुक्त है, उस-उस को तू मेरे तेज के अंश से उत्पन्न जान।
जहां-जहां तुझे कोई अभिव्यक्ति अपनी चरम स्थिति को छूती हुई मालूम पड़े, कोई शिखर जहां गौरीशंकर बन जाता हो, कोई फूल जहां पूरा खिल जाता हो; जहां भी तुझे लगे ऐश्वर्य, जहां भी तुझे लगे कांति, जहां भी तुझे लगे विभूति, जहां भी तुझे लगे कि कुछ असाधारण घटित हुआ है, जहां भी तुझे लगे कि कोई चीज अपनी चरमता को पहुंच गई, अपनी ऊंचाई को छू ली... ।

अमेरिका के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक इरिक फ्रोम ने एक शब्द ईजाद किया है, और प्रचलित हो गया है और कीमती शब्द है। इरिक फ्रोम ने कहा है कि जहां भी पीक एक्सपीरिएंस, कोई शिखर अनुभव हो, वहीं व्यक्तित्व उस रहस्यमय के करीब पहुंचता है। पीक एक्सपीरिएंस! कोई भी अनुभव जहां शिखर पर हो, जहां से आपको लगे कि इसके पार जाना कहां संभव है, जहां आपको लगे कि इसके पार नहीं जाया जा सकता, वहीं आप समझना... ।
एक घटना आपसे कहूं, तो ख्याल में आए।
अकबर को निरंतर लगता था कि तानसेन से पार जाना, संगीत में, असंभव है।
था भी। ऐश्वर्य था वहां, जैसे तानसेन की अंगुलियों से ईश्वर बरसता हो।
तानसेन से और आगे भी कोई जा सकता है, इसकी कल्पना भी तो मुश्किल है। यह इनकंसीवेबल है। इसकी धारणा नहीं बनती।
अकबर ने एक दिन तानसेन को आधी रात विदा करते वक्त सीढ़ियों पर कहा कि तानसेन, बहुत बार मन में ऐसा होता है, तुझसे पार जाना असंभव है, कल्पना भी नहीं कर पाता हूं। कभी सपने में भी मैं सुनता हूं संगीत, तो भी तुझसे फीका होता है। सपने में भी तुझसे ऊपर नहीं जा पाता। आज अचानक तुझे सुनते-सुनते एक अजीब-सा ख्याल मेरे मन में आया कि तेरा भी तो कोई गुरु होगा। तूने शायद किसी से सीखा हो। अगर तूने सीखा है, तो एक बार तेरे गुरु के दर्शन की इच्छा मन में पैदा हो गई है। कौन जाने, तेरा गुरु तुझसे आगे जाता हो!
तानसेन ने कहा, बड़ी मुश्किल बात है। गुरु मेरे हैं। पर बड़ी मुश्किल बात है। अकबर ने कहा, क्या मुश्किल है? कुछ भी खर्च करना पड़े, हम अपने खजाने लुटाने को तैयार हैं, लेकिन तेरे गुरु को सुनना होगा। तानसेन ने कहा, यही मुश्किल है, कि मेरे गुरु को दरबार में नहीं लाया जा सकता। कोई कीमत नहीं है जिससे दरबार में लाया जा सके। ऐसा नहीं है कि वे कोई जिद्दी हैं या अहंकारी हैं। झोपड़े में भी चले जाते हैं, यहां भी आ जाएंगे। तो अकबर ने कहा, फिर क्या कठिनाई है? तानसेन ने कहा, कठिनाई यह है कि चेष्टा से, प्रयत्न से, वे कभी वाद्य नहीं छूते हैं। जब उनके प्राण ही आंदोलित होते हैं, तभी छूते हैं। कभी! कुछ कहा नहीं जा सकता। सहज स्फुरणा जब उन्हें होती है तभी। कोई फरमाइश नहीं हो सकती है। कहा नहीं जा सकता कि आप बजाइए, कि आप गाइए।
अकबर ने कहा, फिर क्या रास्ता है? तो उसने कहा, मैं पता लगाऊंगा। क्योंकि कभी-कभी वे सुबह ब्रह्ममुहूर्त में प्रभु की स्तुति करते हैं; कभी। तो हम झोपड़े के पीछे छिप जाएं उनके। क्योंकि वे तो एक फकीर हैं। उनका नाम था हरिदास, वे एक फकीर थे। जमुना के किनारे रहते हैं झोपड़े में। हम पीछे छिप जाएं आधी रात चलकर। पता नहीं, चार बजे, तीन बजे, पांच बजे, कब वे बजाएं, तो हम सुन लें।
संभवतः कभी दुनिया के इतिहास में कोई सम्राट किसी फकीर को ऐसा चोरी
से सुनने नहीं गया। अकबर गया। रात दो बजे से वे झोपड़ी के बाहर छिपकर अंधेरे में बैठे रहे। एक-एक क्षण मुश्किल था। कोई चार बजे हरिदास ने अपनी वीणा बजानी शुरू की। अकबर के आंसू ठहरते ही नहीं हैं। वीणा बंद हो गई और अकबर को फिर भी सुनाई पड़ती रही!
फिर तानसेन ने हिलाया कि बहुत समय हो गया, वीणा तो बंद हो चुकी। अब हम चलें भी। और अब जल्दी ही सूरज निकलने के करीब है। लेकिन अकबर उठकर ऐसा ही चलने लगा, जैसे अभी भी खोया हो किसी और ही लोक में। रास्तेभर वह तानसेन से नहीं बोला। सीढ़ियां चढ़ते अपने महल के उसने तानसेन से कहा कि यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। मैं तो सोचता था, तेरा कोई मुकाबला नहीं है। लेकिन अब मैं सोचता हूं, तेरे गुरु से तेरा क्या मुकाबला! तू कुछ भी नहीं है। क्यों इतना अंतर है लेकिन? इतना फर्क क्यों है?
तो तानसेन ने कहा, फर्क बहुत साफ है। सीधा उसका गणित है। मैं कुछ पाने
के लिए बजाता हूं। और उन्होंने कुछ पा लिया है, इसलिए बजाते हैं। मैं कुछ पाने के लिए बजाता हूं। मेरा बजाना एक व्यवसाय है। मेरी नजर तो उस पुरस्कार पर होती है, जो बजाने के बाद मुझे मिलेगा। मेरा धंधा है। उनके लिए संगीत आत्मा है। कुछ पाने को नहीं बजाते। कुछ पाने को उन्हें है भी नहीं। लेकिन जो पा लिया है भीतर, कभी-कभी वही ओवरफ्लो, कभी वही ऊपर से बहने

लगता है और संगीत बन जाता है। कभी-कभी वही जो भीतर अतिरेक से हो जाता है, वही उनका संगीत बन जाता है।
अकबर ने तानसेन से कहा कि पहली दफा मैंने संगीत में ऐश्वर्य देखा है,
दि पीक, शिखर देखा है।
कृष्ण कहते हैं, जहां-जहां ऐश्वर्य है, जहां-जहां अभिव्यक्ति अपनी आखिरी चोटी को छू लेती है, वहीं-वहीं मैं हूं, वहीं-वहीं मेरा ही अंश प्रकट होता है।
इसे ठीक से समझ लेना। इसका अर्थ यह हुआ, जैसे सूरज किसी से कहे... । क्योंकि सूरज को सीधा देखना बहुत मुश्किल है। दस करोड़ मील दूर है सूरज, फिर भी हम आंख गड़ाकर देख नहीं सकते, आंखें मुश्किल में पड़ जाती हैं। अगर सूरज के सामने ही खड़े हों, तो आंखें अंधी हो जाएंगी। यह बड़े मजे की बात है। सूरज के बिना सारी पृथ्वी पर अंधेरा हो जाता है। सूरज के बिना हम सब अंधे हो जाते हैं। और सूरज को सामने से देखें, तो भी हम अंधे हो जाएंगे। सूरज को सीधा नहीं देखा जा सकता।
लेकिन कोई आदमी सूरज के सामने खड़ा हो, सूरज को तो देख नहीं सकता सीधा, आंखें बंद हो जाएंगी। करीब-करीब अर्जुन वैसे ही कृष्ण के सामने खड़ा है। वह भी नहीं देख पा रहा है। वह भी नहीं देख पा रहा है कि कौन सामने है, किससे वह पूछ रहा है, किससे वह समझ रहा है। वह भी नहीं देख पा रहा है, वह भी नहीं समझ पा रहा है। ठीक है, मित्र है, बुद्धिमान है, आदर योग्य है, और कभी-कभी किसी क्षण में रहस्यपूर्ण है। कुछ जानता है। सीखा जा सकता है उससे। लेकिन अभी वह सूर्य नहीं दिखाई पड़ रहा है जो कृष्ण हैं। वे आंखें बंद हैं।
वह पूछता है कि मैं कहां-कहां आपको देखूं? जो सामने खड़ा है, वहां न देखकर वह पूछता है, कहां-कहां आपको देखूं? जैसे कोई सूरज से पूछे, तो सूरज कहे, जहां-जहां कोई दीया तुझे दिखाई पड़े, जो अंधेरे को तोड़ता हो, तो जानना कि वहां-वहां मैं हूं। तो जहां-जहां भी कोई दीया चमके और भभककर प्रकाश कर दे, वहां-वहां समझना, मेरी ही ज्योति है, मेरा ही तेज है।
यह जो कृष्ण कहते हैं, जहां-जहां ऐश्वर्य तुझे दिखाई पड़े... । अगर ईश्वर नहीं दिखाई पड़ता, तो बेहतर है कि तू ऐश्वर्य को देख। अगर सूरज नहीं दिखाई पड़ता, तो बेहतर है कि तू प्रकाश को देख। जहां-जहां तुझे चमकदार प्रकाश दिखाई पड़े, समझना कि मेरा ही अंश, मेरा ही तेज प्रकट हो रहा है।
सूरज का तेज तो हम देख सकते हैं दीयों में, वह बड़ी कठिन बात नहीं है। छोटे-से आपके घर में भी दीए की जो ज्योति जलती है, वह सूरज का ही हिस्सा है। वह सूरज का ही हिस्सा है।
एकदम से समझना कठिन होगा। अगर आप मिट्टी का तेल जला रहे हैं, तो आपको पता नहीं होगा कि मिट्टी का तेल निर्मित इसीलिए हुआ है कि लाखों-लाखों साल में पृथ्वी के द्रव्यों ने सूरज की किरणों को पीया है। और वे ही किरणें आपको वापस आपके मिट्टी के तेल से आपके दीए में वापस उपलब्ध हो जाती हैं। जब आप एक लकड़ी को रगड़कर जलाते हैं--जैसा कि पुराने जमाने में रिवाज था--दो लकड़ियों को रगड़कर या दो चकमक पत्थरों को रगड़कर आप जब किरण पैदा करते हैं, तो आपको ख्याल न होगा, अरबों-अरबों वर्षों में पत्थर सूरज को पी गए हैं। वही पुनः प्रज्वलित हो जाता है।
लकड़ी के भीतर भी सूरज छिपा है और आपके भीतर भी। जहां भी ज्योति है, वहां सूरज की किरण है। वह कब पी ली गई होगी, यह दूसरी बात है। कब छिप गई होगी, यह दूसरी बात है। लेकिन वह सूरज की किरण है। सूरज प्रतिपल अपनी रोशनी दे रहा है। वह हजारों-हजारों जगह इकट्ठी हो रही है, संगृहीत हो रही है। वही रोशनी आप पुनः पा लेते हैं।
लेकिन सूरज को सीधे देखना मुश्किल है। दीए को आप मजे से सीधा देख सकते हैं। दीया बहुत अंश में सूरज है, लेकिन तेज उसका ही है।
तो कृष्ण कहते हैं, जहां-जहां ऐश्वर्य, जहां-जहां विभूति, जहां-जहां कांति, जहां-जहां शक्ति दिखाई पड़े, वहां-वहां मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न है, ऐसा तू जानना।
जो शब्द चुने हैं, एक तो है ऐश्वर्य, विभूति, कांति, शक्ति, वे सब संयुक्त हैं। शक्ति का अर्थ है, ऊर्जा, एनर्जी। एक छोटे-से बच्चे में

शक्ति दिखाई पड़ती है। एक बूढ़े में शक्ति क्षीण हो गई होती है, उस अर्थों में जैसी बच्चे में दिखाई पड़ती है।
इसलिए जो शक्ति की खोज कर रहे हों, बेहतर है कि बच्चे में खोजें, बूढ़े में खोजने न जाएं। वहां शक्ति तो क्षीण होने लगी है। जो शक्ति की खोज कर रहे हों, बेहतर है कि सुबह के सूरज में खोजें, सांझ के सूरज में खोजने न जाएं, क्योंकि वहां तो ढलने लगा सब। शक्ति तो जितनी नई हो, उतनी तीव्र और गहन होती है। जो शक्ति को खोजने चलेंगे, उनके लिए बच्चे ईश्वरीय हो जाएंगे; वहां शक्ति अभी नई है, अभी फव्वारे की तरह फूटती हुई है। अभी उबलता हुआ है वेग, अभी सागर की तरफ दौड़ेगी यह गंगा। अभी यह गंगोत्री है, छोटी है, लेकिन विराट ऊर्जा से भरी है।
यह बड़े मजे की बात है। गंगोत्री में जितनी शक्ति है, उतनी जब गंगा सागर में गिरती है, तब नहीं होती है। बड़ी तो हो जाती है गंगा बहुत, लेकिन बूढ़ी भी हो जाती है। विशाल तो हो जाती है, लेकिन शक्ति का विशालता से कोई संबंध नहीं है। शक्ति तो, सच है कि जितना छोटा अणु हो, उतनी गहन होती है। इसलिए आज विज्ञान अणु में सर्वाधिक शक्ति को उपलब्ध कर पाया है। परमाणु में, क्षुद्र परमाणु में, अति क्षुद्र परमाणु में, उसमें जाकर शक्ति का स्रोत मिला है।
छोटे-से बच्चे में भी, पहले दिन के बच्चे में जो शक्ति है, फिर वह रोज
कम होती चली जाएगी। शक्ति को देखना हो, तो नए में खोजना। इसलिए जो भी समाज नए होते हैं, वे बच्चों का आदर करते हैं। जो समाज शक्तिशाली होते हैं, वे बच्चों का आदर करते हैं, सम्मान करते हैं।
लेकिन अगर ऐश्वर्य खोजना हो, तो बूढ़े में खोजना, वृद्ध में खोजना। क्योंकि ऐश्वर्य अनुभव का निखार है, वह बच्चे में कभी नहीं होता। उसमें शक्ति होती है अदम्य। लेकिन अगर ऐश्वर्य खोजना हो, तो वह वृद्ध में खोजना। रवींद्रनाथ ने कहा है कि जब सच में ही कोई आदमी वृद्ध होता है--सच में!
हम सब भी बूढ़े होते हैं, लेकिन हमारा बूढ़ा होना वृद्ध होना नहीं है; सिर्फ क्षीण होना है, दीन होना है, दरिद्र होना है। हमारा वार्धक्य एक उपलब्धि नहीं है, सिर्फ एक लंबी गंवाई है, कमाई नहीं है। लंबा हमने गंवाया है। खोया है, खोया है। क्षीण हो गए। जर्जर हो गए। सब चुक गया।
रवींद्रनाथ ने कहा है, जब सच ही कोई बूढ़ा होता है, तो उसके शुभ्र बाल वैसे ही हिमाच्छादित हो जाते हैं, जैसे हिमालय के पर्वत। उसके शुभ्र बालों में वैसी ही शीतलता और वैसा ही ऐश्वर्य आ जाता है, जैसे कभी जब गौरीशंकर पर बर्फ जमी होती है।
अगर कोई व्यक्ति ठीक से जीया है, तो वार्धक्य उसका ऐश्वर्य को उपलब्ध
हो जाता है। एक कांति, एक दीप्ति जो बूढ़े में ही होती है, बच्चे में नहीं हो सकती। बच्चे में एक अदम्य वेग होता है, शक्ति होती है, जो कुछ बन सकती है, नष्ट भी हो सकती है। अगर बूढ़ा उसे कुछ बनाने में समर्थ हो जाए, और वह जो शक्ति बच्चे में दिखाई पड़ी थी, अगर ठीक-ठीक यात्रा करे, तो ऐश्वर्य बन जाती है अंत में। अनुभव से यात्रा करके शक्ति ऐश्वर्य बनती है।
इसलिए जो समाज बूढ़े होते हैं, उनमें ऐश्वर्य देखा जा सकता है। जैसे अगर शक्ति देखनी हो, तो पश्चिम में देखनी चाहिए। और अगर ऐश्वर्य देखना हो, वह आभा देखनी हो जो वार्धक्य को उपलब्ध होती है, तो पूरब में देखनी चाहिए। इसलिए जो समाज पुराने होते हैं, वे बूढ़े को आदर देते हैं, बच्चे को नहीं। उनका आदर ऐश्वर्य के लिए है, चरम के लिए है, आखिरी के लिए है; अंतिम जो शिखर होगा, उसके लिए है।
शक्तिशाली समाज बच्चों और जवानों पर निर्भर करेगा। ऐश्वर्यशाली समाज वृद्ध पर, वार्धक्य पर निर्भर करेगा। इसलिए हमने तो अपने मुल्क में बूढ़े हो जाने को ही काफी आदर की बात समझा है। जरूरी नहीं है कि बूढ़ा आदर के योग्य हो। लेकिन फिर भी हमने ऐसे वृद्ध देखे हैं कि उनके कारण सभी बूढ़े आदृत हो गए। और वृद्ध ही पा सकते हैं उस अंतिम बात को, उस सौम्यता को।
एक तो भभक है आग की, और एक सिर्फ आभा है। ऐसा समझें कि जब सांझ सूरज डूब जाता है और रात नहीं आई होती है, तब जो प्रकाश फैल जाता है; या सुबह जब सूरज नहीं निकला होता, रात जा चुकी होती है, तब जो प्रकाश, जो आलोक फैल जाता है,

वह आभा है, वह ऐश्वर्य है। शक्ति जला देती है, ऐश्वर्य केवल आलोकित करता है। शक्ति आग है; ऐश्वर्य केवल प्रकाश है और शीतल है। ऐश्वर्य में कोई दंभ और दर्प नहीं है, शक्ति में होगा।
शक्ति से प्रारंभ होता है जीवन का, ऐश्वर्य पर उपलब्धि होती है। कांति से यात्रा है। अगर शक्ति कांति से गुजरे, तो ही ऐश्वर्य को उपलब्ध होती है। अगर कोई व्यक्ति अपनी जीवन-ऊर्जा का उपयोग क्षुद्र को खरीदने में करता रहे, तो कांतिहीन हो जाता है।
हम कई बार हीरे-जवाहरातों को देकर रोटी के टुकड़े खरीद लाते हैं। कई बार कहना ठीक नहीं, अधिक बार, ज्यादातर जीवन में जो श्रेष्ठतम है, उसे गंवाकर हम क्षुद्र को खरीद लेते हैं। पूरा जीवन हमारा इसी नासमझी में बीतता है। बस, काफी धंधा किया, काफी लेन-देन किया, इसका भर सुख होता है। कांति का अर्थ है, जो व्यक्ति अपनी जीवन-ऊर्जा को निरंतर श्रेष्ठ के लिए समर्पित कर रहा है। उस व्यक्ति को कांति उपलब्ध होती है, जो जितनी शक्ति देता है, उससे ज्यादा पाता है। जो हमेशा लाभ में है, एक आंतरिक लाभ में। अगर एक इंचभर अपनी शक्ति खोता है, तो इसीलिए कि कोई विराट का द्वार खुल रहा है, अन्यथा नहीं खोता।
इसे हम ऐसा समझें, जैसा मैंने पीछे आपको कहा। काम ऊर्जा है, सेक्स एनर्जी है। आप उसे केवल शरीर के तथाकथित सुख में गंवा सकते हैं जीवनभर, सारी कांति खो जाएगी। आपके चारों तरफ जो एक मंडल चाहिए व्यक्तित्व का, वह सिकुड़ जाएगा।
कभी आपने ख्याल किया है, काम-ऊर्जा के क्षीण होते ही आपको एक सिकुड़ाव
का अनुभव होता है। कोई चीज सिकुड़ गई भीतर, आप दीन हुए। आपने कुछ खोया, पाया कुछ भी नहीं।
ठीक इससे विपरीत स्थिति उस व्यक्ति को उपलब्ध होनी शुरू होती है, जिसकी काम-ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होती है और प्रभु के चरणों में समर्पित होने लगती है; और जिसकी काम-ऊर्जा व्यक्तियों और दूसरे व्यक्तियों की तरफ प्रवाहित नहीं होती, वरन अपनी अंतरात्मा की तरफ प्रवाहित होने लगती है। हर इंच पर उसे लगता है, जीवन विराट हुआ, और बड़ा हुआ।
ब्रह्मचर्य शब्द हम सब सुनते हैं, बात करते हैं, लेकिन आपको ख्याल न होगा कि इसका अर्थ क्या होता है! इसका अर्थ होता है, ब्रह्म जैसी चर्या। और ब्रह्म का आपको अर्थ पता है? ब्रह्म का अर्थ होता है, विस्तार। ब्रह्म का अर्थ है, जो विस्तीर्ण है, जो फैलता ही चला गया है, जिसका ओर-छोर नहीं है। तो जिस दिन आपकी चर्या उस विस्तार की तरफ बढ़ने लगती है, और आपके भीतर कुछ फैलता चला जाता है और फैलता ही चला जाता है, सब सीमाएं छूट जाती हैं और आपके भीतर कोई फैलता ही चला जाता है, जिस दिन आपके भीतर चांद-सूरज घूमने लगते हैं, जिस दिन आपको लगता है कि आप फैल गए सारे आकाश में और आकाश से एक हो गए, उस दिन ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है।
लेकिन यह होगा, जब हमारी ऊर्जा, हमारी शक्ति निरंतर श्रेष्ठ के प्रति समर्पित हो रही हो। अपने से नीचे का कुछ खोजना, कांति को खोना है। अपने से ऊपर के लिए शक्ति को नियोजित करना, कांति को उपलब्ध होना है। कांति सिर्फ एक खबर है, आपके चेहरे से, आपकी आंखों से, आपके हाथों से, आपके व्यक्तित्व से, एक खबर है कि भीतर ऊर्जा ने कुछ ऊर्ध्वगमन शुरू किया है।
बड़ी मुश्किल की बात है। इस कांति की तरफ ख्याल ही नहीं है। इसलिए जवान आदमी... । मैंने कहा, बच्चा होता है शक्तिशाली, बूढ़ा होता है ऐश्वर्ययुक्त, जवान हो सकता है कांतियुक्त। बच्चा शक्तिशाली होता है, यह नैसर्गिक है। जवान कांतियुक्त हो, यह चुनाव है। और जवान अगर कांतियुक्त न हो सके, तो बुढ़ापा एक दीनता होगी, एक दरिद्रता होगी, एक बोझ।
हम इस मुल्क में पच्चीस वर्ष तक युवकों को आश्रमों में रखकर कांति की कला सिखाते थे। इसके पहले कि शक्ति क्षीण होनी शुरू हो जाए, उसको रूपांतरण देना जरूरी है। इसके पहले कि शक्ति नीचे से बहनी शुरू हो जाए, उसके पहले उसे ऊपर के मार्ग पर चला देना जरूरी है। क्योंकि एक बार शक्ति नीचे की तरफ बहने लगे, तो हर चीज हैबिट फार्मिंग है, हर चीज की आदत बन जाती है। फिर रिपिटीटिव, फिर पुनरुक्ति होने लगती है।

और जीवन एक ऐसी बाल्टी की तरह हो जाता है, जिसे हम पानी में डालते हैं भरने के लिए, लेकिन उसमें इतने छेद होते हैं कि शोरगुल बहुत होता है, पानी भरता भी मालूम पड़ता है, लेकिन आखिर में जब बाल्टी बुढ़ापे में हमारे हाथ आती है, तो उसमें कुछ भी नहीं होता, एक बूंद भी पानी की नहीं होती; सब बीच में गिर गया होता है। बुढ़ापे में जिस व्यक्ति की कुएं की बाल्टी भरी हुई आ जाए, समझना कि ऐश्वर्य उपलब्ध हुआ।
लेकिन यह तभी संभव होगा, जब जवानी में छिद्र व्यक्तित्व में पैदा न हों, और जवानी में छिद्रों से बचा जा सके, जो कि अति कठिन है। क्योंकि शक्ति अगर ऊपर रूपांतरित न हो, तो शक्ति बोझ बन जाती है, उसको फेंकना जरूरी हो जाता है।
इसलिए पश्चिम में एक नया विचार लोगों को पकड़ा है और वह यह है कि सेक्स इ.ज जस्ट ए रिलीज, ए रिलीफ। कामवासना, सिर्फ एक शक्ति भारी हो जाती है, तनाव हो जाता है, उससे छुटकारा है। पश्चिम में एक बहुत क्षुद्र ख्याल काम-ऊर्जा के बाबत आया है। वे कहते हैं, काम-ऊर्जा छींक जैसी है। छींक ली, तो राहत मिलती है। छींक आ गई, तो राहत मिलती है। नहीं तो नाक में सनसनाहट और तकलीफ मालूम पड़ती है। सब काम-ऊर्जा भी इसी तरह की है। उसको फेंक दी बाहर, तो राहत मिलती है।
शक्ति भारी हो जाती है, अगर काम में न लाई जाए, फिर उसे फेंकना ही पड़ेगा। केवल वे ही लोग शक्ति को फेंकने से बच सकते हैं, जो उस कला को सीख लेते हैं, जिसमें शक्ति रोज काम में आती चली जाती है, बचती ही नहीं फेंकने के लिए।
डायोजनीज से किसी ने पूछा था कि तुमने विवाह क्यों न किया? तो डायोजनीज ने कहा, दो पत्नियां एक साथ रखना बहुत मुश्किल होगा। जिसने पूछा था, वह तो पूछ रहा था, विवाह क्यों न किया? वह बड़ा हैरान हुआ कि दो पत्नियां हैं तुम्हारी! डायोजनीज ने कहा, नहीं, जिस दिन से परमात्मा को खोजने में लग गए, उस दिन से सारी शक्ति तो उसी में लग गई, अब दूसरी पत्नी रखना बहुत मुश्किल होगा। ये दोनों बातें एक साथ करना जरा मुश्किल होगा।
सारी शक्ति लग जाए एक तरफ, तो दूसरी तरफ प्रवाहित रहने को कुछ बचता नहीं। और तभी कांति उपलब्ध होती है, जब ऊपर की ओर शक्ति उठने लगे।
कांति का अर्थ है, ऊपर की ओर उठती हुई शक्ति। शरीर से भी झलकने लगती है। शरीर से भी उसकी सुगंध आने लगती है। शरीर भी एक अनूठे सौंदर्य से आच्छादित हो जाता है।
ऐश्वर्ययुक्त, कांतियुक्त, शक्तियुक्त जो भी है, वहीं मेरी विभूति है, वहीं मैं प्रकट हुआ हूं, वहीं तू मुझे देख लेना। और जहां भी यह घटित हो, समझना कि मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुआ है; मेरी ही ज्योति वहां प्रज्वलित हो रही है; मेरे ही अमृत की धार वहां बहती है; मेरे ही स्वरों का संगीत है वहां; मेरी ही सुवास है; मेरे ही हृदय की धड़कन वहां भी धड़कती है। अथवा हे अर्जुन, इस बहुत जानने से तेरा प्रयोजन ही क्या है!
अगर तू मुझे ऐश्वर्य में भी न देख सके, कांति में भी न देख सके, शक्ति में भी न देख सके, और इतने जो मैंने तुझे प्रतीक कहे, इनमें तुझे कोई ख्याल न आए, तो फिर बहुत जानने से कोई प्रयोजन नहीं है। अब मैं तुझे कितना ही कहता रहूं, उससे कुछ हल न होगा। तू देखना शुरू कर।
पूछते हैं हम बिना फिक्र किए कि क्या प्रयोजन है। मैं रोज ऐसे लोगों
के संपर्क में आता हूं, जो कुछ भी पूछते चले आते हैं। जिन्हें यह भी पता नहीं कि वे क्यों पूछ रहे हैं। शायद उन्हें पूछना भी खाज या खुजली जैसा है। खुजा लेते हैं, थोड़ी-सी राहत मिलती है। भला नाखून लग जाते हैं, लहू निकल आता है, तकलीफ होती है, लेकिन खुजा लेते हैं। खुजाते वक्त लगता है कि कुछ कर रहे हैं।
आपका प्रश्न, आपकी जिज्ञासा अगर खुजली जैसी हो, तो बीमारी है। कुछ भी पूछते रहने का कोई अंत नहीं है। पूछते चले जाएं जन्मों-जन्मों तक! और जो भी उत्तर आपको मिलेंगे, उनसे केवल नए प्रश्न निर्मित होंगे, और कुछ भी न होगा।

कभी आपने ख्याल किया, कि जो भी उत्तर आपको मिलते हैं, उनसे और दस प्रश्न खड़े हो जाते हैं। दर्शनशास्त्र पांच हजार साल में न मालूम कितने सवाल पूछा। एक भी सवाल हल नहीं हुआ। एक भी सवाल हल नहीं हुआ! अगर हम पांच हजार साल का फिलासफी का इतिहास देखें, तो एक भी सवाल हल नहीं हुआ। यह बड़े मजे की बात है। इतने उत्तर दिए गए और एक भी हल नहीं हुआ। बल्कि और दूसरी घटना घटी। जितने जवाब दिए गए, उनमें से और हजार-हजार प्रश्न खड़े हो गए। बर्ट्रेंड रसेल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब मैं बच्चा था और पहली दफा दर्शन की तरफ उत्सुक हुआ, तो मैं सोचता था कि जब मैं दर्शन में निष्णात हो जाऊंगा, तो मेरे भी कुछ सवाल हल हो गए होंगे, उनके जवाब मुझे मिल गए होंगे। मरने के पहले उसने अपने एक पत्र में लिखा है कि अब मैं बूढ़ा होकर यह कह सकता हूं कि मेरा एक भी सवाल हल नहीं हुआ। और दूसरी बात जो घट गई, जिसकी मुझे कल्पना ही नहीं थी, नए-नए सवाल और खड़े हो गए इस नब्बे साल की जिंदगी में।
बर्ट्रेंड रसेल ने पहले तो दर्शनशास्त्र की परिभाषा की थी, मनुष्य के आत्यंतिक प्रश्नों के जवाबों की खोज। और अंत में उसने व्याख्या की है, मनुष्य के आत्यंतिक प्रश्नों के संबंध में और प्रश्नों की खोज। और कुछ नहीं, प्रश्न के बाद प्रश्न! अगर आप पूछने के लिए पूछते चले जाते हैं, तो व्यर्थ है।
कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, तेरा इतना सब पूछने का प्रयोजन ही क्या है, अगर तू इशारा न समझ पाए! तो फिर तू पूछता चला जा सकता है और मैं तुझे जवाब देता चला जा सकता हूं, उससे कुछ हल न होगा।
आज जमीन पर जो इतना कनफ्यूजन, इतना विभ्रम है, वह इसलिए है कि इतने जवाब और इतने सवाल आपके मस्तिष्क में खड़े हो गए हैं कि आज तय करना ही मुश्किल है कि आपका भी कोई प्रश्न है? और प्रश्न आप पूछ रहे हैं, तो कुछ करने का इरादा है या यों ही पूछने चले आए हैं?
एक आदमी मेरे पास अभी दो दिन पहले आए थे। वे पूछने लगे कि सच में ईश्वर है? तो मैंने उनसे पूछा, आपका क्या इरादा है? अगर है, तो आप क्या करिएगा? और अगर नहीं है, तो आप क्या करेंगे? उन्होंने कहा, करना क्या है! ऐसे ही पूछने चला आया हूं। हो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है उन्हें। न हो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। तो यह प्रश्न किसलिए है? तब यह खुजली के जैसा है। फिर वे मुझसे बोले, और मैं कोई आपसे ही पूछ रहा हूं, ऐसा नहीं है। न मालूम कितने महात्माओं से मैं पूछ चुका हूं।
एक गांव में तो मैं गया, तो लोग प्रश्न लिखकर देते हैं, एक आदमी ने छपा हुआ प्रश्न मुझे दिया, तब तो मैं बहुत हैरान हुआ। छपा हुआ प्रश्न! मैं पहले ही दिन वहां बोला हूं और बोलकर मैं उठने के करीब हूं कि उसने छपा हुआ प्रश्न दिया कि आप इसका उत्तर दें।
मैंने कहा, तुम इतनी जल्दी छपा कैसे लाए? उन्होंने कहा, जल्दी का क्या सवाल है? यह तो मैंने तीस साल पहले छपाया था। और जो भी इस गांव में आता है, उसे मैं दे देता हूं कि इसका जवाब! मैंने उससे पूछा कि तुम्हें तीस साल में किसी ने जवाब नहीं दिए? उसने कहा, बहुत जवाब दिए, लेकिन किसी जवाब से तृप्ति नहीं होती। मैंने उसको कहा कि तुम तीस जन्म भी पूछते रहो, तो भी तृप्ति नहीं होगी। क्योंकि जवाब से कहीं तृप्तियां हुई हैं, जब तक कि तुम्हें अपना जवाब न मिल जाए। दूसरे का जवाब क्या तृप्ति देगा!
मगर हमारी तो कठिनाई यह है कि अपना जवाब तो बहुत मुश्किल है, अपना सवाल भी नहीं होता; वह भी उधार होता है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, यह हमारा प्रश्न नहीं है। यह मेरे
एक मित्र का प्रश्न है। वे आए हैं; मित्र का प्रश्न है! प्रश्न भी हमारे नहीं हैं। वे भी कोई हममें पैदा करवा देता है। फिर किसी के प्रश्न और किसी के जवाब हममें इकट्ठे होते चले जाते हैं। और हम एक कचराघर हो जाते हैं। कृष्ण पूछते हैं, हे अर्जुन, इस बहुत जानने से फिर क्या प्रयोजन है! सिर्फ जानना ही है या तुझे उतरना भी है? तू कूदना भी चाहता है या सिर्फ सोचता ही रहेगा? तू कुछ करने को आतुर है या सिर्फ एक बौद्धिक कुतूहल है?

इस संपूर्ण जगत को अपनी योग-माया के एक अंश मात्र से धारण करके मैं स्थित हूं।
सारा जगत मेरा ही एक अंश मात्र है। यह बहुत कीमती वचन है। क्योंकि मैंने कहा, सारा जगत ईश्वर है। सारा जगत ईश्वर है, लेकिन सारा ईश्वर जगत नहीं है। सारा जगत ईश्वर है, लेकिन सारा ईश्वर जगत नहीं है। क्योंकि ईश्वर की अनंत संभावनाएं हैं, अनंत जगतों में प्रकट होने की। ईश्वर तो इस पूरे अस्तित्व की मूल संभावना है। उसमें से कभी कोई एक बीज अंकुरित होता है, तो एक जगत निर्मित हो जाता है। उसमें से कभी कोई दूसरा बीज निर्मित होता है, तो दूसरा जगत निर्मित हो जाता है। अनंत जगत हो सकेंगे, और हर जगत उसका एक अंश ही होगा।
पूरा ईश्वर अगर जगत हो, तब ईश्वर भी सीमित हो गया। तब फिर दूसरा जगत नहीं हो सकता। अगर यही जगत सब कुछ हो ईश्वर का, तो फिर आगे कोई गति और कोई विकास नहीं है।
ईश्वर के अनंत होने का अर्थ है, यह जगत उसकी एक अभिव्यक्ति है। उसकी अनेक अभिव्यक्तियां हो सकती हैं। होती रही हैं। होती रहेंगी। इसलिए कहा, एक अंश में ही मेरी योग-माया का उपयोग है।
योग-माया शब्द का ठीक वही अर्थ होता है, जो अंग्रेजी में मैजिक का होता है, जादू का होता है। लेकिन जादू तो जादूगर करता है! पर आपने ख्याल किया, जादूगर करता क्या है? वह कहता है कि यह रहा, यह आम का झाड़ होने लगा। और हाथ का इशारा करता है और एक आम का झाड़ उगना शुरू हो जाता है। छोटे-से झाड़ में आम के फल लगने शुरू हो जाते हैं। वह आम का एक फल तोड़कर आपको दे देता है। बड़ा चमत्कार है!
जादूगर कर क्या रहा है? जो नहीं है, वह आपको दिखाई पड़ने लगे, इस कला का नाम जादू है। मैजिक का अर्थ है, जो नहीं है, वह आपको दिखाई पड़े।
ईश्वर की भारतीय जो धारणा है, वह यह है कि जगत भी है नहीं, केवल ईश्वर चाहता है, इसलिए दिखाई पड़ता है। यह है नहीं, केवल ईश्वर चाहता है, इसलिए दिखाई पड़ता है। इसका होना केवल उसकी धारणा है, उसका विचार है।
अगर आपने कभी सम्मोहन का कोई प्रयोग देखा है, हिप्नोटिज्म का कोई प्रयोग देखा है, तो आपको ख्याल में होगा। एक आदमी को बेहोश कर दिया जाए और फिर उससे कहा जाए कि तू अब पुरुष नहीं है, स्त्री हो गया। इस कोने से उस कोने तक स्टेज पर चल। तो उसकी चाल स्त्री जैसी हो जाएगी। वह स्त्री जैसा चलेगा।
उसे क्या हो गया है? एक ख्याल! उसको सम्मोहित करने वाला एक ख्याल उसके
मन में डालता है कि तू स्त्री है। यह ख्याल सक्रिय हो जाता है। वह स्त्री जैसा चलने लगता है।
लेकिन यह बहुत कठिन बात नहीं है। जो सम्मोहित व्यक्ति है, गहरे सम्मोहन में गया है, उसके हाथ में आप एक फूल रख दें और कहें कि यह आग का अंगारा है, तो चीख मारकर वह फूल को फेंक देगा। लेकिन यह भी बड़ी बात नहीं है, क्योंकि यह भाव है। बड़ी बात तो यह है कि उसके हाथ पर फफोला भी आ जाएगा--फूल रखने से!
क्या हुआ? हमने अंगारा तो रखा नहीं, सिर्फ कहा था, अंगारा है! उसने मान लिया। बेहोशी में उसके हृदय में संदेह नहीं उठता। श्रद्धा पूरी होती है। तर्क सोया होता है। विचार यह नहीं कहता कि फूल दिखाई पड़ रहा है, अंगारा कैसे! यही मतलब है सम्मोहित होने का कि उसकी जो बुद्धि है, सोचने का ढंग है, तर्क है, संदेह है, वह सो गया है। उसका अचेतन मन काम कर रहा है, चेतन मन बंद हो गया है। उसका अनकांशस हिस्सा काम कर रहा है। उससे जो भी कहें, वह मान लेता है। वह पूर्ण श्रद्धा में है इस वक्त। आपने कहा अंगारा, तो अंगारा हो जाता है हाथ पर। और जब प्राण समझ लेते हैं, अंगारा है, तो हाथ में फफोला आ जाता है।
सूफी फकीर इसी तरह जलती हुई आग पर नाचते हैं। उस नाचने में कुछ और नहीं है। सूफी फकीर प्रार्थनायुक्त होकर प्रभु से कह देता है कि अंगारे भी, हम तेरा नाम लेकर जाते हैं, तो फूल रहेंगे। यह इतने गहरे में कही गई बात

होती है कि अंगारे फिर जला नहीं पाते, क्योंकि शरीर मानता ही नहीं कि वे अंगारे हैं।
यह सब हिप्नोटिज्म भी व्यक्तिगत प्रयोग है योग-माया का। परमात्मा के लिए सारा का सारा विराट जो विस्तार है, यह वास्तविक सृजन नहीं है, यह केवल उसके विचार का फैलाव है।
बहुत बड़े वैज्ञानिक एडिंगटन ने लिखा है कि जब मैं नया-नया विज्ञान के जगत में प्रविष्ट हुआ था, तो मैं सोचता था कि जगत एक वस्तु की भांति है, जस्ट लाइक ए थिंग। अंतिम जीवन के दिनों में एडिंगटन ने कहा है, जब वह नोबल प्राइज पा चुका था और जगत विख्यात हो गया था, तो उसने कहा है कि अब जितना ही मैंने अनुभव किया है, दि यूनिवर्स लुक्स मोर लाइक ए थाट, दैन लाइक ए थिंग-- एक विचार की भांति मालूम पड़ता है यह जगत, एक वस्तु की भांति नहीं।
लेकिन किसका विचार? एडिंगटन वैज्ञानिक आदमी है, वह यह नहीं कह सकता, ईश्वर का विचार। क्योंकि ईश्वर का उसे कोई पता नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, यह सारा जगत मेरी योग-माया के एक अंश का विस्तार है, मेरे विचार का, मेरे ख्याल का।
यह सारा अस्तित्व एक स्वप्न है गहन, उस मूल ऊर्जा का एक स्वप्न। उस मूल ऊर्जा का एक भाव, और जगत निर्मित हो जाता है। उस मूल ऊर्जा का भाव क्षीण होता है, और जगत खो जाता है।
इसका यह मतलब नहीं है कि आप पत्थर पैर पर मारेंगे, तो खून नहीं निकलेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि आप नहीं हैं। आप हैं। लेकिन आपके होने का जो घटक है, जो बुनियादी तत्व है, जिससे आप निर्मित हैं, वह वस्तु नहीं है, विचार है। आप विचार का एक जोड़ हैं, अनंत विचारों का एक जोड़ हैं। यह सारा जगत अनंत विचारों का एक जोड़ है।
अगर हम भौतिकवादी और गैर-भौतिकवादी विचारों में भेद करना चाहें, तो
वह यही होगा कि भौतिकवादी, मैटीरियलिस्ट कहता है कि जगत की जो बुनियादी इकाई है, वह पदार्थ है; और अध्यात्मवादी कहता है, जगत की जो मौलिक इकाई है, वह विचार है। जगत जिन ईंटों से बना है, वे ईंटें विचार की हैं। और अगर पदार्थ भी हमें दिखाई पड़ता है, तो वह विचार की सघनता है, डेंसिटी आफ थाट। और जिसे हम अपने भीतर विचार कहते हैं, उसमें और बाहर पड़े हुए पत्थर में जो फर्क है, वह गुण का नहीं है, मात्रा का है, डिग्रीज का है। अगर विचार ही गहन सघन हो जाए, तो पत्थर भी मौजूद हो सकता है, मैटीरिअलाइज हो सकता है।
कृष्ण कहते हैं, यह मेरी योग-माया का एक अंश है और इस अंश पर ही मैं सारे जगत को धारण करके ठहरा हुआ हूं, इसलिए मेरे को ही तत्व से जान। तू और विस्तार में मत पड़। तू सीधा मुझको ही तत्व से जान। मैं ही आधारभूत हूं, या जो आधारभूत है, वही मैं हूं। विस्तार में तू खो सकता है।
बहुत लोग डिटेल्स में खो जाते हैं। बहुत लोग इतने विस्तार में खो जाते हैं कि उन्हें पता ही नहीं रहता है कि वे किसकी खोज के लिए निकले थे। कई बार जंगल में खो जाने की वजह से जिस वृक्ष की तलाश में हम निकले थे, उसकी स्मृति ही उठ जाती है।
इसलिए अंतिम वचन में कृष्ण ने याद दिलाया कि यह मैंने तुझसे थोड़े से विस्तार की बातें कही हैं, लेकिन इस विस्तार में खो जाने की जरूरत नहीं है। यह मैंने कहा ही इसलिए, ताकि सब तीर मेरी तरफ इशारा कर सकें। और तू मुझको ही सारी खोज का अंत जान, सारी खोज का केंद्र जान।
जो व्यक्ति भी ईश्वर की तरफ अपनी सारी खोज के तीरों को झुका देता है,
जो अपनी सारी कामनाओं को, सारी इच्छाओं को, सारी प्रार्थनाओं को, सारी अभीप्साओं को, सारी आकांक्षाओं को एक ही ईश्वर की तरफ झुका देता है, उसे बहुत देर नहीं है कि वह पा ले।
हम अगर खोते हैं उसे, भूलते हैं उसे, विस्मरण करते हैं उसे, नहीं जान पाते उसे, तो उसका कारण केवल इतना ही है कि कभी हमने समग्रता से उसे चाहा ही नहीं, पुकारा ही नहीं। कभी समग्रता से हमने जाना ही नहीं कि वही एक पाने योग्य है। अगर हमने कभी उसे पाना भी चाहा है, तो वह हमारे हजारों पाने वाली चीजों में एक आइटम वह भी है। और वह भी आखिरी, वह भी आखिरी फेहरिस्त पर। जैसे कोई बाजार में सामान खरीदने निकला हो, तो निन्यानबे चीजें उसने सब

लिख हों--नोन, तेल, लकड़ी--और आखिर में सौवां ईश्वर भी लिखा हो। ऐसे हम हैं। जब सब, तब आखिरी!
ईश्वर को जो अपनी जिंदगी की खोज में आखिरी रख रहा है, वह उसे पाने में आखिरी सिद्ध होगा। जो उसे प्रथम रखता है, वही उसे पाता है।
लेकिन हम क्षुद्र को ऊपर रखे रहते हैं। अगर अभी कोई आपको मिले और कहे
कि एक कार दिए देते हैं या ईश्वर का दर्शन। क्या इरादा है? तो आप कहेंगे, ईश्वर का दर्शन तो कभी भी हो जाएगा, शाश्वत चीज है। कार पहले ले लें; इसका क्या भरोसा! क्षणिक का भरोसा भी नहीं है, इसको आज ले लें। ईश्वर को तो कल भी ले सकते हैं, अगले जन्म में भी ले सकते हैं। यह कोई जल्दी की बात नहीं है। आप पहले क्षुद्र को चुनेंगे।
कृष्ण कहते हैं, विस्तार में तू मत जा। मैं तेरे सामने खड़ा हूं। तू मुझको ही तत्व से जान, उसकी ही आकांक्षा कर।
अंतिम बात। कृष्ण ने बहुत-से प्रतीक कहे। वे सब प्रतीक इशारे हैं।
कोई भी प्रतीक प्रतिमा नहीं है। कोई भी प्रतीक पूजा के लिए नहीं है। सभी प्रतीक केवल समझ के लिए सहारे हैं। जो प्रतीकों की पूजा में लग जाता है, वह भटक जाता है। प्रतीक पूजा के लिए नहीं होता; प्रतीक इशारे के लिए होता है। एक आदमी रास्ते से गुजर रहा है। और किनारे पर पत्थर लगा है, मील का पत्थर लगा है और उस पर तीर लगा है। वह मील का पत्थर बैठकर पूजा करने के लिए नहीं है, वह बैठने के लिए नहीं है। वह तीर यह कह रहा है कि यहां से आगे बढ़ो। अगर मंजिल तक पहुंचना है, तो पत्थरों पर मत रुकना। यह तीर कह रहा है, आगे चलो।
ये जितने प्रतीक कृष्ण ने लिए हैं, यह उस महायात्रा के किनारे पर लगे हुए पत्थर हैं। इन पर रुकना नहीं है।
बोकोजू एक मंदिर में ठहरा हुआ था। बौद्ध-मंदिर था जापान का, लकड़ी की मूर्तियां थीं बुद्ध की। रात बहुत उसे सर्दी लगी। उसने एक मूर्ति उठाकर जला ली और आंच ताप ली। मंदिर का पुजारी घबड़ा गया; नींद खुली। आग देखकर मंदिर में, घबड़ाया हुआ आया। और उसने कहा, यह क्या कर रहे हो? पागल हो तुम! तुम्हें मैंने ठहराकर कौन-सा पाप किया! तुम आदमी सीधे-सादे मालूम पड़ते थे। यह तुम भगवान बुद्ध को जला रहे हो?
बोकोजू ने कहा, भगवान बुद्ध! बड़ी भूल हो गई। पास पड़ी एक छोटी-सी लकड़ी
को उठाकर वह राख को कुरेदने लगा। उस पुरोहित ने पूछा, अब क्या कर रहे हो? उसने कहा, मैं भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं। उस पुरोहित ने कहा, तू बिल्कुल पागल आदमी है। लकड़ी की मूर्ति जलाकर और अस्थियां खोज रहा है!
तो बोकोजू खिलखिलाकर हंसा और उसने कहा कि तुम भी जानते तो हो कि लकड़ी
की मूर्ति है। तो फिर रात अभी बहुत बाकी है और सर्द बहुत ज्यादा है। और भीतर जो बुद्ध हैं, उनको बहुत सर्दी लग रही है। तुम दो मूर्तियां और उठा लाओ, तो रात बड़े आनंद से गुजर जाए!
उस पागल को रात ही निकालना पड़ा। सर्द बहुत थी रात और उसने कहा भी था कि भीतर बुद्ध हैं, फिर भी भीतर के बुद्ध की कौन फिक्र करता? मूर्ति जलाने का गहन अपराध तो हो ही गया था। उसे रात ही बाहर कर दिया उस मंदिर के। उसने बहुत कहा कि तुम क्या कर रहे हो? बुद्ध को बाहर किए दे रहे हो? लेकिन कौन उसकी सुनने को राजी था! दरवाजे बंद कर उसे बाहर फेंक दिया गया और रातभर सर्दी में बाहर ठिठुरता पड़ा रहा।
सुबह जब मंदिर के द्वार खुले, तो उन्होंने देखा कि वह बाहर जाकर सड़क
के किनारे एक पत्थर पर दो फूल रखकर पूजा कर रहा है। तब तो उस पुजारी को फिर परेशानी हुई। उसने जाकर कहा कि तुम आदमी किस भांति के हो? रात भगवान की मूर्ति जला दी, और अब सड़क के किनारे पड़े हुए पत्थर की बैठकर पूजा कर रहे हो?
बोकोजू ने कहा, पूजा करनी हो, तो कोई भी प्रतीक काम दे जाता है। कोई भी प्रतीक काम दे जाता है! और पागल बनना हो, तो लोग प्रतीकों को प्रतिमाएं बना लेते हैं और भटक जाते हैं। सुबह के लिए मान लिया कि बुद्ध यहां हैं। बुद्ध की पूजा करनी है, इस पत्थर पर भी की जा सकती है। यह सिर्फ प्रतीक है, यह केवल एक डिवाइस है। लेकिन तेरी मूर्तियां बहुत वजनी हो गई हैं। तूने

जिंदा बुद्ध को बाहर फेंक दिया और लकड़ी की मूर्तियों को तूने भारी समझा। और जब मैं अस्थियां खोजने लगा, तब तुझे भी पता चल गया कि अस्थियां वहां मिलेंगी नहीं, क्योंकि लकड़ी है। तेरी पूजा झूठी है। तू प्रतीक को प्रतिमा बना रहा है।
यह आखिरी बात इस अध्याय में याद रखें, क्योंकि यह पूरे प्रतीक का अध्याय है।
प्रतीक प्रतिमा नहीं है, इशारा है। सब प्रतीक उपयोगी हैं--मंदिर के, मस्जिद के, चर्च के, गुरुद्वारे के। सब प्रतीक उपयोगी हैं। कोई प्रतीक अंतिम नहीं है। प्रतीक से गुजर जाना, प्रतीक पर रुक मत जाना। प्रतीक पर ठहरना, उसका उपयोग करना और पार हो जाना। तो एक दिन विस्तार खो जाएगा, और केंद्र उपलब्ध हो जाता है।
इतना ही।
पांच मिनट रुकें। अंतिम दिन है, कोई उठे न! कीर्तन में सम्मिलित हों
और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
पहला प्रवचन

विराट से साक्षात की तैयारी

श्रीमद्भगवद्गीता
अथैकादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच
मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।। 1।।
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्।। 2।।
एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।। 3।।
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।। 4।।

श्रीभगवानुवाच
पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।। 5।।
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत।। 6।।
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि।। 7।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के विभूति-योग पर कहे गए वचन सुनकर अर्जुन बोला,
हे भगवन्, मुझ पर अनुग्रह करने के लिए परम गोपनीय अध्यात्म-विषयक वचन अर्थात उपदेश आपके द्वारा जो कहा गया, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है।
क्योंकि हे कमलनेत्र, मैंने भूतों की उत्पत्ति और प्रलय आपसे विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपका अविनाशी प्रभाव भी सुना है।
हे परमेश्वर, आप अपने को जैसा कहते हो, यह ठीक ऐसा ही है। परंतु हे पुरुषोत्तम, आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजयुक्त रूप को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं।
इसलिए हे प्रभो, मेरे द्वारा वह आपका रूप देखा जाना शक्य है, ऐसा यदि मानते हैं, तो हे योगेश्वर, आप अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइए। इस प्रकार अर्जुन के प्रार्थना करने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे पार्थ, मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख।
हे भरतवंशी अर्जुन, मेरे में आदित्यों को अर्थात अदिति के द्वादश पुत्रों को और आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को तथा दोनों अश्विनी कुमारों को और उनचास मरुदगणों को देख तथा और भी बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख।
और हे अर्जुन, अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित हुए चराचर सहित संपूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है, सो देख।

अध्यात्म की अत्यधिक उलझी हुई पहेलियों में एक पहेली से ये सूत्र शुरू होते हैं। वह पहेली है कि प्रभु बिना श्रम किए मिलता नहीं। और साथ ही जब मिलता है, तो जिसे मिलता है, उसे लगता है कि मेरे श्रम का फल नहीं, प्रभु की अनुकंपा है। जो उसे पा लेता है, वह जानता है कि जो मैंने किया था, उसका कोई भी मूल्य नहीं है। और जो मैंने पाया है, वह सभी मूल्यों के अतीत है। जिसे मिलता है, वह समझ पाता है कि यह प्रसाद है, ग्रेस है, अनुग्रह है।

लेकिन जिसे नहीं मिला है, अगर वह यह समझ ले कि प्रभु प्रसाद से मिलता है, मुझे कुछ भी नहीं करना, तो उसे प्रसाद भी कभी नहीं मिलेगा।
मनुष्य श्रम करे; श्रम से परमात्मा नहीं मिलता; लेकिन मनुष्य इस योग्य हो पाता है कि प्रसाद की वर्षा उसे मिल पाती है। झील, गड्ढा, वर्षा को पैदा करने का कारण नहीं है। लेकिन वर्षा हो, तो गड्ढे में भर जाती है और झील उपलब्ध होती है। वर्षा पहाड़ पर भी होती है, लेकिन पहाड़ के शिखर रूखे के रूखे रह जाते हैं। वर्षा गड्ढे पर भी होती है, लेकिन गड्ढा भर जाता है, आपूरित हो जाता है। गड्ढे के किसी श्रम से नहीं होती है वर्षा, लेकिन गड्ढे का इतना श्रम जरूरी है कि वह गड्ढा बन जाए।
कोई श्रम करके सत्य को नहीं पा सकता। क्योंकि सत्य इतना विराट है और हमारा श्रम इतना क्षुद्र कि हम उसे श्रम से न पा सकेंगे। और ख्याल रहे कि जो हमारे श्रम से मिलेगा, वह हमसे छोटा होगा, हमसे बड़ा नहीं हो सकता। जिसे मेरे हाथ गढ़ लेते हैं, वह मेरे हाथों से बड़ा नहीं होगा। और जिसे मेरा मन समझ लेता है, वह भी मेरे मन से बड़ा नहीं हो सकता। जिसे मैं पा लेता हूं, वह मुझसे छोटा हो जाता है।
इसलिए श्रम से न कभी कोई सत्य को पाता है, न कभी कोई परमात्मा को पाता है, न कभी कोई मोक्ष को पाता है। और साथ ही यह भी ख्याल रखें कि बिना श्रम के भी कभी किसी ने नहीं पाया है। यह पहेली है। श्रम से हम इस योग्य बनते हैं कि हमारा द्वार खुल जाए। खुले द्वार में सूरज प्रवेश कर जाता है। खुला द्वार सूरज को पकड़कर ला नहीं सकता। लेकिन खुला द्वार, सूरज आता हो, तो बाधा नहीं डालता है। मनुष्य का सारा श्रम बाधा को तोड़ने के लिए है।
इस बात को ख्याल में लें, तो यह सूत्र समझ में आएगा।
इस प्रकार कृष्ण के विभूति-योग पर कहे गए वचन सुनकर अर्जुन बोला, मुझ
पर अनुग्रह करने के लिए परम गोपनीय अध्यात्म-विषयक वचन आपके द्वारा जो कहा गया, उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है।
इसमें पहला शब्द समझ लेने जैसा है, अनुग्रह। अनुग्रह का अर्थ होता है, जिसे पाने के लिए हमने कुछ भी नहीं किया। जिसे पाने के लिए हमने कुछ किया हो, वह सौदा है। उसमें अनुकंपा कुछ भी नहीं है। जिसे पाने के लिए हमने कुछ अर्जित की हो संपदा, वह हमारे श्रम का पुरस्कार है, उसमें कुछ प्रसाद नहीं है।
अर्जुन कहता है कि आपके अनुग्रह से मुझे जो कहा गया है! मेरी कोई योग्यता न थी, और मेरा कोई श्रम भी नहीं था, मेरी कोई साधना भी नहीं थी। मैं दावा कर सकूं, ऐसी मेरी कोई अर्जित संपदा नहीं है। फिर भी आपके अनुग्रह से मुझे जो कहा गया है!
इससे यह अर्थ आप न लेना कि अनुग्रह की इस घटना में कृष्ण ने अर्जुन के साथ कुछ पक्षपात किया है। क्योंकि आपका भी कोई श्रम नहीं है, आपकी भी कोई साधना नहीं है, फिर यह कृष्ण अर्जुन को ही देने पहुंच गए! और आपके द्वार को खोजकर अब तक नहीं आए हैं! तो ऐसा लगेगा कि कुछ पक्षपात मालूम होता है। ध्यान रहे, जो योग्य है, उसे ही यह ख्याल आता है कि मेरी कोई योग्यता नहीं। अयोग्य को तो सदा ख्याल होता है कि मेरी बड़ी योग्यता है। जो पात्र होता है, वही विनम्र होता है। अपात्र तो बहुत उद्दंड होता है। अपात्र तो मानता है कि मैं योग्य हूं, अभी तक मुझे मिला नहीं। इसमें जरूर नियति, भाग्य, परमात्मा का कोई हाथ है। सब भांति मैं योग्य हूं और अगर मुझे नहीं मिला तो अन्याय हो रहा है।
पात्र मानता है कि मैं अपात्र हूं। इसलिए नहीं मिला, तो दोषी मैं हूं।
और अगर मिलता है, तो वह प्रभु की अनुकंपा है, अनुग्रह है। योग्यता का पहला लक्षण है, अयोग्यता का बोध। अयोग्यता का पहला लक्षण है, योग्यता का दंभ, योग्यता का अहंकार।
इसलिए जिन्हें ख्याल है कि वे पात्र हैं, वे ठीक से समझ लें कि उनसे ज्यादा बड़ा अपात्र खोजना मुश्किल है। और जिन्हें ख्याल है कि उनकी कोई भी पात्रता नहीं है, उन्होंने पात्र बनना शुरू कर दिया है।
अर्जुन पात्र था। इसलिए सहज भाव से कह सका कि मेरी कोई पात्रता नहीं, आपका अनुग्रह है।

अपात्र पर तो अनुग्रह भी नहीं हो सकता। उलटे रखे घड़े पर वर्षा भी होती रहे, तो घड़ा भर नहीं सकता। उलटा रखा हुआ घड़ा अपात्र है। क्यों उलटा घड़ा मैं कह रहा हूं? ताकि ख्याल में आ सके कि पात्रता भीतर छिपी है, लेकिन उलटी है। और घड़ा सीधा हो जाए, तो पात्र बन जाए।
पात्रता कहीं पाने भी नहीं जाना है; हम पात्रता लेकर ही पैदा होते हैं। ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं है, ऐसी कोई चेतना ही नहीं, जो प्रभु को पाने की पात्रता लेकर पैदा न होती हो। फिर भी परमात्मा हमें मिलता नहीं। उसकी वाणी सुनाई नहीं पड़ती, उसके स्वर हमारे हृदय को नहीं छूते। उसका स्पर्श हमें नहीं होता, उसका आलिंगन नहीं मिलता। हम पात्र हैं, लेकिन उलटे रखे हुए हैं। और उलटे रखे होने की सबसे सुगम जो व्यवस्था है, वह दंभ है, वह अहंकार है। जितना ज्यादा बड़ा हो मैं का भाव, उतना ही पात्र उलटा होता है। अर्जुन ने कहा कि आपका अनुग्रह है।
कठिन है, क्योंकि अर्जुन के लिए और भी कठिन है। अगर कृष्ण आपको मिल जाएं, तो कृष्ण से अभिभूत होना कठिन नहीं होगा। लेकिन अर्जुन के कृष्ण हैं मित्र, सखा, साथी। उनके कंधे पर हाथ रखकर, गले में हाथ रखकर अर्जुन चला है, उठा है, बैठा है, गपशप की है। कृष्ण में अनुग्रह को देख लेना, मित्र में, जो साथ ही खड़ा हो! और आज तो साथ भी नहीं, अर्जुन ऊंचा बैठा था और कृष्ण सारथी बने नीचे बैठे थे। आज तो केवल कृष्ण के सारथी होने की स्थिति थी। अर्जुन ऊंचा बैठा था। उस क्षण में भी अर्जुन अनुग्रह मान पाता है, इसके लिए अत्यंत निरअहंकारी मन चाहिए। इतना विनम्र मन चाहिए, जो कि ऊपर बैठकर भी अपने को नीचे देख पाता हो। मित्र को भी जो परमात्मा की स्थिति में रख पाता हो।
हमें परमात्मा भी मिले, तो हम मित्र की स्थिति में रखना चाहेंगे। संगी-साथी, साथ तल पर खड़ा कर लेना चाहेंगे। अर्जुन मित्र को परमात्मा की स्थिति में रख पाता है। और जो परमात्मा को इतने निकट देख पाता है, वही देख पाता है। दूर आकाश में बैठे हुए परमात्मा के लिए सिर झुकाना बहुत आसान है। पास-पड़ोसी में छिपे परमात्मा को सिर झुकाना बहुत मुश्किल है। पत्नी में, पति में, बेटे में, भाई में छिपे परमात्मा को सिर झुकाना बहुत मुश्किल है। स्वभावतः, जो जितने निकट है, उसके साथ हमारे अहंकार का संघर्ष, प्रतिद्वंद्विता उतनी ही बड़ी हो जाती है। इसलिए यहूदी कहते हैं कि कभी भी कोई पैगंबर अपने गांव में नहीं पूजा जाता। न पूजे जाने का कारण है। क्योंकि इतना निकट है गांव के लिए पैगंबर, कि यह मानना मुश्किल है कि तुम हमसे ऊपर हो! असंभव है। इसलिए गांव में तो पैगंबर को पत्थर ही पड़ेंगे। पूजा मिलनी बहुत मुश्किल है।
अर्जुन कृष्ण को कह सका कि तुम्हारा अनुग्रह है, मेरी कोई पात्रता नहीं है। यह उसकी पात्रता का सबूत है। यह धार्मिक जगत में प्रवेश करने वाले व्यक्ति की पहली योग्यता है, पहला लक्षण है।
मुझ पर अनुग्रह करने के लिए परम गोपनीय अध्यात्म-विषयक वचन अर्थात उपदेश आपके द्वारा जो कहा गया, उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है।
दूसरी बात, परम गोपनीय अध्यात्म।
अध्यात्म प्रेम से भी ज्यादा गोपनीय है। इसे थोड़ा हम समझ लें। आप जिसे प्रेम करते हैं, चाहते हैं, उसके साथ एकांत मिले। दूसरे की मौजूदगी खटकती है। दो प्रेमी किसी को भी मौजूद नहीं देखना चाहते, अकेले हो जाना चाहते हैं। क्यों? इतना अकेले की क्या तलाश है? अकेले में इतना क्या रस है? दूसरे की मौजूदगी क्या बाधा देती है?
पहली बात, जिसके साथ हम गहरे प्रेम में हैं, उसमें हम लीन होना चाहते हैं और उसे अपने में लीन कर लेना चाहते हैं। जिसके साथ गहरे प्रेम में हैं, उसके साथ हम द्वैत को तोड़ देना चाहते हैं, अद्वैत हो जाना चाहते हैं। दो न रहें, एक ही रह जाए। लेकिन वह जो तीसरा मौजूद है, उसके साथ तो हमारा कोई प्रेम नहीं है। उसकी मौजूदगी अद्वैत को घटित न होने देगी।
इसलिए प्रेमी एकांत चाहते हैं, प्राइवेसी चाहते हैं, अकेलापन चाहते हैं। वह तीसरे की जो मौजूदगी है, बाधा बन जाएगी और द्वैत बना रहेगा। वह

मौजूद न हो, तो दो व्यक्ति लीन हो सकते हैं एक में। इसलिए प्रेम गोपनीय है, गुप्त है, सार्वजनिक नहीं है।
अध्यात्म और भी गोपनीय है। क्योंकि प्रेम में तो शायद दो शरीर ही मिलते हैं, अध्यात्म में गुरु और शिष्य की आत्मा भी मिल जाती है। और जब तक यह मिलन घटित न हो कि गुरु और शिष्य, प्रेमी और प्रेमिका की तरह आत्मा के तल पर एक न हो जाएं, तब तक अध्यात्म का संचरण, अध्यात्म का उपदेश, अध्यात्म का दान, असंभव है। इसलिए अध्यात्म गोपनीय है।
शरीर भी मिलते हैं तो गुप्तता चाहिए, तो जब आत्माएं मिलती हैं तो और
भी गुप्तता चाहिए। इसलिए अध्यात्म छिपा-छिपाकर दिया गया है, चुपचाप दिया गया है, मौन में दिया गया है। कारण, इतना मौन, इतनी चुप्पी, इतना एकांत न हो, तो वह जो भीतर, दो का मिलन, संवाद है, वह असंभव है।
अर्जुन कहता है कि इतनी गोपनीय बात को आपने मुझ पर प्रकट किया, यह सिवाय अनुग्रह के और क्या हो सकता है!
इस प्रकटीकरण में, इस अभिव्यक्ति में, इस गोपनीय मिलन में और भी एक बात विचारणीय है कि यह घटना घटती है युद्ध के मैदान पर। चारों तरफ बड़ा समूह है। और साधारण समूह नहीं, युद्ध को रत, युद्ध के लिए तत्पर। इस युद्ध के लिए तत्पर समूह में भी यह गोपनीयता घट जाती है। यह मिलन, यह कृष्ण का संवाद अर्जुन को सुनाई पड़ जाता है, यह कृष्ण अनुग्रह कर पाते हैं।
तो एक और बात ख्याल ले लेनी चाहिए। और वह यह कि दो शरीरों को मिलना हो,
तो भौतिक अर्थों में एकांत चाहिए। दो आत्माओं को मिलना हो, तो भीड़ में भी मिल सकती हैं। भौतिक अर्थों में एकांत का फिर कोई अर्थ नहीं है। इस भीड़ में भी दो आत्माओं का मिलन हो सकता है। क्योंकि भीड़ तो शरीर के तल पर है। यह बहुत विचार की बात रही है। जिन लोगों ने भी गीता पर गहन अध्ययन किया है, उन्हें यह मन में विचार उठता ही रहा है, यह प्रश्न जगता ही रहा है, कि युद्ध के मैदान पर, भीड़ में, युद्ध के लिए तत्पर लोगों के बीच, कृष्ण को भी कहां की जगह मिली गीता का संदेश कहने के लिए! पर यह बहुत सुविचारित मालूम पड़ता है।
अध्यात्म, शरीर की भीड़ के बीच भी एकांत पा सकता है। अध्यात्म, बाजार
के बीच भी अकेला हो सकता है। और आध्यात्मिक मिलन युद्ध के क्षण में भी घट सकता है। क्योंकि युद्ध, बाजार, शरीरों की भीड़, सब बाहर हैं। अगर भीतर तत्परता हो, पात्रता हो, और अगर भीतर ग्रहण करने की क्षमता हो, लीन होने की, विनम्र होने की, डूबने की, चरणों में गिर जाने की भावना हो, तो अध्यात्म कहीं भी घटित हो सकता है--युद्ध में भी।
इस बात को जिस अनूठे ढंग से गीता ने जगत को दिया है, कोई दूसरा शास्त्र नहीं दे सका। और इसलिए गीता अगर इतनी रुचिकर हो गई, और मन पर इतनी छा गई, तो उसका कारण है।
उपनिषद हैं, वनों के एकांत में, मौन, शांति में, गुरु और शिष्य के बीच, बड़े ध्यान के क्षण में संवादित हैं। बाइबिल है, बहुत एकांत में चुने हुए शिष्यों से कही गई बातें हैं। लेकिन गीता घने संसार के बीच दिया गया संदेश है। और युद्ध से ज्यादा घना संसार क्या होगा? वहां भी अध्यात्म घटित हो सकता है, अगर पात्र सीधा हो। और वह जो गोपनीय है, अधिकतम गोपनीय है, जो सबके सामने नहीं कहा जा सकता, वह भी कहा जा सकता है, अगर पात्र शांत, मौन, स्वीकार करने को तैयार हो।
फिर भौतिक अकेलेपन का अर्थ होता है, कोई और मौजूद नहीं। आध्यात्मिक अकेलेपन का अर्थ होता है, आप मौजूद नहीं।
इसे ठीक से समझ लें।
भौतिक भीड़ का अर्थ होता है, बहुत लोग मौजूद हैं। आध्यात्मिक एकांत का अर्थ होता है, शिष्य मौजूद नहीं।
गुरु तो गैर-मौजूदगी का नाम ही है, इसलिए उसकी हम बात ही न करें। गुरु
का तो अर्थ ही है कि जो गैर-मौजूद हो गया। जो अब एब्सेंट है, जो उपस्थित नहीं है; जो दिखाई पड़ता है और भीतर शून्य है।
जब शिष्य भी गैर-मौजूद हो जाए, इतना डूब जाए कि भूल जाए अपने को कि मैं हूं, तो आध्यात्मिक एकांत घटित होता है। और उस एकांत में ही वे गोपनीय

सूत्र दिए जा सकते हैं; किसी और तरह से दिए जाने का जिनका कोई भी उपाय नहीं है।
तो अर्जुन ने कहा कि जो अत्यंत गोपनीय है, वह भी अनुग्रह करके तुमने मुझे कहा, उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है।
इसे ख्याल कर लें। अज्ञान का नष्ट हो जाना, यहां ज्ञान का पैदा हो जाना नहीं है। ज्ञान तो है अनुभव। अज्ञान तो नष्ट हो सकता है गुरु के वचन से भी। लेकिन नकारात्मक है। अर्जुन कह रहा है, मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। वह यह कह रहा है कि अब तक मेरी जो मान्यताएं थीं, वे टूट गईं। अब तक जैसा मैं सोचता था, अब नहीं सोच पाऊंगा। आपने जो कहा, उसने मेरे विचार बदल दिए। आपने जो मुझे दिया, उससे मेरा मन रूपांतरित हो गया; मैं बदल गया हूं। मेरा अज्ञान टूट गया। लेकिन अभी ज्ञान नहीं हो गया है। अभी बीमारी तो हट गई है, लेकिन अभी स्वास्थ्य का जन्म नहीं हुआ है। अभी नकारात्मक रूप से बाधाएं मेरी टूट गईं, लेकिन अभी पाजिटिवली, विधायक रूप से मेरा आविर्भाव नहीं हुआ है।
यह काफी कीमती है, सोचने जैसा है। क्योंकि बहुत-से लोग इस तरह के अज्ञान मिटने को ही ज्ञान समझ लेते हैं। शास्त्र हैं, सदवचन हैं, सदगुरु हैं, उनके वचनों को लोग इकट्ठा कर लेते हैं; और सोचते हैं, ज्ञान हो गया; और सोचते हैं, जान लिया। क्योंकि गीता कंठस्थ है, वेद के वचन याद हैं, उपनिषद होंठ पर रखे हैं, तो ज्ञान हो गया।
ध्यान रहे, अर्जुन कहता है, अज्ञान नष्ट हो गया। अब तक जो मेरी मान्यता थी अज्ञान से भरी हुई, वह टूट गई। लेकिन अभी ज्ञान नहीं हुआ है, क्योंकि ज्ञान तो तभी होता है, जब मैं अनुभव कर लूं।
यह कृष्ण ने जो कहा है, इस पर भरोसा आ गया। और कृष्ण जैसे लोग भरोसे के योग्य होते हैं। उनकी मौजूदगी भरोसा पैदा करवा देती है। उनका खुद का आनंद, उनका खुद का मौन, उनकी शांति, उनकी शून्यता, छा जाती है, आच्छादित कर लेती है। उनकी आंखें, उनका होना, पकड़ लेता है चुंबक की तरह, खींच लेता है प्राणों को, भरोसा आ जाता है।
लेकिन यह भरोसा ज्ञान नहीं है। यह भरोसा उपयोगी है हमारी भ्रांत धारणाओं को तोड़ देने के लिए। लेकिन भ्रांत धारणाओं का टूट जाना ही सत्य का आ जाना नहीं है।
पंडित ज्ञानी नहीं है। पंडित अज्ञानी नहीं है, पंडित ज्ञानी भी नहीं है। पंडित अज्ञानी और ज्ञानी के बीच है। अज्ञानी वह है, जिसे कुछ भी पता नहीं। पंडित वह है, जिसे सब कुछ पता है। और ज्ञानी वह है, जिसके पता में और जिसके अनुभव में कोई भेद नहीं है। जो जानता है, जो उसकी जानकारी है, वह उसका अपना निजी अनुभव भी है। वह उधार नहीं जानता। किसी ने कहा है, ऐसा नहीं जानता। खुद ही जानता है, अपने से जानता है।
अभी अर्जुन को जो जानकारी हुई, वह कृष्ण के कहने से हुई है। अभी कृष्ण ऐसा कहते हैं, और कृष्ण पर अर्जुन को भरोसा आया है, इसलिए अर्जुन कहता है कि मेरा अज्ञान टूट गया। लेकिन अभी मैं नहीं जानता हूं, अभी तुम कहते हो। इसलिए अगर कृष्ण थोड़ा हट जाएं अलग, अर्जुन के संदेह वापस लौट आएंगे। इसलिए कृष्ण अगर खो जाएं, तो अर्जुन फिर वापस वहीं पहुंच जाएगा, जहां वह गीता के प्रारंभ में था। उसमें देर नहीं लगेगी। और अगर ईमानदार होगा तो जल्दी पहुंच जाएगा, अगर बेईमान होगा तो थोड़ी देर लगेगी। क्योंकि तब वह शब्दों को ही दोहराता रहेगा, घोंटता रहेगा। और अपने को समझाता रहेगा कि मुझे मालूम है, मुझे मालूम है।
लेकिन अर्जुन ईमानदार है।
और इस जगत में सबसे बड़ी ईमानदारी अपने प्रति ईमानदारी है। आप दूसरे
को धोखा देते हैं, उससे कुछ बहुत बनता-बिगड़ता नहीं। अच्छा नहीं है, लेकिन कुछ बहुत बनता-बिगड़ता नहीं। थोड़ा पैसे का नुकसान पहुंचा देंगे, कुछ और करेंगे। लेकिन जो धोखा आप अपने को दे सकते हैं, उससे आपका पूरा जीवन मिट्टी हो जाता है। और हम धोखा देते हैं। सबसे बड़ा धोखा जो हम अपने को दे सकते हैं, वह यह है कि बिना स्वयं जाने हम मान लें कि हमने जान लिया है।

अगर कोई आपसे पूछे, ईश्वर है? तो आप चुप न रह पाएंगे। या तो कहेंगे, है;
या कहेंगे, नहीं है। यह न कह पाएंगे कि मुझे पता नहीं है। अगर आप यह कह पाएं कि मुझे पता नहीं, तो आप ईमानदार आदमी हैं। अगर आप कहें कि हां है, और लड़ने- झगड़ने को तैयार हो जाएं, और बिना कुछ अनुभव के, तो आप बेईमान हैं। अगर आप कहें, नहीं है; और तर्क करने को तैयार हो जाएं, बिना किसी अनुभव के, तो भी आप बेईमान हैं।
जिनको हम आस्तिक और नास्तिक कहते हैं, वे बेईमानी की दो शक्लें हैं। ईमानदार आदमी कहेगा, मुझे पता नहीं। मैं कैसे कहूं कि है, मैं कैसे कहूं कि नहीं है! कोई कहता है कि है, कोई कहता है कि नहीं है। कभी एक पर भरोसा आ जाता है, अगर आदमी बलशाली हो।
बुद्ध जैसा आदमी आपके पास खड़ा हो, तो भरोसा दिला देगा कि ईश्वर वगैरह कुछ भी नहीं है। यह बुद्ध की वजह से। महावीर जैसा आदमी आपके पास खड़ा हो, तो भरोसा दिलवा देगा कि ईश्वर वगैरह सब बकवास है। और कृष्ण जैसा आदमी पास खड़ा हो, तो आस्था आ जाएगी कि ईश्वर है। और जीसस जैसा आदमी पास खड़ा हो, तो आस्था आ जाएगी कि ईश्वर है। लेकिन आपका अपना अनुभव कोई भी नहीं है।
लेकिन कृष्ण के कारण जो झलक आती है, वह भी उधार है। बुद्ध के कारण जो झलक आती है, वह भी उधार है। उधार झलकों से अज्ञान मिट जाता है, लेकिन ज्ञान अपनी ही झलक से पैदा होता है।
इसलिए अर्जुन कहता है कि आपने जो मुझे कहा, उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है। क्योंकि हे कमलनेत्र, मैंने भूतों की उत्पत्ति और प्रलय आपसे विस्तारपूर्वक सुने हैं, आपका अविनाशी प्रभाव भी सुना। हे परमेश्वर, आप अपने को जैसा कहते हो, यह ठीक ऐसा ही है। ऐसा भी मैंने अनुभव लिया, ऐसा भी मुझे समझ में आया, कि आप जैसा कहते हो, ऐसा ही है, ऐसी मेरी श्रद्धा बनी। परंतु हे पुरुषोत्तम... ।
और यह परंतु विचारणीय है। नहीं तो बात खतम हो गई। अर्जुन कहता है, जैसा आप कहते हो, ऐसा ही है। ऐसी भी मेरी श्रद्धा हो गई। अब बात खतम हो जानी चाहिए। जब श्रद्धा ही आ गई, तो अब लेकिन-परंतु का क्या अर्थ है! अब चुप हो जाओ। गीता समाप्त हो जानी चाहिए थी। यहां बात पूरी हो गई।
हम अगर होते, तो गीता यहां समाप्त हो गई होती। हम इसी जगह रुक गए हैं आकर। श्रद्धा आ गई है, मंदिर में पूजा कर लेते हैं, शास्त्र को सिर झुका लेते हैं, गुरु के चरण में फूल चढ़ा आते हैं। बात समाप्त हो गई। हमें शब्द याद हैं, सिद्धांतों का पता है, शास्त्र हमारे मन पर हैं। अब और क्या बाकी बचा है?
अभी कुछ भी नहीं हुआ। अभी नौका किनारे से भी नहीं छूटी।
इसलिए अर्जुन कहता है, परंतु हे पुरुषोत्तम, आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजयुक्त रूप को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं। यह तो आपकी आंखों से जो आपने देखा है, वह मुझे कहा। यह मेरे कानों ने सुना है, लेकिन आपकी आंखों का देखा हुआ है। अब मैं अपनी ही आंख से देखना चाहता हूं, प्रत्यक्ष। और जब तक मैं न देख लूं, तब तक आप भरोसे योग्य हैं, भरोसा करता हूं। लेकिन जब तक मैं न देख लूं, तब तक ज्ञान का जन्म नहीं होता है।
शब्द पर मत रुक जाना, शब्द पर रुकने वाला भटक जाता है। और सारी दुनिया शब्द पर रुकी है। कोई कुरान के शब्द पर रुका है, वह अपने को मुसलमान कहता है। कोई गीता के शब्द पर रुका है, वह अपने को हिंदू कहता है। कोई बाइबिल के शब्द पर रुका है, वह अपने को ईसाई कहता है। लेकिन ये शब्दों पर रुके हुए लोग हैं।
दुनिया में सब संप्रदाय, शब्दों के संप्रदाय हैं। धर्म का तो कोई संप्रदाय हो नहीं सकता। क्योंकि धर्म शब्द नहीं, अनुभव है। और अनुभव हिंदू, मुसलमान, ईसाई नहीं होता। अनुभव तो ऐसा ही निखालिस एक होता है, जैसे एक आकाश है।
कृष्ण से बड़ी तरकीब से अर्जुन ने यह बात पूछी है। कहा कि आस्था पूरी है, आप जो कहते हैं; भरोसा आता है। आप कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। अब यह कहने की कोई भी गुंजाइश नहीं कि आप गलत कहते हैं। आपने मुझे ठीक-ठीक समझा

दिया। जैसा आपने कहा है, वैसा ही है। लेकिन अब मैं अपनी आंख से देखना चाहता हूं।
और जो शिष्य अपने गुरु से यह न पूछे कि मैं अपनी आंख से देखना चाहता हूं, वह शिष्य ही नहीं है। जो गुरु के शब्द मानकर बैठ जाए और उन्हें घोंटता रहे और मर जाए, वह शिष्य नहीं है। और जो गुरु अपने शिष्य को शब्द घुटाने में लगा दे, वह गुरु भी नहीं है।
कृष्ण प्रतीक्षा ही कर रहे होंगे कि कब अर्जुन यह पूछे। अब तक की जो बातचीत थी, वह बौद्धिक थी। अब तक अर्जुन ने जो सवाल उठाए थे, वे बुद्धिगत थे, विचारपूर्ण थे। उनका निरसन कृष्ण करते चले गए। जो भी अर्जुन ने कहा, वह गलत है, यह बुद्धि और तर्क से कृष्ण समझाते चले गए। निश्चित ही, वे प्रतीक्षा कर रहे होंगे कि अर्जुन पूछे; वह क्षण आए, जब अर्जुन कहे कि अब मैं आंख से देखना चाहता हूं।
आमतौर से गुरु डरेंगे, जब आप कहेंगे कि अब मैं आंख से देखना चाहता हूं। तब गुरु कहेंगे कि श्रद्धा रखो, भरोसा रखो; संदेह मत करो। लेकिन ठीक गुरु इसीलिए सारी बात कर रहा है कि किसी दिन आप हिम्मत जुटाएं और कहें कि अब मैं देखना चाहता हूं। अब शब्दों से नहीं चलेगा। अब विचार काफी नहीं हैं। अब तो प्राण ही उसमें एक न हो जाएं, मेरा ही साक्षात्कार न हो, तब तक अब कोई चैन, अब कोई शांति नहीं है।
तो अर्जुन ने कहा, हे कमलनेत्र, हे परमेश्वर, अब मैं आपके विराट को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं।
यह प्रश्न अति दुस्साहस का है। शायद इससे बड़ा कोई दुस्साहस जीवन में नहीं है। क्योंकि विराट को अगर आंख से देखना हो, तो बड़े उपद्रव हैं। क्योंकि हमारी आंख तो सीमा को ही देखने में सक्षम है। हम तो जो भी देखते हैं, वह रूप है, आकार है। हमारी आंख ने निराकार तो कभी देखा नहीं। हमारी आंख की क्षमता भी नहीं है निराकार को देखने की। हमारी आंख बनी ही आकृति को देखने के लिए है। तो विराट को देखने के लिए यह आंख काम नहीं करेगी।
सच तो यह है कि इस आंख की तरफ से बिल्कुल अंधा हो जाना पड़ेगा। यह आंख छोड़ देनी पड़ेगी। यह आंख तो बंद ही कर लेनी पड़ेगी। और इस आंख, इन दो आंखों से जो शक्ति बाहर प्रवाहित हो रही है, उस शक्ति को किसी और आयाम में प्रवाहित करना होगा, जहां कि नई आंख उपलब्ध हो सके।
जिससे मैं देख रहा हूं, इन आंखों के द्वारा... । ध्यान रहे, हम आंख से नहीं देखते; आंख के द्वारा देखते हैं। आंख से कोई नहीं देखता। आंख के द्वारा देखते हैं। आंख के पीछे खड़े हैं हम। आंख हमारी खिड़की है, उससे हम देखते हैं। इस खिड़की से तो विराट को देखा नहीं जा सकता, क्योंकि यह खिड़की ही विराट पर ढांचा बिठा देती है। यह खिड़की के कारण ही विराट पर आकार बन जाता है।
आप अपनी खिड़की से आकाश को देखते हैं। आकाश भी लगता है कि खिड़की के ही आकार का है। उतना ही दिखाई पड़ता है, जितना खिड़की का आकार है।
तो इन आंखों से तो विराट देखा नहीं जा सकता। इसलिए बड़ी हिम्मत की जरूरत है, अंधा हो जाने की। इन आंखों से तो सारी शक्ति को खींच लेना पड़े। और उस दिशा में शक्ति को प्रवाहित करना पड़े, जहां कोई खिड़की नहीं है, खुला आकाश है, तब विराट देखा जा सके। उस घटना को ही हम तीसरा नेत्र, थर्ड आई, शिव नेत्र या कोई और नाम देते हैं। वह तीसरी आंख खुल जाए, वह दिव्य-च्रु, तो! उसके बिना परमात्मा के प्रत्यक्ष रूप को नहीं देखा जा सकता।
तब जो भी हम देखते हैं, वह परोक्ष है। जो भी हम देखते हैं, वह अनेक-अनेक परदों के पीछे से देखते हैं। उसे सीधा नहीं देखा जा सकता। हमारे पास जो उपकरण हैं, वे ही उसे परोक्ष कर देते हैं। इन उपकरणों को छोड़कर, इंद्रियों को छोड़कर, आंखों को छोड़कर, किसी और दिशा से भी देखना हो सकता है।
तो पहला तो दुस्साहस, अंधा होने का। क्योंकि इन आंखों से ज्योति न हटे, तो तीसरी आंख पर ज्योति नहीं पहुंचती।
दूसरा दुस्साहस, विराट को देखना बड़ा खतरनाक है। जैसे कि कोई गहन गड्ढ में झांके, तो घबड़ा जाए; हाथ-पैर कंपने लगे; सिर घूम जाए। कभी किसी पहाड़ की

चोटी पर किनारे, बहुत किनारे जाकर गड्ढ में झांककर देखा है? तो जो भय समा जाए, मृत्यु दिखाई पड़ने लगे उस गड्ढ में।
लेकिन वह गड्ढ तो कुछ भी नहीं है। परमात्मा तो अनंत गड्ढा है, विराट शून्य है, जहां सब आकार खो जाते हैं, जहां फिर कोई तल और सीमा नहीं है। जहां फिर दृष्टि चलेगी तो रुकेगी नहीं कहीं, कोई जगह न आएगी, जहां रुक जाए। वहां घबड़ाहट पकड़ेगी। परम संताप पकड़ लेगा। और लगेगा, मैं मिटा, मैं मरा, मैं गया। विराट के साथ दोस्ती बनाने का मतलब ही खुद को मिटाना है।
तो पहला काम तो अंधा होना पड़े, तब वह आंख खुले। और दूसरा काम, मरने की तैयारी दिखानी पड़े, तब उस जीवन से संस्पर्श हो।
इसलिए कीर्कगार्ड ने, एक ईसाई रहस्यवादी संत ने कहा है कि परमात्मा
को खोजना सबसे बड़े खतरे की खोज है--दि मोस्ट डेंजरस थिंग। है भी। सबसे बड़ा जुआ है। अपने जीवन को ही दांव पर लगाने का उपद्रव है। यह ऐसे ही है, जैसे बूंद सागर को खोजने जाए, तो मिटने को जा रही है। जहां सागर को पाएगी, वहां मिटेगी; फिर लौटना भी मुश्किल हो जाएगा। सीमा असीमा को खोजती हो; क्षुद्र विराट को खोजता हो; आकार निराकार को खोजता हो; तो मृत्यु की खोज है यह। इसलिए बुद्ध ने ईश्वर नाम ही नहीं दिया उसे। इसलिए बुद्ध ने कहा, वह
है महाशून्य; ईश्वर नाम मत दो। क्योंकि ईश्वर नाम देने से हमारे मन में आकृति बन जाती है। हमने ईश्वर की आकृतियां बना ली हैं इसलिए। इसलिए बुद्ध ने कहा, ईश्वर की बात ही मत करो, वह है महाशून्य। इसलिए लोगों ने जब बुद्ध से पूछा कि क्या वहां परम जीवन है? बुद्ध ने कहा, जीवन की बात ही मत करो। वह है परम मृत्यु, वह है निर्वाण, सबका मिट जाना।
बुद्ध के पास से भी लोग भाग खड़े होते थे। हमारे इस बड़े आध्यात्मिक मुल्क में भी बुद्ध के पैर न जम सके। और उसका कारण एक ही था। उसका कारण कुल इतना था कि बुद्ध के पास भी जाने में खतरा था। बुद्ध के पास भी वह खाई थी। बुद्ध के पास जाने का मतलब था कि वह परम शून्य... । बुद्ध में झांकना, बुद्ध से दोस्ती बनानी, उस परम शून्य के साथ दोस्ती बनानी थी। और बुद्ध आकृति की बात ही न करते; वे कहते, मिटना, समाप्त होना। सागर को खोजने की बात मत करो। वे कहते थे, बूंद मिटने की तैयारी रखती हो, तो सागर यहीं है।
तो कृष्ण से पूछा जा रहा है वह परम खतरनाक सवाल अर्जुन के द्वारा, कि मैं तुम्हें अपनी ही आंखों से देखना चाहता हूं, प्रत्यक्ष। यह खतरनाक सवाल है, इसलिए अर्जुन एक शर्त भी रख देता है। वह कहता है, इसलिए हे प्रभो! मेरे द्वारा वह आपका रूप देखा जाना शक्य है, ऐसा यदि मानते हों, तो योगेश्वर, आप अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइए।
भय तो उसे पकड़ा होगा। वह जो कह रहा है, वह खतरनाक है। वह जो देखना चाहता है, वह मनुष्य की आखिरी आकांक्षा है। वह असंभव चाह है, इम्पासिबल डिजायर है।
और मनुष्य उसी दिन पूरा मनुष्य हो पाता है, जिस दिन यह असंभव चाह उसे पकड़ लेती है। तब तक हम कीड़े-मकोड़े हैं। तब तक हमारी चाह में और जानवरों की चाह में कोई फर्क नहीं है।
हम भी धन इकट्ठा कर रहे हैं, जानवर भी परिग्रह करते हैं। थोड़ा करते हैं हमसे, तो उसका मतलब हुआ, हमसे थोड़े छोटे जानवर हैं। हम थोड़ा ज्यादा करते हैं। वे एक मौसम का करते हैं, तो हम पूरी जिंदगी का करते हैं। तो हमारा जानवरपन थोड़ा विस्तीर्ण है। वे भी कामवासना की तलाश कर रहे हैं-- स्त्री पुरुष को खोज रही है, पुरुष स्त्री को खोज रहा है--हम भी वही कर रहे हैं। तो पशु में और हममें फर्क क्या है?
हमारी भी वासना वही है, जो पशु की है। लेकिन एक वासना है, परमात्मा की वासना, जो मनुष्य की ही है। कोई पशु विराट को नहीं खोज रहा है। और जब तक आप विराट को नहीं खोज रहे हैं, तब तक जानना कि पशु की सीमा का आपने अतिक्रमण नहीं किया।
मनुष्य विराट की खोज है, असंभव की चाह है।
सभी पशु अपने को बचाने की कोशिश में लगे हैं। कोई भी पशु मरना नहीं चाहता, कोई पशु मिटना नहीं चाहता। सिर्फ मनुष्य में कभी-कभी कोई मनुष्य पैदा होते हैं, जो अपने को दांव पर लगाते हैं, अपने को मिटाने की हिम्मत

करते हैं, ताकि परम को जान सकें। अकेला मनुष्य है, जो अपने जीवन को भी दांव पर लगाता है।
जीवन को दांव पर लगाने का साहस, असंभव की चाह है।
विराट को आंखों से देखने की वासना, यह अभीप्सा। अर्जुन को लगा होगा, पता नहीं मेरी योग्यता भी है या नहीं! यह शक्य भी है या नहीं! यह संभव भी है या नहीं! और मैं भी इस जगह आ गया हूं या नहीं, जहां ऐसा सवाल पूछ सकूं! यह सवाल कहीं मैंने जरूरत से ज्यादा तो नहीं पूछ लिया? यह सवाल कहीं मेरी सीमा का अतिक्रमण तो नहीं कर जाता? यह सवाल कहीं ऐसा तो नहीं है कि अगर कृष्ण इसे पूरा करें, तो मैं मुसीबत में पड़ जाऊं?
इसलिए उसने कहा कि वह आपका रूप देखा जाना शक्य हो, संभव हो, योग्यता हो मेरी, पात्रता हो मेरी, ऐसा यदि आप मानते हों! क्योंकि यहां मेरी मान्यता क्या काम करेगी? जिसे हमने जाना नहीं है, उसके संबंध में हम पात्र भी हैं, यह भी हम कैसे जान सकते हैं? बिना किए पात्रता का कोई पता भी तो नहीं चलता। जो हमने किया ही नहीं है, वह हम कर सकेंगे या न कर सकेंगे, इसे जानने का उपाय, मापदंड भी तो कोई नहीं है।
इसलिए शिष्य पूछता है, लेकिन उत्तर मिले ही, इसका आग्रह नहीं करता। और
जो शिष्य इसका आग्रह करता है कि उत्तर मिलना ही चाहिए, उसे अभी पता ही नहीं है कि वह बचकानी बात कर रहा है।
प्रश्न पूछा जा सकता है, लेकिन उत्तर तो गुरु पर ही छोड़ देना होगा। पता नहीं, अभी समय आया या नहीं! अभी फल पका या नहीं! अभी घड़ी पकी या नहीं! अभी उस जगह हूं या नहीं, जहां तीसरी आंख खुले सके! और अगर खुल भी सके, तो मैं झेल भी सकूंगा उस विराट को या नहीं!
विराट को देखना, उसे झेलना, उसे आत्मसात कर लेना, आग के साथ खेलना है।
तो यह हो सकेगा मुझसे या नहीं, इसे ध्यान रखें।
अर्जुन ने बड़ी समझ की बात कही है कि आप ऐसा मानते हों तो, तो ही मुझे प्रत्यक्ष कराएं। अन्यथा मैं रुक सकता हूं। जल्दी नहीं करूंगा, धैर्य रख सकता हूं, प्रतीक्षा करूंगा। और जब समझें कि मैं योग्य हुआ... ।
कई बार ऐसा हुआ है कि शिष्यों को वर्षों प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसलिए नहीं कि गुरु को उत्तर पता नहीं था। इसलिए भी नहीं कि गुरु कुछ मजा ले रहा था, कि काफी समय व्यतीत हो जाए और आप उसकी सेवा-स्तुति करते रहें। सिर्फ इसलिए कि शिष्य जब तक इसके योग्य न हो जाए कि झांक सके अनंत गड्ढ में; विस्तारहीनता में झांक सके, जब तक इसके योग्य न हो जाए। नहीं तो होगा क्या? अगर अर्जुन थोड़ा भी कच्चा हो, तो पागल होकर वापस लौटेगा, विक्षिप्त हो जाएगा।
अनेक साधक विक्षिप्त हो जाते हैं, जल्दबाजी के कारण; पागल हो जाते हैं। और साधारण पागल का तो इलाज हो सकता है। साधक अगर पागल हो जाए, तो मनोचिकित्सक के पास इलाज का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि उसकी बीमारी शरीर की बीमारी नहीं है, उसकी बीमारी मन की भी बीमारी नहीं है, उसकी बीमारी मन के जो अतीत है, उससे संपर्क से पैदा हुई है। उसके इलाज का कोई उपाय नहीं है।
आपने उन फकीरों के संबंध में सुना होगा, जिनको हम मस्त कहते हैं, सूफी जिनको मस्त कहते हैं। मस्त का मतलब ही केवल इतना है कि अभी कुछ कच्चा था आदमी, और कूद गया। तो देख तो लिया उसने, लेकिन सब अस्तव्यस्त हो गया। उस अराजक में झांककर वह भी अराजक हो गया। सब अस्तव्यस्त हो गया। वापस लौटना मुश्किल हो गया। अगर वह वापस भी लौट आए, तो जो उसने देखा है, उसे भूल नहीं सकता। जो उसने जाना है, वह उसका पीछा करेगा। जो उसने अनुभव कर लिया है, वह उसके रोएं-रोएं में समा गया है। अब उससे छुटकारा नहीं है। और अब वह बेचैन करेगा। और अब उसे जीने नहीं देगा, और मुश्किल में डाल देगा।
विक्षिप्तता घटित होती है, अगर साधक जल्दबाजी करे। और सभी साधक जल्दबाजी करने की कोशिश करते हैं। क्योंकि जो भी उसकी तलाश में है, प्यासा है; चाहता है, जल्दी पानी मिल जाए। लेकिन जल्दी मिला हुआ पानी हो सकता है जहर साबित हो। जल्दी जहर है।

हो सकता है, अभी प्यास ही न थी इतनी, और पानी का सागर ऊपर टूट पड़े, तो भी मुसीबत हो जाए। फिर हमारी आदत सागर के पानी को पीने की नहीं है। सागर का पानी मिल भी जाए, तो हम प्यासे मर जाएंगे। हम तो पानी, छोटे-छोटे कुएं, गड्ढे खोदकर, पीने की हमारी आदत है। वहीं हमारा तालमेल भी है। अचानक विराट का संपर्क अस्तव्यस्त कर जाता है। केआस!
नीत्शे को ऐसा हुआ। यह जर्मन विचारक नीत्शे उसी हैसियत की चेतना थी, जिस हैसियत की बुद्ध, महावीर। लेकिन विक्षिप्त हो गया यह आदमी। और विक्षिप्त होने का एक ही कारण था। इस आदमी ने अति आग्रह किया अनंत में उतर जाने का; सब सीमाओं को तोड़कर--विचार की, शब्द की, शास्त्र की, सिद्धांत की, समाज की--सब सीमाओं को तोड़कर नीत्शे ने हिम्मत जुटाई अनंत में झांकने की, बिना गुरु के।
कभी-कभी बुद्ध जैसा व्यक्ति बिना गुरु के भी वापस लौट आया है। लेकिन शायद पीछे अनंत जन्मों की साधना होगी। नीत्शे, ऐसा लगता है कि बिल्कुल अपरिपक्व, उस विराट के आमने-सामने खड़ा हो गया।
नीत्शे ने कहा है कि जैसे समय से हजारों मील ऊपर मैं खड़ा हूं। समय से हजारों मील ऊपर! कोई मतलब नहीं होता इसका। क्योंकि समय और मील का क्या संबंध? लेकिन मतलब एक है कि समय के बाहर खड़ा हूं। हजारों मील बाहर खड़ा हूं, और देख रहा हूं विराट अराजकता को।
उसके बाद नीत्शे फिर कभी स्वस्थ नहीं हो सका। उसके बाद जो भी उसने लिखा, उसमें हीरे हैं; ऐसे हीरे हैं, जो कि मुश्किल से मिलें; लेकिन सब हीरे विक्षिप्त मालूम पड़ते हैं। सब हीरे जैसे जहर में बुझाए गए हों। उसकी वाणी में झलक बुद्ध की है, और साथ में पागलपन भी है। कहीं-कहीं आकाश झांकता है विराट का, और सब तरफ पागलपन दिखाई पड़ता है।
क्या हुआ इसे? इसने कुछ देखा जरूर। लेकिन शायद अभी उचित न था देखना। समय के पहले देख लिया। नीत्शे पागल ही मरा।
अर्जुन डरा होगा कि जो मैं पूछता हूं, छोड़ दूं कृष्ण पर ही। यदि शक्य हो, यदि आप समझें कि यह रूप देखा जाना शक्य है, तो अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइए। अब मुझे कहिए मत कुछ, अब मुझे दिखाइए। अब मैं स्वाद लेना चाहता हूं। सुनना नहीं चाहता, हो जाना चाहता हूं। अनुभव! कि मैं भी वही जान सकूं, जो आप जानते हैं। और वही जान सकूं, जो आप हैं।
इस प्रकार अर्जुन के प्रार्थना करने पर कृष्ण ने कहा, हे पार्थ, मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख।
अर्जुन बिल्कुल तैयार था। और उसकी रुकने की तैयारी लक्षण है। अधैर्य रुग्ण चित्त का लक्षण है। जो कहता है, मैं रुक सकता हूं, प्रतीक्षा कर सकता हूं, जब समझें कि योग्य हूं, तब तक राह देखूंगा, वह इसी वक्त योग्य हो गया। इतना धैर्य योग्यता है। जो कहता है, अभी दिखा दें, अभी करवा दें, अभी हो जाए, जल्दी हो जाए... ।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान कितने दिन करें तो परमात्मा
का अनुभव हो जाए! कितने दिन! कितने जन्म पूछें, तो संगत मालूम पड़ता है। वे पूछते हैं, कितने दिन! मैं उनसे पूछता हूं, चौबीस घंटे करिएगा? कहते हैं, नहीं। आधा घंटा, पंद्रह मिनट रोज निकाल सकते हैं। पंद्रह मिनट भी सच में मौन हो जाइएगा? वे कहते हैं, कहीं एकाध क्षण को पंद्रह मिनट में हो गए तो हो गए, कुछ पक्का नहीं है। पर कितने दिन लगेंगे? और अगर मैं उनको कह दूं, एक साल, दो साल, तो ऐसा लगता है, यह उनके वश के बाहर की बात है। उनको लगता है, कोई उनको कहे कि ऐसा दस-पंद्रह दिन में हो जाएगा, तो भरोसा आता है।
इतना अधैर्य हो, तो फिर वही चीजें हम पा सकते हैं, जो दस-पंद्रह दिन में मिलती हैं। फिर वे चीजें नहीं पा सकते, जो जन्मों-जन्मों में मिलती हैं। फिर मौसमी पौधे लगाना चाहिए हमें। जो लगाए नहीं कि दो-चार दिन में फूल देना शुरू कर देते हैं। लेकिन बस मौसम में ही रौनक रहती है। फिर हमें उन वृक्षों की आशा छोड़ देनी चाहिए, जो सदियों तक लगते हैं। उनकी हमें आशा छोड़ देनी चाहिए। क्योंकि इतना अधैर्य हो, तो जड़ें गहरी नहीं जा सकतीं। और जड़ें जितनी गहरी जाएं, वृक्ष उतना ऊपर जाता है। जितना होता है वृक्ष ऊपर,

उतना ही जड़ों में होता है नीचे। तो वह जो मौसमी पौधा है, उसकी कोई जड़ तो होती नहीं। उतना ही ऊपर होता है, उतनी ही देर टिकता है।
इसलिए बहुत लोग ध्यान सीखते हैं; बस, मौसमी पौधा होता है; दो-चार दिन टिकता है, फिर खो जाता है। दो-चार दिन कहते हुए सुने जाते हैं, बड़ी शांति मिल रही है। फिर दो-चार दिन के बाद उनका पता नहीं चलता। वह जो बड़ी शांति मिल रही होती है, वह मौसमी फूल था, उसकी कोई जड़ नहीं थी। अधैर्य की कोई जड़ें नहीं हैं। धैर्य चाहिए।
और अर्जुन ने यह जो कहा कि अगर शक्य हो... । मुझे कुछ पता नहीं है। और मुझे पता हो भी नहीं सकता। जिस अनंत में मैं झांका नहीं हूं, उसमें झांक सकूंगा, यह मैं कैसे कहूं? आप ही तय कर लें।
जो शिष्य गुरु पर छोड़ता है इतनी हिम्मत से--यह समर्पण है--वह इसी क्षण
भी तैयार हो गया। इसलिए कृष्ण ने अर्जुन की योग्यता की बात ही नहीं की। उन्होंने तत्क्षण कहा कि ठीक है, तो तू मेरे अलौकिक रूपों को देख।
और हे भरतवंशी अर्जुन, मेरे में आदित्यों को, अदिति के द्वादश पुत्रों को, आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को, अश्विनी कुमारों को, मरुदगणों को देख और भी बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख। और हे अर्जुन, अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित हुए चराचर सहित संपूर्ण जगत को देख और भी जो कुछ देखना चाहता है सो देख।
इसमें कुछ बातें समझ लेने जैसी हैं। पहली तो बात यह कि कृष्ण ने फिर योग्यता की बात ही न की। कृष्ण ने फिर शक्यता की बात ही न की। कृष्ण ने फिर यह सवाल ही नहीं उठाया इस संबंध में कि तू पात्र हो गया या नहीं, घड़ी आ गई या नहीं। कृष्ण ने कहा, देख।
यही अर्जुन अगर गीता में थोड़ी देर पहले यह पूछता, तो कृष्ण दिखाने को इतनी सरलता से राजी नहीं हो सकते थे। तो अर्जुन ने क्या अर्जित कर लिया है इस बीच में, उस पर हम ख्याल कर लें, तो वह आपको भी सहयोगी हो जाए, कि जिस दिन आप उतना अर्जित कर लें, उस दिन आपको भी परमात्मा क्षणभर नहीं रुकाता है, उसी क्षण दिखा देता है।
और ऐसा मत सोचना कि अर्जुन के पास तो कृष्ण थे, आपके पास तो कोई भी नहीं है। हर अर्जुन के पास कृष्ण है। और जब आप अर्जुन की इस घड़ी में आ जाते हैं, तब आप अचानक पाएंगे कि कृष्ण मौजूद है। आपको भी जो चला रहा है, वह कृष्ण ही है। आपका भी जो सारथी है, वह कृष्ण ही है। आपने न कभी उससे पूछा है, न कभी उसकी तरफ ध्यान दिया है, न कभी उसकी सुनी है।
अगर हम आदमी को एक रथ समझ लें, तो आपका मन अर्जुन है; और आपके भीतर जो साक्षी चैतन्य है, वह कृष्ण है। आपके भीतर वह जो मन को भी देखने वाला है, वह जो विटनेस है, वह जो मन को भी जानता है, उसका द्रष्टा है, वह कृष्ण है। लेकिन आपने अर्थात मन ने कभी उस तरफ देखा नहीं। और अगर वहां से कोई आवाज भी आई, तो कभी सुना नहीं। जिस दिन भी आप तैयारी पूरी कर लेंगे, कृष्ण को आप अपने निकट पाएंगे सदा-सदा। इसलिए उसकी फिक्र छोड़ दें। वह कृष्ण की चिंता है, वह आपकी चिंता नहीं है।
आपमें क्या हो जाए कि आप कहें कि परमात्मा, मुझे दिखा! और परमात्मा कहे कि देख! और बीच में एक क्षणभर का भी अंतराल न हो। अर्जुन ने इस बीच क्या कमाया है?
गंवाने से शुरू करें। क्योंकि इस अध्यात्म के जगत में कमाई गंवाने से शुरू होती है। अर्जुन ने अपने संदेह गंवाए। अब उसका कोई संदेह नहीं है। अब वह कहता है, आप जो कहते हैं, ऐसा ही है, यह मेरी भी श्रद्धा बन गई।
अब तक वह पूछ रहा था, सवाल उठा रहा था, संदेह कर रहा था। वह कहता था, अगर ऐसा करूंगा, तो ऐसा होगा। अगर युद्ध में जाऊंगा, तो इतने लोग मरेंगे। अगर मर जाएंगे, तो इतना पाप लगेगा। तो संन्यास ले लूं, सब छोड़ दूं, विरक्त हो जाऊं? क्या करूं, क्या न करूं? और कृष्ण जो भी कहते थे, वह उस पर दस नए सवाल उठाता था। अब उसके कोई सवाल न रहे।
जिस दिन आपके भीतर कोई सवाल न रहे, आप समझना कि आपने कुछ कमाया। एक लिहाज से तो गंवाया, क्योंकि हम समझते हैं, सवाल ही हमारी संपत्ति है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे एक सवाल पूछते हैं, मैं जवाब भी नहीं दे पाया
कि वे दूसरा पूछते हैं! मैं जवाब दे रहा हूं, इसकी भी उन्हें फिक्र नहीं, उन्हें पूछने की ही फिक्र है! मैंने क्या जवाब दिया, यह भी मैं लौटकर उनसे पूछता हूं, तो वे कहते हैं, कुछ याद नहीं आता। उन्हें सवाल पूछने हैं। जैसे सवाल पूछना ही उनकी कुल जिंदगी है। और अगर उन्हें एक जवाब दें, तो उस जवाब में से कल वे दस सवाल फिर खोज कर आ जाते हैं। जवाब का वे एक ही उपयोग करते हैं, नए सवाल बनाने के लिए। बाकी उनके लिए कोई उपयोगिता नहीं है। जैसे उन्होंने यही काम चुन रखा है कि सवाल इकट्ठे कर लेने हैं!
लेकिन क्या होगा सवालों से? और लाख सवाल भी आप पूछ सकते हों, तो भी लाख सवाल से एक जवाब भी तो बनता नहीं है। लाख सवाल भी जोड़ लें, तो एक जवाब नहीं बनता। और एक जवाब आपके पास आ जाए, तो लाख सवाल तत्क्षण विलीन हो जाते हैं, हवा में खो जाते हैं।
इसलिए जो व्यक्ति उत्तर की तलाश में है, उसे पहले तो अपने सवाल खोने
की तैयारी दिखानी चाहिए। यह जरा कठिन लगेगा। क्योंकि हम कहेंगे, यह तो बड़ी उलटी बात आप कह रहे हैं। उन्हीं का तो हमें जवाब चाहिए, जिनको आप छोड़ने को कह रहे हैं। अगर उनको छोड़ देंगे, तो फिर जवाब किस चीज का!
बुद्ध के पास कोई जाए, तो वे यही कहते कि तेरे सवालों का जवाब हम दे देंगे, कुछ दिन तू सवालों को छोड़ने की फिक्र कर। और जिस दिन तू कहे कि अब मेरे भीतर कोई सवाल नहीं, हम उसी दिन तेरा जवाब दे देंगे।
तो एक युवक मौलुंकपुत्त ने बुद्ध से कहा कि लेकिन अभी क्या तकलीफ है आपको जवाब देने में? तो बुद्ध ने कहा, तू सवालों से इतना भरा है कि जवाब सुनेगा कौन? और सवाल तुझे इस तरह घेरे हुए हैं कि मेरा जवाब भीतर प्रवेश कैसे करेगा? और जब मेरा जवाब तेरे भीतर जाएगा, तो तेरे सवाल मेरे जवाब को तोड़कर हजार सवाल खड़े कर लेंगे और कुछ भी नहीं होगा।
हमारे चारों तरफ सवालों की एक भीड़ है। उसमें रंचभर भी जगह नहीं है भीतर कि कुछ प्रवेश हो जाए। तो जो भी जवाब मिलता है, हमारे सवाल उस पर हमला कर देते हैं, उसे तोड़कर दस सवाल बना देते हैं; वापस लौटा देते हैं कि अब इनको पूछकर आओ। और भीतर हमारे कोई जवाब नहीं पहुंच पाता। हम बिना उत्तर के मर जाते हैं, क्योंकि हम सवालों से भरे हुए जीते हैं।
अर्जुन ने पहली तो कमाई यह कर ली कि अब उसके पास कोई सवाल नहीं है। वह
यह कहने को तैयार हो गया है कि तुम जो कहते हो कृष्ण, ऐसा ही है। अब इसमें मुझे कुछ पूछना नहीं है।
और जब पूछना न हो, तभी देखने की क्षमता पैदा होती है। जो पूछना चाहता है, वह अभी देखना नहीं चाहता, सुनना चाहता है। फर्क समझ लें। जो पूछता है, वह सुनना चाहता है कि कुछ कहो। प्रश्न का मतलब है, कुछ सुनाओ। प्रश्न का मतलब है, मेरे कान में कुछ डालो।
लेकिन सत्य कान के रास्ते से कभी भी गया नहीं है। अब तक तो नहीं गया है। और अभी तक कोई उपाय नहीं दिखता कि कान के रास्ते से सत्य चला जाए। सत्य जब भी गया है, आंख के रास्ते से गया है।
इसलिए हम सत्य के जानने वाले को कहते हैं, द्रष्टा। श्रोता नहीं, द्रष्टा। इसलिए जिन्होंने जान लिया उनके ज्ञान को हम कहते हैं, दर्शन। श्रवण नहीं, देखा। इसलिए हम तीसरी आंख की खोज करते हैं, तीसरे कान की नहीं। कोई तीसरा कान है ही नहीं।
पूछते हैं जब आप, तो आप चाहते हैं, आपके कान में कुछ डाला जाए। सत्य उस रास्ते नहीं आता। और ध्यान रहे, कान का अनुभव सदा ही उधार होता है। सदा ही उधार है। आंख का अनुभव ही अपना हो सकता है। जब तक सवाल हैं, तब तक आप उन लोगों की तलाश कर रहे हैं, जो आपके कान को कचरे से भरते रहें। जिस दिन आपके पास कोई सवाल नहीं है, उस दिन आप उस आदमी की खोज करेंगे, जो आपको दिखा दे। तो अर्जुन का यह कहना कि जो आप कहते हैं, ऐसा ही है, खबर देता है कि उसके सवाल गिर गए।
दूसरी बात। जिंदगी में एक तो हमारे रोजमर्रा की उलझनें हैं। अर्जुन जहां से यात्रा शुरू किया, वह रोजमर्रा की उलझन थी, युद्ध का सवाल था।
क्षत्रिय के लिए रोजमर्रा की उलझन है। मारना, नहीं मारना; नैतिक, अनैतिक;

क्या करें, क्या न करें; क्या उचित है, क्या करने योग्य है; वह उसकी चिंतना थी। सवाल तो शुरू हुआ था जिंदगी से। जिंदगी की सामान्य उलझन थी।
हम सबको भी वही उलझन है कि यह करें या न करें? इसका क्या फल होगा? पुण्य होगा, पाप होगा? न करें तो अच्छा है कि करें तो अच्छा है? अंतिम परिणाम जन्मों-जन्मों में क्या होंगे? हम सब की भी चिंता यही है। मांसाहार करें या न करें? पाप होगा कि पुण्य होगा? धन इकट्ठा करें कि न करें? क्योंकि कहीं कोई गरीब हो जाएगा; तो हम पुण्य कर रहे हैं कि पाप कर रहे हैं? क्या करें? क्या उचित, क्या अनुचित? यही उसकी चिंतना थी। इसी से यात्रा शुरू हुई थी। अभी तक वह यही पूछता रहा था।
लेकिन अचानक इस बात को कहने के बाद--कि अब जो आप कहते हैं, वैसा ही है, ऐसी श्रद्धा का मुझमें जन्म हुआ--वह एक दूसरा ही सवाल उठा रहा है, जो जीवन की उलझन का नहीं, जीवन के पार है। वह कह रहा है कि अब मैं विराट को देखना चाहता हूं। यह आयाम, यह डायमेंशन अलग है।
जब तक आप उन सवालों को पूछ रहे हैं, जिनका संबंध इस जीवन के चारों तरफ
के विस्तार से है, तब तक आप दर्शन की यात्रा नहीं कर सकते। जिस दिन आप इस उलझन के थोड़ा पार उठते हैं और परम जिज्ञासा करते हैं कि इस जीवन का स्वरूप क्या है? उस दिन ही दर्शन की बात संभव हो सकती है।
लोग आते हैं मेरे पास। वे कहते हैं कि मन में बड़ी अशांति रहती है। मैं पूछता हूं, क्या कारण है? वे कहते हैं, नौकरी नहीं है। किसी को बेटा नहीं है। किसी का धंधा ठीक नहीं चल रहा; मन में बड़ी अशांति रहती है। उनके जितने भी कारण हैं अशांति के, उनमें एक भी कारण आध्यात्मिक नहीं है। नौकरी नहीं चलती है, इसलिए अशांति है। और आते हैं कि ध्यान से शायद शांति मिल जाए। अगर ध्यान से नौकरी मिलती होती, तो शांति मिल सकती थी। ध्यान से नौकरी मिलेगी नहीं। अगर ध्यान से बच्चा पैदा हो सकता था, तो शायद शांति मिल जाती। अगर बच्चे पैदा होने से शांति मिलती हो तो। क्योंकि जिनको है, उनको बिल्कुल नहीं है। वे कहते हैं, ये बच्चों की वजह से अशांति है।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कब इस नौकरी से छुटकारा होगा? इसकी वजह से अशांति है। रिटायर हो जाएं। विश्राम मिल जाए, तो थोड़ा शांति से ध्यान करें। जो बेकार हैं, वे कहते हैं, नौकरी कब मिले! जो नौकरी में हैं, वे कहते हैं, बेकार कब हो जाएं कि थोड़ी शांति मिले।
लेकिन इनकी कोई भी जिज्ञासा आध्यात्मिक नहीं है। इनका प्रश्न जिंदगी
के रोजमर्रा काम से उलझा हुआ है। इस रोजमर्रा के काम से सत्य के दर्शन का कोई भी संबंध नहीं है। ये जो पूछ रहे हैं, यह धार्मिक जिज्ञासा ही नहीं है। अब तक अर्जुन जो पूछ रहा था, वह नैतिक जिज्ञासा थी, धार्मिक नहीं। अब
वह जो जिज्ञासा कर रहा है, वह धार्मिक है। अर्जुन भूल गया कि युद्ध में खड़ा है।
इसको ख्याल में रखें। इस घड़ी आकर अर्जुन भूल पाया कि युद्ध में खड़ा है। इस घड़ी आकर वह भूल पाया कि प्रियजन सामने खड़े हैं और मैं इनको मारने को आया हूं। इस घड़ी युद्ध विलीन हो गया। वह जो चारों तरफ शस्त्र-अस्त्र लिए हुए योद्धा खड़े थे, वे खो गए, जैसे स्वप्न में चले गए हों। वे नहीं हैं अब। अब सिर्फ दो ही रह गए उस बड़ी भीड़ में--अर्जुन और कृष्ण। आमने-सामने खड़े हैं। भीड़ तिरोहित हो गई है।
ऐसा नहीं कि भीड़ कहीं चली गई। भीड़ तो जहां है, वहीं है। पर अर्जुन के लिए अब उस भीड़ का कोई भी पता नहीं है। अर्जुन अब उस भीड़ के संबंध में नहीं सोच रहा है। यह संसार हट गया। अब अर्जुन एक सवाल पूछ रहा है कि जो आपने कहा, अनंत, जिस विराट लीला की आपने बात कही, जिस अमृत, अनंत धारा का आपने स्मरण दिलाया, मैं उसे देखना चाहता हूं। संसार खो गया। यह जिज्ञासा, यह जिज्ञासा धर्म की जिज्ञासा है।
भारत का अनूठा ग्रंथ ब्रह्म-सूत्र जिस वचन से शुरू होता है, वह बड़ा अदभुत है। वह वचन है, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा। और यहां से शुरू होता है, इसके पहले कुछ है नहीं। तो जो किताबों को पकड़ते हैं, वे सोचते हैं कि शायद इसका पहला हिस्सा खो गया है। अथातो ब्रह्म जिज्ञासा! इसका मतलब हुआ, यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा। तो इसका मतलब है, यह

किताब अधूरी है। आगे का हिस्सा कहां है? इस वाक्य से ऐसा ही लगता है कि यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, तो अभी आगे की बात, इसमें पहले कोई और भी बात रही होगी, इसका कोई पहला खंड खो गया है। नहीं तो अथातो ब्रह्म जिज्ञासा की क्या जरूरत है कहने की!
इस किताब का कोई हिस्सा नहीं खो गया है। यह किताब पूरी है। यह वचन अधूरा लगता है, उसका कारण दूसरा है। जिससे यह कहा गया है और जिसने यह कहा है, आयाम की बदलाहट है। अब तक हो रही थी संसार की बकवास। अब गुरु ने कहा, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। अब छोड़ यह बकवास। अब हम यहां से ब्रह्म की चर्चा शुरू करें। या शिष्य ने यहां कोई सवाल उठाया होगा, जिससे आयाम बदल गया। जगत खो गया, स्वप्न हो गया, और ब्रह्म वास्तविक लगने लगा। इसलिए यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा।
अर्जुन को यहां युद्ध खो गया, संसार मिट गया। और उसने पूछा कि अब मैं देखना चाहता हूं, क्या है अस्तित्व! सीधा, प्रत्यक्ष, आमने-सामने, सीधे देख लेना चाहता हूं। अब मैं आपको भी बीच में लेने को तैयार नहीं हूं।
जिस दिन शिष्य कहता है गुरु से कि अब आप भी हट जाएं, अब मैं सीधा ही देखना चाहता हूं, उस दिन गुरु के आनंद का कोई पारावार नहीं है। जब तक शिष्य कहता रहता है, मैं तो आपके चरण ही पकड़े रहूंगा; चाहे आप नरक जाएं, तो मैं नरक चलूंगा; जहां जाएं, आपको छोड़ नहीं सकता; तब तक गुरु पीड़ित होता है। क्योंकि फिर यह एक नया मोह, एक नई आसक्ति, एक नया उपद्रव, एक नया संसार... । यहां अर्जुन क्या कह रहा है? बहुत डिप्लोमेटिकली, बहुत राजनैतिक ढंग से--क्षत्रिय था, होशियार था, कुशल था--बड़े शिष्ट ढंग से वह कृष्ण से क्या कह रहा है, आप समझें! वह यह कह रहा है कि हटो तुम अब, अब मुझे सीधा ही देख लेने दो। अब तुम्हारा रूप भी हटा लो। अब तुम्हारी आकृति भी विदा कर लो। अब तुम भी न हो जाओ। अब तुम्हारा दरवाजा भी हट जाए और मैं खुले आकाश को सीधा देख लूं।
अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। ऐसे ही क्षण में ब्रह्म की जिज्ञासा शुरू होती है। यहां संसार खो गया।
इसीलिए शंकर ने बहुत-बहुत आग्रह करके कहा है कि संसार माया है, स्वप्न है। इसलिए नहीं कि संसार स्वप्न है। बहुत वास्तविक है। अगर स्वप्न होता, तो शंकर समझाते किसको? लिखते-बोलते किसके लिए? स्वप्न के पात्रों के लिए? सिर खोलते उनके साथ? सिर खपाते, वाद-विवाद करते पूरे मुल्क में भटकते, स्वप्न के पात्रों के साथ? गांव-गांव खोजते? तब तो खुद ही पागल साबित होते।
संसार अगर सच में ही स्वप्न है, तो शंकर को फिर हिलना-डुलना ही नहीं था अपनी जगह से। फिर बोलने का कोई कारण नहीं था। किससे बोलना है? जब आप जाग जाते हैं सुबह और जानते हैं कि रात जो देखा, वह स्वप्न था, तब आप स्वप्न के पात्रों से कोई चर्चा करते हैं? उनको समझाते हैं कि सब झूठा था जो देखा। वे होते ही नहीं, समझाइएगा किसको?
नहीं। शंकर जब कहते हैं, जगत स्वप्न है, तब इसका एक डिवाइस, एक उपाय की तरह उपयोग कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि अगर तुम जगत को एक स्वप्न देख पाओ, थोड़ी देर के लिए भी, तो तुम्हारी आंख उस तरफ हट सकती है, जो जगत के पार है। जब तक तुम्हें जगत सत्य मालूम पड़ता है, तब तक तुम किसी और सत्य की खोज में निकलोगे ही कैसे! जब तक तुम्हारे चारों तरफ जिसने तुम्हें घेरा है, वह तुम्हें इतना वास्तविक मालूम पड़ता है कि जीवन इसी में लगा दें; इसी दुकान में, इसी दो-दो पैसे को इकट्ठा करने में, इसी मकान को खड़ा करने में, इन्हीं बच्चों को पालने-पोसने में, तुम्हें इतनी वास्तविकता लगती है कि अपने जीवन को इसमें तिरोहित कर दें, समाप्त कर दें, शहीद हो जाएं, तब तक तुम उठोगे कैसे? उस तरफ आंख कैसे उठाओगे जो सत्य है?
इसलिए अगर यह बात ख्याल में आ जाए कि यह स्वप्न है, घड़ीभर को भी; यह बोध में गहरा उतर जाए कि चारों तरफ जो है, एक स्वप्न है, तो खोज शुरू हो जाती है कि सत्य क्या है! सत्य की खोज हो सके, इसलिए शंकर ने बड़े अनुग्रह से समझाया है लोगों को कि जगत स्वप्न है।

लेकिन लोग बड़े मजेदार हैं। वे इस पर बैठकर विवाद करते हैं कि स्वप्न
है या नहीं! स्वप्न है, तो किस प्रकार का स्वप्न है! और स्वप्न है, तो किसको आ रहा है! और स्वप्न है, तो ब्रह्म से स्वप्न का क्या संबंध है! यह स्वप्न ब्रह्म को आ रहा है कि आत्मा को आ रहा है! अगर ब्रह्म को आ रहा है, तो फिर यह वास्तविक हो गया। और अगर आत्मा को आ रहा है, तो यह आत्मा को शुरुआत इसकी कैसे हुई? लोग इसकी चर्चा में लग जाते हैं!
अगर शंकर हों, तो वे अपना सिर पीटें। उन्होंने कहा था कि थोड़ी देर के लिए तुम अपने इस उपद्रव के प्रति आंख बंद कर सको। तो एक उपाय था कि तुम्हें कहा कि यह स्वप्न है। छोड़ो भी इसे। थोड़ा और तरफ भी देखो। आंख को थोड़ा मुक्त करो यहां से। देखने की क्षमता यहां से थोड़ी हटे, तो नई यात्रा पर निकल जाए। और निश्चित ही, जो उस नई यात्रा पर निकल जाता है, उसे लौटकर यह जगत स्वप्न मालूम पड़ता है। लेकिन स्वप्न इसलिए मालूम पड़ता है कि अब सापेक्ष रूप से उसने जो जाना है, वह इतना विराटतर सत्य है कि तुलना में यह बिल्कुल फीका और मुर्दा हो गया है। उसे ठीक यह ऐसे ही स्वप्नवत हो जाता है, जैसे आपने कागज के फूल देखे हों, और फिर आपको असली फूल देखने मिल जाएं। और तब आप कहें कि ये कागज के फूल हैं। लेकिन जिन्होंने कागज के फूल ही देखे हों, उनको इसमें कुछ भी अर्थ न मालूम पड़े, क्योंकि फूल का मतलब ही कागज के फूल होता है, और तो फूल कोई होता नहीं!
जिस दिन हम विराट को देख पाते हैं, उस दिन सीमित स्वप्न जैसा फीका, मुर्दा, बेजान, अर्थहीन मालूम पड़ने लगता है। रिलेटिव, वह सापेक्ष दृष्टि है। वह हमने कुछ और जान लिया। जैसे कोई सूरज को देख ले, फिर घर में लौटकर मिट्टी के दीए को देखकर कहे कि यह बिल्कुल अंधेरा है। अंधेरा है नहीं, क्योंकि घर में जो बैठा है, उसके लिए दीया ही सूर्य है। लेकिन जो सूरज को देखकर लौटा है, उसे दीए की ज्योति दिखाई भी नहीं पड़ेगी। इतने विराट को जिसने जाना है, दीए की ज्योति अब उसकी आंखों में कहीं पकड़ में नहीं आएगी। वह कहेगा, दीया यहां है ही नहीं। तुम अंधेरे में बैठे हो।
यह सूर्य की तुलना में है। सब शब्द सापेक्ष हैं।
अर्जुन को जिस क्षण यह बाहर का सारा जगत कृष्ण की तल्लीनता में स्वप्नवत हो गया, वह भूल गया कि मैं कहां खड़ा हूं।
कभी आप भूले हैं एकाध क्षण को कि आप कहां खड़े हैं? कभी आप भूले हैं, एकाध क्षण को, अपनी पत्नी को, बच्चे को, घर को, दूकान को, मकान को? कभी एकाध क्षण को ऐसा हुआ है कि चौंककर आपको ख्याल हुआ हो कि मैं कौन हूं? कहां खड़ा हूं? क्या है मेरे चारों तरफ?
अगर ऐसा कोई क्षण आपको आ जाए, तो समझना कि उसके बाद अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, उस क्षण के बाद ब्रह्म-सूत्र शुरू होता है। लेकिन वह क्षण हमें आता ही नहीं। हमें सब पता है कि मैं कौन हूं। नाम का पता है। पते का पता है। अपने घर का, बैंक बैलेंस का, सब पता है। कौन कहता है कि नहीं पता है! अर्जुन इस घड़ी में ऐसी जगह आ गया, जहां उसे कुछ भी पता नहीं रहा। वह भूल ही गया कि युद्ध होने के करीब है। थोड़ी ही देर में शंख बजेंगे, युद्ध में कूद जाना पड़ेगा। वह नीति-अनीति, वह क्षुद्र सब प्रश्न, सब खो गए। अभी थोड़ी देर पहले उसे बड़े महत्वपूर्ण मालूम पड़ते थे। वह मरना-जीना, अपने- पराए, वे सब खो गए। अब उसके लिए एक ही बात महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है, यह अस्तित्व क्या है? एक्झिस्टेंस, यह होना ही क्या है? तो कृष्ण को कहता है, तुम भी हट जाओ। मुझे आमने-सामने सीधा हो जाने दो। मैं एक दफा सीधा ही देख लूं, क्या है।
यह योग्यता उसने अर्जित की गीता के इस क्षण तक। जब जीवन की क्षुद्रता प्रश्न नहीं बनती, तभी जीवन का विराट, जिज्ञासा बनता है। जिसने हमें चारों तरफ घेर रखा है अभी और यहां, समय के घेरे में, जब अचानक हमें उसका पता भी नहीं चलता, तो वह जो समय के पार है, हमें आच्छादित कर लेता है। जब क्षुद्र को हम भूलते हैं, तो विराट की स्मृति आती है।
सब उपाय धर्म के क्षुद्र को भूलने के उपाय हैं। कहो उसे प्रार्थना, कहो ध्यान, कहो पूजा, कहो जप; जो भी नाम देना हो, दो। लेकिन क्षुद्र को भूलने के उपाय हैं। और क्षुद्र भूल जाए, तो हम उस किनारे पर खड़े हो जाते

हैं, जहां से नौका विराट में छोड़ी जा सकती है। थोड़ी देर को भी क्षुद्र भूल जाए, तो कुछ हो सकता है; कोई नए तल पर हमारा होना, कोई नई दृष्टि, कोई नया हृदय हम में धड़क सकता है। कोई नया स्वर, जो भीतर निरंतर बजता रहा है; सनातन है। लेकिन हमारे लिए नया है, क्योंकि हम पहली दफा सुनेंगे। वह चारों तरफ की भीड़, आवाज, शोरगुल, बंद हो जाए क्षणभर को, तो वह भीतर की धीमी-सी आवाज, सनातन आवाज, हमें सुनाई पड़ने लगती है।
अर्जुन भूल गया है। संसार का विस्मरण, युद्ध का विस्मरण, परिस्थिति
का विस्मरण, उसके लिए ब्रह्म की जिज्ञासा बन गई है। और कृष्ण ने उससे एक बात भी नहीं कही। कहा कि देख।
यह भी थोड़ा सोच लेने जैसा है कि क्या अर्जुन को अब कुछ करना नहीं है। कृष्ण कहते हैं, देख। और अर्जुन देखना शुरू कर देगा! क्या हुआ होगा? यह बहुत बारीक है। और जो अध्यात्म में गहरे उतरते हैं, उन्हें समझ लेने जैसा है। या उतरना चाहते हैं कभी, तो इसे सम्हाल-सम्हालकर रख लेने जैसा है।
वह जो तीसरी आंख है, दो प्रकार से सक्रिय हो सकती है। या तो साधक चेष्टापूर्वक अपनी दोनों आंखों की ज्योति को भीतर खींच ले, आंख को बंद करके। वर्षों की लंबी साधना है, आंखों को निर्ज्योति करने की। क्योंकि आंख से हमारी जो चेतना बह रही है बाहर, उसे आंख बंद करके भीतर खींच लेने की। इसको कबीर ने आंख को उलटा कर लेना कहा है। मतलब है कि धारा जो बाहर बह रही थी, वह भीतर बहने लगे।
आपने कृष्ण की प्रेयसी राधा का नाम सुना है। आपको ख्याल न होगा, वह धारा का उलटा शब्द है। कृष्ण के समय के जो भी शास्त्र हैं, उनमें राधा का कोई उल्लेख नहीं है। राधा के नाम का भी कोई उल्लेख नहीं है। बहुत बाद में, बहुत बाद की किताबों में राधा का उल्लेख शुरू हुआ। जिन्होंने उल्लेख शुरू किया, वे बड़े होशियार लोग थे। उन्होंने एक प्रतीक में बड़ा रहस्य छिपाकर रखा। लेकिन लोगों ने फिर राधा की मूर्तियां बना लीं। और फिर लोग कृष्ण और राधा बनकर मंच पर रास-लीला करने लगे!
राधा एक यौगिक प्रक्रिया है। वह जो जीवन की धारा बाहर की तरफ बह रही है, जिस दिन उलटी हो जाती है, उस दिन उस धारा का नाम राधा हो जाता है। सिर्फ शब्द को उलटा कर लेने से।
वह जो आंख से हमारी जीवन-धारा बाहर जा रही है, जब भीतर आने लगती है, तो
वह राधा हो जाती है। और भीतर हमारे छिपा है कृष्ण, मैंने कहा, साक्षी। वह साक्षी, जो हमारे भीतर छिपा है, जब हमारी जीवन-धारा उसकी राधा बन जाती है, उसके चारों तरफ नाचने लगती है, बाहर नहीं जाती; भीतर, और रास शुरू हो जाता है। उस रास की बात है।
और हम नौटंकी कर रहे हैं, मंच वगैरह सजाकर। ऊधम करने के बहुत उपाय हैं। उपद्रव करने के बहुत उपाय हैं! और आदमी हर जगह से उपद्रव खोज लेता है। और अपने को भरमा लेता है, और सोचता है, बात खतम हो गई।
राधा हमारी जीवन-धारा का नाम है, जब उलटी हो जाए, वापस लौटने लगे स्रोत
की तरफ। अभी जा रही है बाहर की तरफ। जब जाने लगे भीतर की तरफ, अंतर्यात्रा पर हो जाए, तब, तब जो रास भीतर घटित होता है, परम रास, वह जो परम जीवन का अनुभव और आनंद, वह जो एक्सटैसी है, वह जो नृत्य है भीतर, उसकी बात है।
तो एक तो उपाय है कि हम चेष्टा से, श्रम से, योग से, तंत्र से, साधन से, विधि से, मैथड से, सारी जीवन चेतना को भीतर खींच लें। एक उपाय है साधक का, योगी का।
एक दूसरा उपाय है भक्त का, समर्पित होने वाले का, कि वह समर्पण कर दे। जिस व्यक्ति की अंतर्धारा भीतर की तरफ दौड़ रही हो, उसको समर्पण कर दे।
तो जैसे अगर आप एक चुंबक के पास एक साधारण लोहे का टुकड़ा रख दें, तो चुंबक की जो चुंबकीय धारा है, जो मैग्नेटिक फील्ड है, वह उस लोहे के टुकड़े को भी मैग्नेटाइज कर देता है, उस लोहे के टुकड़े को भी तत्काल चुंबक बना देता है। ठीक वैसे ही अगर कोई व्यक्ति उस व्यक्ति की तरफ अपने को पूरी तरह समर्पित कर दे, जिसकी धारा भीतर की तरफ जा रही है, तो तत्क्षण उसकी धारा भी उलटी होकर बहने लगती है।

अर्जुन ने न तो कोई साधना की अभी। अभी साधना करने का उपाय भी नहीं।
अभी तो यह चर्चा ही चलती थी। और अचानक अर्जुन ने कहा कि अगर आप समझें मुझे योग्य, समझें शक्य, अगर यह संभव हो, आपकी मर्जी हो, तो दिखा दें। और कृष्ण ने कहा, देख।
इन दोनों शब्दों के बीच में जो घटना घटी है, वह मैग्नेटाइजेशन की है।
वह अर्जुन का यह समर्पण भाव कि आप जो कहते हैं, वह ठीक ही है; मैं तैयार हूं; अब मेरा कोई विरोध नहीं, अब मेरा कोई असहयोग नहीं; अब मैं सहयोग के लिए राजी हूं; अब मेरी समग्र स्वीकृति है! कृष्ण ने कहा, देख।
इन दोनों के बीच जो घटना घटी, उसका कोई उल्लेख गीता में नहीं है, हो भी नहीं सकता। उसका क्या उल्लेख हो सकता है! वह घटना यह घटी कि समर्पण के साथ ही, वह जो कृष्ण की भीतर बहती हुई धारा थी, अर्जुन की धारा उसके साथ भीतर की तरफ लौट पड़ी। कृष्ण खो गए और अर्जुन ने देखना शुरू कर दिया।
इस देखने की बात हम कल करेंगे।
लेकिन पांच मिनट उठेंगे नहीं। पांच मिनट कीर्तन करें। वह मेरा प्रसाद है। फिर जाएं। कोई भी उठेगा नहीं। अपनी जगह बैठकर ताली बजाएं। अपनी जगह बैठकर कीर्तन में सहयोगी हों, और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
दूसरा प्रवचन

दिव्य-चक्षु की पूर्व-भूमिका

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते च्रुः पश्य मे योगमैश्वरम्।। 8।।
संजय उवाच
एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्।। 9।।
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।। 10।।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्।। 11।।

परंतु मेरे को इन अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने को तू निःसंदेह समर्थ नहीं है, इसी से मैं तेरे लिए दिव्य अर्थात अलौकिक चक्षु देता हूं, उससे तू मेरे प्रभाव को और योगशक्ति को देख।
संजय बोले, हे राजन्, महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करने वाले भगवान
ने इस प्रकार कहकर उसके उपरांत अर्जुन के लिए परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखाया।
और उस अनेक मुख और नेत्रों से युक्त तथा अनेक अदभुत दर्शनों वाले एवं बहुत-से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत-से दिव्य शस्त्रों को हाथों में उठाए हुए तथा दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किए हुए और दिव्य गंध का अनुलेपन किए हुए, एवं सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमारहित, विराटस्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।

मनुष्य ने सदा ही जीवन के परम रहस्य को जानना चाहा है। क्या है प्रयोजन जीवन का? क्या है लक्ष्य? क्यों उत्पन्न होती है सृष्टि और क्यों विलीन? कौन छिपा है इस सबके पीछे? किसके हाथ हैं? उस मूल को, उस स्रोत को, उस परम को मनुष्य ने सदा ही जानना चाहा है।
लेकिन मनुष्य जैसा है, वैसा ही उस परम को जान नहीं सकता। इससे ही दुनिया में नास्तिक दर्शनों का जन्म हो सका। जैसे अंधा आदमी प्रकाश को जानना चाहे, न जान सके; तो अंधा आदमी भी कह सकता है कि प्रकाश एक भ्रांति है। और जिन्हें प्रकाश दिखाई देता है, वे किसी विभ्रम में पड़े हैं, किसी इलूजन में पड़े हैं। जो प्रकाश की बात करते हैं, वे अंधविश्वास में हैं। और अंधे आदमी की इन बातों में तर्कयुक्त रूप से कुछ भी गलत न होगा।
अंधे को प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता। और प्रकाश को देखने के अतिरिक्त और कोई जानने का उपाय नहीं है। प्रकाश सुना नहीं जा सकता, अन्यथा अंधा भी प्रकाश को सुन लेता। प्रकाश छुआ नहीं जा सकता, अन्यथा अंधा भी उसे स्पर्श कर लेता। प्रकाश का कोई स्वाद नहीं, कोई गंध नहीं।
तो जिसके पास आंख नहीं हैं, उसका प्रकाश से संबंधित होने का कोई उपाय नहीं है। तो अंधा आदमी भी कह सकता है कि जो मानते हैं, वे भ्रांति में होंगे; और अगर प्रकाश है, तो मुझे दिखा दो। और उसकी बात में कुछ अर्थ है। अगर प्रकाश है, तो मेरे अनुभव में आए, तो ही मैं मानूंगा।
मनुष्य भी परमात्मा को खोजना चाहता है। बिना यह पूछे कि मेरे पास वह आंख, वह उपकरण है, जो परमात्मा को देख ले? इसलिए जो कहते हैं कि परमात्मा है, हमें लगता है कि किसी भ्रम में हैं, किसी मानसिक स्वप्न में, किसी सम्मोहन में खो गए हैं। और या फिर अंधविश्वास कर लिया है किसी भय के कारण, प्रलोभन के कारण। या केवल परंपरागत संस्कार है बचपन से डाला गया मन में, इसलिए कोई कहता है कि परमात्मा है।

परमात्मा है या नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है। यह सवाल भी उठाया नहीं जा सकता, जब तक कि हमारे पास वह आंख न हो, जो परमात्मा को देखने में सक्षम है।
प्रकाश है या नहीं, यह सवाल ही व्यर्थ है, जब तक देखने वाली आंख न हो।
अंधे को प्रकाश तो बहुत दूर, अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता है। आमतौर से
हम सोचते होंगे कि अंधे को कम से कम अंधेरा तो दिखाई पड़ता ही होगा। हमारी धारणा भी हो सकती हो कि अंधा अंधेरे से घिरा होगा।
गलत है ख्याल। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधेरे का अनुभव
भी आंख का ही अनुभव है। अंधे को अंधेरे का भी कोई अनुभव नहीं होता। आप आंख बंद करते हैं, तो आपको अंधेरे का अनुभव होता है, क्योंकि आप अंधे नहीं हैं। आपको प्रकाश का अनुभव होता है, इसलिए उसके विपरीत अंधेरे का अनुभव होता है। जिसे प्रकाश का अनुभव नहीं होता, उसे अंधेरे का भी कोई अनुभव नहीं हो सकता।
अंधेरा और प्रकाश दोनों ही आंख के अनुभव हैं। प्रकाश मौजूदगी का अनुभव है, अंधेरा गैर-मौजूदगी का अनुभव है। लेकिन जिसे प्रकाश ही नहीं दिखाई पड़ा, उसे प्रकाश की अनुपस्थिति कैसे दिखाई पड़ेगी! वह असंभव है। अंधे को अंधेरा भी नहीं है।
और जिसे अंधेरा भी दिखाई न पड़ता हो, वह प्रकाश के संबंध में क्या प्रश्न उठाए! और प्रश्न उठाए भी तो उसे क्या उत्तर दिया जा सकता है! और जो भी उत्तर हम देंगे, वे अंधे के मन को जंचेंगे नहीं।
क्योंकि मन हमारी इंद्रियों के अनुभव का जोड़ है। अंधे के पास आंख का अनुभव कुछ भी नहीं है मन में। तो जंचने का, मेल खाने का, तालमेल बैठने का कोई उपाय नहीं है। अंधे का पूरा मन कहेगा कि प्रकाश नहीं है। अंधा जिद्द करेगा कि प्रकाश नहीं है। सिद्ध भी करना चाहेगा कि प्रकाश नहीं है। क्यों? क्योंकि स्वयं को अंधा मानने की बजाय, यह मान लेना ज्यादा आसान
है कि प्रकाश नहीं है। अंधे के अहंकार की इसमें तृप्ति है कि प्रकाश नहीं है। अंधे के अहंकार को चोट लगती है यह मानने से कि मैं अंधा हूं, इसलिए मुझे प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता।
इसलिए मनुष्य में जो अति अहंकारी हैं, वे कहेंगे, परमात्मा नहीं है; बजाय यह मानने के कि मेरे पास वह देखने की आंख नहीं है, जिससे परमात्मा हो तो दिखाई पड़ सके। और ध्यान रहे, जिसको परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता, उसको परमात्मा का न होना भी दिखाई नहीं पड़ सकता है। क्योंकि न होने का अनुभव भी उसी का अनुभव होगा, जिसके पास देखने की क्षमता है।
नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है। उसके वक्तव्य का वही अर्थ है, जो अंधा कहता है कि प्रकाश नहीं है। नास्तिक की तकलीफ ईश्वर के होने न होने में नहीं है। नास्तिक की तकलीफ अपने को अधूरा मानने में, अपंग मानने में, अंधा मानने में है। इसलिए जितना अहंकारी युग होता है, उतना नास्तिक हो जाता है।
अगर आज सारी दुनिया में नास्तिकता प्रभावी है, तो उसका कारण यह नहीं
है कि विज्ञान ने लोगों को नास्तिक बना दिया है। और उसका कारण यह भी नहीं है कि कम्युनिज्म ने लोगों को नास्तिक बना दिया। उसका कुल मात्र कारण इतना है कि मनुष्य ने इधर पिछले तीन सौ वर्षों में जो उपलब्धियां की हैं, उन उपलब्धियों ने उसके अहंकार को भारी बल दे दिया है।
इन तीन सौ वर्षों में आदमी ने उतनी उपलब्धियां की हैं, जितनी पिछले तीन लाख वर्षों में आदमी ने नहीं की थीं। आदमी की ये उपलब्धियां उसके अहंकार को बल देती हैं। वह बीमारी से लड़ सकता है। वह उम्र को भी शायद थोड़ा लंबा सकता है। उसने बिजली को बांधकर घर में रोशनी कर ली है। उसके पूर्वज बिजली को आकाश में देखकर कंपते थे और सोचते थे कि इंद्र नाराज है। उसने बिजली को बांध लिया है। अगर पुरानी भाषा में कहें, तो इंद्र को उसने बांध लिया है। घर में इंद्र रोशनी कर रहा है, और पंखे चला रहा है!
आदमी ने इधर तीन सौ वर्षों में जो भी पाया है, उस पाने से उसे बाहर कुछ चीजें मिली हैं और भीतर अहंकार मिला है। उसे लगता है, मैं कुछ कर सकता हूं। और जितना अहंकार मजबूत होता है, उतनी ही नास्तिकता सघन हो जाती है। क्योंकि उतना ही यह मानना मुश्किल हो जाता है कि मुझमें कोई कमी है, कोई

उपकरण, कोई इंद्रिय मुझमें खो रही है, अभाव है; मेरे पास कोई उपाय कम है, जिससे मैं और देख सकूं।
फिर एक और बात पैदा हो गई। हमने अपनी भौतिक इंद्रियों को विस्तीर्ण करने की बड़ी कुशलता पा ली है। आदमी आंख से कितनी दूर तक देख सकता है? लेकिन अब हमारे पास दूरदर्शक यंत्र हैं, जो अरबों-खरबों प्रकाश वर्ष दूर तारों को देख सकते हैं। आदमी अपने अकेले कान से कितना सुन सकता है? लेकिन अब हमारे पास टेलिफोन है, रेडियो है, बेतार के यंत्र हैं; कोई सीमा नहीं है। हम कितने ही दूर की बात सुन सकते हैं, और कितने ही दूर तक बात कर सकते हैं। एक आदमी अपने हाथ से कितनी दूर तक पत्थर फेंक सकता है? लेकिन अब हमारे पास सुविधाएं हैं कि हम पूरे के पूरे यानों को पृथ्वी के घेरे के बाहर फेंककर चांद की यात्रा पर पहुंचा सकते हैं। एक आदमी कितना मार सकता है? कितनी हत्या कर सकता है? अब हमारे पास हाइड्रोजन बम हैं, कि चाहें तो दस मिनट में हम पूरी पृथ्वी को राख बना दे सकते हैं। सिर्फ दस मिनट में; खबर पहुंचेगी, इसके पहले मौत पहुंच जाएगी!
तो स्वभावतः, आदमी ने अपनी बाहर की इंद्रियों को बढ़ा लिया। यह सब इंद्रियों का विस्तार है। इंद्रियों को हमने यंत्रों से जोड़ दिया। इंद्रियां भी यंत्र हैं। हमने और नए यंत्र बनाकर उन इंद्रियों की शक्ति को बढ़ा लिया। इसलिए आदमी इंद्रियों को बढ़ाने में लग गया और उसे यह ख्याल भी नहीं कि कुछ इंद्रियां ऐसी भी हैं, जो बंद ही पड़ी हैं।
अगर हम पीछे लौटें, तो आदमी की बाहर की इंद्रिय की शक्ति बहुत सीमित थी। और आदमी का बल बहुत सीमित था। आदमी की उपलब्धियां बहुत सीमित थीं। आदमी के अहंकार को सघन होने का उपाय कम था। सहज ही जीवन विनम्रता पैदा करता था। सहज ही चारों तरफ इतनी विराट शक्तियां थीं कि हम निहत्थे, असहाय, हेल्पलेस मालूम होते थे। बाहर तो हमारे बल को बढ़ने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता था। इसलिए आदमी भीतर मुड़ने की चेष्टा करता था।
आज बाहर के यात्रा-पथ इतने सुगम हैं कि भीतर लौटने का ख्याल भी नहीं आता है। आज बाहर जाने की इतनी सुविधा है कि भीतर जाने का सवाल भी नहीं उठता है। आज जब हम किसी से कहें, भीतर जाओ, तो उसकी समझ में नहीं आता। उससे कहें, चांद पर जाओ, मंगल पर जाओ, बिल्कुल समझ में आता है।
चांद पर जाना आज आसान है, अपने भीतर जाना कठिन है। और आदमी निश्चित ही,
जो सुगम है, सरल है, उसको चुन लेता है। जहां लीस्ट रेजिस्टेंस है, उसे चुन लेता है।
आदमी के अहंकार के अनुपात में उसकी नास्तिकता होती है। जितना अहंकार होता है, उतनी नास्तिकता होती है। क्यों? क्योंकि आस्तिकता पहली स्वीकृति से शुरू होती है कि मैं अधूरा हूं। ईश्वर है या नहीं, मुझे पता नहीं। लेकिन परम सत्य को जानने का मेरे पास कोई भी उपाय नहीं है।
बुद्धि आदमी के पास है। लेकिन बुद्धि से आदमी क्या जान पाता है? जो नापा जा सकता है, वह बुद्धि से जाना जा सकता है। क्योंकि बुद्धि नापने की एक व्यवस्था है। जो मेजरमेंट के भीतर आ सकता है, वह बुद्धि से जाना जा सकता है।
हमारा शब्द है, माया। माया बहुत अदभुत शब्द है। उसका मौलिक अर्थ होता है, दैट व्हिच कैन बी मेजर्ड, जिसको नापा जा सके; माप्य जो है; जिसको हम नाप सकें। तो बुद्धि केवल माया को ही जान सकती है, जो नापा जा सकता है।
समझें। एक तराजू है। उससे हम उसी चीज को जांच सकते हैं, जो नापी जा सकती है। एक तराजू को लेकर हम एक आदमी के शरीर को नाप सकते हैं। लेकिन अगर तराजू से हम आदमी के मन को जानने चलें, तो मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि मन तराजू पर नहीं नापा जा सकता। एक आदमी के शरीर में कितनी हड्डियां, मांस-मज्जा है, यह हम नाप सकते हैं तराजू से। लेकिन एक आदमी के भीतर कितना प्रेम है, कितनी घृणा है, इसको हम तराजू से नहीं नाप सकते। इसका यह मतलब नहीं कि प्रेम है नहीं। इसका केवल इतना ही मतलब है कि जो मापने का उपकरण है, वह संगत नहीं है।

जो भी नापा जा सकता है, उसे बुद्धि समझ सकती है। जो भी गणित के भीतर आ सकता है, बुद्धि समझ सकती है। जो भी तर्क के भीतर आ जाता है, बुद्धि समझ सकती है।
विज्ञान बुद्धि का विस्तार है। इसलिए विज्ञान उसी को मानता है, जो नप सके, जांचा जा सके, परखा जा सके, छुआ जा सके, प्रयोग किया जा सके, उसको ही। जो न छुआ जा सके, न परखा जा सके, न पकड़ा जा सके, न तौला जा सके, विज्ञान कहता है, वह है ही नहीं।
वहां विज्ञान भूल करता है। विज्ञान को इतना ही कहना चाहिए कि उस दिशा में हमारे पास जाने का कोई उपाय नहीं है। हो भी सकता है, न भी हो, लेकिन बिना उपाय के कुछ भी कहा नहीं जा सकता है।
परमात्मा का अर्थ है, असीम। परमात्मा का अर्थ है, सब। परमात्मा का अर्थ है, जो भी है, उसका जोड़।
इस विराट को बुद्धि नहीं नाप पाती। क्योंकि बुद्धि भी इस विराट का एक अंग है। बुद्धि भी इस विराट का एक अंश है। अंश कभी भी पूर्ण को नहीं जांच सकता। अंश कभी भी अपने पूर्ण को नहीं पकड़ सकता। कैसे पकड़ेगा?
अगर मैं अपने हाथ से अपने पूरे शरीर को पकड़ना चाहूं, तो कैसे पकडूंगा? कोई उपाय नहीं है। मेरा हाथ कई चीजें उठा सकता है। लेकिन मेरा हाथ मेरे पूरे शरीर को नहीं उठा सकता। अंश है, छोटा है; शरीर बड़ा है। बुद्धि एक अंश है इस विराट में। एक बूंद सागर में है, इस पूरे सागर को नहीं उठा पाती है। तो बुद्धि उपाय नहीं है जानने का। और हम बुद्धि से ही जानने की कोशिश करते हैं। दार्शनिक सोचते हैं, मनन करते हैं, तर्क करते हैं। बुद्धि से सोचते हैं कि ईश्वर है या नहीं। वे जो भी दलीलें देते हैं, वे दलीलें बचकानी हैं। बड़े से बड़े दार्शनिक ने भी ईश्वर के होने के लिए जो प्रमाण दिए हैं, वह बच्चा भी तोड़ सकता है। जितने भी प्रमाण ईश्वर के होने के लिए दिए गए हैं, वे कोई भी प्रमाण नहीं हैं। क्योंकि उन सभी को खंडित किया जा सकता है। इसलिए प्रमाण से जो ईश्वर को मानता है, उसे कोई भी नास्तिक दो क्षण में मिट्टी में मिला देगा।
ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है, जो ईश्वर के होने को सिद्ध कर सके। क्योंकि अगर हमारा प्रमाण ईश्वर को सिद्ध कर सके, तो हम ईश्वर से भी बड़े हो जाते हैं। और हमारी बुद्धि अगर ईश्वर के लिए प्रमाण जुटा सके और अगर ईश्वर को हमारे प्रमाणों की जरूरत हो, तभी वह हो सके, और हमारे प्रमाण न हों तो वह न हो सके, तो हम ईश्वर से भी विराट और बड़े हो जाते हैं।
मार्क्स ने मजाक में कहा है कि जब तक ईश्वर को टेस्ट-ट्यूब में न जांचा जा सके, तब तक मैं मानने को राजी नहीं हूं। लेकिन उसने फिर यह भी कहा है कि और अगर ईश्वर टेस्ट-ट्यूब में आ जाए और जांच लिया जाए, तब भी मानूंगा नहीं, क्योंकि तब मानने की कोई जरूरत नहीं रह गई।
जो टेस्ट-ट्यूब में आ गया हो आदमी के, उसको ईश्वर कहने का कोई कारण नहीं रह गया। वह भी एक तत्व हो जाएगा। जैसे आक्सीजन है, हाइड्रोजन है, वैसा ईश्वर भी होगा। हम उससे भी काम लेना शुरू कर देंगे! पंखे चलाएंगे, बिजली जलाएंगे; कुछ और करेंगे। आदमी को मारेंगे, बच्चों को पैदा होने से रोकेंगे, या उम्र ज्यादा करेंगे। अगर ईश्वर को हम टेस्ट-ट्यूब में पकड़ लें, तो हम उसका भी उपयोग कर लेंगे। विज्ञान तभी मानेगा, जब उपयोग कर सके। आदमी जो भी प्रमाण जुटा सकता है, वे प्रमाण सब बचकाने हैं। क्योंकि बुद्धि बचकानी है। उस विराट को नापने के लिए बुद्धि उपाय नहीं है। क्या कोई उपाय और हो सकता है बुद्धि के अतिरिक्त? बुद्धि के अतिरिक्त हमारे पास कुछ भी नहीं है। सोच सकते हैं।
थोड़ा इसे हम समझ लें कि सोचने का क्या अर्थ होता है, तो इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाएगा।
हम सोच सकते हैं। आप क्या सोच सकते हैं? जो आप जानते हैं, उसी को सोच सकते हैं। सोचना जुगाली है। गाय-भैंस को आपने देखा! घास चर लेती है, फिर बैठकर जुगाली करती रहती है। वह जो चर लिया है, उसको वापस चरती रहती है। विचार जुगाली है। जो आपके भीतर डाल दिया गया, उसको आप फिर जुगाली करते रहते हैं। आप एक भी नई बात नहीं सोच सकते हैं। कोई विचार मौलिक नहीं होता।

सब विचार बाहर से डाले गए होते हैं, फिर हम सोचने लगते हैं उन पर। सब विचार उधार होते हैं। तो जो हमने जाना नहीं है अब तक, उसको हम सोच भी नहीं सकते। हम सोच उसी को सकते हैं, जिसे हमने जाना है, जिसे हमने सुना है, जिसे हमने समझा है, जिसे हमने पढ़ा है; उसे हम सोच सकते हैं।
ईश्वर को न तो पढ़ा जा सकता; न ईश्वर को सुना जा सकता। ईश्वर को सोचेंगे कैसे? ईश्वर है अज्ञात, अननोन। मौजूद है यहीं, लेकिन इसी तरह अज्ञात है, जैसे अंधे के लिए प्रकाश अज्ञात है। और अंधे के चारों तरफ मौजूद है, अंधे की चमड़ी को छू रहा है। अंधे को जो गरमी मिल रही है, वह उसी प्रकाश से मिल रही है। और अंधे को जो उसका मित्र हाथ पकड़कर रास्ते पर चला रहा है, वह भी उसी प्रकाश के कारण चला रहा है। और अंधे के भीतर जो हृदय में धड़कन हो रही है, वह भी उसी प्रकाश की किरणों के कारण हो रही है। और उसके खून में जो गति है, वह भी प्रकाश के कारण है।
अंधे का पूरा जीवन प्रकाश में लिप्त है, प्रकाश में डूबा है। अगर प्रकाश न हो, तो अंधा नहीं हो सकता। लेकिन फिर भी अंधे को प्रकाश का कोई भी पता नहीं चलता है। क्योंकि जो आंख चाहिए देखने की, वह नहीं है। अंधा जीता प्रकाश में है, होता प्रकाश में है, लेकिन अनुभव में नहीं आता।
हम भी परमात्मा में हैं। उसके बिना न खून चलेगा, न हृदय धड़केगा, न श्वासें हिलेंगी, न वाणी बोलेगी, न मन विचारेगा। उसके बिना कुछ भी नहीं होगा। वह अस्तित्व है। लेकिन उसे देखने की हमारे पास अभी कोई भी इंद्रिय नहीं है।
हाथ हैं, उनसे हम छू सकते हैं। जिसे हम छू सकते हैं, वह स्थूल है। सूक्ष्म को हम छू नहीं सकते। यहां भी सूक्ष्म--परमात्मा को अलग कर दें-- पदार्थ में भी जो सूक्ष्म है, उसे भी हम हाथ से नहीं छू सकते। हमारे पास कान हैं, हम सुन सकते हैं। लेकिन कितना सुन सकते हैं? एक सीमा है। आपका कुत्ता आपसे हजार गुना ज्यादा सुनता है। उसके पास आपसे ज्यादा बड़ा कान है। अगर कान से परमात्मा का पता लगता होता, तो आपसे पहले आपके कुत्ते को पता लग जाएगा। घोड़ा आपसे दस गुना ज्यादा सूंघ सकता है। कुत्ता दस हजार गुना सूंघ सकता है। अगर सूंघने से परमात्मा का पता होता, तो कुत्तों ने अब तक उपलब्धि पा ली होती।
हमसे ज्यादा मजबूत आंखों वाले जानवर हैं। हमसे ज्यादा मजबूत हाथों वाले जानवर हैं। हमसे ज्यादा मजबूत स्वाद का अनुभव करने वाले जानवर हैं। मधुमक्खी पांच मील दूर से फूल की गंध को पकड़ लेती है। अगर आपके घर में चोर घुसा हो, तो उसके जाने के घंटेभर बाद भी कुत्ता उसकी सुगंध को पकड़ लेता है।
उसके जाने के घंटेभर बाद भी! और फिर पीछा कर सकता है। और दस-बीस मील कहीं भी चोर चला गया हो, अनुगमन कर सकता है।
हमारे पास जो इंद्रियां हैं, उनसे स्थूल भी पूरा पकड़ में नहीं आता। सूक्ष्म की तो बात ही अलग है। हम जो सुनते हैं, वह एक छोटी-सी सीमा के भीतर सुनते हैं। उससे नीची आवाज भी हमें सुनाई नहीं पड़ती। उससे ऊपर की आवाज भी हमें सुनाई नहीं पड़ती। हमारी सब इंद्रियों की सीमा है, इसलिए असीम को कोई इंद्रिय पकड़ नहीं सकती। हमारी कोई भी इंद्रिय असीम नहीं है। हमारा जीवन ही सीमित है।
थोड़ा कभी आपने ख्याल किया कि आपका जीवन कितना सीमित है! घर में थर्मामीटर होगा, उसमें आप ठीक से देख लेना, उसमें सीमा पता चल जाएगी! इधर अट्ठानबे डिग्री के नीचे गिरे, कि बिखरे। उधर एक सौ आठ-दस डिग्री के पार जाने लगे, कि गए। बारह डिग्री थर्मामीटर में आपका जीवन है। उसके नीचे मौत, उसके उस तरफ मौत।
बारह डिग्री में जहां जीवन हो, वहां परम जीवन को जानना बड़ा मुश्किल होगा। इस सीमित जीवन से उस असीम को हम कैसे जान पाएं! जरा-सा तापमान गिर जाए पृथ्वी पर सूरज का, हम सब समाप्त हो जाएंगे। जरा-सा तापमान बढ़ जाए, हम सब वाष्पीभूत हो जाएंगे। हमारा होना कितनी छोटी-सी सीमा में, क्षुद्र सीमा में है! इस छोटे-से क्षुद्र होने से हम जीवन के विराट अस्तित्व को जानने चलते हैं, और कभी नहीं सोचते कि हमारे पास उपकरण क्या है जिससे हम नापेंगे!

तो जो कह देता है बिना समझे-बूझे कि ईश्वर है, वह भी नासमझ; जो कह देता
है बिना समझे-बूझे कि ईश्वर नहीं है, वह भी नासमझ। समझदार तो वह है, जो सोचे पहले कि ईश्वर का अर्थ क्या होता है? विराट! अनंत! असीम! मेरी क्या स्थिति है? इस मेरी स्थिति में और उस विराट में क्या कोई संबंध बन सकता है? अगर नहीं बन सकता, तो विराट की फिक्र छोडूं। मेरी स्थिति में कोई परिवर्तन करूं, जिससे संबंध बन सके।
धर्म और दर्शन में यही फर्क है। दर्शन सोचता है ईश्वर के संबंध में। धर्म खोजता है स्वयं को, कि मेरे भीतर क्या कोई उपाय है? क्या मेरे भीतर ऐसा कोई झरोखा है? क्या मेरे भीतर ऐसी कोई स्थिति है, जहां से मैं छलांग लगा सकूं अनंत में? जहां मेरी सीमाएं मुझे रोकें नहीं। जहां मेरे बंधन मुझे बांधें नहीं। जहां मेरा भौतिक अस्तित्व रुकावट न हो। जहां से मैं छलांग ले सकूं, और विराट में कूद जाऊं और जान सकूं कि वह क्या है।
अब हम इस सूत्र को समझने की कोशिश करें।
परंतु मेरे को इन अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने को तू निःसंदेह समर्थ नहीं है, इसी से मैं तेरे लिए दिव्य-चक्षु देता हूं, उससे तू मेरे प्रभाव को और योग-शक्ति को देख।
कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि जो आंखें तेरे पास हैं, प्राकृत नेत्र, इनसे तू मुझे देखने में समर्थ नहीं है।
निश्चित ही, अर्जुन कृष्ण को देख रहा था, नहीं तो बात किससे होती! यह चर्चा हो रही थी। कृष्ण को सुन रहा था, नहीं तो यह चर्चा किससे होती!
यहां ध्यान रखें कि एक तो वे कृष्ण हैं, जो अर्जुन को अभी दिखाई पड़ रहे हैं, इन प्राकृत आंखों से। और एक और कृष्ण का होना है, जिसके लिए कृष्ण कहते हैं, तू मुझे न देख सकेगा इन आंखों से।
तो जिन्होंने कृष्ण को प्राकृत आंखों से देखा है, वे इस भ्रांति में न पड़ें कि उन्होंने कृष्ण को देख लिया। अभी तक अर्जुन ने भी नहीं देखा है। उनके साथ रहा है। दोस्ती है। मित्रता है। पुराने संबंध हैं। नाता है। अभी उसने कृष्ण को नहीं देखा है। अभी उसने जिसे देखा है, वह इन आंखों, प्राकृत आंखों और अनुभव के भीतर जो देखा जा सकता है, वही। अभी उसने कृष्ण की छाया देखी है। अभी उसने कृष्ण को नहीं देखा। अभी उसने जो देखा है, वह मूल नहीं देखा, ओरिजिनल नहीं देखा, अभी प्रतिलिपि देखी है। जैसे कि दर्पण में आपकी छवि बने, और कोई उस छवि को देखे। जैसे कोई आपका चित्र देखे। या पानी में आपका प्रतिबिंब बने और कोई उस प्रतिबिंब को देखे।
पानी में प्रतिबिंब बनता है, ऐसे ही ठीक प्रकृति में भी आत्मा की प्रतिछवि बनती है। अभी अर्जुन जिसे देख रहा है, वह कृष्ण की प्रतिछवि है, सिर्फ छाया है। अभी उसने उसे नहीं देखा, जो कृष्ण हैं। और आपने भी अभी अपने को जितना देखा है, वह भी आपकी छाया है। अभी आपने उसे भी नहीं देखा, जो आप हैं।
और अगर अर्जुन कृष्ण के मूल को देखने में समर्थ हो जाए, तो अपने मूल को
भी देखने में समर्थ हो जाएगा। क्योंकि मूल को देखने की आंख एक ही है, चाहे कृष्ण के मूल को देखना हो और चाहे अपने मूल को देखना हो। और छाया को देखने वाली आंख भी एक ही है, चाहे कृष्ण की छाया देखनी हो और चाहे अपनी छाया देखनी हो।
तो यहां कुछ बातें ध्यान में ले लें।
पहली, कि कृष्ण जो दिखाई पड़ते हैं, अर्जुन को दिखाई पड़ते थे, आपको मूर्ति में दिखाई पड़ते हैं... ।
अब थोड़ा समझें कि आपकी मूर्ति तो प्रतिछवि की भी प्रतिछवि है, छाया की
भी छाया है। वह तो बहुत दूर है। कृष्ण की जो आकृति हमने मंदिर में बना रखी है, वह तो बहुत दूर है कृष्ण से। क्योंकि खुद कृष्ण भी जब मौजूद थे शरीर में, तब भी वे कह रहे हैं कि मैं यह नहीं हूं, जो तुझे अभी दिखाई पड़ रहा हूं। और इन आंखों से ही अगर देखना हो तो यही दिखाई पड़ेगा, जो मैं दिखाई पड़ रहा हूं।
नई आंख चाहिए। प्राकृत नहीं, दिव्य-चक्षु चाहिए। इन आंखों को प्राकृत कहा है, क्योंकि इनसे प्रकृति दिखाई पड़ती है। इनसे दिव्यता दिखाई नहीं

पड़ती। इनसे जो भी दिखाई पड़ता है, वह मैटर है, पदार्थ है। और जो भी दिव्य है, इनसे चूक जाता है। दिव्य को देखने का इनके पास कोई उपाय नहीं है।
तो कृष्ण कहते हैं कि मैं तुझे अब वह आंख देता हूं, जिससे तुझे मैं दिखाई पड़ सकूं, जैसा मैं हूं--अपने मूल रूप में, अपनी मौलिकता में। प्रकृति में मेरी छाया नहीं, तू मुझे देख। लेकिन तब मैं तुझे एक नई आंख देता हूं। यहां बहुत-से सवाल उठने स्वाभाविक हैं कि क्या कोई और आदमी किसी को दिव्य आंख दे सकता है? कि कृष्ण कहते हैं, मैं तुझे दिव्य-चक्षु देता हूं। क्या यह संभव है कि कोई आपको दिव्य-चक्षु दे सके? और अगर कोई आपको दिव्य-चक्षु दे सकता है, तब तो फिर अत्यंत कठिनाई हो जाएगी। कहां खोजिएगा कृष्ण को जो आपको दिव्य-चक्षु दे?
और अगर कोई आपको दिव्य-चक्षु दे सकता है, तो फिर कोई आपके दिव्य-चक्षु
ले भी सकता है। और अगर कोई दूसरा आपको दिव्य-चक्षु दे सकता है, तो फिर आपके करने के लिए क्या बचता है? कोई देगा। प्रभु की अनुकंपा होगी कभी, तो हो जाएगा। फिर आपके लिए प्रतीक्षा के सिवाय कुछ भी नहीं है। फिर आपके लिए संसार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
इस पर बहुत-सी बातें सोच लेनी जरूरी हैं।
पहली बात तो यह है कि कृष्ण ने जब यह कहा कि मैं तुझे दिव्य-चक्षु देता हूं, तो इसके पहले अर्जुन अपने को पूरा समर्पित कर चुका है, रत्ती-मात्र भी अपने को पीछे नहीं बचाया है। अगर कृष्ण अब मौत भी दें, तो अर्जुन उसके लिए भी राजी है। अब अर्जुन का अपना कोई आग्रह नहीं है।
आदमी जो सबसे बड़ी साधना कर सकता है, वह समर्पण है, वह सरेंडर है। और जैसे ही कोई व्यक्ति समर्पित कर देता है पूरा, तब कृष्ण को चक्षु देने नहीं पड़ते, यह सिर्फ भाषा की बात है कि मैं तुझे चक्षु देता हूं। जो समर्पित कर देता है, उस समर्पण की घड़ी में ही चक्षु का जन्म हो जाता है। लेकिन शायद कृष्ण की मौजूदगी वहां न हो, तो अड़चनें हो सकती हैं, क्योंकि कृष्ण कैटेलिटिक एजेंट का काम कर रहे हैं। जो लोग विज्ञान की भाषा से परिचित हैं, वे कैटेलिटिक एजेंट का अर्थ समझते हैं। कैटेलिटिक एजेंट का अर्थ होता है, जो खुद करे न कुछ, लेकिन जिसकी मौजूदगी में कुछ हो जाए।
वैज्ञानिक कहते हैं कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनता है। अगर
आप हाइड्रोजन और आक्सीजन को मिला दें, तो पानी नहीं बनेगा। लेकिन अगर आप पानी को तोड़ें, तो हाइड्रोजन और आक्सीजन बन जाएगी। अगर आप पानी की एक बूंद को तोड़ें, तो हाइड्रोजन और आक्सीजन आपको मिलेगी और कुछ भी नहीं मिलेगा। स्वभावतः, इसका नतीजा यह होना चाहिए कि अगर हम हाइड्रोजन और आक्सीजन को जोड़ दें, तो पानी बन जाना चाहिए।
लेकिन बड़ी मुश्किल है। तोड़ें, तो सिर्फ हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलती है। जोड़ें, तो पानी नहीं बनता। जोड़ने के लिए बिजली की मौजूदगी जरूरी है। और बिजली उस जोड़ में प्रवेश नहीं करती, सिर्फ मौजूद होती है, जस्ट प्रेजेंट। सिर्फ मौजूदगी चाहिए बिजली की। बिजली मौजूद हो, तो हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बन जाता है। बिजली मौजूद न हो, तो हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी नहीं बनते।
वह जो बरसात में आपको बिजली चमकती दिखाई पड़ती है, वह कैटेलिटिक एजेंट है, उसके बिना वर्षा नहीं हो सकती। उसकी वजह से वर्षा हो रही है। लेकिन वह पानी में प्रवेश नहीं करती है। वह सिर्फ मौजूद होती है।
यह कैटेलिटिक एजेंट की धारणा बड़ी कीमती है और अध्यात्म में तो बहुत कीमती है। गुरु कैटेलिटिक एजेंट है। वह कुछ देता नहीं। क्योंकि अध्यात्म कोई ऐसी चीज नहीं कि दी जा सके। वह कुछ करता भी नहीं। क्योंकि कुछ करना भी दूसरे के साथ हिंसा करना है, जबरदस्ती करनी है। वह सिर्फ होता है मौजूद। लेकिन उसकी मौजूदगी काम कर जाती है; उसकी मौजूदगी जादू बन जाती है। सिर्फ उसकी मौजूदगी, और आपके भीतर कुछ हो जाता है, जो उसके बिना शायद न हो पाता।
पहली तो बात यह है कि कृष्ण मौजूद न हों, तो समर्पण बहुत मुश्किल है।
इसलिए मैं मानता हूं कि अर्जुन को समर्पण जितना आसान हुआ होगा, मीरा को उतना आसान नहीं हुआ होगा। इसलिए मीरा की कीमत अर्जुन से ज्यादा है।

क्योंकि कृष्ण सामने मौजूद हों, तब समर्पण करना आसान है। कृष्ण बिल्कुल सामने मौजूद न हों, तब दोहरी दिक्कत है। पहले तो कृष्ण को मौजूद करो, फिर समर्पण करो।
मीरा को दोहरे काम करने पड़े हैं। पहले तो कृष्ण को मौजूद करो; अपनी ही पुकार, अपनी ही अभीप्सा, अपनी ही प्यास से निर्मित करो, बुलाओ, निकट लाओ। ऐसी घड़ी आ जाए कि कृष्ण मालूम पड़ने लगें कि मौजूद हैं। रत्ती मात्र फर्क न रह जाए, कृष्ण की मौजूदगी में और इसमें। दूसरों को लगेगी कल्पना, कि मीरा कल्पना में पागल है। नाच रही है, किसके पास! जो देखते हैं, उन्हें कोई दिखाई नहीं पड़ता। और यह मीरा जो गा रही है और नाच रही है, किसके पास?
तो मीरा की आंखों में जो देखते हैं, उन्हें लगता है कि कोई न कोई मौजूद जरूर होना चाहिए! और या फिर मीरा पागल है। जो नहीं समझते, उनके लिए मीरा पागल है। क्योंकि कोई भी नहीं है और मीरा नाच रही है, तो पागल है। जो नहीं समझते, वे समझते हैं, कल्पना है।
लेकिन अगर कल्पना इतनी प्रगाढ़ है, इतनी सृजनात्मक, इतनी क्रिएटिव है
कि कृष्ण मौजूद हो जाते हों, तो जो कल्पनाशील हैं, वे धन्यभागी हैं। जिनकी कल्पना इतनी सशक्त है कि कृष्ण के और अपने बीच के पांच हजार सालों को मिटा देती हो, अंतराल टूट जाता हो; और मीरा ऐसे करीब खड़ी हो जाती हो, जैसे अर्जुन खड़ा था।
तो पहली तो कठिनाई, जब मौजूद कृष्ण न हों, तो उनको मौजूद करने की है।
और अगर कोई अपने मन में उनको मौजूद करने को राजी हो जाए, तो वे हर घड़ी मौजूद हैं। क्योंकि परम सत्ता तिरोहित नहीं होती, सिर्फ उसके प्रतिबिंब तिरोहित होते हैं। परम सत्ता का मूल, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं कि अर्जुन तू देख सकेगा, जब मैं तुझे आंख दूंगा; वह मूल तो कभी नहीं खोता, प्रतिलिपियां खो जाती हैं।
वह मूल कभी पानी में झलकता है और राम दिखाई पड़ते हैं। वह मूल कभी पानी में झलकता है, और बुद्ध दिखाई पड़ते हैं। वह मूल कभी पानी में झलकता है, और कृष्ण दिखाई पड़ते हैं। यह भेद भी पानी की वजह से पड़ता है। अलग-अलग पानी अलग-अलग प्रतिबिंब बनाते हैं। वह मूल एक ही बना रहता है। उस मूल का तो खोना कभी नहीं होता; वह अभी आपके भी पास है। वह सदा आपके आस-पास आपको घेरे हुए है।
जिस दिन आपकी कल्पना इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि आपकी कल्पना जल बन जाए, दर्पण बन जाए, उस दिन वह मूल फिर प्रतिबिंब आपमें बना देता है। उसी प्रतिबिंब के पास मीरा नाच रही है। वह प्रतिबिंब मीरा को ही दिखाई पड़ रहा है। क्योंकि वह उसने अपनी ही कल्पना के जल में निर्मित किया है। किसी और को दिखाई नहीं पड़ रहा। लेकिन जिनमें समझ है, वे मीरा की आंख में भी उस प्रतिबिंब को पकड़ पाते हैं। वह मीरा की धुन और नाच में भी खबर मिलती है कि कोई पास है। क्योंकि मीरा जब उसके पास होने पर नाचती है, तो फर्क होता है। मीरा के दो तरह के नाच हैं। एक तो जब कृष्ण को वह पकड़ नहीं पाती अपनी कल्पना में, तब वह रोती है, तब वह उदास है, तब उसके पैर भारी हैं, तब वह चीखती है, चिल्लाती है, तब उसे जैसे मृत्यु घेर लेती है। और एक वह घड़ी भी है, जब उसकी कल्पना प्रखर हो जाती है, और कल्पना का जल स्वच्छ और साफ हो जाता है, और जब उस दर्पण में वह कृष्ण को पकड़ लेती है, तब उसकी धुन, और तब उसके पैरों के घुंघरू की आवाज बिल्कुल और है। तब उसमें जैसे महाजीवन प्रवाहित हो जाता है। तब जैसे उसके रोएं-रोएं से जो गरिमा प्रकट होने लगती है, वह सूर्यों को फीका कर दे। तब वह और है, जैसे आविष्ट, पजेस्ड, कोई और उसमें प्रवेश कर गया है।
तो जब वह रोती है विरह में, तब उसकी उदासी, तब मीरा अकेली है, उसको प्रतिबिंब पकड़ में नहीं आ रहा। और जब वह गाती है, आनंद में, अहोभाव में, कृष्ण से बात करने लगती है, तब कृष्ण निकट हैं। उस निकटता में समर्पण है। मीरा को कठिन पड़ा होगा, अर्जुन को सरल रहा होगा।
लेकिन उलटी बात भी हो सकती है। जिंदगी जटिल है। हो सकता है मीरा को भी सरल पड़ा हो, और अर्जुन को कठिन पड़ा हो। क्योंकि जो वास्तविक शरीर में खड़ा है, उसे परमात्मा मानना बहुत मुश्किल है। उसे भी प्यास लगती है, उसे भी भूख

लगती है। वह भी रात सोता है। वह भी स्नान न करे, तो बदबू आती है। वह भी रुग्ण होगा, मृत्यु आएगी। पदार्थ में बने सब प्रतिबिंब पदार्थ के नियम को मानेंगे, चाहे वह कोई भी, किसी का भी प्रतिबिंब क्यों न हो। तो उसे परमात्मा मानना मुश्किल हो जाता है। और परमात्मा न मान सकें, तो समर्पण असंभव हो जाता है।
सवाल यह नहीं है बड़ा कि कृष्ण परमात्मा हैं या नहीं। सवाल बड़ा यह है
कि जो उन्हें परमात्मा मान पाता है, उसके लिए समर्पण आसान हो जाता है। और जो समर्पण कर लेता है, उसे परमात्मा कहीं भी दिखाई पड़ सकता है। इसे थोड़ा समझ लें, यह जरा उलटा है।
कृष्ण का परमात्मा होना और न होना विचारणीय नहीं है। हों, न हों। कोई
तय भी नहीं कर सकता। कोई रास्ता भी नहीं है, कोई परख की विधि भी नहीं है। लेकिन जो कृष्ण को परमात्मा मान पाता है, उसके लिए समर्पण आसान हो जाता है। और जिसके लिए समर्पण आसान हो जाता है, उसे पत्थर में भी परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा। कृष्ण तो पत्थर नहीं हैं, उनमें तो दिखाई पड़ ही जाएगा। अगर परमात्मा भी आपके सामने मौजूद हो और आप परमात्मा न मान पाएं, तो समर्पण न कर सकेंगे। समर्पण न कर सकें, तो सिर्फ पदार्थ दिखाई पड़ेगा, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता। समर्पण आपका द्वार खोल देता है।
कृष्ण ने अर्जुन को आंख दी, यह सिर्फ उसी अर्थ में, जैसा कैटेलिटिक एजेंट का अर्थ होता है, उनकी मौजूदगी से। कृष्ण ने दे नहीं दी, नहीं तो वे पहले ही दे देते। इतनी देर, इतना उपद्रव, इतनी चर्चा करने की क्या जरूरत थी? इतना युद्ध को विलंब करवाने की क्या जरूरत थी? अगर कृष्ण ही आंख दे सकते थे बिना अर्जुन की किसी तैयारी के, तो यह आंख पहले ही दे देनी थी। इतना समय क्यों व्यर्थ खोया?
नहीं। जब तक अर्जुन समर्पित न हो, यह आंख नहीं अर्जुन को आ सकती थी। समर्पित हो, तो आ सकती है। लेकिन अगर कृष्ण मौजूद न हों, तो भी बहुत कठिनाई है इसके आने में।
बहुत बार ऐसा हुआ है कि निकट मौजूद न हो दिव्य व्यक्ति, तो लोग आखिरी किनारे से भी वापस लौट आए हैं। क्योंकि कैटेलिटिक एजेंट नहीं मिल पाता। अनेक बार लोग उस घड़ी तक पहुंच जाते हैं, जहां समर्पित हो सकते थे, लेकिन कहां समर्पित हों, वह कोई दिखाई नहीं पड़ता।
तो यदि उनकी कल्पना प्रखर और सृजनात्मक हो, अगर वे बड़े बलशाली चैतन्य
के व्यक्ति हों और भावना गहन और प्रगाढ़ हो, तो वे उस व्यक्ति को निर्मित कर लेंगे, जिसके प्रति समर्पित हो सकें। और नहीं तो वापस लौट आएंगे। बहुत-से आध्यात्मिक साधक भी समर्पित नहीं हो पाते हैं, और तब अधूरे में लटके त्रिशंकु की भांति रह जाते हैं।
गुरु का उपयोग यही है कि वह मौका बन जाए। मूर्ति का भी उपयोग यही है कि
वह मौका बन जाए। मंदिर का, तीर्थ का भी उपयोग यही है कि वहां मौका बन जाए। आपको आसानी हो जाए कि आप अपने सिर को झुका दें, लेट जाएं, खो जाएं।
अभी एक जर्मन युवती मेरे पास आई। वह लौटती थी सिक्किम से। वहां एक तिब्बेतन आश्रम में साधना करती थी छः महीने से। मैंने उससे पूछा कि वहां क्या साधना तू कर रही थी? उसने कहा, छः महीने तक तो अभी मुझे सिर्फ नमस्कार करना ही सिखाया जा रहा है। सिर्फ नमस्कार करना! इसमें छः महीने कैसे व्यतीत हुए होंगे? उसने कहा कि दिनभर करना पड़ता था। जो भी--दो सौ भिक्षु हैं उस आश्रम में--जो भी भिक्षु दिखाई पड़े, तत्क्षण लेटकर साष्टांग नमस्कार करना। दिन में ऐसा हजार दफे भी हो जाता; कभी दो हजार दफे भी हो जाता। बस, इतनी ही साधना थी अभी, उसने कहा।
मैंने पूछा, तुझे हुआ क्या? उसने कहा, अदभुत हो गया है। मैं हूं, इसका मुझे ख्याल ही मिटता गया है। एक नमस्कार का सहज भाव भीतर रह गया। और पहले तो यह देखकर नमस्कार करती थी कि जो कर रही हूं जिसको नमस्कार, वह नमस्कार के योग्य है या नहीं। अब तो कोई भी हो, सिर्फ निमित्त है; नमस्कार कर लेना है। और अब बड़ा मजा आ रहा है। अब तो जो आश्रम में भिक्षु भी नहीं हैं, जिनको नमस्कार करने की कोई व्यवस्था नहीं है, उनको भी मैं नमस्कार कर रही हूं।

और कभी-कभी आश्रम के बाहर चली जाती हूं, वृक्षों और चट्टानों को भी नमस्कार करती हूं।
अब यह बात गौण है कि किसको नमस्कार की जा रही है, अब यही महत्वपूर्ण है
कि नमस्कार परम आनंद से भर जाती है। क्योंकि नमस्कार अहंकार का विरोध है। झुक जाना अहंकार की मौत है। जो नहीं झुक पाता, वह कितना ही पवित्र हो जाए, शुद्ध हो जाए, चरित्र, आचरण सब अर्जित कर ले, ब्रह्मचर्य फलित हो जाए, अहिंसक हो जाए, सत्यवादी हो जाए, लेकिन न झुक पाए, तो भी आंख नहीं खुलेगी। अब उसकी यह सारी पवित्रता भी उसका अहंकार बन जाएगी। अब यह भी उसका दंभ होगा।
और इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि चरित्रवान, तथाकथित चरित्रवान, चरित्रहीनों से भी ज्यादा अहंकारी हो जाते हैं। और अहंकार से बड़ा उपद्रव नहीं है। अच्छा आदमी अक्सर अहंकारी हो जाता है, क्योंकि सोचता है, मैं अच्छा हूं।
इसलिए कभी-कभी ऐसा होता है कि पापी परमात्मा के पास जल्दी पहुंच जाते हैं, बजाय साधुओं के। इसका यह मतलब नहीं कि आप पापी हो जाना। इसका यह मतलब भी नहीं कि आप साधु मत होना। इसका कुल मतलब इतना है कि साधु के साथ भी अहंकार हो, तो रोकेगा; और पापी के साथ भी अहंकार न हो, तो पहुंचा देगा। इसका इतना ही मतलब हुआ कि अहंकार से बड़ा पाप और कोई भी नहीं है। और निरअहंकारिता से बड़ी कोई साधुता नहीं है।
अर्जुन झुक गया। उसने कहा, अब जो मर्जी; अब मैं राजी हूं। अब न मेरा कोई संदेह है, न कोई सवाल है। अब तुम जो करना चाहो। तो कृष्ण ने कहा, तुझे मैं अलौकिक चक्षु देता हूं, दिव्य-चक्षु देता हूं।
दिव्य-चक्षु के संबंध में थोड़ी बात समझ लेनी जरूरी है। थोड़ा कठिन है, क्योंकि हमें उसका कोई अनुभव नहीं है। तो किस भाषा में, कैसे उसे पकड़ें? अभी हम देखते हैं; अभी हम आंख से देखते हैं। रात आप सपना भी देखते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि वह आप बिना आंख के देखते हैं। आंख तो बंद होती है। आप सपना देख रहे हैं, बिना आंख के देख रहे हैं। अगर आपकी आंख फूट भी जाए, आप अंधे हो जाएं, तो भी आप सपना देख सकेंगे।
जन्मांध नहीं देख सकेगा। और जन्मांध अगर देखेगा भी सपना, तो उसमें आंख का हिस्सा नहीं होगा, कान का हिस्सा होगा, हाथ का हिस्सा होगा। सुनेगा सपने में, देख नहीं सकेगा। लेकिन अगर आप अंधे हो जाएं, तो आप आंख के बिना भी सपना देख सकेंगे। सपना बिना आंख के देखते हैं; कौन देखता है!
शायद आपने कभी सोचा ही नहीं कि आंख के बिना भी देखना हो जाता है! अंधेरा होता है, आंख बंद होती है, आप भीतर सपना देखते हैं, सपना रोशन होता है। जिनके पास थोड़ी कलात्मक रुचि है, वे रंगीन सपना भी देखते हैं। जो थोड़े कलाहीन हैं, वे ब्लैक-व्हाइट देखते हैं। जो थोड़े पोएटिक हैं, कवि है जिनके पास मन में या चित्रकार जिनके भीतर छिपा है, वे रंगीन भी देखते हैं। रंग भी दिखाई पड़ते हैं बिना आंख के। कान भी बंद हों, तो सपने में आवाज सुनाई पड़ती है। और हाथ तो होते नहीं भीतर। फिर भी सपने में स्पर्श होता है, गले मिलना हो जाता है।
तो एक बात तय है कि जो आपके भीतर देखने वाला है, उसका आंख से कोई बंधन नहीं है, आंख से कोई देखने की अनिवार्यता नहीं है। आंख जरूरी नहीं है देखने के लिए। लेकिन बाहर देखने के लिए जरूरी है। भीतर देखने के लिए जरूरी नहीं है। भीतर तो आंख बंद करके भी देखा जा सकता है।
तो एक तो ख्याल ले लें, जो आंखें हमारी हैं, वे हमारे दर्शन की क्षमता नहीं हैं, केवल दर्शन को बाहर ले जाने वाले द्वार, माध्यम हैं। हमारी देखने की क्षमता को बाहर तक पहुंचाने की व्यवस्था है, इंस्ट्रूमेंटल है। देखने वाला भीतर है।
दिव्य-चक्षु का अर्थ होता है, सिर्फ देखने वाला ही हो, बिना किसी माध्यम के। क्यों? क्योंकि माध्यम सीमा बनाता है। जिससे आप देखते हैं, उससे आपकी सीमा बंध जाती है। जब कोई भी देखने का माध्यम न हो और देखने की शुद्ध क्षमता भीतर जाग्रत हो जाए, तो जो दिखाई पड़ता है, वह असीम है।

ऐसा ही समझें कि आप एक छोटे-से छेद से दीवाल से अपने घर के भीतर छिपे हुए बाहर के आकाश को देखते हैं। फिर आप दीवाल को तोड़कर और बाहर खुले आकाश के नीचे आकर खड़े हो जाते हैं।
अभी तक हमने अपने भीतर छिपकर, शरीर के भीतर छिपकर जगत को आंखों के छेद
से देखा है। इन आंखों का विस्मरण करके सिर्फ भीतर देखने वाला ही सजग हो जाए, सिर्फ देखने वाला ही रह जाए--जिसको हम द्रष्टा कहते हैं, साक्षी कहते हैं--सिर्फ चैतन्य भीतर रह जाए और कोई माध्यम न हो देखने का, तो खुला आकाश प्रकट हो जाता है।
वह देखने की क्षमता, शुद्ध, बिना माध्यम के, उसका नाम ही दिव्य-चक्षु है। उसे दिव्य इसलिए कह रहे हैं कि फिर हम असीम को देख सकते हैं। फिर सीमा से कोई संबंध न रहा।
ध्यान रहे, वस्तुओं में सीमा नहीं है, हमारी इंद्रियों के कारण दिखाई पड़ती है। इस जगत में कुछ भी सीमित नहीं है, सब असीम है। लेकिन हमारे पास देखने का जो उपाय है, वह सभी पर सीमा बिठा देता है। वह ऐसा ही है जैसे कि एक आदमी रंगीन चश्मा लगाकर देखना शुरू करता है। सब चीजें रंगीन हो जाती हैं। और अगर हम जन्म के साथ ही रंगीन चश्मे को लेकर पैदा हुए हों, तो हमें ख्याल भी नहीं आ सकता कि चीजें रंगीन नहीं, सब हमारे चश्मे से दिए गए रंग हैं। हम जो भी अपने चारों तरफ देख रहे हैं, वह वही नहीं है, जो है। हम वही देख रहे हैं, जो हम देख सकते हैं। हम वही सुन रहे हैं, जो हम सुन सकते हैं। हम वही अनुभव कर रहे हैं, जो हम अनुभव कर सकते हैं। चुनाव कर रहे हैं हम, सिलेक्टिव है हमारा सारा अनुभव, क्योंकि हमारी सारी इंद्रियां चुनाव कर रही हैं।
अभी वैज्ञानिक इस पर बहुत अध्ययन करते हैं, तो वे कहते हैं कि सौ में
से हम केवल दो प्रतिशत देख रहे हैं। जो भी हमारे चारों तरफ घटित होता है, उसमें अट्ठानबे प्रतिशत हमें पता ही नहीं चलता। उसे हम चुनते ही नहीं हैं; वह हमसे छूट ही जाता है।
इसे हम थोड़ा ऐसा समझें कि आप एक रास्ते से भागे चले जा रहे हैं; आपके
घर में आग लगी है। उसी रास्ते से आप रोज गुजरते हैं, आज भी गुजर रहे हैं, लेकिन आज आप रास्ते में वही बातें नहीं देखेंगे, जो आप रोज देखते थे। एक सुंदर स्त्री पास से निकलेगी, आपको पता ही नहीं चलेगा। ऐसा बहुत बार आपने चाहा था कि ऐसी घड़ी आ जाए चित्त की कि सुंदर स्त्री पास से निकले और पता न चले। लेकिन वह घड़ी कभी नहीं आई। आज मकान में आग लग गई है, तो घड़ी आई है। सुंदर स्त्री पास से निकलती है, आपकी स्थिति वही है, जो बुद्ध की रही होगी। अभी आपको बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन बुद्ध को बिना मकान में आग लगे; आपको मकान में आग लगे तब।
क्या हो गया? आंखें वही हैं, कान वही हैं। रास्ते पर कोई गीत चल रहा है, आज सुनाई नहीं पड़ता। कोई नमस्कार करता है, कितनी दफे चाहा था कि यह आदमी नमस्कार करे और इस नासमझ को, कमबख्त को, आज नमस्कार करने का मौका मिला! वह आज दिखाई नहीं पड़ता। आज मकान में आग लगी है। आपकी सारी चेतना एक तरफ दौड़ गई है। आपकी सभी इंद्रियां निस्तेज हो गई हैं। कोई भी इंद्रिय से आपकी चेतना का कोआपरेशन, सहयोग नहीं रहा, टूट गया।
आंख से देखने के लिए आंख के पीछे आपकी मौजूदगी जरूरी है। आज आपकी मौजूदगी यहां नहीं है। मकान में आग लगी है; आप वहां मौजूद हैं। आंख से अब आप भाग रहे हैं। आंख से सिर्फ आप इतना ही काम ले रहे हैं कि किस तरह उस मकान के पास पहुंच जाएं, जहां आपकी चेतना पहले ही पहुंच गई है। इस शरीर को कैसे उस मकान के पास तक पहुंचा दें, जहां आपका मन पहले ही पहुंच गया है। बस इतना इस आंख से काम लेना है, बाकी कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है।
इसे हम ऐसा समझें कि रास्ते पर अट्ठानबे-निन्यानबे प्रतिशत चीजों के लिए आप अंधे हो गए हैं। सिर्फ एक प्रतिशत आंख का काम रह गया है।
संसार से जब कोई सौ प्रतिशत अंधा हो जाता है, तो दिव्य-चक्षु उत्पन्न होता है। क्योंकि वह जो एक प्रतिशत भी है, वह भी काफी है। जोड़ तो बना ही हुआ है। और वह एक प्रतिशत के पीछे फिर वापस निन्यानबे लौट आएगा। जब कोई संसार

के प्रति सौ प्रतिशत अनुपस्थित हो जाता है, इस अनुपस्थिति का पारिभाषिक नाम वैराग्य है।
वैराग्य का मतलब यह नहीं कि घर को छोड़कर कोई भाग जाए। छोड़ने में भी राग है। छोड़ने में भी घर की पकड़ है। क्योंकि जो पकड़े है, वही छोड़ता है। और छोड़ने की कोशिश करनी है, तो उसका मतलब है कि पकड़ भारी है। और छोड़कर जो भाग जाता है, उसके भागने में उतनी ही गति होती है, जितनी पकड़ मजबूत होती है। क्योंकि वह डरता है कि कहीं खींच न लिया जाऊं। जोर से भाग जाऊं। सब बीच के सेतु तोड़ दूं कि लौटने का कोई रास्ता न रहे। सब रास्ते गिरा दूं कि फिर वापस न लौट सकूं।
लेकिन यह सब भय है; वैराग्य नहीं है। वैराग्य का मतलब तो इतना ही है कि संसार जहां है, वहां है; न मैं उसे छोड़ता हूं, न पकड़ता हूं। सिर्फ मैं उसके प्रति, मेरी जो चेतना सब इंद्रियों से दौड़ती थी उसके प्रति, उसे वापस लौटा रहा हूं। उसका प्रतिक्रमण, उसकी वापसी, उसका लौट आना, बस इतना ही वैराग्य का अर्थ है। अगर आंख विरागी हो जाए, तो दिव्य-चक्षु खुल जाता है।
समर्पण कोई करता ही तब है, जब संसार में रस न रह जाए। इसे थोड़ा समझ लें।
संसार में थोड़ा भी रस हो, तो हम समर्पण नहीं कर सकते। थोड़ी भी वासना हो, तो हम कहेंगे कि... वासना का मतलब ही यह होता है कि मैं चाहता हूं, ऐसा हो। समर्पण का मतलब है कि अब मैं कहता हूं, जैसा परमात्मा चाहे। अगर मेरे भीतर जरा-सी भी वासना है, तो मैं कहूंगा कि सब कर सकता हूं, बस परमात्मा इतना मेरे लिए कर देना। बाकी सब समर्पण है। बाकी यह मकान मुझे मिल जाए, इतनी शर्त!
सुना है मैंने, फकीर जुन्नैद एक दिन प्रार्थना कर रहा है। और परमात्मा से वह कह रहा है कि वर्षों हो गए तेरी पुकार, तेरी प्रार्थना, तेरे गीत गाते। सब तुझ पर छोड़ दिया। मेरे लिए तेरे सिवाय अब कुछ भी नहीं है। एक बात पूछनी है। यह तो मेरी भावना हुई कि मेरे लिए तेरे सिवाय कुछ भी नहीं है। तुझसे भी मैं पूछना चाहता हूं कि मेरी तरफ तेरी क्या नजर है? मेरी तरफ तेरी क्या नजर है? यह तो मेरा ख्याल है कि मेरे लिए तेरे सिवाय कोई भी नहीं है। तेरी क्या नजर है मेरी तरफ, इसका भी तो पता चले!
तो कहते हैं, आवाज जुन्नैद को सुनाई पड़ी, इसी वासना के कारण तू मुझसे दूर है। इतनी-सी वासना भी; तेरा इतना भी आग्रह कि यह तो पता चले कि आपका क्या ख्याल है मेरे प्रति? अभी तू अपने को पकड़े ही हुए है। तूने अपने को छोड़ा नहीं है। तूने पूरा नहीं छोड़ा। अभी आखिर में तू मौजूद है और जानना चाहता है कि परमात्मा मेरे बाबत क्या सोचता है? केंद्र तू ही है। अभी परमात्मा परिधि है, अभी केंद्र नहीं हुआ। इतनी-सी वासना भी बाधा है। समर्पण तो वही कर पाएगा, जिसको संसार में कुछ अर्थ नहीं रहा। शायद अर्जुन इस घड़ी में आ गया है कि अब उसे कुछ अर्थ नहीं रहा है। उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। वह सारा युद्धस्थल, वे सारे लोग, सब खो गए, स्वप्न हो गए। वह कहता है, मैं सब छोड़ने को राजी हूं। अब मुझे, अगर आप चाहते हों, और शक्य हो और उचित मानें, तो मुझे दिखा दें।
इस समर्पण की घड़ी में कृष्ण ने कहा कि मैं तुझे दिव्य अलौकिक चक्षु देता हूं।
क्यों कहा, देता हूं? भाषा की मजबूरी है। भाषा में सब तरफ द्वंद्व है। इसलिए भाषा में जो भी कहा जाए, वह द्वैत हो जाता है। अगर कृष्ण ऐसी भाषा बोलें, जिसमें द्वैत न हो, तो अर्जुन की समझ में नहीं आएगा। अभी तो नहीं आएगा, अभी दिव्य-चक्षु तो मिला नहीं है। अभी तो भाषा लेने-देने की बोलनी पड़ेगी। हम भी भाषा में जब किसी ऐसे अनुभव को रखते हैं, जो भाषा के पार है, तो अड़चन आनी शुरू होती है।
आप किसी को कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम देता हूं। पर आपने कभी ख्याल किया कि प्रेम क्या दिया जाता है? या आप चाहते तो क्या देने से रोक सकते थे? प्रेम होता है, दिया नहीं जा सकता। या फिर कोशिश करके देखें किसी को प्रेम देकर! कि चलो, इसको कोशिश करें; प्रयास, अभ्यास करें; प्राणायाम साधें; और प्रेम दें। तब आप पाएंगे कि कुछ नहीं हो रहा है। कुछ हो ही नहीं

रहा है। प्रेम की कोई ऊर्जा प्रकट नहीं होती। कोई किरण नहीं जगती। कोई धुन पैदा नहीं होती। कुछ नहीं होता।
आप नकल कर सकते हैं; अभिनय कर सकते हैं। लेकिन प्रेम नहीं दिया जा सकता। प्रेम होता है। लेकिन फिर भी हम भाषा में कहते हैं कि प्रेम देता हूं। वह देना गलत है। मगर भाषा में ठीक है। भाषा में कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि सारी भाषा लेने-देने पर निर्मित है। और प्रेम दोनों के बाहर है। इसलिए जीसस ने कहा कि प्रेम ही परमात्मा है। और किसी कारण से नहीं। इसलिए नहीं कि परमात्मा बहुत प्रेमी है। सिर्फ इसीलिए कि मनुष्य के अनुभव में प्रेम एक अद्वैत का अनुभव है। उससे समझ में आ जाए शायद, कि जैसा प्रेमी को कठिन हो जाता है कहना कि देता हूं। होता है। जैसे श्वास चलती है, ऐसा प्रेम चलता है।
शायद श्वास को तो हम रोक भी सकते हैं थोड़ी देर, प्रेम को हम रोक भी नहीं सकते। शायद श्वास को हम बाहर भी जोर से फेंक सकते हैं, लेकिन प्रेम को हम जोर से फेंक भी नहीं सकते। हम प्रेम के साथ कुछ भी नहीं कर सकते। इसलिए प्रेमी एकदम असहाय हो जाता है, हेल्पलेस हो जाता है। उसे लगता है, मैं कुछ भी नहीं कर सकता। कुछ मुझसे बड़ी शक्ति ने मुझे पकड़ लिया।
इसलिए प्रेमी हमें पागल मालूम पड़ने लगता है। क्यों? क्योंकि वह सारा कंट्रोल, सारा नियंत्रण खो देता है। अब वह कुछ कर नहीं सकता। कुछ और उसमें हो रहा है, जिसमें उसे बहना ही पड़ेगा। अब किसी बड़ी धारा ने उसे पकड़ लिया, जिसमें कुछ करने का उपाय नहीं है। तैर भी नहीं सकता।
इसलिए जो समझदार हैं, तथाकथित समझदार, वे प्रेम से बचते हैं। नहीं तो कंट्रोल खो जाता है, नियंत्रण खो जाता है। समझदार पैसे की फिक्र करते हैं, प्रेम की नहीं, क्योंकि पैसे पर नियंत्रण हो सकता है; लिया-दिया जा सकता है; तिजोड़ी में रखा जा सकता है; जरूरत हो वैसा उपयोग किया जा सकता है। प्रेम आपसे बड़ा साबित होता है।
ध्यान रहे, प्रेम प्रेमी से बड़ा साबित होता है। प्रेमी छोटा पड़ जाता
है और प्रेम बड़ा हो जाता है। और प्रेमी एक तूफान, एक अंधड़ में फंस जाता है।
कोई बड़ी ताकत, उससे बड़ी ताकत उसे चलाने लगती है। इसलिए वह निरवश हो जाता है, अवश हो जाता है, असहाय हो जाता है।
फिर भी प्रेमी भाषा में कहता है कि मैं प्रेम देता हूं।
ठीक ऐसे ही कृष्ण ने कहा है कि मैं तुझे दिव्य-चक्षु देता हूं। कृष्ण चाहते भी, और अर्जुन का समर्पण पूरा होता, तो दिव्य-चक्षु देने से रुक नहीं सकते थे। यह ख्याल में ले लें। चाहते भी, तो भी दिव्य-चक्षु देने से रोका नहीं जा सकता था। कृष्ण का होना पास और अर्जुन का समर्पण, दिव्य-चक्षु घटता ही। यह वैसे ही घटता, जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है। ऐसे ही परमात्मा भी अर्जुन की तरफ बहता ही, इसमें कोई उपाय नहीं है।
लेकिन जरा अजीब-सा लगता कि कृष्ण कहते कि अब दिव्य-चक्षु तुझमें घटित
हो रहा है। वह अर्जुन की समझ के बाहर होता। हैपनिंग! देना नहीं है वह, एक घटना है।
लेकिन भाषा हमेशा ही अद्वैत को द्वैत में तोड़ देती है। और जहां दो हो जाते हैं, वहां लेना-देना हो जाता है।
इसलिए प्रेम को दिया-लिया नहीं जा सकता, क्योंकि वहां दो नहीं रह जाते। कौन ले! कौन दे! वहां एक ही रह जाता है।
समर्पण की इस घड़ी में अर्जुन मिल गया कृष्ण की सत्ता के साथ! सागर बूंद की तरफ दौड़ पड़ा। आंख खुल गई। सीमाएं टूट गईं। सब ढांचे गिर गए। खुले आकाश को वह देख सका।
संजय ने कहा, हे राजन्, महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करने वाले भगवान ने इस प्रकार कहकर उसके उपरांत अर्जुन के लिए परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखाया।
बड़े मजे की कहानी है। और इसमें कई तल सत्य की खबर में विभक्त हो जाते हैं, बंट जाते हैं। घटना घटी कृष्ण के भीतर से अर्जुन के भीतर की तरफ। घटी; की नहीं गई। हुई; हुआ कि अर्जुन खुल गया, उसकी सब पंखुड़ियां खुल गईं चेतना की, और देख सका।

यह संजय अंधे धृतराष्ट्र को सुना रहा है। संजय बहुत दूर है, जितने दूर
हम हैं। कृष्ण से उतनी ही दूर, जितनी दूर हम हैं, कृष्ण से उतनी ही दूर। हमारी दूरी समय की है, उसकी दूरी स्थान की थी। बाकी दूरी में कोई फर्क नहीं पड़ता। दूरी थी। बहुत दूर।
सत्य जब भी घटता है, तो जिनको सत्य घटता है, वे हमसे समय और स्थान में बड़े दूर हो जाते हैं। पर उनकी खबर लाने वाला हमारे बीच में कोई चाहिए, अन्यथा खबर नहीं आ सकेगी। हम अंधों के पास खबर आ भी कैसे सकेगी!
महावीर को घटना घटती है, महावीर बोलते नहीं हैं। उनके गणधर, उनके संदेशवाहक बोलते हैं। महावीर चुप रह जाते हैं। महावीर और हमारे बीच में गणधर की जरूरत है, एक संदेशवाहक की, एक मैसेंजर की जरूरत है। मैसेंजर, वह जो बीच का संदेशवाहक है, उसमें दो गुण होने चाहिए। वह आधा हम जैसा होना चाहिए, और आधा उस तरफ, कृष्ण, महावीर की चेतना की तरफ होना चाहिए। आधा-आधा, बीच में होना चाहिए।
संजय थोड़ी दूर तक अर्जुन जैसा है। थोड़ी दूर तक! पूरा होता, तो वह भी फिर घटना अंधे धृतराष्ट्र को नहीं सुना सकता। आधा! आधा कृष्ण जैसा है, आधा अर्जुन जैसा है। आधा झुका है उस तरफ। उसे चीजें दिखाई पड़ती हैं, जो बहुत दूर घट रही हैं। वह पकड़ पाता है। उसके पास दिव्य-चक्षु नहीं हैं। क्योंकि दिव्य-चक्षु तो पूरी घटना में घटता है, वह अर्जुन को घट रहा है। वह संजय के पास नहीं है।
अनेक लोगों को यह विचारणीय रहा है कि संजय इतनी दूर से कैसे देख रहा है? उसके पास टेलिपैथिक, सिर्फ दूर-दृष्टि है। दिव्य-दृष्टि नहीं, दूर-दृष्टि। जो अनुभव को उपलब्ध होता है, उसको तो दिव्य-दृष्टि होती है। जो अनुभवी और गैर-अनुभवियों के बीच में खड़ा होता है, उसके पास दूर-दृष्टि होती है। वह देख पा रहा है। दूर की घटना है, बहुत दूर घट रही है, पर उसको पकड़ पा रहा है। और पकड़ वह किसके लिए रहा है? अंधे धृतराष्ट्र के लिए! वह अंधे धृतराष्ट्र को समझा रहा है। इसलिए और कठिनाई है।
ध्यान रहे, यह जो गीता की भाषा है, यह संजय की भाषा है। ये शब्द संजय के हैं। और ये शब्द भी संजय के हैं, एक अंधे की समझ में आ सकें, उस लिहाज से बोले गए।
इसलिए कई तल हैं। घटना का तल है एक तो कृष्ण। फिर एक दूसरे तल पर निकट में खड़ा हुआ अर्जुन है। फिर बहुत दूरी पर खड़ा हुआ संजय है। और फिर अनंत दूरी पर बैठा हुआ अंधा धृतराष्ट्र है। तो गीता इन चार चरणों में चलती है। हम सब धृतराष्ट्र हैं, अंधे हैं। वहां हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कुछ सूझ में नहीं आता। धृतराष्ट्र पूछता है संजय से। और संजय कह रहा है, उस दूर की घटना को बांध रहा है शब्दों में। स्वाभाविक है कि संजय के शब्द अधूरे होंगे। और इसलिए भी अधूरे होंगे, क्योंकि अंधे को समझाना है।
इसलिए ध्यान रहे, गीता बहुत लोकप्रिय हो सकी; उसका कारण है, हम अंधों
की थोड़ी-थोड़ी समझ में आ सकी। बहुत पापुलर है। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि गीता से ज्यादा लोकप्रिय कुछ भी और क्यों नहीं है? हमारे पास और अदभुत ग्रंथ हैं। बहुत अदभुत ग्रंथ हैं हमारे पास। पर गीता क्यों इतनी लोकप्रिय हो सकी?
तो मैं कहता हूं, धृतराष्ट्रों के कारण! वे जो अंधे हैं, उनकी समझ में
आ सके, संजय ने उनके योग्य शब्द उपयोग किए हैं। तो जब तक दुनिया में अंधे हैं, तब तक गीता की लोकप्रियता में कोई कमी पड़ने वाली नहीं है। और दुनिया में अंधे सदा रहेंगे, इसलिए निष्फिक्र रहा जा सकता है। जिस दिन दुनिया में अंधे न हों, उस दिन संजय की बातें बचकानी मालूम पड़ेंगी। या जो अंधा नहीं रह जाता, जिसकी आंख खुल जाती है, उसे लगता है कि संजय धृतराष्ट्र के लिए बोल रहा है। इस बोलने में कुछ खबर तो है सत्य की, लेकिन कुछ असत्य का मिश्रण भी है। क्योंकि वह अंधे की समझ में ही तब आ सकेगा। शुद्ध सत्य अंधे की समझ में नहीं आ सकता।
यह मीठा प्रतीक है धृतराष्ट्र का। इसे ख्याल में लें।
संजय ने कहा कि ऐसा कहने के बाद, अर्जुन के लिए कृष्ण ने परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखाया।

जो पहली बात कही है, वह है ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप। वह भी अर्जुन
की तैयारी के लिए। क्योंकि परमात्मा के सभी रूप हैं। वह जो विकराल, भयंकर और कुरूप है, वह भी परमात्मा है। और वह जो सुंदर, ऐश्वर्ययुक्त, महिमावान है, वह भी परमात्मा है। इस संबंध में भारतीय दृष्टि को ठीक से समझ लेना जरूरी है।
भारत यह नहीं कहता कि कुछ बुरा जो है, वह परमात्मा नहीं है। सारी दुनिया में दूसरे धर्म बांट देते हैं जगत को दो हिस्सों में। वे एक तरफ शैतान को खड़ा कर देते हैं, कि जो-जो बुरा है, वह शैतान की तरफ; और जो-जो अच्छा है, वह भगवान की तरफ। भगवान उनके लिए अच्छे-अच्छे का जोड़ है, और शैतान बुरे-बुरे का।
लेकिन तब वे समझा नहीं पाते कि बुरा क्यों है! और यह जो तुम्हारा अच्छा भगवान है, अब तक बुरे को नष्ट क्यों नहीं कर पाया? और अगर अब तक नहीं कर पाया, तो कब तक कर पाएगा? और जो अब तक नहीं कर पाया और अनंतकाल व्यतीत हो गया, संदेह पैदा होता है कि वह कभी भी कर पाएगा! क्योंकि अब तक कर लिया होता, अगर कर सकता होता।
नीत्शे ने कहा है कि जो कुछ भी हो सकता था दुनिया में, वह हो चुका होना चाहिए। कितने अनंत काल से दुनिया है, अब क्या आशा रखने की जरूरत है! ठीक कहा है। इतने अनंत काल से जगत है, जो भी होना चाहिए था, वह हो चुका होगा। और अगर अब तक नहीं हुआ है, तो कभी नहीं होगा।
तो बड़ी कठिनाई है। जिन धर्मों ने, जैसे जरथुस्त्र ने दो हिस्सों में बांट दिया, जीसस ने दो हिस्सों में बांट दिया, मोहम्मद ने दो हिस्सों में बांट दिया। ऐसा मालूम होता है कि उनको भी शायद यह अंधों के लिए बांटना पड़ा होगा। और शायद उनके पास बड़े मजबूत अंधे रहे होंगे आस-पास। बड़े मजबूत अंधे! वे अद्वैत की भाषा ही नहीं समझ सकते होंगे।
और ऐसा लगता है कि मोहम्मद के आस-पास जो समूह था, वह निपट अंधा समूह रहा होगा। असंस्कृत; मरुस्थल के लोग; जंगली, खूंखार; मारना ही उनके लिए एक मात्र समझ थी! मरना और मारने की भाषा उनकी पकड़ में आती होगी। तो मोहम्मद को जो भाषा बोलनी पड़ी है, इन धृतराष्ट्रों के लिए है, मजबूत धृतराष्ट्र। यह जो संजय को धृतराष्ट्र मिले, काफी विनम्र रहे होंगे; तैयारी रही होगी। तो द्वैत की भाषा बोलनी पड़ी है।
तो जिन्होंने, जिन धर्मों ने दो में बांट दिया है, उनके लिए बड़ा सवाल खड़ा हो गया कि बुराई फिर है क्यों! और परमात्मा की बिना अनुमति के अगर बुराई हो सकती है, तो इस जगत में परमात्मा से भी बड़ी ताकत है। और अगर परमात्मा की अनुमति से ही बुराई हो रही है, तो फिर परमात्मा को अच्छा कहने का क्या प्रयोजन है!
भारत ने बड़ी हिम्मत की है। भारत ने स्वीकार किया है कि बुरा भी परमात्मा है, भला भी परमात्मा है। भारत यह कहता है कि सारा द्वैत परमात्मा है। उसको दो में हम बांटते ही नहीं। हम जन्म को भी परमात्मा कहते हैं, मृत्यु को भी। और हम सुख को भी परमात्मा कहते हैं, और दुख को भी। और हम सत्य को भी परमात्मा कहते हैं और संसार को भी। ये दो छोर हैं उस एक के ही। जो उस एक को जान लेता है, उसके लिए ये दो तिरोहित हो जाते हैं। जो उस एक को नहीं जानता, वह इन दो के बीच परेशान होता रहता है।
परेशानी इसलिए है कि हम एक को नहीं जानते। परेशानी बुराई के कारण नहीं है। परेशानी इसलिए है कि भलाई और बुराई दोनों के बीच जो छिपा है एक, उससे हमारी कोई पहचान नहीं है। परेशानी मौत के कारण नहीं है। परेशानी इसलिए है कि जीवन और मौत दोनों में जो छिपा है एक, उससे हमारी कोई पहचान नहीं है। इसलिए मौत से परेशानी है। पाप से परेशानी नहीं है। पाप से परेशानी इसलिए है कि पाप और पुण्य दोनों में जो छिपा है, उस एक की हमें कोई झलक नहीं मिलती। पुण्य में नहीं मिलती, तो पाप में कैसे मिले? पुण्य तक में नहीं दिखाई पड़ता वह, तो पाप में हमें कैसे दिखाई पड़ेगा? अंधापन है हमारा।
लेकिन कृष्ण शुरू करते हैं ऐश्वर्ययुक्त रूप से। अर्जुन राजी हो जाए।
जब पहली दफा आंख खुलती है उस परम में, तो अगर पहली दफे ही विकराल दिखाई पड़

जाए, कुरूप दिखाई पड़ जाए, पहली दफे ही मृत्यु दिखाई पड़ जाए, तो शायद अर्जुन सिकुड़कर वापस सदा के लिए बंद हो जाए।
जिन लोगों ने भी कभी किन्हीं कारणों से, कुछ गलत विधियों से परमात्मा
का विकराल रूप पहली दफा देख लिया है, वे अनेक जन्मों के लिए मुश्किल में पड़ जाते हैं। वह रूप है।
जर्मन विचारक आटो ने एक किताब लिखी है, दि आइडिया आफ दि होली--उस पवित्रतम का प्रत्यय। और उसमें उसने दो रूप कहे हैं, एक उसका प्रीतिकर, सुंदर; एक उसका विकराल, कुरूप, खतरनाक। कोई खतरनाक रूप के पास अगर पहुंच जाता है किन्हीं गलत विधियों के कारण, और पहली दफा पर्दा उठते ही उसका विकराल रूप दिखाई पड़ जाता है, तो वह व्यक्ति जन्मों-जन्मों के लिए बंद हो जाता है। फिर वह दिव्य-चक्षु की हिम्मत नहीं जुटा पाता।
इसलिए ध्यान रखना, कृष्ण ने जो पहला पर्दा उठाया, वह ऐश्वर्य का, महिमा का, सौंदर्य का, प्रीतिकर, कि अर्जुन डूब जाए, आलिंगन करना चाहे, लीन होना चाहे, मिल जाना चाहे, एक हो जाना चाहे--ताकि तैयार हो जाए।
इसलिए जो ठीक-ठीक साधना पद्धतियां हैं... । और गलत साधना पद्धतियां भी हैं। गलत साधना पद्धतियों से इतना ही मतलब है कि आपको पहुंचा तो देंगी वे, लेकिन ऐसे किनारे से पहुंचा देंगी, जहां परमात्मा से भी आपका तालमेल होना मुश्किल हो जाए। ठीक साधना पद्धतियों से इतना ही मतलब है कि वे ठीक सामने के द्वार से आपको परमात्मा के पास पहुंचाएंगी। जहां मिलन सुखद और प्रीतिकर और आनंदपूर्ण हो। पीछे दूसरा छोर भी देखा जा सकता है। देखना ही पड़ेगा, क्योंकि पूरे को ही जानना होगा, तभी कोई मुक्त होता है।
इसलिए गलत और ठीक साधना पद्धति का इतना ही फर्क है कि परमात्मा के किस द्वार से... । वहां शंकर तांडव करते हुए भी मौजूद हैं, और वहां कृष्ण बांसुरी बजाते हुए भी मौजूद हैं। अच्छा हो कि कृष्ण की तरफ से यात्रा करें।
शंकर की तरफ से भी यात्रा होती है। और कुछ के लिए वही उचित होगी, और कुछ के लिए वही प्रीतिकर होगी। कुछ हैं, जो शंकर की बारात में ही सम्मिलित होना चाहेंगे! वहां से भी परमात्मा तक पहुंचा जाता है। लेकिन वह जो रूप है, अत्यंत विकराल, मृत्यु का, अत्यंत दुस्साहसियों के लिए है, जो मृत्यु में भी छलांग लगाने को तैयार हों।
आप तो अभी जीवन से भी डरते हैं, डर-डरकर जीते हैं, मृत्यु की तो बात अलग है। डर-डरकर तो सभी मरते हैं। डर-डरकर जीते हैं! कंपते रहते हैं, और जीते हैं। इनके लिए विकराल के निकट जाना खतरनाक हो जाए। इसलिए गीता बहुत व्यवस्था से आगे बढ़ती है।
संजय ने कहा कि अर्जुन के लिए परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखाया।
और उस अनेक मुख और नेत्रों से युक्त तथा अनेक अदभुत दर्शनों वाले, एवं बहुत-से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत-से दिव्य शस्त्रों को हाथ में उठाए हुए, तथा दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किए हुए, और दिव्य गंध का अनुलेपन किए हुए एवं सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमारहित, विराटस्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।
ये जितनी बातें वर्णन की गई हैं, ध्यान रखना, अर्जुन के लिए यही प्रीतिकर थीं और इसीलिए यही परमात्मा का पहला चेहरा था अर्जुन के लिए। इसमें जितनी चीजें कही गई हैं, वे अर्जुन की ही प्रीति की चीजें हैं। इसे फिर से हम सुन लें, तो ख्याल में आ जाएगा।
परम ऐश्वर्ययुक्त! ईश्वर का अर्थ होता है, मालिक, ऐश्वर्य से भरा हुआ।
क्षत्रिय के लिए ईश्वर जैसा होना, ऐश्वर्य से भर जाना, उसकी पहली वासना है। क्षत्रिय जीता उसके लिए है। गुलाम होकर क्षत्रिय मरना पसंद करेगा। मालिक होकर ही जीना पसंद करेगा। ऐश्वर्य उसकी वासना है, उसकी आकांक्षा है। वह ऐश्वर्य की भाषा ही समझ सकता है। वह दूसरी कोई भाषा नहीं समझ सकता। इसलिए पहली जो छबि, पहला जो रूप आविष्कृत हुआ अर्जुन के सामने, वह था ऐश्वर्य से परिपूर्ण। और ऐश्वर्य में भी जो चीजें गिनाई हैं, वे कई लोगों को लगेंगी, कैसी फिजूल की बातें हैं! खासकर उनको, जो त्याग इत्यादि की भाषा सुन-सुनकर परेशान हो गए हैं। उनको बड़ी मुश्किल लगेगी कि यह भी क्या बात है!

अनेक मुख, नेत्रों से युक्त, अदभुत दर्शनों वाले, बहुत-से दिव्य भूषणों से युक्त! दिव्य भूषणों से युक्त, आभूषण पहने हुए! बहुत-से दिव्य शस्त्रों को हाथ में उठाए हुए!
वे अर्जुन की प्रीति की चीजें हैं। अगर उसको इस दरवाजे से प्रवेश न मिले, तो शायद प्रवेश असंभव हो जाए, मुश्किल हो जाए, कठिन तो हो ही जाए। वह जो-जो, जिन-जिन चीजों से प्रेम करता है, अस्त्र-शस्त्र अर्जुन का प्रेम है, और जब उसने परमात्मा के अनंत-अनंत विराट हाथों में अस्त्र-शस्त्र देखे होंगे, तो उसका परमात्मा में प्रवेश धीमे-धीमे नहीं हुआ होगा; दौड़कर डूब गया होगा, जैसे नदी डूबती है सागर में दौड़कर।
दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किए हुए--वे भी अर्जुन की प्रीति की चीजें हैं--दिव्य गंध का अनुलेपन किए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमारहित, विराटस्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।
वह विमोहित हो गया होगा, स्तब्ध हो गया होगा। इस सौंदर्य को देखकर विस्मृत हो गया होगा सब कुछ। इसे देखकर उसकी श्वासें ठहर गई होंगी। इसे देखकर उसके प्राणों में हलन-चलन न रही होगी। इसे देखकर वह बिल्कुल शून्यवत हो गया होगा। यही उसकी वासना थी। यही वह चाहता था। यह उसकी चाह की भाषा है।
इसलिए जब त्यागवादी परंपरा के लोग इसको पढ़ते हैं, तो उन्हें बहुत हैरानी लगती है कि ईश्वर को ऐसी बातें... ! जैसे महावीर को जो नग्न पूजते हैं, उनको कृष्ण का सजा हुआ रूप बड़ा अप्रीतिकर लगता है। आभूषणों से भरा हुआ, तो ऐसा लगता है, यह भी क्या नाटक है! तपस्वी होना चाहिए। यह कृष्ण भी क्या हीरे-जवाहरात पहने हुए, मोर-मुकुट बांधे हुए खड़े हैं! मगर जो यह कह रहा है, तपस्वी होना चाहिए, वह भी अगर ठीक से समझे, तो यही उसकी भी भाषा है। और कृष्ण के इस प्रीतिकर रूप से उसको भी प्रवेश मिल सकता है। क्योंकि यही उसकी भी चाह है। इस चाह की भाषा में ही पहला अनुभव अर्जुन को हुआ।
ध्यान रखें, परमात्मा कैसा दिखाई पड़ता है, यह आप पर निर्भर करेगा कि
आप कैसा उसे पहली दफा देखेंगे। यह परमात्मा पर निर्भर नहीं करेगा। यह आप पर निर्भर करेगा कि कैसा आप उसे देखेंगे। आप अपनी ही अनुभव की संपदा के द्वार से उसे देखेंगे। आप अपने ही द्वारा उसे देखेंगे। तो जो पहला रूप आपको दिखाई पड़ेगा, वह परमात्मा का रूप कम, आपकी समझ, भाषा का रूप ज्यादा है।
यह अर्जुन की भाषा, समझ का रूप है, जो उसे दिखाई पड़ा। और धन्यभागी है
वह व्यक्ति, जिसको अपनी ही भाषा में परमात्मा से मिलना हो जाए। क्योंकि दूसरी भाषा में मिलना हो, तो तालमेल नहीं बैठ पाता। कठिन हो जाता, शायद द्वार भी बंद हो जाता।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट रुकें। कीर्तन में सम्मिलित हों, फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
तीसरा प्रवचन

धर्म है आश्चर्य की खोज

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः।। 12।।
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।। 13।।
ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत।। 14।।
अर्जुन उवाच
पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च
दिव्यान्।। 15।।
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।। 16।।
किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं
समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्।। 17।।
और हे राजन्, आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न हुआ जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित ही होवे।
ऐसे आश्चर्यमय रूप को देखते हुए पांडुपुत्र अर्जुन ने उस काल में अनेक प्रकार से विभक्त हुए अर्थात पृथक-पृथक हुए संपूर्ण जगत को उस देवों के देव श्रीकृष्ण भगवान के शरीर में एक जगह स्थित देखा।
और उसके अनंतर वह आश्चर्य से युक्त हुआ हर्षित रोमों वाला अर्जुन, विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा-भक्ति सहित सिर से प्रणाम करके, हाथ जोड़े हुए बोला।
हे देव, आपके शरीर में संपूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों
को और कमल के आसन पर बैठे हुए ब्रह्मा को तथा महादेव को और संपूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूं।
और हे संपूर्ण विश्व के स्वामिन्, आपको अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्रों
से युक्त तथा सब ओर से अनंत रूपों वाला देखता हूं। हे विश्वरूप, आपके न अंत को देखता हूं, तथा न मध्य को और न आदि को ही देखता हूं।
और मैं आपका मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओर से प्रकाशमान तेज का पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, देखने में अति गहन और अप्रमेय स्वरूप सब ओर से देखता हूं।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि अर्जुन और कृष्ण के बीच घटी घटना अत्यंत वैयक्तिक थी। संजय आधा अर्जुन था, उसे दिव्य-च्रु उपलब्ध नहीं थे। फिर संजय अधूरेपन से पूर्ण को कैसे निहार पाया? अंश से विराट के दर्शन और वर्णन कैसे कर पाया? संजय का वर्णन क्यों न क्षेपक और कल्पना मानी जाए?

इस संबंध में कुछ बातें समझ लेनी अत्यंत उपयोगी हैं।
पहली बात तो यह कि अंश से पूर्ण को पकड़ा नहीं जा सकता, लेकिन छुआ जा सकता है। अंश से पूर्ण को पकड़ा नहीं जा सकता, स्पर्श किया जा सकता है। मेरा हाथ मेरे पूरे शरीर को नहीं पकड़ सकता, क्योंकि हाथ शरीर का एक अंश है, लेकिन मेरे शरीर को स्पर्श कर सकता है। पूरे को न भी स्पर्श करे, तो भी स्पर्श कर सकता है। हम इन छोटी-छोटी आंखों से विराट को न पकड़ पाएं, लेकिन इन छोटी-छोटी आंखों से जिसे भी हम पकड़ते हैं, वह भी विराट का ही हिस्सा है। मेरे हाथ बहुत छोटे होंगे, पूरे आकाश को नहीं भर पाऊंगा अपनी बाहों में, लेकिन जिसे भी भर पाऊंगा, वह भी आकाश ही है।

संजय अधूरा है, इसलिए प्रश्न बिल्कुल स्वाभाविक है कि वह अधूरी चेतना
का व्यक्ति कृष्ण और अर्जुन के बीच घटी उस महिमापूर्ण घटना को कैसे देख पाया? अधूरा कैसे पूरे को देख पाएगा?
देख पाएगा, पूरा नहीं देख पाएगा। संजय भी पूरा नहीं देख पा सकता है। आध्यात्मिक अनुभव, जब भी घटित होते हैं, तो उनकी पूरी खबर हम तक नहीं आती और न ही आ सकती है।
इसे हम थोड़ा यूं समझें।
बुद्ध को अनुभव हुआ। बुद्ध स्वयं उस अनुभव को कहते हैं। लेकिन साथ यह
भी कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, वह उतना नहीं है, जितना मैंने जाना। जो मैंने जाना, वह कहते ही आधा हो गया है। क्योंकि शब्द सीमित हैं और जो जाना था, वह असीम था। उस असीम को शब्द में रखते ही वह आधा हो गया।
फिर बुद्ध जितना जानें, उससे आधा कह पाते हैं; लेकिन जब हम सुनते हैं उसे, तो हम उतना भी नहीं सुन पाते, जितना बुद्ध कहते हैं। क्योंकि सुनने वाले के पास और भी छोटी बुद्धि है। और भी अंधेरे में डूबा हुआ मन है। और भी अविकसित चेतना है।
तो बुद्ध जब हमसे बोलते हैं, तो जो हम समझ पाते हैं, वह उसका भी आधा हो,
तो बड़े सौभाग्यशाली हैं हम, जितना वे कहते हैं। और अगर हम किसी और को कहें, तो प्रतिपल सत्य टूटता चला जाता है, और असत्य होता चला जाता है।
कृष्ण के भीतर जो अर्जुन को दिखाई पड़ा, वह पूरा अनुभव है। संजय उसको आधा ही पकड़ पाएगा। और धृतराष्ट्र कितना पकड़ पाए होंगे, इस संबंध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता।
तो पहली तो बात यह ख्याल रख लें कि अधूरा आदमी भी आंखें उठा सकता है उस दिशा में। दूसरी बात यह ख्याल ले लें कि अधूरा आदमी किनारे पर खड़ा हुआ है-- आधा इस तरफ, आधा उस तरफ। उसके दो मुंह हैं। एक तरफ वह अंधे धृतराष्ट्र की तरफ देख रहा है, दूसरी तरफ वहां महाप्रकाश की जो घटना घटी है, अर्जुन की आंखों का खुल जाना जो हुआ है, उस तरफ।
संजय की क्या जरूरत थी बीच में? अर्जुन भी यह खबर बाद में दे सकता था। गीता हमें अर्जुन से भी मिल सकती थी।
अर्जुन से मिलनी बहुत कठिन थी। जिसको पूरा अनुभव होता है, जरूरी नहीं
है कि वह अभिव्यक्ति में भी कुशल हो। अनुभूति एक बात है, अभिव्यक्ति बिल्कुल दूसरी बात है। अर्जुन के पास अभिव्यक्ति नहीं थी। अर्जुन को अनुभव तो हुआ, लेकिन वह कह नहीं सकता था।
यह हो सकता है कि आप सुबह का सूरज उगते हुए देखें, लेकिन आप चित्र न बना पाएं। क्योंकि चित्र बनाना और बात है। और यह भी हो सकता है कि उस चित्रकार ने जिसने सुबह का सूरज उगते न देखा हो, उसको आप जाकर सिर्फ बताएं कि क्या देखा है, वह चित्र आपसे बेहतर बना सके।
अर्जुन कहने में असमर्थ था, इसलिए गीता में संजय को लाना अनिवार्य हो गया। बिना संजय के गीता बिना कही रह जाती। कृष्ण ने उसे अर्जुन से कह दिया था, लेकिन अर्जुन उसे हम तक नहीं पहुंचा सकता था। अर्जुन के पास अभिव्यक्ति की कोई क्षमता नहीं है।
इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है कि जिन्होंने जाना है, वे जानकर चुप ही रह
गए हैं, क्योंकि कहने की उनके पास कोई व्यवस्था न थी। और कई बार ऐसा भी हुआ है कि जिन्होंने नहीं जाना है, उन्होंने भी बहुत बातें हमें समझा दी हैं, उनसे सुनकर जिन्होंने जाना था या उनके पास रहकर जिन्होंने जाना था। अभी इस सदी में ऐसी घटना घटी है।
काकेशस में एक बहुत अदभुत आदमी इस सदी में पैदा हुआ, जार्ज गुरजिएफ। उसने गहनतम अनुभव उपलब्ध किया, जो इस सदी में दो-चार लोगों को ही मिला है।
लेकिन उसकी कहने की कोई भी योग्यता नहीं थी। न तो वह बोल सकता था, न लिख सकता था, न ही किसी भाषा पर उसका कोई अधिकार था। गुरजिएफ की बात ऐसे ही खो जाती, पर उसे एक बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति पीड़ी.आस्पेंस्की मिल गया।
आस्पेंस्की को कोई अनुभव नहीं था। लेकिन आस्पेंस्की एक कुशल लेखक था।
भाषा पर उसका अधिकार था। गणित पर उसकी पकड़ थी। रूस के बड़े से बड़े

गणितज्ञों में एक था। इसलिए किसी भी चीज को तर्क से, जांचकर, परखकर, ठीक-ठीक माप में प्रकट करने की उसकी प्रतिभा थी।
आस्पेंस्की कह सका, जो गुरजिएफ नहीं कह सका। और गुरजिएफ जानता था और आस्पेंस्की नहीं जानता था। आस्पेंस्की गुरजिएफ के पास रहकर पकड़ सका, वह जो अधूरा-अधूरा, टूटा-फूटा प्रकट करता था, बिना व्याकरण के, बिना भाषा के। वह जो टटोल-टटोलकर कुछ बातें कहता था, आस्पेंस्की उसे निखार-निखारकर प्रकट कर सका। आस्पेंस्की न हो, तो गुरजिएफ की शिक्षा खो जाएगी।
यह संजय के कारण कृष्ण ने जो अर्जुन को कहा था, वह बच सका है। संजय अधूरा है, लेकिन बड़ा योग्य है।
ऐसा कभी-कभी घटता है कि एक ही व्यक्ति में दोनों बातें होती हैं। कभी- कभी घटता है। बहुत अनूठा संयोग है। महावीर को अनुभव हुआ, महावीर नहीं बोले। बोलने वाले दूसरे लोग उन्होंने इकट्ठे किए। महावीर उनसे मौन में बोले, और उन्होंने फिर वाणी से प्रकट किया। बुद्ध को जो अनुभव हुआ, बुद्ध स्वयं बोले। यह बहुत कठिन है। कभी-कभी ऐसा होता है कि अनुभव को उपलब्ध व्यक्ति अभिव्यक्ति भी कर पाता है। अन्यथा सहारे खोजने पड़ते हैं। कोई और सहारा खोजना पड़ता है।
संजय इस पूरी व्यवस्था में सहारा है। और संजय ने जो कहा है, वह रूपक नहीं है। उसने जो देखा है, वही कहा है। लेकिन जिसके लिए कहा है, वह अंधा आदमी है। वह बिना रूपक के नहीं समझ पाएगा। इसलिए रूपक का भी उपयोग किया है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें, कि जब भी हम बोलते हैं, तो बोलने वाला ही महत्वपूर्ण नहीं होता, सुनने वाला भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है। हम किसके लिए बोलते हैं! जिसके लिए हम बोलते हैं, वह भी निर्धारक होता है, जो बात बोली जाती है। जब दो व्यक्ति बोलते हैं, तो सुनने वाला, बोलने वाला, दोनों ही निर्णायक होते हैं, जो बोला जाता है।
संजय शून्य में नहीं बोल रहा है। संजय धृतराष्ट्र से बोल रहा है। धृतराष्ट्र जो समझ सकेंगे, उस व्यवस्था में बोल रहा है। और इसलिए मैंने कल आपसे कहा कि गीता हमारे लिए उपयोगी है, क्योंकि हम अंधे हैं। और अच्छा हुआ कि संजय धृतराष्ट्र से बोला। अगर वह किसी आंख वाले से बोलता, किसी जानने वाले से बोलता, तो पहली तो कठिनाई यह थी कि बोलने की कोई जरूरत न थी। क्योंकि जो जान सकता था, आंख वाला था, वह खुद ही देख लेता। और जो जानता था, जो देख सकता था, उसके लिए प्रतीक खोजने न पड़ते।
इसलिए बहुत बार यह सवाल उठता है, युद्ध के मैदान पर, जहां कि एक-एक पल मुश्किल रहा होगा, इतनी बड़ी गीता कृष्ण ने कैसे कही है? जहां एक-एक पल मुश्किल रहा होगा, इतनी बड़ी गीता, पूरे अठारह अध्याय अर्जुन से कहे होंगे, कितना समय नहीं व्यतीत हुआ होगा! और युद्ध सब ठप्प पड़ा रहा! लोग वहां लड़ने को, मरने को उत्सुक होकर आए थे। वहां कोई धर्म-संवाद, कोई धर्म-उपदेश सुनने नहीं आए थे। यह इतनी लंबी बात कृष्ण ने कही होगी?
तो अनेक लोगों को कठिनाई होती है। और उनको लगता है कि संक्षिप्त में कही होगी, बाद में लोगों ने विस्तीर्ण कर ली होगी। बहुत सार में इशारा किया होगा, बाद में चीजें जुड़ती चली गई होंगी।
नहीं, ऐसा नहीं है। दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए। एक तो, समय बहुत प्रकार के हैं। टाइम एक ही प्रकार का नहीं है। समय बहुत प्रकार के हैं।
आपको रात एक झपकी आ जाती है। ट्रेन में आप चल रहे हैं, आंख लग गई है, झपकी आ गई है। आप एक लंबा स्वप्न देखते हैं। स्वप्न इतना लंबा हो सकता है कि आप छोटे बच्चे थे, और बड़े हुए, और स्कूल में पढ़े, और कालेज में गए, और किसी के प्रेम में पड़े, और शादी की, और आपके बच्चे हो गए, और आप बच्चों की शादी कर रहे हैं, और बैंड-बाजे बज रहे हैं, उससे आपकी नींद खुल गई। और आप घड़ी में देखते हैं, तो अभी मुश्किल से दो-चार सेकेंड ही आपकी झपकी लगी थी। तो दो-चार सेकेंड में इतनी लंबी कथा तो कही भी नहीं जा सकती, जो आपने देख ली। अगर आप अपना सपना किसी को सुनाएं, तो उसमें भी आधा घंटा लगेगा। और आपने सुना नहीं है, आप जीए। बच्चे थे, बड़े हुए, पढ़े-लिखे, प्रेम में गिरे,

विवाह किया, बच्चा हुआ, बड़ा हुआ, शादी कर रहे थे। यह सब आप जीए भीतर सपने में। और घड़ी में दो-चार सेकेंड या मिनट, आधा मिनट निकला। क्या हुआ? स्वप्न में समय की व्यवस्था और है। जागने में समय की व्यवस्था और है। जागने में भी समय की व्यवस्था बदलती रहती है। घड़ी में नहीं बदलती, इसलिए हमें भ्रम पैदा होता है। घड़ी में क्यों बदलेगी, घड़ी तो यंत्र है। वह अपने हिसाब से घूमती रहती है। साठ मिनट में घंटा पूरा हो जाता है, चौबीस घंटे में दिन पूरा हो जाता है। घड़ी घूमती रहती है। लेकिन अगर आप घड़ी और अपने बीच थोड़ा-सा विचार करें, तो आपको समझ में आ जाएगा।
आपके भीतर समय एक-सा नहीं रहता। जब आप दुख में होते हैं, समय धीमा जाता हुआ मालूम पड़ता है। जब आप सुख में होते हैं, समय तेजी से जाता हुआ मालूम पड़ता है। जब आप सफल होते हैं, तब समय ऐसे बीत जाता है, साल ऐसे बीत जाते हैं, जैसे पल। और जब आप असफल होते हैं, तो पल ऐसे बीतते हैं, जैसे वर्ष।
कोई मर रहा हो प्रियजन, उसके पास आप बैठे हैं। तब एक घड़ी ऐसी लगती है
कि जैसे युग। कितनी लंबी! कभी किसी मरणासन्न व्यक्ति के पास अगर रात बिताई हो, तो आपको पता चलेगा कि घड़ी और आपके समय में फर्क है। मरणासन्न व्यक्ति के पास बैठे रात कटती ही नहीं है। और अगर आपको आपकी प्रेयसी, आपका प्रिय, आपका मित्र मिल गया हो अचानक, तो रात कब बीत जाती है, पता नहीं चलता। और ऐसा लगता है कि सांझ एकदम सुबह हो गई, रात बीच में हुई ही नहीं।
आपका अगर चित्त दुख से भरा हो, तो समय लंबा हो जाता है। आपका चित्त अगर सुख से भरा हो, तो समय छोटा हो जाता है। जो लोग आनंद को अनुभव किए हैं... । आपको सुख-दुख का अनुभव है, आनंद का आपको कोई अनुभव नहीं है। सुख में समय छोटा हो जाता है, दुख में बड़ा हो जाता है। जितना ज्यादा दुख होता है, समय उतना लंबा हो जाता है। जितना ज्यादा सुख होता है, उतना छोटा हो जाता है। आनंद है परम सुख। समय शून्य हो जाता है, समय होता ही नहीं।
इसलिए जिन्होंने आनंद का अनुभव किया है, वे कहते हैं, समय वहां होता
ही नहीं। और जैसे स्वप्न में मिनट, आधा मिनट में वर्षों का जीवन व्यतीत हो जाता है, वैसे उस आनंद के क्षण में कितना ही समय व्यतीत हो सकता है और बाहर की घड़ी में कुछ भी फर्क न पड़ेगा।
कृष्ण और अर्जुन के बीच जो घटना घटी, वह हमारे समय के हिसाब से कितनी
ही लंबी मालूम पड़े, उनके बीच क्षणभर में घट गई होगी। जैसे दो आंखों का मिलना क्षणभर को हो गया होगा और बस। संजय को जरूर वक्त लगा कहने में, जैसा आपको अपना सपना बताने में वक्त लगता है। सपना तो जल्दी बीत जाता है, पर बताने जाते हैं तो वक्त लगता है। धृतराष्ट्र को समझाने में इतना लंबा वक्त लगा।
यह जो गीता है, इसके बीच जो समय व्यतीत हुआ, वह संजय और धृतराष्ट्र के बीच व्यतीत हुआ समय है, अर्जुन और कृष्ण के बीच नहीं। अर्जुन और कृष्ण के बीच तो ऐसे घट गई है यह घटना कि उस युद्ध के स्थल पर मौजूद किसी व्यक्ति को पता ही नहीं चला होगा कि क्या हो गया। यह कोई भी जान नहीं सका होगा कि यह कब हो गई है बात! अनुभव पल में हो गया होगा। लेकिन अनुभव इतना विराट था कि उसे बताते वक्त संजय को बहुत समय लगा होगा।
इसे ऐसा समझ लें। आपकी तरफ मैं देखूं, तो एक झलक में आप सबको देख लेता हूं। लेकिन मैं फिर किसी को बताने जाऊं कि नंबर एक पर कौन बैठा था, और नंबर दो पर कौन बैठा था, और नंबर तीन पर... । तो यहां हजारों लोग मौजूद हैं, अगर इनका एक-एक का नाम मैं वर्णन करने लगूं, तो मुझे दिनों लग जाएंगे। लेकिन एक झलक में मैं आपको देख लेता हूं, एक पलक में आपको देख लेता हूं।
अर्जुन ने जो जाना, वह तो एक पलक में हो गया। लेकिन जो उसने जाना था विस्तीर्ण, उसको फिर जब वर्णन करने संजय चला, तो एक-एक टुकड़े में उसे करना पड़ा। फिर समय लगा।
भाषा रेखाबद्ध है। अनुभव मल्टी-डायमेंशनल है, अनुभव में अनेक आयाम हैं। भाषा एक रेखा में चलती है। तो एक रेखा में जब वर्णन करना पड़ता है, तो वह जो अनेक आयाम में अनुभव हुआ था, उसे खंड-खंड में तोड़कर करना पड़ता है। यह जो गीता हमें इतनी-इतनी लंबी मालूम पड़ रही है, यह संजय और धृतराष्ट्र के कारण है। यह कृष्ण और अर्जुन के बीच नहीं। लेकिन संजय

योग्य था। शायद उस क्षण में संजय से ज्यादा कोई योग्य आदमी नहीं था कि कृष्ण और अर्जुन के बीच जो घटा, उसे कह सकता। और शायद उस दिन धृतराष्ट्र से ज्यादा योग्य कोई जिज्ञासु नहीं था, जो इसको पूछता।
ये चार जो पात्र हैं गीता के, ये एक लिहाज से अदभुत हैं। यह संयोग असंभव संयोग है। कृष्ण जैसा गुरु खोजना बहुत मुश्किल है। अर्जुन जैसा शिष्य खोजना, उससे भी ज्यादा मुश्किल है। संजय जैसा व्यक्त करने वाला खोजना, उससे भी ज्यादा मुश्किल है। धृतराष्ट्र जैसा अंधा जिज्ञासु, उससे भी ज्यादा खोजना मुश्किल है।
क्यों? अंधे जिज्ञासा करते ही नहीं। अंधे मानते हैं कि हम जानते हैं। अंधे जिज्ञासा करते ही नहीं, अंधे तो मानकर ही बैठे हैं कि हम जानते हैं। उनका यह मानना ही तो उनका अंधापन है कि हम जानते हैं।
आपका अंधापन क्या है? आपको पता है कि आपको पता है, और पता बिल्कुल नहीं है! और जिस आदमी को यह ख्याल है कि मुझे मालूम है बिना मालूम हुए, वह जिज्ञासा क्यों करेगा? वह पूछेगा क्यों? वह जानने की उत्सुकता क्यों प्रकट करेगा? उसकी कोई इंक्वायरी नहीं है, उसकी कोई खोज नहीं है। और जो यह माने ही बैठा है कि मैं जानता हूं, वह कभी भी नहीं जान पाएगा। क्योंकि जानने के लिए जो पहला कदम है, वह जिज्ञासा है।
धृतराष्ट्र, अंधे धृतराष्ट्र ने पूछा; यह बड़ी बात है। जो बता सकता था, संजय, उसने बताया। जिसको यह घटना घट सकती थी, अर्जुन, उसे यह घटना घटी। जो इस घटना के लिए कैटेलिटिक एजेंट हो सकता था, कृष्ण, वह एजेंट हो गया।
गीता एक अर्थ में श्रेष्ठतम संयोगों का जोड़ है।
फिर यह भी ध्यान रखें कि अधूरा आदमी ही बता सकता है। क्योंकि पूरा आदमी संसार की तरफ से पूरा मुड़ जाता है। और बड़ी कठिनाई हो जाती है। आधा आदमी आधा संसार की तरफ भी होता है, आधा परमात्मा की तरफ भी होता है। उधर की भी उसके पास झलक होती है और इधर संसार में खड़े लोगों की पीड़ा का भी उसे बोध होता है।
जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो कथा है कि सात दिन तक वे बोले नहीं। क्योंकि बुद्ध का मुख फिर गया पूरा का पूरा सत्य की तरफ। वे मौन हो गए, वे संसार को भूल ही गए। उन्हें पता ही न रहा कि पीछे अनंत-अनंत लोग पीड़ा से परेशान, इसी सत्य की खोज के लिए रो रहे हैं। वे भूल ही गए।
तो बड़ी मीठी कथा है कि देवताओं ने आकर बड़ा शोरगुल किया। बहुत बैंड-बाजे बजाए। उनका मौन तोड़ने की कोशिश की। उनको हिलाया-डुलाया। उन्हें काफी डांवाडोल किया, ताकि उन्हें ख्याल आ जाए कि पीछे एक बड़ा संसार भी है, जिससे उन्हें अपनी बात कह देनी है।
बुद्ध को देवताओं ने कहा कि आप चुप क्यों हो गए हैं? अनेक-अनेक युगों
के बाद कभी कोई व्यक्ति इस परम अनुभव को उपलब्ध होता है। लाखों लोग प्यासे हैं, आप उनसे कहें। बुद्ध ने कहा, जो समझ सकते हैं उस अनुभव को, वे मेरे बिना कहे समझ जाएंगे। और जो नहीं समझ सकते, उनके सामने मैं सिर पटकता रहूं, तो भी वे समझने वाले नहीं हैं। तो मुझे क्यों परेशान करते हैं!
बुद्ध ने कहा, मुझे छोड़ें। मेरा बोलने का कोई भी मन नहीं है। फिर जो मैंने जाना है, वह बोला भी नहीं जा सकता। और जो मैं बोलूंगा, वह वही नहीं होगा, जो मुझे घटा है। शब्द में उसे बांधना मुश्किल है। और फिर जो नहीं समझेंगे, वे नहीं ही समझेंगे। और जो समझ सकते हैं, वे मेरे बिना भी देर-अबेर पहुंच ही जाएंगे। इसलिए मैं क्यों परेशान होऊं?
कुशल लोग थे वे देवता, क्योंकि उन्होंने बुद्ध को किसी तरह राजी कर लिया। राजी उन्होंने इस तरह किया, उन्होंने बुद्ध को कहा कि आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। जो समझ सकते हैं, वे आपके बिना भी समझ जाएंगे। जो बिल्कुल नासमझ हैं, वे, आप उनके सामने सिर पटकते रहें जिंदगीभर, तो भी नहीं समझेंगे या कुछ समझेंगे, जो आपने कहा ही नहीं है। मगर इन दोनों के बीच में भी कुछ लोग हैं, जो अधूरे खड़े हैं। जो नासमझ भी नहीं हैं, जो समझदार भी नहीं हैं। आपके बिना वे समझदार न हो सकेंगे। और आपके बिना वे नासमझ रह जाएंगे। आप उन बीच में खड़े थोड़े से लोगों के लिए बोलें, जिनके लिए तिनका भी सहारा हो जाएगा।

बुद्ध को कठिन पड़ा उत्तर देना; वे राजी हुए।
संजय अधूरा आदमी है। वह दोनों तरफ देख रहा है। उसे धृतराष्ट्र की पीड़ा भी पता है, उसे अर्जुन का आनंद भी। वह यह भी देख रहा है कि अर्जुन को क्या घट रहा है, किस परम हर्षोन्माद में उसका रोआं-रोआं नाच रहा है, किस महाप्रकाश में अर्जुन डूबकर खड़ा हो गया है, यह भी। और धृतराष्ट्र का अंधापन और अंधेपन में घिरी हुई आत्मा की पीड़ा और नर्क। और अंधेपन में डूबा हुआ धृतराष्ट्र, जो टटोल रहा है, और कहीं कोई रास्ता नहीं मिलता, कहीं कुछ समझ में नहीं आता। इसकी पीड़ा भी उसके ख्याल में है, अर्जुन का आनंद भी। वह बीच में खड़ा आदमी है। इसलिए वही ठीक आदमी है, जो खबर दे सके।
अब हम सूत्र को लें।
और हे राजन्! आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न हुआ जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित ही होवे।
पहला अनुभव उसने कहा ऐश्वर्य का। संजय ने कहा कि अर्जुन ने देखा, परमात्मा का महिमाशाली ऐश्वर्य रूप। जो सुंदर है, जो श्रेष्ठ है, जो बहुमूल्य है, वह सब। जगत का जैसे सारा सौंदर्य निचोड़ लिया हो, और जगत की जैसे सारी सुगंध निचोड़ ली हो, और जगत का जैसे सारा प्रेम निचोड़ लिया हो, और तब उस सार में जो अनुभव हो, वह ऐश्वर्य है परमात्मा का। अर्जुन ने पहले परमात्मा का ऐश्वर्य रूप देखा।
दूसरी बात संजय कहता है कि परमात्मा का प्रकाश रूप देखा। यह उचित है
कि ऐश्वर्य के बाद प्रकाश दिखाई पड़े। क्योंकि ऐश्वर्य भी धीमा प्रकाश है। ऐश्वर्य भी धीमा प्रकाश है। जैसे सुबह होती है। रात भी चली गई और अभी दिन भी हुआ नहीं है और बीच में वे जो भोर के क्षण होते हैं, जब धीमा प्रकाश होता है, जो आंख को परेशान नहीं करता, जो आंख पर चोट नहीं करता, जिसमें कोई चमक नहीं होती, सिर्फ आभा होती है। या सांझ को जब सूरज ढल गया, और रात अभी उतरी नहीं, और बीच का वह जो संधिकाल है, तब धीमा-सा आलोक रह जाता है। ऐश्वर्य आलोक है।
ऐश्वर्य आंखों को तैयार कर देगा अर्जुन की कि वह प्रकाश को देख सके। अन्यथा परमात्मा का प्रकाश, आंखें बंद हो जाएंगी। अन्यथा परमात्मा का प्रकाश, वह चकाचौंध में होश खो जाएगा।
ऐसा बहुत बार हुआ है। ऐसा बहुत बार हुआ है कि कुछ साधना पद्धतियां हैं, जिनसे व्यक्ति सीधा परमात्मा के प्रकाश स्वरूप को देख लेता है। तो वह प्रकाश इतना ज्यादा है कि सहा नहीं जा सकता। और सदा के लिए भीतर घुप्प अंधेरा छा जाता है।
यह शायद आपने नहीं सुना होगा। आपको भी ख्याल नहीं है। अगर आप सूरज की तरफ सीधा देखें और फिर कहीं और देखें, तो सब तरफ घुप्प अंधेरा मालूम पड़ेगा। अगर रात आप रास्ते से गुजर रहे हैं, अंधेरा है, अमावस की रात है, लेकिन फिर भी आपको कुछ-कुछ दिखाई पड़ रहा है। फिर पास से एक तेज प्रकाश वाली कार गुजर जाती है। वह प्रकाश आंखों को चौंधिया जाता है। फिर कार तो गुजर जाती है, रात और अंधेरी हो जाती है। अभी तक उस रास्ते पर चल रहे थे, अब अंधेरा और घना हो जाता है।
ईसाई फकीरों ने इस बात के संबंध में बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण खोजें की हैं। अगस्टीन ने, फ्रांसिस ने, उन्होंने इसे डार्क नाइट आफ दि सोल कहा है-- आत्मा की अंधेरी रात। क्योंकि जब प्रकाश का इतना तीव्र आघात होता है, तो सब तरफ अंधेरा छा जाता है। वर्षों लग जाते हैं कभी-कभी साधक को, वापस इस अंधेरे के बाहर आने में। इसलिए प्रकाश की सीधी साधना खतरनाक है।
जो लोग सूर्य पर एकाग्रता करते हैं, वे इसीलिए कर रहे हैं। ताकि इस सूर्य पर अभ्यास हो जाए, तो जब वह महासूर्य भीतर प्रकट हो, तो आंखें एकदम अंधी न हो जाएं और अंधेरा न छा जाए। इस सूर्य पर एकाग्रता का अभ्यास इसीलिए है सिर्फ कि ताकि थोड़ा तो... यह सूर्य कुछ भी नहीं है। लेकिन फिर भी जो कुछ है, काफी है। हमारे लिए तो बहुत कुछ है। इस पर थोड़ा अभ्यास हो जाए, तो जब महासूर्य, अनंत सूर्य भीतर प्रकाशित हो जाएं, तो उस वक्त थोड़ी-सी तो तैयारी रहे। इसलिए सूर्य पर एकाग्रता के प्रयोग किए जाते हैं।

लेकिन अगर ऐश्वर्य का अनुभव पहले हो... । इसीलिए हमने भगवान को ईश्वर
का नाम दिया है। हम उसके ऐश्वर्य रूप को पहले स्वीकार करते हैं, वह आभा है। और ध्यान रहे, सुबह जब आभा घेर लेती है भोर की और फिर सूरज निकलता है, तो सुबह के सूरज के साथ भी आंखों को मिलाना आसान है; वह बाल-सूर्य है। और अगर कोई सुबह से ही अभ्यास करता रहे सूर्य के साथ आंख मिलाने का, तो दोपहर के सूर्य के साथ भी आंख मिला सकता है। आभा से शुरू करे, बाल-सूर्य से बढ़ता रहे और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे... ।
मेरे गांव में मैं एक आदमी को जानता हूं, जो भैंस को पूरा का पूरा उठा लेता था। वह गांव में अजूबा था। किसकी हिम्मत, पूरी भैंस को उठा ले! वह उठा लेता था। मैं पूछताछ किया, तो उसने बताया कि जब से यह भैंस छोटा बच्चा जब हुआ था, तब से मैं इसे रोज उठाकर घंटेभर चलने का अभ्यास कर रहा हूं। भैंस का बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होता गया, उसका अभ्यास भी साथ-साथ बढ़ता चला गया। अब भैंस पूरी भैंस हो गई है, अब भी वह उठा लेता है।
बाल-सूर्य के साथ जो यात्रा शुरू करेगा, वह धीरे से जब दोपहर का प्रौढ़ सूर्य होगा, तब भी आंखें सूर्य से मिला सकेगा और आंखें अंधेरी न होंगी। ईश्वर इसीलिए हमने शब्द चुना है। ऐश्वर्य से शुरू करना, अन्यथा भयंकर अंधेरी रात भी आ सकती है भीतर, जो वर्षों चल सकती है, कभी-कभी जन्मों चल सकती है।
सीधे, बिना तैयारी के, परमात्मा के प्रकाश रूप के सामने खड़ा होना खतरे
से खाली नहीं है। इसलिए ऐश्वर्य के बाद अर्जुन को अनुभव हुआ अनंत-अनंत सूर्य जैसे जन्म गए हों।
एक बात समझ लेने जैसी है।
आज तो विज्ञान भी स्वीकार करता है कि पदार्थ की जो आंतरिक घटना है, वह पदार्थ नहीं है, प्रकाश ही है। जहां-जहां हम पदार्थ देखते हैं, वह प्रकाश का घनीभूत रूप है, कंडेंस्ड लाइट। या उसको विद्युत कहें, या उसको प्रकाश की किरण कहें, या शक्ति कहें। लेकिन आज विज्ञान अनुभव करता है कि पदार्थ जैसी कोई भी चीज जगत में नहीं है। सिर्फ प्रकाश है। और प्रकाश ही जब घनीभूत हो जाता है, तो हमें पदार्थ मालूम पड़ता है।
विज्ञान के विश्लेषण से पदार्थ का जो अंतिम रूप हमें उपलब्ध हुआ है,
वह इलेक्ट्रान है, वह विद्युत-कण है। विद्युत-कण छोटा सूर्य है। अपने आप में पूरा, सूर्य की भांति प्रकाशोज्ज्वल। विज्ञान भी इस नतीजे पर पहुंचा है कि सारा जगत प्रकाश का खेल है।
और धर्म तो इस नतीजे पर बहुत पहले से पहुंचा है कि परमात्मा का जो अनुभव है, वह वस्तुतः प्रकाश का अनुभव है। फिर कुरान कितनी ही भिन्न हो गीता से, और गीता कितनी ही भिन्न हो बाइबिल से, लेकिन एक मामले में जगत के सारे शास्त्र सहमत हैं, और वह है प्रकाश। सारे धर्म एक बात से सहमत हैं, और वह है, प्रकाश की परम अनुभूति।
विज्ञान और धर्म दोनों एक नतीजे पर पहुंचे हैं, अलग-अलग रास्तों से। विज्ञान पहुंचा है पदार्थ को तोड़-तोड़कर इस नतीजे पर कि अंतिम कण, अविभाजनीय कण, प्रकाश है। और धर्म पहुंचा है स्वयं के भीतर डूबकर इस नतीजे पर कि जब कोई व्यक्ति अपनी पूरी गहराई में डूबता है, तो वहां भी प्रकाश है; और जब उस गहराई से बाहर देखता है, तो सब चीजें विलीन हो जाती हैं, सिर्फ प्रकाश रह जाता है।
अगर यह सारा जगत प्रकाश रह जाए, तो निश्चित ही हजारों सूर्य एक साथ उत्पन्न हुए हों, ऐसा अनुभव होगा। हजार भी सिर्फ संख्या है। अनंत सूर्य! अनंत से भी हमें लगता है कि गिने जा सकेंगे, कुछ सीमा बनती है। नहीं, कोई सीमा नहीं बनेगी। अगर पृथ्वी का एक-एक कण एक-एक सूर्य हो जाए। और है। एक-एक कण सूर्य है। पदार्थ का एक-एक कण विद्युत ऊर्जा है।
तो तब कोई गहन अनुभव में उतरता है अस्तित्व के, तो प्रकाश ही प्रकाश
रह जाता है।
संजय इसी तरफ धृतराष्ट्र को कह रहा है कि और हे राजन्... ।
लेकिन बेचारे धृतराष्ट्र को क्या समझ में आया होगा! उसे तो दीया भी दिखाई नहीं पड़ता। सूर्य तो सुना है। हजार सूर्य कहने से भी क्या फर्क

पड़ेगा, क्योंकि सूर्य का पता हो तो हजार गुना भी कर लें। धृतराष्ट्र को क्या समझ में आया होगा!
हजार-हजार सूर्य के उत्पन्न होने से जैसा प्रकाश हो, विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश वह भी कदाचित ही हो पाए।
लेकिन धृतराष्ट्र समझ गया होगा शब्द, क्योंकि सूर्य शब्द उसने सुना है, प्रकाश शब्द भी उसने सुना है, हजार शब्द भी उसने सुना है। ये सब शब्द उसकी समझ में आ गए होंगे। लेकिन वह बात जो संजय समझाना चाहता था, वह बिल्कुल समझ में नहीं आई होगी। यही हम सब की भी दुर्दशा है। सब शब्द समझ में आ जाते हैं, और उनके पीछे जो है, वह समझ के बाहर रह जाता है। शब्दों को लेकर हम चल पड़ते हैं। संगृहीत हो जाते हैं शब्द, और उनके भीतर जो कहा गया था, वह हमारे ख्याल में नहीं आता।
ईश्वर! सुन लेते हैं, समझ में आ जाता है। ऐसा लगता है कि समझ गए कि ईश्वर कहा। लेकिन क्या कहा ईश्वर से? आत्मा! सुन लिया। कान में पड़ी चोट। पहले भी सुना था। शब्दकोश में अर्थ भी पढ़ा है। समझ गए कि ठीक। आत्मा कह रहे हैं। लेकिन क्या मतलब है? जब मैं कहता हूं घोड़ा, तो एक चित्र बनता है आंख में। जब मैं कहता हूं आत्मा, कुछ भी नहीं होता, सिर्फ शब्द सुनाई पड़ता है। शब्द भ्रांति पैदा कर सकते हैं, क्योंकि शब्द हमारी समझ में आ जाते हैं। इसे ध्यान रखना जरूरी है कि शब्दों की समझ को आप अपनी समझ मत समझ लेना। उनके पार खोज करते रहना। और जो शब्द सिर्फ सुनाई पड़े और भीतर कोई अनुभव पकड़ में न आए, फौरन पूछ लेना कि यह शब्द समझ में तो आता है, लेकिन अनुभव हमारे भीतर इसके बाबत कोई भी नहीं! अनुभव से कोई हमारा अर्थ नहीं निकलता। तो ही आदमी साधक बन पाता है। और नहीं तो शास्त्रीय होकर समाप्त हो जाता है। शास्त्र सिर पर लद जाते हैं, बोझ भारी हो जाता है। आत्मा वगैरह तो कभी नहीं मिलती, शास्त्र ही इकट्ठे होते चले जाते हैं। और धीरे-धीरे आदमी उन्हीं के नीचे दब जाता है। धृतराष्ट्र ने सुना तो होगा, समझा क्या होगा! ऐसे आश्चर्यमय रूप को देखते हुए, पांडुपुत्र अर्जुन ने उस काल में अनेक प्रकार से विभक्त हुए, पृथक-पृथक हुए संपूर्ण जगत को श्रीकृष्ण भगवान के शरीर में एक जगह स्थित देखा।
यह दूसरी बात। यह प्रकाश के अनुभव के बाद ही घटित होती है। यह सारीशृंखला ख्याल में रखना--ऐश्वर्य, प्रकाश, एकता। जब तक हमें जगत में पदार्थ दिखाई पड़ रहा है, तब तक हमें अनेकता दिखाई पड़ेगी।
एक तरफ मिट्टी का ढेर लगा है, एक तरफ सोने का ढेर लगा है। लाख कोई समझाए कि सोना भी मिट्टी है, और लाख हम कहें, लेकिन फिर भी भेद दिखाई पड़ता रहेगा। और अगर चुराकर भागने की नौबत आई, तो हम मिट्टी चुराकर भागने वाले नहीं हैं। और ऐसा सामान्य आदमी की बात नहीं है, जिनको हम समझदार कहें, साधु कहें, महात्मा कहें, वे कहते रहते हैं कि मिट्टी-सोना बराबर है और एक है। एक स्वामी को मैं जानता हूं, वे बड़े संन्यासी हैं। सोने को हाथ नहीं लगाते, और कहते हैं कि सोना-मिट्टी एक है। तो मैं उनके आश्रम में ठहरा हुआ था। तो मैंने कहा, जब एक ही है, तो फिर मिट्टी को भी हाथ लगाना बंद कर दो। और या फिर सोने को भी लगाते रहो! इतनी फिर चिंता क्या है? बोले, सोने को मैं हाथ नहीं लगा सकता। सोना तो मिट्टी है।
उनके ख्याल में भी नहीं आ रहा कि वे क्या कह रहे हैं! सोने को मैं हाथ नहीं लगा सकता; सोना मिट्टी है। यह वे अपने को समझा रहे हैं कि सोना मिट्टी है; हाथ नहीं लगा सकते। लेकिन डर क्या है? मिट्टी से तो कोई भी नहीं डरता; फिर सोने से इतना डर क्या है? वह डर बता रहा है कि मिट्टी मिट्टी है, सोना सोना है। और सोने को हाथ नहीं लगाते, मिट्टी को तो मजे से लगाते हैं।
तो फिर बात एक ही है, कोई सोने को तिजोड़ी में भर रहा है, क्योंकि वह मानता है, सोना सोना है, मिट्टी मिट्टी है। कोई कह रहा है, सोने को हाथ न लगाएंगे। लेकिन दोनों को भेद है। भेद में कोई अंतर नहीं पड़ा है। कोई अंतर नहीं पड़ा है। दृष्टि बदल गई है, उलटा हो गया रुख, लेकिन भेद कायम है।
और मिट्टी सोना हो कैसे सकती है आपकी आंख में? कितनी ही नीति समझाएं,
और कितना ही धर्म-शास्त्र, सोना मिट्टी हो कैसे सकती है? यह तो तभी हो सकती है, जब सोने का भी परम रूप आपको दिखाई पड़ जाए और मिट्टी का भी परम रूप आपको

दिखाई पड़ जाए। सोना भी प्रकाश है परम रूप में और मिट्टी भी। जब दोनों प्रकाशित हो जाएं, सोना भी खो जाए, मिट्टी भी खो जाए, सिर्फ प्रकाश की किरणें ही रह जाएं, प्रकाश का जाल ही रह जाए; उस दिन आपको पता चलता है कि सोना, मिट्टी, दो नहीं हैं। उसके पहले पता नहीं चलता। यह कोई नैतिक सिद्धांत नहीं है कि सोना, मिट्टी एक! यह एक आध्यात्मिक अनुभव है।
जगत एक है, इसका अनुभव तभी होगा, जब जगत की जो मौलिक इकाई है, उसका हमें पता चल जाए। नहीं तो एक जगत नहीं है। कैसे एक है? कैसे मानिएगा एक? सब चीजें अलग-अलग दिखाई पड़ रही हैं। पत्थर पत्थर है। सोना सोना है। मिट्टी मिट्टी है। वृक्ष वृक्ष है। आदमी आदमी है। सब अलग दिखाई पड़ रहे हैं। लेकिन अगर सबका जो कांस्टिट्यूएंट, सबको बनाने वाला जो घटक है भीतर--चाहे आदमी के शरीर के कण हों, और चाहे सोने के कण हों, और चाहे मिट्टी के कण हों--वे सभी कण प्रकाश के कण हैं।
अगर यह दिखाई पड़ जाए कि सभी तरफ प्रकाश ही प्रकाश है, तो भेद खो जाएगा।
तब वह आदमी यह नहीं कहेगा कि मिट्टी भी सोना है, सोना भी मिट्टी है। वह पूछेगा, कहां है मिट्टी? कहां है सोना? वह पूछेगा, प्रकाश ही है, वे सारे भेद कहां? वे सब खो गए।
इसलिए प्रकाश के बाद अद्वैत का अनुभव होता है, प्रकाश के पहले नहीं।
जिसको परम प्रकाश का अनुभव हुआ, वही अद्वैत को अनुभव कर पाता है।
संजय ने कहा, इस महाप्रकाश के अनुभव के बाद अर्जुन ने समस्त विभक्त चीजों को, समस्त खंड-खंड, अलग-अलग बंटी हुई चीजों को उन परमात्मा में एक ही जगह एक रूप स्थित देखा।
सब एक हो गया। सारे भेद गिर गए। सारी सीमाएं, जो भिन्न करती हैं, वे तिरोहित हो गईं। और एक असीम सागर रह गया।
प्रकाश का ऐसा सागर अनुभव हो जाए, तो अद्वैत का अनुभव हुआ है। अद्वैत कोई सिद्धांत नहीं है। अद्वैत कोई फिलासफी नहीं है। अद्वैत कोई वाद नहीं है कि आप तर्क से समझ लें कि सब एक है।
बड़े मजे की बात है। लोग तर्क से समझते रहते हैं कि सब एक है। और तर्क
से सिद्ध करते रहते हैं कि दो नहीं हैं, एक है। लेकिन उन्हें पता ही नहीं कि जहां भी तर्क है वहां दो रहेंगे, एक नहीं हो सकता। तर्क चीजों को बांटता है, जोड़ नहीं सकता। वाद चीजों को बांटता है, एक नहीं कर सकता। विचार खंडित करता है, इकट्ठा नहीं कर सकता।
इसलिए अद्वैतवादी एक रोग है। अद्वैत का अनुभव तो एक महाअनुभव है। लेकिन अद्वैतवाद, कोई अद्वैतवादी हो जाए, वह एक तरह का रोग है। वह लड़ रहा है। वह द्वैतवादी को गलत सिद्ध कर रहा है, कि तुम गलत हो, मैं सही हूं। लेकिन अगर कोई गलत है और कोई सही है, तो कम से कम दो तो हो ही गए जगत में, कि कोई गलत है, कोई सही है।
एक का अनुभव उस द्वैतवादी में भी उसी प्रकाश को देखेगा, और उस द्वैतवादी की वाणी में भी उसी प्रकाश को देखेगा, और उस द्वैतवादी के सिद्धांत में भी वही प्रकाश को देखेगा, जो वह अद्वैतवाद में, अद्वैतवादी की वाणी में, अद्वैतवादी के शब्दों में देखता है। सभी शब्द उसी प्रकाश का रूपांतरण हैं--सभी सिद्धांत, सभी शास्त्र, सभी वाद। जिस दिन ऐसे प्रकाश का अनुभव होता है, उस दिन वाद गिर जाता है। उस दिन अनुभव।

संजय ने कहा, इस प्रकाश के अनुभव के बाद अर्जुन ने भगवान के शरीर में जो-जो चीजें पृथक-पृथक हो गई हैं, उनको एक जगह स्थित देखा, एक हुआ देखा। और उसके अनंतर वह आश्चर्य से युक्त हुआ, हर्षित रोमों वाला अर्जुन, विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा-भक्ति सहित सिर से प्रणाम करके, हाथ जोड़े हुए बोला।

इसमें कई बातें ख्याल में ले लेने की हैं।
और उसके अनंतर वह आश्चर्य से युक्त हुआ... ।
आश्चर्य, हम सभी सोचते हैं, हम सबको होता है। सिर्फ धारणा है हमारी।
आश्चर्य बड़ी कीमती घटना है। और तभी होता है आश्चर्य का अनुभव, जब उसके हम सामने खड़े होते हैं, जिस पर हमारी समझ कोई भी काम नहीं करती। अगर आपकी समझ

काम कर सकती है, तो वह आश्चर्य नहीं है। जल्दी ही आप आश्चर्य को हल कर लेंगे। जल्दी ही आप कोई उत्तर खोज लेंगे। जल्दी ही आप कोई विचार निर्मित कर लेंगे और किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाएंगे; आश्चर्य समाप्त हो जाएगा। आश्चर्य का अर्थ है, जिसके सामने आपकी बुद्धि गिर जाए। जिसके साथ आप बुद्धिगत रूप से कुछ भी न कर सकें। जिसके सामने आते ही आपको पता चले, मेरी बुद्धि तिरोहित हो गई। अब मेरे भीतर कोई बुद्धि नहीं है। अब मैं विचार नहीं कर सकता। अब विचार करने वाला बचा ही नहीं। जहां बुद्धि तिरोहित हो जाती है, तब जो हृदय में अनुभव होता है, उसका नाम आश्चर्य है।
और उस आश्चर्य में आपके सारे रोएं खड़े हो जाते हैं। आपने कभी-कभी रोओं
को खड़ा देखा होगा, कभी किसी दुख में, कभी किसी आकस्मिक घटना में, कभी किसी बहुत अचानक आ गए भय की अवस्था में। लेकिन आश्चर्य में आपके रोएं कभी खड़े नहीं हुए। आश्चर्य में! क्योंकि आश्चर्य तो आपने कभी किया ही नहीं। और आज की सदी में तो आश्चर्य बिल्कुल मुश्किल हो गया है। सभी चीजों के उत्तर पता हो गए हैं। और सभी चीजों का विश्लेषण हमारे पास है। और ऐसी कोई भी चीज नहीं, जिसको हम न समझा सकें, इसलिए आश्चर्य का कोई सवाल नहीं है।
इसलिए आज की सदी जितनी आश्चर्य-शून्य सदी है, मनुष्य जाति के इतिहास में कभी भी नहीं रही। छोटे-छोटे बच्चे थोड़ा-बहुत आश्चर्य करते हैं, थोड़ा- बहुत। क्योंकि अब तो बच्चे भी खोजना बहुत मुश्किल है। अब तो बच्चे होते से ही हम उनको बूढ़ा करने में लग जाते हैं। पुरानी सदियां थीं, वे कहते थे, बूढ़े फिर से बच्चे हो जाएं, तो परम अनुभव को उपलब्ध होते हैं। हमारी कोशिश यह है कि बच्चे जितने जल्दी बूढ़े हो जाएं, तो संसार में ठीक से यात्रा करते हैं। तो सब मिलकर--शिक्षा, समाज, संस्कार--बच्चे को बूढ़ा करने में लगते हैं कि वह जल्दी बूढ़ा हो जाए।
आपकी नाराजगी क्या है आपके बच्चे से? इसीलिए कि तू जल्दी बूढ़ा क्यों नहीं हो रहा! आप हिसाब-किताब लगा रहे हैं अपनी बही में और वह वहीं तुरही बजा रहा है। आप उसको डांट रहे हैं कि बंद कर। वह वहीं नाच रहा है। आप उसको रोक रहे हैं कि विघ्न-बाधा खड़ी मत कर। आप कर क्या रहे हैं? आप यह कोशिश कर रहे हैं कि तू भी मेरे जैसा बूढ़ा जल्दी हो जा। खाते-बही हाथ में ले ले; हिसाब लगा। यह तुरही बजाना और नाचना! यह क्या कर रहा है! हमारे लिए किसी को यह कह देना कि क्या बचकानी हरकत कर रहे हो, काफी निंदा का उपाय है।
बच्चा निंदित है आज। लेकिन बच्चे में थोड़ा-बहुत आश्चर्य है। वह भी हम ज्यादा देर बचने नहीं देंगे। क्योंकि जैसे-जैसे हम समझदार होते जा रहे हैं, बच्चे की उम्र स्कूल भेजने की कम होती जा रही है। पहले हम उसको सात साल में भेजते थे, अब पांच साल में भेजते हैं, अब ढाई साल में भेजने लगे। और अब रूस में वे कहते हैं कि यह भी समय बहुत ज्यादा है, इतनी देर रुका नहीं जा सकता। ढाई साल! तब क्या करिएगा!
तो वे कहते हैं, अब बच्चे को, जब वह अपने झूले में झूल रहा है, तब भी बहुत-सी बातों में शिक्षित किया जा सकता है। और उनके विचारक तो और दूर तक गए हैं। वे कहते हैं कि मां के गर्भ में भी बच्चे में बहुत तरह की कंडीशनिंग डाली जा सकती है। और वे जो संस्कार मां के गर्भ में डाल दिए जाएंगे, वे जीवन-पर्यंत पीछा करेंगे, उनसे फिर बचा नहीं जा सकता।
तो इसका मतलब यह हुआ कि हम आज नहीं कल, बच्चे को गर्भ में भी स्कूल में डाल देंगे, सिखाना शुरू कर देंगे। हम उसको पैदा ही नहीं होने देंगे कि वह आश्चर्य करता हुआ पैदा हो। वह जानकारी लेकर ही पैदा होगा।
अभी वे कहते हैं कि आज नहीं कल, जैसे आज हृदय को ट्रांसप्लांट करने के उपाय हो गए कि एक आदमी का हृदय खराब हो गया है, तो दूसरा आदमी का हृदय डाल दिया जाए; नवीनतम जो विचार है--अब वे काम में लग गए हैं, वह इस सदी के पूरे होते-होते पूरा हो जाएगा--वे कहते हैं, जब एक बूढ़ा आदमी मरता है, तो उसकी स्मृति को क्यों मरने दिया जाए, वह ट्रांसप्लांट कर दी जाए। एक बूढ़ा आदमी मर रहा है, अस्सी साल का अनुभव और स्मृति, वह सब निकाल ली जाए मरते वक्त, जैसे हम हृदय को निकालते हैं। उसके पूरे मस्तिष्क के यंत्र को निकाल लिया जाए, और एक छोटे बच्चे में डाल दिया जाए।

तो उनका कहना यह है कि वह छोटा बच्चा बूढ़े की सारी स्मृतियों के साथ काम शुरू कर देगा। जो बूढ़े ने जाना था, वह इस बच्चे को मुफ्त उपलब्ध हो जाएगा; इसको सीखना नहीं पड़ेगा। और प्रयोग इस तरफ काफी सफल हैं। इसलिए बहुत ज्यादा देर की जरूरत नहीं है। काफी सफल हैं!
अगर हम किसी दिन स्मृति को, मेमोरी को ट्रांसप्लांट कर सके, तो फिर तो बच्चे कभी पैदा ही नहीं होंगे। इस जगत में फिर कोई बच्चा ही नहीं होगा। सिर्फ कम उम्र के बूढ़े, बड़े उम्र के बूढ़े, बस इस तरह के लोग होंगे। अभी-अभी पैदा हुए बूढ़े, नवजात बूढ़े, बहुत देर से टिके बूढ़े, इस तरह के लोग होंगे। आश्चर्य के खिलाफ हम लगे हैं। हम जगत से रहस्य को नष्ट करने में लगे हैं। हमारी चेष्टा यही है कि ऐसी कोई भी चीज न रह जाए, जिसके सामने मनुष्य को हतप्रभ होना पड़े। ऐसा कोई सवाल न रहे जिसका जवाब आदमी के पास न हो।
लेकिन इसका सबसे घातक परिणाम हुआ है और वह यह कि एक अनूठा अनुभव, आश्चर्य, मनुष्य के जीवन से तिरोहित हो गया है।
इसलिए धर्म है रहस्य। और धर्म है आश्चर्य की खोज।
संजय ने कहा, आश्चर्य से युक्त हुआ... ।
यह अर्जुन कोई साधारण व्यक्ति नहीं था, पूर्ण सुशिक्षित। उस समय का ठीक-ठीक संस्कृत; उस समय जो भी संभावना हो सकती थी शिखर पर होने की, ऐसा व्यक्ति था। इसको आश्चर्य से भर देना आसान मामला नहीं है। वह तो आश्चर्य से तभी भरा होगा, जब इस विराट के उदघाटन के समक्ष उसकी क्षुद्र बुद्धि के सब तंतु टूट गए होंगे। जब उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया होगा। और जब उसको लगा होगा कि मैं समझ के पार गया। अब मेरा अनुभव, मेरा ज्ञान, मेरी बुद्धि, कोई भी काम नहीं करती। तब उसका रोआं-रोआं खड़ा हो गया होगा।
तब वह आश्चर्य से चकित हुआ, आश्चर्य से युक्त हुआ, हर्षित रोमों वाला... ।
उसका रोआं-रोआं आनंद से नाचने लगा होगा। क्यों? क्योंकि बुद्धि दुख है। और जब तक बुद्धि का साथ है, तब तक दुख से कोई छुटकारा नहीं। बुद्धि दुख की खोज है। इसलिए बुद्धिमान आदमी वह है कि जहां दुख हो भी न, वहां भी दुख खोज ले। दुख खोजने की जितनी कुशलता आप में हो, उतने आप बुद्धिमान हैं। करते क्या हैं आप बुद्धि से? थोड़ा समझें।
कोई पशु मृत्यु से परेशान नहीं है। मृत्यु की कोई छाया पशुओं के ऊपर नहीं है। मृत्यु आती है, पशु मर जाता है। लेकिन मृत्यु के बाबत बैठकर सोचता-विचारता नहीं है। आदमी मरेगा, तब मरेगा; उसके पहले हजार दफे मरता है। जब भी सड़क पर कोई मरता है, फिर मरे। फिर किसी की अरथी निकली, फिर अपनी अरथी निकली। फिर किसी को मरघट की तरफ ले जाने लगे लोग राम-राम सत्य कहकर, फिर आप मरे--रोज, हर घड़ी। क्या, कारण क्या है? जीवन दिखाई नहीं पड़ता बुद्धि को, मृत्यु दिखाई पड़ती है। जीवन बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि जीवन क्या है? जी रहे हैं। अभी जिंदा हैं। सांस लेते हैं। इधर चलकर आ गए हैं। पूछ रहे हैं। और पूछते हैं, जीवन क्या है? तो अगर जीते जी आपको पता नहीं चला जीवन का, तो फिर कब पता चलेगा, मरकर? और आप जी रहे हैं, आपको पता नहीं, और मुझसे पूछने चले आए हैं! अगर जीकर पता नहीं चल रहा है, तो मेरे जवाब से पता चलेगा?
नहीं। बुद्धि जीवन को देख ही नहीं पाती, यह तकलीफ है। बुद्धि मौत को देखती है। जब आप स्वस्थ होते हैं, तब आप नाचते नहीं। लेकिन जब बीमार होते हैं, तब रोते जरूर हैं। यह बड़े मजे की बात है।
जब बीमार होते हैं, तो रोते हैं। लेकिन जब स्वस्थ होते हैं, तो कभी आपको नाचते नहीं देखा। बुद्धि सुख को देखती ही नहीं, दुख को ही देखती है। बुद्धि ऐसी ही है, जैसे आपका एक दांत गिर जाए और जीभ उसी-उसी जगह को खोजे, जहां दांत गिर गया; और जब तक था, तब तक दांत की कोई चिंता नहीं, इस जीभ ने उसकी कोई चिंता न की। तब तक मिलने के उपाय थे। अगर यही प्रेम इतना ज्यादा था इस दांत से, तो मिल लेना था। लेकिन अब जब गिर गया, तब गड्ढे में जीभ उसको खोजती है! वह बुद्धि है।
बुद्धि हमेशा अभाव को खोजती है। आपकी पत्नी है। जब मरेगी, तब आपको पता चलेगा, थी। फिर आप रोएंगे कि प्रेम कर लिए होते, तो अच्छा था। जो खो जाए, वह

दिखाई पड़ता है, या जो न हो, वह दिखाई पड़ता है बुद्धि को। जो हो, जो है, वह बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ता।
अस्तित्व से बुद्धि का संबंध ही नहीं होता, अभाव से संबंध होता है। जब नहीं होती कोई चीज, तब बुद्धि को पता चलता है। और इसकी वजह से जीवन में कई वर्तुल पैदा होते हैं। एक वर्तुल तो यह पैदा होता है कि जो हमारे पास नहीं है, वह हमें दिखाई पड़ता है। जब पास आ जाता है, तब दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। तब फिर हमारे पास जो नहीं है, वह दिखाई पड़ता है।
लोग कहते हैं, यह वासना की भूल है। यह वासना की भूल नहीं है, यह बुद्धि
की भूल है। लोग कहते हैं, वासना के कारण ऐसा हो रहा है। वासना के कारण ऐसा नहीं हो रहा है, बुद्धि के कारण ऐसा हो रहा है। बुद्धि देखती ही खाली जगह को है, जहां नहीं है। तो अभी जो आपके पास नहीं है, जो मकान नहीं है, उसकी वजह से दुख पा रहे हैं। जो कार नहीं है, उसकी वजह से दुख पा रहे हैं। जो पत्नी, पति, बेटा नहीं है, उसकी वजह से दुख पा रहे हैं। जिनके पास है, उनको उससे कोई सुख नहीं मिल रहा।
इसे थोड़ा समझ लें।
जो मकान आपके पास नहीं है, उससे आप दुख पा रहे हैं। जो नहीं है, उससे!
और जिसके पास है, जरा उसके पास पूछें कि कितना आनंद पा रहा है उस मकान से! वह कोई आनंद नहीं पा रहा है। वह भी दुख पा रहा है। वह किसी दूसरे मकान से दुख पा रहा है, जो उसके पास नहीं है। यह उलटा दिखाई पड़ेगा। लेकिन हम उससे दुखी हैं, जो नहीं है। और हम उससे बिल्कुल सुखी नहीं हैं, जो है।
मैं एक घर में ठहरता था, किसी गांव में। तो जिस घर में ठहरता था, उस घर
की गृहिणी--मैं तीन दिन या चार दिन उनके घर वर्ष में रहता--चार दिन सतत रोती रहती। मैंने उससे पूछा कि बात क्या है? उसका मुझसे लगाव था। वह कहती कि जब आप आते हैं, तो बस मुझे यह फिक्र हो जाती है कि बस, अब आप चार दिन बाद जाएंगे! जब आप नहीं होते, तब मैं सालभर आपके लिए रोती हूं, राह देखती हूं। और जब आप होते हैं, तब इसलिए रोती हूं कि अब ये चार दिन बीते! आप जाएंगे। वह स्त्री बुद्धिमान है। मेरे चार दिन वहां रहने से आनंदित नहीं हो पाती। वे चार दिन भी दुख के ही कारण हैं। क्योंकि बुद्धि सिर्फ दुख को ही खोजती है। अगर वह निर्बुद्धि हो सके, तो हालत उलटी हो जाएगी। जब मैं उसके घर रहूंगा, तब वह आनंदित होगी, नाचेगी कि मैं उसके घर हूं। और जब मैं वर्षभर उसके घर नहीं रहूंगा, तब वह आनंद से प्रतीक्षा करेगी कि अब मैं आता हूं। लेकिन उसके लिए निर्बुद्धि होना पड़े। बुद्धिमान यह काम नहीं कर सकता।
बुद्धि की तलाश ही अभाव की तलाश है, अस्तित्व की तलाश नहीं है।
अर्जुन की बुद्धि गिरी होगी, तो वह आश्चर्य से भर गया। उसका रोआं-रोआं हर्ष से कंपित होने लगा। रोआं-रोआं!
ध्यान रहे, जब अनुभव घटित होता है, तो वह सिर्फ आत्मा में ही नहीं होता; वह शरीर के रोएं-रोएं तक फैल जाता है। इसलिए आत्मिक अनुभव में शरीर समाविष्ट है।
आप यह मत सोचना कि आत्मिक अनुभव कोई भूत-प्रेत जैसा अनुभव है, जिसमें शरीर का कोई समावेश नहीं होता। और आप यह भी मत सोचना कि शरीर के जो अनुभव हैं, वे सभी अनात्मिक हैं। शरीर का अनुभव भी इतना गहरा जा सकता है कि आत्मिक हो जाए। और आत्मिक अनुभव भी इतने बाहर तक आ सकता है कि शरीर का रोआं-रोआं पुलकित हो जाए। और दोनों तरफ से यात्रा हो सकती है। आप अपने शरीर के अनुभव को भी इतना गहरा कर ले सकते हैं कि शरीर की सीमा के पार आत्मा की सीमा में प्रवेश हो जाए।
योग, शरीर से शुरू करता है और भीतर की तरफ ले जाता है। भक्ति, भीतर की तरफ से शुरू करती है और बाहर की तरफ ले जाती है। बाहर और भीतर दो चीजों के नाम नहीं हैं, एक ही चीज के दो छोर हैं। इसलिए जो भी घटित होता है, वह पूरे प्राणों में स्पंदित होता है। ईश्वर का अनुभव भी रोएं-रोएं तक स्पंदित होता है।
स्वामी राम अमेरिका से लौटे, तो वे राम का जप करते रहते थे। सरदार पूर्णसिंह उनके एक भक्त थे और उनके साथ रहते थे। एक रात सरदार पूर्णसिंह

ने अचानक अंधेरी रात में राम, राम, राम की आवाज सुनी। पहाड़ी पर थे दोनों, एक छोटे-से झोपड़े में, एक ही कमरा था। कोई और तो था नहीं। स्वामी राम सोए थे। सरदार उठे। दीया जलाया। कौन आ गया यहां? राम सोए हुए हैं। पूर्णसिंह बाहर गए, झोपड़ी का पूरा चक्कर लगा आए। कोई भी नहीं; लेकिन आवाज आ रही है। बाहर जाकर अनुभव में आया कि आवाज तो कमरे के भीतर से ही आ रही है; बाहर से नहीं आ रही है। भीतर आए। राम सो रहे हैं वहां; और कोई है नहीं। राम के पास गए। जैसे-जैसे पास गए, आवाज बढ़ने लगी। राम के हाथ और पैरों के पास कान लगाकर सुना, राम की आवाज आ रही है।
घबड़ा गए! क्या हो रहा है? जगाया राम को, कि यह क्या हो रहा है? तो राम
ने कहा, आज जप पूरा हुआ। जब तक रोआं-रोआं जप न करने लगे, तब तक अधूरा है। आज राम मेरे शरीर तक में प्रवेश कर गए। आज रोआं-रोआं भी बोलने लगा और कंपित होने लगा।
जब परम अनुभव घटित होता है, तो रोएं-रोएं तक व्याप्त हो जाता है। शरीर
भी पवित्र हो जाता है आत्मा के अनुभव में। और जब तक शरीर भी पवित्र न हो जाए आत्मा के अनुभव में, समझना अनुभव अधूरा है। जब तक शरीर भी पवित्र न हो जाए, तब तक समझना अधूरा है।
यह संजय कह रहा है कि रोआं-रोआं हर्षित हो गया अर्जुन का। विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा-भक्ति सहित सिर से प्रणाम करके, हाथ जोड़े हुए बोला। इसमें फिर भाषा की कठिनाई है। ऐसे क्षण में हाथ जोड़ने नहीं पड़ते, जुड़ जाते हैं। यह कोई अर्जुन ने हाथ जोड़े होंगे, ऐसा नहीं; जैसा आप जोड़ते हैं कि चलो, गुरुजी आ रहे हैं, हाथ जोड़ो। न जोड़ेंगे, तो बुरा मान जाएंगे। और फिर कर्तव्य भी है। और फिर संस्कार भी है। और हाथ जोड़ने से अपना बिगड़ेगा भी क्या! कुछ मिलता होगा, तो मिल ही जाएगा। तो जोड़ लो।
आपके हाथ जोड़ने में भी व्यवसाय है, और चेष्टा है। आप न जोड़ें, तो हाथ जुड़ेंगे नहीं। आपको जोड़ना पड़ते हैं। अर्जुन को उस क्षण में जोड़ने पड़े नहीं होंगे, जुड़ गए होंगे। कुछ उपाय ही न रहा होगा। हाथ जुड़ गए होंगे। सिर झुक गया होगा।
इसलिए मैं कहता हूं कि भाषा की भूल है। संजय समझा रहा है; भाषा की तकलीफ है। उसको कहना पड़ रहा है कि अर्जुन ने हाथ जोड़े, श्रद्धा-भक्ति से भरकर सिर झुकाया।
नहीं, न तो हाथ जोड़े, न श्रद्धा-भक्ति से भरकर सिर झुकाया। श्रद्धा- भक्ति से भर गया। यह घटना है। इसमें कोई श्रम नहीं है। आप भी श्रद्धा- भक्ति से भरते हैं। भरने का मतलब होता है कि आप चेष्टा करते हैं कि श्रद्धा-भक्ति से भरो। मंदिर में जाते हैं; श्रद्धा-भक्ति से भरकर सिर झुकाते हैं। सब झूठा होता है। सब अभिनय होता है। नहीं तो कोई श्रद्धा- भक्ति से अपने को चेष्टा से कैसे भर सकता है? या तो भीतर से बहती हो; और न बहती हो, तो कैसे भरिएगा? अभिनय कर सकते हैं, एक्ट कर सकते हैं।
देखें मंदिर में खड़े आदमी को। और उसी आदमी को मंदिर के बाहर सीढ़ियों
से उतरते हुए देखें। और उसी आदमी को दुकान पर बैठे हुए देखें। आप पाएंगे, ये तीन आदमी हैं। यह एक ही आदमी मालूम नहीं पड़ता। यही आदमी मंदिर में हाथ-सिर झुकाकर खड़ा था, कैसी श्रद्धा-भक्ति से भरा हुआ! लेकिन यह श्रद्धा- भक्ति को मंदिर में ही छोड़ आता है। और मंदिर में केवल वही श्रद्धा-भक्ति छोड़ी जा सकती है, जो रही ही न हो। जो रही हो, तो छोड़ी नहीं जा सकती। वह साथ ही आ जाएगी। श्रद्धा-भक्ति कोई जूते की तरह नहीं है, कि उतार दिया, पहन लिया! प्राण है।
अर्जुन को इस क्षण में जब इतना आश्चर्य का अनुभव हुआ और जब इतने प्रकाश से भर गया, आच्छादित हो गया, तो श्रद्धा-भक्ति करनी नहीं पड़ी, हो गई।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि गुरु वह नहीं है, जिसको आपको प्रणाम करना पड़े। गुरु वह है, जिसके सान्निध्य में प्रणाम हो जाए। आपको करना पड़े, तो कोई मूल्य नहीं है; हो जाए। अचानक आप पाएं कि आप प्रणाम कर रहे हैं।
अचानक आप पाएं कि आप झुक गए हैं।

मैं एक विश्वविद्यालय में था। तो वहां शिक्षकों की तो सारे मुल्क में, सारी दुनिया में एक ही चिंता है कि विद्यार्थी कोई आदर नहीं देते; अनुशासन नहीं है। तो उस विश्वविद्यालय के सारे शिक्षकों ने एक समिति बुलाई थी विचार के लिए। भूल से मुझे भी बुला लिया। तो वे भारी चिंता में पड़े थे कि अनुशासन नहीं है। कोई आदर नहीं करता है। श्रद्धा खो गई है। और गुरु का आदर, तो हमारे देश में तो कम से कम होना ही चाहिए।
तो मैंने उनसे पूछा कि मुझे एक व्याख्या पहले साफ-साफ समझा दें। गुरु
को आदर देना चाहिए, ऐसा अगर आप मानते हैं, तो इसका अर्थ यह हुआ कि आदर देने के लिए विद्यार्थी स्वतंत्र है। दे, तो दे। न दे, तो न दे। और अगर आप ऐसा मानते हैं कि गुरु है ही वही जिसको आदर दिया जाता है, तो विद्यार्थी स्वतंत्र नहीं रह जाता। मेरी दृष्टि में तो गुरु वही है, जिसे आदर दिया जाता है। अगर विद्यार्थी आदर न दे रहे हों, तो बजाय इस चिंता में पड़ने के कि विद्यार्थी कैसे आदर दें, हमें इस चिंता में पड़ना चाहिए कि गुरु हैं या नहीं हैं! गुरु खो गए हैं।
गुरु हो, और आदर न मिले, यह असंभव है। आदर न मिले, तो यही संभव है कि गुरु वहां मौजूद नहीं है। गुरु का अर्थ ही यह है कि जिसके पास जाकर श्रद्धा-भक्ति पैदा हो। जिसके पास जाकर लगे कि झुक जाओ। जिसके पास झुकना आनंद हो जाए। जिसके पास झुककर लगे कि भर गए। जिसके पास झुककर लगे कि कुछ पा लिया। कहीं कोई हृदय के भीतर तक स्पंदित हो गई कोई लहर।
अर्जुन झुक गया। श्रद्धा-भक्ति उसने अनुभव की। हाथ उसके जुड़ गए। सिर उसका झुक गया। और बोला, हे देव! आपके शरीर में संपूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को और कमल के आसन पर बैठे हुए ब्रह्मा को, महादेव को और संपूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूं। और हे संपूर्ण विश्व के स्वामिन्, आपके अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनंत रूपों वाला देखता हूं। और हे विश्वरूप, आपके न अंत को देखता हूं, न मध्य को और न आदि को देखता हूं। और मैं आपका मुकुटयुक्त, गदायुक्त तथा सब ओर से प्रकाशमान तेज का पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, देखने में अति गहन और अप्रमेय स्वरूप सब ओर से देखता हूं। अर्जुन जो कह रहा है, वह बिल्कुल अस्तव्यस्त हो गया है। ये जो वचन हैं उसके, जैसे होश में कहे हुए नहीं हैं। जैसे कोई बेहोश हो, जैसे कोई शराब पी ले, मदहोश हो जाए और फिर कुछ कहे। और उसकी वाणी में सब अस्तव्यस्त हो जाए। और वह जो कहना चाहे, न कह सके। और जो कहे, उससे पूरी अभिव्यक्ति न हो।
उस साधारण शराब में ऐसा हो जाता है, जिससे हम परिचित हैं। और जिस शराब में अर्जुन इस क्षण में डूब गया होगा, जिस हर्षोन्माद में, जिस एक्सटैसी में, वहां होश खो गया मालूम पड़ता है। वह जो कह रहा है, वह ऐसा है, जैसे छोटा बच्चा कहता चला जाता है। और फिर अनुभव करता है कि जो मैं कह रहा हूं, जो मैं देख रहा हूं, उसमें संगति नहीं है, तो बदल भी देता है।
वह कहता है कि देखता हूं समस्त देवों को, समस्त भूतों को, कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा को, महादेव को... ।
ये बड़ी उलटी अनुभूतियां हैं। ब्रह्मा और महादेव दो छोर हैं। ब्रह्मा
का अर्थ है, जिसने किया सृजन। और महादेव का अर्थ है, जो करता है विध्वंस। अर्जुन यह कह रहा है कि साथ-साथ देखता हूं, ब्रह्मा को, महादेव को! उसने जिसने जगत को बनाया, देखता हूं आपके भीतर। वह जो जगत को मिटाता है, उसको भी देखता हूं आपके भीतर। प्रारंभ सृष्टि का, अंत; जन्म, मृत्यु; साथ-साथ देखता हूं। सारी शक्तियां, सारी दिव्य शक्तियां दिखाई पड़ रही हैं।
हे संपूर्ण विश्व के स्वामी, कितने आपके हाथ, कितने पेट, कितने नेत्र!
अगर हम थोड़ी कल्पना करें, तो ख्याल में आ जाए। अगर हम पृथ्वी के सारे मनुष्यों के हाथ जोड़ लें, सारे मनुष्यों के पेट जोड़ लें, सारे मनुष्यों की आंखें जोड़ लें, सारे मनुष्यों के सब अंग जोड़ लें, तो जो रूप बनेगा, वह भी पूरी खबर नहीं देगा। क्योंकि हमारी पृथ्वी बड़ी छोटी है। और ऐसी हजारों- हजारों पृथ्वियां हैं। और उन हजारों-हजारों पृथ्वियों पर हम जैसे हजारों- हजारों प्रकार के जीवन हैं। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन की संभावना है।

परमात्मा का तो अर्थ है, समस्त समष्टि का जोड़। तो हम सबको जोड़ लें। आदमियों को ही नहीं, पशु-पक्षियों को भी जोड़ लें। और सारी अनंत पृथ्वियों के सारे जीवन को जोड़ लें, तब कितने हाथ, कितने मुख, कितने पेट! वे सब अर्जुन को दिखाई पड़े होंगे। हम उसकी दुविधा समझ सकते हैं कि सब जुड़ा हुआ दिखाई पड़ा होगा। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया होगा। उसकी कुछ समझ में नहीं आता होगा कि क्या है!
इसलिए वह फिर पूछ रहा है कि यह सब क्या है? और इतना सब देखता हूं, फिर
भी न तो आपका अंत दिखाई पड़ता है, न मध्य दिखाई पड़ता है, न आदि दिखाई पड़ता है। यह सब देख रहा हूं, फिर भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं आपको पूरा देख रहा हूं, क्योंकि प्रारंभ का मुझे कुछ पता नहीं चलता, अंत का भी कोई पता नहीं चलता।
इसमें थोड़ी-सी एक बड़ी कीमती बात है। अर्जुन कहता है, मध्य भी दिखाई नहीं पड़ता। इसमें हमें थोड़ा संदेह होगा। क्योंकि फिर जो दिखाई पड़ता है, वह क्या है? अर्जुन को दिखाई पड़ रहा है। इतने तक बात तर्कयुक्त है कि वह कहे, मुझे प्रारंभ नहीं दिखाई पड़ता, मुझे अंत नहीं दिखाई पड़ता।
आप एक नदी के किनारे खड़े हैं। न आपको नदी का प्रारंभ दिखाई पड़ता है, न सागर में गिरती हुई नदी का अंत दिखाई पड़ता है, लेकिन मध्य तो दिखाई पड़ता है। जहां आप खड़े हैं, वह क्या है? तो हमें लगेगा कि... लेकिन अर्जुन कहता है कि न मुझे प्रारंभ दिखाई पड़ता है, और न अंत दिखाई पड़ता है, और न मध्य दिखाई पड़ता है!
कारण हैं, उसके कहने का। क्योंकि जब हमें आदि न दिखाई पड़ता हो, अंत न दिखाई पड़ता हो, तो जो हमें दिखाई पड़ता है, उसे मध्य कहना गलत है। मध्य का मतलब ही यह है कि आदि और अंत के बीच में। जब हमें दोनों छोर ही नहीं दिखाई पड़ते, तो इसे हम मध्य भी कैसे कहें! दो छोर के बीच का नाम मध्य है। अगर आपको दोनों छोर दिखाई ही नहीं पड़ते, तो हम इसे भी कैसे कहें कि यह मध्य है! इसलिए अर्जुन कहता है कि न तो मुझे मध्य दिखाई पड़ता है, न अंत दिखाई पड़ता है, न प्रारंभ दिखाई पड़ता है। सब कुछ दिखाई पड़ रहा है विराट, फिर भी मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। यह बिल्कुल जैसे एक बेहोशी की घड़ी आदमी पर उतर आई हो। उसकी बुद्धि बिल्कुल चकरा गई है।
मैं आपका मुकुटयुक्त, गदायुक्त तथा सब ओर से प्रकाशमान तेज का पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, देखने में अति गहन और अप्रमेय स्वरूप सब ओर देखता हूं।
बहुत गहन है जो मैं देख रहा हूं। गहन का यहां ख्याल ले लेना जरूरी है। गहन का अर्थ है, जो मैं देख रहा हूं, वह सतह मालूम होती है। और सतह के पीछे और सतह, सतह के पीछे और सतह, और सतह के पीछे और गहराइयां दिखाई पड़ रही हैं। यह ऐसा लगता है कि मैं आपके बाहर खड़े होकर देख रहा हूं। आपमें मुझे पहला पर्दा दिखाई पड़ रहा है। और उस पर्दे के पीछे--पर्दे ट्रांसपैरेंट मालूम पड़ते हैं। जैसे नदी के किनारे खड़े हैं, और पानी में गहराई दिखाई पड़ती है। और गहरा, और गहरा, और गहरा। और यह गहराई कहां पूरी होती है, इसका मुझे कुछ पता नहीं है। ऐसा आपको गहन देखता हूं।
अप्रमेय! और जो देखता हूं, वह ऐसा है, जिसके लिए न तो कोई प्रमाण है कि मैं क्या देख रहा हूं। न मेरी बुद्धि के पास कोई तर्क है, जिससे मैं अनुमान कर सकूं कि क्या देख रहा हूं। न मेरे पास कोई निष्पत्ति है, न कोई सिद्धांत है, कि मैं क्या देख रहा हूं!
अप्रमेय का अर्थ है कि अगर अर्जुन दूसरे को कहेगा जाकर, तो वह दूसरा समझेगा, यह पागल है। जो इसने देखा, इसका दिमाग खराब हो गया।
इसलिए जिन्होंने देखा है उसे, वे कई बार तो, आप उन्हें पागल न कहें, इसलिए आपसे कहने से रुक जाते हैं। क्योंकि अगर वे कहेंगे, तो आप भरोसा तो करने वाले नहीं हैं। आपको शक होने लगेगा कि इस आदमी का इलाज करवाना चाहिए! यह क्या कह रहा है? यह जो कह रहा है, किसी भ्रम में खो गया है, किसी डिलूजन में। या तो विक्षिप्त हो गया है।

आज पश्चिम के मनसविद कहते हैं कि जिन लोगों को हम पागल करार दे रहे हैं, उनमें सभी पागल हों, यह जरूरी नहीं है। उनमें कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं, जिन्होंने जगत को किसी और पहलू से देख लिया और मुसीबत में पड़ गए हैं। लेकिन जब एक दफा किसी और पहलू से कोई जगत को देख ले, तो हमारे बीच फिर गैर-फिट हो जाता है; फिर हमारे बीच बैठ नहीं पाता। फिर वह जो कहता है, वह हमें मालूम पड़ता है कि किसी स्वप्न की बात कर रहा है। या वह जो बताता है, हमारी भाषा में, हमारे अनुभव में उसका कोई मेल न होने से वह व्यर्थ मालूम पड़ता है।
सूफी फकीर कहते रहे हैं कि जब तक योग्य आदमी न मिल जाए, तब तक अपने भीतर के अनुभव कहना ही मत, नहीं तो तुम मुसीबत में पड़ोगे। और ऐसी मुसीबत आती रही है। अलहिल्लाज भूल से चिल्लाकर कह दिया कि मैं ब्रह्म हूं, अनलहक। लोगों ने उसे पकड़कर उसकी हत्या कर दी। कि तुम और ब्रह्म! तुम? इसी गांव में पैदा हुए। इसी गांव में बड़े हुए। और तुम ब्रह्म! यह कुफ्र है। यह तुम पाप कर रहे हो कि तुम अपने को ब्रह्म कहो।
अलहिल्लाज ने उन लोगों से बात कह दी, जिनसे नहीं कहनी थी। निश्चित ही, उनको यह बात ऐसी मालूम पड़ी कि धोखा है। या तो यह आदमी पागल है, और या फिर धोखा दे रहा है। अलहिल्लाज को अनुभव हुआ था। लेकिन जो हुआ था, वह इतना बड़ा था कि ब्रह्म से छोटे शब्द से नहीं कहा जा सकता था। और जो हुआ था, वह इतना निकट था, अपने से भी ज्यादा निकट, कि इसके सिवाय कि मैं ब्रह्म हूं, कहने का और कोई उपाय नहीं था। लेकिन यह गलत लोगों के बीच कह दी गई बात।
इस मुल्क में हमने ऐसी व्यवस्था की थी कि जब भी इस तरह की घोषणाएं, इस तरह के अनुभव कोई कहे, तो उन लोगों को कहे, जो समझ सकते हों। उनको कहे, जो शब्द में न अटक जाएंगे। उनको कहे, जिनकी खुद की भी कोई प्रतीति हो।
कबीर से उसके शिष्य पूछते रहे निरंतर कि कहें कि आपको भीतर क्या हुआ है? तो कबीर कहते थे, सुनने वाला आ जाए। थोड़ा रुको।
एक दफा बुद्ध एक गांव में गए। सारे लोग इकट्ठे हो गए। बुद्ध बैठ गए। लेकिन वे देखते हैं चारों तरफ, जैसे किसी को खोजते हों। तो लोगों ने कहा, आप शुरू भी करिए! बुद्ध ने कहा कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं। वह जो समझ सकता है इस गांव में, वह अभी आया नहीं।
यह भी हो सकता है कि बुद्ध बहुत-से अनुभव कह ही न पाए हों। एक बार जंगल
से गुजरते वक्त आनंद ने बुद्ध से पूछा कि आपने जो-जो जाना है, वह हमें कह दिया? तो बुद्ध ने--पतझड़ के दिन थे और सारे जंगल में सूखे पत्ते गिर रहे थे और उड़ रहे थे--एक मुट्ठी में सूखे पत्ते ऊपर उठा लिए और कहा, आनंद, मेरी मुट्ठी में कितने पत्ते हैं? आनंद ने कहा, चार-छः। और बुद्ध ने कहा, इस जंगल में कितने सूखे पत्ते जमीन पर पड़े हैं? आनंद ने कहा, अनंत। तो बुद्ध ने कहा, मैंने जितना जाना, वह इन अनंत पत्तों की तरह है। और जितना मैंने तुमसे कहा, वह जो ये मुट्ठी में मेरे पत्ते हैं, इनकी भांति है। क्योंकि अमृत भी ज्यादा हो जाए, तो जहर हो जाता है। तुम झेल न पाओगे।
यह जो अर्जुन को दिखाई पड़ा विराट, अप्रमेय, जिसकी बुद्धि कभी कोई कल्पना भी नहीं कर सकती थी, अनुमान भी नहीं कर सकती थी, सोच भी नहीं सकती थी, जिसकी तरफ कोई उपाय न था, वह उसे दिखाई पड़ा है।
यह अप्रमेय स्वरूप सब ओर देखता हूं। और ऐसा नहीं है कि आप ही अप्रमेय
हो गए, कृष्ण! अर्जुन कह रहा है, सब तरफ जो कुछ भी है इस समय, सभी बुद्धि- अतीत हो गया है। कुछ भी समझ में नहीं आता। मेरी समझ बिल्कुल खो गई है। मैं बिल्कुल शून्य हो गया हूं।
आज इतना ही।
रुकें। पांच मिनट कीर्तन करें, फिर जाएं। रुकें, कोई बीच में उठे न।
और जब तक कीर्तन चलता है, पीछे दो मिनट धुन चलती है, तब तक धैर्य रखकर बैठे रहें; उठें न।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
चौथा प्रवचन

परमात्मा का भयावह रूप

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं
पुरुषो मतो मे।। 18।।
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।
19।।
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं
महात्मन्।। 20।।
अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः
पुष्कलाभि।। 21।।
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां
विस्मिताश्चैव सर्वे।। 22।।
इसलिए हे भगवन्, आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं अर्थात परब्रह्म परमात्मा हैं और आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं तथा आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है।
हे परमेश्वर, मैं आपको आदि, अंत और मध्य से रहित तथा अनंत सामर्थ्य से युक्त और अनंत हाथों वाला तथा चंद्र-सूर्य रूप नेत्रों वाला और प्रज्वलित अग्निरूप मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं। और हे महात्मन्, यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का संपूर्ण आकाश तथा सब दिशाएं एक आप से ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अतिव्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।
और हे गोविंद, वे सब देवताओं के समूह आपमें ही प्रवेश करते हैं और कई
एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपके नाम और गुणों का उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धों के समुदाय, कल्याण होवे, ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं।
और हे परमेश्वर, जो एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य तथा आठ वसु और साध्यगण, विश्वेदेव तथा अश्विनी कुमार और मरुदगण और पितरों का समुदाय तथा गंधर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगणों के समुदाय हैं, वे सब ही विस्मित हुए आपको देखते हैं।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि गीता चार व्यक्तियों के संयोग के कारण हमें उपलब्ध हो सकी है--कृष्ण, अर्जुन, संजय और धृतराष्ट्र। लेकिन गीता श्रीमद्भागवत का एक अंश है और श्रीमद्भागवत को महर्षि व्यास ने लिखा है। इसलिए महर्षि व्यास या संजय, कौन उसका मूल स्रोत है?

इस संबंध में कुछ बातें विचारणीय हैं।
एक तो जो लोग श्रीमद्भागवत को या गीता को केवल साहित्य मानते हैं, लिटरेचर मानते हैं, ऐतिहासिक घटनाएं नहीं; जो ऐसा नहीं मानते कि कृष्ण और अर्जुन के बीच जो घटना घटी है, वह वस्तुतः घटी है; जो ऐसा भी नहीं मानते कि संजय ने किसी वास्तविक घटना की खबर दी है या कि धृतराष्ट्र कोई वास्तविक व्यक्ति हैं; बल्कि जो मानते हैं कि वे चारों, व्यास ने जो महासाहित्य लिखा है, उसके चार पात्र हैं।
जो ऐसा मानते हैं, उनके लिए तो व्यास की प्रतिभा मौलिक हो जाती है, मूल आधार हो जाती है और शेष सब पात्र हो जाते हैं। तब तो सारा व्यास की ही प्रतिभा का खेल है। जैसे सार्त्र के उपन्यास में उसके पात्र हों या

दोस्तोवस्की की कथाओं में उसके पात्र हों, ठीक वैसे ही इस महाकाव्य में भी सब पात्र हैं और व्यास की प्रतिभा से जन्मे हैं।
ऐसा भारतीय परंपरा का मानना नहीं है। और न ही जो धर्म को समझते हैं, वे ऐसा मानने को तैयार हो सकते हैं। तब स्थिति बिल्कुल उलटी हो जाती है। तब व्यास केवल लिपिबद्ध करने वाले रह जाते हैं। तब घटना तो कृष्ण और अर्जुन के बीच घटती है। उस घटना को पकड़ने वाला संजय है। वह पकड़ने की घटना संजय और धृतराष्ट्र के बीच घटती है। लेकिन उसे लिपिबद्ध करने का काम हमारे और व्यास के बीच घटित होता है। वह तीसरा तल है। जो हुआ है, उसे संजय ने कहा है। जो संजय ने कहा है धृतराष्ट्र को, उसे व्यास ने संगृहीत किया है, उसे लिपिबद्ध किया है।
अगर साहित्य है केवल, तब तो व्यास निर्माता हैं; और कृष्ण, अर्जुन, संजय, धृतराष्ट्र, सब उनके हाथ के खिलौने हैं। अगर यह वास्तविक घटना है, अगर यह इतिहास है, न केवल बाहर की आंखों से देखे जाने वाला, बल्कि भीतर घटित होने वाला भी, तब व्यास केवल लिपिबद्ध करने वाले रह जाते हैं। वे केवल लेखक हैं। और पुराने अर्थों में लेखक का इतना ही अर्थ था; वह लिपिबद्ध कर रहा है।
हमारे और व्यास के बीच गहरा संबंध है। क्योंकि संजय ने जो कहा है, वह धृतराष्ट्र से कहा है। अगर बात कही हुई ही होती, तो खो गई होती। हमारे लिए संगृहीत व्यास ने किया। हमारे तो निकटतम व्यास हैं। लेकिन मूल घटना कृष्ण और अर्जुन के बीच घटी; और मूल घटना को शब्दों में पकड़ने का काम संजय और धृतराष्ट्र के बीच हुआ है। हमारे और व्यास के बीच भी कुछ घट रहा है--उन शब्दों को संगृहीत करने का।
और इसीलिए व्यास के नाम से बहुत-से ग्रंथ हैं। और जो लोग पाश्चात्य शोध के नियमों को मानकर चलते हैं, उन्हें बड़ी कठिनाई होती है कि एक ही व्यक्ति ने, एक ही व्यास ने इतने ग्रंथ कैसे लिखे होंगे!
सच तो यह है कि व्यास से व्यक्ति के नाम का कोई संबंध नहीं है। व्यास
तो लिखने वाले को कहा गया है। किसी ने भी लिखा हो, व्यास ने लिखा है, लिखने वाले ने लिखा है। कोई एक व्यक्ति ने ये सारे शास्त्र नहीं लिखे हैं। लेकिन लिखने वाले ने अपने को कोई मूल्य नहीं दिया, क्योंकि वह केवल लिपिबद्ध कर रहा है। उसके नाम की कोई जरूरत भी नहीं है। जैसे टेप रिकार्डर रिकार्ड कर रहा हो, ऐसे ही कोई व्यक्ति लिपिबद्ध कर रहा हो, तो लिपिबद्ध करने वाले ने अपने को कोई मूल्य नहीं दिया। और इसलिए एक सामूहिक संबोधन, व्यास, जिसने लिखा। वह सामूहिक संबोधन है; वह किसी एक व्यक्ति का नाम भी नहीं है। लेकिन हमारे लिए तो लिखी गई बात अत्यंत महत्वपूर्ण है, इसलिए व्यास
को हमने महर्षि कहा है। जिसने लिखा है, उसने हमारे लिए संगृहीत किया है, अन्यथा बात खो जाती।
निश्चित ही, संजय के कहने में और व्यास के लिखने में कोई अंतर नहीं है, क्योंकि लिखने में और कहने में किसी अंतर की कोई जरूरत नहीं है। अंतर तो घटित हुआ है, कृष्ण के देखने में और संजय के कहने में। जो कहा जा सकता है, वह लिखा भी जा सकता है। लिखना और कहना दो विधियां हैं। कहने में और लिखने में कोई अंतर पड़ने की जरूरत नहीं है।
इसलिए मैंने व्यास को छोड़ दिया था, कोई बात नहीं उठाई थी। वे परिधि के बाहर हैं। हमारे लिए उनकी बहुत जरूरत है। हमारे पास गीता बचती भी नहीं। व्यास के बिना बचने का कोई उपाय न था। लेकिन घटना के भीतर वे नहीं हैं, इसलिए मैंने उनकी चर्चा नहीं की है। ये चार व्यक्ति ही घटना के भीतर गहरे हैं। व्यास का होना बाहर है, परिधि पर है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या दिव्य-चक्षु सिद्धावस्था के पूर्व भी उपलब्ध हो सकता है?

नहीं, दिव्य-चक्षु सिद्धावस्था के पूर्व उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि दिव्य-चक्षु का उपलब्ध होना और सिद्धावस्था एक ही बात के दो नाम हैं। लेकिन टेलीपैथी, दूर-दृष्टि उपलब्ध हो सकती है। उससे कोई

सिद्धावस्था का संबंध नहीं है। और वह तो ऐसे व्यक्ति को भी उपलब्ध हो सकती है, जिसकी कोई साधना भी न हो।
टेलीपैथी तो हमारे मन की ही क्षमता है। हमारे मन के पास संभावना है कि
वह दूर की चीजों को भी देख ले, आंख के बिना। हमारे मन के पास संभावना है कि दूर की वाणी को सुन ले, कान के बिना। और बहुत बार तो हममें से अनेक लोग देख लेते हैं, सुन लेते हैं। लेकिन हमें ख्याल नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। बहुत बार हमें पीछे पता चलता है, तो आज के युग की वजह से हम सोच लेते हैं, संयोग की बात है।
अगर बेटा मर रहा हो, तो दूर मां को भी प्रतीत होने लगता है। कोई सिद्धावस्था की बात नहीं है, सिर्फ एक प्रगाढ़ लगाव है। तो कितना ही फासला हो, अगर बेटा मर रहा हो, तो मां को कुछ परेशानी शुरू हो जाती है। वह समझ पाए या न समझ पाए। अगर बहुत निकट मित्र कठिनाई में पड़ा हो, तो मित्र को भीतर बेचैनी शुरू हो जाती है, फासला कितना भी हो। कोई धक्के आंतरिक तरंगों के लगने शुरू हो जाते हैं, कोई संवाद किसी द्वार से मिलना शुरू हो जाता है, जिसके हम ठीक-ठीक उपयोग को नहीं जानते हैं।
लेकिन कुछ लोग इसका ठीक उपयोग करना सीख लें, तो जरा भी अड़चन नहीं है।
आप छोटे-मोटे प्रयोग खुद भी कर सकते हैं, तब आपको ख्याल आएगा कि टेलीपैथी, दूर-दृष्टि, दूर-श्रवण, साधना से संबंधित नहीं है; अध्यात्म से इनका कोई लेना-देना नहीं है।
आप छोटे-मोटे प्रयोग कर सकते हैं। छोटे बच्चे के साथ करें, तो बहुत आसानी होगी। छोटे बच्चे को बिठा लें एक कमरे के कोने में, कमरे में अंधेरा कर दें, दरवाजे बंद कर दें। आप दूसरे कोने में बैठ जाएं और उस बच्चे से कहें कि तू मेरी तरफ ध्यान रख अंधेरे में और सुनने की कोशिश कर कि मैं क्या कह रहा हूं। और अपने कोने में बैठकर आप एक ही शब्द मन में दोहराते रहें-- बाहर नहीं, मन में--कमल, कमल, कमल, या राम, राम, राम। एक ही शब्द दोहराते रहें। आप दो-तीन दिन में पाएंगे कि आपके बच्चे ने पकड़ना शुरू कर दिया। वह कह देगा कि राम।
क्या हुआ? फिर इससे जब आपका भरोसा बढ़ जाए कि बच्चा पकड़ सकता है, तो फिर मैं भी पकड़ सकता हूं। तब उलटा प्रयोग शुरू कर दें। बच्चे को कहें कि वह एक शब्द को दोहराता रहे--कोई भी--बिना आपको बताए। और आप सिर्फ शांत होकर बच्चे की तरफ ध्यान रखें। बच्चे ने अगर तीन दिन में पकड़ा है, तो नौ दिन में आप भी पकड़ लेंगे। नौ दिन इसलिए लग जाएंगे कि आप विकृत हो गए हैं; बच्चा अभी विकृत नहीं हुआ है। अभी उसके यंत्र ताजे हैं, वह जल्दी पकड़ लेगा।
और अगर एक शब्द पकड़ लिया, तो फिर डरिए मत, फिर पूरे वाक्य का अभ्यास भी
आप कर सकते हैं। और अगर एक वाक्य पकड़ लिया है, तो कितनी ही बातें पकड़ी जा सकती हैं। और बीच में एक कमरे की दूरी ही सवाल नहीं है। जब बच्चा एक शब्द पकड़ ले कमरे में, तो उसको छः मंजिल ऊपर भेज दीजिए; वहां भी पकड़ेगा। फिर दूसरे गांव में भेज दीजिए, वहां भी पकड़ेगा। ठीक समय नियत कर लीजिए, कि ठीक रात नौ बजे बैठ जाए आंख बंद करके, वहां भी पकड़ेगा। आप भी पकड़ सकते हैं। इसका कोई आध्यात्मिक साधना से संबंध नहीं है।
लेकिन बहुत-से साधु-संन्यासी इसको करके सिद्ध हुए प्रतीत होते हैं। इससे सिद्धावस्था का कोई भी लेना-देना नहीं है। यह मन की साधारण क्षमता है, जो हमने उपयोग नहीं की है और निरुपयोगी पड़ी हुई है। इसका उपयोग हो सकता है। और जितने चमत्कार आप देखते हैं चारों तरफ, साधुओं के आस-पास, उनमें से किसी का भी कोई संबंध आध्यात्मिक उपलब्धि से नहीं है। वे सब मन की ही सूक्ष्म शक्तियां हैं, जिनका थोड़ा अभ्यास किया जाए, तो वे प्रकट होने लगती हैं। और अक्सर तो ऐसा होता है कि जो व्यक्ति इस तरह की शक्तियों में उत्सुक होता है, वह धार्मिक होता ही नहीं है, क्योंकि इस तरह की उत्सुकता ही अधार्मिक व्यक्ति का लक्षण है।
अक्सर अध्यात्म की साधना में ऐसी शक्तियां अपने आप प्रकट होनी शुरू होती हैं, तो अध्यात्म का पथिक उनको रोकता है, उनका प्रयोग नहीं करता है। क्योंकि उनके प्रयोग का मतलब है, भीतर की ऊर्जा का अनेक-अनेक शाखाओं में

बंट जाना। हम शक्ति का प्रयोग ही करते हैं दूसरे को प्रभावित करने के लिए। और दूसरे को प्रभावित करने का रस ही संसार है।
कोई आदमी धन से प्रभावित कर रहा है कि मेरे पास एक करोड़ रुपए हैं। कोई आदमी एक आकाश छूने वाला मकान खड़ा करके लोगों को प्रभावित कर रहा है कि देखो, मेरे पास इतना आलीशान मकान है। कोई आदमी किसी और तरह से प्रभावित कर रहा है कि देखो, मैं प्रधानमंत्री हो गया, कि मैं राष्ट्रपति हो गया। कोई आदमी बुद्धि से प्रभावित कर रहा है कि देखो, मैं महापंडित हूं। कोई आदमी हाथ में ताबीज निकालकर प्रभावित कर रहा है कि देखो, मैं चमत्कारी हूं, मैं सिद्धपुरुष हूं। कोई राख बांट रहा है। लेकिन सबकी चेष्टा दूसरे को प्रभावित करने की है। यह अहंकार की खोज है।
अध्यात्म का साधक दूसरे को प्रभावित करने में उत्सुक नहीं है। अध्यात्म का साधक अपनी खोज में उत्सुक है। दूसरे इससे प्रभावित हो जाएं, यह उनकी बात; इससे कुछ लेना-देना नहीं है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। यह लक्ष्य नहीं है।
लेकिन दिव्य-नेत्र अलग बात है। इसलिए ध्यान रखना, दूर-दृष्टि और दिव्य-दृष्टि का फर्क ठीक से समझ लेना। दूर-दृष्टि तो है संजय के पास, दिव्य-दृष्टि उपलब्ध हुई है अर्जुन को।
दिव्य-दृष्टि का अर्थ है, जब हमारे पास अपनी कोई दृष्टि ही न रह जाए।
यह थोड़ा उलटा मालूम पड़ेगा। अध्यात्म के सारे शब्द बड़े उलटे अर्थ रखते हैं। उसका कारण है कि जिस संसार में हम रहते हैं और जिन शब्दों का उपयोग करते हैं, इनका यही अर्थ अध्यात्म के जगत में नहीं होने वाला है। वहां चीजें उलटी हो जाती हैं।
करीब-करीब ऐसा, जैसा आप झील के किनारे खड़े हैं और आपका प्रतिबिंब झील में बन रहा है। अगर झील में रहने वाली मछलियां आपके प्रतिबिंब को देखें, तो आपका सिर नीचे दिखाई पड़ेगा और पैर ऊपर। वह आपका प्रतिबिंब है। प्रतिबिंब उलटा होता है। अगर मछली ऊपर झांककर देखे, पानी पर छलांग लेकर देखे, तो बहुत हैरान हो जाएगी; आप उलटे मालूम पड़ेंगे ऊपर! मछली को लगेगा कि आप शीर्षासन कर रहे हैं, क्योंकि सिर ऊपर, पैर नीचे! और उसने सदा आपको नीचे देखा था, सिर नीचे, पैर ऊपर। आप उलटे दिखाई पड़ेंगे। प्रतिबिंब उलटा हो जाता है।
संसार प्रतिबिंब है। इसलिए संसार में शब्दों का जो अर्थ होता है, ठीक उलटा अर्थ अध्यात्म में हो जाता है। यही ख्याल दृष्टि के बाबत भी रखें। दृष्टि का अर्थ है, देखने की क्षमता। दृष्टि का अर्थ है, दूसरे को देखने की योग्यता। लेकिन अध्यात्म में तो दूसरा कोई बचता नहीं है। इसलिए दूसरे का तो कोई सवाल नहीं है। और दृष्टि का अर्थ सदा दूसरे से बंधा है, आब्जेक्ट से, विषय से। तो दृष्टि का वहां क्या अर्थ होगा?
महावीर ने कहा है कि जब सब दृष्टि खो जाती है, तब दर्शन उपलब्ध होता है। जब सब देखना-वेखना बंद हो जाता है, जब कोई दिखाई पड़ने वाला भी नहीं रह जाता, जब सिर्फ देखने वाला ही बचता है, तब दर्शन उपलब्ध होता है। जब देखने वाला, द्रष्टा ही बचता है, तब, तब दिव्य-दृष्टि उपलब्ध होती है।
यहां दिव्य-दृष्टि कहना बड़ा उलटा मालूम पड़ेगा। क्यों कहें दृष्टि? जब दृष्टियां खो जाती हैं सब, जब सब बिंदु, देखने के ढंग खो जाते हैं, जब सब माध्यम देखने के खो जाते हैं और शुद्ध चैतन्य रह जाता है, तब दृष्टि क्यों कहें? लेकिन फिर हम न समझ पाएंगे। हमारा ही शब्द उपयोग करना पड़ेगा, तो ही इशारा कारगर हो सकता है।
दूर-दृष्टि तो दृष्टि है। दिव्य-दृष्टि, समस्त दृष्टियों से मुक्त होकर द्रष्टा मात्र का रह जाना है। तब जो अनुभव होता है, वह अनुभव ऐसा नहीं होता कि मैं बाहर से किसी को देख रहा हूं। तब अनुभव होता है कि जैसे मेरे भीतर कुछ हो रहा है। सारा जगत जैसे मेरे भीतर समा गया हो। सब कुछ मेरे भीतर हो रहा हो।
स्वामी राम को जब पहली दफा समाधि का अनुभव हुआ, तो वे नाचने लगे। रोने
भी लगे, हंसने भी लगे, नाचने भी लगे। जो पास थे इकट्ठे, उन्होंने कहा कि आपको क्या हो रहा है? आप उन्मत्त तो नहीं हो गए हैं? स्वामी राम ने कहा कि

समझो कि उन्मत्त ही हो गया हूं। क्योंकि आज मैंने देखा कि मेरे भीतर ही सूरज उगते हैं, और मेरे भीतर ही चांद-तारे चलते हैं। और आज मैंने देखा कि मैं आकाश की तरह हो गया हूं; सब कुछ मेरे भीतर है। और आज मैंने देखा कि वह मैं ही हूं, जिसने सबसे पहले सृष्टि को जन्म दिया था। और वह मैं ही हूं, जो अंत में सारी सृष्टि को अपने में लीन कर लेगा। मैं उन्मत्त हो गया हूं। यह बात पागल की ही है। हमें भी लगेगा कि पागल की है। लेकिन लगना इसलिए स्वाभाविक है कि हमें ऐसा कोई भी अनुभव नहीं है, जहां दूसरा विलीन हो जाता है और केवल देखने वाला ही रह जाता है।
यह जो अर्जुन को घटित हो रहा है, वह दिव्य-दृष्टि है। जो संजय के पास है, वह दूर-दृष्टि है।
अब हम सूत्र को लें।
इसलिए हे भगवन्, आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं। परमब्रह्म परमात्मा हैं। आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं। आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं। आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। ऐसा मेरा मत है।
अर्जुन अति विनम्र है। और जो भी जान लेते हैं, वे अति विनम्र हो जाते हैं। विनम्रता जानने की शर्त भी है और जानने का परिणाम भी। जो जानना चाहता है, उसे विनम्र होना होगा, झुका हुआ। और जो जान लेता है, वह अति विनम्र हो जाता है। शायद जान लेने के बाद उसे विनम्र होना ही नहीं पड़ता, विनम्रता उस पर छा जाती है; वह एक हो जाता है विनम्रता के साथ।
अर्जुन देख रहा है अपनी अनुभूति में सब घटित हुआ, फिर भी कहता है, ऐसा मेरा मत है।
यह थोड़ा विचारें।
अर्जुन देख रहा है। वह कह सकता है कि मैं देख रहा हूं। वह कह सकता है
कि मेरा अनुभव है। लेकिन कहीं मेरा अनुभव कहने से मैं को बल न मिले। वह कहे कि मेरी प्रतीति है, तो कहीं प्रतीति गौण न हो जाए और मेरा होना महत्वपूर्ण न हो जाए!
इसलिए अर्जुन कहता है कि हे भगवन्। आप ही हैं अक्षर, अविनाशी, परम आश्रय, रक्षक, ऐसा मेरा मत है--दिस इ.ज माई ओपिनियन। यह सिर्फ मेरा मत है, यह गलत भी हो सकता है। यह सही भी हो सकता है। मैं कोई आग्रह नहीं करता कि यह सत्य है।
इस कारण कई बार बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। जो अहंकारी हैं, वे अपने मत को
भी इस भांति कहते हैं, जैसे प्रतीति हो कि यह सत्य है। वे जो नहीं जानते, केवल सोचते हैं, उसको भी इस भांति घोषणापूर्वक कहते हैं कि लगे कि यह उनका अनुभव है। और जो जान लिए हैं, वे इस भांति कहते हैं कि ऐसा लगे कि उन्होंने भी किसी से सुना होगा।
पुराने ऋषियों की बड़ी पुरानी आदत है कि वे कहते हैं, ऐसा फलां ऋषि ने फलां ऋषि से कहा। उन्होंने फिर किसी और से कहा; फिर उन्होंने किसी और से कहा; फिर मैंने किसी से सुना। यह मात्र गहन विनम्रता का परिणाम है। मैंने देखा, इसे कहने में कोई कठिनाई नहीं है। इसे कहने में कोई अड़चन भी नहीं है। अर्जुन अभी कह सकता है कि मैंने देखा। लेकिन अर्जुन कहता है, मेरा मत। बस, मेरा ऐसा विचार है। आग्रह नहीं है कि मैं जो कह रहा हूं, वह सत्य ही है। क्यों?
शायद इस आघात के क्षण में, इस गहन शक्ति का आघात हुआ है उसके ऊपर, इस क्षण में उसे मैं का कोई पता भी नहीं चल रहा होगा। इस क्षण में उसे ख्याल भी नहीं आ रहा होगा कि मैं भी हूं। इसलिए कह रहा है, मेरा मत है। यह मत माना भी जाए तो ठीक, न भी माना जाए तो ठीक। यह गलत भी हो।
मत और सत्य में इतना ही फर्क होता है। जब कोई कहता है, यह सत्य है, तो उसका अर्थ यह है, यह गलत नहीं हो सकता। और जब कोई कहता है, यह मत है, तो वह यह कह रहा है कि यह गलत भी हो सकता है। यह मेरा है, इसलिए गलत भी हो सकता है। हमारी स्थिति उलटी है। जिस चीज को हम कहते हैं सत्य, हम उसे सत्य ही इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह मेरा है। अगर आपसे कोई पूछे कि हिंदू धर्म सत्य क्यों है? या कोई पूछे कि मुसलमान धर्म सत्य क्यों है? या कोई पूछे कि जैन धर्म सत्य क्यों है? तो जैनी कहेगा कि जैन धर्म सत्य है। हजार कारण

बताए, लेकिन मूल में कारण यह होगा कि वह मेरा धर्म है। हिंदू हजार कारण बताए, लेकिन मूल में कारण होगा कि वह मेरा धर्म है। चाहे वह कहे और चाहे न कहे। लेकिन अगर विश्लेषण करे, तो उसे पता चलेगा कि जो भी मेरा है, वह सत्य होना ही चाहिए।
यह अहंकार का आरोपण है। सत्य, मेरे होने से सत्य नहीं होता। सच तो यह
है कि मेरे होने से मेरा सत्य भी असत्य हो जाता है। सत्य होता है अपने कारण। और मैं जितना कम रहूं, उतना ज्यादा होता है। और मैं जितना ज्यादा हो जाऊं, उतना क्षीण हो जाता है।
इसलिए अर्जुन कहता है, मेरा मत है।
महावीर इस दिशा में अनूठे व्यक्ति हैं। महावीर से कोई पूछे कि आत्मा है? तो वे कहते हैं, है; ऐसा भी कुछ लोगों का मत है; वे भी ठीक कहते हैं। और ऐसा भी कुछ लोगों का मत है कि नहीं है, वे भी ठीक कहते हैं। और ऐसा भी कुछ लोगों का मत है कि कुछ भी नहीं कहा जा सकता, वे भी ठीक कहते हैं।
हम अड़चन में पड़ जाएंगे महावीर के साथ, कि अगर सभी लोग ठीक कहते हैं, तो फिर ठीक क्या है? महावीर कहते हैं कि बड़े से बड़े असत्य में भी थोड़ा-बहुत सत्य तो होता ही है। उतना सत्य तो होता ही है। उस सत्य को हम पकड़ लें। और महावीर कहते हैं कि बड़े से बड़े सत्य में भी व्यक्ति का अहंकार थोड़ा न बहुत प्रवेश कर जाता है, उतना असत्य हो जाता है। उस असत्य को हम छोड़ दें।
इसलिए वे कहते हैं कि जो कहता है, आत्मा नहीं है, उसकी बात में भी थोड़ा सत्य है। कम से कम इतना सत्य तो है ही कि संसारी व्यक्ति का अनुभव यही है कि आत्मा नहीं है। आपका भी अनुभव यही है कि आत्मा नहीं है। आपका अनुभव यही है कि शरीर है।
तो महावीर कहते हैं, अगर चार्वाक कहता है कि आत्मा नहीं है, तो ठीक ही कहता है। करोड़ों लोगों का अनुभव है कि हम शरीर हैं। आत्मा का पता किसको है! इतना सत्य तो है ही।
और अगर हम लोकतंत्र के हिसाब से सोचें, तो शरीरवादी का ही सत्य जीतेगा। आत्मवादी का कैसे जीतेगा? कभी करोड़ में एक आदमी अनुभव कर पाता है कि आत्मा है। करोड़ में एक! बाकी शेष तो अनुभव करते हैं कि वे शरीर हैं। इसलिए हमने एक बड़ी अदभुत बात की है। हमने चार्वाक को जो नाम दिए हैं-- नास्तिक विचार को भारत में--वे बड़े विचारणीय हैं। दो नाम हैं चार्वाक के, एक तो चार्वाक और दूसरा लोकायत। दोनों बड़े मीठे हैं।
लोकायत का मतलब है, जिसे लोग मानते हैं, जो लोक में प्रभावी है। बड़े मजे की बात है, अगर आप खोजने जाएं, तो एक भी आदमी जनगणना के वक्त अपने को नास्तिक नहीं लिखवाता है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है। लेकिन हमारी परंपरा कहती है कि चार्वाक को मानने वाले सर्वाधिक लोग हैं। हालांकि कोई नहीं लिखवाता कि मैं चार्वाकवादी हूं। मगर हमारी परंपरा कहती है कि करोड़ में एक को छोड़कर बाकी तो सब चार्वाक को ही मानते हैं। चाहे समझते हों, न समझते हों; चाहे कहते हों, चाहे न कहते हों। उनका अनुभव तो यही है कि वे शरीर हैं। और इंद्रियों से ज्यादा कुछ भी नहीं हैं। और जो इंद्रियों का भोग है, वही जीवन है।
इसलिए हमने चार्वाक को--हालांकि कोई संप्रदाय मानने वाला नहीं है-- कहा, लोकायत, कि लोक जिसको मानता है। और चार्वाक शब्द भी बड़ा अदभुत है, उसका मतलब होता है चारु-वाक, जिनके वचन बड़े मधुर हैं। बड़ी उलटी बात है। क्योंकि हमें तो बुरे लगेंगे चार्वाक के वचन। जो भी सुनेगा कि ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, हमें तो बुरे लगेंगे, कटु लगेंगे। लेकिन हमारी परंपरा ने नाम दिया है चारु-वाक, जिनके वचन बड़े मधुर हैं।
हम बड़े सोचकर शब्द दिए हैं। हम ऊपर से कितना ही कहें कि हमें यह बात जंचती नहीं कि ईश्वर नहीं है, भीतर यह बात बड़ी प्रीतिकर लगती है। भीतर बड़ा रस आता है कि ईश्वर नहीं है, बेफिक्र! कोई फिक्र नहीं। चोरी करो, बेईमानी करो, हत्या करो। ऊपर से हम भला कहें कि नहीं, यह बात जंचती नहीं; भीतर बहुत जंचती है। तो फिर कोई भी पाप नहीं है।
दोस्तोवस्की ने लिखा है कि अगर ईश्वर नहीं है, देन एवरीथिंग इ.ज परमिटेड। अगर ईश्वर नहीं है, तो फिर हर चीज की आज्ञा मिल गई। फिर कुछ भी

करने में कोई हानि नहीं है। अगर ईश्वर है, तो अड़चन है। ईश्वर का डर घेरे ही रहता है। कितने ही अकेले में चोरी कर रहे हों, फिर भी लगा रहता है कि कम से कम कोई एक देख रहा है। अगर नहीं है कोई, तो आदमी स्वतंत्र है। प्रीतिकर लगेगा भीतर कि कोई ईश्वर नहीं है।
नीत्शे ने कहा है, गॉड इ.ज डेड। ईश्वर मर गया। और अब तुम्हें जो भी करना हो, तुम कर सकते हो। आदमी स्वतंत्र है। नाउ मैन इ.ज फ्री। ईश्वर ही उसका बंधन था, नीत्शे ने कहा है, वही इसकी जान लिए ले रहा था कि यह मत करो, वह मत करो। यह बुरा है, यह भला है; यह पाप, यह पुण्य; यह नर्क, यह स्वर्ग। नीत्शे ने कहा कि ईश्वर मर चुका है और अब मनुष्य स्वतंत्र है; और अब तुम्हें जो करना हो, करो।
स्वतंत्रता तो हम सभी चाहेंगे। इसलिए ऊपर से हम भला कहते हों कि चार्वाक के वचन कटु मालूम पड़ते हैं, भीतर हम भी चाहते हैं कि ईश्वर न हो।
क्यों? क्योंकि अगर ईश्वर न हो, तो हमारे ऊपर से सारा दबाव हट गया। फिर कोई दबाव नहीं है। फिर आदमी उत्तरदायित्वहीन है। फिर कोई दायित्व नहीं है। फिर कोई जवाब मांगने वाला नहीं है। फिर जिंदगी स्वच्छंद होने के लिए मुक्त है।
तो भला हम कहते हों कि ये बातें जंचती नहीं हैं। लेकिन चार्वाक की बातें हमारे मन को बड़ी प्रीतिकर लगती हैं। चार्वाक ने कहा है कि अगर ऋण लेकर भी घी पीना पड़े, तो लेते रहना ऋण, क्योंकि मरने के बाद न कोई लेने वाला है, न कोई देने वाला है, न कोई चुकतारा है। कोई लेना-देना नहीं है, कोई ऋणी नहीं है, कोई धनी नहीं है। सिर्फ नासमझ और समझदार लोग हैं।
चार्वाक ने कहा है, जो समझदार हैं, वे सब तरह से अपनी इंद्रियों को तृप्त कर लेते हैं। जो नासमझ हैं, वे बुद्धू बन जाते हैं और तृप्त नहीं कर पाते। हमको भी लगेगी यह बात भीतर--ऊपर से हम कहेंगे कि नहीं--लेकिन भीतर हमको लगेगी कि बात तो बड़ी रुचिकर है, कि भोग लो। चार्वाक ने कहा है, क्षण की खबर नहीं है। अगला क्षण होगा या नहीं होगा, नहीं कहा जा सकता। इसलिए इस क्षण को निचोड़ लो पूरा। जितना भोग सकते हो, भोग लो।
हम कहते कुछ हों, करते यही हैं। न कर पाते हों, तो पछताते हैं। और जो कर लेता है, उससे हमारी ईर्ष्या है। उससे हमारी ईर्ष्या पकड़ जाती है।
आप किसी को भी सुख में देखकर बड़े दुखी हो जाते हैं। भला आप कहते हों,
धन में कुछ भी नहीं है, लेकिन जिसके पास धन है, उसको देखकर आपको विपदा शुरू हो जाती है, भीतर कष्ट शुरू हो जाता है। भला आप कहते हों कि शरीर में क्या रखा है, यह तो मल-मूत्र है। लेकिन एक सुंदर स्त्री दूसरे के साथ देखकर बेचैनी शुरू हो जाती है।
हम ऊपर से कुछ कहते हों, लेकिन भीतर से हम सब चार्वाकवादी हैं। इसलिए हमने दो शब्द दिए हैं, लोकायत, और मधुर वचन वाले लोग, चार्वाक।
यह जो चार्वाक कहता है, इसमें भी महावीर कहते हैं, थोड़ा सत्य है। क्योंकि अधिक लोगों का अनुभव तो यही है। हम जो कहते हैं, महावीर कहेंगे, वह तो कितने थोड़े लोगों का सत्य है! इसलिए महावीर कहते हैं, जो भी कहा जाए, उसको मत की तरह व्यक्त करना, सत्य की तरह व्यक्त मत करना। कहना कि यह हमारा एक मत है, विपरीत मत भी हो सकते हैं। वे भी ठीक हो सकते हैं। अनेक मत हो सकते हैं, वे भी ठीक हो सकते हैं। आग्रह मत करना कि यही सत्य है। क्योंकि यह आग्रह सत्य को कमजोर कर देता है, मैं को मजबूत कर जाता है।
थोड़ा ध्यान रखें, जितना आग्रह हम करते हैं, आग्रह सत्य को नहीं मिलता, अहंकार को मिलता है। इसलिए धार्मिक आदमी विनम्र होगा। और अगर धार्मिक आदमी विनम्र नहीं है, तो धार्मिक नहीं है।
इसलिए हमने अपने इस मुल्क में कभी किसी आदमी के धर्म को कनवर्ट करने
की चेष्टा नहीं की। कभी आग्रह नहीं किया कि हम एक आदमी को समझा-बुझाकर, जबर्दस्ती, कोई भी उपाय करके, एक धर्म से दूसरे धर्म में खींच लें। क्योंकि यह कृत्य ही अधार्मिक हो गया। यह आग्रह करना कि मैं जो कहता हूं, वही ठीक है, और तुम जो कहते हो, वह गलत है, मान लो मेरे धर्म को; चाहे धन देकर, चाहे पद देकर और चाहे तर्कों से समझा-बुझाकर, किसी भी तरह आक्रमण

करके किसी व्यक्ति को उसके धर्म को बदलने की कोशिश हमने इस मुल्क में नहीं की। कनवर्शन हमने कभी उचित नहीं माना।
और उसका कुल कारण इतना था कि कनवर्शन के लिए--हिंदू को ईसाई बनाने के लिए, ईसाई को हिंदू बनाने के लिए--मतांध आदमी चाहिए, आग्रहपूर्ण, जो कहें कि यही ठीक है। जो इतने पागलपन से कह सकें कि यही ठीक है; और दूसरे की सुनने को बिल्कुल राजी ही न हों।
महावीर कैसे किसी को कनवर्ट करें! अगर उनके विपरीत भी आप जाकर कहें,
तो महावीर कहेंगे कि आप भी ठीक हैं। इसमें भी सचाई है। आप जो कह रहे हैं, बड़ा कीमत का है। महावीर के विपरीत कहें, तो भी! तो कनवर्शन असंभव है। इसलिए महावीर जैसे बहुत विचार का आदमी भी हिंदुस्तान में बहुत जैन पैदा नहीं करवा पाया। उसका कारण था। क्योंकि कनवर्ट करने का कोई उपाय ही नहीं था। मतांध आदमी दूसरे पर जबर्दस्ती छा जाते हैं। लेकिन जो मतांध है, वह राजनैतिक हो सकता है, धार्मिक नहीं। दूसरे को बदलने की चेष्टा ही असल में राजनीति है। स्वयं को बदलने की चेष्टा धर्म है। दूसरे पर छा जाना, अहंकार की यात्रा है। अपने को सब भांति पोंछकर मिटा देना, धर्म की।
अर्जुन कहता है, यह मेरा मत है। और अभी अनुभव हो रहा है उसे। अभी प्रत्यक्ष है, अभी क्षण भी नहीं बीता है। अभी वह अनुभव के बीच में खड़ा है। चारों तरफ घटनाएं घट रही हैं उसके। द्वार खुल गया है अनंत का। और ऐसे क्षण में भी अर्जुन कहता है, यह मेरा मत है, यह बहुत कीमती है।
आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं।
जानने योग्य! जानने योग्य क्या है? किस चीज को कहें जानने योग्य? आमतौर से जिसका कोई उपयोग हो, उसे हम जानने योग्य कहते हैं। विज्ञान जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना न मशीनें चलेंगी, न रेलगाड़ियां दौड़ेंगी; न रास्ते बनेंगे, न कारें होगी; न यंत्र होंगे, न टेक्नालाजी होगी। विज्ञान जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना जीवन की सुख-सुविधा असंभव हो जाएगी। चिकित्साशास्त्र जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना बीमारियों से कैसे लड़ेंगे? उपयोगिता! हमारे जानने योग्य का अर्थ होता है, जिसकी यूटिलिटी है, जिसकी उपयोगिता है।
इसीलिए जिन चीजों की उपयोगिता है, उनकी तरफ हम ज्यादा दौड़ते हैं। अगर
आज यूनिवर्सिटी में जाएं, तो इंजीनियरिंग की तरफ, मेडिकल साइंस की तरफ दौड़ते हुए युवक मिलेंगे। फिलासफी, दर्शनशास्त्र के कमरे खाली होते जाते हैं। वहां कोई जाता नहीं। या जिनको कहीं जाने के लिए उपाय नहीं बचता, वे वहां चले जाते हैं। सब दरवाजे जिनके लिए बंद हो जाते हैं, वे सोचते हैं कि चलो, अब दर्शनशास्त्र ही पढ़ लें।
सारी दुनिया में दर्शनशास्त्र की तरफ लोगों का जाना कम होता जाता है। क्यों? क्योंकि उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। क्या करिएगा? अगर दर्शन में कोई उपाधि भी ले ली, तो करिएगा क्या? उससे न रोटी पैदा हो सकती है, न यंत्र चलता है। किसी काम का नहीं है, बेकाम हो गया; उपयोगिता गिर गई। हमारे लिए जानने योग्य वह मालूम पड़ता है, जो उपयोगी है।
लेकिन यहां अर्जुन कहता है, आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं।
क्या अर्थ होगा इसका? भगवान की क्या उपयोगिता होगी? क्या करिएगा भगवान को जानकर? रोटी पकाइएगा? दवा बनाइएगा? यंत्र चलवाइएगा? क्या करिएगा? अगर उपयोगिता की दृष्टि से देखें, तो भगवान बिल्कुल जानने योग्य नहीं है। जानकर करिएगा भी क्या? अगर आज पश्चिम के मस्तिष्क को हम समझाना चाहें कि भगवान, तो वह पूछेगा कि किसलिए? क्या करेंगे जानकर? क्या होगा जानने से? उपयोगिता क्या है?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान! लेकिन ध्यान से होगा क्या? मिलेगा क्या? उपयोगिता क्या है? स्वभावतः, ध्यान के बाबत भी वे वही सवाल पूछते हैं, जो रुपए के बाबत, धन के बाबत पूछेंगे, मकान के बाबत पूछेंगे। उपयोग ही मूल्य है। तो ध्यान का उपयोग क्या है? प्रार्थना का उपयोग क्या है? कोई उपयोग तो मालूम नहीं पड़ता। और परमात्मा तो परम निरुपयोगी है। क्या उपयोग है? उपादेयता क्या है उसकी? उससे क्या कर सकते हैं? कोई प्राफिट

मोटिव, कोई लाभ का विचार लागू नहीं होता। क्या करिएगा? और यह अर्जुन कह रहा है कि आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं!
जानने योग्य की हमारी परिभाषा और है। हम कहते हैं उसे जानने योग्य, जिसे जानने के बाद कुछ जानने को शेष न रह जाए। हम कहते हैं उसे जानने योग्य, जिसको जान लिया, तो फिर जानने को कुछ बाकी न रहा। तो वह जो जानने की दौड़ थी, समाप्त हो गई। वह जो अज्ञान की पीड़ा थी, तिरोहित हो गई। वह जो जिज्ञासा का उपद्रव था, विलीन हो गया।
जब तक जानने को कुछ शेष है, तब तक मन में अशांति रहेगी। जब तक जानने को कुछ भी शेष है, तब तक तनाव रहेगा। जब तक जानने को कुछ भी शेष है, चिंता पकड़े रहेगी कि कैसे जान लूं।
तो हम जानने योग्य उसे कहते हैं, जिसे जानकर फिर और कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता। जिज्ञासा शून्य हो जाती है। तनाव विलीन हो जाता है। सब जान लिया जैसे। एक को जान लिया, सबको जान लिया जैसे।
जानने योग्य, पाने योग्य, कामना करने योग्य, इन सबका भारतीय परंपरा में जो गहन अर्थ है, वह यह एक ही है। पाने योग्य वह है, जिसको पाने के बाद फिर पाने को कुछ बचे न। कामना करने योग्य वह है, जिसके साथ ही सब कामनाएं शांत हो जाएं। पहुंचने योग्य वह जगह है, जिसके बाद पहुंचने को कोई जगह न बचे। उसको हम कहते हैं, अल्टीमेट, परम। वह है परम बिंदु अभीप्सा का। अर्जुन कहता है, अनुभव कर रहा हूं, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं, परम ब्रह्म परमात्मा हैं। आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं, आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है। हे परमेश्वर! मैं आपको आदि, अंत और मध्य से रहित तथा अनंत सामर्थ्य से युक्त और अनंत हाथों वाला तथा चंद्र, सूर्य रूप नेत्रों वाला और प्रज्वलित अग्निरूप मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं।
अब दूसरा रूप शुरू होता है। एक रूप था सुंदर, मोहक, मनोहर, मन को भाए, लुभाए, आकर्षित करे। लेकिन यह एक पहलू था। अब दूसरा रूप भी होगा। जो जीवन को तपाए, भयंकर अग्निमुखों वाला, मृत्यु जैसा विकराल, विनाश करे।
अर्जुन कहता है कि देख रहा हूं कि आपके अनंत मुख हैं, प्रज्वलित अग्निरूप, आपके हर मुख से आग जल रही है।
आभा नहीं, प्रकाश नहीं, आग। पहले ऐश्वर्य की आभा देखी उसने, फिर सूर्यों का प्रकाश देखा उसने, अब अग्नि, अब आग्नेय अनुभव है।
मुखों से अग्नि की लपटें निकल रही हैं और आपके इस तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं। लोग जल जाएंगे, लोग तप रहे हैं, लोग भस्मीभूत हो जाएंगे। ऐसा अग्निरूप अर्जुन के सामने प्रकट होना शुरू हुआ।
जीवन जोड़ है विपरीत द्वंद्वों का, डायलेक्टिकल है, द्वंद्वात्मक है। यहां जन्म है, तो दूसरे छोर पर मृत्यु है। यहां प्रेम है, तो दूसरे छोर पर घृणा है। यहां सुख है, तो दूसरे छोर पर दुख है। यहां सफलता है शिखर, तो वहां खाई है असफलता की। जोड़ है। और द्वंद्व के आधार पर ही सारे जीवन की गति है। हम सब की आकांक्षा होती है, इसमें जो प्रीतिकर है, वह बच रहे; जो अप्रीतिकर है, वह समाप्त हो जाए। हम चाहते हैं कि सुख बच रहे और दुख नहीं। और मजे की बात यह है कि जो ऐसा चाहता है, वह इसी चाह के कारण दुख में गिरता है। क्योंकि इस दो में से एक को बचाया नहीं जा सकता। ये दोनों जीवन के अनिवार्य हिस्से हैं।
जैसे कोई चाहे कि खाइयां तो मिट जाएं और शिखर बचें, तो वह पागल है। खाई
और शिखर साथ-साथ हैं। एक ही तरंग है। जब शिखर बनता है, तो खाई बनती है। और खाई मिटती है, तो शिखर मिट जाता है। कोई चाहे कि जवानी तो बचे और बुढ़ापा मिट जाए। हम सभी चाहते हैं! लेकिन जवानी शिखर है, तो बुढ़ापा खाई है। जवान होने के साथ ही आप बूढ़े होने शुरू हो जाते हैं। जवानी बुढ़ापे की शुरुआत है। जिस दिन जवान हुए, उस दिन जान लेना, अब बुढ़ापा ज्यादा दूर नहीं है, अब करीब है।

हम चाहते हैं, सौंदर्य तो बचे, कुरूपता विलीन हो जाए। लेकिन हमें पता
ही नहीं कि अगर कुरूपता विलीन हो जाए, तो सौंदर्य बचेगा कैसे! सौंदर्य है ही अनुभव कुरूपता के विपरीत; उसी की पृष्ठभूमि में होता है।
जब आकाश में काले बादल घिरे होते हैं, तो बिजली चमकती दिखाई पड़ती है।
हम चाहते हैं, बिजली तो खूब चमके, काले बादल बिल्कुल न हों। वह काले बादल में ही चमकती है। और काले बादल में चमकती है, तो ही दिखाई पड़ती है। यह जीवन की सारी चमक मृत्यु की ही पृष्ठभूमि में दिखाई पड़ती है। हम चाहते हैं, मृत्यु विदा हो जाए। मृत्यु हो ही न दुनिया में, बस जीवन ही जीवन हो।
हमें ख्याल ही नहीं है कि हम क्या कह रहे हैं! हम असंभव की मांग कर रहे हैं। और असंभव की जो मांग करता है, वह दुख में पड़ता चला जाता है। यह होने वाला नहीं। समझदार वह है, जो संभव को स्वीकार कर लेता है और असंभव को विदा कर देता है अपनी कामना से।
द्वंद्व जीवन का स्वरूप है। हर चीज दो में है। जिससे हम प्रेम करते हैं, सोचते हैं, कभी इस पर क्रोध न करें। करना ही पड़ेगा। जिससे हम प्रेम करते हैं, उससे क्रोध भी होगा, घृणा भी होगी, संघर्ष भी होगा, द्वंद्व भी होगा, झगड़ा भी होगा। प्रेम के साथ ही घृणा जुड़ी हुई है। इसलिए जितने प्रेमी हैं, लड़ते रहते हैं। और जब प्रेमी लड़ना बंद कर दें, समझ लेना कि प्रेम समाप्त हो गया। वह जुड़ा है। उसमें एक को बचाने का कोई भी उपाय नहीं है। या तो दोनों बचते हैं, या दोनों विदा हो जाते हैं।
अर्जुन ने एक रूप देखा परमात्मा का। हम भी वह रूप देखना चाहेंगे। लेकिन दूसरे रूप से भी बचने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि अगर जन्म उससे होता है, तो मृत्यु भी उसी से होती है। और अगर अच्छाई उससे पैदा होती है, तो बुराई भी उसी से पैदा होती है। और अगर जगत में सौंदर्य का जन्म उससे होता है, तो कुरूपता भी उसका ही पहलू है। वह भी देखना ही पड़ेगा। वह दूसरी तरफ यात्रा शुरू हो गई। जो लोग भी परमात्मा के अनुभव में जाते हैं, उन्हें इसकी तैयारी रखनी चाहिए।
दुनिया में दो तरह के धर्म हैं इन दो रूपों के कारण। एक तो वे धर्म हैं, जिन्होंने इस ऐश्वर्य, महिमा वाले रूप को प्रमुखता दी है। और एक वे धर्म हैं, जिन्होंने उस भयंकर रूप को प्रमुखता दी है। जैसे कि पुराना जरथुस्त्र या पुराना यहूदियों का धर्म ओल्ड टेस्टामेंट का, वहां ईश्वर विकराल है, भयंकर है। बहुत क्रूर और कठोर है; दुष्ट मालूम पड़ता है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते।
इसीलिए जीसस की बात यहूदियों को स्वीकृत न हो सकी। उसका कारण जीसस नहीं थे। उसका कारण था ओल्ड टेस्टामेंट, पुराने यहूदी की जो ईश्वर की धारणा थी, उससे बिल्कुल उलटी बात जीसस ने कही है।
पुरानी धारणा यह थी कि ईश्वर, अगर तुमने उसके खिलाफ जरा-सा भी काम किया, तो तुम्हें जलाएगा, मारेगा, सड़ाएगा, अनंत काल तक भयंकर कष्ट देगा, दंड देगा। नर्क उसने बनाए हैं। पुराने टेस्टामेंट का जो नर्क है, वह इटरनल है, अनंत है। उसमें जरा से पाप के लिए भी फेंका जाएगा आदमी, तो फिर दुबारा वापसी का कोई उपाय नहीं है। और ईश्वर एक भयंकर विकराल व्यक्तित्व है, जिसकी आंखों से लपटें निकल रही हैं। और जिसको शांत करने का एक ही उपाय है, भय, स्तुति, प्रार्थना, उसके चरणों में सिर को रख देना। और वह जो कहता है उसको मान लेना, उसकी आज्ञा के अनुकूल। उसकी आज्ञा से जरा-सी प्रतिकूलता हुई कि वह भस्म कर देगा।
यह था यहूदी रूप ईश्वर का। यह एक पहलू है। यह गलत नहीं है। यह भी ईश्वर
का एक पहलू है। और ऐसा लगता है, मोजेज को इसका अनुभव हुआ होगा। मोजेज भूल-चूक से ईश्वर के भयंकर पहलू को पहले देख लिए। और वह भयंकर पहलू मोजेज पर इस तरह आविष्ट हो गया कि उन्होंने जो बात कही, उसमें वह भयंकर पहलू केंद्र बन गया।
जीसस उलटी बात कहते हैं। वे कहते हैं, गॉड इ.ज लव। ईश्वर प्रेम है। इसलिए यहूदी मन जीसस को स्वीकार नहीं कर पाया। कहां ईश्वर था भयंकर! और यहूदियों की सारी साधना पद्धति यह थी कि उससे भयभीत होओ, उससे डरो। उससे डरोगे, यही धार्मिक होने का लक्षण है। और जीसस ने कहा कि ईश्वर है प्रेम।

तो जिससे प्रेम है, उससे डरने की क्या जरूरत है! और जिससे हमारा प्रेम है, उससे डर समाप्त हो जाता है। और जब डर समाप्त हो जाता है, तो यहूदियों ने कहा, फिर ईश्वर का वह जो रूप--उसको उन्होंने कहा, ट्रिमेंडम, वह जो भयंकर रूप है, वह जो विकराल तांडव करता रूप है--तो सारा धर्म नष्ट हो जाएगा। इसलिए जीसस को यहूदी मन स्वीकार न कर पाया। ओल्ड टेस्टामेंट और न्यू टेस्टामेंट बड़ी विपरीत किताबें हैं, दो पहलू वाली। लेकिन एक अर्थ में बाइबिल पूरी किताब है। ओल्ड टेस्टामेंट, न्यू टेस्टामेंट दोनों मिलकर बाइबिल पूरी किताब है, क्योंकि उसमें परमात्मा के दोनों पहलू हैं। मोजेज ने जो देखा अग्निरूप और जीसस ने जो देखा प्रेमरूप, वे दोनों समाहित हैं, दोनों इकट्ठे हैं।
अगर किसी तरह यहूदी और ईसाइयत दोनों का तालमेल हो जाए गहरा, तो वह ईश्वर की पूरी छवि हो गई। लेकिन बहुत मुश्किल है। क्योंकि जो उसके प्रेमपूर्ण रूप को प्रेम कर पाता है, वह सोच ही नहीं पाता कि वह भयंकर और विकराल भी हो सकता है।
मैं पीछे जार्ज गुरजिएफ की बात कर रहा था। जार्ज गुरजिएफ अनूठा आदमी था। जैसा हम साधारणतः साधु को मानते हैं, ऐसा भी; और जैसा हम कभी सोच भी नहीं सकते साधु को, वैसा भी। अमेरिका के बहुत विचारशील साधक अलन वाट ने गुरजिएफ को रास्कल सेंट कहा है। रास्कल सेंट! बड़ा अजीब शब्द है। हिंदी में बनाएं तो और कठिनाई हो जाएगी। शैतान साधु, या कुछ ऐसा अर्थ करना पड़े।
मगर ठीक कहा है उसने। गुरजिएफ ऐसा आदमी था। और लोगों के ऐसे अनुभव हैं
कि गुरजिएफ बैठा है अपने शिष्यों के बीच और वह इस तरफ मुंह करेगा और उसका मुंह इतना प्रेमपूर्ण होगा और जो लोग उसे देखेंगे, प्रफुल्लित हो जाएंगे। और वह दूसरी तरफ मुंह करेगा और उसकी आंखें इतनी दुष्ट हो जाएंगी कि जो लोग उसको देखेंगे, वे एकदम थर्रा जाएंगे। और ये दोनों तरफ बैठे हुए आदमी, जब उसके मकान के बाहर जाकर बात करेंगे, तो इनकी बातों का कोई मेल ही नहीं हो सकेगा। क्योंकि एक ने चेहरा देखा था उसका बड़ा प्यारा; और एक ने चेहरा देखा उसका बड़ा दुष्टता से भरा हुआ, कि वह गर्दन दबा देगा, मार डालेगा, क्या करेगा! और वे दोनों जाकर बाहर कहेंगे; एक कहेगा, वह रास्कल है; और एक कहेगा, वह सेंट है।
अलन वाट कहता है, वह दोनों था। रास्कल-सेंट एक ही साथ था वह आदमी। वह
एक आंख से क्रोध प्रकट कर सकता था, और एक से प्रेम।
बहुत कठिन है। बहुत कठिन है। कोई चालीस साल की लंबी साधना थी उसकी इस तरह का अभिनय करने की, कि वह एक आंख से क्रोध प्रकट कर सके और एक से प्रेम। और एक हाथ से प्रेम दे सके और दूसरे हाथ से जहर, एक साथ! लेकिन एक अर्थ में वह पूरा संत था, पूरा।
अगर हम परमात्मा के दोनों रूप लें, तो वे जो संत मछलियों को दाना चुगा रहे हैं और चींटियों को आटा डाल रहे हैं, वे एक ही हिस्से वाले मालूम पड़ते हैं; अधूरे। तो दूसरे हिस्से का क्या होगा?
कृष्ण में जरूर परमात्मा के दोनों रूप एक साथ प्रकट हुए हैं। इसलिए
कई लोगों को कठिनाई होती है कि कृष्ण को समझें कैसे? क्योंकि कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत कंट्राडिक्टरी है। एक तरफ आश्वासन देते हैं कि मैं युद्ध में अस्त्र नहीं उठाऊंगा; मौका आता है, उठा लेते हैं। वचन का कोई भरोसा नहीं उनके। बेईमान! हम सोच भी नहीं सकते कि साधु, और वचन दे और पूरा न करे।
लेकिन कारण है कि हम ईश्वर के एक ही पहलू को पकड़ते हैं। कृष्ण में ईश्वर के दोनों पहलू एक साथ हैं। इसलिए कृष्ण एक तरफ गीता जैसा अदभुत ग्रंथ दे पाते हैं, दूसरी तरफ स्त्रियों के साथ नाच भी पाते हैं। और इसमें उन्हें कोई अड़चन नहीं है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। एक तरफ प्रेम की बात भी कर पाते हैं और दूसरी तरफ अर्जुन को युद्ध में जाने के लिए सलाह भी दे पाते हैं। काटो! इसकी भी कोई चिंता नहीं है। दूसरी तरफ बांसुरी भी बजा पाते हैं। यह बांसुरी बजाने वाला कभी कहेगा कि उठाओ तलवार और काटो, क्योंकि कोई कटता ही नहीं, बेफिक्री से काटो। हमारी समझ के बाहर हो जाता है।

इसलिए कृष्ण के भक्त भी बंटे हुए हैं। पूरे कृष्ण को कोई स्वीकार नहीं करता। कोई बांसुरी बजाने वाले को स्वीकार करता है, तो बाकी हिस्से को छोड़ देता है, कि वह अपने काम का नहीं है! सिलेक्ट करना पड़ता है कृष्ण में से। कोई दूसरे हिस्से को स्वीकार करता है, तो फिर बांसुरी वाले को मानता है कि यह कवियों की कल्पना होगी, हटाओ।
लेकिन पूरे कृष्ण को स्वीकार करना वैसे ही मुश्किल है, जैसे पूरे जीवन को स्वीकार करना मुश्किल है। और जो पूरे जीवन को स्वीकार करता है, वही केवल कृष्ण को पूरा स्वीकार कर सकता है। और पूरे जीवन को स्वीकार करने का अर्थ है, परमात्मा की दोनों शक्लें एक साथ।
दो शक्लें नहीं हैं लेकिन परमात्मा की। हमने अपने मुल्क में तीन शक्लों की बात की है, दो तो छोर हैं। एक उसका जन्मदाता का छोर, मां का। एक विध्वंस का, मृत्यु का। ये दो छोर हैं, ये दो शक्लें खास हैं। पर बीच में एक शक्ल और है। क्योंकि जहां भी दो हों, वहां जोड़ने के लिए तीसरे की जरूरत पड़ जाती है। ये दो इतने विपरीत हैं कि इनको जोड़ने के लिए एक तीसरे की जरूरत है, जो दोनों के मध्य में हो।
इसलिए हमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीन शक्लें, त्रिमूर्ति की धारणा
की है। उन तीनों मूर्तियों के पीछे एक ही व्यक्ति है। एक ही शक्ति है, कहें। एक ही विराट ऊर्जा है। लेकिन एक तरफ से वह बनाती है, एक तरफ से मिटाती है, बीच में सम्हालती भी है। क्योंकि बनने और मिटने के बीच में कोई सम्हालने वाला भी चाहिए।
अगर ब्रह्मा और महादेव ही हों जगत में, तो बनना-मिटना काफी होगा, लेकिन और कुछ नहीं होगा। बीच में कुछ भी नहीं होगा। इधर ब्रह्मा बना नहीं पाएंगे, वहां महादेव मिटा डालेंगे! आपको रहने का बीच में मौका नहीं मिलेगा। संसार के लिए उपाय नहीं रहेगा। इसलिए विष्णु!
इसलिए हमने सारी जमीन पर जो मंदिर बनाए, वे विष्णु के मंदिर हैं। और सारे अवतार विष्णु के अवतार हैं। उसका कारण है। क्योंकि वे बीच में हैं। वही संसार है हमारा। विष्णु संसार हैं। दो छोर हैं, ब्रह्मा और महादेव तो। महादेव की हम पूजा करते हैं, तो भय के कारण, कि मना-बुझा लो, समझा-बुझा लो। आपको पता है कि भय के कारण हम बहुत पूजा करते हैं। सभी लोग अपनी बही- खाता शुरू करते हैं, श्री गणेशायनमः, गणेश जी की स्तुति से। आपको पता नहीं कि क्यों? शायद आप भी करते होंगे, लेकिन पता नहीं। गणेश जी की मूर्ति मकान पर बनाए रखते हैं। हर जगह पहले कुछ करना हो, तो गणेश जी की पहले पूजा- प्रार्थना करनी पड़ती है।
उसका कुल कारण इतना है कि पुराने शास्त्र कहते हैं कि गणेश जो हैं, वे पहले बहुत विध्वंसकारी थे, बहुत उपद्रवी थे। और जहां भी कुछ शुभ कार्य हो रहा हो, वहां विघ्न खड़ा करना उनका काम था। विघ्नेश्वर उनका पुराना नाम है। तो चूंकि उपद्रव वे न करें, इसलिए पहले उनकी स्तुति करके हम समझा-बुझा लेते हैं कि कोई गड़बड़ न करना महाराज! श्री गणेशायनमः। तो उनका हम पहले स्मरण करते हैं।
यह अक्सर हो जाता है। जिससे भय होता है, उसको पहले स्मरण करना होता है। अब तो हम भूल भी गए कि वे विघ्नेश्वर हैं। अब तो हम समझते हैं कि वे मंगलमूर्ति हैं। उपद्रवी हैं! उपद्रव से बचने के लिए, कि आपको पहले मनाए लेते हैं, फिर किसी और की करेंगे पूजा और प्रार्थना। आप पहले राजी रहें, नहीं तो सब उपद्रव हो जाएगा।
शंकर की भी हम पूजा-प्रार्थना करते हैं भय के कारण। ब्रह्मा की हम कोई पूजा नहीं करते। शायद एक मंदिर है मुल्क में ब्रह्मा के लिए और कोई मंदिर नहीं है। क्योंकि क्या करना, वह तो बात खतम हो गई। ब्रह्मा ने जन्म दे दिया, अब कुछ और काम है नहीं उनका। शंकर का अभी थोड़ा डर है, क्योंकि मौत वे देंगे। विष्णु के सारे मंदिर हैं। और सब रूप--राम हों, कृष्ण हों--सब विष्णु के रूप हैं। और हम उनके मंदिर में पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं। विष्णु संसार हैं। वह मध्य है। ये दो छोर द्वंद्व हैं। और इन दोनों छोरों को जोड़ने वाली लकीर विष्णु।
दूसरा छोर अर्जुन को दिखाई पड़ना शुरू हो रहा है।

अग्निरूप मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं। और हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का संपूर्ण आकाश तथा दिशाएं एक आपसे ही परिपूर्ण हैं। तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर, अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर, तीनों लोक अतिव्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।
अर्जुन को दिखाई पड़ रहा है, यह दूसरा रूप। और उसे साथ में दिखाई पड़ रहा है, इस दूसरे रूप के कारण सारा लोक व्यथित हो रहा है।
आप व्यथित हो रहे हैं किसलिए? बीमारी है, दुख है, मौत है, यह दुख है। मृत्यु गहन दुख है। और सारे दुख उसी की छायाएं हैं। हर आदमी कंप रहा है, दुखी हो रहा है, घबड़ा रहा है, मिट न जाऊं। जब कोई इस विराट को अनुभव करता है दूसरे रूप में, तो देखा होगा अर्जुन ने कि सारे लोग मृत्यु के मुंह में चले जा रहे हैं, चाहे वे कुछ भी कर रहे हों, चाहे वे दुकान जा रहे हों, मंदिर जा रहे हों, घर लौट रहे हों। कहीं भी जा रहे हों आप, आपका जाना-आना कुछ अर्थ नहीं रखता। एक बात तय है कि आप मौत के मुंह में जा रहे हैं। चाहे दुकान जा रहे हैं, चाहे घर आ रहे हैं। हर हालत में आप मौत के मुंह में जा रहे हैं। जब अर्जुन को प्रतीत हुआ होगा यह विकराल अग्निमुख, तब उसने देखा होगा, सारा लोक, सारे प्राणी, मौत के मुंह में चले जा रहे हैं और हर एक कंप रहा है।
यह एक बहुत गहन अनुभव है। अगर आप भी आंख बंद करके लोगों के बाबत सोचें--यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर आंख बंद करके क्षणभर को सोचें--तो यहां जो लोग बैठे हैं, वे सब मौत के मुंह में जा रहे हैं। एक घंटा व्यतीत हुआ, तो आप मौत के मुंह में सरक गए और थोड़ा ज्यादा। कोई आज मरेगा, कोई कल मरेगा, कोई परसों मरेगा, समय का ही फासला है। हम सब लाशें हैं, जिन पर तारीखें लिखी हैं कि कब घोषणा हो जाएगी। लाशें चल रही हैं, गिर रही हैं, उठ रही हैं और कंप रही हैं, क्योंकि वह तारीख... !
गुरजिएफ कहा करता था कि अगर इस जमीन को अब धार्मिक बनाना हो, तो एक ही उपाय है। और वह कहता था, वैज्ञानिकों को सारी चिंता छोड़कर एक यंत्र खोज लेना चाहिए घड़ी की तरह, जो हर आदमी के हाथ पर बांध दिया जाए, जो हमेशा उसको बताता रहे कि अब मौत कितने करीब है। वह कांटा उसका घूमता रहे।
यह हो सकता है, कठिन नहीं है। लेकिन वैज्ञानिक अगर बनाएंगे भी, तो हम
उस वैज्ञानिक को ही मार डालेंगे, वह यंत्र भी तोड़ देंगे। यंत्र बन सकता है, क्योंकि शरीर के स्पंदन बताते हैं कि अब आपमें कितना जीवन शेष है, आज नहीं कल। क्योंकि बच्चा जब पैदा होता है, तो उसके जो क्रोमोसोम हैं, उसकी जो बनावट के बुनियादी ढांचे हैं, जिस पर खड़ा है सारा जीवन, उनकी नाप-जोख हो सकती है कि ये कितनी देर चलेंगे! जैसे आप घड़ी खरीदते हैं, तो दस साल की गारंटी हो सकती है।
तो बच्चा पैदा होता है, उसकी सारी की सारी, जिस दिन हम शरीर की व्यवस्था को पूरा समझ लेंगे, उसके जीवन-कोष्ठ की व्यवस्था को, उस दिन हम कह सकेंगे कि यह बच्चा सत्तर साल चलेगा, कि अस्सी साल चलेगा। तो फिर एक यंत्र उसके हाथ पर बिठाया जा सकता है, जो बताता रहेगा कि अब कितना कम होता जा रहा है। घड़ी का कांटा घूमता रहेगा और मौत की तरफ आता रहेगा। और एक दिन आकर मौत पर रुक जाएगा।
लेकिन गुरजिएफ कहता है कि अगर यह यंत्र खोज लिया जाए, तो दुनिया आज फिर से धार्मिक हो सकती है।
वह ठीक कहता है। यंत्र चाहे खोजा जाए या न खोजा जाए, जिस आदमी को भी मौत का ख्याल आना शुरू हो जाता है, उसकी जिंदगी में परिवर्तन शुरू हो जाता है। क्योंकि जिसको भी यह पता चल जाए कि मैं मिट जाऊंगा, उसकी सारी वासनाओं का अर्थ खो जाता है। सब फ्यूटायल, सब व्यर्थ मालूम होने लगता है। क्या अर्थ है फिर एक मकान बनाने का? फिर क्या अर्थ है इतना धन इकट्ठे करने का? फिर क्या अर्थ है कि इतने लोग इज्जत दें, प्रतिष्ठा करें?
कुछ भी अर्थ नहीं है। मुर्दे मुर्दों से प्रतिष्ठा मांग रहे हैं! मुर्दे मुर्दों से इज्जत इकट्ठी कर रहे हैं। और कुल फर्क इतना है कि हम आते थोड़ी देर से हैं, आप जाते थोड़े जल्दी हैं। या हम जाते थोड़े जल्दी हैं,

आप आते थोड़ी देर से हैं। क्यू है। वह जो बस के पास क्यू लगा रहता है! क्यू लगाकर हम मौत के पास खड़े हैं। आपके पिता जरा आगे होंगे, आपका बेटा जरा पीछे होगा, आप जरा क्यू के बीच में होंगे। बाकी क्यू लगा हुआ है और उधर मुंह है। अर्जुन को दिखा होगा, सारा प्राणी-जगत क्यू लगाए खड़ा है, और मौत के मुंह में जा रहा है, और लपटें हर एक के ऊपर घूम रही हैं। इसलिए वह कह रहा है कि सारा जगत, आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अतिव्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।
अलौकिक भी है यह रूप और भयंकर भी! अलौकिक क्यों? भयंकर कैसे अलौकिक कहा होगा अर्जुन ने?
अगर आप पूरे को देख पाएं, तो जब पतझड़ हो रही है और पत्ते गिर रहे हैं और वृक्ष नग्न हो गए हैं--अगर आपको दिखाई पड़ता हो थोड़ा गहरा, अगर आपके पास झांकने की क्षमता हो--तो ये जो पत्ते गिर गए हैं और वृक्ष नग्न हो गए हैं, यह आने वाली बहार की खबर है। ये गिरते हुए पत्ते नए आने वाले पत्तों के द्वारा धक्का दिए गए हैं। भीतर से नए पत्ते आ रहे हैं, वह जगह बना रहे हैं। वे पुराने पत्तों को धक्का देकर गिरा रहे हैं। वृक्ष थोड़ी देर को नग्न हो गया है, क्योंकि फिर दुल्हन की तरह सजने की उसकी तैयारी है। तो एक तरफ पतझड़ बहुत विकराल है, और दूसरी तरफ पतझड़ वसंत के आगमन की खबर है, वह जो आने वाला है, वह जो हो रहा है।
एक तरफ मौत दुख है। लेकिन हर मौत जन्म की खबर है। जब एक बूढ़ा आदमी मर रहा है, तो हमें सिर्फ एक मरता हुआ आदमी दिखाई पड़ता है। हमें पता नहीं कि जैसे नया पत्ता पुराने पत्ते को धक्का देकर गिरा रहा है। कोई नया बच्चा इस जगत में प्रवेश कर रहा है, एक पुराने शरीर को गिरा रहा है।
अगर हम इस पूरे को देख पाएं, तो हम देखेंगे कि एक नया बच्चा किसी गर्भ में प्रवेश कर गया है, और एक बूढ़ा आदमी कब्र के किनारे आ गया है। वह नया बच्चा गर्भ में बढ़ने लगेगा और यह बूढ़ा आदमी कब्र में प्रवेश करने लगेगा। वह नया बच्चा गर्भ को छलांग लगाकर बाहर आ जाएगा, यह बूढ़ा आदमी छलांग लगाकर कब्र में प्रवेश कर जाएगा। ये जरा दूर हैं फासले पर, इसलिए हमें दिखाई नहीं पड़ते, जरा बड़ा पर्सपेक्टिव, जरा बड़ा परिप्रेक्ष्य, देखने की नजर चाहिए। तो बूढ़ा आदमी जब मर रहा है, तो नया बच्चा पैदा हो रहा है।
इसलिए अर्जुन कहता है, अलौकिक और भयंकर। इधर देखता हूं कि जन्म हो रहा है। इधर देखता हूं कि मौत हो रही है। और देखता हूं कि जन्म और मौत किसी एक ही चीज के दो पैर हैं, जिसे हम जीवन कहते हैं। तो बहुत अलौकिक है।
अलौकिक क्यों? क्योंकि लोक में ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। अलौकिक का मतलब है, जैसा लोक में दिखाई नहीं पड़ता। यहां तो हम बच्चे को बच्चा देखते हैं, बूढ़े को बूढ़ा देखते हैं। पतझड़ को पतझड़ और वसंत को वसंत देखते हैं। यहां हम दोनों को जोड़कर नहीं देखते।
लेकिन जो आदमी जरा ऊपर उठता है और दृष्टि उसकी खुलती है, उसे दिखाई पड़ता है, ये दोनों तो जुड़े हैं। कल तक हमने समझा था, जन्म अलग, मौत अलग। अब हम देखते हैं, वे एक ही हैं। वे एक ही लहर के दो छोर हैं। यह अलौकिक है। इसलिए अर्जुन को लगता है, बड़ा अलौकिक! क्योंकि हम तो सोचते थे, सुंदर अलग, कुरूप अलग। हम तो सोचते थे, मित्र अलग, शत्रु अलग। हम तो सोचते थे, अपना-पराया। यहां तो दोनों एक हैं। द्वंद्व, हम सोचते थे, विपरीत हैं; यहां पता चलता है कि द्वंद्व तो मिले हैं। यह तो साजिश है। यह तो जन्म और मौत की साजिश है। ये दोनों एक साथ जुड़े हैं। अब तक हमने विपरीत समझा था। हमने सोचा था, मृत्यु जो है, वह जन्म के खिलाफ है। और हमने चाहा था कि मृत्यु को रोक दें, ताकि जगत में जन्म ही जन्म रह जाए।
लेकिन हमें पता नहीं है कि हम जो सोचते हैं, वह हो नहीं सकता, क्योंकि व्यवस्था अस्तित्व की हमारे ख्याल में नहीं है। जिस दिन जन्म हुआ, मौत हो गई। जन्म के साथ ही मरना शुरू हो गया। आप कल मरेंगे, लेकिन मरने का काम आपको जीवनभर करना पड़ेगा, तब तो मरेंगे। एकदम से कैसे मरेंगे! इस जगत में कुछ भी एकदम से नहीं घटता। प्रक्रिया है, सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ेंगे और मरेंगे।
तो जन्म पहला कदम है मौत की तरफ। अगर जन्म पहला कदम है मौत की तरफ, तो
जो देखता है उसको दिखाई पड़ेगा, मौत फिर पहला कदम है नए जन्म की तरफ।

हम मरते आदमी को देखते हैं कि मर गया, क्योंकि हमें आगे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। हमें लगता है कि बस, एक खाई के किनारे जाकर एक आदमी गिर गया, खतम हो गया। क्योंकि हमें आगे दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन जहां मौत घट रही है, तत्क्षण उससे जुड़ा हुआ जन्म घट रहा है। क्योंकि इस जगत में कुछ भी मिट नहीं सकता। मिटने का कोई उपाय ही नहीं है।
वैज्ञानिक कहते हैं, रेत के एक छोटे-से कण को भी नष्ट नहीं किया जा सकता। इस जगत में जितना है, जो है, वह उतना ही है, उतना ही रहेगा। न हम उसमें कुछ जोड़ सकते हैं, न कुछ घटा सकते हैं।
तो फिर एक आदमी मरता है, मर कैसे सकेगा? कुछ मिटता नहीं है, तो यह आदमी कैसे मिट सकेगा? यह केवल हमारी नजर से ओझल हुआ जा रहा है। जहां तक हम देख सकते हैं, वहां तक दिखाई पड़ रहा है; उसके पार हम नहीं देख सकते। यह किसी नए डायमेंशन में, किसी नए आयाम में प्रवेश कर रहा है, जहां हमें दिखाई नहीं पड़ता।
जैसे एक जहाज जाता है पानी में। दिखाई पड़ता है, दिखाई पड़ता है, दिखाई पड़ता है। फिर फीका होता जाता है, फीका होता जाता है। फिर अचानक तिरोहित हो जाता है। क्योंकि जमीन गोल है। जैसे ही जमीन की उस गोलाई को जहाज पार कर लेता है, जिसके पार गोलाई उसको छुपाने का कारण बन जाएगी, हमारी आंख से ओझल हो जाता है, गया!
मृत्यु भी एक वर्तुल, एक गोलाकार घटना है। जन्म और मृत्यु तक आधा वर्तुल पूरा होता है। फिर मृत्यु से जन्म तक आधा वर्तुल पूरा होता है। मृत्यु के किनारे जाकर एक चेतना उस ओझल होते जहाज की तरह आगे निकल जाती है, जहां तक हम देखते हैं उस सीमा के आगे। हम कहते हैं, आदमी मर गया। शरीर गिरकर हमारे पास रह जाता है, चेतना नए जन्म की यात्रा पर निकल जाती है।
जब अर्जुन ने देखा होगा कि जन्म और मौत एक ही वर्तुल के हिस्से हैं, सुंदर-कुरूप एक ही वर्तुल के हिस्से हैं, मित्र-शत्रु एक ही बात है, तो अलौकिक लगा होगा! क्योंकि लोक में ऐसा अनुभव नहीं होता। और भयंकर भी लगा कि यह क्या है सब! घबड़ाने वाला भी लगा।
और यह देखकर कि सारा जगत इसमें फंसा हुआ है, वह कहने लगा, और हे गोविंद!
वे देवताओं के समूह आप में ही प्रवेश कर रहे हैं और कई एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपके नाम और गुणों का उच्चारण कर रहे हैं।
देवता भयभीत होकर, हाथ जोड़े हुए, आपके ही नाम और गुणों की स्तुति कर रहे हैं! यह थोड़ा विचारें।
मनसविद, समाजशास्त्री कहते हैं कि धर्म का जन्म भय से हुआ है। उनके कारण दूसरे हैं। वे कहते हैं, आदमी डरता रहा है प्रकृति की शक्तियों से। और डर की वजह से उन्हें फुसलाने के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करता रहा है। आकाश में बादल गरजते हैं, अगर आप गुफा में रहते रहे होंगे कभी, तो घबड़ा गए होंगे। प्रकृति की विराट शक्तियां हैं, विध्वंस कर सकती हैं। क्षण में पहाड़ गिर जाते हैं, लोग दबकर नष्ट हो जाते हैं। भूकंप होता है, लोग विनष्ट हो जाते हैं, खो जाते हैं। गर्जना होती है बिजली की, कुछ समझ नहीं आता। तूफान आते हैं, बाढ़ आती है, और कुछ आदमी कर नहीं सकता।
तो विज्ञानविद कहते हैं कि आदमी उस भय की स्थिति में एक ही बात सोच सका, और वह यह था कि यह जो इतनी भयभीत करने वाली शक्तियां हैं, इनसे प्रार्थना की जाए, इन्हें परसुएड, फुसलाया जाए कि नाराज मत होओ। वह यही सोच सका कि नाराज हो गई है नदी, इसलिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करो। नाराज हो गए हैं बादल, इसलिए पानी नहीं गिर रहा है। हाथ जोड़कर प्रार्थना करो। कुछ पूजा करो, स्तुति करो, महिमा गाओ।
वैज्ञानिक कहते हैं, इसी भय से धर्म का जन्म हुआ है। थोड़ी दूर तक उनकी बात सच है, लेकिन बहुत ज्यादा दूर तक नहीं है। बहुत ज्यादा दूर तक नहीं है। थोड़ी दूर तक इसलिए सच है कि जरूर भय का थोड़ा हाथ है। लेकिन इतना ही भय काफी नहीं है।
असली भय न तो नदियों का है, असली भय न तो पहाड़ों के गिरने का है, असली
भय न तो ज्वालामुखियों के फूटने का है, असली भय तो मौत का है। मौत के भय के कारण ही बाढ़ भी भयभीत करती है, ज्वालामुखी भी भयभीत करता है, गिरता पहाड़ भी

भयभीत करता है। लेकिन अगर पहाड़ गिरे और आप न मरें और वैसे के वैसे ही वापस निकल आएं, फिर पहाड़ भयभीत नहीं करेगा। बाढ़ आए और कुछ न बिगाड़ पाए, पृथ्वी कंपे और आप अडिग बैठे रहें और आपका बाल भी बांका न हो, तो फिर भय नहीं होगा। तो न तो पहाड़ों का भय है, न नदियों का भय है, न सूर्यों का भय है, भय तो सिर्फ एक है, मौत का। उसको अगर हम ठीक से समझें, तो एक ही भय है, मिट जाने का। मैं नहीं हो जाऊंगा। मैं नहीं बचूंगा। मेरा मिटना हो जाएगा, मैं शून्य हो जाऊंगा। ना-कुछ हो जाऊंगा। मेरी सब रेखाएं खो जाएंगी, जैसे रेत पर बनी रेखाएं, हवा का झोंका आए और मिट जाएं। ऐसा मैं नहीं हो जाऊंगा, यह नथिंगनेस... ।
सार्त्र ने एक किताब लिखी है, बीइंग एंड नथिंगनेस--होना और न होना। सारी कथा जीवन की यही है। हैं हम, और न होना हमें चारों तरफ से घेरे हुए है। और कुछ भी करें, वह कंपाता है कि आज नहीं कल, आज नहीं कल मैं नहीं हो जाऊंगा। यह है भय।
निश्चित ही, इस भय से धर्म का विचार पैदा हुआ होगा। और यह ख्याल में आना शुरू होगा कि अगर नहीं ही हो जाना है, तो इसके पहले कि मैं नहीं हो जाऊं, मैं थोड़ा इसका भी तो पता लगा लूं कि क्या कुछ मेरे भीतर ऐसा भी है, जिसे दुनिया की कोई शक्ति मिटा नहीं सकती? क्या सारी मृत्यु भी आ जाए, तो भी मेरे भीतर कोई अमृत बचेगा? क्या मैं बचूंगा? सारे मिटने की घटना के बाद भी क्या कुछ बच रहेगा? वह कुछ क्या है? उसको ही हम आत्मा कहते हैं। वही सार है। जिसको मृत्यु नहीं मिटा पाती, उसका नाम आत्मा है।
अगर आपको ऐसा पता चलता हो कि जो भी आप अपने बाबत जानते हैं, वह मृत्यु में मिट जाएगा, तो आप पक्का समझना, आपको आत्मा का कोई पता नहीं है। अगर आपको ऐसी किसी चीज का अनुभव होता हो आपके भीतर जो मृत्यु में नहीं मिटेगा, तो ही समझना कि आपको आत्मा का कोई अनुभव शुरू हुआ है। आत्मा मानने की बात नहीं है, अनुभव की बात है। आत्मा मृत्यु के विपरीत खोज है।
तो अर्जुन देख रहा है कि आदमी की तो बिसात क्या, देवता भी कंप रहे हैं।
वे भी हाथ जोड़े खड़े हैं। उनके भी घुटने टिके हैं। वे भी प्रार्थना कर रहे हैं। वे आपका नाम लेकर उच्चारण कर रहे हैं, स्तुति कर रहे हैं! क्यों? क्योंकि देवता भी मिटने से उतना ही डरा हुआ है।
बुरा आदमी ही मिटने से डरता है, ऐसा मत समझना; भला आदमी भी मिटने से डरता है। बल्कि कई दफे तो बुरे आदमी से ज्यादा भला आदमी मिटने से डरता है। क्योंकि भले को लगता है कि इतना सब भला किया और मिट गए। बुरे को लगता है, डर भी क्या है! ऐसा कुछ किया भी क्या है, जिसको बचाने की जरूरत हो। मिट गए, तो मिट गए। और बुरा तो चाहेगा कि मिट ही जाएं तो अच्छा है, क्योंकि जो किया है, कहीं उसका फल न भुगतना पड़े। भला चाहता है कि बचे, क्योंकि इतना उपद्रव किया, इतनी साधना की, इतने व्रत-उपवास किए, इतनी पूजा-प्रार्थना की, और मिट गए। तो इसका पुरस्कार? तो नाहक ही जीवन गया!
देवता भली चेतनाओं के नाम हैं, शुद्धतम चेतनाओं के नाम हैं। लेकिन देवता वासना के बाहर नहीं हैं। शुद्धतम चेतना है, लेकिन वासना के भीतर है। इसलिए हमने मनुष्य से देवता को एक अर्थ में ऊपर रखा है, कि वह मनुष्य से ज्यादा शुद्धतर स्थिति है। लेकिन एक अर्थ में नीचे भी रखा है, क्योंकि अगर उसको मुक्त होना हो, तो उसे मनुष्य में वापस लौट आना पड़ेगा।
मनुष्य चौराहा है। पशु होना हो, तो मनुष्य की तरफ से यात्रा जाती है। देवता होना हो, तो मनुष्य की तरफ से यात्रा जाती है। और अगर समस्त जीवन के पार जाना हो, तो भी मनुष्य से ही यात्रा जाती है।
तो देवता एक छोर है शुद्ध होने का। इसे हम ऐसा समझें कि अगर नैतिक आदमी सफल हो जाए पूरी तरह, तो देवता हो जाएगा। नैतिक आदमी अगर सफल हो जाए पूरी तरह, जो दस धर्मों को मानकर चलता है, अगर सफल हो जाए पूरी तरह, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य, सब सध जाए, सारे पाप क्षीण हो जाएं और सारे पुण्य उसे उपलब्ध हो जाएं, तो जो हमारी अंतिम कल्पना है, वह यह है कि वह देवता हो जाएगा। वह शुद्धतम होगा, उसके पास शरीर नहीं होगा, सिर्फ चेतना होगी। उसके पास इंद्रियां नहीं होंगी, लेकिन वासना होगी। इंद्रियों के कारण वासना को जो बाधा पड़ती है, वह उसे नहीं पड़ेगी। उसकी वासना, उसकी इच्छा, पैदा होते ही

पूर्ण हो जाएगी, उसी क्षण। वह सोचेगा, यह हो, वैसा हो जाएगा। उसकी वासना में और वासना के पूरे होने में समय का व्यवधान नहीं होगा।
आपको भूख लगती है, तो फिर रोटी बनानी पड़ती है, भोजन पकाना पड़ता है, या होटल जाना पड़ता है, आर्डर करना पड़ता है, समय लगता है। देवता को भूख लगेगी, भोजन हो जाएगा। बीच में कोई इंद्रियां नहीं हैं, जिनकी वजह से समय के लिए कोई बाधा पड़े, कोई माध्यम नहीं है। उसकी वासना उसकी तृप्ति होगी। लेकिन वासना होगी, शुद्ध वासना होगी।
लेकिन वासना जहां होती है, वहां अहंकार भी होता है। और जहां अहंकार होता है, वहां मिटने का डर भी होता है। जब तक लगता है, मैं हूं, तब तक मिटने का डर भी रहेगा। तो देवता भी डर रहा है। बल्कि सच तो यह है कि देवता आपसे ज्यादा डर रहे हैं, क्योंकि उनके पास खोने को ज्यादा है।
कम्युनिस्ट कहते हैं कि जब तक जमीन पर किसी मुल्क में बड़ी संख्या ऐसी
न हो जाए जिसके पास खोने को कुछ भी नहीं, तब तक क्रांति नहीं हो सकती। वे ठीक कहते हैं। मध्यवर्गीय आदमी कभी क्रांतिकारी नहीं होता। और धनपति तो क्रांतिकारी होगा कैसे! क्योंकि क्रांति का मतलब है, जो है, वह खो जाएगा। मध्यवर्गीय भी क्रांतिकारी नहीं होता।
इसलिए अमेरिका में कोई क्रांति नहीं हो रही। क्योंकि अमेरिका में पूरा देश मध्यवर्गीय हो गया है। गरीब से गरीब आदमी भी बिल्कुल गरीब नहीं है, उसके पास भी कुछ है। और वह जो कुछ है, वह खुद उसको बचाना चाहता है, तो क्रांति की बातचीत में वह नहीं पड़ सकता। क्योंकि क्रांति में खोने का डर है। और अगर तुम दूसरों से छीनने जाओगे, तुम्हारा भी छिन जाएगा। तो क्रांति रोकने का एक ही उपाय अमेरिका में सफल हो पाया है, और वह यह कि जो क्रांति कर सकते हैं, उनके पास कुछ होना चाहिए। अगर पास कुछ भी नहीं है, तो फिर बहुत उपद्रव है, फिर क्रांति होगी।
डर क्या है? डर हमेशा यह है कि जो मेरे पास है, वह खो न जाए।
इसलिए आपने कहानियां सुनी हैं पुरानी, लेकिन कभी इस कोण से नहीं देखा होगा। इस पूरे प्राणियों के विस्तार में इंद्र से ज्यादा भयभीत, पुरानी कहानियों में कोई भी नहीं मालूम पड़ता। हमेशा उसका सिंहासन डगमगा जाता है। जरा ही किसी ने तपस्या की कि उनको तकलीफ शुरू हुई! कोई साधु-मुनि बेचारा ब्रह्मचारी हुआ, कि वे मुश्किल में पड़े, कि उन्होंने अपनी अप्सराएं भेजीं, कि करो भ्रष्ट इसको! आखिर इंद्र को इतना डर क्या है? इतना क्या भय है?
भय का कारण है। उसके पास है। वह शिखर पर बैठा है वासना के। देवता शुद्धतम वासना हैं। और देवताओं में श्रेष्ठतम वासना, आखिरी शिखर, एवरेस्ट, गौरीशंकर, वह इंद्र है। वहां एक ही पहुंच सकता है। वह शिखर आखिरी है, चोटी। वहां दो नहीं हो सकते।
तो जब भी नीचे से कोई ऊपर चढ़ने की कोशिश शुरू करता है, तब वह शिखर कंपने लगता है। और इंद्र घबड़ाता है। इसके पहले कि यह आदमी चढ़े, इसको उतारने की कोशिश करो। और आदमी को उतारने के लिए स्त्री से ज्यादा बेहतर और कुछ भी नहीं है। भेजो स्त्री को! वह तो स्त्रियों ने साधना नहीं की, नहीं तो आदमियों को भेजना पड़ता, वह कोई बात नहीं है! स्त्रियां इस झंझट में नहीं पड़ीं कि क्यों तकलीफ दो! इंद्र को काहे को हिलाओ! किसी को क्यों तकलीफ दो! यह जो भय है इंद्र का, यह बहुत साइकोलाजिकल है, यह बहुत मनस के गहरे में है। जो भी शिखर पर होगा किसी चीज के, वह उतना ही ज्यादा भयभीत हो जाएगा। आप जिस मजे से सोते हैं, प्रधानमंत्री नहीं सो सकता। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि कई ऋषि-मुनि नीचे कोशिश कर रहे हैं! वे चढ़ रहे हैं! कुछ भेजो उनके लिए। कोई अप्सरा भेजो। कोई पद भेजो। कहीं गवर्नर बनाओ। कुछ करो। नहीं तो वे ऋषि-मुनि आ रहे हैं! वे चढ़ दौड़ेंगे। आज नहीं कल उतारकर प्रधानमंत्री को, राष्ट्रपति को, नीचे करेंगे। खुद! आखिर वहां एक ही बैठ सकता है। तो वह जो एक बैठा हुआ है, दिक्कत में है।
लाओत्से ने कहा है, उस जगह रहना जो आखिरी हो, ताकि कोई तुम्हें धक्का देने न आए। आखिरी जगह खड़े हो जाना, ताकि तुम्हें कोई धक्का न दे। अगर पहले जाने की कोशिश करोगे, तो अनेक तुम्हें पीछे खींचने की कोशिश करेंगे।
तो इंद्र बेचैन है।

कृष्ण से अर्जुन कह रहा है कि देवताओं को भी मैं देख रहा हूं कि वे कंप रहे हैं, भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए हैं, आपके नाम और गुणों का उच्चारण कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों के समुदाय, कल्याण होवे, ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम शब्दों द्वारा आपकी प्रशंसा कर रहे हैं।
महर्षि और सिद्धों के समुदाय भी कह रहे हैं, कल्याण, कल्याण होवे। दया हो, कृपा हो, अनुग्रह हो! महर्षि और सिद्धों के समुदाय भी क्यों घबड़ा रहे हैं?
मिटने का भय आखिरी सीमा तक है। आखिरी सीमा तक! जिसने बहुत-सी सिद्धियां पा ली हैं, उसको सिद्ध कहा है। ये सिद्ध महावीर और बुद्ध के अर्थों में नहीं हैं। सिद्ध उसको कहा है, जिसने बहुत-सी सिद्धियां पा ली हैं, ऋद्धियां-सिद्धियां पा ली हैं, चमत्कार कर सकता है। वह भी कंप रहा है। महर्षि, जो बहुत जानते हैं, ज्ञान का अंबार जिनके ऊपर है, जिनकी जानकारी का कोई अंत नहीं है, वे भी कंप रहे हैं। वे भी कह रहे हैं, कल्याण, कल्याण। दया करो, क्षमा करो। भयभीत हो रहे हैं।
क्यों? दूसरी तरफ से समझें।
बुद्ध ने कहा है, जब तक तुम्हें ख्याल है कि तुम हो, तब तक तुम्हारा भय नहीं मिट सकता। तो बुद्ध ने कहा है, अगर तुम भय से मुक्त होना चाहते हो, तो तुम पहले ही मान लो कि तुम हो ही नहीं। और तुम इस तरह जीयो जैसे नहीं हो। और तुम्हारी एक ही साधना हो कि तुम हो ही नहीं। फिर तुम्हें कोई भयभीत न कर सकेगा। और एक क्षण भी जिस दिन तुम्हें यह अनुभव हो जाएगा कि तुम हो ही नहीं, शून्य हो, उस दिन तुम्हें कहीं भी भय का कोई कारण नहीं रह गया। क्योंकि जो मिट सकता था, उसे तुमने खुद ही त्याग दिया। अब तो वही बचा है, जो मिट ही नहीं सकता।
हमारे भीतर जो मैं का भाव है, वह मिट सकता है। और हमारे भीतर जो मैं- शून्यता की अवस्था है, वह नहीं मिट सकती। मैं स्ट्रक्चर है, ढांचा है हमारे चारों तरफ, वह मिटेगा। जैसे शरीर का एक ढांचा है, वह मृत्यु में मिटेगा। ऐसे ही मैं का भी एक ढांचा है, वह भी मिटेगा। इस ढांचे के भीतर एक शून्य है।
ऐसा समझें कि आपने एक मकान बनाया। मकान तो मिटेगा, दीवालें तो गिरेंगी, खंडहर होगा, देर-अबेर। लेकिन मकान के भीतर जो शून्य आकाश था, वह नहीं मिटेगा। जब आपकी दीवालें नहीं थीं, तब भी था। फिर आपने दीवालें उठाईं, तो आपने उस शून्य आकाश को दीवालों के भीतर घेर लिया। फिर आपकी दीवालें गिर जाएंगी, वह शून्य आकाश वहीं का वहीं रहेगा।
और ध्यान रखें, मकान है क्या? दीवालों का नाम मकान नहीं है, क्योंकि दीवालों में कौन रह सकता है! रहते तो शून्य आकाश में हैं। दीवाल में रह सकते हैं आप? रहते कमरे में हैं। अंग्रेजी का शब्द रूम बहुत अच्छा है। रूम का मतलब होता है, स्पेस। आप रहते रूम में हैं, खाली जगह में हैं, दीवालों में नहीं रहते। अगर अकेली दीवालें ही हों मकान में और खाली जगह न हो, तो उसको कौन मकान कहेगा?
आप रहते खाली जगह में हैं, वहीं जीवन है। दीवालें सिर्फ खाली जगह को घेरे हुए हैं। दीवालें नहीं थीं, तब भी यह खाली जगह थी। यह रूम था, बिना दीवाल के था। कल दीवालें गिर जाएंगी, तब भी यह रूम रहेगा, बिना दीवाल के रहेगा। अगर आपने दीवालों से समझा कि अपना मकान, तो आप घबड़ाए रहेंगे, कि आज मिटा, कल मिटा। अगर आपने इस खाली जगह, रूम को समझा कि मेरा मकान, फिर आपको भय की कोई भी जरूरत नहीं है। मैं दीवाल है। भीतर जो शून्य, शांत, चैतन्य है, वह आकाश है।
देवता भी कंपेंगे, मुनि भी कंपेंगे, सिद्ध भी कंपेंगे। वे सभी के सभी किसी न किसी तरह के मैं से अभी जुड़े हुए हैं।
और हे परमेश्वर! जो एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनी कुमार, मरुदगण और पितरों का समुदाय तथा गंधर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगणों के समुदाय हैं, वे सभी विस्मित हुए आपको देख रहे हैं। उनकी किसी की समझ में नहीं आता कि यह क्या है!

जहां द्वंद्व खो जाते हैं, वहां समझ भी खो जाती है और केवल विस्मय रह जाता है। समझ चलती है तब तक, जब तक द्वंद्व को अलग-अलग करके हम रखते हैं। जहां एक हो जाती हैं दोनों बातें, वहां समझ खो जाती। और यह जो नासमझी है, समझ के खो जाने पर जो आती है, इस नासमझी को ज्ञान कहा है। यह जो नासमझी है, इसे ज्ञान कहा है।
इस ज्ञान के क्षण में सिर्फ भीतर का शून्य, बाहर का शून्य दिखाई पड़ता है, जो एक हो गए। और बाहर-भीतर भी दिखाई नहीं पड़ता कि क्या बाहर है, क्या भीतर है। दोनों एक हो गए होते हैं। इस बाहर-भीतर की एकता में, इस शून्य में ही भय तिरोहित होता है।
तो अर्जुन कह रहा है कि सभी भयभीत हो रहे हैं। आपका यह रूप देखकर सभी विस्मित हो गए हैं, किसी की कुछ समझ में नहीं पड़ रहा है।
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें। कीर्तन के बाद जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
पांचवां प्रवचन

अचुनाव अतिक्रमण है

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः
प्रव्यथितास्तथाहम्।। 23।।
नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च
विष्णो।। 24।।
दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश
जगन्निवास।। 25।।
अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि
योधमुख्यैः।। 26।।
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते
चूर्णितैरुत्तमाड्गैः।। 27।।
यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति
वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।। 28।।
और हे महाबाहो, आपके बहुत मुख और नेत्रों वाले तथा बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले और बहुत उदरों वाले तथा बहुत-सी विकराल जाड़ों वाले महान रूप को देखकर सब लोक व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूं।
क्योंकि हे विष्णो, आकाश के साथ स्पर्श किए हुए, देदीप्यमान, अनेक रूपों से युक्त तथा फैलाए हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देखकर भयभीत अंतःकरण वाला मैं धीरज और शांति को नहीं प्राप्त होता हूं।
और हे भगवन्, आपके विकराल जाड़ों वाले और प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित मुखों को देखकर दिशाओं को नहीं जानता हूं और सुख को भी नहीं प्राप्त होता हूं। इसलिए हे देवेश, हे जगन्निवास, आप प्रसन्न होवें।
और मैं देखता हूं कि वे सब ही धृतराष्ट्र के पुत्र, राजाओं के समुदाय सहित आपमें प्रवेश करते हैं और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, तथा कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धाओं के सहित सब के सब, वेगयुक्त हुए आपके विकराल जाड़ों वाले भयानक मुखों में प्रवेश करते हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरों सहित आपके दांतों के बीच में लगे हुए दिखते हैं।
और हे विश्वमूर्ते, जैसे नदियों के बहुत-से जल के प्रवाह समुद्र के ही सम्मुख दौड़ते हैं अर्थात समुद्र में प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे शूरवीर मनुष्यों के समुदाय भी आपके प्रज्वलित हुए मुखों में प्रवेश करते हैं।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि परमात्मा के विराट स्वरूप को समझाते हुए आपने कल जन्म और मृत्यु, सृजन और संहार, सुंदर और भयानक आदि के द्वंद्वात्मक अस्तित्व की बात की। समझाएं कि जिस परम सत्य को अमृत या सच्चिदानंद के नाम से कहा गया, वह उपरोक्त द्वंद्वों का जोड़ है, अथवा इन दो के अतीत वह कोई तीसरी सत्ता है?

द्वंद्व चारों ओर है। संसार में जहां भी देखेंगे, वहां एक कभी भी दिखाई नहीं पड़ेगा। विपरीत सदा मौजूद होगा। संसार के होने का ढंग ही विपरीत के बिना असंभव है। इस एक बात को ठीक से समझ लें। जैसे कि कोई मकान बनाने वाला राजगीर विपरीत ईंटों को जोड़कर गोल दरवाजा बनाता है। अगर एक ही

रुख में ईंटें लगाई जाएं, तो दरवाजा गिर जाए। विपरीत ईंटें एक-दूसरे के प्रति विरोध का काम करके दरवाजे को सम्हालने का आधार बन जाती हैं।
सारा जगत विपरीत ईंटों से बना हुआ है। वहां प्रकाश है, तो केवल इसीलिए
कि अंधेरा भी है। और अंधेरा भी हो सकता है तभी तक, जब तक प्रकाश है। प्रकाश और अंधेरा विपरीत ईंटें हैं। दो कारणों से। एक तो सभी ईंटें समान होती हैं, हम उन्हें विपरीत लगा सकते हैं। अंधेरा और प्रकाश एक ही सत्ता के दो रूप हैं। ईंटें एक जैसी हैं, लेकिन एक-दूसरे के विपरीत लग जाती हैं।
जन्म और मृत्यु एक ही जीवन के दो छोर हैं। लेकिन जन्म नहीं होगा जिस दिन, मृत्यु बंद हो जाएगी। और मृत्यु भी नहीं होगी उसी दिन, जिस दिन जन्म बंद हो जाएगा। जन्म और मृत्यु का विरोध जो तनाव पैदा करता है, वही तनाव संसार है।
संसार एक अशांत अवस्था है। और अशांत अवस्था तभी हो सकती है, जब वैपरीत्य, द्वंद्व मौजूद हो। आप भी अगर केवल आत्मा हों, तो संसार में नहीं रह जाएंगे। आप भी केवल शरीर हों, तो भी आप आप नहीं रह जाएंगे, मिट्टी हो जाएंगे। आपके भीतर भी शरीर और आत्मा का एक द्वंद्व है। उस द्वंद्व के तनाव में विपरीत ईंटों के बीच ही आपका अस्तित्व है। जहां भी खोजेंगे, वहां पाएंगे कि विरोध है।
राम के अकेले होने का कोई उपाय नहीं है। रावण का होना एकदम जरूरी है।
और रावण हमें कितना ही अप्रीतिकर लगे, कितना ही हम चाहें कि वह न हो, लेकिन हमें पता नहीं कि रावण के न होते ही राम के होने का कोई उपाय नहीं रह जाता। थोड़ा सोचें, रावण को हटा लें राम की कथा से। तो रावण के हटाते ही राम में जो भी महत्वपूर्ण है, तत्क्षण गिर जाएगा। वह तो रावण की विपरीत ईंट के कारण ही राम की प्रखरता है। राम को हटा लें, तो रावण व्यर्थ हो जाएगा।
सारे जीवन का चक्र द्वंद्व के आधार पर है। यह जो द्वंद्व है, यह जिस दिन शांत हो जाता है, उस दिन हम संसार के बाहर हो जाते हैं। जिस क्षण यह द्वंद्व शांत होता है, उस क्षण अद्वैत में प्रवेश होता है। लेकिन अद्वैत जीवन नहीं है। अद्वैत ब्रह्म है। अद्वैत जीवन इसलिए नहीं है कि वहां कोई मृत्यु नहीं है। जहां मृत्यु नहीं है, वहां जीवन का कोई अर्थ नहीं होता। जहां हार हो सकती है, वहां विजय का कोई मूल्य है। जहां मिटना हो सकता है, वहां होने का कोई अर्थ है।
हमारे सारे शब्द संसार के हैं। इसलिए जो भी हम कहें भाषा में, उसका विपरीत होगा ही। उस विपरीत को हम कितना ही भुलाने की कोशिश करें, उसे भुलाने का कोई उपाय नहीं है। हम कितना ही छिपाएं, वह छिपेगा नहीं। इस पहली बात को ध्यान में ले लेना जरूरी है। संसार का अस्तित्व द्वंद्वात्मक है, डायलेक्टिकल है। और संसार की सारी गति द्वंद्व से होती है।
जर्मन विचारक हीगल ने पश्चिम की विचारधारा में डायलेक्टिक्स को जन्म दिया। उसने पहली दफा पश्चिम में यह विचार प्रस्तुत किया कि जीवन की सारी गति द्वंद्व से है। और जहां द्वंद्व है, वहां गति होगी। और जहां गति है, वहां द्वंद्व होगा। और जहां गति नहीं होगी, वहां द्वंद्व समाप्त हो जाएगा। या द्वंद्व बंद हो जाए, तो गति समाप्त हो जाएगी।
हीगल के ही विचार को कार्ल मार्क्स ने नया रूप देकर कम्यूनिज्म को जन्म दिया। क्योंकि हीगल ने कहा था, वाद पैदा होता है, तो तत्क्षण विवाद पैदा होता है; थीसिस, एंटी-थीसिस; और दोनों मिलकर सिंथीसिस बन जाता है, समन्वय बनता है। लेकिन समन्वय फिर वाद हो जाता है, फिर उसका प्रतिवाद होता है। और ऐसे विकास होता है।
मार्क्स ने इसी विचार के आधार पर समाज की व्याख्या की। और उसने कहा कि गरीब और अमीर का द्वंद्व है। इस द्वंद्व से, इस द्वंद्व के पार समाजवाद का जन्म होगा।
लेकिन मार्क्स अपने ही विचार को बहुत दूर तक नहीं खींच सका। अगर यह सच
है कि विकास द्वंद्व से होता है, तो समाजवाद के पैदा होते ही समाजवाद के विपरीत कोई धारा तत्काल पैदा हो जाएगी।
लेकिन मार्क्स को यह हिम्मत नहीं पड़ सकी कि वह कहे कि समाजवाद के विपरीत भी कोई धारा पैदा होगी। उसने पुराने इतिहास में तो द्वंद्व को

देखा, कामना की कि भविष्य में कोई द्वंद्व नहीं होगा, और साम्यवाद सदा बना रहेगा, उसका कोई विरोध नहीं होगा! वह अपने विचार के प्रति अति मोह के कारण। जैसे मां अपने बेटे को नहीं चाहती कि वह मरे, जानते हुए कि सभी मरते हैं, उसका बेटा भी मरेगा। विचारक भी अपने विचार से अति मोहग्रस्त हो जाते हैं। इस जगत में कुछ भी पैदा नहीं हो सकता, जिसका विरोध न हो। विरोध होगा ही। विरोध ही गति है, इस जगत का प्राण है। यहां निर्विरोध कोई बात नहीं हो सकती।
जिन्होंने पूछा है, उन्होंने पूछा है कि उस परम एकाकार का जब अनुभव होगा, तो दोनों द्वंद्व मिल जाएंगे या दोनों द्वंद्वों के अतीत चला जाता है व्यक्ति?
दोनों बातें एक ही हैं। जहां द्वंद्व मिलते हैं, वहां एक-दूसरे को काट देते हैं। जैसे ऋण और धन अगर मिल जाएं, तो दोनों कट जाते हैं। जहां दोनों द्वंद्व मिलते हैं, वहां उनकी दोनों की शक्ति एक-दूसरे को काट देती हैं और द्वंद्व शून्य हो जाता है। वही शून्यता पार होना भी है, वही ट्रांसेंडेंस भी है, वहीं आदमी पार भी हो जाता है।
जब तक आपका जीवन से मोह है, तब तक मृत्यु से भय रहेगा। अगर जीवन का मोह छूट जाए, मृत्यु का भय भी तत्क्षण छूट जाएगा। जहां जीवन का मोह नहीं, मृत्यु का भय नहीं, वहां आप पार निकल गए। वहां आप उस जगह पहुंच गए, जहां द्वंद्व नहीं है।
लेकिन हम तो ईश्वर की भी बात करते हैं, तो हमारी भाषा का द्वंद्व प्रवेश कर जाता है। हम कहते हैं, ईश्वर प्रकाश है। हम डरेंगे कहने में कि ईश्वर अंधकार है। क्योंकि हमारी आकांक्षा हमारे शब्द की निर्मात्री है। हम चाहते हैं कि ईश्वर प्रकाश हो। तो अंधेरे को हम छोड़ देंगे।
हम कहते हैं, ईश्वर अमृत है, परम जीवन है। हम यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते कि ईश्वर परम मृत्यु है, महामृत्यु है। हम चुनते हैं शब्द भी, तो हमारा मोह! हम चाहते हैं, कहीं भी मृत्यु न हो। तो हम ईश्वर के लिए अमृत का उपयोग करते हैं।
हम कहते हैं, ईश्वर सच्चिदानंद है। यह भी हमारा मोह है। हम नहीं कह सकते कि ईश्वर परम दुख है, हम कहते हैं, परम सुख है। द्वंद्व में से एक को चुनते हैं। वहां भूल हो जाती है। ईश्वर सुख-दुख दोनों का मिल जाना है। और जहां सुख-दुख मिल जाते हैं, एक-दूसरे को काट देते हैं। उस घड़ी को हम जो नाम देंगे, वह नाम सुख नहीं हो सकता।
इसलिए हमने आनंद चुना है। आनंद के विपरीत कोई शब्द नहीं है। सुख के विपरीत दुख है, आनंद के विपरीत कुछ भी नहीं है। हालांकि आप जब भी आनंद की बात करते हैं, तो आपका अर्थ सुख होता है। वह अर्थ ठीक नहीं है। या होता है महासुख, वह भी अर्थ ठीक नहीं है। आपके आनंद की धारणा में सुख समाया होता है और दुख अलग होता है, वह ठीक नहीं है।
आनंद की ठीक स्थिति का अर्थ है, जहां सुख और दुख मिलकर शून्य हो गए। एक-दूसरे को काट दिया उन्होंने। एक-दूसरे का निषेध हो गया। जहां दोनों नहीं रहे।
इसलिए बुद्ध ने आनंद शब्द का प्रयोग नहीं किया। क्योंकि आनंद से हमारे सुख का भाव झलकता है। तो बुद्ध ने कहा, शांति, परम शांति। सब शांत हो जाता है, द्वंद्व शांत हो जाता है। इसे चाहे हम कहें दो का मिल जाना, चाहे हम कहें दो के पार हो जाना, एक ही बात है।
जीवन में जहां भी आपको द्वंद्व दिखाई पड़े, चुनाव मत करना। जो चुनाव करता है, वह गृहस्थ है। जो चुनाव नहीं करता, वह संन्यस्त है।
इस बात को थोड़ा समझ लें।
दुख है, सुख है, तत्क्षण हमारा मन चुनाव करता है कि सुख चाहिए और दुख नहीं चाहिए। जन्म है और मृत्यु है, तत्क्षण हमारा मन कहता है, जन्म ठीक, मृत्यु ठीक नहीं है। मित्र हैं, शत्रु हैं, हमारा मन कहता है, मित्र ही मित्र रहें, शत्रु कोई भी न रहे। यह चुनाव है, च्वाइस है। और जहां चुनाव है, वहां संसार है। क्योंकि आपने दो में से एक को चुन लिया। और दो ही अगर आप एक साथ चुन लें, तो कट जाएंगे दोनों।

अगर आप मान लें कि मित्र भी होंगे, शत्रु भी होंगे, और आपके मन में कोई रत्तीभर चुनाव न हो कि मित्र ही बचें, शत्रु न बचें। आपके मन में कोई चुनाव न हो कि जीवन ही रहे, मृत्यु न रहे। आप दोनों के लिए राजी हो जाएं। जो हो, उसके लिए आपकी पूरी की पूरी तथाता, एक्सेप्टिबिलिटी हो, स्वीकार हो, तो आप संन्यस्त हैं। फिर आप मकान में हैं, दुकान में हैं, बाजार में हैं कि हिमालय पर हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके भीतर चुनाव खड़ा न हो, च्वाइसलेसनेस।
कृष्णमूर्ति निरंतर च्वाइसलेसनेस, चुनावरहितता की बात करते हैं। वह चुनावरहितता यही है। दो के बीच कोई भी न चुनें।
जैसे ही आप दो के बीच चुनाव बंद करते हैं, दोनों गिर जाते हैं। क्यों? क्योंकि आपके चुनाव से ही वे खड़े होते हैं। और जटिलता यह है कि जब आप एक को चुनते हैं, तब अनजाने आपने दूसरे को भी चुन लिया। जब मैं कहता हूं, मुझे सुख ही सुख चाहिए, तभी मैंने दुख को भी निमंत्रण दे दिया। जो सुख की मांग करेगा, वह दुखी होगा। उस मांग में ही दुख है। जो सुख की मांग करेगा, वह अगर सुख न पाएगा, तो दुखी होगा। अगर पा लेगा, तो भी दुखी होगा। क्योंकि जो सुख पा लिया जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। और जो सुख नहीं पाया जाता, उसकी पीड़ा सालती रहती है।
जैसे ही हम चुनते हैं एक को, दूसरा भी आ गया पीछे के द्वार से। और हम चाहते हैं कि दूसरा न आए। इसीलिए हम चुनते हैं कि दूसरा न आए। हम चाहते हैं, यश तो मिले, अपयश न मिले। प्रशंसा तो मिले, कोई अपमान न करे। लेकिन जो प्रशंसा चाह रहा है, उसने अपमान को बुलावा दे दिया। अपमान मिलेगा। अपमान तो केवल उसी को नहीं मिलता है, जिसने मान को चुना नहीं। जिसने मान को चुना, उसे अपमान मिलेगा।
जरूरी नहीं है कि आप मान को न चुनें, तो कोई आपको गाली न दे। दे, लेकिन आपके पास गाली गाली की तरह नहीं पहुंच सकती है। यह दूसरे देने वाले पर निर्भर है कि वह फूल फेंके कि पत्थर फेंके। लेकिन आपके पास अब पत्थर भी नहीं पहुंच सकता, फूल भी नहीं पहुंच सकता। वह तो फूल मुझे मिले, इसलिए पत्थर पहुंच जाता था। फूल ही मेरे पास आए, इसलिए पत्थर भी निमंत्रित हो जाता था। जैसे ही आप चुनाव छोड़ देते हैं, आप जगत के बीच भी जगत के बाहर हो जाते हैं।
यह जो चुनावरहितता है, यह संन्यास की गुह्य साधना है, आंतरिक साधना है। संन्यास है मार्ग, दो के पार जाने का। संसार है द्वार, दो के भीतर जाने का।
तो जितना आप ज्यादा चुनेंगे, उतने आप उलझते चले जाएंगे। जितना आप मांग करेंगे, उतने आप परेशान होते चले जाएंगे। जितना आप कहेंगे, ऐसा हो, और ऐसा न हो, उतनी ही आपकी चित्त-दशा विक्षिप्त होती चली जाएगी। जितना आप चुनाव क्षीण करते जाएंगे और आप कहेंगे, जैसा हो, मैं राजी हूं। जो भी हो, मैं राजी हूं। जैसा भी हो रहा है, उससे विपरीत की मेरी कोई मांग नहीं है। जीवन मिले तो ठीक, और मृत्यु मिल जाए तो ठीक। दोनों के साथ मैं एक-सा ही व्यवहार करूंगा। मैं कोई भेद नहीं करूंगा। जैसे ही आपके भीतर का यह तराजू समतुल होता जाएगा, वैसे ही वैसे द्वंद्व क्षीण होगा और आप अद्वैत में, निर्द्वंद्व में प्रवेश कर जाएंगे।
अर्जुन ऐसी ही घड़ी में खड़ा है, जहां उसके भीतर, वह जो संसार था, खो गया है। वह चुनावरहित हो गया है।
इस चुनावरहित होने के लिए बहुत उपाय हैं। एक उपाय साधक का है, योगी का है। वह चेष्टा कर-करके चुनाव को छोड़ता है। एक उपाय भक्त का है, प्रेमी का है। वह चेष्टा कर-करके नहीं छोड़ता। वह नियति को स्वीकार कर लेता है, भाग्य को स्वीकार कर लेता है, वह राजी हो जाता है।
यह कृष्ण के पास जो अर्जुन खड़ा है, अर्जुन का यह खड़ा होना, एक भक्त का खड़ा होना है, एक समर्पित चेतना का।

(श्रोताओं के बीच शोरगुल। कुछ उपद्रव की कोशिशें। भगवान बोले, उनकी चिंता न करें। जिस द्वंद्व की मैं बात कर रहा हूं, वही है। उसकी कोई चिंता

न करें। वह रहेगा। उससे कोई बचने का उपाय नहीं है। उसमें चुनाव न करें। शांत बैठे रहें।)

कृष्ण के सामने अर्जुन की जो दशा है, वह किसी साधक की नहीं है, वह कोई साधना नहीं कर रहा है, वह कोई योग नहीं साध रहा है। लेकिन कृष्ण के प्रेम में समर्पित हो गया है। वह एक गहरी समर्पण की भाव-दशा है। उसने छोड़ दिया सब कृष्ण पर। छोड़ने का अर्थ है, अब मेरा कोई चुनाव नहीं है। समर्पण का अर्थ है, अब मैं न चुनूंगा, अब तुम्हारी मर्जी ही मेरा जीवन होगी। अब जो तुम चाहोगे, अब जो तुम्हारा भाव हो, मैं उसके लिए बहने को राजी हूं। अब मैं तैरूंगा नहीं।
एक तो आदमी है, नदी में तैरता है। वह कहता है, उस किनारे, उस जगह मुझे पहुंचना है। एक आदमी है, नदी में बहता है। वह कहता है, कहीं मुझे पहुंचना नहीं। नदी जहां पहुंचा दे, वही मेरी मंजिल है। अगर नदी बीच में डुबा दे, तो वही मेरा किनारा है। मुझे कहीं पहुंचना नहीं, नदी जहां पहुंचा दे, वही मेरा लक्ष्य है। यह समर्पित, सरेंडर्ड भक्त का लक्षण है।
अर्जुन ऐसी दशा में है। वह कह रहा है, मैंने छोड़ा, अब मैं तैरूंगा नहीं। मैंने तैरकर देख लिया; सोचकर, विचारकर देख लिया। अब मैं छोड़ता हूं; अब मैं बहूंगा। अब कृष्ण, तुम्हारी नदी मुझे जहां ले जाए। जो भी हो परिणाम, और जो भी हो मंजिल, या न भी हो, तो जहां भी मैं पहुंच जाऊं, जहां तुम पहुंचा दो, मैं उसके लिए राजी हूं।
यह अचुनाव है। च्वाइस समाप्त हो गई। चुनाव समाप्त हो गया। इस चुनाव
के समाप्त होने के कारण ही अर्जुन निर्द्वंद्व हो सका और अद्वैत की उसे झलक मिल सकी।
एक और मित्र ने पूछा है कि क्या गीता स्वयं में पर्याप्त नहीं है, जो
आप उसकी इतनी लंबी व्याख्या कर रहे हैं? और शब्दों से दबी हुई आज की मनुष्य-सभ्यता के लिए आप गीता को इतना विस्तृत रूप दे रहे हैं, इसके पीछे क्या कारण है?
गीता तो अपने में पर्याप्त है। लेकिन आप बिल्कुल बहरे हैं। गीता तो पर्याप्त से ज्यादा है। उसकी व्याख्या की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन आप उसे सुन भी न पाएंगे, आप उसे पढ़ भी न पाएंगे। वह आपके भीतर प्रवेश भी न पा सकेगी।
बुद्ध की आदत थी कि वह एक बात को हमेशा तीन बार कहते थे। तीन बार! छोटी- मोटी बातों को भी तीन बार कहते थे। आनंद ने एक दिन बुद्ध को पूछा कि आप क्यों तीन-तीन बार किसी बात को कहते हैं? और छोटी-मोटी बात को भी आप तीन बार क्यों दोहराते हैं? सुन लिया! बुद्ध ने कहा कि तुम्हें भ्रम होता है कि तुमने सुन लिया। मुझे तीन बार कहना पड़ता है, तब भी पक्का नहीं है कि तुमने सुना हो। क्योंकि सुनना बड़ी कठिन बात है।
सुन केवल वही सकता है, जो भीतर विचार न कर रहा हो। जब आप भीतर विचार कर रहे होते हैं, तो जो आप सुनते हैं, वह कहा गया हुआ नहीं है। वह तो आपके विचारों ने तोड़ लिया, बदल दिया, नई शक्ल दे दी, नया ढंग दे दिया, नया अर्थ हो गया।
तो जब मैं कुछ कह रहा हूं, तो आप वही सुनते हैं जो मैं कह रहा हूं, ऐसी भ्रांति में न पड़ें। आप वही सुनते हैं, जो आप सुन सकते हैं, सुनना चाहते हैं। और आप जो सुनते हैं, वह आपकी व्याख्या हो जाती है।
तो गीता तो पर्याप्त है। लेकिन आपके लिए ऐसा अवसर खोजना जरूरी है, जब
कि गीता आपके ऊपर हैमर की जा सके, हथौड़ी की तरह आपके सिर पर ठोंकी जा सके। इसलिए इतनी लंबी व्याख्या करनी पड़ती है। फिर भी कोई पक्का भरोसा नहीं है कि आपको सुनाई पड़ जाएगी।
फिर दूसरा कारण भी है। जिस दिन गीता निर्मित हुई, उस दिन के आदमी और आज
के आदमी में जमीन-आसमान का अंतर पड़ गया है। रोज अंतर पड़ जाता है। शब्द पुराने हो जाते हैं। जैसे वस्त्र पुराने हो जाते हैं, जैसे शरीर पुराने हो जाते हैं, ऐसे शब्द पुराने हो जाते हैं। और पुराने शब्दों की पकड़ हम पर खो

जाती है। उनको सुन-सुनकर हम बहरे हो जाते हैं। फिर उस अर्थ को बाहर खींचकर नए शब्द देने की हर युग में जरूरत पड़ जाती है।
सत्य तो कभी बासा नहीं होता, लेकिन शब्द सदा बासे हो जाते हैं। आत्मा
तो कभी पुरानी नहीं पड़ती, लेकिन शरीर पुराने पड़ जाते हैं। जब आप बूढ़े हो जाएंगे, आपका शरीर पुराना पड़ जाएगा। फिर आपकी आत्मा को नया शरीर ग्रहण कर लेना पड़ेगा।
गीता बहुत पुरानी हो गई है। और युग-युग में जरूरत है कि उसको नई देह मिल जाए, नए शब्द, नए आकार मिल जाएं। हमने इस मुल्क में इसकी बड़ी गहरी कोशिश की है। और इसके परिणाम हुए। अगर हम दूसरे मुल्कों को देखें, तो ख्याल में आ जाएगी बात।
सुकरात ने कुछ कहा, वह बहुत कीमती है। लेकिन फिर उस पर कभी व्याख्या नहीं की गई। फिर उस पर कोई व्याख्या नहीं हुई; वह संगृहीत है। लेकिन हमने इस मुल्क में एक अनूठा प्रयोग किया। और वह अनूठा प्रयोग यह था, कृष्ण ने गीता कही, अर्जुन ने सुनी। फिर बार-बार शंकर होंगे, रामानुज होंगे, निंबार्क होंगे, वल्लभ होंगे, फिर से व्याख्या करेंगे।
शंकर क्या कर रहे हैं? वे जो शब्द पुराने पड़ गए हैं, उनको हटाकर नए शब्द रख रहे हैं। आत्मा को नए शब्दों में प्रवेश दे रहे हैं, ताकि शंकर के युग के कान सुन सकें और शंकर के युग का मन समझ सके। लेकिन अब तो शंकर भी पुराने पड़ गए। और हमेशा बात पुरानी पड़ जाएगी; शब्द तो पुराने पड़ ही जाएंगे। मैं जो कह रहा हूं, वह थोड़े दिन बाद पुराना हो जाएगा। जरूरत होगी कि फिर अर्थ को शब्द से छुटकारा करा दिया जाए।
व्याख्या का अर्थ है, अर्थ को, आत्मा को, शब्द से मुक्ति दिलाने की कोशिश। वह जो शब्द उसे पकड़ लेता है, उसे हटा दिया जाए, नया ताजा शब्द दे दिया जाए, ताकि आप नए ताजे शब्द को सुन सकें। मन रोज बदल जाता है। और मन के बदलने के साथ मन के पकड़ने, समझने के ढंग बदल जाते हैं।
इसे थोड़ा समझ लें।
आज से पांच हजार साल पहले मन का आधार था, श्रद्धा, आस्था, भरोसा, विश्वास, ट्रस्ट। आज मन का आधार नहीं है श्रद्धा पर। आज आस्था आधार नहीं है। आज ठीक विपरीत आधार है, संदेह, डाउट। उसका कारण है। क्योंकि विज्ञान की सारी की सारी खोज संदेह पर खड़ी होती है, डाउट पर खड़ी होती है। विज्ञान चलता ही संदेह करके है। विज्ञान खोजता ही संदेह करके है। और जो संदेह नहीं कर सकता, वह वैज्ञानिक नहीं हो सकता।
इसलिए जिसे वैज्ञानिक होना है, उसे संदेह की कला सीखनी ही पड़ेगी। सारी दुनिया को हम विज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं। हर बच्चा विज्ञान में दीक्षित हो रहा है। इसलिए हर बच्चे के मन में संदेह प्रवेश कर रहा है। और जरूरी है। विज्ञान की शिक्षा ही बिना संदेह के हो नहीं सकती। विज्ञान का आधार ही संदेह है। सोचो। पूछो। तब तक मत मानो, जब तक कि प्रमाण न मिल जाए, तब तक रुको। मानने की जल्दी मत करो।
धर्म का आधार बिल्कुल विपरीत है। धर्म का आधार है, चुपचाप, सहज, स्वीकार कर लो। पूछो मत। पूछना ही बाधा हो जाएगी। तो पांच हजार साल पहले विज्ञान का कोई शिक्षण नहीं था। आदमी का मन धार्मिक था। गीता में जो कहा गया है, वह सीधा भीतर प्रवेश कर जाता।
आज आदमी का मन धार्मिक बिल्कुल नहीं है, वैज्ञानिक है। विज्ञान बुरा है, यह मैं नहीं कह रहा हूं, या धर्म अच्छा है, यह भी नहीं कह रहा हूं। इतना ही कह रहा हूं कि वैज्ञानिक होने के लिए संदेह अनिवार्य है, और धार्मिक होने के लिए श्रद्धा अनिवार्य है। उन दोनों के यात्रा-पथ बिल्कुल अलग हैं, विपरीत हैं।
तो सारी दुनिया का मन आज विज्ञान की तरफ आंदोलित हो रहा है। इसलिए धर्म की जो बात है, उससे और आज के मन का कोई तालमेल नहीं है, कोई हार्मनी नहीं है; कोई संगति नहीं बैठती; कोई संबंध नहीं जुड़ता। आदमी जा रहा है विज्ञान की तरफ; उसकी पीठ है श्रद्धा की तरफ। तो पीठ की तरफ से जो भी सुनाई पड़ता है, वह समझ में नहीं आता।

दो ही उपाय हैं, या तो आदमी को मोड़कर श्रद्धा की तरफ खड़ा किया जाए, जो
कि अति कठिन हो गया है। अति कठिन है, क्योंकि एक दिन में किसी का चित्त मोड़ा नहीं जाता। और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि पहले सात वर्षों में बच्चे को जो शिक्षण मिल जाता है, वह फिर जीवनभर पीछा करता है; फिर बदलना बहुत मुश्किल है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि चौदह वर्ष में बच्चे की बुद्धि करीब-करीब परिपक्व हो जाती है। चौदह वर्ष के बाद फिर बुद्धि में कोई बहुत विकास नहीं होता।
तो चौदह वर्ष की उम्र तक जो प्रवेश कर जाता है, वह आधार बन जाता है। फिर जो कुछ भी होगा, उसके ऊपर होगा।
इसलिए किसी आदमी के चेहरे को एकदम मोड़ा नहीं जा सकता। उसके संदेह को श्रद्धा नहीं बनाई जा सकती। और अगर जबरदस्ती बनाने की कोशिश की जाए, तो संदेह भीतर होगा, श्रद्धा ऊपर हो जाएगी--थोथी, झूठी, मुर्दा। उसमें कोई प्राण नहीं होंगे।
तो एक ही उपाय है और वह यह है कि धर्म की ऐसी व्याख्या की जाए, जो संदेहशील मन को भी आकर्षित करती हो। संदेह को इनकार न किया जाए, स्वीकार कर लिया जाए। और श्रद्धा की जबरदस्ती न की जाए, श्रद्धा को संदेह के मार्ग से ही लाया जाए, जो अति कठिन है। लेकिन अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। अगर मनुष्य-जाति पुनः धार्मिक होगी, तो एक नया अनूठा प्रयोग करना पड़ेगा; वह यह कि आपके संदेह का ही उपयोग किया जाए, आपको श्रद्धा तक लाने के लिए। आपके विचार, आपके तर्क, आपकी समझ का ही उपयोग किया जाए, समझ को ही नष्ट करने के लिए। आपके तर्क का ही उपयोग किया जाए, आपके तर्क को ही काट डालने के लिए।
यह हो सकता है। पैर में कांटा लग जाता है, तो हम दूसरे कांटे से उस कांटे को निकाल लेते हैं। और कोई भी यह नहीं कहता कि आप कांटे से कांटे को कैसे निकालेंगे? आदमी बीमार होता है, उसके शरीर में जहर फैल जाता है, तो हम एंटीबायोटिक्स, और जहर डालकर उसके जहर को नष्ट कर देते हैं। वैक्सिनेशन का तो सारा सिद्धांत इस बात पर खड़ा हुआ है, कि आपके शरीर में जो कीटाणु हैं बीमारी के, वे ही कीटाणु और बड़ी मात्रा में आपके भीतर डाल दिए जाएं।
तो अब तो धर्म होगा वैक्सिनेशन। अब तो आपसे यह नहीं कहा जा सकता कि श्रद्धा करिए। यह कोई खेल नहीं है। अब बहुत मुश्किल है।
अब किसी छोटे बच्चे को भी कहना कि चुपचाप मान लो, व्यर्थ है। वह बच्चा
भी कहेगा, आप क्या कह रहे हैं! पूछूं न? विचार न करूं? तर्क न करूं? तो आपका यह कहना कि श्रद्धा ही हमारी पहली शर्त है, बच्चे के लिए आपके धर्म का द्वार बंद हो गया। इसका अर्थ हुआ कि आप व्यर्थ की बकवास कर रहे हैं। जिसमें प्रश्न न पूछा जा सके और जिसमें संदेह न किया जा सके, वह सत्य नहीं हो सकता, वह अंधविश्वास है। आपने द्वार बंद कर दिए।
आज किसी से कहना, श्रद्धा करो, नासमझी है। आज तो एक ही उपाय है कि उसके संदेह को संदेह के ही मार्ग से काट डाला जाए। एक ऐसी घड़ी आ जाए कि उसका संदेह करने वाला मन संदेह करने में असमर्थ हो जाए, संदेह कर-करके असमर्थ हो जाए।
एक उपाय तो यह होता है कि आपको बांधकर बिठा दिया जाए कि शांत हो जाओ। छोटे बच्चों को घर में मां-बाप बिठा देते हैं कि शांत हो जाओ। छोटा बच्चा बैठ जाता है। लेकिन जरा उसका निरीक्षण करें, आब्जर्व करें। वह हाथ-पैर हिलाएगा, कुछ करेगा, सिर हिलाएगा, कुछ करेगा। वह जो दौड़ता था, वह दौड़ अब उसके भीतर-भीतर चलेगी।
आप उसको जबरदस्ती बिठा दिए हैं। इससे कुछ हल होने वाला नहीं है। ज्यादा वैज्ञानिक यह होगा कि उसे कहें कि जाकर मकान के दस चक्कर लगाकर आ! उसे दस चक्कर लगाने दें। शायद दस वह लगा भी न पाएगा, तीन-चार या पांच में थक जाएगा। और कहेगा, मुझे नहीं लगाना। उसे कहें कि और पांच पूरे कर। फिर आप कोने में बैठा हुआ उसे देखें। अब उसके भीतर कोई गति नहीं होगी। अब वह शांत होगा। अब वह बुद्ध की प्रतिमा की तरह बैठा होगा।

आपके लिए अब दूसरा ही रास्ता है। आपको सीधे नहीं बिठाया जा सकता। इसलिए दस चक्कर मुझे लगाने पड़ते हैं! जो सीधा बैठ सकता है, उससे मुझे कुछ नहीं कहना है। लेकिन मुझे एक आदमी नहीं दिखाई पड़ता, जो अब सीधा बैठ सकता है। आपको दस चक्कर लगाने पड़ेंगे। इसलिए इतनी लंबी व्याख्या करनी पड़ती है।
वह चक्कर है। और आपके साथ मुझे भी लगाने पड़ते हैं! क्योंकि ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं बीच में आप रुक न जाएं। जब तक थक न जाएं, एक्झास्टेड! आपकी बुद्धि को थकाने के सिवाय अब श्रद्धा तक ले जाने का कोई मार्ग नहीं है। अब हम सूत्र को लें।
और हे महाबाहो! आपके बहुत मुख और नेत्रों वाले तथा बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले और बहुत उदरों वाले तथा बहुत-सी विकराल जाड़ों वाले महान रूप को देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूं।

(कोई मित्र के बीच में से उठकर जाने से कुछ व्यवधान होता है। इस पर भगवान श्री ने कहा, ये जो मित्र उठ रहे हैं उनको वहीं बिठा दें। बिल्कुल उनको वहीं बिठा दें। जाने न दें बाहर। और कल से मैं आपको कहता हूं कि जिसको जाना हो, पहले से बाहर रहे, बीच में बैठने की कोई जरूरत नहीं। उनको बिठाइए वहां। वह जो मित्र जा रहे हैं उनको बिठाइए वहीं। और कल से मैं एक भी व्यक्ति को बीच से नहीं उठने दूंगा। आप पहले से बाहर रहें। कोई कारण नहीं है बीच में बैठने का।)

अर्जुन ने देखा, विकराल रूप! जहां परमात्मा मृत्यु का मुख बन गया है।
वह कह रहा है कि हे महाबाहो! यह मैं देख रहा हूं, इससे सारे लोक व्याकुल हो रहे हैं, मैं भी व्याकुल हो रहा हूं। मेरा हृदय धड़कता है और घबड़ाहट रोएं- रोएं में समा गई है। क्या यह भी आप हैं?
यह व्याकुलता स्वाभाविक है। क्योंकि हमने परमात्मा का एक ही रूप देखा। और हमने परमात्मा के एक ही रूप की पूजा की। और हमने परमात्मा के एक ही रूप को सराहा। और हमने यह माना कि वह एक इसी रूप से एक है; दूसरा रूप परमात्मा का नहीं है। तो जब हमें पूरा परमात्मा दिखाई पड़े, तो व्याकुलता बिल्कुल स्वाभाविक है।
यह व्याकुलता परमात्मा के रूप के कारण नहीं है, हमारी बुद्धि के तादात्म्य के कारण है। हमने एक हिस्से के साथ तादात्म्य कर लिया है। हमने देखा कि परमात्मा होगा सौंदर्य। हमने परमात्मा की सारी प्रतिमाएं सुंदर बनाई हैं। कुछ हिम्मतवर तांत्रिकों ने कुरूप प्रतिमाएं भी बनाई हैं, लेकिन वे धीरे-धीरे खोती जा रही हैं। हमारे मन को उनकी अपील नहीं है।
अगर आप विकराल काली को देखते हैं, हाथ में खंजर लिए, कटा हुआ सिर लिए, गले में मुंडों की माला डाले हुए, पैरों के नीचे किसी की छाती पर सवार, लाल जीभ, खून टपकता हुआ, तो भला भय की वजह आप नमस्कार करते हों, लेकिन मन में यह भाव नहीं उठता कि यह परमात्मा का रूप है। भला मान्यता के कारण आप सोचते हों कि ठीक; लेकिन भीतर यह भाव नहीं उठता कि यह परमात्मा का रूप है।
और स्त्री, ममता, मां जिसको हमने कहा! और काली को हम मां कहते हैं! मां
जो है, वह ऐसा विकराल रूप लिए खड़ी है, तो मन को बड़ी बेचैनी होती है कि क्या बात है! लेकिन जिन्होंने यह विकराल रूप खोजा था, उन्होंने एक द्वंद्व को इकट्ठा करने की कोशिश की थी।
मां से ज्यादा प्रेम से भरा हुआ हृदय पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। इसलिए मां को खड़ा किया इतने विकराल रूप में, जो कि दूसरा छोर है। मां को ऐसे खड़ा किया, जैसे वह मृत्यु हो। मां तो जन्म है। मां को ऐसे खड़ा किया, जैसे वह मृत्यु हो। दो द्वंद्व, जन्म और मृत्यु, दोनों को एक साथ काली में इकट्ठा किया। एक तरफ वह जन्मदात्री है, और दूसरी तरफ मृत्यु उसके हाथ से घटित हो रही है। और हड्डियों की, खोपड़ियों की माला उसने गले में डाल रखी है!
कभी आपने अपनी मां को इस भाव से देखा? बहुत घबड़ाहट होगी। और अगर आप अपनी मां को इस भाव से नहीं देख सकते, तो काली को आप मां कैसे कह सकते हैं! असंभव है।

लेकिन जिन्होंने, जिन तांत्रिकों ने यह द्वंद्व को जोड़ने का ख्याल किया, बड़े अदभुत लोग थे। इसमें एक प्रतीक है। इसमें जन्म और मृत्यु एक साथ खड़े हैं। इसमें प्रेम और मृत्यु एक साथ खड़े हैं। इसमें मां का हृदय और मृत्यु के हाथ एक साथ खड़े हैं। मगर धीरे-धीरे यह रूप खोता चला गया। यह रूप आज अगर कभी आपको दिखाई भी पड़ता है, तो सिर्फ परंपरागत है। इसकी धारणा खो गई। इसके हृदय में संबंध हमारे खो गए।
हमने परमात्मा का तो सौम्य, सुंदर रूप--कृष्ण बांसुरी बजाते खड़े हैं,
वे लगते हैं कि परमात्मा हैं। मोर-मुकुट बांधा हुआ है, उनके होंठों पर मुस्कान है। वे लगते हैं कि परमात्मा हैं। उनसे हमें आश्वासन मिलता है, राहत मिलती है, सांत्वना मिलती है। हम वैसे ही बहुत दुखी हैं। काली को देखकर और उपद्रव क्यों खड़ा करना है!
कृष्ण को देखकर सांत्वना, कंसोलेशन मिलता है कि ठीक है। इस जीवन में होगा दुख। इस जीवन में होगी मृत्यु। आज नहीं कल, वह मुकाम आ जाएगा, जहां बांसुरी ही बजती रहती है। जहां सुख ही सुख है। जहां शांति ही शांति है, जहां संगीत ही संगीत है। जहां फिर कुछ बुरा नहीं है। उसकी आशा बंधती है, उसका भरोसा बंधता है। मन को राहत मिलती है। तो जो हमारे पास नहीं है, जो जिंदगी में खोया हुआ है, जिसका अभाव है, उसे हमने कृष्ण में पूरा कर लिया। आपने कभी ख्याल किया कि हमने कृष्ण, राम, बुद्ध, महावीर, किसी के बुढ़ापे का चित्र नहीं बनाया है। कोई बुढ़ापे की मूर्ति नहीं बनाई है। ऐसा नहीं है कि ये लोग बूढ़े नहीं हुए। बूढ़े तो होना ही पड़ेगा। इस जमीन पर जो है, जमीन के नियम उस पर काम करेंगे। और ये जमीन के नियम किसी को भी छूट नहीं देते, यहां कोई छुट्टी नहीं है। और अगर इस जमीन के नियमों में छुट्टी हो, तो फिर जगत बिल्कुल एक बेईमान व्यवस्था हो जाए। यहां तो कृष्ण को भी बूढ़ा होना पड़ेगा, राम को भी होना पड़ेगा, बुद्ध को भी होना पड़ेगा, महावीर को भी होना पड़ेगा।
लेकिन हमने उनको बूढ़ा नहीं बनाया। उससे यह पता नहीं चलता कि वे बूढ़े नहीं हुए। उससे यही पता चलता है कि बुढ़ापे से हम कितने भयभीत हैं, कितने डरे हुए हैं। और अगर राम को भी हम देखें, टूटे हुए दांत, लकड़ी टेकते हुए, तो फिर भगवान मानना बहुत मुश्किल हो जाएगा। सुंदर, युवा! वे सदा ही युवा हैं। उनका युवापन ठहर गया है; वह आगे नहीं बढ़ता।
कृष्ण को बूढ़ा देखें। खखारते हुए, खांसते हुए, खाट पर, किसी अस्पताल में भर्ती! बिल्कुल यह हमारे भरोसे के, विश्वास के बाहर हो गया। हमारी सारी श्रद्धा नष्ट हो जाएगी। और हमें लगेगा, यह भी क्या बात हुई! कम से कम भगवान होकर तो ऐसा नहीं होना था।
तो भगवान हमारी कामनाओं से हम निर्मित करते हैं। उनकी मूर्ति हम अपनी वासना से निर्मित करते हैं। उसका तथ्य से कम संबंध है, हमारी भावना से ज्यादा संबंध है।
देखते हैं आप, न दाढ़ी उगती राम को, न कृष्ण को, न बुद्ध को, न महावीर को।
न मूंछ निकलती, न दाढ़ी निकलती। जरा कठिन मामला है। कभी-कभी ऐसा होता है, कोई पुरुष मुखन्नस होता है। कभी-कभी किसी पुरुष को दाढ़ी-मूंछ नहीं उगती। क्योंकि उसमें कुछ हार्मोन की कमी होती है; वह पूरा पुरुष नहीं है। लेकिन यह कभी-कभी होता है। सब अवतार हमने मुखन्नस खोज लिए! जरा कठिन है। थोड़ा सोचने जैसा है!
जैनियों के चौबीस तीर्थंकर हैं। चौबीस तीर्थंकरों में किसी की दाढ़ी- मूंछ नहीं उगती। यह मानना मुश्किल है कि उन्होंने इतनी खोज कर ली हो। और हमेशा जब भी कोई तीर्थंकर हुआ, तो वह ऐसा आदमी हुआ जिसमें हार्मोन की कमी थी।
यह बात नहीं है। दाढ़ी-मूंछ उगी ही है। लेकिन हमारा मन नहीं कहता कि दाढ़ी-मूंछ उगे। क्यों? क्योंकि वह दाढ़ी-मूंछ जो उगे, तो फिर बुढ़ापा आएगा। वह जो दाढ़ी-मूंछ उगे, तो युवावस्था को ठहराना मुश्किल हो जाएगा। वह जो दाढ़ी-मूंछ उगे, तो वे फिर ठीक हम जैसे हो जाएंगे। और हमारा मन करता है कि वे हम जैसे न हों। हम अपने से बहुत परेशान हैं। हम अपने से बहुत पीड़ित हैं। वे हम जैसे न हों।

इसलिए हमने अपने अवतारों, अपने तीर्थंकरों, अपने पैगंबरों में वे सब बातें जोड़ दी हैं, जो हम चाहते हैं, हममें होतीं, और नहीं हैं। हम सुबह-शाम लगे हैं दाढ़ी छोलने में! वह हम चाहते हैं कि न होती। वह हम चाहते हैं कि न होती। और आज नहीं कल विज्ञान व्यवस्था खोज लेगा कि पुरुष दाढ़ी-मूंछ से छुटकारा पा जाए।
इतनी उत्सुकता दाढ़ी-मूंछ से छुटकारा पाने की भी बड़ी अजीब है और बड़ी विचारणीय है और बड़ी मनोवैज्ञानिक है। थोड़ी पैथालाजिकल है, थोड़ी रुग्ण भी है।
पुरुष के मन में जो सौंदर्य की धारणा है, वह स्त्री की है। उसको स्त्री का चेहरा सुंदर मालूम पड़ता है। और स्त्री के चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ नहीं है। वह सोचता है, सुंदर होने का लक्षण दाढ़ी-मूंछ का न होना है। मगर स्त्रियों से भी पूछो, कि दाढ़ी-मूंछ न हो, तो स्त्री को चेहरा सुंदर सच में लग सकता है?
लगना नहीं चाहिए। और अगर लगता है, तो उसका मतलब पुरुषों ने उनका दिमाग
भी भ्रष्ट किया हुआ है। लगना नहीं चाहिए। प्राकृतिक रूप से स्त्री को दाढ़ी-मूंछ वाला चेहरा सुंदर लगना चाहिए, जैसा पुरुष को गैर दाढ़ी-मूंछ का चेहरा सुंदर लगता है। थोड़ा सोचें कि आपकी पत्नी दाढ़ी-मूंछ लगाए हुए खड़ी है! तो जब आप गैर दाढ़ी-मूंछ के खड़े हैं, तब वही हालत हो रही है।
लेकिन चूंकि पुरुष प्रभावी है और स्त्रियों के मन को उसने अपने ही सांचे में ढाल रखा है हजारों साल में... । स्त्रियां कह भी नहीं सकतीं कि तुम यह क्या कर रहे हो? क्यों स्त्री जैसे हुए जा रहे हो? स्त्रियां भी मानती हैं कि यह सुंदर है, क्योंकि उनकी अपनी सुंदर की व्याख्या भी हमने नष्ट कर दी है। स्त्री का हमने मंतव्य ही समाप्त कर दिया है। पुरुष की ही धारणा, उसकी भी धारणा है। जिसको पुरुष सुंदर मानता है, वह भी सुंदर मानती है।
तो सुंदर की जो हमारी धारणा थी, हमने राम पर, कृष्ण पर, बुद्ध पर थोप दी है। लेकिन वे हमारी कामनाएं हैं; वे तथ्य नहीं हैं। तथ्य तो, जीवन के साथ मृत्यु जुड़ी है, यह है। मृत्यु से हम भयभीत हैं। हम बचना चाहते हैं।
हम में से अधिक लोग आत्मा को अमर इसीलिए मानते हैं कि इसके सिवाय बचने
का और कोई उपाय नहीं दिखता। उन्हें कुछ पता नहीं है कि आत्मा अमर है। उन्हें कुछ भी पता नहीं है कि आत्मा है भी। लेकिन फिर भी वे माने चले जाते हैं कि आत्मा अमर है। क्यों? भय है मृत्यु का।
शरीर तो जाएगा, यह पक्का है, कितना ही उपाय करो। तो बचने का अब एक ही उपाय है कि आत्मा अमर हो। इसलिए जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होता है, आत्मा में भरोसा करने लगता है। जवान आदमी कहता है, पता नहीं, है या नहीं। हो सकता है, न भी हो। यह आदमी अभी समझकर नहीं बोल रहा है। अभी जवानी का जोश बोल रहा है। थोड़ा हाथ-पैर ढीले पड़ने दें, भरोसा आने लगेगा। थोड़ी मौत करीब आने दें, दांत गिरने दें, भरोसा आने लगेगा। क्यों?
इसलिए नहीं कि इसे कोई अनुभव हुआ जा रहा है। कोई बूढ़े होने से अनुभवी नहीं होता। अगर बूढ़े होने से दुनिया में अनुभव मिलता होता, तो सारे लोग कितनी दफे बूढ़े हो चुके हैं, अनुभव ही अनुभव होता। कोई अनुभव नहीं मिलता। लेकिन बूढ़े होने से भय बढ़ता है, मौत करीब मालूम पड़ने लगती है। अब इतना भरोसा नहीं मालूम पड़ता, पैरों में इतनी ताकत नहीं मालूम पड़ती। अब तर्क करने की सुविधा नहीं मालूम पड़ती। अब लगता है, अब तो ऐसा लगता है कि वह जो अंधविश्वासी कहते हैं, वही ठीक हो, तो अच्छा। आत्मा हो! यह हमारा विश फुलफिलमेंट है, आत्मा हो। तो हम मानने लगते हैं कि आत्मा है।
जाएं मस्जिद में, मंदिर में, चर्च में; बूढ़े लोग! और पुरुषों से भी ज्यादा बूढ़ी स्त्रियां वहां इकट्ठी हैं। क्योंकि पुरुष बूढ़ा भी हो जाए, तो थोड़ा-बहुत अपना पुरुषत्व, अकड़ कायम रखता है। स्त्रियां और जल्दी घबड़ा जाती हैं और मंदिर की तरफ चल पड़ती हैं।
घबड़ाहट की वजह से, भय की वजह से आदमी मान लेता है, आत्मा अमर है, अनुभव
की वजह से नहीं। क्योंकि अनुभव तो बड़ी और बात है। और अनुभव तो उसे उपलब्ध होता है, जो मृत्यु से भय छोड़ देता है और जीवन की वासना छोड़ देता है।

हम तो मृत्यु के भय से, आत्मा अमर है, मान लेते हैं। हमें कभी पता नहीं चलेगा कि आत्मा है भी। उसी को पता चलेगा, जो मृत्यु का भय नहीं करता और जीवन का मोह नहीं करता।
कौन है जो मृत्यु का भय नहीं करे और जीवन का मोह न करे? वही व्यक्ति,
जो जीवन और मृत्यु को एक की तरह देख ले, अनुभव कर ले। और इसके लिए कहीं शास्त्र में जाने की जरूरत नहीं। और इसके लिए किसी महापुरुष, महाज्ञानी के चरणों में बैठने की जरूरत नहीं। जीवन काफी शिक्षा है।
जीवन और मृत्यु दो कहां हैं? वे एक ही हैं। हमने अपने मोह में बांटा है
दो में। वे एक ही हैं। कभी आपको पता है किस दिन जन्म समाप्त होता है और मृत्यु शुरू होती है? और किस दिन, किस सीमा पर जीवन समाप्त होता है और मृत्यु का आगमन होता है?
कहीं कोई विभाजन नहीं है। कोई वाटर-टाइट कंपार्टमेंट, कोई खंड-खंड बांटने का उपाय नहीं है। जीवन, मृत्यु एक ही चीज के दो नाम मालूम पड़ते हैं। एक ही घटना के लिए दो शब्द मालूम पड़ते हैं। एक छोर जीवन, दूसरा छोर मृत्यु। तो हम परमात्मा का रूप बनाते हैं, मोहक, सुंदर। हमने नाम जो रखे हैं,
वे सब ऐसे रखे हैं कि मन को लुभाएं। लेकिन जो दूसरा हिस्सा है, वह हमने काट रखा है।
अर्जुन भी भयभीत हुआ। इसलिए नहीं कि परमात्मा का भयंकर रूप है, बल्कि इसलिए कि आज तक उसने सोचा ही नहीं था कभी। यह कभी धारणा ही मन में न बनी थी कि यह भयंकर रूप भी परमात्मा का होगा। हम सोचते हैं यमराज को, भैंसे पर बैठे हुए, विकराल दांतों वाला, काला आदमी, सींगों वाला। लेकिन हम कभी यमराज को परमात्मा के साथ एक करके नहीं देखते। यमराज अलग ही मालूम पड़ता है। उसका डिपार्टमेंट, वह सब अलग विभाग है। परमात्मा से हम उसको नहीं जोड़ते हैं, कि मृत्यु परमात्मा से आती है।
गीता के ये सूत्र बड़े कीमती हैं, इन्हें थोड़ा समझ लेना।
यमराज कहीं भी नहीं, परमात्मा के मुंह में ही है। और यमराज कहीं किसी हाथी-घोड़े पर बैठकर नहीं आने वाला है, किसी भैंसे पर सवार होकर। परमात्मा के दांत, वे ही यमराज हैं।
यह देखकर अर्जुन घबड़ा गया है और वह कह रहा है कि सारे लोक व्याकुल हो रहे हैं, मैं भी व्याकुल हो रहा हूं। क्योंकि हे विष्णो! आकाश के साथ स्पर्श किए हुए, देदीप्यमान, अनेक रूपों से युक्त तथा फैलाए हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देखकर भयभीत अंतःकरण वाला मैं धीरज और शांति को नहीं प्राप्त होता हूं।
वह ठीक कह रहा है। वह कह रहा है, आपकी वजह से मैं भयभीत हो रहा हूं, ऐसा नहीं; भयभीत अंतःकरण वाला, मैं भयभीत अंतःकरण वाला हूं, इसलिए भयभीत हो रहा हूं। आपके कारण भयभीत नहीं हो रहा हूं। आप तो विशाल हैं, महान हैं, विष्णु हैं, महादेव हैं, आप तो परमेश्वर हैं। आपके कारण नहीं भयभीत हो रहा हूं, लेकिन मेरा अंतःकरण भय वाला है।
इसे हम थोड़ा समझ लें।
हम सबके पास अंतःकरण भय वाला है। यह थोड़ा गहन है। और आपको पता भी नहीं
कि आपका अंतःकरण क्या है, कानशिएंस क्या है।
आप चोरी करने से डरते हैं। भीतर कोई कहता है, चोरी बुरी है। आप पड़ोसी
की स्त्री को भगा ले जाने से बचते हैं। भीतर कोई कहता है, यह बात बुरी है।
किसी की हत्या करने से भय है, कंपता है मन। भीतर कोई कहता है, हत्या पाप है। हिंसा बुरी है। कौन कहता है आपके भीतर? जो आपके भीतर बोलता है, यह अंतःकरण है।
यह अंतःकरण वास्तविक नहीं है। क्योंकि वास्तविक अंतःकरण भय के कारण नहीं जीता। वास्तविक अंतःकरण तो ज्ञान के कारण जीता है। यह अंतःकरण सोशल प्रोडक्ट है, समाज के द्वारा पैदा किया गया है। यह समाज बच्चा पैदा होते से ही बच्चे में अंतःकरण पैदा करने में लग जाता है। क्योंकि समाज को भय है कि अगर बच्चे को ऐसे ही छोड़ दिया जाए, तो वह पशु जैसा हो जाएगा।
और इस भय में सचाई है। अगर बच्चे को कुछ भी न कहा जाए, तो वह पशु जैसा
हो जाएगा। तो समाज उसे बताना शुरू करता है। वह कहता है, अगर तुम ऐसा करोगे,

तो दंड पाओगे। अगर तुम ऐसा करोगे, तो पुरस्कार पाओगे। अगर तुम ऐसा करोगे, तो माता-पिता प्रसन्न होंगे। अगर तुम ऐसा करोगे, तो दुखी होंगे, नाराज होंगे, कष्ट पाएंगे।
धीरे-धीरे हम बच्चे में भय और लोभ के आधार पर अंतःकरण पैदा करते हैं।
हम कहते हैं, तुम ऐसा करो, मां प्रसन्न है, पिता प्रसन्न हैं, सब लोग प्रसन्न हैं तुमसे। तुम ऐसा करो, और सब लोग तुम्हारी निंदा करेंगे, और सब तुम्हें निंदित कर रहे हैं। तो बच्चे को धीरे-धीरे समझ में आने लगता है, किस चीज से डरे। तो जिस-जिस चीज से मां-बाप डराते हैं, उस-उस से वह डरने लगता है। भय गहरे में बैठ जाता है, अंतःकरण बन जाता है।
इसलिए हर समाज का अंतःकरण अलग-अलग होता है। हिंदू का अलग, मुसलमान का अलग, ईसाई का अलग, जैन का अलग। आत्मा अलग-अलग नहीं होती, अंतःकरण अलग-अलग होता है।
अब एक जैन है, वह मांसाहार नहीं कर सकता। क्योंकि बचपन से उसे कहा गया
है कि यह महापाप है। तो अगर मांस सामने आ जाए, तो भीतर उसके हाथ-पैर कंपने लगेंगे। इसलिए नहीं कि मांस को देखकर कंपते हैं। क्योंकि दूसरा मुसलमान बैठा है, उसके नहीं कंप रहे हैं। तो मांस में कंपाने वाली कोई बात नहीं है। कंप रहे हैं अंतःकरण के कारण।
और इसी बच्चे को अगर एक मांसाहारी घर में रखा जाता, तो इसके भी नहीं कंपते। और अगर एक मांसाहारी बच्चे को गैर-मांसाहारी घर में रखा जाता, तो उसके भी कंपते। वह जो अंतःकरण बचपन से पैदा किया गया है, वह जो भय, कि क्या गलत है, वह नहीं करना। उसे देखकर यह कंप रहा है। यह वास्तविक अंतःकरण नहीं है। यह सामाजिक व्यवस्था है।
इसलिए एक समाज में अगर चचेरी बहन से शादी होती है, तो कोई अड़चन नहीं है। चचेरी बहन से शादी हो जाती है। किसी को कोई तकलीफ नहीं होती। और दूसरे समाज में उसी के पड़ोस में चचेरी बहन से शादी करने की बात ही महापाप हो सकती है। कोई सोच भी नहीं सकता कि बहन से भी, और प्रेम कर सकते हैं! संभव ही नहीं है। और उसको पत्नी बना सकते हैं, यह तो बिल्कुल ही कल्पना के बाहर है। यह अंतःकरण है।
यह जब तक दुनिया में बहुत समाज हैं, बहुत संप्रदाय हैं, तब तक बहुत अंतःकरण होंगे। और इन अंतःकरण के कारण बड़ा उपद्रव है। और दुनिया तब तक एक नहीं हो सकती, जब तक हम कोई एक युनिवर्सल कांशिएंस पैदा न कर लें। तब तक दुनिया एक नहीं हो सकती। लाख लोग सिर पटकें कि हिंदू-मुसलमान भाई-भाई। लाख लोग सिर पटकें कि हिंदी-चीनी भाई-भाई। यह असंभव है। क्योंकि भाई-भाई तब तक नहीं हो सकते, जब तक भीतर के अंतःकरण भिन्न-भिन्न हैं। तब तक सब ऊपरी होगा, थोथा, दिखावा। मौके पर सब कलई खुल जाएगी और दुश्मन बाहर निकल आएंगे। ऊपर से होगा, क्योंकि वह जो भीतर अंतःकरण बैठा है, वह भेद निर्मित कर रहा है। अर्जुन कहता है, मेरे अंतःकरण के कारण मैं भयभीत हो रहा हूं, आपके कारण नहीं। और ठीक कह रहा है। यह उसका निरीक्षण बिल्कुल उचित है। अंतःकरण ने आज तक उसके यही जाना है कि परमात्मा सौम्य है, सुंदर है, प्रीतिकर है, आनंदपूर्ण है, सच्चिदानंद है, आनंदघन है। अब तक उसने यही जाना है। मृत्यु भी परमात्मा है, यह उसने न सुना है, न जाना है।
इसलिए बचपन से बना हुआ अंतःकरण परमात्मा की एक प्रतिमा लिए है, वह प्रतिमा खंडित हो रही है। इसलिए वह व्यथित है। और न केवल वह कहता है, मैं व्यथित हूं, सारे लोक व्यथित हैं। यह रूप बहुत घबड़ाने वाला है।
और हे भगवन्! आपके विकराल जाड़ों वाले और प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित मुखों को देखकर दिशाओं को नहीं जानता हूं और सुख को भी प्राप्त नहीं होता हूं।
दिशा-भ्रांति हो गई है। अब मुझे पता नहीं कि उत्तर कहां है, दक्षिण कहां है, पूरब कहां है! वह यह कह रहा है कि अब मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है, मेरा सिर घूम रहा है। दिशाएं पहचान में नहीं आतीं कि क्या क्या है! यह तुम्हारा रूप देखकर दिशाएं भ्रांत हो गईं, मेरे पथ खो गए। मेरा मार्ग धुएं से भर गया। और जरा भी सुख को प्राप्त नहीं होता हूं। यह जो आपको देख रहा हूं--आप भगवान हैं! वह कह रहा है, आप भगवान हैं, आप परमेश्वर हैं, फिर भी

आपका यह रूप देखकर जरा भी सुख को प्राप्त नहीं होता हूं। जरा भी मुझे, जरा भी सहारा सुख के लिए आपकी इस स्थिति को देखकर नहीं मिलता है।
इसलिए हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होवें।
वह यह कह रहा है कि आप कृपा करें और यह रूप तिरोहित कर लें। और वह जो प्रसन्नवदन, वह जो मुस्कुराता हुआ आनंदित रूप था, आप उसमें वापस लौट आएं। आदमी का मन आखिर तक, अंत तक भी परमात्मा पर अपने को थोपना चाहता है। अंत तक भी, परमात्मा जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकार कर लेने की तैयारी नहीं होती। अंत तक!
साधक की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि वह परमात्मा पर भी अपने को थोपता है। और तब तक सिद्ध नहीं हो पाता, जब तक परमात्मा जैसा भी हो, उसको वैसा ही स्वीकार कर लेने की स्थिति न आ जाए।
अभी अर्जुन थोड़ा-सा विनम्र निवेदन कर रहा है कि प्रसन्न हो जाएं। यह हटा लें। यह प्रज्वलित, प्रलयंकारी रूप अलग कर लें। होंठों पर थोड़ी मुस्कुराहट ले आएं। आपके चेहरे पर हंसी को देखकर, आनंद को देखकर मुझे सुख होगा।
इसे ख्याल में लें।
जब तक आप सोचते हैं कि परमात्मा ऐसा होना चाहिए, जब तक आपकी परमात्मा
की कोई धारणा है, तब तक आप परमात्मा को नहीं जान पाएंगे। तब तक जो भी आप जानेंगे, वह परदा होगा। अगर आपको परमात्मा को ही जानना है, तो आपको अपनी सारी धारणा अलग कर देनी होगी; हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सब हटा देने होंगे। आपको निपट परमात्मा को शून्य की तरह जानने के लिए खड़ा हो जाना पड़ेगा। अपना अंतःकरण, अपने भरोसे, विश्वास, अपनी दृष्टि, सब हटा देनी होगी। और जैसा भी हो--विकराल हो, मृत्यु हो, अमृत हो, जो भी हो--उसके लिए राजी हो जाना होगा।
जब भी कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में राजी हो जाता है, तो परमात्मा के दोनों रूप खो जाते हैं--विकराल भी, सौम्य भी। और जिस दिन ये दोनों रूप खोते हैं, उस अनुभव को हमने ब्रह्म-अनुभव कहा है। जब तक ये रूप रहते हैं, तब तक हमने इसे ईश्वर-अनुभव कहा है। इस फर्क को थोड़ा समझ लें।
यह ईश्वर का अनुभव है, जब तक ये दो रूप हमें दिखाई पड़ते हैं। जिस दिन
ये दो रूप भी नहीं दिखाई पड़ते--दोनों में चुनाव नहीं रह जाता, उसी दिन दिखाई नहीं पड़ते--उस दिन जो रह जाता है, वह ब्रह्म है।
भारत ने बड़ी साहस की बात कही है। भारत ने ईश्वर को भी माया का हिस्सा कहा है। यह सुनकर आपको कठिनाई होगी। भारत कहता है, ईश्वर भी माया का हिस्सा है। ईश्वर-अनुभव भी माया का हिस्सा है। ब्रह्मानुभव! क्योंकि ईश्वर में भी रूप हैं। और ईश्वर के साथ भी हमारा लगाव है, अच्छा-बुरा; ऐसा हो, ऐसा न हो।
भक्त भगवान को निर्मित करते रहते हैं, सजाते रहते हैं। मंदिरों में
ही नहीं; मंदिरों में तो वे सजाते ही हैं, क्योंकि भगवान बिल्कुल अवश है, वहां वह कुछ कर नहीं सकता; जो करना चाहो, करो। लेकिन यह अर्जुन ठेठ भगवान के सामने खड़े होकर भी कह रहा है कि ऐसा अच्छा होगा, मुझे सुख मिलेगा। आप जरा प्रसन्न हो जाएं। यह रूप हटा लें, यह तिरोहित कर लें।
ये क्या कह रहा है? ये यह कह रहा है कि अभी भी केंद्र मैं हूं। मेरा सुख! आप ऐसे हों, जिसमें मुझे सुख मिले। मैं ऐसा हो जाऊं, जिसमें आप आनंदित हों, ऐसा नहीं। मैं आनंदित होऊं, ऐसे आप हो जाएं। यह आखिरी राग है। और तब तक शेष रहता है, जब तक हम माया की आखिरी परिधि ईश्वर को पार नहीं कर लेते। शंकर ने कहा है कि ईश्वर माया का हिस्सा है। इसलिए ईश्वर के अनुभव को
भी अंतिम अनुभव मत समझ लेना। यहीं कठिनाई खड़ी हो जाती है। ईसाइयत, इस्लाम, शंकर की बात से व्यथित हो जाते हैं। हिंदू, साधारण चित्त भी व्यथित हो जाता है। क्योंकि ईश्वर हमारे लिए लगता है आखिरी। भारत की मनीषा के लिए ईश्वर भी आखिरी नहीं है। आखिरी तो वह स्थिति है, जहां कहने को इतना भी शेष नहीं रह जाता कि आनंद है, कि दुख है, कि मृत्यु है, कि जीवन है। सब भेद गिर जाते हैं। सारी रेखाएं खो जाती हैं।

कहता है अर्जुन, हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होवें। और मैं देखता हूं कि
वे सब ही धृतराष्ट्र के पुत्र, राजाओं के समुदाय आपमें प्रवेश करते हैं। और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धाओं के सहित सबके सब वेगयुक्त हुए आपके विकराल जाड़ों वाले भयानक मुखों में प्रवेश करते हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरों सहित आपके दांतों के बीच में लगे हुए दिखते हैं।
और हे विश्वमूर्ते! जैसे नदियों के बहुत-से जल के प्रवाह समुद्र के ही सम्मुख दौड़ते हैं और समुद्र में प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे शूरवीर मनुष्यों के समुदाय भी आपके प्रज्वलित हुए मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। वह कहता है कि आपके दांतों में दबे हैं। और न केवल दबे हैं, उनके सिर चूर्ण हो गए हैं। जैसे आपने उनका भोजन कर लिया हो और वे आपकी दाढ़ों में चिपककर रह गए हैं। और वे महाबलशाली लोग, जिनके लिए कल्पना भी नहीं कर सकता अर्जुन! भीष्म पितामह, इतना बलशाली व्यक्ति, वह भी जाकर चूर्ण हो जाएगा मृत्यु के मुख में पड़कर! द्रोणाचार्य, उसका गुरु, वह भी इस तरह असहाय होकर दांतों में चिपट जाएगा! कर्ण, उस विपरीत शत्रुओं के वर्ग का सबसे शूरवीर पुरुष, वह भी ऐसा दयनीय हो जाएगा! और न केवल धृतराष्ट्र के पुत्र, मेरे पक्ष के लोग भी आपके दांतों में दबे मर रहे हैं, चूर्ण हुए जा रहे हैं। न केवल इतना ही, बल्कि जो बाहर हैं, वे तेजी से दौड़ रहे हैं आपके मुंह की तरफ, जैसे नदियां सागर की तरफ दौड़ती हैं।
बहुत भय लगता है, अर्जुन कहता है, बहुत व्यथा होती है। हंसें। बंद कर लें यह मुंह।
हम सभी दौड़ रहे हैं मृत्यु की तरफ, जैसे नदियां दौड़ती हैं। और अगर यह सारा जगत, यह सारा जगत अगर शरीर है, तो निश्चित ही इस जगत के मुंह में कहीं दांतों के नीचे दबकर हम सब चूर्ण हो जाएंगे। और फिर कोई भी हो--भीष्म हों, कि द्रोणाचार्य, कि कर्ण, या कि अर्जुन--कोई भी हो, वे सभी चूर्ण हो जाएंगे। और जो नहीं चूर्ण हो रहे हैं, वे भी दौड़ रहे हैं। बड़ा श्रम उठा रहे हैं, भागे जा रहे हैं, कुछ उपलब्धि के लिए!
हम सबको यह ख्याल है कि जिंदगी में कुछ पा लेंगे। और आखिर में सिवाय मौत के हम कुछ भी नहीं पाएंगे। लगता है, न मालूम क्या पा लेंगे। और पाते सिर्फ मौत हैं, और कुछ भी नहीं पाते। लाख करे उपाय आदमी, कब्र के सिवाय कहीं और पहुंचता नहीं। कोई और दूसरी मंजिल नहीं। और कितना ही इकट्ठा करे, कितनी ही उपलब्धियां, कितना ही सोचे, विचारे, योजना बनाए, आखिर में पहुंच जाता है मृत्यु के मुंह में--बिना योजना बनाए। बचता है, तो भी नहीं बच पाता। शायद बचने की कोशिश में भी वहीं पहुंच जाता है।
अर्जुन को इस जीवन की पूरी की पूरी मृत्यु में दौड़ती हुई धारा दिखाई
पड़ रही है। वह भयभीत न होता, अगर उसे ऐसा दिखाई पड़ता कि मृत्यु कहीं और घटित हो रही है, परमात्मा के मुंह में नहीं, तो इतना भयभीत न होता। कम से कम परमात्मा से सहारा मिल सकता था, मृत्यु के विपरीत भी। अगर मृत्यु कहीं और घट रही थी, अगर कोई शैतान, कोई यमदूत मृत्यु को ला रहा था, तो परमात्मा बचाने वाला हो सकता था। अब तो बचने का भी कोई उपाय नहीं है। क्योंकि यह परमात्मा का ही मुंह है, जहां मृत्यु घटित हो रही है। इससे भयभीत हुआ है। अगर आपको भी यह पता चल जाए कि आपके दुख का कारण परमात्मा ही है, आपकी मृत्यु का कारण परमात्मा ही है, तो भय और भी ज्यादा संतप्त कर देगा। हम कई तरकीबें निकालते हैं। हम कहते हैं कि दुख का कारण दुष्ट आत्माएं हैं। दुख का कारण शैतान, इबलीस, बीलझेबब--हमने शैतान के हजार नाम खोज रखे हैं--वह है दुख का कारण। दुख का कारण पिछले जन्मों के कर्म हैं। यह मृत्यु कोई परमात्मा के कारण नहीं हो रही, यह तो शरीर क्षणभंगुर है, इसके कारण हो रही है। हम हजार तरकीबें खोजते हैं। परमात्मा को बचाते हैं। उससे हमारे मन में एक तो राहत रहती है कि सब कुछ हो... ।
सुना है मैंने, कबीर ने एक पद लिखा कि चलती चक्की देखकर मैं बहुत घबड़ा गया। क्योंकि उस चलती चक्की के बीच जो भी दाने दब गए, वे चूर्ण हो गए। और कबीर ने कहा है कि मुझे ऐसा लगा, यह सारा जगत एक चलती चक्की है, जिसके भीतर सब पिसे जा रहे हैं।

कबीर का लड़का था कमाल। कमाल अक्सर कबीर के विपरीत बातें कहा करता था। अक्सर बेटे बाप के विपरीत कहा करते हैं। और बेटा भी क्या, जो बाप के विपरीत थोड़ा-बहुत न हो! उसमें नमक ही नहीं है, उसमें जान ही नहीं है। और कबीर का बेटा था, इसलिए जानदार तो था ही। कबीर ने ही उसको नाम दिया था कमाल। वह कबीर के खिलाफ पद लिखा करता था।
तो कबीर ने जब यह लिखा कि दो चक्की के बीच मैंने किसी को बचता हुआ न देखा, तो कमाल ने एक पद लिखा कि ठीक है यह तो, लेकिन जिसने बीच की डंडी का सहारा पकड़ लिया चक्की में, वह बच गया। वह डंडी हमारे लिए परमात्मा है। उसमें भी वही मतलब था उसका कि जिसने राम का सहारा ले लिया, वह बच गया। बाकी सब पिस गए।
अब इस बेचारे ने, अगर अर्जुन ने कमाल की पंक्ति पढ़ी होती--नहीं पढ़ी होगी, क्योंकि कमाल बहुत बाद में हुआ--तो यह घबड़ा जाएगा कि यह मामला क्या है! तुम्हारे ही मुंह में! हम तो सोचते थे, तुम बीच की डंडी हो, जिसके सहारे बचेंगे। तुम्हारे मुंह में ही मौत घट रही है! तो जिन्हें अपना समझा था, जिनके सहारे सोचते थे, मौत से लड़ लेंगे, और जिनके सहारे सदा सोचा था कि कोई भय नहीं है, बचाने वाला है, उसके ही मुंह में मौत घट रही है। रक्षक जिसे समझा था, वह भक्षक दिखाई पड़ गया हो, तो हम सोच सकते हैं कि अर्जुन की घबड़ाहट कैसी रही होगी।
वह घबड़ाहट स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक इसलिए है कि हमने परमात्मा
का जो रूप बनाया है, वह अपनी मनोनुकूल आकांक्षा से बनाया है। वह परमात्मा का रूप नहीं, हमारी वासनाओं का रूप है।
मृत्यु भी परमात्मा में ही घटित होती है और जीवन भी उसमें ही घटित होता है। वही मां भी है, वही मृत्यु भी। इसलिए काली की प्रतिमा बड़ी सार्थक है। उससे ही सब निकलता है और उसमें ही सब लीन होता है। सागर में सारी नदियां गिरती हैं और सारी नदियां सागर से ही पैदा होती हैं। सारी नदियां सागर से पैदा होती हैं। फिर चढ़ती हैं नदियां धूप की किरणों के सहारे बादलों में, फिर बादलों के सहारे पहाड़ों पर, फिर गंगोत्रियों में गिरती हैं और फिर सागर की तरफ दौड़ती हैं।
जो नदी सागर में अपने को गिरते देखती होगी, वह घबड़ा जाती होगी। मिट रही है, मौत है सागर। लेकिन उसे पता नहीं कि यह सागर मौत भी है, गर्भ भी। क्योंकि कल फिर उठेगी ताजी होकर, नई होकर, युवा होकर। बूढ़ी हो गई, बासी हो गई, जमीन ने गंदी कर दी। सब गंदगी सागर छांट देगा। फिर ताजा, फिर शुद्ध, फिर वाष्पीभूत होगी। फिर गंगोत्री, फिर यात्रा शुरू होगी। यह वर्तुल है। सागर नदी की मृत्यु भी है, जन्म भी। परमात्मा सृष्टि भी है, प्रलय भी वहां होना भी है और न होना भी।
इससे अर्जुन भयभीत हो गया है। और वह कहता है, वापस लौटा लो; इस रूप को
मत दिखाओ। यह रूप प्रीतिकर नहीं है। इससे मुझे जरा भी सुख नहीं मिलता है।
फिर भी वह कहे चला जा रहा है, भगवान, परमेश्वर, महादेव, देवों के देव!
थोड़ा हम उसका द्वंद्व, उसकी दुविधा समझें। वह अनुभव तो कर रहा है कि
यह भी परमात्मा का ही रूप है, लेकिन मन मानना नहीं चाहता कि यह भी रूप है। वह कहता है, हटा लो, प्रसन्न हो जाओ। यह रूप नहीं देखा जाता है।
यह अर्जुन की ही दुविधा नहीं है, जो व्यक्ति भी परम अनुभव के निकट पहुंचते हैं और ईश्वर-अनुभूति को उपलब्ध होते हैं, उनकी यही दुविधा है। सुना है मैंने, मुसलमान फकीर जुन्नैद एक रात प्रार्थना किया कि हे प्रभु, मैं जानना चाहता हूं कि इस मेरे गांव में सबसे पवित्र आदमी कौन है, सबसे ज्यादा पुण्यात्मा, ताकि मैं उसके चरणों में सिर रखूं, उसका आशीर्वाद पाऊं। रात उसने स्वप्न देखा। बहुत घबड़ा गया। नींद टूट गई उसकी। स्वप्न में उसे दिखाई पड़ा कि परमात्मा कहता है, वह जो तेरे पड़ोस में रहता है आदमी, वही सबसे ज्यादा पवित्र और पुण्यात्मा है!
वह एक बिल्कुल साधारण आदमी था। जुन्नैद ने कभी उस पर नजर भी नहीं डाली थी। पांव छूना तो दूर, वह इसके पांव छूता था। वह जो बगल में रहता था, वह इसके पांव छूता था। जब भी यह निकलता था, तो इसको नमस्कार करता था। इसको वह महात्मा मानता था। वह तो बहुत जुन्नैद मुश्किल में पड़ गया कि इसके मैं

पांव छुऊं! और यह भी क्या मजाक रही! हमने पूछा, पवित्रतम आदमी? इससे तो हम ही ज्यादा पवित्र हैं। यह खुद हमारे पैर छूता है!
अक्सर जिनके लोग पैर छूते हैं, वे सोचते हैं कि हम ज्यादा पवित्र हैं, क्योंकि लोग हमारे पैर छूते हैं। और हो यह सकता है कि जो पैर छूता है, वह ज्यादा पवित्र भी हो सकता है। क्योंकि पैर छूना भी एक गहरी पवित्रता है। वह भी एक बड़े निष्कलुष हृदय का लक्षण है।
पर जब आदेश हो गया परमात्मा का, तो मुसीबत हो या कुछ भी हो। जुन्नैद उठा। अपने को सम्हाला। संयम से साधा। निकला घर के बाहर कि पैर तो छूने ही पड़ेंगे, अब आदेश परमात्मा का हुआ है। देखा कि कोई नहीं है, अकेला बैठा है वह आदमी। जल्दी जाकर उसने पैर छू लिए, कि कोई देख न ले गांव में कि इसके तू पैर छू रहा है जुन्नैद! पूरा गांव उसको महात्मा मानता था।
उस आदमी ने कहा कि मेरे पैर छू रहे हैं! कुछ भूल-चूक हो गई। कुछ मुझसे नाराज हैं? ऐसा मैंने क्या पाप किया, उस आदमी ने कहा, कि आप और मेरे पैर छुएं! नहीं-नहीं, वापस ले लें। आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया, उस आदमी ने कहा, जुन्नैद, तुम जैसा साधु पुरुष मुझ जैसे असाधु के पैर छुए! जुन्नैद कुछ बोला नहीं। उसने कहा, बताना ठीक भी नहीं कि मामला क्या है। क्योंकि झंझट में पड़ गए परमात्मा से पूछकर। एक दफे छू लिया, बात खत्म हो गई।
रात उसने फिर परमात्मा को कहा कि एक मर्जी और पूरी कर दे। एक तूने पूरी कर दी। अब मैं जानना चाहता हूं, इस गांव में सबसे बुरा, सबसे शैतान, सबसे पापी आदमी कौन है? उसका भी तो पता चल जाए!
परमात्मा फिर रात सपने में प्रकट हुआ और उसने कहा कि वही आदमी जो तेरे पड़ोस में रहता है। और कल सुबह उठकर तू उसके पैर छू आना।
अब तो और मुसीबत हो गई। कल तो पैर छूना आसान भी था, कम से कम परमात्मा
ने कहा था। भरोसा तो नहीं आ रहा था। फिर भी परमात्मा ने कहा था कि आदमी पवित्र है, तब पैर छूना... । तब भी मुसीबत थी। और अब यह आदमी सबसे बड़ा पापी है, परमात्मा कहता है। और अब इसके पैर छूना! और फिर जुन्नैद ने कहा, यह क्या खेल है मालिक! यही आदमी पवित्र और यही आदमी पापी! यह एक ही आदमी है। तो उसे आवाज सुनाई पड़ी कि जिस दिन तू दोनों को एक साथ देख पाएगा, बस उसी दिन तू मुझे देख पाएगा, उसके पहले नहीं।
वह जो बुरा है, वह जो भला है; वह जो शुभ है, वह जो अशुभ है; प्रीतिकर, अप्रीतिकर; जिस दिन हम दोनों को एक में देख पाते हैं, उसी दिन, उसी दिन हम पार होते हैं द्वंद्व के।
अर्जुन की तकलीफ यही है कि वह द्वंद्व के पार होने के किनारे खड़ा है।
वह कृष्ण से कहता है, लौटा लो। वापस हो जाओ। वही रूप ठीक था, तुम जैसे थे वही। हंसो, मुस्कुराओ। यह मृत्यु वाला रूप मुझे जरा भी सुख नहीं देता है।
हालांकि उसे अनुभव हो रहा है कि यह भी उनका ही रूप है।
अगर वह आज राजी हो जाए इस रूप के लिए, तो द्वंद्व के इसी क्षण पार हो जाए। लेकिन अर्जुन इस क्षण तक राजी नहीं हो सका। और वापस द्वंद्व में गिरने के आग्रह कर रहा है।
आज इतना ही। शेष हम कल... ।
पांच मिनट रुकें। कीर्तन करें, फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
छठवां प्रवचन

पूरब और पश्चिमः नियति और पुरुषार्थ

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि
समृद्धवेगाः।। 29।।
लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः
प्रतपन्ति विष्णो।। 30।।
आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव
प्रवृत्तिम्।। 31।।
अथवा जैसे पतंग मोह के वश होकर नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी अपने नाश के लिए आपके मुखों में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश करते हैं।
और आप उन संपूर्ण लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रसन करते हुए सब
ओर से चाट रहे हैं। हे विष्णो, आपका उग्र प्रकाश संपूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपायमान करता है।
हे भगवन्, कृपा करके मेरे प्रति कहिए कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं! हे देवों में श्रेष्ठ, आपको नमस्कार होवे। आप प्रसन्न होइए। आदिस्वरूप, आपको मैं तत्व से जानना चाहता हूं, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि महाभारत युद्ध शुरू होने के पहले ही अर्जुन देखता है कि परमात्मा के विराट स्वरूप के अंदर सब योद्धा मृत्यु- मुख में प्रविष्ट हो रहे हैं। तो क्या यह महायुद्ध उस क्षण एक अपरिहार्य नियति थी, जिसे संपन्न करने के लिए सब मजबूर थे?

जीवन को देखने के दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण है कि भविष्य अनिश्चित है और परिवर्तनीय भी। मनुष्य चाहे तो भविष्य वैसा ही हो सकता है, जैसा वह चाहता है। भविष्य पूर्व से निश्चित नहीं है, मनुष्य के हाथ में है कि भविष्य को निर्मित करे।
यह जो दृष्टि है, इसका अपरिहार्य परिणाम मनुष्य की अशांति होता है। यदि भविष्य अनिश्चित है, तो अशांत होना होगा, बेचैन होना होगा, असंतुष्ट होना होगा। उसे बदलने की कोशिश करनी होगी। यदि बदलाहट हो सकी, तो भी तृप्ति नहीं मिलेगी, क्योंकि भविष्य का कोई अंत नहीं है। एक बदलाहट पचास और बदलाहट की आकांक्षा पैदा करेगी। अगर बदलाहट न हो सकी, तो बहुत गहन पीड़ा, उदासी, विपदा घेर लेगी। मन संतप्त हो जाएगा, हारा हुआ, पराजित हो जाएगा। दोनों ही स्थितियों में, भविष्य अगर अनिश्चित है और आदमी के हाथ में है, तो आदमी परेशान होता है।
पश्चिम ने यह दृष्टिकोण लिया है। पश्चिम मानकर चलता है कि अतीत तो निश्चित है, हो गया। वर्तमान हो रहा है। आधा निश्चित है, आधा अनिश्चित है।
भविष्य पूरा अनिश्चित है, अभी बिल्कुल नहीं हुआ है।
अगर भविष्य अनिश्चित है, तो मुझे आज वर्तमान के क्षण को भविष्य के लिए अर्पित करना होगा। आज ही मुझे काम में लग जाना होगा कि भविष्य को मैं अपनी आकांक्षा के अनुकूल बना लूं।
इसके दो परिणाम होंगे। एक तो वर्तमान का क्षण मेरे हाथ से चूक जाएगा। उसे मैं भविष्य के लिए समर्पित कर दूंगा। मैं आज नहीं जी सकूंगा। मैं आशा रखूंगा कि कल जब मेरे मनोनुकूल स्थिति बनेगी, तब मैं जीऊंगा। आज को मैं भविष्य के लिए कुर्बान कर दूंगा, पहली बात। और कल की चिंता मुझे आज सताएगी, खींचेगी, परेशान करेगी।

पश्चिम ने इसका प्रयोग किया है और परिणाम में पश्चिम को गहन अशांति उपलब्ध हुई है। लेकिन भौतिक अर्थों में पश्चिम अपने जीवन को नियत करने में बहुत दूर तक सफल भी हुआ है। यह बड़ी उलझन की बात है, इसे थोड़ा गौर से समझ लेना चाहिए।
पश्चिम अपनी भौतिक स्थिति को मनुष्य के मन के अनुकूल बनाने में बहुत दूर तक सफल हो गया है। तो एक अर्थ में तो उनकी जो धारणा है, सत्य सिद्ध हो गई है कि वर्तमान को अगर हम भविष्य के लिए अर्पित करें, तो भविष्य को मन के अनुकूल कुछ दूरी तक निश्चित ही निर्मित किया जा सकता है। इस मामले में पश्चिम की सफलता साफ है। बीमारी कम हुई है। लोगों की उम्र बढ़ी है। भौतिक समृद्धि बढ़ी है। साधन बढ़े हैं। वैभव की सुविधा बढ़ी है। उन्होंने अपने मन के अनुकूल जो कल भविष्य था और आज वर्तमान हो गया है, उसे निर्मित करने में सफलता पाई है।
लेकिन दूसरे अर्थों में वे हार गए हैं। यह सब हो गया है और आदमी इतना अशांत हो गया है, इतना भीतर विक्षिप्त हो गया है कि अब विचार होने लगा है कि इतनी कीमत पर, आदमी को खोकर, इतनी व्यवस्था करनी क्या उचित है? और अगर आदमी की भीतर की सारी शांति और आनंद ही खो जाता हो, तो हम बाहर कितनी समृद्धि अर्जित कर लेते हैं, उसका प्रयोजन क्या है? क्योंकि अंततः सारी समृद्धि मनुष्य के लिए है; मनुष्य समृद्धि के लिए नहीं है। और अंततः बाहर जो भी हम बना लेते हैं, वह आदमी के लिए है कि उसके काम आ सके। लेकिन अगर आदमी ही खो जाता हो बनाने में, तो यह बहुत महंगा सौदा है और मूढ़तापूर्ण भी। पश्चिम इस बात में सफल हुआ है कि भविष्य को आदमी प्रभावित कर सकता है। लेकिन प्रभावित करने में आदमी नष्ट हो जाता है।
पूरब ने दूसरा दृष्टिकोण लिया है। पूरब कहता है, भविष्य को आदमी निश्चित निर्मित कर ही नहीं सकता। भविष्य नियति है, अपरिहार्य है। जो होना होगा, वह होगा।
इसका दुष्परिणाम हुआ कि बाहर के जगत में हम गरीब हैं, दीन हैं, दुखी हैं, बीमार हैं, परेशान हैं। हम कोई भौतिक समृद्धि अर्जित नहीं कर पाए। यह परिणाम हुआ। क्योंकि जब भविष्य को हमने छोड़ ही दिया नियति पर, तो हम भविष्य के लिए कोई श्रम करें, यह बात ही समाप्त हो गई।
लेकिन इसका एक गहरा लाभ भी हुआ। और वह लाभ यह हुआ कि भविष्य की चिंता
से जो विक्षिप्तता मनुष्य में पैदा हो सकती थी, उससे हम बच सके। और कुछ लोग सब कुछ भविष्य पर छोड़कर परम आनंद के क्षण को भी उपलब्ध हो सके।
अभी पश्चिम को बुद्ध पैदा करने में देर है। अभी पश्चिम को कृष्ण पैदा करने में देर है। अभी पश्चिम चेतना की उन ऊंचाइयों को छूने में असमर्थ है, जो हमने छुईं। उसका आधार सिर्फ एक था कि हमने कहा, भविष्य तो निश्चित है, जो होना है, होगा। इसका परिणाम हुआ।
अगर भविष्य में जो होना है, होगा, तो मुझे भविष्य के लिए चिंतित और परेशान होने का कोई भी कारण नहीं है। दूसरा परिणाम यह हुआ कि अगर भविष्य निश्चित है, तो वर्तमान को भविष्य पर कुर्बान करना नासमझी है। तो मैं अभी जीऊं, यहीं। इस क्षण को पूरा जीऊं।
मजे की बात यह है कि वर्तमान ही हमारे हाथ में होता है, भविष्य कभी हमारे हाथ में होता नहीं। आज ही हमारे हाथ में होता है, कल हमारे हाथ में होता नहीं। और अगर मन की ऐसी आदत हो जाए कि आज को कल पर कुर्बान कर दूं, तो कल जब आएगा, वह भी आज होकर आएगा। उसे भी मैं आने वाले कल पर कुर्बान करूंगा। वह कल भी जब आएगा, तब आज होकर आएगा। उसे भी मैं आने वाले कल पर कुर्बान करूंगा। तो जीवन निरंतर पोस्टपोन होता रहेगा, जी नहीं सकेंगे हम कभी।
कल तो कभी आता नहीं है, आता तो सदा आज है। मिलता तो सदा वर्तमान है, भविष्य तो कभी मिलता नहीं। आपकी भविष्य से कोई मुलाकात हुई है? कभी नहीं हुई है। कभी होगी भी नहीं। मुलाकात तो वर्तमान से होती है। लेकिन अगर मन की यह आदत हो जाए कि वर्तमान को भविष्य के लिए नष्ट करना है, तो यह आदत आपका पीछा करेगी। मरते दम तक आप जी नहीं पाएंगे, सिर्फ जीने का सपना देखेंगे, सोचेंगे कि जीऊंगा।

तो पश्चिम ने जीवन के साधन जुटा लिए, लेकिन जो जी सकता है, वह अनुपस्थित हो गया। हम जीवन के साधन न जुटा पाए, लेकिन जो जी सकता है, वह उपस्थित रहा है। और दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती हैं। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती हैं।
सत्य क्या है? दोनों ही सत्य हैं। भविष्य निर्मित किया जा सकता है, अगर मनुष्य अपने को कीमत में चुकाने को राजी है। भाग्य बदला जा सकता है, अगर आप अपने को मिटाने को राजी हैं। अगर आप अपने को बचाने की इच्छा रखते हैं, और अपने होने का आनंद लेना चाहते हैं, तो फिर भविष्य नहीं बदला जा सकता। फिर भविष्य नियति है।
पश्चिम का विचारशील व्यक्तित्व आज अनुभव कर रहा है कि शायद पूरब के लोग जो कहते रहे हैं, वही ठीक है। और यह उचित भी है। अनुभव के बाद ही यह बात अनुभव की जा सकती है। अब पश्चिम को अनुभव हो रहा है कि उन्होंने जो पाया, वह ठीक। लेकिन जो गंवाया!
हम भी परेशान हैं, क्योंकि हमने भी कुछ गंवाया है। चुनाव जब भी करना होता है, तो कुछ गंवाना भी होता है। हम भी आज परेशान हैं। इसलिए एक बड़ी अनूठी स्थिति पैदा हो गई है।
पूरब पश्चिम की तरफ हाथ फैलाए खड़ा है, भिक्षापात्र लिए; और पश्चिम पूरब की तरफ भिक्षापात्र लिए खड़ा है। पश्चिम पूछ रहा है पूरब से मन की शांति के उपाय--ध्यान, योग, तंत्र, जप, पूजा, प्रार्थना क्या है? और पूरब पश्चिम से मांग रहा है--रोटी, कपड़ा, अन्न, भोजन, मकान, इंजीनियर, डाक्टर। दोनों भिक्षा मांग रहे हैं! यह होने वाला था।
लेकिन पश्चिम का अनुभव नया है अभी। पश्चिम पहली दफा समृद्ध हुआ है।
और समृद्ध होकर उसने भीतर की दरिद्रता जानी है। और समृद्ध होकर उसे पता चला कि कितनी ही समृद्धि हो जाए, भीतर की दरिद्रता उससे घटती नहीं, बल्कि बढ़ जाती है।
पूरब बहुत बार समृद्ध हो चुका है। पूरब बहुत बार यह अनुभव कर चुका है
कि सब मिल जाए, जब तक आत्मा न मिले, तब तक सब मिलना व्यर्थ है। आज जहां पश्चिम खड़ा है, पूरब बहुत बार इस जगह खड़ा हो चुका है। पूरब की कथा बहुत पुरानी है।
गीता जिस क्षण घटित हुई होगी, उस क्षण पूरब करीब-करीब उसी विज्ञान के शिखर पर था, जहां आज पश्चिम है। क्योंकि महाभारत में जिन अस्त्र-शस्त्रों की चर्चा है, उन अस्त्र-शस्त्रों को हम आज पहली दफे समझ सकते हैं कि वे क्या रहे होंगे। क्योंकि हमें आज हाइड्रोजन और एटम बम की प्रक्रिया पता है। आज हम पहली दफा समझ सकते हैं कि महाभारत में जो घटित हुआ होगा, वह क्या था, और आदमी ने क्या खोज लिया था। आज हमने फिर पश्चिम में उसे खोज लिया है। उस समृद्धि के शिखर पर खड़े होकर महाभारत घटित हुआ।
जब भी समृद्धि बहुत बढ़ जाती है, तो युद्ध अनिवार्य हो जाता है। उसके कारण हैं। क्योंकि जितना ही आदमी बाहर समृद्ध हो जाता है, भीतर दरिद्र हो जाता है। और जितना ही भीतर दरिद्र हो जाता है, घृणा, वैमनस्य, क्रोध उसमें बढ़ जाते हैं। प्रेम, करुणा, दया, ममता कम हो जाती है। प्रेम और करुणा और दया और ममता तो भीतर की समृद्धि के लक्षण हैं। जब भीतर आदमी दरिद्र होता है, तो हिंसा बढ़ जाती है। जब भी आदमी भीतर दरिद्र होगा, तो हिंसा बढ़ेगी। हिंसा का अंतिम परिणाम युद्ध होगा, विनाश होगा।
समृद्धि शिखर पर थी, आदमी भीतर दरिद्र था। वह आदमी भीतर जो दरिद्र था,
वह हिंसा के लिए तत्पर था।
आज पश्चिम पूरी तरह उसी हालत में है, जहां महाभारत के समय पूरब था। और कुछ आश्चर्य न होगा कि पश्चिम को तीसरे महायुद्ध से न बचाया जा सके। कोई आश्चर्य न होगा। बहुत संभावना तो यह है कि पश्चिम विनाश को करके ही रुकेगा। आदमी भीतर दरिद्र है, दीन है, हिंसा, क्रोध से भरा है, विनाश से भरा है।
अभी रोम में एक पागल आदमी ने, कुछ दिन पहले, आपने खबर पढ़ी होगी, जीसस की
एक मूर्ति को जाकर तोड़ दिया। अब जीसस की मूर्ति को तोड़ देने का कोई भी प्रयोजन नहीं है। और जब उस आदमी से पूछा गया कि क्यों उसने तोड़ दिया? तो

उसने कहा कि मुझे तोड़ने में बहुत आनंद आया। अगर मेरी जान भी ले ली जाए अब इसके बदले में, तो मुझे कोई चिंता नहीं है।
जीसस की मूर्ति तोड़ने में! मूर्ति तोड़ने में क्या आनंद मिला होगा? लेकिन उस मूर्ति को लाखों लोग प्रेम करते थे। वह अपने तरह की अनूठी मूर्ति थी। उस मूर्ति को तोड़कर उसने करोड़ों लोगों के हृदय को तोड़ने की कोशिश की है। यह कहता है, इसे आनंद मिला!
अगर आज हम पश्चिम में देखें, तो विनाश का आनंद बढ़ता जाता है। विनाश रुचिकर, आनंदपूर्ण मालूम हो रहा है। सैकड़ों हत्याएं हो रही हैं, सिर्फ इसलिए कि हत्या करने में लोगों को मजा आ रहा है। सैकड़ों लोग आत्मघात कर रहे हैं, सिर्फ इसलिए कि मिटाने का एक रस; एक थ्रिल तोड़ देने की, समाप्त कर देने की।
सार्त्र ने कहा है, आदमी जन्म होने के लिए तो स्वतंत्र नहीं है, लेकिन अपने को मार डालने के लिए तो स्वतंत्र है।
तो जब कोई अपने को मारता है, तो स्वतंत्रता का अनुभव होता है। पैदा आप
हो गए, आपसे कोई पूछता नहीं। आपकी कोई राय नहीं ली जाती। आप पाते हैं कि आप पैदा हो गए, बिना आपकी मर्जी के। यह परतंत्रता है निश्चित ही। स्वतंत्रता कहां है फिर?
सार्त्र को मानने वाला वर्ग कहता है कि स्युसाइड, आत्महत्या में ही स्वतंत्रता मालूम पड़ती है; बाकी कुछ भी करो, परतंत्रता मालूम पड़ती है। एक चीज कम से कम आदमी कर सकता है; अपने को मिटा सकता है। और मिटाकर अनुभव कर सकता है कि मैं स्वतंत्र हूं।
अगर विध्वंस स्वतंत्रता बन जाए और आत्मघात स्वतंत्रता बन जाए, तो सोचना पड़ेगा कि आदमी भीतर गहन रूप से रुग्ण और बीमार हो गया है, विक्षिप्त और पागल हो गया है।
आज वियतनाम में जो हो रहा है, बिल्कुल अकारण है। कोई भी कारण नहीं सूझता कि वियतनाम में क्यों आदमी की हत्या जारी रखी जाए। न अमेरिका को विजय से कोई प्रयोजन है कि वियतनाम की विजय कोई अमेरिका में चार चांद जोड़ देगी। वियतनाम का कोई मूल्य भी नहीं है अमेरिका के लिए। पर यह युद्ध क्यों जारी है?
विध्वंस अपने आप में सुख दे रहा है। अकारण! अब कोई आवश्यकता नहीं कि कोई कारण हो।
जैसे एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है। हम उससे पूछें, क्यों बना रहा है?
तो वह कहता है, बनाने में आनंद है। एक चित्रकार चित्र बनाता है। हम उससे पूछें, क्यों? तो वह कहता है, निर्मित करने में आनंद है। एक मां अपने बेटे को बड़ा होते देखकर खुश होती है। हम पूछें, क्यों? तो सृजन, एक जन्म विकसित हो रहा है उसके हाथों; वह आनंदित है।
ठीक ऐसे ही विध्वंस का भी आनंद है, रुग्ण, बीमार। और जब आदमी की आत्मा दरिद्र होती है, तो विध्वंस का आनंद होता है।
महाभारत ऐसे ही घटित नहीं हुआ। वह घटित हुआ समृद्धि के शिखर पर, जब भीतर आत्मा बिल्कुल दरिद्र हो गई। और जब हिंसा में रस रह गया। और तोड़ने- फोड़ने, मिटा डालने की उत्सुकता इतनी बढ़ गई कि दुर्योधन राजी न हुआ एक इंच जमीन देने को। चाहे सारी मनुष्य-जाति नष्ट हो जाए, इसके लिए राजी था। लेकिन एक इंच जमीन देने को राजी नहीं था!
यह जो भाव-दशा है, यह भाव-दशा पश्चिम में फिर खड़ी हो गई है। और पश्चिम किसी भी दिन फूट सकता है, विस्फोट हो सकता है। और सारी तैयारी है विस्फोट की। किसी भी क्षण जरा-सी चिनगारी, और फिर पश्चिम को मृत्यु के मुंह से रोकना मुश्किल हो जाएगा।
ठीक ऐसी ही घड़ी भारत में महाभारत के समय आ गई थी। और ऐसी घड़ी पूरब में बहुत बार आ चुकी है। यह दुनिया नई नहीं है और हम जमीन पर पहली दफा सभ्य नहीं हुए हैं।
अभी जितनी नवीनतम खोजें हैं पुरातत्व की, वे आदमी के इतिहास को पीछे हटाती जाती हैं। अभी सिर्फ पचास साल पहले पश्चिम के इतिहासविद मानते थे

कि जीसस से चार हजार साल पहले दुनिया का निर्माण हुआ। तो कुल इतिहास छः हजार साल का था।
हमें मानने में सदा कठिनाई रही कि छः हजार साल का कुल इतिहास! हमारे पास किताबें हैं, वेद हैं, जो पश्चिम भी स्वीकार करता है कि कम से कम छः हजार साल पुराने तो हैं ही। हमारे लेखे से तो वे कोई नब्बे हजार साल पुराने हैं। और हमारा लेखा रोज-रोज सही होता जा रहा है। संभव है कि वे और भी पुराने हों।
मोहनजोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई ने बताया है कि सात हजार साल पुरानी सभ्यता थी। लेकिन ये अब पुरानी बातें हो गईं। अभी जो नवीन खोजें हैं, वे सभ्यता को--सभ्यता को--पचास हजार साल पीछे ले जाती हैं। और अभी नवीनतम कुछ ऐसी खोजें हाथ में लगी हैं, जिन्होंने कि सारे इतिहास की धारणा को अस्तव्यस्त कर दिया।
आस्ट्रेलिया में कोई सत्तर हजार साल पुराने पत्थर पर खुदे हुए दो चित्र मिले हैं। वे चित्र ऐसे हैं, जैसे कि जब हमारा अंतरिक्ष यात्री चंद्र पर पहुंचता है, तो जिस तरह के कपड़े पहने होता है, जिस तरह की ड्रेस पहने होता है, जिस तरह का नकाब लगाए होता है। सत्तर हजार साल पुराना पत्थर पर खुदा हुआ चित्र अंतरिक्ष यात्री का! जब तक हमारे पास अंतरिक्ष यात्री नहीं था, तब तक तो हम समझ भी नहीं सकते थे कि यह चित्र किस चीज का है। अब हम समझ सकते हैं।
अब बड़ी कठिनाई है। यह सत्तर हजार साल पुराना चित्र जिन लोगों ने बनाया, उनके पास अंतरिक्ष यात्री जैसी कोई चीज रही होगी। अन्यथा इसके बनाने का कोई उपाय नहीं है। अगर सत्तर हजार साल पहले आदमी अंतरिक्ष की यात्रा कर सकता था, तो हमें सोचना होगा कि हम पहली दफा चांद पर पहुंच गए हैं, इस भ्रम में न पड़ें। और हमें यह भी सोचना होगा कि हम पहली दफा इन सारी समृद्धियों को पा लिए हैं, इस भ्रम में न पड़ें।
तिब्बत के एक पर्वत पर सत्तर रिकार्ड मिले हैं पत्थर के। जैसा ग्रामोफोन रिकार्ड होता है, वे पत्थर के हैं। और ठीक ग्रामोफोन रिकार्ड पर जैसे ग्रूव्स होते हैं, वैसे ग्रूव्स उन पत्थर पर हैं। बीच में छेद है, जैसा कि ग्रामोफोन रिकार्ड पर होता है। और अभी वैज्ञानिक उन पर अनुसंधान करते हैं, तो वे कहते हैं, उन पत्थर के रिकार्ड से ठीक वैसी ही विद्युत की तरंगें उठती हैं, जैसे ग्रामोफोन के रिकार्ड से उठती हैं। फिर एकाध नहीं, सत्तर! और अंदाजन कोई बीस हजार से चालीस हजार साल पुराने।
तो क्या कभी आज से बीस हजार साल पहले किसी सभ्यता ने कोई उपाय खोज लिया था पत्थर पर भी रिकार्ड करने का! और अगर खोज लिया हो, तो फिर हमें भ्रम छोड़ देना चाहिए कि हम पहली बार सभ्य हुए हैं।
पूरब बहुत बार सभ्य हो चुका है और पूरब बहुत बार अनुभव ले चुका है समृद्धि का। और हर समृद्धि के अनुभव के बाद उसे पता चला है कि आदमी चीजें तो कमा लेता है, अपने को खो देता है। मकान तो बन जाता है, धन इकट्ठा हो जाता है; आत्मा विनष्ट हो जाती है। इस कारण पूरब ने यह विकल्प चुना कि भविष्य की चिंता छोड़ी जा सके, तो ही आत्मा निर्मित होती है।
भविष्य का तनाव ही पीड़ा है। और भविष्य की चिंता छोड़ने का एक ही उपाय है, और वह उपाय यह है कि अगर आप इस बात को मानने को राजी हो जाएं कि भविष्य अपरिहार्य है; नियत है; जो होना है, होगा। जो होना है, होगा, अगर इसके लिए राजी हो जाएं, तो फिर आपको करने को कुछ नहीं बचता है। और जब करने को ही नहीं बचता, तो बेचैन होने का कोई कारण नहीं है।
करने को कुछ है, तो फिर बेचैनी है। करने के पहले भी बेचैनी रहेगी, और करने के बाद भी बेचैनी रहेगी। क्योंकि करने के बाद भी लगेगा कि अगर जरा ऐसा कर लिया होता, तो परिणाम दूसरा हो सकता था। अगर मैंने ऐसा कर लिया होता, तो ऐसा हो सकता था। तो आप पीछे भी परेशान रहेंगे कि अगर ऐसा न करके जरा-सा फर्क किया होता, तो आज जिंदगी दूसरी होती। और भविष्य के लिए भी परेशान रहेंगे कि मैं क्या करूं?
फिर एक आखिरी परिणाम, जब आप असफल हो जाते हैं... । और आदमी कुछ ऐसा है कि
वह सफल कभी होता ही नहीं! इसे थोड़ा समझ लें।

आदमी के मन का ढांचा ऐसा है कि वह सदा अंत में असफल ही होता है। उसका कारण यह है कि जितने आप सफल हो जाते हैं, वह तो व्यर्थ हो जाती है बात; और नए लक्ष्य निर्मित हो जाते हैं। एक आदमी को दस हजार रुपए कमाने हैं, वह कमा लेता है। कोई दस हजार रुपए कमा लेना मुश्किल मामला नहीं है। कमा लेता है। सफल हो गया।
लेकिन उसे पता ही नहीं कि सफलता की खुशी वह कभी नहीं मना पाता। क्योंकि जब तक दस हजार इकट्ठे कर पाता है, तब तक उसकी आकांक्षा लाख की हो जाती है। जब दस हजार पा लेता है, तो खुशी से नाचता नहीं है, केवल दुख से पीड़ित होता है कि अभी यात्रा और बाकी है; उसे लाख कमाने हैं! ऐसा भी नहीं है कि लाख न कमा ले। वह भी हो जाएगा। लेकिन जिस मन ने दस हजार से लाख पर यात्रा पहुंचा दी थी, वही मन लाख से दस लाख पर यात्रा पहुंचा देगा।
हर आदमी असफल मरता है। कोई आदमी सफल नहीं मर सकता। क्योंकि जो भी आप
पा लेते हैं, आपकी वासना उससे आगे चली जाती है। मरते वक्त भी आपकी वासना अधूरी ही रहेगी; वह पूरी नहीं हो सकती।
एंड्रू कार्नेगी, अमेरिका का सबसे बड़ा धनपति मरा, तो अपने पीछे दस अरब रुपए छोड़ गया। लेकिन मरने के दो दिन पहले का उसका वक्तव्य है कि मैं एक असफल आदमी हूं, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपए छोड़ने के थे, केवल दस छोड़ जा रहा हूं। दस अरब रुपए!
आप कितना पा लेंगे, इससे कोई संबंध नहीं है। आपका मन उससे ज्यादा की मांग करेगा। मन सदा आपसे आगे चला जाता है। आप होते हैं वर्तमान में, मन भविष्य में चला जाता है।
यह नियति की धारणा भविष्य का दरवाजा बंद करने की है। मैं कुछ कर ही नहीं सकता हूं, तो भविष्य में यात्रा करने का कोई उपाय नहीं है। दस रुपए मिलें, कि दस लाख, कि कुछ भी न मिले, मैं भिखारी रह जाऊं; जो भी होगा, वह होगा। उसमें मेरा कोई हाथ नहीं है। ऐसा आदमी कभी असफल नहीं होता है।
इसे थोड़ा समझ लें।
ऐसे आदमी को आप असफल नहीं कर सकते, क्योंकि असफलता को भी वह स्वीकार
कर लेगा कि यही होना था। आप सफल नहीं हो सकते। आप सफलता को भी असफलता कर देंगे, क्योंकि जो हो गया, वह कुछ भी नहीं है, जो होना चाहिए, वह सदा आगे है। नियति की धारणा वाला आदमी असफल नहीं किया जा सकता। आप कुछ भी करें, वह सफल है। और जो सफल है, वह शांत है; और जो असफल है, वह अशांत है। और जो सफल है, वह प्रसन्न है; और जो असफल है, वह उदास है। और जो सफल है... । और एक घटना घटती है। जब आप असफल होते चले जाते हैं अपनी वासना की यात्रा में, तो सिवाय आपके और कोई जिम्मेवार नहीं होता असफलता के लिए। आप ही जिम्मेवार होते हैं। तो गहन पीड़ा आदमी पर टूट पड़ती है।
अकेला आदमी इस बड़ी दुनिया में लड़ता है, इस बड़ी दुनिया से। टूट जाता है। उसके कंधे पर बोझ पहाड़ों का इकट्ठा हो जाता है। और आखिर में सिवाय स्वयं की निंदा करने के और कोई उपाय नहीं है।
लेकिन नियति की धारणा वाला व्यक्ति अपने कंधे पर कोई भार लेता ही नहीं। वह कहता है, परमात्मा की मर्जी। जीतूं तो वह, हारूं तो वह, सदा जिम्मेवार वही है। वह जिम्मेवार नहीं है। और जो रिस्पांसिबिलिटी, जो दायित्व का बोध और भार है व्यक्ति के ऊपर, वह उसके ऊपर नहीं है।
आप उस आदमी की तरह हैं, जो ट्रेन में चल रहा हो और अपना सब सामान सिर पर रखे हो। और नियतिवादी वह आदमी है, जो सब सामान ट्रेन में रख दिया है और खुद भी सामान के ऊपर बैठा हुआ है। वह कहता है, ट्रेन चला रही है, मैं क्यों बोझ ढोऊं! आपको पक्का नहीं कि ट्रेन चला रही है। आप सोच रहे हैं, आप ही चला रहे हैं सारा; और जरा ही भूल-चूक हुई, तो आप ही जिम्मेवार हैं; कुछ भी गड़बड़ हुई, तो आप ही फंस जाएंगे!
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कौन-सी धारणा ठीक है; ख्याल रखना। मैं सिर्फ
यह कह रहा हूं, ये दो धारणाएं हैं। इसे थोड़ा ख्याल में ले लेना।
आमतौर से लोग जल्दी करते हैं कि कौन-सी धारणा ठीक है। अगर नियतिवाद ठीक है, तो हम मान लें। और अगर ठीक नहीं है, तो हम कोशिश में लग जाएं।

मैं यह कुछ भी नहीं कह रहा हूं। मेरा वक्तव्य बहुत अलग है। मैं ये दोनों धारणाएं आपको समझा रहा हूं। इसमें से फिर जो आपको चुननी हो, आप चुन सकते हैं। फिर उसका परिणाम आपके साथ होगा।
ये दोनों धारणाएं ठीक हैं। अगर आपको अशांत होना है, विक्षिप्त होना है, धन इकट्ठा करना है, महल बनाने हैं, तो आप नियति को कभी मत मानें। आपको शांत होना है, आनंदित होना है, और झोपड़ा भी महल जैसा मालूम पड़े, ऐसी आपकी कामना हो; और ना-कुछ हो पास में, तो भी आप सम्राट मालूम पड़ें, ऐसी आपकी कामना हो; तो नियति आपके लिए चुनना उचित है।
ये दोनों रास्ते हैं। एक पागलखाने में ले जाता है। ले ही जाएगा। इसलिए अब सारी दुनिया एक बड़ा पागलखाना है। अब किसी को पागलखाना वगैरह भेजना ठीक नहीं है। अब तो जो ठीक हों, उनके चारों तरफ घेरा लगाकर उनको बचाने का उपाय करना चाहिए। क्योंकि बाकी तो बड़ा पागलखाना है।
अगर आज आप मनसविद से पूछें, तो वह कहता है, चार में से तीन आदमियों का मस्तिष्क गड़बड़ है। चार में से तीन का! तो जमीन करीब-करीब तीन चौथाई पागलखाना हो गई है। और जिस एक को भी वह कह रहा है कि इसका ठीक है, कितनी देर ये तीन उसका ठीक रहने देंगे! ये तीन उसके पीछे पड़े हैं, उसको भी डांवाडोल कर रहे हैं।
आपको पता नहीं चलता कि आपका मस्तिष्क विक्षिप्त है, क्योंकि आपके चारों तरफ पागलों की भीड़ है। उन्हीं जैसा आपके पास मस्तिष्क है, इसलिए कोई अड़चन नहीं होती। लेकिन आप जरा बैठकर एक कागज पर अपने दिमाग में जो चलता है, उसे लिखें, और फिर किसी को दिखाएं। यह मत बताएं कि मैंने लिखा है। बता भी नहीं सकेंगे कि मैंने लिखा है। ऐसा बताएं कि किसी का पत्र आया है।
वह आदमी कहेगा, किसी पागल ने लिखा है! तब आपको पता चल जाएगा, कि आपके दिमाग में जो चलता है, ईमानदारी से दस मिनट एक कोने में बैठ जाएं और लिख डालें, जो भी चलता हो। उसमें आप कुछ फर्क मत करना। जो भी चल रहा हो। दस मिनट का एक टुकड़ा लिख लें और अपने निकटतम मित्रों को बताएं, जो आपको प्रेम करते हैं। और उनसे पूछें कि यह किसी का पत्र आया है, थोड़ा समझ लें। आप एक आदमी न खोज सकेंगे पूरी जमीन पर, जो आपसे कहे कि यह किसी ऐसे आदमी ने लिखा है, जिसका दिमाग ठीक है। जो भी मिलेंगे, वे कहेंगे, किसी पागल ने लिखा है। क्या चल रहा है आपके भीतर? कोई संगति है वहां? एक अराजकता है। आप जैसे
एक भीड़ हैं भीतर, जिसमें कुछ भी हो रहा है। किसी तरह अपने को सम्हाले हुए हैं, बाहर प्रकट नहीं होने देते। वह भी मौके-बेमौके निकल ही जाता है। कोई जरा जोर से धक्का मार दे, वह भीतर जो चल रहा है, बाहर निकल आता है। कोई जरा गाली दे दे, तो उसने आपके भीतर छेद कर दिया, उसमें से आपके भीतर का पागलपन बहकर बाहर निकल आएगा।
क्रोध क्या है? अस्थायी पागलपन है। जरा देर के लिए आप पागल हो गए। फिर सम्हाल लेते हैं अपने को! बड़ी अच्छी बात है कि फिर सम्हाल लेते हैं। लेकिन वह घड़ीभर में जो प्रकट होता है, उस पर आपने कभी ख्याल किया है कि क्या होता है?
यह जो विक्षिप्तता है, यह इस दृष्टि का परिणाम है कि जो कुछ किया जा सकता है, वह हम कर सकते हैं। हम जिंदगी को बदल सकते हैं। हम जिंदगी जैसी बनाना चाहते हैं, वैसी जिंदगी बन सकती है; कोई नियति नहीं है। भविष्य मुक्त है और हमारे हाथों में है।
मैं नहीं कहता, यह गलत है। यह हो सकता है। पश्चिम ने करके देखा है। हमने भी बहुत बार करके देखा है। लेकिन इसका परिणाम यह होता है कि भविष्य तो हमारे हाथ में थोड़ा-बहुत चलने लगता है, लेकिन हम बिल्कुल पटरी से उतर जाते हैं।
भविष्य को चलाने में आदमी अस्तव्यस्त हो जाता है। यह बहुत बार के अनुभव के बाद भारत ने यह निर्णय लिया कि भविष्य को छोड़ दो परमात्मा पर। वह अपरिहार्य है, इनएविटेबल है। जो होना है, वह होकर रहेगा। आप बीच में कुछ भी नहीं हैं।
इसका चुकता परिणाम यह होता है कि आप तत्क्षण मुक्त हो गए भविष्य से।
अब कोई चिंता न रही। सुख आएगा कि दुख आएगा, अच्छा होगा कि बुरा होगा,

बचेंगे कि नहीं बचेंगे, अब आपके हाथ में कोई बात नहीं है। आप वर्तमान में जी सकते हैं--अभी और यहीं।
बहुत-से शिक्षक हैं, कृष्णमूर्ति हैं, जो निरंतर कहते हैं, वर्तमान में जीयो। लेकिन आदमी वर्तमान में जी नहीं सकता, जब तक उसको यह ख्याल है कि भविष्य बनाया जा सकता है। कैसे जी सकता है? इसलिए शिक्षा ठीक होकर भी अधूरी है। कैसे जी सकता है, जब तक उसे पता है कि मैं चाहूं तो कल और कुछ हो सकता है! और अगर मैं कुछ न करूं तो कुछ और होगा! कल बदला जा सकता है, यह मेरे आज को तो परेशान करेगा ही। अगर कल बदला ही नहीं जा सकता... ।
कल ऐसा ही है, जैसे कोई उपन्यास मैं पढ़ रहा हूं, जिसकी कथा लिखी ही हुई है, या कोई फिल्म देख रहा हूं। तो मैं हाल में बैठकर कुछ भी करूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। फिल्म में जो घटना घटने वाली है, वह घटकर ही रहेगी। फिल्म तो सिर्फ उघड़ रही है। सब नियत है। वह अगर शादी होनी है पात्र की, तो हो जाएगी। पीछे बैंड-बाजा बजेगा, और शहनाई बज जाएगी। नहीं होनी है, तो नहीं होगी। और जो भी होना है, वह एक अर्थ में हो चुका है। फिल्म से सिर्फ मुझे दिखाई पड़ना है।
अब मैं हाल में बैठकर करवटें बदल रहा हूं कि कोई उपाय करूं कि यह जो अभिनेता प्रेम कर रहा है, इसकी शादी हो जाए। तो मैं नाहक परेशान हो रहा हूं। कोई परेशान नहीं होता। लेकिन कुछ लोग परेशान फिल्म में भी होते हैं। कम से कम थोड़ी देर को तो भूल ही जाते हैं। फिल्म में भी सोचने लगते हैं कि ऐसा हो जाए, तो अच्छा। ऐसा न हो, तो बेचैनी होती है।
भारतीय दृष्टि यह है--और गीता की दृष्टि है यह--और बहुत लंबे अनुभव के बाद इस नतीजे पर भारत पहुंचा कि भविष्य सिर्फ अनफोल्ड हो रहा है। मैं यह नहीं कह रहा हूं, यह सही है या गलत है। यह कुछ भी नहीं कह रहा हूं। यह सिर्फ एक डिवाइस है, एक उपाय है।
एक उपाय है, अगर आपको वस्तुएं इकट्ठी करनी हैं, तो भविष्य नियत नहीं है, मानकर चलें। आत्मा खो जाएगी। एक उपाय है कि भविष्य नियत है, चिंता न करें। आप अपनी आत्मा को सरलता से उपलब्ध कर सकेंगे।
इसलिए अर्जुन ने जो देखा कृष्ण में... अभी योद्धा मरे नहीं हैं। समझिए। अभी योद्धा मरे नहीं हैं। अभी भीष्म पितामह जीवित हैं। अभी द्रोणाचार्य पूरी तरह जीवित हैं। अभी हारे भी नहीं हैं, मिटे भी नहीं हैं। अभी तो युद्ध शुरू नहीं हुआ है। और उसने देखा, कृष्ण के दांतों में दबे हुए, पिसते हुए, मरते हुए, समाप्त होते हुए। जैसे फिल्म में उसने आगे झांक लिया, या उपन्यास के कुछ पन्ने एकदम से उलट दिए, और पीछे का निष्कर्ष पढ़ लिया। भविष्य उसे दिखाई पड़ा।
कृष्ण उसे यही कहना चाहते थे कि तू नाहक परेशान हो रहा है कि ऐसा करूं,
कि वैसा करूं। जो होना है, वह होगा। तेरी परेशानी अकारण है, असंगत है। कृष्ण उसे यही समझा रहे थे कि जो होना है, वह हो ही चुका है। तू चिंता छोड़। कहानी लिखी जा चुकी है। नाटक का अंत तय हो चुका है। तू सिर्फ पात्र है। तू नाटक का रचयिता नहीं है। तू लेखक नहीं है। यह जो कथा है, यह तुझसे लिखी जाने वाली नहीं है। तू लिखने वाला नहीं है। लिखने वाला लिख चुका है। नतीजा तय हो चुका है। तुझे सिर्फ काम पूरा करना है।
यह ऐसे ही है, जैसे रामायण खेल रहे हैं लोग। रामलीला कर रहे हैं। अब उसमें कोई उपाय नहीं है।
एक गांव में ऐसा हो गया। एक गांव में एक ही आदमी हर बार रावण बनता था। रावण जैसा था शक्ल-सूरत से। तो हर बार जब रामलीला होती, वह रावण बनता। और गांव की एक सुंदर स्त्री थी, वह सीता बनती। ऐसा हुआ, धीरे-धीरे साथ-साथ काम करते-करते सच में ही रावण को सीता से प्रेम हो गया, उस लड़की से। और उसे बड़ा कष्ट होता था कि हर बार प्रेम तो उसका है और हर बार शादी राम के साथ होती है। कष्ट स्वाभाविक था।
एक बार ऐसा हुआ कि जब स्वयंवर रचा और रावण भी बैठा। तो कथा ऐसी है कि रावण के दूत आए और उन्होंने खबर दी कि लंका में आग लगी है, इसलिए वह लंका चला गया। उसी बीच राम ने धनुष तोड़ दिया; शादी हो गई। दूत आकर चिल्लाने लगे कि रावण तेरे राज्य में आग लगी है। रावण ने कहा, लगी रहने दे। इस बार तो

शादी करके ही जाऊंगा। बहुत बार देख चुका; लगी रहने दे। और उसने आव देखा न ताव, उठाकर शिवजी का धनुष तोड़कर दो टुकड़े कर दिए।
जनक घबड़ा गए। सीता भी घबड़ाई। राम भी परेशान हुए। वशिष्ठ भी सोचने लगे होंगे कि अब क्या हो? यह सारी कथा खराब हो गई! वह तो जनक कुशल आदमी था, गांव का बूढ़ा आदमी था। उसने कहा, भृत्यो, यह तुम मेरे बच्चों के खेलने का धनुष उठा लाए! शिवजी का धनुष लाओ। परदा गिराकर, रावण को अलग करके, दूसरा आदमी रावण बनाना पड़ा। तो वह सारी कथा... !
कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि वह जो होने वाला है, वह तेरे हाथ में नहीं है; तू नाहक चिंता ले रहा है। वह लिखा जा चुका है, वह हो चुका है, वह नियत है, वह बंधा हुआ है। तू निश्चिंत हो जा। और तू अपना पार्ट ऐसे कर ले, जैसे एक अभिनय में कर रहा है।
हो जाती है भूल। यह अभिनेता भूल गया कि मैं सिर्फ अभिनय कर रहा हूं।
मुसीबत में पड़ा। मुसीबत में पड़ा।
ऐसा मैंने सुना कि अभी निक्सन के इलेक्शन में हुआ अमेरिका में।
निक्सन के चुनाव में एक अभिनेता हालीवुड का, निक्सन का प्रचार करने गया।
एक मंच पर खड़े होकर व्याख्यान दे रहा है। अभिनेता का व्याख्यान। वह तैयार करके लाया था। जैसा फिल्म में देता है, वैसा सब तैयार था। सब--हाथ कब हिलाना, सिर कब हिलाना--सब तैयार था। जोश से भाषण दे रहा था।
तभी एक आदमी, जो निक्सन के खिलाफ है, बीच में खड़े होकर गड़बड़ करने लगा।
इस अभिनेता को भी जोश आ गया। इसने कहा, क्या गड़बड़ करते हो! अगर हो ताकत, तो आ जाओ। दोनों कूद पड़े। कुश्तमकुश्ती हो गई। उस आदमी ने दो-चार हाथ जोर से जड़ दिए। अभिनेता ने कहा, अरे! यह क्या? तुमको अभिनय नहीं करना आता! इस तरह कहीं मारा जाता है!
वह असली हाथ मारने लगा। यह बेचारा अभिनेता था। यह भूल ही गया कि यह सभा असली है और यहां मार-पीट असली हो जाएगी। वह समझा कि कोई फिल्म का दृश्य है, और यह सब हो रहा है। ठीक है।
आदमी के भूलने की संभावना है। हम भी, जो असली नहीं हैं, उसे असली मान लेते हैं। जो असली है, उसे नकली मान लेते हैं। तब जीवन में बड़ी असुविधा हो जाती है। तब जीवन में बड़ी उलझन हो जाती है।
कृष्ण का सूत्र ही यही है अर्जुन को कि तू बीच में मत आ। जो हो रहा है, उसे हो जाने दे; तू बाधा मत डाल। और तू निर्णय मत ले कि मैं क्या करूं। तुझसे कोई पूछ ही नहीं रहा है कि तू क्या करे। तू निमित्त मात्र है। अगर तू पूरा नहीं करेगा, तो कोई और पूरा करेगा।
एक बहुत अदभुत घटना मुझे याद आती है। बंगाल में एक बहुत अनूठे संन्यासी हुए, युक्तेश्वर गिरि। वे योगानंद के गुरु थे। योगानंद ने पश्चिम में फिर बहुत ख्याति पाई। गिरि अदभुत आदमी थे। ऐसा हुआ एक दिन कि गिरि का एक शिष्य गांव में गया। किसी शैतान आदमी ने उसको परेशान किया, पत्थर मारा, मार-पीट भी कर दी। वह यह सोचकर कि मैं संन्यासी हूं, क्या उत्तर देना, चुपचाप वापस लौट आया। और फिर उसने सोचा कि जो होने वाला है, वह हुआ होगा, मैं क्यों अकारण बीच में आऊं। तो वह अपने को सम्हाल लिया। सिर पर चोट आ गई थी। खून भी थोड़ा निकल आया था। खरोंच भी लग गई थी। लेकिन यह मानकर कि जो होना है, होगा। जो होना था, वह हो गया है। वह भूल ही गया।
जब वह वापस लौटा आश्रम कहीं से भिक्षा मांगकर, तो वह भूल ही चुका था कि रास्ते में क्या हुआ। गिरि ने देखा कि उसके चेहरे पर चोट है, तो उन्होंने पूछा, यह चोट कहां लगी? तो वह एकदम से ख्याल ही नहीं आया उसे कि क्या हुआ। फिर उसे ख्याल आया। उसने कहा कि आपने अच्छी याद दिलाई। रास्ते में एक आदमी ने मुझे मारा। तो गिरि ने पूछा, लेकिन तू भूल गया इतनी जल्दी! तो उसने कहा कि मैंने सोचा कि जो होना था, वह हो गया। और जो होना ही था, वह हो गया, अब उसको याद भी क्या रखना!
अतीत भी निश्चिंतता से भर जाता है, भविष्य भी। लेकिन एक और बड़ी बात इस घटना में है आगे।
गिरि ने उसको कहा, लेकिन तूने अपने को रोका तो नहीं था? जब वह तुझे मार रहा था, तूने क्या किया? तो उसने कहा कि एक क्षण तो मुझे ख्याल आया था कि एक

मैं भी लगा दूं। फिर मैंने अपने को रोका कि जो हो रहा है, होने दो। तो गिरि ने कहा कि फिर तूने ठीक नहीं किया। फिर तूने थोड़ा रोका। जो हो रहा था, वह पूरा नहीं होने दिया। तूने थोड़ी बाधा डाली। उस आदमी के कर्म में तूने बाधा डाली, गिरि ने कहा।
उसने कहा, मैंने बाधा डाली! मैंने उसको मारा नहीं, और तो मैंने कुछ किया नहीं। क्या आप कहते हैं, मुझे मारना था! गिरि ने कहा, मैं यह कुछ नहीं कहता। मैं यह कहता हूं, जो होना था, वह होने देना था। और तू वापस जा, क्योंकि तू तो निमित्त था। कोई और उसको मार रहा होगा।
और बड़े मजे की बात है कि वह संन्यासी वापस गया। वह आदमी बाजार में पिट रहा था। लौटकर वह गिरि के पैरों में पड़ गया। और उसने कहा कि यह क्या मामला है? गिरि ने कहा कि जो तू नहीं कर पाया, वह कोई और कर रहा है। तू क्या सोचता है, तेरे बिना नाटक बंद हो जाएगा! तू निमित्त था।
बड़ी अजीब बात है यह। और सामान्य नीति के नियमों के बड़े पार चली जाती है।
कृष्ण अर्जुन को यही समझा रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि जो होता है, तू होने दे। तू मत कह कि ऐसा करूं, वैसा करूं, संन्यासी हो जाऊं, छोड़ जाऊं।
कृष्ण उसको रोक नहीं रहे हैं संन्यास लेने से। क्योंकि अगर संन्यास होना ही होगा, तो कोई नहीं रोक सकता, वह हो जाएगा।
इस बात को ठीक से समझ लें।
अगर संन्यास ही घटित होने को हो अर्जुन के लिए, तो कृष्ण रोकने वाले नहीं हैं। वे सिर्फ इतना कह रहे हैं कि तू चेष्टा करके कुछ मत कर। तू निश्चेष्ट भाव से, निमित्त मात्र हो जा और जो होता है, वह हो जाने दे। अगर युद्ध हो, तो ठीक। और अगर तू भाग जाए और संन्यास ले ले, तो वह भी ठीक। तू बीच में मत आ, तू स्रष्टा मत बन। तू केवल निमित्त हो।
ऐसी अगर दृष्टि हो, तो आप कैसे अशांत हो सकेंगे? ऐसी अगर दृष्टि हो, तो कौन आपको परेशान कर सकेगा? ऐसी अगर दृष्टि हो, तो चिंता फिर आपके लिए नहीं है। और जो परेशान नहीं, चिंतित नहीं, बेचैन नहीं, उसके भीतर वे शांति के वर्तुल बन जाते हैं, जिनसे भीतर की यात्रा होती है और परम स्रोत तक पहुंचना हो जाता है।

एक और प्रश्न: परम सत्ता को परम चैतन्य और परम प्रज्ञा कहा गया है। लेकिन उसमें घटित सृजन, फिर विनाश, फिर सृजन, फिर विनाश के वर्तुल को देखकर बड़ा अजीब-सा लगता है। क्या आप समझा सकते हैं कि इस वर्तुल के पीछे कोई कारण, कोई अर्थ, कोई मीनिंग, कोई सार्थकता है?

इसको थोड़ा ख्याल में लेना जरूरी होगा। क्योंकि गीता को समझना बहुत आसान हो जाएगा। न केवल गीता को, बल्कि भारत की पूरी खोज को समझना आसान हो जाएगा।
यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या है कारण इस सबका कि आदमी को जन्म दो, मृत्यु दो; सृष्टि बनाओ, प्रलय करो। इधर ब्रह्मा बनाएं, उधर विष्णु सम्हालें, वहां शंकर विनष्ट करें। यह सब क्या उपद्रव है? और इसका क्या प्रयोजन है? यह बनाने-मिटाने का जो वर्तुल है, अगर यह गाड़ी के चाक की तरह घूमता ही रहता है, तो यह जा कहां रही है गाड़ी? यह जो चाक घूम रहा है, यह कहां ले जा रहा है? इसकी निष्पत्ति क्या होगी? अंततः क्या है लक्ष्य इस सारे विराट आयोजन का? इसके पीछे क्या राज है? यह सवाल गहरा है और आदमी निरंतर पूछता रहा है कि क्या है प्रयोजन इस जीवन का? इस विराट आयोजन में निहित क्या है? क्यों यह सब हो रहा है?
इसके दो उत्तर हैं। और जो उत्तर भारत ने दिया है, वह बड़ा अदभुत है। एक उत्तर तो कोई प्रयोजन खोजना है। जैसे कुछ धर्म कहते हैं कि आत्मज्ञान को पाना इसका प्रयोजन है। जैसा जैन कहते हैं कि इस सारी यात्रा के पीछे, इस सारे भवजाल के पीछे आत्मसिद्धि, आत्मज्ञान, कैवल्य को पाना लक्ष्य है। या जैसे ईसाइयत कहती है कि परमात्मा का अनुभव, उसके राज्य में प्रवेश, किंगडम आफ गॉड, उसके साथ उसके सान्निध्य में रहना, उसकी खोज इसका प्रयोजन है।

लेकिन ये बातें बहुत गहरी जाती नहीं। क्योंकि पूछा जा सकता है कि अगर सिद्धि और आत्मज्ञान पाना ही इसका प्रयोजन है, तो इतनी बाधाएं खड़ी करने की क्या जरूरत है सिद्धि और आत्मज्ञान में? और आत्मा तो मिली ही हुई है। तो इतनी लंबी यात्रा, इतना कष्ट का जाल, इतना उपद्रव क्यों है? यह सीधा-सीधा हो जाए।
अगर कोई परमात्मा यही चाहता है कि हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं, तो
वह हमें आशीर्वाद दे दे और हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं; वह प्रसाद बांट दे, हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं। उसके चाहने से घटना घट जाएगी। यह इतना जाल किस लिए? जन्मों-जन्मों का इतना कष्ट, यह किस लिए? अगर यह परमात्मा ही कर रहा है, तो परमात्मा बहुत विक्षिप्त मालूम पड़ता है। यही काम करना है कि सभी लोग सिद्ध हो जाएं, तो वह सभी लोगों को सिद्ध इसी क्षण कर सकता है।
इसलिए जैनों ने परमात्मा को नहीं माना। क्योंकि अगर परमात्मा को मानते हैं, तो बड़ी कठिनाई खड़ी होगी। वह क्यों नहीं अभी तक लोगों को मुक्त कर देता है? तो जैनों ने कहा है कि संसार में कोई परमात्मा नहीं, जो तुम्हें मुक्त कर सके। तुम्हीं को मुक्त होना है।
मगर क्यों? यह अमुक्ति क्यों है? और आदमी अमुक्त क्यों हुआ? इसका कोई उत्तर जैनों के पास नहीं है। वे कहते हैं, अनादि है। मगर क्यों? वे कहते हैं कि मुक्त होना है और मुक्त होने की संभावना है, मुक्त लोग हो गए हैं। लेकिन आदमी की आत्मा बंधन में ही क्यों पड़ी? इसका कोई उत्तर नहीं है। वे कहते हैं, निगोद से पड़ी है, अनंत काल से पड़ी है। लेकिन क्यों पड़ी है? कितने ही काल से पड़ी हो, आदमी अमुक्त क्यों है? इसका कोई उत्तर नहीं है।
अगर ईश्वर के राज्य में पहुंचना ही लक्ष्य हो, तो ईश्वर ने हमें पटका क्यों है? वह हमें पहले से ही राज्य में बसा सकता था! अगर ईसाइयत कहती है कि चूंकि आदमी ने बगावत की ईश्वर के खिलाफ, अदम ने आज्ञा नहीं मानी और आदमी को संसार में भटकाना पड़ा। तो भी बड़ी हैरानी की बात लगती है कि अदम अवज्ञा कर सका, इसका मतलब यह है कि ईश्वर की ताकत अदम की ताकत से कम है। अदम बगावत कर सका, इसका मतलब यह होता है कि अदम जो है, वह ईश्वर से भी ज्यादा ताकत रखता है, बगावत कर सकता है, स्वतंत्र हो सकता है।
और बड़ी कठिनाई है कि अदम में यह बगावत का ख्याल किसने डाला? क्योंकि ईसाइयत कहती है कि सभी कुछ का निर्माता ईश्वर है, तो इस आदमी को यह बगावत का ख्याल किसने डाला? वे कहते हैं, शैतान ने। लेकिन शैतान को कौन बनाता है? बड़ी मुसीबत है। धर्मों की भी बड़ी मुसीबत है। जो उत्तर देते हैं, उससे
और मुसीबत में पड़ते हैं। शैतान को भी ईश्वर ने बनाया। इबलीस जो है, वह भी ईश्वर का बनाया हुआ है, और उसी ने इसको भड़काया!
तो ईश्वर को क्या इतना भी पता नहीं था कि इबलीस को मैं बनाऊंगा, तो यह आदमी को भड़काएगा! और आदमी भड़केगा, तो पतित होगा। पतित होगा, तो संसार में जाएगा। और फिर ईसा मसीह को भेजो; साधु-संन्यासियों को भेजो; अवतारों को भेजो, कि मुक्त हो जाओ। यह सब उपद्रव! क्या उसे पता नहीं था इतना भी? क्या भविष्य उसे भी अज्ञात है? अगर भविष्य अज्ञात है, तो वह भी आदमी जैसा अज्ञानी है। और अगर भविष्य उसे ज्ञात है, तो सारी जिम्मेवारी उसकी है। फिर यह उपद्रव क्यों?
नहीं। हिंदुओं के पास एक अनूठा उत्तर है, जो जमीन पर किसी ने भी नहीं खोजा। वह दूसरा उत्तर है। वे कहते हैं, इस जगत का कोई प्रयोजन नहीं है, यह लीला है।
इसे थोड़ा समझ लें।
वे कहते हैं, इसका कोई प्रयोजन नहीं है, यह सिर्फ खेल है--जस्ट ए प्ले।
यह बड़ा दूसरा उत्तर है। क्योंकि खेल में और काम में एक फर्क है। काम में प्रयोजन होता है, खेल में प्रयोजन नहीं होता।
आप सुबह मरीन ड्राइव से जा रहे हैं, घूमने। अगर कोई आपसे पूछे कि कहां
जा रहे हैं? तो आप कहते हैं, सिर्फ घूमने जा रहे हैं। आप कोई लक्ष्य नहीं बता सकते कि वहां जा रहे हैं। आपसे पूछें, आपका दिमाग खराब है! क्यों नाहक चल रहे हैं जब कहीं जाना ही नहीं है? तो आप कहते हैं, मैं घूम रहा हूं। इस

घूमने का क्या मतलब? जा कहां रहे हैं? आप कहेंगे, जा कहीं भी नहीं रहा हूं। बस, घूमने का आनंद ले रहा हूं। बस, यह जो पैरों का उठना, और यह हवा की टक्कर, और यह गहरी श्वास, और यह जो होने का मजा है, बस यह ले रहा हूं। मैं कहीं जा नहीं रहा हूं। यह कहीं जाने के लिए निकला भी नहीं हूं। सिर्फ आनंदित हो रहा हूं।
यह घूमना एक खेल है। इसकी कोई मंजिल नहीं, कोई प्रयोजन नहीं।
फिर उसी रास्ते से आप दोपहर दफ्तर जा रहे हैं। रास्ता वही है, पैर वही हैं, आप वही हैं, लेकिन सब कुछ बदल गया। अब आप कहीं जा रहे हैं। दफ्तर जा रहे हैं! कहीं पहुंचना है। कोई लक्ष्य है। यह काम है।
फर्क आप अनुभव कर लेंगे। सुबह आप उसी रास्ते पर उन्हीं पैरों से वही आदमी घूमता है, और घूमने में एक आनंद होता है। और वही आदमी थोड़ी देर बाद उसी रास्ते से उन्हीं पैरों से दफ्तर जाता है, और दफ्तर जाने में कोई भी आनंद नहीं होता। सिर्फ एक जबरदस्ती, एक बोझ, पूरा करना है। लक्ष्य है, उसे पूरा करना है।
सुबह इसी आदमी की पुलक दूसरी थी। इसकी आंखों की रौनक और थी; इसके चेहरे पर हंसी और थी। यही दफ्तर जब जा रहा है, तब वह सब रौनक खो गई, वह हंसी खो गई। रास्ता वही, आदमी वही, पैर वही, हवाएं वही, सब कुछ वही है। फर्क क्या पड़ गया है?
इस आदमी के मन में एक लक्ष्य है अब, लक्ष्य से तनाव पैदा होता है। सुबह कोई लक्ष्य नहीं था, बिना लक्ष्य के कोई तनाव नहीं होता। अब इस आदमी के मन में एक भविष्य है, कहीं पहुंचना है। भविष्य से तनाव पैदा होता है। सुबह कहीं पहुंचना नहीं था। चाहे बाएं गए, चाहे दाएं गए। चाहे इस तरफ गए, चाहे उस तरफ गए। चाहे यहां रुके, चाहे वहां रुके। कोई फर्क नहीं पड़ता था। कोई मंजिल न थी। चलना ही मंजिल थी।
खेल बच्चे खेलते हैं। क्या कर रहे हैं वे? हमें लगता भी है बड़ों को कभी-कभी, कि क्या बेकार के खेल में पड़े हो! हमें लगता है कि खेल में भी कोई कार, कोई काम होना चाहिए। बेकार है! हम तो अगर खेल भी खेलते हैं, बड़े अगर खेल भी खेलते हैं, तो खेल नहीं खेल पाते।
अगर वे ताश खेल रहे हैं, तो थोड़े-बहुत पैसे लगा लेंगे। क्योंकि पैसे लगाने से प्रयोजन आ जाता है। नहीं तो बेकार है। बेकार ताश फेंट रहे हैं, फेंक रहे हैं, उठा रहे हैं, क्या मतलब! कुछ दांव लगा लो, तो रस आ जाता है। क्यों? क्योंकि तब खेल नहीं रह जाता। काम हो जाता है। तब उसमें से कुछ मिलेगा। तब खेल के बाहर कोई चीज पाने के लिए है, तो काम हो गई। जुआ काम है, खेल नहीं है। खेल का मतलब ही इतना होता है कि बाहर कोई लक्ष्य नहीं है, अपने में ही रसपूर्ण है।
भारतीय गहरी खोज है कि परमात्मा के लिए सृष्टि कोई काम नहीं है, कोई परपज नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है, खेल है। इसलिए हमने इसे लीला कहा है। लीला जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। लीला जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। क्योंकि लीला का अर्थ यह होता है कि सारी सृष्टि एक निष्प्रयोजन खेल है। इसमें कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन परमात्मा आनंदित हो रहा है। बस। जैसे सागर में लहरें उठ रही हैं, वृक्षों में फूल लग रहे हैं, आकाश में तारे चल रहे हैं, सुबह सूरज उग रहा है, सांझ तारों से आकाश भर जाता है। यह सब उसके होने का आनंद है। वह आनंदित है।
यह होना, इसमें कुछ पाना नहीं है उसे, कि कल कोई सर्टिफिकेट उसे मिलेगा, कि खूब अच्छा चलाया नाटक। कि कोई उसकी पीठ थपथपाएगा, कि शाबाश! उसके अलावा कोई नहीं है। कि कोई ताली बजाएगा, अखबार में खबर छापेगा, कि बड़ी अच्छी व्यवस्था रही तुम्हारी! कोई नहीं है उसके अलावा, वह अकेला है। वह अकेला है।
कभी आपने अकेले ताश के पत्ते खेले हैं? अगर खेले हों, तो थोड़ी देर के लिए ईश्वर होने का मजा आ सकता है। कुछ लोग ट्रेन में खेलते रहते हैं अकेले। कोई नहीं होता, तो दोनों बाजियां चल देते हैं। फिर इस तरफ से जवाब देते हैं, फिर उस तरफ से जवाब देते हैं। उसमें भी पूरा मजा आ जाता है हार-जीत का।

लीला का अर्थ है, वही है इस तरफ, वही है उस तरफ; दोनों बाजियां उसकी। हारेगा भी, तो भी वही; जीतेगा, तो भी वही। फिर भी मजा ले रहा है। हाइड एंड सीक, खुद को छिपा रहा है और खुद ही खोज रहा है। कोई प्रयोजन नहीं है।
हमें बहुत घबड़ाहट लगेगी। इसलिए भारत की यह धारणा दुनिया में बहुत लोगों तक प्रभाव नहीं छोड़ती। भारतीय के मन में भी प्रभाव नहीं छोड़ती, क्योंकि लगता है तब बेकार! हमारे मन में भी कुछ मतलब तो निकलना चाहिए! इतनी दौड़-धूप, इतने उपद्रव, जन्म-जन्म की यात्रा, और मतलब कुछ भी नहीं! यह भी थोड़ा सोच लेने जैसा है।
अगर हम जिंदगी को एक काम समझते हैं, तो हमारी जिंदगी में एक बोझ होगा।
और अगर जिंदगी को हम खेल समझते हैं, तो जिंदगी निर्बोझ हो जाएगी।
धार्मिक आदमी वह है, जिसके लिए सभी कुछ खेल हो गया। और अधार्मिक आदमी
वह है, जिसके लिए खेल भी खेल नहीं है, उसमें भी जब काम निकलता हो कुछ, तो ही।
धार्मिक आदमी वह है, जिसके लिए सब लीला हो गई। उसे कोई अड़चन नहीं है कि ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसा क्यों नहीं हो रहा? यह बुरा आदमी क्यों है? यह भला आदमी क्यों है?
निष्प्रयोजन लीला की दृष्टि से, वह जो बुरे में छिपा है, वह भी वही है।
वह जो भले में छिपा है, वह भी वही है। रावण में भी वही है, राम में भी वही है। दोनों तरफ से वह दांव चल रहा है। और वह अकेला है।
अस्तित्व अकेला है। इस अस्तित्व के बाहर कोई लक्ष्य नहीं है। इसलिए
जो आदमी अपने जीवन में लक्ष्य छोड़ दे और वर्तमान के क्षण में ऐसा जीने लगे, जैसे खेल रहा है, वह आदमी यहीं और अभी परमात्मा का अनुभव करने में सफल हो जाता है।
लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि परमात्मा पाने को भी एक धंधा बना लेते हैं।
एक धंधा! उसको भी ऐसी व्यवस्था से चलते हैं पाने के लिए, कि छोड़ेंगे नहीं, पाकर ही रहेंगे! और उसको भी भविष्य में रखते हैं कि कहीं पाकर रहेंगे। अभी यह करेंगे, यह करेंगे, फिर ऐसा करेंगे। उपवास करेंगे, तप करेंगे, तपश्चर्या करेंगे--पूरा धंधा! आप समझते हैं न गोरखधंधा!
आपको पता है, यह शब्द आया है गोरखनाथ से। वह महान तांत्रिक गोरखनाथ हुआ। पर उसकी साधना पद्धति जो गोरख की थी, पक्की धंधे की थी। साधना पद्धति यह थी कि यह क्रिया करो, और यह कर्म करो, और यह करो, और वह करो। इतना उपद्रव था उसमें कि धीरे-धीरे उसकी साधना को लोग गोरखधंधा ही कहने लगे। क्योंकि वह बड़ा उपद्रव है।
आप अपने साधु-संन्यासियों के पास जाएं, सब गोरखधंधे में लगे हैं। अलग-अलग गोरखधंधे हैं, अलग-अलग ढंग के हैं, लेकिन बड़े धंधे में लगे हैं!
लेकिन ईश्वर को पा पाता है वही आदमी, जो धंधे में ही नहीं होता। जो धंधे में भी हो, तो भी खेल ही समझता है। दुकान पर बैठा है, तो भी एक नाटक का पात्र है। और युद्ध में खड़ा है, तो भी नाटक का एक पात्र है। हमने यहां तक हिम्मत की है कि अगर वह आदमी हत्यारा है, किसी की हत्या कर रहा है, या चोर है और चोरी कर रहा है, अगर वहां भी वह आदमी सिर्फ अपने को नाटक का एक पात्र समझ रहा हो, तो चोरी भी नहीं छूती और हत्या भी नहीं छूती।
मगर बड़ा कठिन है। बड़ा कठिन है अपने को निमित्त मात्र मान लेना, कि जो
हो रहा है, होने देना। हम कुछ न करेंगे। अपनी बुद्धि को बीच में न डालेंगे। अपना निर्णय न लेंगे। बहे चले जाएंगे इस प्रवाह में। ऐसा जो प्रयोजनहीन होकर जीता है, बच्चे की भांति, वही है संत। वह क्या कर रहा है, इस पर निर्भर नहीं है। उसके करने में जो दृष्टि है, वह घूमने वाले की है, पहुंचने वाले की नहीं। मौज ले रहा है। जो हो रहा है, उसमें ही मौज ले रहा है।

अब हम सूत्र को लें।
अर्जुन कह रहा है, अथवा जैसे पतंग मोह के वश होकर नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी अपने नाश के लिए आपके मुखों में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश कर रहे हैं।

जैसे दीया जल रहा हो और पतंगा चक्कर लगाता है दीए के, और पास आता चला जाता है। उसके पंख भी जलने लगते हैं, तो भी हटता नहीं, और पास आता चला जाता है। लपट उसे छूने लगती है, तो भी पास आता चला जाता है। अंत में वह लपट में छलांग लगाकर जल जाता है। और ऐसा भी नहीं कि एक पतंगे को जलता देखकर दूसरे पतंगे कुछ समझ लें। वे भी चक्कर लगाते हैं, और निकट आते जाते हैं प्रकाश के। जहां भी प्रकाश हो, पतंगे प्रकाश को खोजते हैं।
अर्जुन कह रहा है, मैं ऐसे ही देख रहा हूं इन सारे लोगों को आपके इस मृत्यु रूपी मुंह में जाते हुए। वे सब भाग रहे हैं अति वेग से और एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं कि कौन पहले पहुंच जाए। बड़ा वेग है। और जा कहां रहे हैं! आपके मुंह में जा रहे हैं, जहां मौत के सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह क्या हो रहा है! ये सब महाशूरवीर, महायोद्धा, बुद्धिमान, पंडित, ज्ञानी, ये सब मृत्यु की तरफ जा रहे हैं। और इतनी साज-सजावट से जा रहे हैं कि ऐसा नहीं लगता कि इनको पता हो कि ये मृत्यु की तरफ जा रहे हैं। इतनी शान से जा रहे हैं। शोभायात्रा बना रखी है इन्होंने अपनी गति को। और जा रहे हैं, देखता हूं, आपके मुंह में, जहां मृत्यु घटित होगी।
और आप उन संपूर्ण लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रसन करते हुए सब
ओर से चाट रहे हैं।
और आप हैं एक कि आपकी अग्नि लपटें सब तरफ से छू रही हैं लोकों को और उनको लीले चली जा रही हैं।
हे विष्णु! आपका उग्र प्रकाश संपूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपायमान कर रहा है।
सब तप रहे हैं, जल रहे हैं, भस्म हुए जा रहे हैं।
हे भगवन्! कृपा करके मेरे प्रति कहिए कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं?
मानने का मन नहीं होता उसका कि यह आप जो रूप दिखला रहे हैं, यह सच में आपका ही रूप है। सोचता है, कोई भ्रम पैदा कर रहे होंगे। सोचता है, कोई प्रतीक! सोचता है, मुझे कुछ धोखा दे रहे होंगे, डरवा रहे होंगे। सोचता है, मेरी परीक्षा ले रहे होंगे। यह मानने का मन नहीं करता है कि यह आप ही हैं। तो वह कहता है, यह उग्र रूप वाला कौन है? यह आप नहीं मालूम पड़ते!
हे देवों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार होवे, आप प्रसन्न होइए।
वह घबड़ा भी रहा है। बेचैन हो रहा है। और कह रहा है, आप प्रसन्न होइए। आदिस्वरूप, आपको मैं तत्व से जानना चाहता हूं, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता।
आप अपनी प्रवृत्तियां सिकोड़ लें। कि आप लोगों की मृत्यु बनते हैं, मुझे प्रयोजन नहीं। कि आप लोगों को लील जाते हैं, मुझे मतलब नहीं। कि आप लोगों को बनाते हैं, मुझे मतलब नहीं। आपकी प्रवृत्ति को हटा लें। आप क्या करते हैं, इससे मुझे प्रयोजन नहीं। आप क्या हैं, केंद्र में, इसेंस में, सार में, तत्व में, वही मैं जानना चाहता हूं।
हम सब भी परमात्मा को जानना चाहते हैं, और उसकी प्रवृत्ति से बचना चाहते हैं। यह सारा संसार उसकी प्रवृत्ति है। यह सारा संसार उसका खेल है। हम इससे बचना चाहते हैं और उसे जानना चाहते हैं। वही अर्जुन कह रहा है। अर्जुन की आकांक्षा हमारी आकांक्षा है।
हम भी कहते हैं, संसार से छुड़ाओ प्रभु, अपने पास बुला लो। जैसे कि संसार में वह पास नहीं है! हम कहते हैं, हटाओ इस भवसागर से, इस बंधन से और अपने गले लगा लो। जैसे इस बंधन में उसी ने गले नहीं लगाया है! हम कहते हैं, कब छूटेगी यह पत्नी? कब छूटेगा यह पति? यह छुटकारा कब होगा? हे प्रभु! पास बुलाओ। जैसे कि इस पति में और पत्नी में वही मौजूद नहीं है!
बुद्ध वापस आए हैं, जब वे बुद्ध हो गए हैं। और उनकी पत्नी ने एक सवाल पूछा है। पता नहीं, पूछा या नहीं। रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है, जिसमें पूछा है। रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है। और रवींद्रनाथ बड़े आलोचक थे बुद्ध के, गहरे आलोचक थे। पर सवाल बड़ा कीमती है। न भी पूछा हो, तो बुद्ध की पत्नी को पूछना चाहिए था।

बुद्ध वापस लौट आए हैं। यशोधरा पूछती है कि एक ही बात मुझे पूछनी है।
जो तुम्हें वहां जंगल में जाकर, मुझे छोड़कर मिला, क्या तुम हाथ रखकर छाती पर कह सकते हो, वह यहीं नहीं मिल सकता था मेरे पास?
बुद्ध निरुत्तर खड़े रह गए हैं। पता नहीं, वे खड़े रहे कि नहीं। रवींद्रनाथ ने उनको निरुत्तर खड़े रखा है। और मैं भी मानता हूं कि उत्तर है नहीं। बुद्ध को चुप खड़े रह जाना ही पड़ा होगा। क्योंकि झूठ वे बोल नहीं सकते। और सच यही है कि जो उन्होंने जंगल में पाया है, वह यशोधरा के पास भी पाया जा सकता था। क्योंकि वह वहां भी मौजूद है।
संसार से हटा ले प्रभु हमें! क्यों? वही संसार बना रहा है। आप प्रार्थना कर रहे हैं, हटा लो!
अर्जुन यह कह रहा है, तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं, तुम्हारा तत्व। मैं
तो तुम्हें सारभूत जानना चाहता हूं। तुम क्या करते हो, वह मुझे मतलब नहीं है। तुम क्या हो? तुम्हारा डूइंग नहीं, तुम्हारी बीइंग। मैं तुम्हारे उस केंद्र को जानना चाहता हूं, जहां कोई गति नहीं है, जहां कोई कर्म नहीं है, जहां सब शांत और मौन है। प्रवृत्ति को हटा लो।
लेकिन वह कह जरूर रहा है, लेकिन उसे पता नहीं कि वह साथ ही अपना विरोध
भी कर रहा है। एक तरफ वह कहता है, हटा लो यह उग्र रूप और प्रसन्न हो जाओ। प्रसन्नता भी प्रवृत्ति है। और दूसरी तरफ वह कह रहा है कि प्रवृत्ति का मुझे कुछ पता नहीं। जानना भी नहीं चाहता। तत्व जानना चाहता हूं।
प्रसन्नता तत्व नहीं है। प्रसन्नता भी कर्म है। जैसे उग्रता कर्म है, वैसे प्रसन्नता कर्म है। जैसे मृत्यु कर्म है, वैसे जीवन भी कर्म है। लेकिन हम चुनाव करते ही चले जाते हैं। वह कहता है कि प्रसन्नता, आनंदित हो जाइए। वह भी मानेगा कि शायद आनंदित होना ही तत्व है। वह भी तत्व नहीं है। तत्व तो शून्य है। और शून्य को देखने की क्षमता बड़ी मुश्किल है। हम प्रवृत्ति को ही देख पाते हैं। शून्य को हम कहां देख पाते हैं! शून्य जब प्रवृत्ति बनता है, तभी हमारी पकड़ में आता है। नहीं तो कहां पकड़ में आता है!
मैं यहां चुप बैठ जाऊं, तो मेरा मौन आपको पकड़ में नहीं आएगा। जब मेरा मौन शब्द बनता है, तब आपको सुनाई पड़ता है। जो मैं कहना चाहता हूं, वह तो मेरे मौन में है। जब मैं उसे शब्द का रूप देता हूं, तब वह आप तक पहुंचता है। अगर आप मुझसे कहें कि ऐसा कुछ करिए कि मैं आपका मौन सुन पाऊं, तो बड़ी कठिन होगी बात। क्योंकि उसके लिए फिर आपके कान काम नहीं दे सकेंगे; वे सिर्फ शब्द सुनने को बने हैं। और उसके लिए आपकी बुद्धि भी काम नहीं दे सकेगी, क्योंकि वह भी केवल शब्द पकड़ने को बनी है। फिर तो आपको भी शून्य में ही खड़ा होना पड़े, तो ही फिर मौन से सुना जा सकता है।
एक अदभुत साधक कुछ समय पहले हुआ। अनिर्वाण उस साधक का नाम था। बहुत कम लोग जानते हैं। क्योंकि कभी कोई बहुत लोगों को पास नहीं आने दिया। एक फ्रेंच महिला अनिर्वाण के पास कोई पांच साल तक रही। बस, वह अकेली एक किताब उसने लिखी है। वही जगत को जानकारी है अनिर्वाण के संबंध में। पांच साल अनिर्वाण के पास चुपचाप बैठी रही। वे कुछ कहेंगे नहीं, या कुछ कहेंगे तो बहुत अल्प।
पांच साल बाद उसने अनिर्वाण से कहा, आपने कुछ मुझे कहा नहीं, हालांकि मैंने बहुत कुछ सुना। अनिर्वाण ने कहा, यही मेरी एकमात्र महत्वाकांक्षा थी। जब से मैं जन्मा हूं, जब से मुझे होश है, तब से मेरी एक ही महत्वाकांक्षा थी कि किसी को मैं मौन से कुछ कह पाऊं। लेकिन मौन होने के लिए कोई राजी नहीं होता।
पांच साल चुप बैठी रही। दो साल निरंतर उनके पास चुप बैठ-बैठकर वह क्षमता आई, जब उनका मौन थोड़ा-सा स्पर्श करने लगा। पांच साल होने पर सुनाई पड़ना शुरू हुआ। पांच साल पूरे होने पर जब उस महिला ने कहा कि अब मैं सुन पाती हूं, जो आप मौन में कहते हैं। तो अनिर्वाण ने कहा कि बस, तेरा काम पूरा हो गया। अब तू यहां से जा। क्योंकि अब तू कहीं भी हो, तो सुन पाएगी। क्योंकि मौन के लिए कोई बाधा नहीं है। शब्द के लिए दूरी बाधा है। अब तू जा, तेरा काम पूरा हो गया।

उस महिला ने लिखा है, अंतिम क्षण विदा देते वक्त जब हाथ जोड़कर हम नमस्कार करके अलग हो गए, तब मुझे ख्याल आया कि पांच साल हो गए मैंने उनके हाथ का भी स्पर्श नहीं किया! लेकिन पांच साल तक मुझे ख्याल नहीं आया कि मैंने अनिर्वाण के शरीर को छुआ तक नहीं है, हाथ का भी स्पर्श नहीं किया। यह विदा होने पर ख्याल आया। और तब उसे लगा कि यह ख्याल ही इसलिए आया कि मौन में निकटता इतनी गहन थी कि और स्पर्श उससे ज्यादा क्या निकटता दे सकता है! लेकिन अगर आप कहें, मौन में सुनना है, तो फिर मौन होने की कला सीखनी पड़े। वह अर्जुन कह रहा है कि मैं आपको देखना चाहता हूं आपके तत्व में। लेकिन तत्व में केवल वही देख सकता है, जो स्वयं तत्व होने को राजी हो, शून्य होने को राजी हो।
शून्य होने को जो राजी है, वह इस जगत के शून्य को देख लेगा। जब तक हम शून्य होने को राजी नहीं हैं, तब तक हमें प्रवृत्ति ही दिखाई पड़ेगी। और जब तक प्रवृत्ति है, तब तक चुनाव रहेगा। हम कहेंगे, उदासी हटाओ, रुद्रता हटाओ, यह क्रूरता हटाओ, यह मृत्यु का उग्र रूप बंद करो। मुस्कुराओ, प्रसन्न हो जाओ। हम चुनेंगे, हमारी पसंद की प्रवृत्ति!
ध्यान रहे, इस सूत्र में थोड़ी एक बात ख्याल ले लेने जैसी है।
संसार को अक्सर हम कहते हैं, प्रवृत्ति का जाल। और संन्यासी को हम कहते हैं निवृत्ति, प्रवृत्ति से हट जाना। लेकिन संसार प्रवृत्ति का जाल है, यह तो सच है। और कोई कितना ही संसार से भागे, संसार के बाहर नहीं जा सकता, यह भी ध्यान रखना। जहां भी जाएं, वहीं संसार है। कहीं भी जाएं, वहीं संसार है, क्योंकि सभी तरफ प्रवृत्ति है उसकी। कहीं बाजार की प्रवृत्ति है। कहीं वृक्षों में पक्षियों की कलकलाहट है। कहीं नदी में पानी का शोर है। कहीं पहाड़ों का सन्नाटा है। लेकिन सब उसकी ही प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं।
प्रवृत्ति के बाहर जाने का एक ही उपाय है कि प्रवृत्ति में चुनना मत।
यह मत कहना कि यह विकराल है, हटाओ; प्रसन्न को प्रकट करो। यह चुनाव बांधता है, प्रवृत्ति नहीं बांधती। और जो प्रवृत्ति में चुनाव नहीं करता, वह अचानक शून्य हो जाता है। क्योंकि चुनाव से ही भीतर का शून्य खंडित होता है। जो शून्य हो जाता है, वह उसे तत्व से जान लेता है।
अर्जुन कहता है, हे भगवन्, कृपा करके मेरे प्रति कहिए कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ, आपको नमस्कार होवे। आप प्रसन्न होइए। आदिस्वरूप, आपको मैं तत्व से जानना चाहता हूं। क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को न मैं जानता हूं, न आपकी प्रवृत्ति से मुझे कोई बहुत प्रयोजन है। आप क्या हैं, वही मैं जानना चाहता हूं।
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें। कीर्तन करें, फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
सातवां प्रवचन

साधना के चार चरण

श्रीभगवानुवाच
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।
32।।
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुड्क्ष्व राज्यं
समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव
सव्यसाचिन्।। 33।।
द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।।
34।।
इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूं। इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित हुए योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात तेरे युद्ध न करने से भी सबका नाश हो जाएगा।
इससे तू खड़ा हो और यश को प्राप्त कर तथा शत्रुओं को जीतकर धनधान्य से संपन्न राज्य को भोग। और ये सब शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन्, तू तो केवल निमित्तमात्र ही हो जा।
तथा इन द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत-से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू मार और भय मत कर, निस्संदेह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा, इसलिए युद्ध कर!

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है, दिव्य-दृष्टि को पाकर भी अर्जुन परमात्मा को उसकी समग्रता में स्वीकार करने में क्यों असफल हो रहा है? क्यों भयभीत है?

परमात्मा के साक्षात्कार में, उसकी पूर्ण स्वीकृति में, स्वयं को पूरा खोने की तैयारी चाहिए। परमात्मा का अनुभव अपनी पूर्ण मृत्यु का अनुभव है। जो मिटने को राजी है, वही उसे पूरी तरह स्वीकार कर पाता है। अगर मिटने में जरा-सा भी संकोच है, तो अस्वीकार शुरू हो जाता है और भय भी।
भय एक ही है कि कहीं मैं मिट न जाऊं। और यह भय अंतिम बाधा है। इसलिए जो जानते रहे हैं, उन्होंने कहा है, जैसे जीसस ने, कि जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा। और जो अपने को खोने को तैयार है, वह प्रभु को पा लेगा। अपने को बचाना ही धर्म के मार्ग पर पाप है। अपने को बचाने की चेष्टा ही एकमात्र रुकावट है।
तो अर्जुन सामने खड़ा है; विराट के द्वार खुल गए हैं। लेकिन कहीं मैं मिट न जाऊं--इसकी वह बात कर नहीं रहा है, यह भी समझ लेने जैसा है। वह कह रहा है कि आपके दांतों में दबे हुए, पिसते हुए द्रोण को देखता हूं, भीष्म को देखता हूं, कर्ण को देखता हूं। आपका मुंह मृत्यु, महाकाल बन गया है। आपके मुंह से लपटें निकल रही हैं और विनाश की लीला हो रही है। और मैं बड़े-बड़े योद्धाओं को भी इस विनाश के मुंह की तरफ भागते हुए देखता हूं, जैसे पतंगे दीप-शिखा की तरफ भागते हों, अपनी ही मौत की तरफ। कहीं भी वह अपनी बात नहीं कह रहा है।
लेकिन ध्यान रहे, जब भी कोई दूसरा मरता है, तो हमें अपने मरने की खबर मिलती है। और जब भी कहीं मृत्यु घटित होती है, तो किसी एक अर्थ में तत्काल हमें चोट भी लगती है कि मैं भी मरूंगा।

जब अर्जुन यह देख रहा होगा सबको मिटते हुए कृष्ण के मुंह में, तो यह असंभव है कि यह छाया की तरह चारों तरफ यह बात उसको न घेर ली हो कि मैं भी मिटूंगा, मैं भी ऐसे ही मरूंगा। और मैं भी पतंगे की तरह किसी ज्योति में जलने को इसी तरह भागा जा रहा हूं, जैसे यह सारा लोक। मैं भी इस लोक से अलग नहीं हूं। वह कह तो दूसरों की बात रहा है, लेकिन उसमें खुद स्वयं की बात भी गहरे में सम्मिलित है। वह भय पकड़ता है।
बुद्ध अपने साधकों को कहते थे, इसके पहले कि तुम परम सत्य को जानने जाओ, तुम ऐसे हो जाओ जैसे मर गए हो, जीते जी मृत। अगर तुम जीते जी मृत नहीं हो गए हो, तो उस परम सत्य को तुम न झेल पाओगे। जो जीते जी मृत हो गया है, उसे फिर कोई भी भय नहीं है। फिर परमात्मा के सामने खड़े होकर मिटने की उसकी पहले से ही तैयारी है। यह तैयारी न हो, तो अड़चन होगी।
और जो लोग भी परमात्मा की खोज में जाते हैं, वे जीवन की खोज में जाते हैं, मृत्यु की खोज में नहीं। जो जीवन के पिपासु हैं अभी, वे उसे न पा सकेंगे। जो मिटने को राजी हैं, वे उसे पा लेंगे, परम जीवन भी उन्हें मिलेगा। लेकिन परम जीवन मिलता है पूर्ण मृत्यु की स्वीकृति से।
अपने को मिटाने को जो तैयार है, उसे इस जगत में फिर कोई भी नहीं मिटा सकता। और अपने को बचाने को जो पागल है, वह मिटेगा ही। क्योंकि जो हमारे भीतर भयभीत है कि मिट न जाऊं, वह है अहंकार। वह मिटेगा ही, वह बनाई हुई चीज है। जो बनाई हुई चीज है, वह मिटती ही है।
हमारे भीतर जो मृत्यु से भी नहीं मिटती, वह है आत्मा। और जब तक हमें मृत्यु का भय है, उसका अर्थ हुआ कि हमें आत्मा का कोई भी पता नहीं। हमें सिर्फ अपने अहंकार का, अस्मिता का, मैं भाव का पता है। हमारे भीतर मरणधर्मा है अहंकार, और अमृत है आत्मा। हम सबको अपने मैं का पता है, आत्मा का कोई पता नहीं है।
इस मैं को ही हम लिए जाते हैं परमात्मा के द्वार पर भी। यह भीतर प्रवेश न कर सकेगा। इसे मिटना होगा, इसे बाहर दरवाजे पर ही छोड़ना होगा। अर्जुन का भय भी उन सभी साधकों का भय है, जो आखिरी किनारे पर खड़े हो जाते हैं और जहां सवाल उठता है कि क्या अब मैं अपने को खोने को राजी हूं? हम परमात्मा को भी पाना चाहते हैं अपने में जोड़ने को, ध्यान रखना। वह
भी हमारी संपत्ति हो। वह भी हमारी मुट्ठी में हो। वह भी हमारे बैंक बैलेंस में लिखा हो, कि इस आदमी को भगवान मिल गया! वह भी हमारे हाथ में हो। हमारा अहंकार उसके होने से और प्रगाढ़ होता हो, कि मैंने परमात्मा को पा लिया। इसलिए हम उसकी भी खोज करते हैं।
और धर्म बड़ी उलटी व्यवस्था है। धर्म कहता है, जब तक तुम हो, तब तक तुम उसे न पा सकोगे।
कबीर ने कहा है, जब तक मैं था, खोज-खोजकर, परेशान हो-होकर मिट गया, उसे न पाया। और जब मैं मिट गया, तो मैंने देखा कि वह सामने खड़ा हुआ है! वह दूर नहीं था। मैं था, इसीलिए दूर था। मेरा होना ही एकमात्र अड़चन, बाधा, अवरोध है।
अर्जुन भी उसी अंतिम, आखिरी... । ज्ञानियों ने कहा है, अहंकार अंतिम बाधा है। सब छूट जाता है। धन छोड़ना आसान है। परिवार छोड़ना आसान है। शरीर छोड़ना आसान है। अहंकार छोड़ना सबसे कठिन है कि मैं हूं। और जब तक मैं हूं, तब तक मैं हूं केंद्र। और अगर परमात्मा भी सामने खड़ा हो, तो वह भी नंबर दो है। जब तक मैं हूं, तब तक वह भी नंबर दो है, नंबर एक तो मैं ही हूं! और जब तक परमात्मा को नंबर एक पर रखने की तैयारी न हो, तब तक बाधा रहेगी। जिस क्षण मैं कह सकता हूं कि अब तू ही है, अब मैं नहीं हूं... ।
जार्ज गुरजिएफ ने आदमी की साधना के चार चरण कहे हैं। उसने कहा है, पहली स्थिति तो आदमी की है, बहुत मैं; मल्टी आइज। आपके भीतर एक मैं भी नहीं है अभी, बहुत मैं हैं।
आपको ख्याल भी नहीं होगा कि आप एक आदमी नहीं हैं। आपके भीतर कई ईगो, कई मैं हैं। इसलिए सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ हो जाता है। सुबह एक बात का वचन देते हैं, दोपहर भूल जाते हैं। सांझ एक बात तय करते हैं, सुबह विस्मृत हो जाती है। आज तय किया था क्रोध नहीं करेंगे और क्रोध हो गया।

गुरजिएफ कहता है, जिस मैं ने तय किया था कि क्रोध नहीं करूंगा, वह मैं
और है। और जिस मैं ने क्रोध किया, वह मैं और है। आपके भीतर भीड़ है, आपके भीतर एक मैं नहीं है। इसलिए आपकी बात का कोई भरोसा नहीं है।
गुरजिएफ के पास कोई आता और वह कहता कि मैं आया हूं साधना करने, तो गुरजिएफ कहता, तुम्हारी बात का भरोसा कर सकता हूं? तुम अभी साधना करने आए हो, सुबह, कल सुबह भी साधना करने के लिए तत्पर रहोगे? तुम्हें पक्का है कि तुमने तय किया था कि क्रोध नहीं करूंगा, तो फिर नहीं ही किया? तब वह आदमी डगमगा जाएगा। वह कहेगा, तय तो बहुत बार किया कि क्रोध न करूंगा, लेकिन हो नहीं पाता।
एक बूढ़े आदमी ने मुझे कलकत्ते में कहा--बड़े प्रतिष्ठित आदमी थे मुल्क के--कि मैं ब्रह्मचर्य का व्रत जीवन में चार बार ले चुका हूं!
अब ब्रह्मचर्य का व्रत एक ही बार लिया जा सकता है। चार बार ब्रह्मचर्य के व्रत का क्या मतलब होता है? जो मेरे साथ सज्जन थे, वे बहुत प्रभावित हुए। उनके ख्याल में ही न आया; उनकी बुद्धि में प्रवेश न हुआ कि चार बार ब्रह्मचर्य के व्रत का क्या मतलब होता है!
मैंने उन बूढ़े सज्जन से पूछा कि फिर पांचवीं बार आपने क्यों नहीं लिया? तो उन्होंने कहा, मैं हार गया चार बार और फिर मैंने लेना ही छोड़ दिया, व्रत लेना छोड़ दिया!
आप व्रत लेते हैं, लेकिन आपका व्रत टिक नहीं सकता।
गुरजिएफ कहता है, आपके भीतर कई मैं हैं। एक मैं नहीं है आपके भीतर, मल्टी आइज, पोलीसाइकिक। महावीर ने ठीक शब्द उपयोग किया है, बहुचित्तवान। एक आदमी के भीतर बहुत-से चित्त हैं। और महावीर के इस बहुचित्तवान की स्वीकृति अभी पश्चिम के मनोविज्ञान ने देनी शुरू की है। मनोविज्ञान भी कहता है, मल्टीसाइकिक, बहुत मन हैं आदमी के पास; एक मन नहीं है।
यह पहली अवस्था है, भीड़। इस आदमी का कोई भरोसा नहीं है। इसका भरोसा करने का कोई सवाल नहीं है। इससे वचन भी लेने का कोई मतलब नहीं है। इसके वचन की कोई पूर्ति नहीं होने वाली है।
दूसरी अवस्था गुरजिएफ ने कही है, एक मैं। यह सारी भीड़ को नष्ट करके जो व्यक्ति अपने भीतर एक स्वर पैदा कर लेता है; जिसके वचन का अर्थ है; जो कुछ कहेगा, तो पूरा करेगा; जो टिकेगा, अपनी बात पर, अपने व्रत पर। उसके भीतर एक मैं है। सुबह हो कि सांझ, फर्क नहीं पड़ेगा। उसने प्रेम किया है तो प्रेम ही करेगा, फिर घृणा नहीं कर सकेगा।
आपके प्रेम का कोई भरोसा नहीं है। अभी प्रेम है, क्षणभर में घृणा हो जाए। फिर घृणा प्रेम हो जाए। अभी क्रोध है, फिर शांति हो जाए। फिर क्रोध हो जाए। अभी पछता रहे थे, और अभी फिर हत्या करने को राजी हो जाएं। आपकी बात का कोई भी भरोसा नहीं है। आपको दोष देने का भी कोई कारण नहीं है। आपके भीतर एक आदमी नहीं, कई आदमी हैं। जैसे एक मकान के कई मालिक हों और किसी की बात का कोई भरोसा न हो। कैसे हो सकता है?
गुरजिएफ कहता है, दूसरी स्थिति है एक मैं की, यूनिटरी आई। एक स्वर रह जाए। साधना आपकी भीड़ को काटती है और एक का निर्माण करती है। लेकिन वह दूसरी अवस्था है। तीसरी अवस्था गुरजिएफ कहता है, न-मैं की, नो-आई। जब कि मैं न रह जाए। अनुभव होने लगे कि मैं नहीं हूं। यह तीसरी अवस्था है। दूसरी अवस्था वाले आदमी को ही तीसरी मिल सकती है। जिसके पास पक्का है
कि मैं हूं, वही हिम्मत कर सकता है मैं को खोने की। जो आपके पास नहीं है, उसको खोइएगा कैसे? जो आपके पास है, उसे आप छोड़ सकते हैं। जो आपके पास है ही नहीं, उसे छोड़िएगा कैसे? आपके पास अभी मैं भी नहीं है, अहंकार भी नहीं है पूरा, मजबूत, एक, जिसको आप त्याग कर दें। और त्याग कौन करेगा? एक त्याग करेगा, दूसरा पकड़े रहेगा, फिर आप क्या करिएगा! आप एक भीड़ हैं।
गुरजिएफ कहता है, जिसको दूसरी अवस्था प्राप्त हो जाए, एक मैं की, वह फिर तीसरी अवस्था में भी छलांग लगा सकता है। वह कहता है, छोड़ता हूं इसे! तब वह न-मैं, मैं नहीं हूं, इस भाव को उपलब्ध होता है।
और गुरजिएफ कहता है, इस तीसरे के पार चौथी अवस्था है, जब कि मैं नहीं हूं, इसका भी पता नहीं चलता। क्योंकि इसका भी पता चलना थोड़े-से मैं का पता

चलना है। मैं नहीं हूं, तो भी लगता तो है कि मैं हूं। कौन कह रहा है कि मैं नहीं हूं? किसको पता चल रहा है कि मैं नहीं हूं? यह कौन है, जो बोलता है कि मैं नहीं हूं? यह है। तो गुरजिएफ कहता है, चौथी अवस्था इसका भी विसर्जन है।
पहले एक भीड़ है मैं की, एक क्राउड; फिर एक मैं का जन्म है; फिर एक मैं का त्याग है, न-मैं का जन्म है; फिर न-मैं का भी विसर्जन है। इस शून्य अवस्था में जो आदमी खड़ा होगा, वह परमात्मा को पूरा का पूरा स्वीकार करता है। इसके पहले परमात्मा को पूरा स्वीकार नहीं किया जा सकता। हम उसमें भी चुनाव करेंगे। हमें अभी डर है मिटने का। अभी मैं हूं, तो मुझे भय है। यही तकलीफ अर्जुन की है, यही तकलीफ सभी साधकों की है।

प्रश्नः एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आपने समझाया कि परमात्मा के विराट स्वरूप के साक्षात्कार के लिए मनुष्य की इंद्रियां सक्षम नहीं हैं। अपरिपक्व साधक यदि किसी प्रकार विराट स्वरूप की झलक पा ले, तो पागल भी हो सकता है। तो समझाएं कि परमात्म-ऊर्जा की झलक या साक्षात तक पहुंचने के लिए साधक क्या तैयारी करे?

मरने की तैयारी करे, मिटने की तैयारी करे, न होने की तैयारी करे। नहीं हूं, ऐसा जीने लगे। कर सकते हैं। गहन से गहन साधना वही है।
मगर हम तो सभी तरफ से मैं को मजबूत करने की साधना करते हैं। अगर आप मंदिर भी जा रहे हैं, तो आप देखते हैं कि लोग देख रहे हैं कि नहीं, कि मैं मंदिर जा रहा हूं। मंदिर में भी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं, तो भगवान की तरफ ध्यान कम रहता है। ख्याल रहता है कि आस-पास के लोग ठीक से देख रहे हैं? कोई फोटोग्राफर आया कि नहीं? कोई अखबार खबर छापेगा कि नहीं कि आज मैं प्रार्थना कर रहा था, लीन हो गया था?
मन में लगा है, कोई देख ले कि मैं प्रार्थना कर रहा हूं। कोई जान ले कि मैं प्रार्थना करने वाला हूं। कि मैं रोज मंदिर जाता हूं, कि मैं धार्मिक हूं। धार्मिक होने की उतनी चिंता नहीं है। लोगों को पता हो कि मैं धार्मिक हूं, इसकी ज्यादा चिंता है। क्यों? वह मंदिर से भी अहंकार ही भर रहा है। उससे भी मैं कुछ हूं--मैं पापी नहीं हूं, पुण्यात्मा हूं; अधार्मिक नहीं हूं, धार्मिक हूं--यह मजा मैं इकट्ठा कर रहा है।
आदमी उपवास करता है, तो चुपचाप नहीं करता। करना चाहिए चुपचाप। क्योंकि किसी को बताने की क्या जरूरत कि आपने उपवास किया है? लेकिन ढोल-मंजीरा पीटकर खबर करनी पड़ती है कि उपवास पर हो गए हैं। फिर उपवास पूरा हो, तो जुलूस निकालना पड़ता है कि उपवास पूरा हो गया है! कि दस दिन उपवास किया, कि अठारह दिन उपवास किया।
उपवास का शोरगुल करने की क्या जरूरत है? यह तो आपकी निजी बात थी। आपके
और परमात्मा के बीच इसकी खबर काफी थी। और उसको खबर मिल जाएगी। आपके बैंड-बाजे की कोई भी जरूरत नहीं है।
कबीर ने कहा है, वह तुम्हारा परमात्मा क्या बहरा है जो तुम इतना शोरगुल मचा रहे हो?
लेकिन परमात्मा से किसी को प्रयोजन भी नहीं। और उसका पक्का पता भी नहीं कि वह है भी या नहीं। और यह भी पक्का नहीं कि आपके उपवास से प्रसन्न हो रहा है कि दुखी हो रहा है, यह कुछ पता नहीं है। आपके उपवास की उसको खबर भी हो रही है, यह भी पता नहीं है। लेकिन लोगों को तो कम से कम खबर हो जाए! वह जो अठारह दिन आदमी उपवास में तड़पता रहा है, ये लोग उसका जुलूस निकालें, इसमें उसका रस है।
आदमी जरा-सा तप करे, साधना करे, तो उत्सुकता होती है कि दूसरों को खबर
हो जाए। हम छोटे बच्चों की तरह हैं। अनुभव से हमें संबंध नहीं है, खबर से संबंध है। और यह सारा हमारा जगत खबर से जी रहा है।
आप मानते हैं, फलां आदमी बहुत बड़ा महात्मा है। मानने का कारण? क्योंकि
वह आदमी ठीक से आपको खबर पहुंचा सका है। कोई छिपा हो, न हो उसका पता, तो आपको पता चलने वाला नहीं है। आपके सामने अगर कृष्ण भी आकर खड़े हो जाएं और

पहले से ठीक से आपको खबर न की गई हो, तो आप पहचानने वाले नहीं हैं। या हो सकता है आप समझें कि कोई नाटक का पात्र आ गया है। यह क्या कलगी, बांसुरी वगैरह लिए आदमी चला आ रहा है! या हो सकता है कि पुलिस को खबर करें कि यहां एक गड़बड़ आदमी दिखाई पड़ रहा है, इसको पकड़कर ले जाएं।
आप जीते ही हैं शब्दों से, खबर से, प्रचार से। तो आदमी, धार्मिक आदमी
भी अगर प्रचार करके ही जी रहा हो, कि कितना रस मिल रहा है उसको तपश्चर्या से--तपश्चर्या से नहीं, तपश्चर्या की खबर से; लोगों की आंखों में कितनी प्रशंसा मिल रही है--तो अहंकार ही भर रहा है।
हम सब तरह से अपने अहंकार को भरते हैं। बुरे अहंकार भी हैं। अगर आप जेलखाने में जाएं, तो वहां भी जो बड़ा हत्यारा है, उसकी ज्यादा इज्जत होती है कैदियों में। जो दस-पांच दफा जेल में आ चुका है, उसकी ज्यादा प्रतिष्ठा होती है। वह नेता है। जो नया-नया आया है, उसको लोग कहते हैं, अभी सिक्खड़ है। क्या, किया क्या था? वह कहता है, जेब काट ली थी। वे कहते हैं, चुप भी रह। इसका भी कोई मतलब है! कोई मूल्य है! अभी सीख।
मैंने सुना है कि एक जेलखाने में ऐसा हुआ। एक कोठरी में एक आदमी पहले
से था। फिर दूसरा आदमी भी जेलखाने में आया और उसको भी उसी कोठरी में डाला गया। तो उस दूसरे आदमी ने पूछा, कितने दिन की सजा हुई है? तो उसने कहा, चालीस साल की। उसने कहा, सिर्फ चालीस साल की! तो दरवाजे के किनारे अपना बिस्तर लगा। मुझे सत्तर साल की हुई है। तुझे पहले निकलना पड़ेगा। दरवाजे के पास ही अपना बिस्तर रख। सिर्फ चालीस साल की ही सजा हुई है, तो दरवाजे के पास ही टिक! तुझे पहले निकलने का मौका आएगा। उसको सत्तर साल की हुई है! सत्तर साल का मजा और है। वह भीतर जमकर बैठा है।
आदमी पाप में भी अहंकार को भरता है, छोटे-बड़े पापी होते हैं। आदमी पुण्य में भी अहंकार को भरता है, छोटे-बड़े पुण्यात्मा होते हैं। अगर आप साधु-महात्माओं के पास जाएं, तो भी इस पर निर्भर करता है कि वे आपसे कहेंगे, आइए बैठिए या कुछ भी न कहेंगे, इस पर निर्भर करता है कि आपकी कितनी प्रतिष्ठा उनकी आंखों में है। दान किया हो, उपवास किया हो, तप किया हो, इस पर निर्भर करेगा।
मैं एक महात्मा का प्रवचन सुन रहा था। मैं बहुत हैरान हुआ। वे कुछ कहते, दो वचन मुश्किल से बोलते, फिर पूछते, सेठ कालीदास, समझ में आया? बहुत लोग बैठे थे। कौन सेठ कालीदास है? सेठ कालीदास एक बिल्कुल बुद्धू की शक्ल के एक आदमी सामने बैठे हुए थे। वे सिर हिलाते कि जी महाराज! फिर वे पूछते, सेठ माणिकलाल, समझ में आया? फिर एक दूसरे सेठ वहीं सामने पगड़ी बांधे बैठे थे। वे भी सिर हिलाते कि समझ में आया।
मैंने बाद में पूछा कि बात क्या है? क्या ये दो ही आदमी यहां समझने वाले हैं इतने लोगों में? और यह नाम ले-लेकर पूछने की बात क्या है? तो पता चला कि दोनों ने काफी दान किया है। तो जिसने दान किया, उसी के पास समझ भी हो सकती है! और फिर कालीदास को जो मजा आ रहा है कि महात्मा बार-बार पूछते हैं, कालीदास, समझ में आया! तो इतने लाखों लोगों में समझते हैं कि एक कालीदास समझदार है!
हमारा सारा ढंग अहंकार के आस-पास चलता है, उसी के पास जीता है। तो अच्छे पापी हैं, बुरे पापी हैं। बुरे पापी वे हैं, जो बुराई से अहंकार को भर रहे हैं। अच्छे पापी वे हैं, जो अच्छाई से अहंकार को भर रहे हैं। अहंकार पाप है। धर्म की गहन दृष्टि में अहंकार पाप है।
साधक का एक ही काम है कि वह ऐसे जीए जैसे है नहीं। क्या करे? जहां भी उसे लगे, मेरा मैं उठ रहा है, वहीं साक्षी हो जाए और उसे कोई सहयोग न दे। रास्ते से चले, उठे, बैठे, गुजरे, ऐसे जैसे कि हवा आती हो, जाती हो। भीतर कहीं भी मौका न दे कि मैं निर्मित हो रहा हूं, मैं बन रहा हूं, मजबूत हो रहा हूं।
इसकी सतत स्थिति बनी रहे जागरण की, तो ही एक घड़ी आती है, जब मैं मिट जाता है और साधक शून्य हो जाता है। उसी शून्य में अवतरण होता है। उसी ना- कुछ में, जब सब जगह खाली हो जाती है, तो साधक अतिथिगृह बन जाता है, प्रभु के निवास का। फिर प्रभु उतर सकता है।

प्रभु उतर आए, फिर कोई ध्यान रखने की जरूरत नहीं है। फिर तो ध्यान रखना भी बाधा है। फिर तो इसकी भी फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं कि मैं हूं या नहीं हूं। वह उतर आया, उसके बाद वह जाने। लेकिन जब तक वह नहीं उतरा है, तब तक साधक को अत्यंत सचेष्ट भाव से जीने की जरूरत है कि उसके भीतर कहीं भी मैं मजबूत न होता हो।
बस, यह एक बात ख्याल में रहे और आदमी अपने को सिफर करता जाए, शून्य करता जाए। एक घड़ी आ जाए कि भीतर कोई मैं का भाव न उठता हो। उसी घड़ी में मिलन हो जाएगा। उसी क्षण आप नहीं, और परमात्मा हो जाता है।

प्रश्नः एक और मित्र ने पूछा है कि फूल खिलते हैं मौसम में, चांद उगता
है समय से, पानी भाप बनता है सौ डिग्री पर। अगर सारा जगत प्रयोजनहीन है, तो इतनी नियमितता कैसे? सारी क्रिया, गतिशीलता अगर लीला ही है, आनंद ही है, तो इतनी प्रगाढ़ नियमबद्धता क्यों है?

ध्यान रहे, जहां खेल हो, वहां नियम का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। खेल टिकता ही नियम पर है। क्योंकि और तो टिकने की कोई जगह नहीं होती, सिर्फ नियम ही होता है।
दो आदमी ताश खेल रहे हैं। तो रूल्स होते हैं, नियम होते हैं, जिनसे चलना पड़ता है। क्योंकि खेल में और तो कुछ है ही नहीं, सिर्फ नियम के ही आधार पर तो सारा मामला है। अगर दो ताश के खेलने वाले एक नियम को न मानते हों, खेल बंद हो जाएगा। खेल टिकता ही नियम पर है।
इसलिए आप ख्याल रखें, अगर आप अपने काम-धंधे में बेईमानी करते हैं, तो कोई आपकी इतनी निंदा नहीं करेगा। लेकिन अगर आप ताश खेलते वक्त बेईमानी करें और नियम का उल्लंघन करें, तो सभी आपकी निंदा करेंगे। खेल में अगर कोई बेईमानी करे, तो बहुत निंदित हो जाता है, क्योंकि वह तो खेल का आधार ही खींच रहा है। खेल का आधार ही नियम है।
इस जगत में इतनी नियमबद्धता इसीलिए है कि यह परमात्मा का खेल है। और चूंकि उसी का खेल है, उसी को नियम पालने हैं। अपना खेल वह बंद भी कर सकता है। अगर वह नियम नहीं मानता है, तो खेल अभी बंद हो जाता है।
मगर उसके अलावा कोई है भी नहीं, अपने ही नियम हैं, अपना ही मानना है। इसीलिए इतनी नियमबद्धता है। इस नियमबद्धता का कारण यह नहीं है कि जगत में कोई प्रयोजन है। जहां प्रयोजन हो, वहां तो बिना नियम के भी चल सकता है। क्योंकि प्रयोजन ही काम करवा लेगा। लेकिन जहां प्रयोजन न हो, वहां तो नियम ही सब कुछ है। क्योंकि भविष्य तो कुछ भी नहीं है, आगे तो कुछ भी नहीं है पाने को। नियम ही एकमात्र आधार है।
छोटे बच्चे भी खेल खेलते हैं, तो नियम बना लेते हैं। सारे खेल नियम पर खड़े होते हैं। नियम के बिना खेल असंभव है। ये सारे खेल जो हम चारों तरफ देख रहे हैं, नियम पर खड़े हैं। इसलिए विज्ञान नियम की खोज कर पाता है। इसे थोड़ा समझ लें।
विज्ञान तो खड़ा ही नियम पर है। अगर जगत में नियम न हो, तो विज्ञान बिल्कुल खड़ा नहीं हो सकता। विज्ञान नियम की खोज कर लेता है कि सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है। यह नियम की खोज है। अगर कभी निन्यानबे पर बनता हो और कभी डेढ़ सौ पर बनता हो और कभी बनता ही न हो, तो फिर विज्ञान खड़ा नहीं हो सकता।
विज्ञान नियम का तो पता लगा लिया है, लेकिन वैज्ञानिक से पूछो कि प्रयोजन क्या है? तो वैज्ञानिक कहता है, प्रयोजन का तो कोई पता नहीं चलता। इसलिए विज्ञान कहता है, प्रयोजन का हमें कोई भी पता नहीं है। हम इतना ही बता सकते हैं कि ऐसा है। क्यों है? किस लिए है? इसका कोई उत्तर नहीं है। हम से यह मत पूछो। हमसे व्हाई, क्यों मत पूछो। हमसे सिर्फ व्हाट, क्या है, इतना ही पूछो।
हम बता सकते हैं, सौ डिग्री पर पानी गर्म होता है। लेकिन क्यों सौ डिग्री पर गर्म होता है? निन्यानबे पर होने में क्या अड़चन थी? और निन्यानबे पर होता, तो दुनिया में कौन-सी खराबी हो जाती? या एक सौ एक

डिग्री पर होता, तो दुनिया में कौन-सी विकृति आने वाली थी? और सौ डिग्री पर ही होता है, इसका क्या लक्ष्य है? यह भी विज्ञान कहता है, हम कुछ नहीं कह सकते। कोई लक्ष्य नहीं दिखाई पड़ता, कोई प्रयोजन नहीं दिखाई पड़ता। एक नियम-वर्तुलता दिखाई पड़ती है, कि नियम आवर्तित होता रहता है।
धर्म कहता है, कोई प्रयोजन नहीं है। हमें बहुत घबड़ाहट लगती है इस बात
से कि कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि तब सब बातें फिजूल मालूम पड़ती हैं। अगर कोई प्रयोजन नहीं, तो सब बात फिजूल मालूम पड़ती है। लेकिन आप समझें थोड़ा।
आपको फिजूल इसीलिए मालूम पड़ती है कि आप अब तक प्रयोजन से ही जीते रहे हैं। प्रयोजन के कारण ही, प्रयोजन की धारणा के कारण ही फिजूल मालूम पड़ती है। अगर कोई प्रयोजन है ही नहीं, तो कोई चीज फिजूल भी नहीं है। प्रयोजन हो, तो कोई चीज फिजूल हो सकती है। प्रयोजन हो ही न जगत में, तो फिर कोई चीज यूजलेस नहीं है, कोई चीज फिजूल नहीं है। क्योंकि फिजूल को जांचिएगा कैसे? अगर सभी प्रयोजनरहित है, तो फिर कोई चीज व्यर्थ नहीं है। न कोई चीज सार्थक है, न कोई चीज व्यर्थ है। बस, चीजें हैं।
ऐसा जो स्वीकार कर लेता है, उसके जीवन से अशांति के सारे कारण विदा हो जाते हैं। ऐसा जो मान लेता है, समझ लेता है, गहरे में इसकी प्रतीति हो जाती है, उसके जीवन में कोई बेचैनी नहीं रह जाती। कोई बेचैनी नहीं रह जाती। बेचैनी का उपाय ही नहीं रह जाता। परम शांति और परम विश्राम में उतरने का मार्ग इस अनुभव को पा लेना है कि सब खेल है।
आप रात सपना देखते हैं। कोई आपकी चोरी करके ले जा रहा है। किसी ने आपकी पत्नी की हत्या कर दी है। आप बड़े बेचैन होते हैं, बड़े परेशान होते हैं। रोते हैं सपने में। घबड़ाहट में नींद खुल जाती है। तो देखते हैं कि आंख से आंसू बह रहे हैं। छाती जोर से धड़क रही है। ब्लड-प्रेशर बढ़ गया होगा। लेकिन नींद खुलते ही आप हंसने लगते हैं। क्योंकि आपको पता चलता है, जो था, वह स्वप्न था। तब फिर आप यह नहीं पूछते कि यह आदमी मेरी पत्नी की हत्या क्यों किया? फिर आप यह नहीं पूछते कि वह एक आदमी चोरी करके ले गया है, उसने पाप किया? फिर आप यह सवाल ही नहीं पूछते।
आप इतना ही जानकर कि वह स्वप्न था, एक खेल था मन का, शांत हो जाते हैं। फिर हृदय की धड़कन अपनी जगह लौट आती है। खून ठीक चलने लगता है। पसीना बंद हो जाता है। आंसू सूख जाते हैं। आप फिर विश्राम में, नींद में प्रवेश कर जाते हैं।
स्वप्न में क्या तकलीफ आ गई थी? क्योंकि तब स्वप्न वास्तविक मालूम पड़ता था, इसलिए घबड़ा गए थे। जैसे ही पता चला स्वप्न है, घबड़ाहट खो गई, शांत हो गए।
जब तक जगत में आपको प्रयोजन मालूम पड़ता है, तब तक आप परेशान रहेंगे। जिस क्षण आपको लगेगा, जगत लीला है, स्वप्नवत, एक खेल, कोई प्रयोजन नहीं, उसी क्षण आप स्वप्न के बाहर हो जाएंगे।
यह गहनतम आधारभूमि है, जिसके सहारे आदमी विराट को अपने में उतार पा सकता है। जब तक आपको लग रहा है, सब तरफ वास्तविकता है, रियलिटी है; जब तक आपको लग रहा है, ऐसा होना ही चाहिए, इसके बिना जीवन बेकार हो जाएगा, तब तक आप बेचैन और परेशान होंगे और जीवन को बेकार कर लेंगे। क्योंकि परेशानी और बेचैनी में ही नष्ट हो जाएगी ऊर्जा। यह ऊर्जा अगर ठहर जाए, शांत हो जाए, तो इस शांत ऊर्जा से जो झील बन जाती है मौन की, तरंगरहित, उसी झील में संपर्क हो जाता है अनंत से, विराट से, प्रभु से।

प्रश्नः एक और मित्र ने पूछा है कि अगर आपकी बात हम मान लें और समझ लें
कि सब नियति का खेल है, तो जगत में आलस्य छा जाएगा।

तो छा जाने दें। ऐसे आपको क्या तकलीफ हो रही है? आपको पता है, आलसियों
ने क्या बुरा किया है जगत का? हिटलर कोई आलसी नहीं है, चंगेज खां कोई आलसी नहीं है, तैमूरलंग कोई आलसी नहीं है। दुनिया के जितने उपद्रवी हैं, कोई भी

आलसी नहीं है। आप एकाध आलसी का नाम बता सकते हैं, जिसने दुनिया को कोई नुकसान पहुंचाया हो? नुकसान पहुंचाने के लिए भी तो आलस्य नहीं चाहिए न! दुनिया के पूरे इतिहास में एक आदमी नहीं है, जिसको हम दोष दे सकें, जो आलसी रहा हो, जिसने किसी को कोई हानि पहुंचाई हो। आलसी न चोर हो सकता है, न राजनीतिज्ञ हो सकता है। न गुंडा हो सकता है, न हत्यारा हो सकता है।
आलसी से क्या तकलीफ है आपको? आलसी के ऊपर दोष ही क्या हैं? सब दोष तो कर्मठ लोगों के ऊपर हैं। सब उपद्रव का जाल तो कर्मठ लोगों के ऊपर है। दुनिया में थोड़ा कर्म कम हो, तो हानि नहीं होगी।
फिर आपको पता नहीं है। जो आलसी हो सकता है, वह आलसी होता ही है। जो नहीं हो सकता, उसके होने का कोई उपाय नहीं है। नियति का अर्थ यह है कि जो जो हो सकता है, वही हो सकता है। जो कर्मठ हो सकता है, वह कर्मठ रहेगा ही। उसको आप अगर कोठरी में भी बंद कर दें, तो भी वह कुछ न कुछ कर्म करेगा। वह बच नहीं सकता।
तिलक, लोकमान्य तिलक बंद थे कारागृह में। तो लिखने का कोई सामान नहीं था, तो कोयले से दीवाल पर लिखते रहते थे। गीता-रहस्य उन्होंने कोयले से लिख-लिखकर शुरू किया। आपके सामने कोई सब कलम-कागज, एयरकंडीशंड दफ्तर भी रख दे, तो भी आप कुछ लिखेंगे जरूरी नहीं है। जो लिख सकता है, वह जेलखाने में कोयले से भी लिखेगा। जो नहीं लिख सकता है, उसको लिखने का सब सामान भी हो, तो सामान ही देखकर उनके प्राण और शांत हो जाएंगे। वह कुछ नहीं लिख सकेगा।
आप जो कर सकते हैं, वह करते हैं। आपको एक कहानी कहूं।
जापान के एक राजा को मौज थी। वह आलसियों का बड़ा प्रेमी था। वह कहता था, आलसी बड़ा अनूठा आदमी है। और फिर आलसी का कोई कसूर नहीं है। भगवान ने किसी को आलसी पैदा किया, तो उसका क्या कसूर है! वह राजा खुद भी आलसी था। आलसियों का बड़ा प्रेमी था। उसने सारे जापान में एक डुंडी पिटवाई। और उसने कहा कि जितने भी आलसी हों, उनको सरकार की तरफ से पेंशन मिलेगी। क्योंकि भगवान ने उनको आलसी बनाया, वे कर भी क्या सकते हैं! और भगवान की वजह से वे परेशान हों!
उसके मंत्री बहुत हैरान हुए कि यह तो बड़ा उपद्रव का काम है। इसमें तो पूरा मुल्क आलसी हो जाएगा और यह खजाना लुट जाएगा अलग। खजाना आलसी तो भरते नहीं, कर्मठ भरते हैं। और आलसी पेंशन पाने लगें मुफ्त, तो सभी आलसी हो जाएंगे। पर राजा का हुक्म था, तो उन्होंने कोई तरकीब निकाली फिर। उन्होंने राजा से कहा, यह तो ठीक है। लेकिन असली आलसी कौन है, इसका कैसे पता चलेगा? राजा ने कहा, यह भी कोई पता लगाना है! यह तो पता चल जाएगा। तुम खबर कर दो कि जो लोग भी पेंशन लेने को उत्सुक हैं, राजमहल में इकट्ठे हो जाएं।
राजधानी से कोई दस हजार आदमी इकट्ठे हो गए। सम्राट ने सबके लिए घास की झोपड़ियां बनवाई थीं। उन सबको ठहरा दिया। रात सम्राट ने कहा, झोपड़ियों में आग लगा दो। जो आदमी झोपड़ी से बाहर न भागें, उनको पेंशन देंगे।
चार आदमी नहीं भागे। जब झोपड़ी में आग लग गई तो उन्होंने अपने कंबल ओढ़ लिए। उनके पड़ोस के लोगों ने कहा भी कि आग लगी है! उन्होंने कहा कि अगर कोई हमें ले जाए बाहर, तो ले जाए। बाकी यह अपने बस की बात नहीं है।
जो आलसी है, उसको आप कर्मठ बना भी कहां पाते हैं! जो कर्मठ है, उसे आलसी बनाने का कोई उपाय नहीं है। जिंदगी में हर आदमी जैसा है, वैसा है, यह नियति की धारणा है। इससे आप परेशान न हों कि लोग आलसी हो जाएंगे।
जिन मित्र ने पूछा है, लगता है, आलसी टाइप हैं। लोग हो जाएंगे, इसका तो क्या डर है। उनको डर होगा अपना। वे होंगे आलसी। समझा-बुझाकर कर्म में लगे होंगे। धक्का दे रहा होगा पिता, पत्नी, कोई धक्का दे रहा होगा कि लगो कर्म में। तो वे लगे होंगे अपने को समझाकर। सुनकर उन्हें घबड़ाहट हुई होगी कि यह तो बात गड़बड़ है। संसार आलसी हो जाएगा! संसार नहीं हो जाएगा।
लेकिन अगर आप आलसी हो सकते हैं, तो देर मत करें, हो जाएं। किसी की मत सुनें, चुपचाप हो जाएं। क्योंकि वही आपका स्वभाव है, वही आपका स्वधर्म है। फिर डरें मत। ध्यान रहे, इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब यह होता है कि फिर आलसी होने से जो परिणाम भोगना पड़ें, वे भोगें। पत्नी गाली देगी। पिता

डंडा लेकर खड़ा हो जाएगा। पास-पड़ोसी निंदा करेंगे। सब जगह बदनामी होगी। उसको शांति से सुनना कि वे लोग बदनामी करने में बंधे हैं, बदनामी कर रहे हैं। मैं आलसी हूं, मैं आलसी हूं।
अगर आप इतना भी कर पाएं, तो आपका आलस्य ही आपकी साधना हो जाएगी। कर्म
भी साधना बन जाता है, अगर हम उसे स्वीकार कर लें। आलस्य भी साधना बन जाता है, अगर हम उसे स्वीकार कर लें। अपने स्वभाव को स्वीकार करके जो निष्ठापूर्वक जीता है, परमात्मा उससे दूर नहीं है। वह स्वभाव कुछ भी हो।

प्रश्नः एक दूसरे मित्र ने भी यही पूछा है। उनको डर यह है कि अगर यह बात मान ली जाए कि नियति ठीक है, तो फिर चोर चोरी करता रहेगा, पापी पाप करेगा, हत्या करने वाला हत्या करेगा, फिर तो दुनिया बिल्कुल विकृत हो जाएगी। फिर दुनिया का क्या होगा?

दुनिया का इतना डर क्या है? आपसे दुनिया चल रही है? डर सदा अपना है। अगर हत्यारा सुनेगा कि नियति है; सब भगवान ने पहले से किया हुआ है; जिनको मारना है, अर्जुन से वे कह रहे हैं, उनको मैं पहले मार चुका; तो हत्यारा सोचेगा, बिल्कुल ठीक। जिसको मुझे मारना है, भगवान उसको पहले से मार चुके हैं। मैं तो निमित्त मात्र हूं। यह हत्यारे का ही डर है उसके भीतर।
लेकिन अच्छा है, अगर नियति की बात सोचकर आपके भीतर की असलियत बाहर आती हो, तो यह आत्म-निरीक्षण के लिए बड़ी कीमती है। अगर आपको ऐसा लगता हो कि स्वीकार कर लो सब और पहला ख्याल यह आता हो कि लेकर तिजोड़ी पड़ोसी की नदारद हो जाओ; तो यह आत्म-निरीक्षण के लिए बड़ा उपयोगी है। इससे आपके भीतर जो छिपा है, वह प्रकट होता है।
आप अभी तक अपने को समझ रहे हों कि साधु हैं, आप हैं चोर; नियति के विचार
ने आपको जाहिर कर दिया, उजागर कर दिया आपके सामने, नग्न रख दिया। आप अब तक सोचते हों, बड़ा शांतिवादी हूं; और अब पता चला कि दो-चार की हत्या करने में हर्ज क्या है! वे कृष्ण तो पहले ही हत्या कर चुके हैं, मैं तो अर्जुन हूं, निमित्त मात्र! तो मैं कर दूं? तो आपको पता चला कि साधुता वगैरह सब ओछी, थोथी, ऊपर-ऊपर थी। भीतर यह असली खूनी छिपा है।
नियति का विचार भी आपको आत्म-निरीक्षण का कारण बन जाएगा, एक। और दूसरी बात, नियति के विचार की पूरीशृंखला को समझ लेना जरूरी है। आप सोचते हों कि मैं किसी का सिर खोल दूं, क्योंकि यह तो नियति है। लेकिन वह भी आपका सिर खोलेगा, तब? तब भी नियति ही मानना। तब नाराज मत हो जाना। तब चिंतित मत होना। जब आप किसी की तिजोड़ी लेकर जाएं, वह तो ठीक है। लेकिन जब कोई आपकी तिजोड़ी लेकर चला जाए, या चार आदमी रास्ते में मिलकर आपकी तिजोड़ी छीन लें... ।
मैंने सुना है, एक चोर पर मुकदमा चला। तीसरी बार मुकदमा चला। और मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि तुम तीसरी बार पकड़े गए हो। दो बार भी तुम्हारे खिलाफ कोई गवाही नहीं मिल सकी, कोई चश्मदीद गवाह नहीं मिला, जिसने तुम्हें चोरी करते देखा हो। अब तुम तीसरी दफे भी पकड़े गए हो, लेकिन कोई गवाह नहीं है। तुम क्या अकेले ही चोरी करते हो? कोई साझीदार, कोई पार्टनर नहीं रखते? उस चोर ने कहा कि दुनिया इतनी बेईमान हो गई कि किसी से साझेदारी करना ठीक नहीं है।
चोर भी सोचते हैं कि ईमानदार से साझेदारी करो, कि दुनिया इतनी बेईमान
हो गई कि साझेदारी चलती ही नहीं! अकेले ही करना है, जो करना है। किसी का भरोसा नहीं है। चोर भी चाहता है कि कोई भरोसे वाला आदमी मिले।
ध्यान रखना, आप जब किसी का सिर खोल दें, तभी नियति नहीं है। जब वह लौटकर आपका सिर खोल दे, तब भी नियति है। अगर दोनों की स्वीकृति हो, तो आप जाएं और सिर खोल दें; देर मत करें। अगर ये दोनों की स्वीकृति हो कि जब आप किसी की चोरी करें, तब भी; और जब कोई आपका सब छीनकर ले जाए, तब भी। नियति का मतलब यह नहीं है कि आपके पक्ष में जो है वह नियति। नियति के दोनों पहलू हैं।

ध्यान रहे, जो आदमी नियति को स्वीकार कर लेता है, उसका जीवन इतना शांत, इतना मौन हो जाता है कि अगर परमात्मा ही चाहे, तो ही उससे चोरी होगी। इसे समझ लें ठीक से।
वह इतना मौन और शांत हो जाता है सब स्वीकार करके कि अगर परमात्मा ही चाहे, तो ही उससे हत्या होगी। आप, परमात्मा चाहे कि न हो हत्या, तो भी कर रहे हैं। आप, परमात्मा चाहे कि न हो चोरी, तो भी कर रहे हैं। आप अपना ही हिसाब लगाकर जी रहे हैं। इस जगत की विराट योजना में आपकी अलग ही दुनिया है। आपका अलग अपना ढांचा है। अलग पटरियां हैं, उन पर आप दौड़ रहे हैं। नियति मानने वाले का अर्थ यह है कि जो भी है, उसे समग्रता में स्वीकार है, जो भी परिणाम हो। वह यह नहीं कहेगा कि यह बुरा हुआ मेरे साथ। अगर कल आप पकड़ गए चोरी में और अदालत ने आपको सजा दी, तो आप क्या कहेंगे फिर? क्या आप यह कहेंगे कि मेरे साथ बुरा हुआ, मैं तो नियति का ही काम कर रहा था? मजिस्ट्रेट भी नियति का ही काम कर रहा है। और वह जो पुलिस वाला आपको हथकड़ियां डाले हुए खड़ा है, वह भी नियति का ही काम कर रहा है। नियति की स्वीकृति का अर्थ है, इस जगत में अब मुझे कोई भी शिकायत नहीं।
इसे ठीक से समझ लें।
नियति की स्वीकृति का अर्थ है कि कोई शिकायत नहीं मुझे जगत में। जो भी
हो रहा है, उसकी मर्जी। फिर मैं आपसे कहता हूं कि अगर इतनी हिम्मत हो आपकी, सब स्वीकार करने की, तो मैं आपको हक देता हूं कि चोरी, हत्या, जो भी करना हो, करना। लेकिन इतनी स्वीकृति पहले आ जाए।
अब तक ऐसा हुआ नहीं। जब इतनी स्वीकृति आ जाती है, तो आदमी अपने को तो छोड़ ही देता है। आप हत्या करते हैं इसलिए कि आप अहंकार से जीते हैं। किसी ने जरा-सी चोट पहुंचा दी, मिटा डालूंगा उसको! किसी ने जरा-सी गाली दे दी, तो आप आग से भर जाते हैं। वह आग आपके अहंकार से आती है।
जो आदमी नियति को मान लेता है, उसका अहंकार तो समाप्त हो गया। वह कहता है, मैं तो हूं ही नहीं। अब जो भी हो। इस हालत में जो भी होगा, उसका जिम्मा परमात्मा का है, आपका जिम्मा नहीं है।
और यह दुनिया, हमें डर लगता है कि कहीं बिगड़ न जाए। जैसे कि दुनिया बहुत अच्छी हालत में है और बिगड़ने का और कोई उपाय भी है!
लोग मेरे पास निरंतर आते हैं, वे इसी फिक्र में रहते हैं कि दुनिया बिगड़ जाएगी! जैसे कि अभी कुछ बचा है बिगड़ने को! क्या बचा है बिगड़ने को? क्या डर है अब खोने के लिए? हमारी हालत ऐसी है कि जैसे नंगा नहा रहा है और सोच रहा है कि कपड़े कहां सुखाएंगे? कपड़े भी तो हों! तो वह चिंता में ही पड़ा है। वे नहा भी नहीं रहे हैं इसी डर से कि कपड़े कहां सुखाएंगे?
दुनिया इससे बुरी हालत में और क्या हो सकती है, जिस हालत में है! और इतनी बुरी हालत में किस कारण से है? इसलिए नहीं कि हमने नियति को मान लिया है, इसलिए इतनी बुरी हालत में है। इसीलिए कि हम सब कोशिश में लगे हैं इसे और अच्छा बनाने की। हमने इसे स्वीकार नहीं किया है। हम सब कोशिश में लगे हैं इसे बनाने की। हम सब इसे अच्छा करने की कोशिश में लगे हैं, अपने-अपने ढंग से, अपने-अपने इरादे से। अपनी-अपनी छोटी-छोटी दुनिया सबने बांट रखी है, उसको अच्छा कर रहे हैं।
एक चोर भी अगर चोरी कर रहा है, तो किस लिए? कि बच्चों के लिए शिक्षा दे सके; कि उसकी पत्नी के पास भी एक हीरे का हार हो जाए; कि उसके पास भी एक छोटा मकान हो, अपनी बगिया हो, कि अपनी एक गाड़ी हो। वह भी अपने कोने में अपनी दुनिया को अच्छा बनाने में, हीरे से जड़ने में, बगीचे से बसाने में लगा हुआ है।
जो भी हम इस दुनिया में कर रहे हैं, उस सबमें हम कुछ अपनी नजर से अच्छा करने की कोशिश में लगे हैं। अच्छा करने के लिए हम सोचते हैं, थोड़ा बुरा भी करना पड़े, तो हर्ज क्या है, कर लो! हम सोचते हैं, इतना अच्छा करेंगे, इसमें थोड़ी-सी बुराई भी हुई, तो क्षम्य है।
नियति का अर्थ है कि हम दुनिया को बनाने की चिंता में नहीं लगे हैं। दुनिया जैसी है, उसको उसके हाल पर छोड़कर, हम जहां हैं, वहां चुपचाप जी रहे

हैं। हम दुनिया को छू भी नहीं रहे हैं कि इसको अच्छा बनाएंगे। ऐसी अगर संभावना बढ़ जाए जगत में, तो दुनिया इससे लाख गुना बेहतर होगी।
दुनिया को सुधारने वाले लोगों ने जितना उपद्रव खड़ा किया है, उतना किसी ने भी खड़ा नहीं किया। वे मिस्चीफ मेकर्स हैं। उनकी बातों से ऐसा लगता है कि सारी दुनिया अच्छी करने में वे लगे हैं, लेकिन वे चीजों को विकृत करते चले जाते हैं। क्यों? क्योंकि वे परमात्मा के हाथ से, नियति के हाथ से, यंत्र अपने हाथ में ले लेते हैं, कर्ता स्वयं हो जाते हैं।
यह हमें बहुत उलटा लगेगा, क्योंकि हमारे सोचने का सारा ढांचा इस पर निर्भर है कि हम कुछ करें, कुछ करके दिखाएं। बाप अपने बेटे को समझा रहा है, कुछ करके दिखाओ, दुनिया में आए हो तो।
इतना ही काफी होगा कि दुनिया को तुम्हारे होने का पता ही न चले। इससे बड़ी और कोई बात तुम नहीं कर सकते हो। तुम ऐसे रह जाओ कि पता ही न चले कि तुम थे। तुम्हारे जाने पर कहीं कोई शोर-शराबा न हो, कहीं कोई पत्ता भी न हिले।
तो तुम, परमात्मा जैसा चाहता है, उस ढंग से जीए।
लेकिन कुछ करके दिखाओ, उसका मतलब है, अहंकार को कुछ प्रकट करके दिखाओ।
यह जो हमारे सोचने का ढंग है, कर्मवादी, वह नियति के बिल्कुल प्रतिकूल है।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जो नियति को स्वीकार कर लेगा, वह कुछ करेगा ही नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि कुछ करेगा ही नहीं।
हमारे तर्क बड़े अजीब हैं। एक मित्र कहता है कि वह कुछ करेगा ही नहीं;
और एक मित्र कहता है, वह हत्या करेगा, चोरी करेगा। या तो करेगा तो बुरा करेगा, नियति को करने वाला; और या फिर कुछ करेगा ही नहीं। ये दो हमारी धारणाएं हैं।
नहीं, नियति को स्वीकार करने वाला कर्ता नहीं रहेगा। परमात्मा जो करवा रहा है, करता रहेगा। अपनी तरफ से कुछ करना नहीं जोड़ेगा। बहेगा, तैरेगा नहीं। उसकी धारा में बहता चला जाएगा।
और बुरा! बुरा तो हम करते ही तब हैं, जब अहंकार हममें गहन होता है। सब बुराई की जड़ में मैं है। जिसके पास मैं नहीं है, उससे कुछ बुरा नहीं होने वाला है। और अगर बुरा हमें दिखाई भी पड़े, तो परमात्मा की कोई मर्जी होगी, उस बुरे से कुछ भला होता होगा।

अब हम सूत्र को लें।
इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर कृष्ण बोले, हे अर्जुन! मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूं। इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित हुए योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे। इससे तू खड़ा हो और यश को प्राप्त कर तथा शत्रुओं को जीत, धनधान्य से संपन्न हो। ये सब शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं।
हे सव्यसाचिन्! तू तो केवल निमित्त मात्र हो जा। तथा इन द्रोणाचार्य
और भीष्म पितामह, जयद्रथ और कर्ण और भी बहुत-से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू मार और भय मत कर, निस्संदेह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा, इसलिए युद्ध कर।
यह नियति की धारणा की पूरी व्याख्या इस सूत्र में है।
हे अर्जुन! इस क्षण तू जो मेरा भयंकर रूप देख रहा है, विकराल, इस क्षण
तू जो देख रहा मेरे मुंह से मृत्यु, इस क्षण तू जो देख रहा है अग्नि की लपटें मेरे मुंह से निकलती हुई, योद्धाओं को दौड़ता हुआ मृत्यु में, मेरे मुंह में, उसका कारण है। मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। इस क्षण मैं एक महानाश के लिए उपस्थित हुआ हूं। इस क्षण एक विराट विनाश होने को है। और उस विराट विनाश के लिए मेरा मुंह मृत्यु बन गया है। मैं इस समय महाकाल हूं। यह मेरा एक पहलू है विध्वंस का। यह मेरा एक रूप है।
एक रूप है मेरे सृजन का, एक रूप है मेरे विध्वंस का। अभी मैं विध्वंस
के लिए उपस्थित हूं। यह तेरे सामने जो युद्ध के लिए तत्पर शूरवीर खड़े हैं, मैं इन्हें लेने आया हूं। ये मेरी तरफ दौड़ रहे हैं, ऐसा ही नहीं। मैं इन्हें लेने आया हूं। ये पतंगों की तरह दौड़ते दीए की तरफ जो योद्धा हैं, ये

अपने आप दौड़ रहे हैं, ऐसा नहीं। मैं इन्हें निमंत्रण दिया हूं। ये थोड़ी ही देर में मेरे मुंह में समा जाएंगे। तूने भविष्य में झांककर देख लिया है।
मेरे मुंह में तू अभी जो देख रहा है, वह थोड़ी देर बाद हो जाने वाली घटना है। इस संबंध में थोड़ी-सी समय की बात समझ लें।
भविष्य वही है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए हम सोचते हैं, नहीं है। क्योंकि जो हमें दिखाई पड़ता है, सोचते हैं, है। जो नहीं दिखाई पड़ता है, सोचते हैं, नहीं है। भविष्य हमें दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए सोचते हैं, नहीं है।
लेकिन जो नहीं है, वह हो कैसे जाएगा? जो नहीं है, वह आ कैसे जाएगा? शून्य से तो कुछ आता नहीं। जो किसी गहरे अर्थ में आ ही न गया हो, वह आएगा भी कैसे?
एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक डेलाबार प्रयोगशाला में, आक्सफोर्ड में, फूलों
के चित्र ले रहा था। और एक दिन बहुत चकित हुआ। उसने एक बहुत ही संवेदनशील नई खोजी गई फिल्म पर एक गुलाब की कली का चित्र लिया। लेकिन वह चकित हो गया। कली तो थी बाहर और चित्र आया फूल का। तो घबड़ा गया कि यह हुआ कैसे! पर उसने प्रतीक्षा की। और हैरानी तो तब उसकी बढ़ गई कि जब वह कली खिलकर फूल बनी, तो वह ठीक वही फूल थी, जिसका चित्र आ गया था।
डेलाबार प्रयोगशाला एक अनूठी प्रयोगशाला है दुनिया में। और वहां वे प्रयोग करते हैं इस बात के कि अगर फूल थोड़ी देर बाद खिलने वाला है, तो किसी गहरे सूक्ष्म तल पर अभी भी पंखुड़ियां खिल गई होंगी। तब तक, जब यह घटना घटी थी, आज से कोई दस साल पहले, तब तक वैज्ञानिकों के पास कोई व्याख्या नहीं थी कि यह फूल का फोटो कैसे आया? जो फूल अभी है नहीं, थोड़ी देर बाद होगा; अभी तो कली है, तो फूल का चित्र आने का अर्थ क्या हुआ?
लेकिन फिर रूस में एक दूसरे विचारक और वैज्ञानिक ने, जो कि फोटोग्राफी पर काम कर रहा है गहन पिछले तीस वर्षों से, उसने राज खोजा निकाला। उसने हजारों चित्र लिए हैं भविष्य के, थोड़ी देर बाद के। और उसने जो आधार खोज निकाला है, वह यह है कि जब फूल की कली खिलती है, तो खिलने के पहले--अभी फूल तो बंद है--खिलने के पहले फूल के आस-पास का जो प्रकाश-आभा है, प्रकाश-वर्तुल है, फूल की पत्तियों से जो किरणें निकल रही हैं, वे खिल जाती हैं पहले। वे रास्ता बनाती हैं पंखुड़ियों के खिलने का; वे पहले खिल जाती हैं। प्रकाश की सूक्ष्म किरणें पहले खिल जाती हैं, ताकि रास्ता बन जाए। फिर उन्हीं के आधार पर, उन्हीं प्रकाश की किरणों के आधार पर फूल की पंखुड़ियां खिलती हैं।
तो वह जो चित्र आया था धुंधला, वह उन प्रकाश की पत्तियों का था, जो असली हमारी आंख में दिखाई पड़ने वाली पत्तियों के पहली खिलती हैं।
इस रूसी वैज्ञानिक का कहना है कि हम बहुत शीघ्र आदमी की मृत्यु का चित्र ले सकेंगे। क्योंकि मरने के पहले प्रकाश के जगत में उसकी मृत्यु घट जाती है। हम तो बहुत दिन से मानते हैं कि छः महीने पहले, मरने के छः महीने पहले आदमी की जो आभा है, उसका जो ऑरा है, उसका जो प्रकाशमंडल है, वह धूमिल हो जाता है। और प्रकाशमंडल की किरणें जो बाहर जा रही थीं, वे लौटकर वापस अपने में गिरने लगती हैं, जैसे पंखुड़ी बंद हो जाती है।
इस रूसी वैज्ञानिक का कहना है कि अब हम चित्र ले सकते हैं। एक और अनूठी घटना उसको खुद घटी। वह प्रयोग कर रहा था; कुछ फूलों के चित्र ले रहा था। वह चकित हुआ कि हाथ में फूल लिए हुए उसने एक चित्र लिया, तो उसके हाथ का जो चित्र आया, वह बहुत अजीब था। ऐसा कभी नहीं आया था। हाथ का उसका चित्र कई बार आया था फूल के साथ। लेकिन इस बार इस हाथ की हालत बड़ी अजीब थी, जैसे हाथ अस्तव्यस्त था। और हाथ में जो किरणें दिखाई पड़ रही थीं, वे एक-दूसरे से लड़ रही थीं। लेकिन हाथ ठीक वैसा ही था। कोई तकलीफ न थी। कोई अड़चन न थी। कोई बीमारी न थी।
तीन महीने बाद बीमार पड़ा वह और उसके हाथ में फोड़े-फुंसी आए। और उसके हाथ की चमड़ी पर रोग फैल गया। तब उसने जो चित्र लिया हाथ का, तब उसे पता चला कि वह ठीक जो तीन महीने पहले झलक मिली थी, वही झलक गहरी हो गई है। फिर उसने

स्वस्थ हाथों के चित्र लिए। उनमें किरणों की झलक अलग है; हारमोनियस है। सब किरणें लयबद्ध हैं। बीमार--लय टूट जाती है।
उसका कहना है कि अगर हाथ में कोई बीमारी आ रही हो, तो तीन महीने पहले हाथ की किरणों की लय टूट जाती है। उसका कहना यह भी है कि बहुत शीघ्र हम अस्पतालों में इसकी व्यवस्था कर सकेंगे कि आदमी बीमार होने के पहले सूचित किया जा सके, कि तुम फलां बीमारी से इतने महीने बाद परेशान हो जाओगे। अभी इलाज कर लो, ताकि वह बीमारी न आ सके।
भविष्य का अर्थ है कि हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। ऐसा समझें कि मैं एक बहुत लंबे वृक्ष के नीचे बैठा हूं, आप वृक्ष के ऊपर बैठे हैं। एक बैलगाड़ी रास्ते से आती है; मुझे दिखाई नहीं पड़ रही है। रास्ता लंबा है, मुझे दिखाई नहीं पड़ रही। मेरे लिए बैलगाड़ी अभी नहीं है; भविष्य में है। आप झाड़ के ऊपर बैठे हैं, आपको बैलगाड़ी दिखाई पड़ती है। आप कहते हैं, एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है। मैं कहता हूं, झूठ। बैलगाड़ी रास्ते पर नहीं है। आप कहते हैं, थोड़ी देर में दिखाई पड़ेगी। तुम्हारे लिए अभी भविष्य में है, मेरे लिए वर्तमान में है, क्योंकि मुझे दूर तक दिखाई पड़ रहा है।
फिर बैलगाड़ी आती है और मैं कहता हूं, आपकी भविष्यवाणी सच थी। कोई भविष्यवाणी न थी, सिर्फ दूर तक दिखाई पड़ रहा था। फिर बैलगाड़ी चलती हुई आगे निकल जाती है। थोड़ी देर बाद मुझे दिखाई नहीं पड़ती। मैं कहता हूं, बैलगाड़ी फिर खो गई। आप वृक्ष के ऊपर से कहते हैं, अभी भी नहीं खोई बैलगाड़ी। अभी भी रास्ते पर है, क्योंकि मुझे दिखाई पड़ रही है।
जैसे जमीन पर बैठकर अलग दिखाई पड़ता है, वृक्ष पर बैठकर ज्यादा दिखाई पड़ता है। ठीक चेतना की भी अवस्थाएं हैं। जहां हम खड़े हैं... ।
जैसे मैंने चार अवस्थाएं कहीं आपसे। पहली, जहां मैं की भीड़ है। वहां
से हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। जब तक ठीक हमारी आंख के सामने न आ जाए, हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। फिर एक मैं रह जाए; हमारी दृष्टि बढ़ जाती है। हम ऊंचे तल पर आ गए; भीड़ से ऊपर उठ गए। एक बड़े वृक्ष पर बैठे हुए हैं। हमें दूर तक दिखाई पड़ने लगता है। कोई चीज आती है, उसके पहले दिखाई पड़ने लगती है। फिर तीसरा और ऊंचा तल है, जहां कि मुझे पता चल गया कि मैं नहीं हूं। यह बड़ी ऊंचाई आ गई। इस ऊंचाई से वे चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं, जो बहुत दूर हैं; कभी होंगी। फिर एक और ऊंचाई है, जहां कि मैं नहीं हूं, यह भी नहीं बचा। यह आखिरी ऊंचाई है। इससे ऊपर जाने का कोई उपाय नहीं है। यहां से सब दिखाई पड़ने लगता है। ऐसी अवस्था के व्यक्ति को हमने सर्वज्ञ कहा है। इसके लिए फिर कुछ भी भविष्य नहीं रह जाता है। इसके लिए सभी कुछ वर्तमान हो जाता है। यह जो कृष्ण में अर्जुन को दिखाई पड़ा योद्धाओं का समा जाना और वह घबड़ाकर पूछने लगा। कृष्ण उससे कह रहे हैं कि तू भयभीत न हो अर्जुन। मैं इन युद्ध के लिए इकट्ठे हुए वीरों का अंत करने के लिए आया हूं। मैं इस समय महाकाल हूं। उसकी ही झलक तूने देख ली, जो थोड़ी देर बाद होने वाला है। उसका प्रि-व्यू, उसकी पूर्व-झलक तुझे दिखाई पड़ गई है।
इससे तू खड़ा हो, यश को प्राप्त कर, शत्रुओं को जीत। ये शूरवीर पहले से
ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। तू यह चिंता भी मत कर कि तू इन्हें मारेगा। तू यह ध्यान भी मत रख कि तू इनके मारने का कारण है। तू कारण नहीं है, तू निमित्त है।
निमित्त और कारण में थोड़ा फर्क हमें समझ लेना चाहिए। कारण का तो अर्थ होता है, जिसके बिना घटना न घट सकेगी। निमित्त का अर्थ होता है, जिसके बिना भी घटना घट सकेगी।
आप पानी गर्म करते हैं। गर्म करना, आग कारण है। अगर आग न हो, तो फिर पानी गर्म नहीं हो सकेगा। कोई उपाय नहीं है। लेकिन जिस बर्तन में रखकर आप गर्म कर रहे हैं, वह कारण नहीं है, वह निमित्त है। इस बर्तन के न होने पर कोई दूसरा बर्तन होगा, कोई तीसरा बर्तन होगा। बर्तन न होगा, तो कोई और उपाय भी हो सकता है। जिस चूल्हे पर आप गर्म कर रहे हैं, यह चूल्हा न होगा, तो कुछ और होगा। कोई सिगड़ी होगी। कोई स्टोव होगा। कोई बिजली का यंत्र होगा। कोई और उपाय हो सकता है। गर्मी तो कारण है। लेकिन ये सब निमित्त हैं।

आप गर्म कर रहे हैं, यह भी निमित्त है। कोई और गर्म कर सकता है--कोई पुरुष, कोई स्त्री, कोई बच्चा, कोई बूढ़ा, कोई जवान। आप भी नहीं होंगे, तो कोई गर्म नहीं होगा पानी, ऐसा नहीं है। एक बात, आग चाहिए, वह कारण है। बाकी सब निमित्त है। निमित्त बदले जा सकते हैं, कारण नहीं बदला जा सकता।
कृष्ण यह कह रहे हैं, कारण तो मैं हूं, तू निमित्त है। अगर तू नहीं मारेगा, कोई और मारेगा। इनकी मृत्यु होने वाली है। इनकी मृत्यु आ चुकी है। इनकी मृत्यु एक अर्थ में घटित हो चुकी है। मैं इन्हें मार ही चुका हूं अर्जुन। अब तू तो सिर्फ मुर्दों को मारने के काम में लगाया जा रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन की मुझे एक घटना याद आती है। मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक योद्धा आया। और वह योद्धा काफी हाउस में बैठकर अपनी बहादुरी की बड़ी चर्चा करने लगा। और उसने कहा, आज युद्ध बड़ा घमासान था। और मैंने न मालूम कितने लोगों की गर्दनें साफ कर दीं। गिनती भी नहीं है। कितने लोगों को मैंने काटकर गिरा दिया, जैसे कोई घास काट रहा हो।
नसरुद्दीन भी बैठा था, उससे नहीं रहा गया। उसने कहा, यह कुछ भी नहीं।
एक दफा मेरे जीवन में भी ऐसा मौका आया था। युद्ध में मैं भी गया था। और गिनती तो नहीं की, लेकिन फिर भी अंदाज से कहता हूं, कम से कम पचास आदमियों की टांगें मैंने ऐसे काट डालीं, जैसे घास काटा हो।
उस योद्धा ने कहा, टांगें! हमने कभी सुना नहीं कि टांगें भी युद्ध में काटी जाती हैं! सिर काटने चाहिए थे। नसरुद्दीन ने कहा, सिर तो कोई पहले ही काट चुका था। वह मौका मुझे नहीं मिला। मैं तो गया तो देखा कि सिर तो कटे पड़े थे, मैंने कहा, क्यों चूकना। मैंने टांगें काट डालीं। कोई गिनती नहीं है।
यह कृष्ण अर्जुन से यही कह रहे हैं कि तू बहुत परेशान मत हो, जिनको तू मारने की सोच रहा है, उनको मैं पहले ही काट चुका हूं। टांगें ही काटने का तेरे ऊपर जिम्मा है, सिर कट चुके हैं। और ये टांगें काटने के कारण, अकारण ही तू यश को प्राप्त हो जाएगा, धन को, राज्य को। वह तेरी मुफ्त उपलब्धि होगी, सिर्फ निमित्त होने के कारण। जिन्हें तू सोचता है कि इन्हें मारने से हिंसा लगेगी, वे मर चुके हैं, वे मृत हैं। तू सिर्फ मुर्दों को आखिरी धक्का दे रहा है। जैसे ऊंट पर कोई आखिरी तिनका रखे और ऊंट बैठ जाए। बस, तू आखिरी तिनका रख रहा है। और ऊंट बैठने के ही करीब है। तू नहीं सहारा देगा, तो कोई और यह तिनका रख देगा। यह पैर काटने का काम दूसरा भी कर सकता है, क्योंकि गर्दन काटने का असली काम हो चुका है। नियति उन्हें काट चुकी है। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि दुर्योधन जहां खड़ा है, उसके साथी जहां खड़े हैं, उसके मित्रों की फौज जहां खड़ी है, वे जो कुछ भी कर चुके हैं, घड़ा भर चुका है, फूटने के करीब है। तू मुफ्त ही यश का भागी हो जाएगा। तू यह मौका मत छा.ेड। और ध्यान रखना कि तू निमित्त ही था, इसलिए किसी अहंकार को बनाने की चेष्टा मत करना, कि मैं जीत गया, कि मैंने मार डाला।
इसमें दोहरी बातें हैं। एक तो कृष्ण यह कह रहे हैं, तू नियति को स्वीकार कर ले। जो हो रहा है, उसे हो जाने दे। और दूसरा, उससे भी महत्वपूर्ण जो बात है, वह यह कह रहे हैं कि अगर तू जीत जाएगा... । और जीत जाएगा, क्योंकि मैं तुझसे कहता हूं, जीत निश्चित है। जीत हो ही गई है। तू जैसा है, उसके कारण तू जीत गया है। तू जो करेगा, उसके कारण नहीं। तू जैसा है, उसके कारण तू जीत गया है।
राम और रावण को युद्ध पर खड़े देखकर कहा जा सकता है कि राम जीत जाएंगे। जिसको जीवन की गहराइयों का पता है, जिसे सूत्र पढ़ने आते हैं, वह कह सकता है कि राम जीत जाएंगे। राम जीत ही गए हैं। क्योंकि रावण जो भी कर रहा है, वे हारने के ही उपाय हैं। बुराई हारने का उपाय है। राम कुछ भी बुरा नहीं कर रहे हैं। वे जीतते जा रहे हैं। वह जो अच्छा करना है, वह जीतने का उपाय है। तो हारने के पहले भी कहा जा सकता है कि रावण हार जाएगा।
हारने के पहले कहा जा सकता है कि दुर्योधन और उसके साथी हार जाएंगे। उन्होंने जो भी किया है, वह पाप पूर्ण है। उन्होंने जो भी किया है, वह बुरा है। सबसे बड़ी बुराई उन्होंने क्या की है? सबसे बड़ी बुराई उन्होंने यह की

है कि जगत की सत्ता से अपने को ता.ेडकर वे निरे अहंकारी हो गए हैं। उन्होंने प्रवाह से अपने को तोड़ लिया है।
ऐसा समझें। हमें दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए समझना मुश्किल होता है। एक नदी में हम दो लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े डाल दें। और एक टुकड़ा चेष्टा करने लगे नदी के विपरीत धारा में बहने की। करेगा नहीं, क्योंकि लकड़ी के टुकड़े इतने नासमझ नहीं होते, जितने आदमी होते हैं! मगर मान लें कि आदमियों जैसे लकड़ी के टुकड़े हैं। आदमियों की बीमारी उनको लग गई। आदमियों के साथ रहने से इनफेक्शन हो गया। और एक टुकड़ा नदी की तरफ ऊपर बहने लगा।
क्योंकि आदमी को हमेशा धारा के विपरीत बहने में मजा आता है। धारा में बहने में क्या रखा है? कोई भी बह जाता है। कुछ उलटा करो। चौगड्डे पर आप शीर्षासन लगाकर खड़े हो जाएं, भीड़ लग जाएगी। पैर पर खड़े रहें, कोई देखने नहीं आएगा! क्या, मामला क्या है? सिर के बल जो आदमी खड़ा है, उलटा कुछ कर रहा है। यह आकर्षित करता है।
आदमी उलटा करने में उत्सुक है। क्यों? क्योंकि उलटे से अहंकार सिद्ध होता है। सीधे से कोई अहंकार सिद्ध होता नहीं। अगर आप किसी को रास्ते में से चलते में से गिर रहा हो कोई, सम्हाल लें; अखबार में कोई खबर नहीं छपेगी। रास्ते में कोई चल रहा हो, धक्का देकर गिरा दें, दूसरे दिन खबर छप जाएगी। कुछ अच्छा करिए, दुनिया में किसी को पता नहीं चलेगा। कुछ बुरा करिए, फौरन पता चल जाएगा।
अखबार उठाकर देखते हैं आप! पहली लकीर से लेकर आखिरी लकीर तक, सारी लकीर उन लोगों के बाबत है, जो कुछ उलटा कर रहे हैं। कहीं कोई दंगा-फसाद हो रहा हो, कहीं कोई हड़ताल हो रही हो, कहीं कोई चोरी, कहीं डाका, कहीं कोई ट्रेन उलटाई हो, कहीं कुछ उपद्रव हुआ हो, तो अखबार में खबर बनती है।
आदमी उलटे में उत्सुक है, तो हो सकता है, लकड़ी का टुकड़ा उलटा बहे। जो टुकड़ा उलटा बहेगा, हम पहले से ही कह सकते हैं किनारे खड़े हुए कि यह हारेगा। इसमें कोई बड़ी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। क्योंकि धारा के विपरीत लकड़ी का टुकड़ा बहने की कोशिश कर रहा है। यह हारेगा, अर्जुन! कृष्ण कह सकते हैं कि यह हारेगा।
और जो नदी की धारा के साथ बह रहा है, हम कह सकते हैं, इसको हराने का कोई उपाय नहीं है। इसको हराइएगा कैसे? इसने कभी जीतने की कोई कोशिश ही नहीं की। इसको हराइएगा कैसे? यह तो नदी की धारा में पहले से ही बह रहा है, स्वीकार करके। यह तो कहता है, धारा ही मेरा जीवन है। जहां ले जाए, जाऊंगा। कहीं और मुझे जाना नहीं है।
राम नदी की धारा में बहते हुए हैं। इसलिए पहले से ही कहा जा सकता है,
वे जीतेंगे। रावण हारेगा, वह धारा के विपरीत बह रहा है।
यह कृष्ण अर्जुन से जो कह रहे हैं, यह किसी पक्षपात के कारण नहीं कि मैं तेरे पक्ष में हूं, तेरा मित्र हूं, इसलिए तू जीतेगा। इसका गहन कारण यह है कि कृष्ण देख सकते हैं कि अर्जुन जिस पक्ष में खड़ा है, वह धारा के अनुकूल बहता रहा है। और अर्जुन के विपरीत जो लोग खड़े हैं, वे धारा के प्रतिकूल बहते रहे हैं। उनकी हार निश्चित है। वे हारेंगे, पराजित होंगे। इसलिए तू नाहक ही अड़चन में पड़ रहा है। और तेरी अड़चन तुझे धारा के विपरीत बहने की संभावना जुटाए दे रही है। तू है क्षत्रिय। तेरी सहज धारा, तेरा स्वधर्म यही है कि तू लड़। और लड़ने में निमित्त मात्र हो जा। तू संन्यास की बातें कर रहा है, वे उलटी बातें हैं।
अर्जुन अगर संन्यासी हो जाए, तो प्रभावित बहुत लोगों को करेगा। प्रभावशाली व्यक्ति था। लेकिन हो नहीं पाएगा संन्यासी। और अगर संन्यास लेकर बैठ भी जाए कहीं जंगल में ध्यान वगैरह करने, तो ज्यादा देर नहीं चलेगा ध्यान वगैरह उसका! एक हरिण दिखाई पड़ जाएगा और उसके हाथ धनुष-बाण खोजने लगेंगे। और एक कौआ ऊपर से बीट कर देगा, तो पत्थर उठाकर उसका वह वहीं फैसला कर देगा। वह जो उसका होना है, जो स्वधर्म है उसका, वह योद्धा है।
उसमें कहीं भी कोई व्यवस्था नहीं है, जिससे कि वह संन्यासी हो सके।
तो कृष्ण उससे कह रहे हैं कि तू नदी में उलटे बहने की कोशिश कर रहा है।
अगर तू सोचता है कि मैं ऐसा करूं, वैसा करूं; यह ठीक नहीं है, वह ठीक है... ।

कृष्ण उससे कह रहे हैं, तू सिर्फ बह जा, नियति के हाथ में छोड़ दे। तू निमित्त हो जा। उनकी हार निश्चित है। और विपक्ष में खड़े योद्धा मेरे मुंह में जा रहे हैं, मृत्यु में, यह निश्चित है। वे पहले ही मारे जा चुके हैं। ये द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, ये जयद्रथ और कर्ण, जो महाप्रतापी हैं, महावीर हैं, इनसे भी तू भय मत कर। क्योंकि जिनके साथ ये खड़े हैं, वे गलत लोग हैं। उनके साथ ये पहले ही डूब चुके।
भीष्म पितामह भले आदमी हैं। लेकिन गलत लोगों के साथ खड़े हैं। अक्सर भले आदमी कमजोर होते हैं। और अक्सर भले आदमी कई दफा चुपचाप बुराई को सह लेते हैं और बुराई के साथ खड़े हो जाते हैं। ये जो खड़े हैं बुराई के साथ, ये कितने ही भले हों, और इनके पास कितनी ही शक्ति हो, तेरी शक्ति से ये नहीं कटेंगे, विराट की शक्ति के विपरीत होने से ये कट गए हैं।
इस अर्थ को ठीक से समझ लें।
तू इन्हें नहीं मार पाएगा। अर्जुन और कर्ण में सीधा मुकाबला हो सकता था। और कुछ तय करना मुश्किल है कि कौन जीतेगा। वे एक ही मां के बेटे हैं। और कर्ण रत्तीभर भी कम नहीं है। डर तो यह है कि वह ज्यादा भी साबित हो सकता है। लेकिन हारेगा। कोई ताकत के कारण ही नहीं, हारेगा इसलिए कि विराट की शक्ति के विपरीत खड़ा है। जो विराट चाहता है, उसके विपरीत खड़ा है। विराट के विपरीत खड़ा होना खतरनाक है। फिर कभी छोटा आदमी भी हरा सकता है।
जापान में जुजुत्सु, जूडो की कला होती है। उसमें छोटा बच्चा भी पहलवान को हरा देता है। स्त्री भी पुरुष को हरा देती है। अभी तो पश्चिम में चूंकि स्त्रियों का आंदोलन चलता है, लिब मूवमेंट, स्वतंत्रता का, तो सभी स्त्रियां जुजुत्सु सीख रही हैं। क्योंकि पुरुषों से अगर टक्कर लेनी पड़े, तो क्या उपाय है? क्योंकि पुरुष शरीर से तो ज्यादा ताकतवर है। इसलिए अमेरिका में नगर-नगर में जुजुत्सु के स्कूल खुलते जा रहे हैं। स्त्रियां ट्रेनिंग ले रही हैं। और थोड़े सावधान रहना, आज नहीं कल यहां भी लेंगी ही। अगर जुजुत्सु की ट्रेनिंग ठीक से ले ली हो, तो बड़े से बड़ा ताकतवर पुरुष साधारण कमनीय स्त्री से हार जाता है। कला क्या है? कला यही है, जो कृष्ण कह रहे हैं।
जुजुत्सु की कला यह है कि विराट के साथ रहना। इस आदमी की फिक्र मत करना, विराट की फिक्र करना। इस आदमी से सीधे मत लड़ना। तुम तो विराट के साथ सहयोग करना। फिर यह आदमी नहीं जीत सकेगा। उसके सहयोग का पूरे का पूरा प्रशिक्षण है, पूरी साधना है कि विराट से कैसे सहयोग करना।
तो जुजुत्सु का पहला नियम है कि जुजुत्सु का साधक जब खड़ा होगा, तो वह
यह नहीं कहता कि मैं लड़ रहा हूं। वह अपने को पहले समर्पित कर देता है विराट को, कि अब मैं परमात्मा को समर्पित हूं। अगर तेरी मर्जी हो, तो जो हो। फिर वह लड़ता है। फिर लड़ने में वह हमला नहीं करता। जुजुत्सु का साधक हमला नहीं करता, सिर्फ हमला सहता है। वह कहता है, तुम मुझे मारो, मैं सहूंगा, क्योंकि परमात्मा मेरे साथ है।
आप जानकर हैरान होंगे कि अगर कोई व्यक्ति बिल्कुल शांत सहने को राजी
हो और आप घूंसा मार दें उसको और वह जरा भी विरोध न करे, अचेतन विरोध भी न करे... । साधना यही है। क्योंकि अगर कोई घूंसा आपको मारने आता है, तो अचेतन आप कड़े हो जाते हैं। आपने विरोध शुरू कर दिया, आपकी हड्डियां कड़ी हो जाती हैं। जुजुत्सु की कला कहती है कि आपकी हड्डियां अगर कड़ी हो गईं और उसने चोट मारी, तो कड़े होने की वजह से टूट जाती हैं; उसकी चोट से नहीं टूटतीं। अगर आप नर्म रहे और आपने जरा भी रेसिस्ट नहीं किया, आप सहने को राजी रहे, कि तुम घूंसा मारो, हम तुम्हारे घूंसे को पी जाएंगे, क्योंकि विराट हमारे साथ खड़ा है--उसका हाथ टूट जाएगा; हाथ में फ्रैक्चर हो जाएगा।
और यह वैज्ञानिक है। इसको आप ऐसा भी देख सकते हैं कि एक बैलगाड़ी में
आप बैठे हैं और एक शराबी बैठा है। बैलगाड़ी उलट जाए, आपको फ्रैक्चर हो जाएंगे, शराबी को बिल्कुल नहीं होंगे। शराबी रोज गिर रहा है सड़क पर। कम से कम इतना तो सीखो उससे! कि चोट नहीं खाता। रोज सुबह देखो, फिर ताजे हैं! नहा- धोकर फिर चले जा रहे हैं! और रोज गिर रहे हैं, इनको चोट क्यों नहीं लगती?

शराबी अपने को अलग नहीं रखता। जब शराब पी लेता है, तो बेहोश हो गया, वह प्रकृति का हिस्सा हो गया। अब उसको कोई होश नहीं कि मैं हूं। अब वह गिरता है, तो कड़ा नहीं हो पाता। बैलगाड़ी उलट रही है, आप भी उलट रहे हैं, वह भी उलट रहा है आपके साथ। आप सम्हल गए, बचने लगे। आपका अहंकार आ गया कि मैं बचूं। और शराबी का कोई अहंकार नहीं आया, वे लुढ़क गए। जैसे ही बैलगाड़ी लुढ़की, उसी के साथ लुढ़क गए। उनका कोई विरोध नहीं है, कोई प्रतिरोध नहीं है; को-आपरेशन है, सहयोग है। उनको चोट नहीं लगेगी।
छोटे बच्चे गिरते हैं, उनको चोट नहीं लगती। जैसे-जैसे बड़े होने लगते हैं, चोट लगने लगती है। जिस दिन से आपके बच्चे को चोट लगने लगे, समझना कि अहंकार निर्मित हो गया। जब तक उसको चोट नहीं लग रही, तब तक अहंकार नहीं है। वह गिरता है, तो गिरने के साथ होता है। रोकता नहीं कि अरे, मैं गिर रहा हूं। अभी कोई है नहीं, जो गिरने से रोके अपने को। वह गिर जाता है। गिरकर वह उठ जाता है। कहीं कोई चोट घटती नहीं।
यह जो कृष्ण का कहना है कि तू जीता ही हुआ है, वह इसीलिए कि तू उस पक्ष में है, जो बुराई के साथ नहीं है। तू विपरीत नहीं बह रहा है, तू साथ बह रहा है। और ये हारे ही हुए हैं। ये विपरीत बह रहे हैं। यह नियति तय हो गई है अर्जुन, इसलिए तू व्यर्थ चिंतित न हो, निस्संदेह तू जीतेगा; युद्ध कर।
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, कीर्तन के बाद जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
आठवां प्रवचन

बेशर्त स्वीकार

संजय उवाच
एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी। नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः
प्रणम्य।। 35।।
अर्जुन उवाच
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च
सिद्धसंघाः।। 36।।
कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्।। 37।।
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं
विश्वमनन्तरूप।। 38।।
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाड्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि
नमो नमस्ते।। 39।।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि
ततोऽसि सर्वः।। 40।।
इसके उपरांत संजय बोला कि हे राजन्, केशव भगवान के इस वचन को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़े हुए, कांपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी भयभीत हुआ प्रणाम करके, भगवान श्रीकृष्ण के प्रति गदगद वाणी से बोला--
हे अंतर्यामिन्, यह योग्य ही है कि जो आपके नाम और प्रभाव के कीर्तन
से जगत अति हर्षित होता है और अनुराग को भी प्राप्त होता है, तथा भयभीत हुए राक्षस लोग दिशाओं में भागते हैं और सब सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार करते हैं।
हे महात्मन्, ब्रह्मा के भी आदि कर्ता और सबसे बड़े आपके लिए वे कैसे नमस्कार नहीं करें, क्योंकि हे अनंत, हे देवेश, हे जगन्निवास, जो सत, असत और उनसे परे अक्षर अर्थात सच्चिदानंदघन ब्रह्म है, वह आप ही हैं।
और हे प्रभो, आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं। आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। हे अनंतरूप, आपसे यह सब जगत व्याप्त अर्थात परिपूर्ण है।
और आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चंद्रमा तथा प्रजा के स्वामी ब्रह्मा
और ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपके लिए हजारों बार नमस्कार-नमस्कार होवे। आपके लिए फिर भी बारंबार नमस्कार होवे!
और हे अनंत सामर्थ्य वाले, आपके लिए आगे से और पीछे से भी नमस्कार होवे। हे सर्वात्मन्, आपके लिए सब ओर से नमस्कार होवे, क्योंकि अनंत पराक्रमशाली आप सब संसार को व्याप्त किए हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि जीवन में छोटे-बड़े दुख के कारण कभी- कभी मन अशांत, निराश और बेचैन बन जाता है। तो संसार में ही रहकर मन सदा शांत, प्रसन्न और उत्साहित कैसे रखें?

नियति की जो बात हम कर रहे हैं, उसे अगर ठीक से समझ लें, तो मन शांत हो जाएगा। और कोई भी उपाय मन को शांत करने का नहीं है। और सब उपाय ऊपरी-ऊपरी हैं, उनसे थोड़ी-बहुत राहत मिल सकती है, लेकिन मन शांत नहीं हो सकता।

लेकिन नियति की बात थोड़ी कठिन है, समझ में थोड़ी मुश्किल से पड़ती है।
मन अशांत होता है, नियति का विचार कहेगा, उस अशांति को स्वीकार कर लें।
उसके विपरीत शांत होने की कोशिश मत करें। मन उदास है, नियति का विचार कहेगा, उदासी को स्वीकार कर लें, प्रफुल्लित होने की चेष्टा न करें।
क्योंकि असली अशांति अशांति के कारण नहीं, अशांति को दूर हटाने के विचार से पैदा होती है।
असली उदासी उदासी से नहीं, कैसे मैं प्रफुल्लित हो जाऊं, इस धारणा से,
इस विचार, इस आकांक्षा से पैदा होती है। उदासी को स्वीकार कर लें, और आप पाएंगे शीघ्र ही कि उदासी विलीन हो गई है। उसकी स्वीकृति में ही उसका अंत है।
कैसे दुखी न हों, यह न पूछें। दुखी हैं, दुख को स्वीकार कर लें। वह भाग्य। वह नियति। वह है। उससे लड़ें मत। उससे सब लड़ाई छोड़ दें। उसके पार जाने की आकांक्षा भी छोड़ दें। उससे विपरीत की मांग भी छोड़ दें। उसे स्वीकार कर लें कि यह मेरी नियति, यह मेरा भाग्य। मैं दुखी हूं, बात यहां पूरी हो गई।
दुख से राजी हो जाएं और फिर देखें कि दुख कैसे टिक सकता है। अशांति को स्वीकार कर लें और आप शांत हो जाएंगे। हमारी अशांति अशांति नहीं है। हमारी अशांति शांति की चाह से पैदा होती है। इसलिए जो लोग शांति के लिए बहुत आकांक्षी हो जाते हैं, उनसे ज्यादा अशांत कोई भी नहीं होता।
मैं रोज न मालूम कितने लोगों को इस संबंध में इस उलझन में पड़ा हुआ देखता हूं। जिस दिन से आपको ख्याल हो जाता है कि शांत कैसे हों, उस दिन से आपकी अशांति बढ़ेगी। क्योंकि अशांति तो है ही, अब एक नई अशांति भी शुरू हो गई कि शांत कैसे हों!
और अशांत आदमी कैसे शांत हो सकता है? और अशांत आदमी पूजा भी करेगा, तो उसकी अशांति ही होगी उसकी पूजा में प्रकट। और अशांत आदमी ध्यान भी करेगा, तो उसका ध्यान भी उसकी अशांति से ही निकलेगा। अशांत आदमी मंदिर भी जाएगा, तो अपनी बेचैनी को साथ ले जाएगा। अशांत गीता भी पढ़ेगा, तो करेगा क्या? अशांति से अशांति ही निकल सकती है। इसलिए आप कुछ भी करें, करेगा कौन? वह जो अशांत है, वही कुछ करेगा।
ध्यान रहे, एक बहुत मनोवैज्ञानिक, आधारभूत नियम, कि अगर आप अशांत हैं,
तो आप जो भी करेंगे, उससे अशांति बढ़ेगी। कौन करेगा? अशांत आदमी कुछ करेगा। वह और अशांति को दुगुनी कर लेगा, तीन गुनी कर लेगा।
ऐसा समझें कि एक आदमी पागल है और वह अब ठीक होने की कोशिश कर रहा है-- खुद ही। वह क्या करेगा? वह थोड़ा ज्यादा पागल हो सकता है, और कुछ भी नहीं कर सकता। उसकी कोशिश भी पागलपन से ही निकलेगी। छोड़ें, पागल से शायद हमारा मन राजी न हो।
एक लोभी आदमी है, वह लोभ छोड़ने की कोशिश कर रहा है। वह करेगा क्या? यह लोभ छोड़ने की कोशिश भी लोभ से ही निकलेगी। वह आदमी लोभी है। तो अगर कोई उसको विश्वास दिला दे कि अगर तू इतना दान करता है, तो स्वर्ग में तुझे भगवान के मकान के बिल्कुल पास मकान मिल जाएगा। अगर यह पक्का हो जाए, तो वह दान कर सकता है। मगर यह दान लोभ से निकलेगा। स्वर्ग में जगह बिल्कुल निश्चित हो जाए, यह लोभ! तो दान कर सकता है वह। मगर यह दान लोभ के विपरीत नहीं है, लोभ का हिस्सा है।
इसलिए जिनको आप दान करते देखते हैं, यह मत समझना कि वे लोभ से मुक्त हो
गए हैं। सौ में निन्यानबे मौके पर तो यही हालत है कि यह उनका नया लोभ है। इस जमीन पर उनके लोभ का अंत नहीं हो रहा है, वह परलोक तक जा रहा है। वे यहां ही नहीं इंतजाम कर लेना चाहते हैं, मरने के बाद भी उनका लोभ फैल गया है। वे वहां भी इंतजाम कर लेना चाहते हैं।
लोभी आदमी क्या करेगा? जो भी करेगा, वह लोभ के कारण ही कर सकता है।
क्रोधी आदमी क्या करेगा? वह जो भी करेगा, क्रोध के कारण कर सकता है।
आप जो हैं, उसके रहते, आप जो भी करेंगे, वह आपसे ही निकलेगा। और अगर नीम
से पत्ता निकलेगा, तो वह कड़वा होगा। और आपसे जो पत्ता निकलेगा, वह आपका ही स्वाद वाला होगा।

नियति का विचार यह कहता है कि आप कुछ करें मत। आप कर नहीं सकते कुछ, आप सिर्फ राजी हो जाएं। इसका प्रयोग करके देखें। अशांति आई है बहुत बार और आपने शांत होने की कोशिश की है और अब तक हो नहीं पाए हैं। इस दूसरे प्रयोग को करके देखें। अशांति आए, स्वीकार कर लें कि मैं अशांत हूं। मैं आदमी ऐसा हूं कि मुझे अशांति मिलेगी। मैंने ऐसा कर्म किया होगा कि मुझे अशांति मिल रही है। मेरी नियति में अशांति का ही पात्र हूं मैं, इसे स्वीकार कर लें। इस अशांति से रत्ती-मात्र संघर्ष न करें।
क्या होगा? जैसे ही आप स्वीकार करते हैं, अशांति तिरोहित होनी शुरू हो जाती है। क्योंकि स्वीकार का भाव ही उसकी मृत्यु बन जाता है। जिस दुख के लिए हम राजी हो गए, वह दुख कहां रहा? हम तो ऐसे लोग हैं कि सुख के लिए भी राजी नहीं हो पाते। दुख के लिए राजी होना तो बहुत मुश्किल है। लेकिन जिस बात के लिए हम राजी हो गए... ।
अभी कुछ ही दिन पहले एक महिला मेरे पास आई। उसके पति मर गए हैं। स्वाभाविक है, दुखी हो। अभी युवा है, कोई तीस-बत्तीस साल की उम्र है। अभी शादी हुए ही दो-चार साल हुए थे। योग्य है। पढ़ी-लिखी है। सुशिक्षित है। किसी यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर है। तो समझदारी के कारण वह रोई भी नहीं।
अपने को समझाया, रोका, संयम किया। लोगों ने बड़ी प्रशंसा की। जिन्होंने भी देखा उसके धैर्य को, दृढ़ता को, सभी ने प्रशंसा की। तीन महीने पति को मरे हो गए हैं। अब उसको हिस्टीरिक फिट आने शुरू हो गए हैं, अब उसको चक्कर आकर बेहोशी आ जाती है।
मैं सारी बात समझा। मैंने उससे कहा कि तू पति के मरने पर रोई नहीं, वही उपद्रव हो गया है। पति के होने का सुख तूने जाना, तो दुख कौन जानेगा? और पति के प्रेम में तू आनंदित थी, तो पति के विरह में दुखी कोई और होगा? वह नियति का हिस्सा है। जिसके साथ हमने सुख पाया, उसके अभाव में दुख पाएगा कौन? तुझे ही पाना होगा। इसमें बंटवारा नहीं हो सकता कि सुख तो मैं पा लूं और दुख न पाऊं। वह तो चुन लिया तूने। जिस दिन पति के साथ रहकर सुख पाया था, उसी दिन यह दुख भी निर्धारित हो गया। यह दुख कौन पाएगा? तू रो। छाती पीट। उसने कहा, आप ऐसी सलाह देते हैं! मुझे तो जितने बुद्धिमान आदमी मिले,
सब प्रशंसा करते हैं। मैंने कहा, वे ही तेरे हिस्टीरिया के जन्मदाता हैं, वे बुद्धिमान आदमी जो तुझे मिले! जब तू पति के पास सुखी हो रही थी, तब उन बुद्धिमानों ने तुझे नहीं कहा था कि सुखी मत हो। अगर तूने सुख रोक लिया होता उस वक्त, तो अभी दुख भी न होता। लेकिन एक कदम उठा लिया, दूसरा उठाना ही पड़ेगा। तू दुखी हो ले, नहीं तो तू पागल हो जाएगी।
वह मेरी बातें सुनते समय ही फूट पड़ी। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। उसने रोना शुरू कर दिया। वह आई थी, तब एक पहाड़ का बोझ उसके मन पर था, लौटते वक्त वह हल्की हो गई थी। उसने मुझे कहा, तो मैं हृदय भरकर रो सकती हूं? रोना ही चाहिए। हृदय भरकर रो ले। और लड़ मत। दुख आया है, उसे स्वीकार कर ले। और ठीक से दुखी हो ले, ताकि दुख निकल जाए।
उसकी अभी मुझे खबर मिली है कि वह हल्की हो गई है। फिट बंद हो गए हैं। उसने रो लिया; हृदय भरकर दुखी हो ली। उसने स्वीकार कर लिया, दुख मेरी नियति है।
जिस चीज को हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं। अशांत हैं, अशांति को स्वीकार कर लें। लड़ें मत। फिर देखें, क्या होता है। स्वीकृति क्रांतिकारी तत्व है। और जिस बात को हम स्वीकार कर लेते हैं, उससे छुटकारा उसी क्षण शुरू हो जाता है।
हमारा उपद्रव क्या है? सुख को हम पकड़ते हैं, दुख को हम पकड़ते नहीं। दुख
से हम बचना चाहते हैं। सुख कहीं छूट न जाए, इस कोशिश में होते हैं। और हमें पता नहीं कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जब हम सुख को पकड़ते हैं, तब हमने दुख को पकड़ लिया, वह उसी का छिपा हुआ पहलू है। तो हम उलटा काम कर रहे हैं; सुख को पकड़ना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं। यह नहीं होगा। या तो दोनों को छोड़ दें, या दोनों के लिए राजी हो जाएं। दोनों हालत में आपके जीवन में क्रांति हो जाएगी।

लेकिन सुख-दुख तो हमारी समझ में आ जाते हैं। जब कोई आ जाता है, कहता है, शांत-अशांति। तो लगता है, यह कोई दूसरी बात कर रहा है। बात वही है। वही के वही सिक्के हैं। नाम बदल गए हैं।
आप शांति चाहते हैं। आप शांति चाहते हैं, इसलिए आपको अशांत होना पड़ेगा। क्योंकि वह दूसरा हिस्सा कौन स्वीकार करेगा? आप शांति पा लेंगे, तो अशांति कौन पाएगा? आधा हिस्सा कहां जाएगा? और सिक्के के दो पहलू अलग नहीं किए जा सकते।
आप अशांति को भी राजी हो जाएं, अगर शांति चाहते हैं। तो दोनों को राजी
हो जाएं। दोनों के लिए राजी होने में ही क्रांति घट जाती है। क्योंकि साधारणतया मन दोनों के लिए राजी नहीं होता, एक के लिए राजी होता है। मन की तरकीब यह है कि आधे को पकड़ो, आधे को छोड़ो। यही मन का द्वंद्व है, यही उसका कष्ट है। जब आप दोनों के लिए राजी हो गए, आप मन के पार हो गए। या दोनों को छोड़ दें, या दोनों को पकड़ लें, दोनों एक ही बात है।
इसलिए जगत में दो उपाय हैं, दो विधियां हैं। परम अनुभूति के पाने की
दो विधियां हैं। एक, दोनों को छोड़ दें--यह संन्यासी का मार्ग है। दोनों को पकड़ लें--यह गृहस्थ का मार्ग है। दोनों का परिणाम एक है। क्योंकि मन की तरकीब है, एक को पकड़ना और एक को छोड़ना। दोनों को छोड़ें, तो भी मन छूट जाता है। दोनों को पकड़ लें, तो भी मन छूट जाता है। क्योंकि मन आधे के साथ जी सकता है।
ये दो उपाय हैं। या तो दोनों छोड़ दें--सुख भी, दुख भी; शांति भी, अशांति भी--फिर आपको कोई अशांत न कर सकेगा। या दोनों पकड़ लें। दोनों पकड़ना सहज-योग है। जहां हैं... ।
इन मित्र ने यही पूछा है कि घर में, संसार में रहते हुए कैसे शांति पाऊं?
पहली बात, शांति पाने की कोशिश मत करें, अशांति को स्वीकार कर लें। आप शांत हो जाएंगे। फिर इस दुनिया में आपको कोई अशांत नहीं कर सकता।
अगर मैं अशांति के लिए राजी हूं, तो मुझे कौन अशांत कर सकेगा? अगर मैं गाली के लिए राजी हूं, तो कौन मेरा अपमान कर सकता है? मैं गाली के लिए राजी नहीं हूं, इसलिए कोई मेरा अपमान कर सकता है। मैं अशांति के लिए राजी नहीं हूं, इसलिए कोई भी अशांत कर सकता है। और जितना हम शांत होने की कोशिश करते हैं, उतने हम संवेदनशील हो जाते हैं।
आप देखें, अक्सर घरों में यह हो जाता है। घर में अगर एकाध धार्मिक आदमी भूल-चूक से पैदा हो जाए, तो घर भर में उपद्रव हो जाता है। क्योंकि वह प्रार्थना कर रहा है, तो कोई अशांति खड़ी नहीं कर सकता। बच्चे खेल नहीं सकते। कोई शोरगुल नहीं कर सकता। जरा कुछ खटपट हुई कि वह आदमी उपद्रव मचाएगा। वह बैठा है शांत होने को! बैठा है पूजा, प्रार्थना, ध्यान करने को! लेकिन यह बड़ी अजीब बात है कि ध्यान करने वाला आदमी इतना परेशान क्यों होता है? गैर-ध्यान करने वाले इतने परेशान नहीं होते! यह ज्यादा आतुर होकर शांति को पकड़ने की कोशिश कर रहा है। जितनी आतुरता से शांति की मांग कर रहा है, उतनी अशांति बढ़ रही है। छोटा-सा बच्चा फिर हिल नहीं सकता। बर्तन गिर जाए, आवाज हो जाए, तो उपद्रव हो जाए। एक आदमी घर में धार्मिक हो जाए, पूरे घर को अशांत कर देगा।
क्या, कठिनाई क्या हो रही है? वह समझ ही नहीं पा रहा है कि वह मांग क्या कर रहा है! वह जो मांग रहा है, वह असंभव है।
अगर हम ठीक से मन की प्रक्रिया को समझ लें, तो मन की प्रक्रिया को समझकर जीवन बदला जाता है। प्रक्रिया यह है कि मन हमेशा चीजों को दो में तोड़ लेता है--मान-अपमान, सुख-दुख, शांति-अशांति, संसार-मोक्ष--दो में तोड़ लेता है। और कहता है, एक नहीं चाहिए, अरुचिकर है; और एक चाहिए, रुचिकर है। बस, यह मन का खेल है।
इस मन से बचने के दो उपाय हैं। या तो दोनों के लिए राजी हो जाएं, मन मर जाएगा। या दोनों को छोड़ दें, तो भी मन मर जाएगा। जो आपके लिए अनुकूल मालूम पड़े, वैसा कर लें। अन्यथा आपके शांत होने का फिर कोई उपाय नहीं है।

जब तक आप शांत होना चाहते हैं, तब तक शांत न हो सकेंगे। जब तक आप सुखी होना चाहते हैं, दुख आपका भाग्य होगा। और जब तक आप मोक्ष के लिए पागल हैं, संसार आपकी परिक्रमा होगी।
दोनों के लिए राजी हो जाएं। मांग ही छोड़ दें। कह दें, जो होता है, मैं राजी हूं।
लाओत्से ने कहा है, हवाएं पूरब की तरफ ले जाती हैं सूखे पत्ते को, तो पत्ता पूरब चला जाता है। और हवाएं बदल जाती हैं, पश्चिम की तरफ बहने लगती हैं, तो सूखा पत्ता पश्चिम की तरफ चला जाता है। हवाएं शांत हो जाती हैं, पत्ता जमीन पर गिर जाता है। हवाएं तूफान उठाती हैं, पत्ता आकाश में उठ जाता है। लाओत्से ने कहा है कि मैं उस दिन शांत हो गया, जिस दिन मैं सूखे पत्ते की तरह हो गया। मैंने जगत को कहा कि जहां तू ले जाए, हम राजी हैं सूखे पत्ते की तरह। दुख में ले जाओ, चलेंगे। नर्क में ले जाओ, चलेंगे।
अगर आप नर्क में जाने को राजी हैं, तो आपके लिए फिर नर्क हो ही नहीं सकता। फिर जहां भी आप हैं, वहां स्वर्ग है। और जो आदमी स्वर्ग के लिए दीवाना है, वह स्वर्ग में भी पहुंच जाए, तो नर्क में ही रहेगा।
मन की पकड़, वह जो आकांक्षा, जो वासना, यह चाहिए... । हम जब कहते हैं, मुझे
यह चाहिए, तभी हम जगत के खिलाफ खड़े हो गए। और जब हम कहते हैं, जो मिल जाए... । ऐसा समझें, दुखी आदमी का लक्षण है, वह कहता है, ऐसा हो, तो मैं सुखी होऊंगा। उसकी कंडीशन है। दुखी आदमी की शर्त है। वह कहता है, ये शर्तें पूरी हो जाएं, तो मैं सुखी हो जाऊंगा। सुखी आदमी बेशर्त है। वह कहता है, कुछ भी हो, मैं सुखी रहूंगा। मैं चाहता नहीं हूं कि ऐसा हो। जो भी होगा, उसको मैं चाहूंगा। इस फर्क को समझ लें।
एक तो है कि मैं चाहता हूं कि ऐसा हो, यह दुखी होने का उपाय है। एक यह
कि जो हो जाए, वही मेरी चाह है। जो हो जाए, वही मैं चाहूंगा। अगर परमात्मा दुख दे रहा है, तो वही मेरी चाह है, वही मैंने मांगा है, वही मुझे मिला है, मैं राजी हूं।
इसका थोड़ा प्रयोग करके देखें, चौबीस घंटे, ज्यादा नहीं। लड़ने का प्रयोग तो आप हजारों जन्मों से कर रहे हैं। एक चौबीस घंटे तय कर लें कि आज सुबह छः बजे से कल सुबह छः बजे तक, जो भी होगा, उसको मैं स्वीकार कर लूंगा। जरा भी विरोध, द्वंद्व खड़ा नहीं करूंगा।
देखें, चौबीस घंटे में आपकी जिंदगी में एक नई हवा का प्रवेश हो जाएगा। जैसे कोई झरोखा अचानक खुल गया और ताजी हवा आपकी जिंदगी में आनी शुरू हो गई। फिर ये चौबीस घंटे कभी खतम न होंगे। एक दफा इसका अनुभव हो जाए, फिर आप इसमें गहरे उतरने लगेंगे।
कोई विधि नहीं है शांत होने की, शांत होना जीवन-दृष्टि है। कोई मेथड नहीं होता कि राम-राम, राम-राम जप लिया और शांत हो गए। नहीं होंगे आप शांत। राम-राम भी आपकी अशांति ही होगी। वह भी आप अशांत मन से ही जपते रहेंगे। वह भी आपकी बेचैनी और बुखार का सबूत होगा, और कुछ भी नहीं।
शांत हो जाएं। कैसे? अशांति को स्वीकार कर लें। दुख को स्वीकार कर लें। मृत्यु को स्वीकार कर लें, फिर आपकी कोई मृत्यु नहीं है। जिसे हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं।

प्रश्नः एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि मनुष्य यदि भविष्य का निर्माण करने की कोशिश करे, तो विक्षिप्त हो जाता है; और अगर नियति को स्वीकार कर ले, तो शांत हो जाता है। सवाल यह उठता है कि क्या इन दोनों के बीच कोई मध्य मार्ग, कोई समझौता, कोई कंप्रोमाइज नहीं है? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आदमी अपने भविष्य निर्माण करने की यथाशक्य चेष्टा करे, फिर परिणाम नियति के ऊपर छोड़ दे? ऐसा ही हो, ऐसा दुराग्रह न रखे। तब भविष्य भी थोड़ा-बहुत निर्माण होगा और व्यक्ति विक्षिप्त भी नहीं होगा।

यही मन हमेशा बांटता है। जो मन कह रहा है कि भविष्य निर्माण करने की चेष्टा करो, वह मन राजी नहीं होगा, कोई भी परिणाम आए उसके लिए। और जो मन

किसी भी परिणाम के लिए राजी हो सकता है, वह भविष्य निर्माण की चेष्टा के लिए व्याकुल नहीं होगा।
जब आप सोचते हैं कि मैं भविष्य का निर्माण कर सकता हूं, तभी आप कर्ता
हो गए। फिर परिणाम कोई भी आएगा, तो कैसे राजी होंगे? फिर परिणाम अगर अनुकूल न आएगा, तो आपको यह विचार उठेगा कि मैं ठीक से नहीं कर पाया; जैसा करना था, वैसा नहीं कर पाया; जो होना था, वह नहीं हुआ; या दुनिया मेरे विपरीत है, या शत्रु मेरे पीछे पड़े हैं। आप फिर स्वीकार न कर पाएंगे परिणाम को सहजता से।
चेष्टा जो आपने की है पाने की कुछ, उस चेष्टा में ही छिपा है वह तत्व,
जो आपको परिणाम स्वीकार नहीं करने देगा। और अगर आप परिणाम स्वीकार करने की क्षमता रखते हैं, तो चेष्टा भी आप क्यों करेंगे? परमात्मा जो करवा रहा है, उसके लिए राजी हो जाएंगे।
नहीं; कोई समझौता नहीं है। जगत में सत्य के साथ कोई समझौता नहीं होता।
सब समझौते झूठे होते हैं। हमारी मन की तरकीबें होती हैं। हमारा मन यह कहता है कि दोनों हाथ लड्डू! यह समझौते का मतलब यह है।
इसका मतलब यह है कि भाग्य के ऊपर छोड़ दें, तो शांत हो सकते हैं। शांत
भी हमें होना है। अगर भाग्य के ऊपर छोड़ दें, तो भविष्य निर्माण करना हमारे हाथ में नहीं रह जाता। निर्माण भी हमें करना है। वह मजा भी लेना है निर्माण करने का। और शांत होने का मजा भी लेना है। तो हम कहते हैं, तरकीब निकाली जा सकती है। कर्म अपने हाथ में रखें और परिणाम जब होगा, तब कह देंगे कि ठीक, प्रभु की जो मर्जी!
आधे में आप होंगे, आधे में प्रभु? या तो पूरे में प्रभु होगा या पूरे में आप। यह आधा-आधा नहीं चल सकता। यह दो नावों पर सवार होकर चलने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि दोनों नावें बिल्कुल विपरीत दिशा में जा रही हैं। इनमें बुरी तरह फंसेंगे, और त्रिशंकु हो जाएंगे। एक टांग एक नाव पर, दूसरी टांग दूसरी नाव पर; और दोनों विपरीत जा रही हैं! क्योंकि एक नियति का विचार कहता है, सब उसका है। इसलिए मेरे हाथ में कोई उपाय नहीं है। जो वह करवाएगा, मैं करूंगा। जो वह देगा, मैं ले लूंगा। जो नहीं देगा, नहीं देगा। वही है सब। करने वाला भी वही, पाने वाला भी वही, देने वाला भी वही। तब आप शांत हो पाएंगे।
आप सोचते हैं कि नहीं, थोड़ी दूर तक अपनी कोशिश भी कर लें। कुछ अपने करने से मिल जाए, वह भी ले लें। और न मिले, तो शांति भी ग्रहण कर लें, क्योंकि उसकी मर्जी! ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं। वह कुछ करने की जो वृत्ति है, वही अशांति ले आएगी। समझौता नहीं हो सकता।
वे मित्र कहते हैं कि यथाशक्य चेष्टा करने से कुछ तो निर्माण होगा और विक्षिप्तता से भी बच जाएंगे!
नहीं, जिस मात्रा में निर्माण होगा, उसी मात्रा में विक्षिप्त भी हो जाएंगे। वही मात्रा होगी। कुछ निर्माण होगा, कुछ विक्षिप्त भी होंगे।
हम कर क्या लेंगे? क्या, कर क्या पाते हैं? हम से पहले जमीन पर कितने लोग रहे हैं! अरबों-खरबों लोग रहे हैं। जिस जगह आप बैठे हैं, वैज्ञानिक कहते हैं, उस जगह --हर आदमी जहां खड़ा हो सकता है, उतनी जगह में--कम से कम दस आदमियों की कब्र बन चुकी है। जहां आप बैठे हैं, वहां दस आदमी गड़े हुए हैं। जमीन पर एक इंच जमीन नहीं है, जहां कब्र नहीं बन चुकी है। सब मिट्टी शरीरों में घूम चुकी है। सब मिट्टी देह बन चुकी है।
उन शरीरों ने भी न मालूम क्या-क्या करने के इरादे किए थे! उन सबके करने
के इरादे का क्या परिणाम है? और क्या अर्थ है आज? उनका किया हुआ वैसा ही मिट जाता है, जैसे बच्चे रेत पर घर बनाते हैं। और बना भी नहीं पाते और मिट जाता है। थोड़ी देर लगती है हमारे घरों के मिटने में। थोड़ा समय लगता है, इससे भ्रम पैदा होता है। लेकिन सब मिट जाता है।
क्या कर लेंगे आप? क्या बना लेंगे? बन भी जाएगा, तो क्या होगा? वह जो नियति का विचार है, वह यह कहता है, आदमी कर भी ले, तो क्या होगा? करने में अपनी शक्ति, अपना समय, अपना जीवन, अपना अवसर खो देगा।

इसका यह मतलब नहीं है कि आदमी कुछ भी न करे। आदमी कुछ किए बिना नहीं रह सकता, कुछ करेगा। लेकिन स्वयं को कर्ता मानकर न करे। छोड़ दे उस पर। वह जो करवाए, कर ले। फिर वह जो दे दे, ले ले।
जब हम छोड़ेंगे कर्म उस पर, तभी फल भी उस पर छूटेगा। कर्म रखेंगे अपने हाथ में, फल छोड़ेंगे उसके ऊपर! यह बेईमानी शुरू हो गई। हमने ईश्वर को भी धोखा देना शुरू कर दिया। इसका यह मतलब नहीं कि आपसे कर्म छीन लिया जाता है। सिर्फ कर्ता छीना जा रहा है, कर्म नहीं छीना जा रहा है।
और मजा तो यह है कि जिसका कर्ता शांत हो जाता है, वह इतने कर्म कर पाता है, जितने आप कभी भी न कर पाएंगे। क्योंकि आपको कर्ता को भी ढोना पड़ता है। उसके पास सिर्फ कर्म रह जाते हैं। वह शुद्ध उसकी ऊर्जा कर्म बन जाती है। आपको तो अहंकार, और कर्ता, और मैं, इसको काफी ढोना पड़ता है। ज्यादा शक्ति तो इसी में व्यय होती है। कर्म तो आपसे होगा। लेकिन आप उसके करने वाले नहीं होंगे।
नदियां बह रही हैं। अगर किसी नदी को यह ख्याल आ जाए कि मुझे तो फलां जगह जाकर सागर में गिरना है, वह नदी पागल हो जाएगी। नदियां बह रही हैं, कहीं कोई फिक्र नहीं है कि कहां गिरे, पूर्व में गिरे कि पश्चिम में; कि अरब की खाड़ी में गिरे कि बंगाल की खाड़ी में; कहां गिरे, हिंद महासागर में कि पैसिफिक में; नदी को कोई चिंता नहीं है। नदी बही जा रही है अपने स्वभाव से। पहाड़ आएंगे, काटेगी। रास्तों में अड़चनें होंगी, किनारा काटकर गुजरेगी। और एक दिन सागर में गिर जाएगी। नदी बेचैन नहीं है। लंबी यात्रा है, लेकिन कोई बेचैनी नहीं है।
जो व्यक्ति सब कुछ परमात्मा पर छोड़ देता है, वह भी ऐसे ही यात्रा करता है। कर्म तो बहुत होता है उससे, लेकिन कर्ता नहीं होता। फिर सागर जहां उसे गिरा लेता है, वहीं गिरने को राजी हो जाता है। उसका कोई आग्रह नहीं होता। आग्रह हो, तो ही चेष्टा हो सकती है। आग्रह न हो, तो चेष्टा नहीं होती; कर्म होता है, कर्तारहित होता है। प्रयास, धक्का, जबरदस्ती नहीं होती।
पर हमारा मन ऐसा है कि हमारे पास दो ही तरह के उपाय हैं, आमतौर से। एक रास्ता, आपने रास्ते पर देखा हो, एक आदमी जानवरों को हकेलकर ले जाता है, तो पीछे से डंडा मारता है। एक रास्ता यह है कि कोई पीछे से हमें धक्का दिए जाए, तो हम चलते हैं। एक रास्ता यह है कि अगर होशियार हो कोई, तो आगे घास का एक गट्ठर लेकर चलने लगे, तो भी जानवर उसके पीछे चलता है, क्योंकि आगे आशा दिखाई पड़ती है कि वह घास मिलने वाला है।
तो या तो भविष्य में परिणाम की आशा हो, या परिस्थिति में जबरदस्ती का धक्का हो, इन दो से हम चलते हैं। कर्ता के चलने का यही उपाय है। तो आपको अगर आशा न हो परिणाम की, तो फिर कर्म करने का मन नहीं होता। अब अगर घास का गट्ठर न दिखता हो, तो फिर क्यों चलें? फिर चलने की कोई जरूरत नहीं है। और या फिर पीछे पत्नी, बच्चे, परिस्थिति धक्का न दे रही हो कि करो, तो भी चलने का नहीं लगता, कि क्या सार? किसके लिए चलें?
लोगों को बच्चे पैदा हो जाते हैं, तो बहुत दौड़-धूप करते हैं, क्योंकि बच्चों के लिए जी रहे हैं। उनको पता नहीं कि बच्चे धक्के दे रहे हैं पीछे से! कि चलो, अब रुक नहीं सकते। अब उनको लगता है कि जीने में कोई कारण आ गया। अब यह करना है। अब कर्तव्य है।
ये दो उपाय हमें साधारणतः दिखाई पड़ते हैं। अहंकार पशु है, वह पशु की भाषा समझता है।
एक और, अहंकार से ऊपर, जीने का उपाय है। वह आत्मिक जीवन है। वहां न आगे परिणाम का कोई सवाल है, न पीछे किसी धक्के का कोई सवाल है। आप जीवित हैं।
जीवित होना... । जैसे फूल खिला है, उससे सुगंध गिर रही है। इसलिए नहीं कि कोई रास्ते से गुजरेगा, उसके लिए; कि कोई बहुत बड़े सुगंध के पारखी आ रहे हैं, उनके लिए। रास्ते से कोई न भी गुजरे, तो फूल की सुगंध गिरती रहेगी। क्योंकि फूल का अर्थ ही सुगंध का होना है।
जीवन का अर्थ कर्म है। न पीछे कोई आकांक्षा है, न आगे कोई सवाल है। आप जीवित हैं। जीवित होने का अर्थ कर्म है। इस कर्म का होना आगे-पीछे से नहीं आ रहा है, भीतर से आ रहा है। भीतर से जब आता है, तो परमात्मा से आता है। पीछे

से जब आता है, तब संसार के धक्के से आता है। आगे से जब आता है, तब मन की वासना, इच्छा से आता है। जब भीतर से आता है, सहज, अभी और यहीं, जैसे नदी बह रही है, फूल खिल रहा है और सुगंध बरस रही है, ठीक ऐसे जब आपके भीतर से आने लगता है... ।
नियति का अर्थ है, जीवन को इस क्षण में भीतर से जीने का उपाय। अपने को छोड़कर परमात्मा की जो अनंतता अभी मौजूद है, उस अनंतता में अभी खिल जाने की व्यवस्था। अभी, यहीं। आगे-पीछे का कोई सवाल नहीं है।
बहुत कर्म घटित होता है ऐसे आदमी से, लेकिन कर्म का बोझ नहीं होता ऐसे आदमी पर। ऐसा आदमी बहुत करता है, लेकिन कभी भी, मैं कर रहा हूं, ऐसी अस्मिता इकट्ठी नहीं होती। ऐसा आदमी जानता है, प्रभु ने जो करवाया, वह करवाया। जो नहीं करवाया, वह नहीं करवाया। जो उसकी मर्जी, यह उसका आखिरी भाव बना रहता है।
समझौता नहीं है। सत्य के जगत में कभी कोई समझौता नहीं है। मन के जगत में सब समझौता है। मन हमेशा कोशिश करता है, सबको सम्हाल लो। और एक के साधने से सब सध जाता है। और सबको साधने से एक भी नहीं सध पाता है।
एक प्रश्न और, और फिर मैं सूत्र लूं। उस प्रश्न को मैं रोके हुए हूं, इतने दिन से वह रोज पूछा जाता है। तो मैंने सोचा था, जिस दिन नहीं पूछेंगे, उस दिन जवाब दे दूंगा। आज नहीं पूछा है।

प्रश्नः एक सज्जन रोज ही पूछे चले जाते हैं कि क्या आप भगवान हैं? इसका साफ-साफ उत्तर दें।

मेरे लिए भगवान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तो अगर कोई कहे कि मैं भगवान नहीं हूं, तो वह असत्य बोल रहा है, मेरे लिए। मैं भगवान हूं, उतना ही जितने आप भगवान हैं। भगवान के होने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। आपको पता हो या न पता हो।

तो वे मित्र रोज लिखकर पूछे चले जाते हैं कि क्या आप भगवान हैं? अगर आप नहीं हैं, तो आप जाहिर करें। अपने शिष्यों को समझा दें कि वे आपको भगवान न कहें।

उन्होंने नाम नहीं लिखा है, नहीं तो मैं अपने शिष्यों को कहूं कि उनको
भी भगवान कहें।
मेरी कोशिश यह है कि आपकी समझ में आ जाए कि आप भगवान हैं। उनकी कोशिश
यह है कि मेरी समझ में डाल दें कि मैं भगवान नहीं हूं!
सारी चेष्टा धर्म की यह है कि आपको ख्याल में आ जाए कि आप भगवान हैं।
और जब तक यह ख्याल न आ जाए, तब तक जीवन परेशानी होगी, दुख होगा, पीड़ा होगी।
इससे कम में काम नहीं चलेगा। इससे कम में कोई तृप्ति भी नहीं है। इसके पहले कोई मंजिल भी नहीं है। इसके पहले उपद्रव ही है। यही है मुकाम।
लेकिन हमें तकलीफ होती है। हमें तकलीफ होती है। तकलीफ क्या होती है? क्योंकि हमने भगवान की कुछ धारणा बना रखी हैं।

वे मित्र बार-बार लिखते हैं कि भगवान ने तो सृष्टि बनाई, आपने सृष्टि बनाई?

स्वभावतः, भगवान की हमारी धारणा है, जिसने सृष्टि बनाई। लेकिन हमारी
यह कल्पना में भी नहीं है कि सृष्टि भी भगवान अपने भीतर, अपने में से ही बनाएगा। और उसके बाहर तो कुछ लाने को है नहीं। भगवान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, कोई मैटीरियल भी नहीं है, जिससे वह सृष्टि बना ले। अगर वह सृष्टि भी बनाएगा, तो वह वैसे ही, जैसे मकड़ी अपने ही भीतर से जाला बुनती है। वह मकड़ी का उतना ही हिस्सा है।
सृष्टि भगवान से कुछ अलग नहीं है। क्योंकि उससे अलग कुछ है नहीं, जिसको वह बना दे, और जिसके आधार पर सृष्टि खड़ी कर दे। सृष्टि उसके ही भीतर

से फैलाव है। तो सृष्टि स्रष्टा का हिस्सा है। और एक पत्थर भी जो रास्ते के किनारे पड़ा है, वह उतना ही भगवान है, जितना बनाने वाला भगवान हो। जो बनाया गया है, वह भी भगवान है। जो बनाने वाला है, वह भी भगवान है। और यह बनाने वाला, और बनाया गया का जो शब्द है हमारा, यह हमारी भाषा की भूल है। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि भगवान को कभी कुम्हार की तरह मत सोचना
कि वह घड़े को बना रहा है। क्योंकि कुम्हार मर जाए, तो भी घड़ा रहेगा। घड़ा तो कुम्हार से अलग हो गया। कुम्हार के मरने से घड़ा नहीं मर जाएगा। लेकिन अगर भगवान न हो, तो यह जगत इसी क्षण विलीन हो जाएगा। इसलिए घड़ा और कुम्हार की बात ठीक नहीं है। यहां बनाने वाला, जो बनाया है, उसमें समाया हुआ है, अलग नहीं है।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि भगवान है नर्तक की तरह, नटराज। एक नाच रहा है आदमी। तो नृत्य है और नृत्यकार है। लेकिन अलग-अलग नहीं। अगर नृत्यकार चला जाए, तो नर्तन बचेगा नहीं पीछे; वह भी उसी के साथ चला जाएगा। आप नृत्य को अलग नहीं कर सकते नृत्यकार से।
इसलिए हमने परमात्मा की नटराज की मूर्ति बनाई है। वह बहुत अर्थ की है। कुम्हार और घड़े वाली बात तो बचकानी है, और जिनके पास बुद्धि कम है, उनके काम की है। नटराज का अर्थ यह है कि यह जो नृत्य है विराट, यह उससे अलग नहीं है। यह सारा का सारा नृत्य नृत्यकार ही है, नर्तक ही है।
तो मैं आपसे कहता हूं कि इस सृष्टि को बनाने में मेरा उतना ही हाथ है, जितना आपका, जितना एक पक्षी का, जितना एक पौधे का, जितना राम का, कृष्ण का, बुद्ध का। हम इस विराट के उतने ही हिस्से हैं, जितना कोई और।
आप स्रष्टा भी हैं, सृष्टि भी। आप नर्तक भी हैं, नृत्य भी। और जब तक आप समझते हैं कि आप सिर्फ नृत्य हैं, नर्तक नहीं, तब तक आप भूल में हैं। क्योंकि नृत्य हो ही नहीं सकता नर्तक के बिना। सृष्टि हो ही नहीं सकती स्रष्टा के बिना, अगर स्रष्टा उसके भीतर मौजूद नहीं है। वह आपके भीतर भी मौजूद है। आपको उसकी खबर नहीं है, इसलिए परेशान हैं।

वे मित्र पूछते हैं कि राम को हम भगवान कहते हैं, कृष्ण को हम भगवान कहते हैं, बुद्ध को, महावीर को कहते हैं। लेकिन उन्होंने खुद अपने को भगवान नहीं कहा। और यहां ऐसा मालूम पड़ता है कि आप लोगों से अपने को भगवान कहला रहे हैं!

वे मित्र पूछते हैं कि राम को हम भगवान कहते हैं, कृष्ण को हम भगवान कहते हैं, बुद्ध को, महावीर को कहते हैं। लेकिन उन्होंने खुद अपने को भगवान नहीं कहा। और यहां ऐसा मालूम पड़ता है कि आप लोगों से अपने को भगवान कहला रहे हैं!
तो उन्हें कुछ पता नहीं है। कृष्ण तो बहुत स्पष्ट अर्जुन से कहते हैं, सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज--सब छोड़ और मेरी शरण में आ। कृष्ण तो कहते हैं, मैं ही परात्पर ब्रह्म हूं। बुद्ध ने तो कहा है, मैंने वह पा लिया, जो अंतिम है। अब मैं मनुष्य नहीं, अब मैं बुद्ध हो गया हूं। महावीर ने तो कहा है, आत्मा जब शुद्ध हो जाती है, तो उसी का नाम परमात्मा है। और मैं परिपूर्ण शुद्ध हो गया हूं।
इन मित्र का ख्याल ऐसा है कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण के अनुयायियों ने उनको भगवान कह दिया। उन्होंने नहीं कहा। अगर वे थे, तो कहने में डर क्या है? और अगर वे नहीं थे या कहने में कुछ संकोच करते थे, तो अनुयायियों के कहने से भी नहीं हो जाएंगे। सीधी घोषणा है उनकी। और उन्होंने यही नहीं कहा कि वे भगवान हैं, उन्होंने समझाने की कोशिश की है कि आप भी भगवान हैं। और जिसको इतना भी बल न हो कहने का कि मैं भगवान हूं, वह आपसे क्या कहेगा कि आप भगवान हैं! जिसको अपने पर इतना भरोसा न हो कि कह सके, वह आपसे क्या कहेगा कि आप भगवान हैं!

उन मित्र ने एक बात और पूछी है कि कृष्ण भगवान थे, तो उन्होंने अर्जुन
को तो विराट का दर्शन कराया। आप करवा सकते हैं?

मैं वायदा करता हूं, मैं करवा सकता हूं। लेकिन अर्जुन होने की तैयारी चाहिए।
हम कभी सोचते नहीं, हम क्या पूछ रहे हैं!
मेरी तरफ से वायदा पक्का है। जिसको भी विराट के दर्शन करने हों, मैं करवाऊंगा। लेकिन आने के पहले छाती पर हाथ रखकर इतना भर सोच लेना कि अर्जुन जैसी तैयारी है? फिर कोई बाधा नहीं है। फिर मेरे बिना भी दर्शन हो सकता है। कोई मेरी जरूरत नहीं है। आपकी अर्जुन जैसी तैयारी हो, तो परमात्मा आपको कहीं भी उपलब्ध हो जाएगा। वह अर्जुन की तैयारी जब होती है, तो वह सब जगह उपलब्ध है। और जब अर्जुन की तैयारी नहीं होती, तब वह आपके सामने भी खड़ा हो, तो आप यही पूछते रहेंगे, आप भगवान हैं?
जीवन को सदा इस दृष्टि से सोचें और सदा इस दृष्टि से पूछें कि उस पूछने से आपके लिए क्या हो सकेगा? मैं भगवान हूं या नहीं हूं, इससे आपको क्या हो सकेगा? इससे क्या परिणाम होगा? आपकी जिंदगी कैसे इससे बदलेगी? सदा अगर कोई इतना ख्याल रख सके, तो उसकी जिज्ञासा सार्थक, अर्थपूर्ण हो जाती है, उपयोगी हो जाती है।
अकारण कुछ मत पूछते रहें। इतना तो ख्याल निश्चित ही रखें कि इसके उत्तर से आपको क्या होगा? आप इस उत्तर का क्या उपयोग करेंगे? यह आपकी जिंदगी को कहां से बदलेगा? आपकी जिंदगी के लिए किस तरह औषधि बन सकेगा? वही प्रश्न पूछें, जो आपके लिए औषधि बन जाए। अन्यथा प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं है।
इसलिए मैं इस प्रश्न को टाल रहा था इतने दिन तक, और सोच रखा था, जिस दिन नहीं पूछेंगे मित्र, उस दिन जवाब दे दूंगा। क्यों ऐसा सोच रखा था कि नहीं पूछेंगे उस दिन जवाब दूंगा? इसीलिए कि शायद इतने दिन सुनकर बुद्धि थोड़ी आ जाए और न पूछें। और इतनी भी बुद्धि न आए, तो फिर उत्तर भी समझ में नहीं आएगा। इसलिए रुक गया था।
आज उन्होंने नहीं पूछा है, मान लेता हूं--डर तो यह है कि शायद वे न भी
आए हों--लेकिन मान लेता हूं कि उन्हें थोड़ी समझ आई होगी कि इन बातों के पूछने का कोई भी अर्थ नहीं है।
कौन भगवान है, कौन नहीं है, इससे क्या लेना-देना! एक बात का पता लगाइए
कि आप भगवान हैं या नहीं हैं। बस, उसकी फिक्र में लग जाइए।
और जिस दिन आपको पता चल जाए कि आप भगवान हैं, उस दिन डरिए मत, छिपाइए मत, खबर करिए। हो सकता है, आपकी खबर से किसी के कान में भनक पड़ जाए और उसे भी ख्याल आने लगे कि अगर यह आदमी भगवान हो सकता है, तो मुझमें ऐसी क्या अड़चन है? मैं भी थोड़ी चेष्टा करूं। शायद आपके गीत को सुनकर किसी और को भी गीत गाने का ख्याल आ जाए। शायद कोई और भी गुनगुनाने लगे। शायद आपको नाचता देखकर किसी के पैरों में थिरकन आ जाए, शायद कोई और भी नाचने लगे।
अब हम सूत्र को लें।
इसके उपरांत संजय बोला कि हे राजन्! केशव भगवान के इस वचन को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़े हुए, कांपता हुआ, नमस्कार करके, फिर भी भयभीत हुआ प्रणाम करके, भगवान कृष्ण के प्रति गदगद वाणी से बोला।
कंप रहा है अर्जुन। जो देखा है, उससे उसका रोआं-रोआं कंप गया है। भविष्य की झलक बड़ी खतरनाक हो सकती है। शायद इसीलिए प्रकृति हमें भविष्य के प्रति अंधा बनाती है। नहीं तो जीना बहुत मुश्किल हो जाए।
आप देखते हैं, तांगे में जुता हुआ घोड़ा चलता है, उसकी आंखों पर दोनों तरफ से पट्टी लगी होती है। अगर वह पट्टी न लगी हो, तो घोड़ा सीधा नहीं चल पाता। वह पट्टी खुली हो, तो दोनों तरफ उसे दिखाई पड़ता है। उसकी वजह से अड़चन खड़ी होती है। फिर वह सीधा नहीं चल पाता। तो दोनों तरफ से उसकी आंखें हम अंधी कर देते हैं। बस, सिर्फ वह आगे देख पाता है दो कदम। बस, एक सीधी रेखा में चलता रहता है।
ठीक हम भी अंधे आदमी हैं। हमें भविष्य दिखाई नहीं पड़ता। भविष्य दिखाई पड़े, तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ जाएं। आप किसी स्त्री को प्रेम कर रहे हैं और उससे कह रहे हैं कि तेरे बिना मैं जी न सकूंगा। और आपको दिखाई भी पड़ रहा

हो कि दो दिन बाद यह मर जाएगी--न केवल मैं जीऊंगा, दूसरी शादी भी करूंगा। अगर यह भी आपको दिखाई पड़ रहा हो, तो किस मुंह से कह सकिएगा कि तेरे बिना जी न सकूंगा? मुश्किल हो जाएगा। जब दिख रहा हो कि दो दिन बाद यह स्त्री मरेगी और मैं जीऊंगा। और न केवल जीऊंगा, कोई और स्त्री से शादी करूंगा। और उस स्त्री से भी मैं यही कहूंगा कि तेरे बिना कभी न जी सकूंगा।
आपको भविष्य दिखता नहीं है। बच्चा पैदा हो और उसको उसका पूरा भविष्य दिख जाए, कैसी मुश्किल हो जाए! जीना बिल्कुल असंभव हो जाए। एक-एक कदम चलना मुश्किल हो जाए। आपको पता नहीं है, इसलिए अंधे की तरह शान से चले जाते हैं। क्या कर रहे हैं, कोई फिक्र नहीं है। क्या हो रहा है, कोई फिक्र नहीं है। क्या परिणाम होगा, कोई फिक्र नहीं है।
अतीत भूलता चला जाता है, भविष्य दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए आप जी पाते हैं। अतीत भूले न, भविष्य दिखाई पड़ने लगे, आप यहीं ठप्प हो जाएं। इंचभर हिलने का उपाय न रह जाए। आपको दिखाई पड़ जाए कि आप मरने वाले हैं, चाहे सत्तर साल बाद सही; साफ दिखाई पड़ जाए कि फलां तिथि को मरने वाले हैं, सत्तर साल बाद। लेकिन ये बीच के सत्तर साल बेकार हो गए। अब आप जी न सकेंगे।
अब आप किस इरादे से मकान बनाएंगे? किसी और के रहने के लिए? किस इरादे
से बैंक में धन इकट्ठा करेंगे? किसी और के भोग के लिए? किस इरादे से लड़ेंगे किसी से?
अब कोई इरादा नहीं रह जाएगा। मौत सारे इरादों को काट देगी। और जीना तो पड़ेगा। अगर आपको यह भी पता हो कि सत्तर साल जीना ही पड़ेगा। मौत इसी तरह होगी, जैसी होने वाली है। बीच में आत्महत्या भी करने का कोई उपाय नहीं है; भविष्य नहीं है; भविष्य तो मरने का है खाट पर। फिर हाथ-पैर कंपते रहेंगे। पूरे जीवन आप कंपते रहेंगे। जो बहुत विचारशील लोग हैं, उनके कंपन का कारण यही है।
सोरेन कीर्कगार्ड ने, एक डेनिस विचारक ने लिखा है कि जिस दिन से मुझे होश आया, मैं कंप रहा हूं। तब से मेरा कंपन नहीं रुकता। रात सो नहीं सकता हूं, क्योंकि मुझे पता है कि कल मौत है। और मैं हैरान हूं कि सारी दुनिया क्यों मजे से चली जा रही है! शायद इन्हें पता नहीं है कि कल मौत है। भविष्य नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए हम बड़े निश्चिंत हैं। दिखाई पड़े तो बड़ी अड़चन हो जाए। अर्जुन को दिखाई पड़ा है, अभी उसने देखा। एक झलक उसे मिली है। वह कंप रहा है, वह भयभीत हो रहा है।
संजय कहता है, कांपता हुआ, हाथ जोड़े हुए, नमस्कार करता है, भयभीत हुआ प्रणाम करता है। गदगद भी हो रहा है।
उसकी स्थिति बड़ी दुविधा की है। जो दिखाई पड़ा है, वह उसकी विजय है। जो दिखाई पड़ा है, उसमें वह जीतेगा, इसलिए आनंदित भी हो रहा है। जो दिखाई पड़ा है, वह विराट की झलक है। यह सौभाग्य है। यह कृपा है। यह प्रसाद है। वह गदगद भी हो रहा है। और जो दिखाई पड़ा है, वह मृत्यु भी है। वह भयभीत भी हो रहा है। और एक अर्थ से और भी भयभीत हो रहा है। क्योंकि जो विजय सुनिश्चित हो, उसमें भी मजा चला जाता है। अगर आप एक खेल खेल रहे हैं किसी के साथ, जिसमें आपकी जीत निश्चित है; खेल का मजा चला जाता है। खेल का तो मजा इसी में है कि जीत अनिश्चित है। आप जीत भी सकते हैं, हार भी सकते हैं। जिस खेल में आपको जीतना ही है, जिसमें कोई उपाय ही नहीं है हार का, वह खेल खतम हो गया। वह तो एक बंधन हो गया।
इसे थोड़ा समझ लें, थोड़ा बारीक है।
अगर आपको पक्का ही है और कोई उपाय जगत में नहीं है कि आप हार सकें, आप जीतेंगे ही, तो मजा ही जीत का चला गया। और जीत से भी भय पैदा होगा। यह जीत भी एक जबरदस्ती मालूम पड़ेगी। इसमें अहंकार को रस तो रह नहीं गया।
अर्जुन ने देखा है कि वह जीतेगा। उसके योद्धा विपरीत जो खड़े हैं, वे मृत्यु में विलीन हो रहे हैं। उसकी जीत सुनिश्चित है, नियति है, भाग्य है। अगर जीत नियति है, तो फिर अहंकार को उससे कुछ भी रस नहीं मिलेगा। फिर मैं नहीं जीतता हूं। जीतना था, इसलिए जीतता हूं। फिर दुर्योधन नहीं हारता है। हारना था बेचारे को, इसलिए हारता है। तब न तो कोई रस है अपने अहंकार में और न दुर्योधन की हार में कोई रस है। तब तो हम पात्र हो गए, खिलौने हो

गए। तब तो हम गुड़ियों की तरह नाच रहे हैं; कोई भीतर से तार खींच रहा है।
किसी को जिताता है, वह जीत जाता है। किसी को हराता है, वह हार जाता है।
किसका गौरव? किसका अपयश?
अगर यह सच है कि मेरी जीत निश्चित है, तो अर्जुन कंप गया होगा इससे भी। क्योंकि तब तो मजा ही चला गया। तब किस मुंह से वह कहेगा कि दुर्योधन को मैंने हराया; कि कौरव हारे पांडव से। तब इसका कोई अर्थ नहीं रह गया। कौरव हारे, क्योंकि नियति उनकी हारने की थी। पांडव जीते, क्योंकि नियति उन्हें जिता रही थी। और नियति दोनों के हाथ के बाहर है। यह भी बहुत भय देने वाली बात है। यह तो मजा ही चला गया!
एक तो मृत्यु को देखा, उससे वह कंपित हो रहा है। दूसरा, सुनिश्चित विजय को देखा। उससे भी, उससे भी वह भयभीत हो रहा है। अर्जुन योद्धा था। फेअर नहीं है अब लड़ाई। अब जो युद्ध है, वह न्याय-संगत नहीं है। अब तो हारने वाले हारेंगे, जीतने वाला जीतेगा। और कृष्ण कहते हैं, मैं पहले ही काट चुका हूं इनको, तू सिर्फ निमित्त है। यह भी कंपित कर देगा। क्षत्रिय का सारा मजा ही चला गया। अब यह युद्ध हो रहा है, जैसे हो या न हो बराबर है। एक झूठा युद्ध रह गया; एक सूडो, मिथ्या, भ्रामक। जिसमें सब बातें पहले से ही तय हों, उसमें क्या सार है?
एक अर्थ में गदगद है कि कृष्ण ने अनुभव का मौका दिया; एक द्वार खोला अनंत का। और एक लिहाज से भयभीत है। दोनों बातें एक साथ!
संजय कहता है, ऐसा भयभीत, साथ ही गदगद हुआ, प्रणाम करके, अर्जुन कहने लगा, हे अंतर्यामिन्! यह योग्य ही है कि जो आपके नाम और प्रभाव के कीर्तन से जगत अति हर्षित होता है और अनुराग को भी प्राप्त होता है। तथा भयभीत हुए राक्षस लोग दिशाओं में भागते हैं और सब सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार करते हैं।
यह योग्य ही है। ये दोनों बातें ही योग्य हैं कि कोई आपके नाम से हर्षित होता है, और कोई आपके नाम से भयभीत होता है। ये दोनों बातें ठीक ही हैं। क्योंकि जो मिटने जा रहा है आपको देखकर, आप जिसके लिए विनाश बन जाते हैं, उसका भयभीत होना; और वह जो आपको देखकर आनंद को, परम अवस्था को उपलब्ध होने जा रहा है, जिसके भीतर नए का सृजन हो रहा है, उसका हर्षित होना, दोनों ही ठीक हैं।
लेकिन अर्जुन को दोनों हो रहे हैं। और आपको भी दोनों होंगे। क्योंकि
इस जमीन पर देवता को अलग और राक्षस को अलग खोजना बहुत मुश्किल है। वे दोनों मिले-जुले हैं। वे हर आदमी में हैं। वे आदमी के दो पहलू हैं। मन दो के बिना होता ही नहीं।
इसलिए आप ऐसा देवता पुरुष भी नहीं खोज सकते, जिसका कोई हिस्सा राक्षसी न हो। और आप ऐसा कोई राक्षस भी नहीं खोज सकते, जिसका कोई हिस्सा देवता जैसा न हो। रावण के भीतर भी एक कोना राम का होगा, और राम के भीतर भी एक कोना रावण का होगा। अन्यथा उनका संसार में होने का कोई उपाय नहीं है। इस जगत में प्रकट होने का उपाय है मन। और मन है द्वंद्व। इसलिए अच्छे
से अच्छे आदमी में थोड़ी-सी कालिख कहीं न कहीं लगी होती है। बुरे से बुरे आदमी में भी एक चमकदार रेखा होती है। वही उन दोनों को आदमी बनाती है। नहीं तो वे आदमी नहीं रह जाएंगे। नहीं तो उनके आदमी होने का कोई उपाय नहीं रह जाएगा। यहां तो हर आदमी दोनों है।
इसलिए जब परम अनुभव का द्वार खुलता है, तो दोनों बातें एक साथ घटती हैं। वह जो आपके भीतर राक्षस है, वह भयभीत होने लगता है। और वह जो आपके भीतर दिव्य है, वह आनंदित होने लगता है। परमात्मा के सामने दोनों बातें एक साथ घट जाती हैं। यह तो तोड़कर कहा है, ताकि समझ में आ सके।
अर्जुन कहता है, लोग अनुराग को उपलब्ध होते हैं, हर्षित होते हैं, आपके कीर्तन, आपके नाम को सुनकर। और ऐसे लोग भी हैं, जो भागते हैं दसों दिशाओं में। और देखता हूं सिद्धगणों को भी कि पैर झुकाए, घुटने टेके, आपको नमस्कार कर रहे हैं। यह ठीक ही है अंतर्यामिन्!

आज अर्जुन को लगा कि ऐसा क्यों है। ऐसा क्यों है कि कोई भगवान का नाम सुनते ही पीड़ित और दुखी क्यों हो जाता है? और कोई भगवान का नाम सुनते ही आनंदित, प्रफुल्लित क्यों हो जाता है?
जब आप भगवान का नाम सुनकर दुखी होते हैं, तो आप खबर दे रहे हैं कि भगवान आपके लिए कहीं न कहीं मृत्यु से जुड़ा हुआ है। कुछ आप कर रहे हैं, जो भगवान के सान्निध्य में टूटेगा और नष्ट होगा। कुछ आप कर रहे हैं, जो धारा के विपरीत है, जो निसर्ग के प्रतिकूल है। और जब भगवान का नाम सुनकर आप आनंदित होते हैं, तब उसका अर्थ है कि आपके भीतर कोई धारा है, जो भगवान के साथ बह रही है। तो नाम भी सुनकर आप प्रफुल्लित हो जाते हैं।
रामकृष्ण के सामने कोई नाम भी ले दे भगवान का, तो वे तत्क्षण समाधिस्थ
हो जाते थे। नाम लेना मुश्किल हो गया था। क्योंकि फिर वे छः-छः घंटे, बारह-बारह घंटे समाधि में रह जाते थे। सड़क से गुजर रहे हैं, तो उनके भक्तों को उन्हें सम्हालकर ले जाना पड़ता था कि कहीं कोई जयरामजी ही न कर दे। नहीं तो वहीं नाचने लगते, और वहीं सड़क पर गिर जाते, होश खो देते। कई बार तो कई-कई दिन लग जाते उनका वापस होश आने में। वे इतने आनंदित हो जाते कि यह जगत विसर्जित हो जाता, वे अपने में लीन हो जाते।
उनको सम्हालकर ले जाना पड़ता था कि कहीं कोई असमय में नाम न ले दे, कोई अकारण ऐसे ही सहज नाम न ले दे। फिर उन्हें दिनों तक पानी पिलाना पड़ता, दूध देना पड़ता, क्योंकि उनको शरीर की कोई सुध न रह जाती। और जब उन्हें होश आता, तब वे छाती पीटकर रोने लगते कि क्या तू नाराज है, इतने जल्दी वापस भेज दिया! क्या तू नाराज है कि अपने से इतनी जल्दी दूर कर दिया! वापस बुला ले। उनकी आंख से आंसू बहते। वापस बुला ले। कोई नाम ले दे तो!
क्या था? रामकृष्ण बड़ी, जिसको हम कहें, शुद्धतम देह, शरीर जैसे पवित्रतम, जैसे रोआं-रोआं इतना पवित्र कि नाम भी भगवान का पर्याप्त, कि रोआं-रोआं कंपित होकर भीतर लीन हो जाए। शरीर जैसे इतना संवेदनशील। पुजारी थे रामकृष्ण तो दक्षिणेश्वर के मंदिर में। तो पूजा करने जाते थे, पूजा का थाल गिर जाता हाथ से। क्योंकि देखते महाकाली की मूर्ति, वह देखते ही थाल गिर जाता। दीए बुझ जाते। वे नीचे गिर जाते। पूजा न हो पाती। पूजा करने के लिए भी बड़ा कठोर मन चाहिए। पूजा करने के लिए भी इतना तो
मन चाहिए कि डटे रहे। रामकृष्ण से पूजा ही न हो पाती, क्योंकि थाल हाथ से छूट जाता। देखते आंखों में काली की, और सुध-बुध खो देते। फिर बाद के दिनों में तो उन्हें मंदिर में नहीं ले जाते थे। पूजा कोई और कर लेता। क्योंकि मंदिर में जाना खतरनाक था।
और जिस दिन रामकृष्ण को अनुभव हुआ, उस दिन वे दक्षिणेश्वर की छत पर चढ़ गए, छप्पर पर, और जोर-जोर से चिल्लाने लगे कि जिसकी मुझे खोज थी, वह मिल गया। अब जिनको चाहिए, वे जल्दी आओ! कहां हैं वे लोग, जिन्हें मैं बांट दूं? आओ जल्दी दूर-दूर से। जहां भी, जिसको भी आकांक्षा हो, जल्दी आ जाए। क्योंकि जो मुझे चाहिए था, वह मिल गया।
क्या मिल गया? एक संगति, एक संगीत, एक लयबद्धता। उस परमात्मा और अपने बीच एक स्वर का तालमेल मिल गया। अब, जैसे ही वह स्वर का तालमेल बैठ जाता है, वैसे ही रामकृष्ण नहीं रह जाते, भगवान हो जाते हैं, परमात्मा हो जाते हैं। कीर्तन का मतलब ही केवल इतना है कि एक सुर-ताल बैठ जाए। और वह जो आदमी होने का होश है, वह खो जाए, और वह जो परमात्मा होने का होश है, वह आ जाए। यह रामकृष्ण की जो बेहोशी है, यह सिर्फ एक तरफ से बेहोशी है, आदमी की तरफ से। दूसरी, भीतर की तरफ से तो परम होश है।
तो रामकृष्ण कहते थे कि तुम सोचते हो, मैं बेहोश हो गया! तुम उलटा सोचते हो। जब मैं होश में आता हूं तुम्हारे सामने, तब मैं बेहोश हो जाता हूं। मैं जिसको भीतर देख रहा था, वह फिर मुझे दिखाई नहीं पड़ता। तुम जिसे बेहोशी कहते हो, वह होश है मेरे लिए। और तुम जिसे होश कहते हो, वह बेहोशी है। जब मेरी आंख संसार की तरफ होश से भर जाती है, तो मैं वहां भूल जाता हूं। और जब यहां मेरा पर्दा गिर जाता है, तो मैं वहां हो जाता हूं।
कीर्तन का इतना ही अर्थ है अध्यात्म में कि उससे हम एक नाम के सहारे,
एक शब्द के सहारे, एक गीत के सहारे, एक धुन के सहारे, एक नृत्य की गति के

सहारे, वह जो मनुष्य होने का होश है, वह खो रहे हैं; और वह जो परमात्मा होने का होश है, उसकी तरफ जा रहे हैं।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि गीता के संबंध में उन्हें कुछ भी नहीं पूछना। लेकिन यहां जो कीर्तन होता है, उस संबंध में उन्हें बड़ी अड़चन है!

गीता के संबंध में उन्हें नहीं पूछना है, क्योंकि गीता वे समझ चुके होंगे! यहां किस लिए आते हैं, पता नहीं। यहां आने का कोई प्रयोजन नहीं है। गीता समझ ही गए हों, तो यहां आने का क्या प्रयोजन है! चढ़ जाएं किसी मंदिर पर और चिल्ला दें कि आ जाओ, जिनको पाना हो। मुझे मिल गया! कीर्तन के संबंध में उन्हें अड़चन है।
किया है कभी कीर्तन? अगर किया है, तो अड़चन नहीं हो सकती। और नहीं किया है, तो सवाल नहीं उठाना चाहिए। जो नहीं किया है, उसके बाबत नहीं पूछना चाहिए। अड़चन यही होगी कि यह क्या है कि लोग नाचने लगते हैं, होश खो देते हैं! अड़चन यही है कि स्त्री-पुरुष साथ-साथ नाच रहे हैं!
अगर इतनी भी बेहोशी न हो कि स्त्री-पुरुष भी न भूलें, तो क्या खाक कुछ भूलेगा! यह भी होश बना रहा कि मैं पुरुष हूं, वह पास में खड़ी स्त्री है, आप कीर्तन कर रहे हैं? इतना भी होश न भूले, तो क्या खाक कीर्तन होगा?
कीर्तन तो पागलों का रास्ता है, वे जो भूलने को तैयार हैं बाहर को। फिर क्या होता है, इसे करने का थोड़े ही सवाल है। कीर्तन कुछ किया थोड़े ही जाता है। कीर्तन तो अपने को धारा में छोड़ना है, फिर जो हो जाए। पर देखने वाले को अड़चन होगी, देखने वाले को सदा ही अड़चन होगी। क्योंकि देखने वाला बाहर खड़ा है।
करके देखें। थोड़ी देर के लिए होश खोकर देखें। थोड़ी देर के लिए एक दूसरे जगत में प्रवेश करें; और एक दूसरा होश उपलब्ध करें। थोड़ी देर को बह जाएं बाहर से और भीतर हो जाएं। और होने दें, जो हो रहा है; छोड़ दें परमात्मा में। पूरे चौबीस घंटे छोड़ना शायद मुश्किल होगा। क्योंकि आपको ख्याल है, दुकान आप चलाते हैं। आपको ख्याल है, आप नहीं होंगे, तो संसार का क्या होगा! आपके बिना कुछ चलेगा नहीं! शायद पूरे समय छोड़ना मुश्किल हो, घड़ी, आधा घड़ी को... ।
कीर्तन सिर्फ एक व्यवस्था है, जिससे थोड़ी देर को हम छोड़ देते हैं। हम अपने को नहीं चलाते, हम सिर्फ छोड़ देते हैं; एक लेट गो। अपने को ढीला छोड़ देते हैं धुन के ऊपर। और धीरे-धीरे भीतर जहां ले जाना चाहता है, ले जाने लगता है। फिर पैर थिरकने लगते हैं। हाथ-पैर मुद्राएं बनाने लगते हैं। आंखें बंद हो जाती हैं। किसी दूसरे लोक में प्रवेश हो जाता है। फिर फिक्र छोड़ें कि कौन बाहर खड़ा है। उसकी थोड़े ही फिक्र करनी है। उसकी फिक्र करिएगा, तो भीतर नहीं जा सकते।
कीर्तन की कला खो गई, क्योंकि हम अति बुद्धिमान हो गए हैं। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। जिन मित्र ने पूछा है, बुद्धिमान आदमी हैं। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। इसलिए वे कहते हैं, गीता के संबंध में कुछ नहीं पूछना है। क्योंकि गीता तो बुद्धिमानी खुद ही समझ लेगी। कीर्तन से अड़चन है।
यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। बुद्धिमानी का काम संसार है। यहां तो बुद्धि छोड़कर, बुद्धि फेंककर कोई प्रवेश करता है। और ये जो मैं इतनी बातें आपसे बुद्धि की कर रहा हूं, सिर्फ इसी आशा में कि किसी दिन आप ऊब जाएंगे इस बुद्धि से। इसे छोड़कर, उतारकर, बाहर इसके निकलने की कोशिश करेंगे।
अगर बुद्धिमानी से इतनी बात भी समझ में आ जाए कि बुद्धि काफी नहीं है,
तो बस, बुद्धि का काम पूरा हो गया। अगर बुद्धिमानी इतना समझा दे कि इसको छोड़कर पार जाना है, कहीं दूर, इससे हटना है, इसके बंधन और सीमाओं के पार, तो बुद्धिमानी का काम पूरा हो गया। बुद्धिमान आदमी हम उसको कहते हैं, जो बुद्धिमानी को छोड़ने की भी क्षमता रखता है।
यह कीर्तन तो बुद्धि को छोड़ने की बात है।

वह अर्जुन कह रहा है कि आज मैं समझ पाता हूं कि आपके प्रभाव से, आपके प्रभाव के कीर्तन से जगत हर्षित होता है, अनुराग से भर जाता है। पर कोई हैं, जो घबड़ाते हैं, भागते हैं, भयभीत होते हैं। और देखता हूं कि सिद्धों के समुदाय भी कंपित आपको नमस्कार कर रहे हैं।
हे महात्मन्! ब्रह्मा के भी आदि कर्ता और सबसे बड़े आपके लिए वे कैसे नमस्कार न करें! क्योंकि हे अनंत, हे देवेश, हे जगन्निवास, जो सत, असत और उनसे परे अक्षर अर्थात सच्चिदानंदघन ब्रह्म है, वह आप ही हैं।
और हे प्रभु, आप आदि देव और सनातन पुरुष हैं, और आप इस जगत के परम आश्रय
और जानने वाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। हे अनंत रूप, आपसे यह सब जगत व्याप्त और परिपूर्ण है। और आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चंद्रमा तथा प्रजा के स्वामी ब्रह्मा, ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपके लिए हजारों बार, हजारों बार नमस्कार। आपके लिए बार-बार नमस्कार।
और हे अनंत सामर्थ्य वाले, आपके लिए आगे से, पीछे से, सब तरफ से नमस्कार। हे सर्वात्मन्! आपके लिए सब ओर से नमस्कार होवे। क्योंकि अनंत पराक्रमशाली, आप, संसार को व्याप्त किए हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं। ये सारे वचन परमात्मा के प्रति एक धन्यभाव के वचन हैं, एक अहोभाव के। अर्जुन भयभीत हुआ है, लेकिन धन्यभागी भी हुआ है। यह अनूठा, अद्वितीय अवसर उसे मिला है कि एक झलक उसे मिली है विराट में, जहां सब सीमाएं टूट जाती हैं। जहां जानने वाला और जाना जाने वाला एक हो जाते हैं। और जहां सृष्टि और सृष्टि का निर्माता, वे भी पीछे छूट जाते हैं। और मूल आश्रय और परमधाम का अनुभव होता है।
वह धन्यभागी हुआ है। वह अपने धन्यभाग को प्रकट कर रहा है। उसकी वाणी बड़ी अजीब-सी लगेगी। वह कहता है, नमस्कार, बार-बार नमस्कार, हजार बार नमस्कार। आगे से नमस्कार, पीछे से नमस्कार। लगेगा, क्या कह रहा है यह! नमस्कार तो एक दफा कहने से भी काम चल जाएगा। लेकिन उसका मन नहीं भरता है। वह सब तरफ से नमस्कार कर रहा है, फिर भी उसे लगता है कि जो मुझे मिला है, उसका अनुग्रह मैं मान भी न पाऊंगा। उससे उऋण होने की तो कोई व्यवस्था नहीं है, उसका अनुग्रह भी न मान पाऊंगा।
कहा जाता है, कठिन है पिता के ऋण से मुक्त होना, कठिन है मां के ऋण से मुक्त होना। लेकिन असंभव नहीं। गुरु के ऋण से मुक्त होना असंभव है। और गुरु के ऋण से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जो अनुभव गुरु के माध्यम से उपलब्ध होता है, यह जो कृष्ण के माध्यम से अर्जुन को हुआ, अब इस अनुभव के लिए कोई भी तो मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। कुछ भी नहीं दिया जा सकता। सच तो यह है कि देने वाला भी कहां बचा अब? क्या दे? अब जो भी दे, सब छोटा है, व्यर्थ है। सिर्फ नमस्कार रह जाता है, सिर्फ नमन रह जाता है। गुरु का हमने जो इतना आदर किया है, वह किसी और कारण से नहीं। क्योंकि कुछ और करने का उपाय ही नहीं है। उसे हम कुछ दे भी नहीं सकते। कुछ दें, तो व्यर्थ है। जो हम देंगे, वह संसार का कुछ हिस्सा होगा। और वह हमें संसार के पार ले गया। उस संसार के पार ले जाने वाले अनुभव के लिए संसार का कुछ भी दें, पूरा संसार भी दें, तो बेमानी है। अब हम क्या कर सकते हैं? सिर्फ एक अनुग्रह का भाव रह जाता है।
इसलिए अर्जुन कह रहा है, नमस्कार, नमस्कार, हजार बार नमस्कार! कई बहाने खोज रहा है कि आप देवों के देव, आप परमात्मा, आप ब्रह्मा के भी पिता! वह कुछ भी कह रहा है। वह बच्चों जैसी बात है। वह जो कुछ भी कह रहा है,
एक ही बात है। वह हर तरफ से कोशिश कर रहा है कि आपको मैं नमस्कार कर सकूं। उस विराट के सामने हमारे पास नमन के सिवाय और कुछ भी नहीं है, झुक जाने
के सिवाय और कुछ भी नहीं है।
एक बहुत मजे की बात है कि सिर्फ भारत अकेला मुल्क है, जहां गुरु के चरणों में झुकने की लंबी धारा है। और अगर कहीं भी यह बात गई है, तो वह भारत से गई है। दुनिया में कहीं भी गुरु के चरणों में सिर रखकर अपने को सब भांति समर्पित करने की कोई धारणा नहीं है।
इसलिए पश्चिम से जब लोग आते हैं, तो उन्हें जो सबसे मुश्किल बात खटकती है, वह गुरु के प्रति इतनी अनन्य श्रद्धा खटकती है। इतनी श्रद्धा उनको

अंधापन मालूम पड़ती है। और उनका मालूम पड़ना ठीक ही है। क्योंकि किसी के चरणों में सिर रखना, और किसी के प्रति इस तरह सब समर्पित कर देना, अजीब-सा मालूम पड़ता है। और लगता है, यह तो एक तरह की मानव-प्रतिष्ठा हो गई! यह तो मनुष्य की पूजा हो गई! और उनका लगना ठीक है, क्योंकि उन्हें जो दिखाई पड़ रहा है, वह मनुष्य ही है।
लेकिन अगर किसी शिष्य को विराट की थोड़ी-सी भी किरण मिली हो किसी के द्वारा, तो अब वह क्या करे? वह कहां जाए? वह कैसे अपने भार को हल्का करे? उसके पास एक ही उपाय है कि वह सब तरह से झुक जाए। और यह झुकना बड़ा अदभुत है। यह झुकना दोहरे अर्थों में अदभुत है। जो मिला है, उसका अनुग्रह इससे प्रकट होता है। और इस झुकने में और मिलने की संभावना सघन हो जाती है। जो बिल्कुल झुकना जानता है, उसे सब मिल जाएगा। यह सवाल नहीं है कि वह कहां झुकता है। झुकने की कला जिसे आती है!
हम तो, कई लोग ऐसे हैं, जो नदी में खड़े हैं, पैर पानी में डूबे हैं, लेकिन झुक नहीं सकते, इसलिए प्यासे मर रहे हैं। क्योंकि झुकें, चुल्लू बनाएं, पानी को भरें, तब प्यास बुझ सके। खड़े हैं नदी में, लेकिन अकड़े हैं। झुक नहीं सकते। वह घड़ा भी, जो पानी में जाए, न झुके, आड़ा न हो, तो भर नहीं सकता; अकड़ा रहे।
हम नदी में खड़े हैं, परमात्मा चारों तरफ बह रहा है, मगर झुक नहीं सकते।
कैसे झुकें! वह जो झुकने का डर है, वह हमें अटका देता है।
धर्म की खोज झुकने की कला है। और जो झुककर चुल्लू भर लेता है, फिर उसे पता चल गया रहस्य। फिर तो वह पूरा झुककर पानी में डुबकी भी मार ले सकता है।
फिर तो वह जानता है कि अगर सिर को मैं बिल्कुल झुका दूं और पानी के नीचे ले जाऊं, तो मैं पूरा ही नहा जाऊंगा।
अर्जुन कह रहा है कि जो मैंने जाना, जाना कि तुम्हीं हो सब कुछ।
इसलिए हम गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्या-क्या नहीं कहते रहे हैं! जिन्होंने कहा होगा, हमें लगता है, कैसे लोग रहे होंगे! लेकिन जिन्होंने कहा है, उन्होंने किसी कारण से कहा है। अगर हम बिना कारण के कह रहे हैं, तो जरूर हमें अजीब-सी बात लगती है कि गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही सब कुछ!
यही अर्जुन कह रहा है कि तुम्हीं सब कुछ हो, परात्पर ब्रह्म तुम्हीं हो।
उसने देखा। गुरु झरोखा बन गया। उसके द्वार से उसने पहली दफा झांका। सारी सीमाएं हट गईं; अनंत सामने आ गया। उस अनंत की छाया उस पर पड़ी। पहली दफा जो स्वप्न था, वह टूटा और सत्य उदघाटित हुआ है। उसका अनुग्रह स्वाभाविक है।
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें। कीर्तन करें, और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
नौवां प्रवचन

चरण-स्पर्श का विज्ञान

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।। 41।।
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये
त्वामहमप्रमेयम्।। 42।।
पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।
43।।
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव
सोढुम।। 44।।
हे परमेश्वर, सखा ऐसे मानकर आपके इस प्रभाव को न जानते हुए, मेरे द्वारा प्रेम से अथवा प्रमाद से भी, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा गया है; और हे अच्युत, जो आप हंसी के लिए विहार, शय्या, आसन और भोजनादिकों में अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किए गए हैं, वे सब अपराध, अप्रमेयस्वरूप अर्थात अचिंत्य प्रभाव वाले, आपसे मैं क्षमा कराता हूं।
हे विश्वेश्वर, आप इस चराचर जगत के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं। हे अतिशय प्रभाव वाले, तीनों लोकों में आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है,
फिर अधिक कैसे होवे।
इससे हे प्रभो, मैं शरीर को अच्छी प्रकार चरणों में रखकर और प्रणाम करके स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूं। हे देव, पिता जैसे पुत्र के और सखा जैसे सखा के और पति जैसे प्रिय स्त्री के, वैसे ही आप भी मेरे अपराध को सहन करने के लिए योग्य हैं।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है, प्रभु से प्रार्थना करते हैं, तो कहते हैं कि सारे दुख मेरे मिटा दे, सुख ही सुख शेष रह जाएं। और आपने कहा कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो प्रभु से हम क्या मांगें? क्या प्रार्थना करें?

जहां तक मांग है, वहां तक प्रभु से कोई संबंध स्थापित नहीं होता। प्रार्थना मांग नहीं है। ज्यादा उचित हो कि कहें, प्रार्थना धन्यवाद है, मांग नहीं। जो नहीं मिला है, उसकी मांग नहीं है प्रार्थना; जो मिला है, उसके अनुग्रह का धन्यवाद है, थैंक्स गिविंग है।
कुछ मांगें मत। आपकी मांग ही आपके और परमात्मा के बीच में बाधा बन जाएगी। क्योंकि जब भी हम कुछ मांगते हैं तो उसका अर्थ क्या होता है? उसका अर्थ होता है, जो हम मांग रहे हैं, वह परमात्मा से भी बड़ा है।
एक आदमी परमात्मा से धन मांग रहा है। उसका अर्थ हुआ कि लक्ष्य धन है; परमात्मा तो केवल साधन है। एक आदमी सुख मांग रहा है। उसका अर्थ हुआ कि सुख बड़ा है। परमात्मा से मिल सकता है, इसलिए परमात्मा से मांग रहे हैं। लेकिन परमात्मा केवल माध्यम हो गया; परमात्मा केवल साधन हो गया। हम परमात्मा से भी सेवा ले रहे हैं!
जब भी हम कुछ मांगते हैं, तो जो मांगते हैं, वह महत्वपूर्ण है। जिससे
हम मांगते हैं, वह महत्वपूर्ण नहीं है। वह अगर महत्वपूर्ण मालूम होता है, तो सिर्फ इसीलिए कि जो हम चाहते हैं, वह उससे मिल सकता है। लेकिन उसका महत्व द्वितीय है, दोयम है, नंबर दो है।

तो परमात्मा से कुछ भी मांगा नहीं जा सकता। और जो मांगते हैं, उनका परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। परमात्मा को तो, जो मिला है, उसके लिए धन्यवाद दिया जा सकता है। और जो मिला है, वह बहुत है, असीम है।
लेकिन जो मिला है, उसके लिए हम धन्यवाद नहीं देते। जो नहीं मिला है, उसके लिए हम मांग करते हैं, शिकायत करते हैं। अभाव ही हमारा मन देखता है। जो हमारे पास है, जो हमें मिला है, अकारण! जीवन, अस्तित्व, जो खिलावट हमें मिली है, उसके लिए कोई अनुग्रह नहीं है।
प्रार्थना अनुग्रह का भाव है।
ऐसा हुआ कि रामकृष्ण के पास जब विवेकानंद आए, तो उनके घर की हालत बड़ी बुरी थी। पिता मर गए थे। और पिता मौजी आदमी थे, तो कोई संपत्ति तो छोड़ नहीं गए थे, उलटा कर्ज छोड़ गए थे। और विवेकानंद को कुछ भी न सूझता था कि कर्ज कैसे चुके। घर में खाने को रोटी भी नहीं थी। और ऐसा अक्सर हो जाता था कि घर में इतना थोड़ा-बहुत अन्न जुट पाता, कि मां और बेटे दोनों थे, तो एक का ही भोजन हो सकता था।
तो विवेकानंद मां को कहकर कि मैं आज घर भोजन नहीं लूंगा, किसी मित्र
के घर निमंत्रण है, मां भोजन कर ले, इसलिए घर से बाहर चले जाते। कहीं भी गली-कूचों में चक्कर लगाकर--कोई मित्र का निमंत्रण नहीं होता--वापस खुशी लौट आते कि बहुत अच्छा भोजन मिला, ताकि मां भोजन कर ले।
रामकृष्ण को पता लगा तो उन्होंने कहा, तू भी पागल है। तू जाकर मां से क्यों नहीं मांग लेता! तू रोज यहां आता है। जा मंदिर में और मां से मांग ले, क्या तुझे चाहिए। रामकृष्ण ने कहा तो विवेकानंद को जाना पड़ा। रामकृष्ण बाहर बैठे रहे। आधी घड़ी बीती। एक घड़ी बीती। घंटा बीतने लगा। तब उन्होंने भीतर झांककर देखा। विवेकानंद आंख बंद किए खड़े हैं। आंख से आनंद के आंसू बह रहे हैं। सारे शरीर में रोमांच है।
फिर जब विवेकानंद बाहर आए, तो रामकृष्ण ने कहा, मांग लिया मां से? विवेकानंद ने कहा, वह तो मैं भूल ही गया। जो मिला है, वह इतना ज्यादा है कि मैं तो सिर्फ अनुग्रह के आनंद में डूब गया। अब दोबारा जब जाऊंगा, तब मांग लूंगा।
दूसरे दिन भी यही हुआ। तीसरे दिन भी यही हुआ। रामकृष्ण ने कहा, पागल,
तू मांगता क्यों नहीं है? तो विवेकानंद ने कहा कि आप नाहक ही मेरी परीक्षा ले रहे हैं। भीतर जाता हूं, तो यह भूल ही जाता हूं कि वे क्षुद्र जरूरतें, जो मुझे घेरे हैं, वे भी हैं, उनका कोई अस्तित्व है। जब मां के सामने होता हूं, तो विराट के सामने होता हूं, तो क्षुद्र की सारी बात भूल जाती है। यह मुझसे नहीं हो सकेगा।
रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को कहा कि इसीलिए इसे भेजता था, कि अगर इसकी प्रार्थना अभी भी मांग बन सकती है, तो इसे प्रार्थना की कला नहीं आई। अगर यह अब भी मांग सकता है प्रार्थना के क्षण में, तो इसका मन संसार में ही उलझा है, परमात्मा की तरफ उठा नहीं है।
आप पूछते हैं कि क्या मांगें?
मांगें मत। मांग संसार है। और जो मांगना छोड़ देता है, वही केवल परमात्मा में प्रवेश करता है। तो कुछ भी न मांगें। सुख नहीं, कुछ भी मत मांगें। मोक्ष भी मत मांगें, मुक्ति भी मत मांगें। क्योंकि मांग ही उपद्रव है। मांग ही बाधा है। वह जो मांगने वाला मन है, वह प्रार्थना में हो ही नहीं पाता।
साधारणतः हमने सारी प्रार्थना को मांग बना लिया है। मांगना चाहते हैं, तभी हम प्रार्थना करते हैं। प्रार्थी का मतलब ही हो गया मांगने वाला। अन्यथा हम प्रार्थना ही नहीं करते। जब मांगना होता है, तभी प्रार्थना करते हैं। जब नहीं मांगना होता, तो प्रार्थना भी खो जाती है। हमारी सारी प्रार्थना भिक्षु की, मांगने वाले की प्रार्थना है। हम भिक्षा-पात्र लेकर ही परमात्मा के सामने खड़े होते हैं। यह ढंग उचित नहीं है। यह प्रार्थना का ढंग ही नहीं है। फिर प्रार्थना क्या है?
साधारणतः लोग समझते हैं कि प्रार्थना कुछ करने की चीज है--कि आपने जाकर स्तुति की, कि गुणगान किया, कि भगवान की बड़ी प्रशंसा की--कुछ करने की

चीज है। प्रार्थना न तो मांग है और न कुछ करने की चीज है। प्रार्थना एक मनोदशा है।
उचित होगा कहना कि प्रार्थना की नहीं जाती, आप प्रार्थना में हो सकते हैं। यू कैन नाट डू प्रेयर, यू कैन बी इन इट। प्रार्थना में हो सकते हैं, प्रार्थना की नहीं जा सकती। वह कोई कृत्य नहीं है कि आपने कुछ किया--घंटा बजाया, नाम लिया। वे सब बाह्य उपकरण हैं। प्रार्थना भीतर की एक मनोदशा है; ए स्टेट आफ माइंड।
दो तरह की मनोदशाएं हैं। मांग, डिजायर, वासना। वासना कहती है, यह चाहिए। मन की एक दशा है कि यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए। चौबीस घंटे हम वासना में हैं, यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए। एक क्षण ऐसा नहीं है, जब वासना न हो। कुछ न कुछ चाहिए। चाह धुएं की तरह चारों तरफ घेरे रहती है।
एक स्थिति है, वासना। अगर आप मांग लेकर प्रार्थना कर रहे हैं, तो वासना ही बनी हुई है, स्थिति बदली ही नहीं। वहां आप फिर कुछ मांग रहे हैं। बाजार में कुछ मांग रहे थे। पत्नी से कुछ मांग रहे थे। पति से कुछ मांग रहे थे। बेटे से, बाप से कुछ मांग रहे थे। समाज से कुछ मांग रहे थे। राज्य से कुछ मांग रहे थे। संसार से कुछ मांग रहे थे। अब परमात्मा से मांग रहे हैं। जिससे मांग रहे थे, वह बदल गया, लेकिन मांगने वाला मन, वह भिखारी वासना मौजूद है। कभी इससे मांगा, कभी उससे मांगा। जब कहीं भी न मिल सका, तो लोग भगवान से मांगने लगते हैं। सोचते हैं, जो कहीं नहीं मिला, वह भगवान से मिल जाएगा! मांगते लेकिन जरूर हैं। यह वासना है।
प्रार्थना बिल्कुल उलटी अवस्था है। वासना है दौड़, कुछ जो नहीं है, उसके लिए। प्रार्थना, जो है, उसका आनंदभाव। प्रार्थना है ठहर जाना, वासना है दौड़। वासना है भविष्य में, प्रार्थना है अभी और यहीं। प्रार्थनापूर्ण चित्त का अर्थ है, मिट गया अतीत, मिट गया भविष्य; यह क्षण सब कुछ है।
खड़े हैं परमात्मा की प्रतिमा के सामने। और यह प्रतिमा कहीं भी हो सकती है। एक वृक्ष में हो सकती है। एक नदी में हो सकती है। एक व्यक्ति में हो सकती है। आपके बेटे की आंखों में हो सकती है। आपकी पत्नी की आंखों में हो सकती है। पत्थर में हो सकती है। आकार में, निराकार में, कहीं भी हो सकती है।
जहां भी आप ऐसा क्षण खोज लें कि आपमें अब कोई दौड़ नहीं है मन की, मन ठहर गया है, जैसे धारा रुक गई हो और कोई गति नहीं है। इस क्षण में जो आनंदभाव उत्पन्न हो जाता है, और जो थिरक फैल जाती है; इस क्षण में जो पुलकित हो उठते हैं प्राण के कण-कण; भीतर तक, केंद्र तक, जो भनक सुनाई पड़ने लगती है अनंत के स्वर की, वह प्रार्थना है। इस प्रार्थना से भी नृत्य पैदा हो जाता है। क्योंकि जब प्राण आनंदित होते हैं, तो पैर भी नाचने लगते हैं। इस आनंद से स्वर भी फूट पड़ता है। जब भीतर की वीणा बजती है, तो गीत भी फूट पड़ता है। यहीं फर्क है। आप भी जाकर मंदिर में गीत गा सकते हैं मीरा का। लेकिन
आप गा रहे हैं कुछ पाने के लिए। मीरा ने भी गाया था। गाया था, कुछ भीतर मिल गया था, उसकी भनक शरीर तक दौड़ गई। मीरा नाचने लगी, गाने लगी।
इस गाने और नाचने में प्रार्थना नहीं है। ये तो प्रार्थना के परिणाम हैं। यह तो प्रार्थना की बाइ-प्रोडक्ट है। यह तो जैसे गेहूं उगता है, उसके साथ भूसा भी उग आता है। जब भीतर प्रार्थना होती है, तो यह आनंद बाहर भी प्रकट होने लगता है। पर हम तो मीरा को बाहर से देखते हैं, तो हमें लगता है, मीरा गीत गा रही है, नाच रही है। शायद हम भी नाचें और गीत गाएं ऐसा ही, तो जो मीरा को भीतर हुआ, वह हमें भी हो जाए।
यहीं तर्क की भूल हो जाती है। यहीं भूल हो जाती है। मीरा को जो भीतर हो रहा है, उसके कारण नृत्य पैदा हो रहा है। नृत्य के कारण भीतर कुछ होता होता, तो सभी नर्तकियां मीरा हो जातीं। और गीत के कारण अगर कुछ भीतर होता होता, तो सभी गायक कभी के वहां पहुंच गए होते। आप कितना अच्छा गा पाएंगे? कुशल गायक हैं; उनसे आप क्या जीत पाएंगे? कुशल नर्तक हैं; आप क्या नाच पाएंगे?
नहीं; मीरा को जो हुआ है, यह गान में और नृत्य में तो उसकी प्रतिध्वनि
भर सुनाई पड़ रही है। वह जो हुआ है, वह इसके बाहर है। इसलिए जरूरी नहीं है कि

गान और नृत्य पैदा हो ही। क्योंकि महावीर को हमने नाचते नहीं देखा। बुद्ध को हमने गाते नहीं देखा। तो कोई ऐसा भी जरूरी नहीं है कि वह धुन बाहर इस भांति आए। वह अनेक रूपों में आ सकती है, व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करेगी। बुद्ध के बाहर वह नाचकर नहीं आती। बुद्ध के बाहर वह प्रशांत, घनी शांति बनकर आती है। बुद्ध का व्यक्तित्व अलग है। भीतर तो वही घटता है, जो मीरा को घटता है। भीतर बुद्ध के भी वही घटता है। लेकिन मीरा स्त्री है। और मीरा के पैरों में जो है, वह बुद्ध के पैरों में नहीं है; और मीरा की वाणी में जो है, वह बुद्ध की वाणी में नहीं है। बुद्ध का व्यक्तित्व और है।
तो वही घटना भीतर घटती है, लेकिन जिससे छनकर आती है, वह व्यक्तित्व अलग है। तो बुद्ध के बाहर वह प्रगाढ़ शांति हो जाती है। जिसने बुद्ध को देखा है, वह सोच ही नहीं सकता कि वह परम अनुभव नृत्य कैसे बनेगा! क्योंकि बुद्ध को तो देखा है, तो वे बिल्कुल शांत हो गए हैं। कुछ भी कंपन नहीं होता बाहर। पत्थर की मूर्ति हो गए। जिन्होंने मीरा को देखा है, वे भरोसा नहीं कर सकते कि शांत! इस तरह की शांत स्थिति कैसे बनेगी? क्योंकि मीरा को हमने बावली होते देखा, पागल होते देखा। उसका शरीर नृत्य से भर गया। ये व्यक्तियों के भेद हैं।
लेकिन आप चाहें तो बुद्ध जैसे मूर्ति बनकर भी बैठ जा सकते हैं; तो भी भीतर की घटना नहीं घटेगी। क्योंकि भीतर की घटना प्राथमिक है; बाहर जो घटता है, वह गौण है। वह उसका परिणाम है। वह उसका फल है। बाहर से भीतर की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है। भीतर से ही बाहर की तरफ आने का उपाय है।
प्रार्थना, ठहरा हुआ क्षण है मन का। वासना, भागता हुआ क्षण है मन का। वासना है दौड़; प्रार्थना है ठहराव।
अगर आप विश्राम के क्षण में किसी वृक्ष के पास बैठ गए, तो वह वृक्ष आपके लिए थोड़ी देर में परमात्मा हो जाएगा। जहां भी हम विश्राम के क्षण में हो जाते हैं, वहीं परमात्मा प्रकट हो जाता है।

प्रश्नः एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, राम, ये भगवान थे। ये भगवान नहीं थे। क्योंकि भगवान तो निराकार है और ये सब तो साकार थे! तो हो सकता है, उनको भगवान की अनुभूति हुई हो, लेकिन वे भगवान नहीं थे।

आकार क्या है? किसे हम आकार कहते हैं? इस जगत में कुछ भी है जो साकार है?
इस जगत में सभी कुछ निराकार है। लेकिन हमारे पास देखने वाली आंखें सीमित हैं। इसलिए निराकार भी हमें आकार ही दिखाई पड़ता है। आप अपनी खिड़की से आकाश को देखते हैं, तो खिड़की के बराबर चौखटे में ही आकाश दिखाई पड़ता है। आप अपने नीले चश्मे से जगत को देखते हैं, तो जगत नीला दिखाई पड़ता है। आपकी देखने की क्षमता के कारण आकार निर्मित होता है, अन्यथा आकार कहीं भी नहीं है।
आप कहेंगे, यह तो बात कुछ जंचती नहीं। हमारे शरीर का तो कम से कम आकार है!
वहां भी आकार नहीं है। कहां आपका शरीर समाप्त होता है, आपको पता है? अगर सूरज ठंडा हो जाए--दस करोड़ मील दूर है--अगर ठंडा हो जाए, तो आपके शरीर का आपको पता है क्या होगा? उसी वक्त ठंडा हो जाएगा। तो आपका शरीर आपकी चमड़ी पर नहीं समाप्त होता। वह दस करोड़ मील दूर जो सूरज है, वह भी आपके शरीर का हिस्सा है। क्योंकि उसके बिना आप जी नहीं सकते। वह जो दस करोड़ मील दूर सूरज है, वह भी आपके शरीर का हिस्सा है, क्योंकि आपका शरीर उसके बिना जी नहीं सकता। शरीर जुड़ा है उससे।
कहां आपका शरीर खत्म होता है? आपके ऊपर? अगर आपके पिता न होते, तो आप
हो सकते थे?
पीछे लौटें! तब आपको पता चलेगा, अरबों-खरबों वर्षों का जो इतिहास है, उससे आपका शरीर निर्मित हुआ है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष से जीवाणु चल रहा है, वह आपका शरीर बना है। अगर उसशृंखला में एक जीवाणु अलग हो जाए, तो आप नहीं

होंगे। तो समय में पूरा इतिहास आपमें समाया हुआ है। अभी इस क्षण सारा जगत आपमें समाया हुआ है। अगर इस जगत में जरा भी फर्क हो जाए, आप नहीं होंगे। तो आपका शरीर अनंत-अनंत शक्तियों का एक मेल है। आपको जितना दिखाई पड़ता है, उसको आप शरीर मान लेते हैं। और अगर यह सच है कि अनंत इतिहास आपमें समाया हुआ है, तो अनंत भविष्य भी आपमें समाया हुआ है। वह आपसे ही पैदा होगा।
आप कहां शुरू होते हैं? कहां समाप्त होते हैं? आपने अपने जन्म-दिन को अपना जन्म-दिन समझ लिया है, यह आपकी समझ की सीमा है। कब आप पैदा हुए? आपका जीवाणु चल रहा है अरबों-अरबों, खरबों वर्षों से। जब आप पैदा नहीं हुए थे, तब वह आपकी मां में था, आपके पिता में था। और जब आपके मां-बाप भी पैदा नहीं हुए थे, तब वह किसी और में था। लेकिन वह चल रहा है। आप थे अनंत काल से। और आप जब नहीं होंगे, तब भी वह चलता रहेगा अनंत काल तक।
कहां आपका शरीर समाप्त होता है? कहां शुरू होता है? कहां है सीमा उसकी? अभी इस क्षण में भी कहां है उसकी सीमा? किस जगह हम मानें कि यहां मेरा शरीर समाप्त हुआ? सूरज को हम अपने शरीर का हिस्सा मानें या न मानें? यह बड़ा सवाल है। वैज्ञानिक पूछते हैं कि इसमें कहां हम समाप्त करें शरीर को?
वहां सूरज पर जरा-सी हलचल होती है और आपमें फर्क हो जाता है। आपको पता नहीं है। पिछले बीस वर्षों में सूरज और आदमी के शरीर पर गहन अध्ययन हुए हैं।
अमेरिका के एक रुग्ण चिकित्सालय में, वे बड़े हैरान थे कि किसी-किसी दिन विक्षिप्त लोगों का जो हिस्सा था, उसमें किसी-किसी दिन पागल ज्यादा पागल मालूम पड़ते थे। और कभी-कभी बहुत शांत मालूम पड़ते थे और कभी-कभी बहुत पागल मालूम पड़ते थे। और जब यह पागलपन का दौर आता था, तो किसी एक पागल को नहीं आता था, यह सारे पागलों को आता था। ऐसा लगता था कि एक पीरियाडिकल सर्किल है। जैसे समुद्र में बाढ़ आती है, उतर जाती है; ज्वार चढ़ता है, भाटा आ जाता है।
तो तीन वर्ष तक निरंतर उन पागलों के रिकार्ड को रखा गया कि किस दिन,
कब, क्यों? कोई कारण नहीं मिलता था। क्योंकि भोजन में कोई फर्क पड़ा? नहीं पड़ा। कोई अधिकारी बदले गए? नहीं बदले गए। कोई चिकित्सा बदली गई? नहीं बदली गई। कोई फर्क नहीं है। जैसी व्यवस्था है, रूटीन, वैसा सब चल रहा है। अचानक एक दिन सारे पागल ज्यादा पागल हो जाते हैं। एक दिन सारे पागल ज्यादा शांत हो जाते हैं।
सब तरह की खोजबीन के बाद जो नतीजा हाथ में आया, वह यह कि सूरज से संबंध है। सूरज पर तूफान जब उठते हैं, तब वे पागल ज्यादा पागल हो जाते हैं। और जब सूरज का तूफान शांत हो जाता है, तो वे पागल शांत हो जाते हैं।
और अब तो एक पूरा विज्ञान खड़ा हो रहा है कि सूरज पर जो कुछ घटता है, उसका ठीक अध्ययन किए बिना, आदमी के जीवन में क्या घटता है, नहीं कहा जा सकता। हर नब्बे साल में सूरज पर बड़ी क्रांति घटित होती है। और जमीन पर जो भी उपद्रव होते हैं, वे हर नब्बे साल के पीरियड में होते हैं। हर ग्यारह साल में सूरज पर छोटा तूफान आता है। जमीन पर जो युद्ध होते हैं, उनका पीरियाडिकल जो वर्तुल है, वह ग्यारह साल है।
अमेरिका में ऐसा अध्ययन हो, तो समझ में आता है। रूस में भी इस तरफ अध्ययन हुए हैं। और रूस के मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक भी चकित हो गए हैं। और रूस में तो मानना बहुत मुश्किल है कि उन्नीस सौ सत्रह की जो क्रांति है, वह लेनिन, ट्राटस्की और कम्यूनिज्म के कारण नहीं हुई, बल्कि चांद या सूरज पर कोई उपद्रव हुआ, उसके कारण हुई।
पर रूस भी क्या करे! आज का सारा अध्ययन यह बता रहा है कि सूरज पर जो भी घटित होता है, आदमी उससे तत्क्षण प्रभावित होता है। तत्क्षण! और आदमी के जगत में जो भी घटित होता है, वह सूरज से, तारों से जुड़ा है।
कहां आप समाप्त होते हैं? कहां आपकी सीमा है?
आपकी भी सीमा नहीं है। राम की तो फिक्र छोड़ें, कृष्ण की तो फिक्र छोड़ें। आप भी असीम हैं। यहां प्रत्येक बिंदु विराट है। और यहां प्रत्येक

बूंद सागर है। हमें बूंद दिखाई पड़ती है, क्योंकि देखने की हमारी क्षमता सीमित है।
तो जैसे-जैसे क्षमता बढ़ती है, वैसे-वैसे आकार छूटने लगता है और निराकार दिखाई पड़ने लगता है। जैसे-जैसे क्षमता विराट होने लगती है, बड़ी होने लगती है, विराट प्रकट होने लगता है। जिस दिन हमारे पास देखने का कोई ढांचा नहीं रह जाता, दृष्टि पूरी मुक्त और शून्य हो जाती है, उस दिन हम विराट के सामने खड़े हो जाते हैं।
राम को आप देखते, तो आप तो आदमी ही कहते। क्योंकि आप आदमी के सिवाय राम में भी कुछ नहीं देख सकते हैं। आप कृष्ण को देखते, तो उनको भी आदमी कहते। क्योंकि आपके देखने का ढंग! लेकिन कुछ और तरह के देखने वाले लोग भी हैं। उन्होंने कृष्ण में देख लिया भगवान को, उन्होंने राम में देख लिया भगवान को।
लोग मुझसे पूछते हैं कि राम हुए, कृष्ण हुए, बुद्ध, महावीर हुए, जीसस हुए, लाओत्से हुए, ये सब बहुत पहले हुए, अब क्यों नहीं होते हैं?
अब भी होते हैं। लेकिन पहले उन्हें पहचानने वाले ज्यादा लोग थे, अब उन्हें पहचानने वाले कम लोग हैं। बस, उतना ही फर्क है। और आप इस फिक्र में न पड़ें। अगर आप बुद्ध के समय भी होते, तो आप बुद्ध को पहचान नहीं सकते थे। और आप थे। यह कहना ठीक नहीं कि होते; आप थे। और नहीं पहचान पाए, इसीलिए आप अभी भी हैं। नहीं तो अभी तक तिरोहित हो गए होते। अगर पहचान गए होते, तो वह रास्ता आपको दिख गया होता, तो आप अभी तक वाष्पीभूत होकर दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते। हम हैं इसलिए, तभी तक हम हैं, जब तक हम नहीं पहचान पाते, जब तक हमें नहीं दिखाई पड़ पाता।
एक व्यक्ति में भी हमें झलक मिल जाए विराट की, तो फिर सब में मिलने लगेगी। वह तो शुरुआत है। कोई राम और कृष्ण अंत थोड़े ही हैं, शुरुआत हैं। उनमें दिखाई पड़ जाए, तो फिर कहीं भी दिखाई पड़ने लगेगी। फिर हमारा अनुभव हो गया।
इसलिए हमने पत्थर की भी मूर्तियां बनाईं। जिन्होंने पत्थर की मूर्तियां बनाईं, बड़े होशियार लोग थे। क्योंकि उन्हें एक दफा दिखाई पड़ गया, तो फिर पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगा। एक दफा दिखाई पड़ जाए, तो कहीं भी दिखाई पड़ेगा। फिर पत्थर में भी वही दिखाई पड़ेगा। फिर कोई कारण नहीं है। फिर कहीं कोई बाधा नहीं है। फिर कोई रुकावट रोक नहीं सकती। जो मुझे दिख गया एक दफा, वह फिर मैं कहीं भी देख लूंगा।
लेकिन देखने के लिए बड़ी बात यह नहीं है कि राम भगवान हैं या नहीं। यह बड़ा सवाल नहीं है। यह असंगत है। बड़ा सवाल यह है कि मेरे पास भगवान को देखने की आंख है या नहीं!
बुद्ध के पिछले जन्म की घटना है कि बुद्ध पिछले जन्म में, जब वे अज्ञानी थे और बुद्ध नहीं हुए थे... । अज्ञान का एक ही मतलब है हमारे मुल्क में कि जब तक उनको पता नहीं चला था कि मैं भगवान हूं। जब तक वे जानते थे कि मैं आदमी हूं। तब जब वे अज्ञानी थे, उनके गांव में एक बुद्धपुरुष का आगमन हुआ। तो बुद्ध उनका दर्शन करने गए। उनके चरणों में गिरकर नमस्कार किया। और जब वे नमस्कार करके खड़े हुए, तो बहुत चकित हो गए। समझ में नहीं पड़ा कि क्या हो गया! वे जो बुद्धपुरुष थे, उन्होंने बुद्ध के चरणों में सिर रखकर नमस्कार किया।
तो बुद्ध बहुत घबड़ा गए और उन्होंने कहा, आप यह क्या करते हैं! इससे मुझे पाप लगेगा। मैं आपके पैर छुऊं, यह उचित है। क्योंकि आप पा चुके हैं, मैं अभी भटक रहा हूं। आप मंजिल हैं, मैं अभी रास्ता हूं। मैं आपके चरणों में झुकूं, यह ठीक है। अभी मेरी खोज बाकी है, आपकी खोज पूरी हो गई। आप क्यों मेरे चरणों में झुकते हो?
तो उन बुद्धपुरुष ने बुद्ध को कहा, तुझे वही दिखाई पड़ता है अभी, जो तू देख सकता है। मैं तेरे भीतर उसको भी देखता हूं, जो तुझे दिखाई नहीं पड़ता है। मैंने जिसे पा लिया है, वह मुझे तेरे भीतर भी दिखाई पड़ता है। मैं तेरे चरण नहीं छू रहा हूं; मैं उसके चरण छू रहा हूं। और एक दिन तुझे भी वह दिखाई पड़ जाएगा। यह समय का भर फासला है। चरणों में कोई फर्क नहीं है; समय भर का

फासला है। जो आज तुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है, मुझे दिखाई पड़ रहा है, वह कल तुझे भी दिखाई पड़ जाएगा।
और जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो उन्होंने पहला स्मरण अपने पिछले जन्म के
उस बुद्धपुरुष का किया है। उन्होंने कहा कि आज मैं समझ पाया कि उन्हें क्या दिखाई पड़ा होगा। आज मुझे भी दिखाई पड़ रहा है, लेकिन यह सदा मेरे साथ था और मुझे दिखाई नहीं पड़ा।
नजर न हो, तो आपके पास भी रखी हो संपदा, तो भी दिखाई नहीं पड़ सकती। अंधे
के पास दीया जल रहा हो, क्या अर्थ है? और बहरे के पास वीणा बज रही हो, क्या अर्थ है? कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि वह घटना घट ही नहीं रही है। जब तक आपके पास संवेदना की इंद्रिय न हो, तब तक कुछ भी नहीं है।
अगर आपको भगवान दिखाई न पड़ता हो राम में, तो इसकी फिक्र में मत पड़ना कि राम भगवान हैं या नहीं। इसका आपके पास निर्णय करने का कोई उपाय नहीं है। कोई मापदंड, कोई तराजू नहीं है, जिस पर नाप सकें कि कौन आदमी भगवान है और कौन नहीं है। इस फिक्र में भी मत पड़ना। यह व्यर्थ की कोशिश है।
अगर आपको राम में, कृष्ण में, बुद्ध में, कहीं भगवान न दिखाई पड़ते हों,
तो आप इस फिक्र में पड़ना कि मेरे पास आंख भगवान को देखने की है या नहीं! उसकी खोज में लग जाना। जिस दिन वह आंख आपके पास होगी, उस दिन राम में ही नहीं, रावण में भी भगवान दिखाई पड़ेंगे। उस दिन फिर कोई जगह ही न बचेगी, जहां वे न हों।
नानक गए मक्का, तो सो गए रात। थके थे। पुजारी बहुत चिंतित हुए, वे आए। क्योंकि नानक ने पैर कर लिए थे मक्का के पवित्र मंदिर की तरफ। तो उन पुजारियों ने कहा कि नासमझ, अपने को बड़ा ज्ञानी समझता है, और इतनी भी तुझे अक्ल नहीं कि पवित्र मंदिर की तरफ पैर किए हुए है!
तो नानक ने कहा कि तुम मेरे पैर वहां कर दो, जहां उसका पवित्र मंदिर न हो। मैं भी बड़ी चिंता में हूं। तुम आ गए, अच्छा हुआ। मैंने भी बहुत सोचा कि पैर कहां करूं, क्योंकि वह सब जगह मौजूद है। और कहीं तो पैर करूंगा! सोना है मुझे; थका-मांदा हूं। अब तुम आ गए, तुम हल कर दो। तुम मेरे पैर पकड़ो और उस तरफ कर दो, जहां वह न हो।
कहानी बड़ी मीठी है। और यह कि पुजारियों ने उनके पैर सब तरफ करने की कोशिश की और बड़ी मुश्किल में पड़ गए, जहां पैर किए, वहीं मक्का हट गया। मक्का हटा कि नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है। बड़ा सवाल यही है कि सच में ही कहां पैर करिएगा जहां भगवान नहीं है!
नानक को अगर एक दफा दिखाई पड़ गया है उसका होना, तो अब कोई जगह नहीं है, जहां वह न हो। अब वह सब जगह है। अब तो कहीं भी पैर करो, कहीं भी सिर रखो। पैर भी उस पर ही पड़ेंगे, सिर भी उस पर पड़ेगा। उठो-बैठो तो उसके भीतर, चलो तो उसके भीतर, अब वही है और कुछ भी नहीं है।
देखने की क्षमता हो, नानक की आंख हो, तो फिर सब जगह है। और हमारी आंख हो, तो फिर कहीं भी नहीं है। फिर हमको चिंता इसकी भी होती है कि राम में भी शक होता है, बुद्ध में भी शक होता है।
और आप ऐसा मत समझना कि आपको ही शक होता है। उस दिन भी जो लोग थे, उनको
भी शक था। कोई सारे लोगों ने बुद्ध को मान लिया था, ऐसा नहीं है; कि सारे लोगों ने महावीर को मान लिया था, ऐसा नहीं है; कि सारे लोगों ने कृष्ण को मान लिया था, ऐसा भी नहीं है। बहुत थोड़े से लोग पहचान पाते हैं।
जो पहचान ले, वह धन्यभागी है। इस पहचानने से कोई कृष्ण को फायदा होता है, ऐसा नहीं है। इस पहचानने से, वह जो पहचान लेता है, उसको ही फायदा हो जाता है। एक में भी दिख जाए, तो देखने की कला आ जाती है, फिर सब में देखा जा सकता है।

प्रश्नः एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि कीर्तन के समय हम अपने मन के सामने कौन-सी छवि रखें, जिससे मन केंद्रित हो जाए?

मन को केंद्रित नहीं करना है, मन को विसर्जित करना है। इन दोनों में फर्क है।

मन केंद्रित भी हो जाए, तो भी मन रहेगा। कोई छवि मन में बना ली, तो छवि
पर मन केंद्रित हो जाएगा। लेकिन छवि रहेगी, मन भी रहेगा। दो बने रहेंगे। कीर्तन का अंतिम लक्ष्य, ध्यान का अंतिम लक्ष्य, प्रार्थना का, पूजा
का अंतिम लक्ष्य--एक बच रहे, छवि कोई न रहे।
तो जब आप कीर्तन कर रहे हैं, तो छवि की फिक्र न करें। छवि आ जाए, तो हटाने की भी फिक्र न करें। छवि न आए, तो लाने की भी फिक्र न करें। आप तो सिर्फ लीन होने की, डूबने की फिक्र करें। मिटने की फिक्र करें।
जब आप एकाग्र करने की चेष्टा करते हैं, तो मन पर तनाव पड़ता है। तनाव बेचैनी पैदा करेगा। एकाग्र करने की चेष्टा ही मत करें। खोने की चेष्टा करें। जैसे बूंद सागर में डूब रही है, ऐसे आप विराट में डूब रहे हैं, निराकार में खो रहे हैं। जैसे दीए को कोई फूंककर बुझा दे और वह खो जाए शून्य में, ऐसे आप भी खो रहे हैं। लीन होने की चिंता करें, डूबने की चिंता करें, मिटने की चिंता करें। एकाग्र करने की चेष्टा मत करें, विसर्जित होने की, मेल्टिंग, जैसे बर्फ पिघल रही है।
एक ख्याल कर लें, जैसे बर्फ हो गए आप और पिघल रहे हैं, और बहते जा रहे हैं, और नदी में लीन होते जा रहे हैं। पिघलने की, खोने की, डूबने की!
अगर आपके कीर्तन में यह भाव-दशा बनी रहे, धीरे-धीरे नृत्य गहन होने लगेगा, धीरे-धीरे आवाज प्रगाढ़ होने लगेगी। और धीरे-धीरे नृत्य के साथ आपके भीतर बहुत कुछ टूटने लगेगा, समाप्त होने लगेगा। वह जो अहंकार था, वह गिरने लगेगा। कोई क्या कहेगा! कोई क्या सोचेगा! मैं क्या पागलपन कर रहा हूं! वह सब समाप्त होने लगेगा। धीरे-धीरे-धीरे आप भूल जाएंगे कि आप हैं, भूल जाएंगे कि जगत है। और जब यह विस्मरण का क्षण आ जाए कि न समझ में आए कि मैं कौन हूं, न समझ में आए कि चारों तरफ कौन है, तो समझना कि यह स्मृति की शुरुआत हुई।
इस विस्मरण में, जगत की तरफ से इस विस्मरण में भीतर का स्मरण आना शुरू
हो जाता है। जब जगत भूलने लगता है, तो परमात्मा याद आने लगता है। परमात्मा के याद आने का मतलब यह नहीं है कि कोई छवि याद आने लगती है। परमात्मा के याद आने का मतलब यह है कि वह जो जिसको विलियम जेम्स ने ओशनिक फीलिंग कहा है, समुद्र होने की भाव-दशा। बूंद होने का भाव नहीं, समुद्र होने का भाव आने लगता है।
फिर आप विराट हो जाते हैं। और फिर हवाएं चलती हैं, तो ऐसा नहीं कि आपके बाहर चल रही हैं, आपके भीतर चलती हैं। वृक्ष हिलते हैं, तो आपके बाहर नहीं, आपके भीतर हिलते हैं। चांद-तारे आपके भीतर चलते हैं। आपके आस-पास जो लोग नाच रहे हैं और कीर्तन कर रहे हैं, वे भी आपके बाहर नहीं रह जाते, आपके भीतर प्रवेश हो जाते हैं। आप फैलकर बड़े हो जाते हैं। और आपके भीतर सब होने लगता है।
छवि की बहुत फिक्र न करें। आ जाए, तो हटाने की भी चेष्टा मत करें। क्योंकि हटाने में भी फिर चेष्टा शुरू हो जाती है। आ जाए तो राजी, न आए तो राजी। अगर आप किसी छवि को प्रेम करते रहे हैं, तो वह आ जाएगी। अगर कृष्ण से आपका लगाव है, तो जब आप मस्त होंगे तो पहली घटना यही घटेगी कि कृष्ण आपको दिखाई पड़ने लगेंगे। अगर आपका क्राइस्ट से प्रेम है, तो आप मस्त होते से, पहली घटना, क्राइस्ट के पास आप पहुंच जाएंगे।
मजे से उनको रहने दें। उनको हटाने की भी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन उन
पर एकाग्र होने की भी कोई जरूरत नहीं है। धीरे-धीरे वे भी खो जाएंगे। और जब वे भी खो जाएंगे, तब निराकार प्रकट होता है। जहां राम भी खो जाते हैं, कृष्ण भी खो जाते हैं, बुद्ध भी, क्राइस्ट भी... । क्योंकि वे हमारे अंतिम पड़ाव हैं।
इसे ठीक से समझ लें।
जहां संसार समाप्त होता है, वहां खड़े हैं क्राइस्ट, बुद्ध, कृष्ण। उनकी प्रतिमाएं आखिरी तख्ती है, जहां संसार समाप्त होता है; वहां वे खड़े हैं। जब उनका भाव आता है, तो उसका अर्थ है कि अब हम किनारे आ गए। लेकिन उन तख्तियों को पकड़कर रुक नहीं जाना है। देखते रहना है, और आगे, और आगे, और

आगे, जहां वे भी खो जाएंगे, वहां लीन हो जाना है। देखते-देखते, आनंद से, धीरे-धीरे सब छोड़ देना है।
यह छोड़ने की घटना शरीर को छोड़ने से शुरू होती है। कीर्तन की यही मौज
और आनंद है कि आप शरीर को छोड़ दिए हैं।
लोग मुझसे पूछते हैं कि कोई व्यवस्था होनी चाहिए। कोई ढंग से नृत्य, कोई ताल, लय, यह सब व्यवस्था होनी चाहिए!
व्यवस्था से कीर्तन का कोई संबंध नहीं है। सच तो यह है कि कीर्तन व्यवस्था तोड़ने का एक उपाय है। कि आपके भीतर अब कोई व्यवस्था करने की चेष्टा नहीं है। आपने छोड़ दिया शरीर को, जैसा जो हो रहा है, आप होने दे रहे हैं। अब आप बीच-बीच में नहीं आ रहे हैं कि कैसा पैर उठाऊं, कैसा पैर न उठाऊं। अब जो हो रहा है, होने दे रहे हैं।
और यह छोड़ना शरीर का, पहला अनुभव है विसर्जन का। फिर मन को भी छोड़ देना है। जो हो रहा है, होने देना है। धीरे-धीरे शरीर और मन अपने आप गति करने लगेंगे और आप सिर्फ साक्षी रह जाएंगे, अपने ही शरीर, अपने ही मन के।
मैं पढ़ रहा था, रूसी अंतरिक्ष यात्री पैकोव जब पहली दफा छत्तीस घंटे जमीन की परिधि में परिक्रमा किया, तो उसने अपने संस्मरण लिखे लौटकर। उसने अपनी डायरी में लिखा है... । क्योंकि जैसे ही जमीन का गुरुत्वाकर्षण समाप्त होता है, तो हाथ-पैर निर्भार हो जाते हैं, वेटलेस हो जाते हैं। अंतरिक्ष में कोई वजन तो नहीं है। वजन तो आप में भी नहीं है। जमीन की कशिश की वजह से वजन मालूम पड़ता है। दो सौ मील जमीन के पार जाने के बाद वजन समाप्त हो जाता है, आप निर्भार हो जाते हैं।
तो पैकोव ने लिखा है कि जब मैं सोने लगा, तो बड़ी मुसीबत मालूम पड़ी। क्योंकि मेरा पूरा शरीर तो बेल्ट से बंधा था, लेकिन मेरे दोनों हाथ ऐसे अधर में लटक जाते थे। तो मैं उनको खींचकर नीचे कर लेता। खींचकर नीचे कर लेता तब तो ठीक, लेकिन जैसे ही झपकी आनी शुरू होती, मेरा खिंचाव बंद हो जाता, हाथ दोनों फिर अधर में लटक जाते! तो उसने लिखा है कि बीच आधी रात में नींद खुली, अपने दोनों हाथ ऐसे लटके हुए देखकर मुझे पहली दफे साक्षी-भाव हुआ, कि मेरा शरीर अपना ही शरीर, अपने बस के बाहर ऐसा अधर में लटका हुआ है! कीर्तन की गहराई में जब शरीर को आप बिल्कुल छोड़ देते हैं उन्मुक्त, और
जो होता है, होने देते हैं, तत्क्षण आपको भीतर लगता है कि मैं शरीर से अलग हूं। अब शरीर अपनी गति से चल रहा है। शरीर अपनी गति कर रहा है और मैं देख रहा हूं। जैसा पैकोव को हुआ होगा, ऐसा कीर्तन में आपको सहज ही हो सकता है। और बड़े मजे की बात है कि आज नहीं कल अंतरिक्ष-यात्रा को हम आत्म-साधना
के लिए उपयोग में ला सकेंगे। और अतीत में साधकों को जो काम वर्षों तक करके हल होता था, वह अंतरिक्ष में साधक को घंटों में भी हो जा सकता है। क्योंकि जमीन पर रहकर, मैं शरीर नहीं हूं, इस भाव का अनुभव करने में वर्षों लग जाते हैं, क्योंकि जमीन पूरे वक्त ख्याल दिलाती है कि तुम शरीर हो।
इसलिए हमारा साधक हिमालय के पहाड़ पर दूर जाता था, ऊंचाई पर। जितनी ऊंचाई पर जाता था, जमीन से जितना दूर, उतना निर्भार होना आसान हो जाता था। इसलिए हमने कैलाश खोजा था। लेकिन अब कैलाश छोटी-मोटी जगह है। अब हम अंतरिक्ष में, जमीन को बिल्कुल छोड़ सकते हैं। और जब अंतरिक्ष यान में किसी साधक का शरीर हवा में ऐसे उड़ रहा हो, जैसे कि गुब्बारा गैस का भरा हुआ हवा में होता है, तब यह अनुभव करना बिल्कुल आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। कीर्तन आपको निर्भार कर जाता है, शरीर को आप छोड़ देते हैं, बच्चे की तरह। कभी-कभी तो नृत्य बड़ा क्रांतिकारी काम कर देता है।
सूफियों में दरवेश नृत्य की व्यवस्था है। दरवेश नृत्य वैसा होता है, जैसे बच्चे चक्कर लगाते हैं, एक ही जगह खड़े होकर फिरकनी करते हैं। तो दरवेश नृत्य में एक ही जगह खड़े होकर फिरकनी की तरह चक्कर लगाया जाता है, व्हिरलिंग। जब आप जोर से एक ही जगह खड़े होकर चक्कर लगाते हैं, सिर घूमने लगता है, चक्कर मालूम होता है। लगता है, गिर जाऊंगा, गिर जाऊंगा। लेकिन अगर आप गिरें न और लगाए चले जाएं, तो थोड़ी ही देर में आपको पता लगेगा कि शरीर चक्कर लगा रहा है और आप खड़े हो गए।

छोटे बच्चों को बहुत मजा आता है। मां-बाप रोकते हैं कि मत करो, चक्कर आ जाएगा। मत रोकना। क्योंकि छोटे बच्चों को जो मजा आता है फिरकनी मारने में, वह मजा थोड़े से आत्मा के सुख का ही है। क्योंकि फिरकनी मारने में उनको लगता है कि मैं शरीर नहीं हूं। शरीर घूमने लगता है यंत्र की तरह, और बीच में वे खड़े हो जाते हैं। बच्चे निर्दोष हैं, उनको यह जल्दी हो जाता है। नृत्य भी आपको बचपन में ले जाना है। कीर्तन आपको बच्चे की तरह सरल कर देना है। जो हो रहा है, होने देना है। और भीतर सजग शांत देखते रहना है। यह साक्षी-भाव बना रहे और अपने को विसर्जित करने की धारणा बनी रहे, तो आपका कीर्तन सफल हो जाता है।

अब हम सूत्र को लें।
हे परमेश्वर! सखा ऐसा मानकर, आपके इस प्रभाव को न जानते हुए मेरे द्वारा प्रेम से अथवा प्रमाद से भी, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा गया है और हे अच्युत, आप हंसी के लिए, विहार, शय्या, आसन और भोजनादिकों में अकेले अथवा सखाओं के सामने भी अपमानित किए गए हैं, वे सब अपराध, अप्रमेयस्वरूप, आपसे मैं क्षमा कराता हूं।
यह बड़ी मधुर बात है। बहुत मीठी, अत्यंत आंतरिक। जिस दिन अर्जुन को दिखाई पड़ा है कृष्ण का विराट होना, उनका परमात्मा होना, उस दिन स्वाभाविक है कि उसका मन अनेक-अनेक पीड़ाओं, अनेक-अनेक शरमों, अपराध के भाव से भर जाए। क्योंकि इन्हीं कृष्ण को अनेक बार कंधे पर हाथ रखकर उसने कहा है, हे यादव, हे मित्र, हे सखा! इस विराट को मित्र की तरह व्यवहार किया है। आज सोचकर भी भय लगता है। आज सोचकर भी उसे लगता है कि मैंने क्या किया! क्या समझा मैंने उन्हें अब तक! और मैंने कैसा व्यवहार किया! काश, मुझे पता होता कि क्या छिपा है उनके भीतर, तो ऐसा व्यवहार मैं कभी न करता।
लेकिन बड़े मजे की बात है कि यह अर्जुन को ही लगता हो, ऐसा नहीं है। अगर
आप पत्नी हैं, या अगर आप पति हैं, या पिता हैं, या बेटा हैं, जिस दिन आपको परमात्म-अनुभव होगा, उस दिन आपको भी लगेगा कि पत्नी के साथ मैंने कल तक कैसा व्यवहार किया! क्योंकि तब आपको पत्नी में भी वही दिखाई पड़ जाएगा। तब आपको लगेगा, मैंने नौकर के साथ कैसा व्यवहार किया! क्योंकि तब आपको नौकर में भी वही दिखाई पड़ जाएगा। तब आपको लगेगा, अब तक जो भी मैंने किया, वह नासमझी थी। क्योंकि जिसको मैं जो समझ रहा था, वह वह है ही नहीं। यह तो प्रतीक है अर्जुन का यह कहना, यह सभी अनुभवियों को अनुभव होगा। रवींद्रनाथ ने लिखा है कि जब उनकी गीतांजलि प्रकाशित हुई और उन्हें नोबल प्राइज मिली। नोबल प्राइज जब तक न मिली थी, तब तक तो कोई फिक्र उनकी करता नहीं था। जब नोबल प्राइज मिली, तो स्वागत-समारंभ शुरू हो गए। सारे कलकत्ते ने स्वागत किया। विरोधी भी मित्र बन गए।
लेकिन एक बूढ़ा उनके पड़ोस में था, जो नोबल प्राइज से जरा भी न डरा। और
वह बूढ़ा उन्हें बड़ा परेशान किए हुए था, कि जब उनकी कविताएं छपती थीं, तो वह बूढ़ा अक्सर उनको रास्ते में मिल जाता आते-जाते और कहता कि सुन! परमात्मा का अनुभव हुआ है? क्योंकि वे परमात्मा के बाबत कविताएं लिख रहे थे। ऐसा उनसे कोई भी नहीं पूछता था। कविता ठीक है कि नहीं, यह अलग बात है। लेकिन ऐसा उनसे कोई भी नहीं पूछता था कि परमात्मा का अनुभव हुआ है!
बूढ़ा ऐसी तेज आंख से देखता था कि रवींद्रनाथ ने कहा है कि उस आदमी से जितना मैं डरता था, किसी से भी नहीं डरता था। और हिम्मत भी नहीं पड़ती थी कहने की कि अनुभव हुआ है, क्योंकि अनुभव हुआ भी नहीं था। और उससे कहने में कोई सार भी नहीं था। उसकी आंख ही डरा देती थी।
रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैंने बड़े प्रेम के गीत गाए, बड़ी मित्रता के, लेकिन मेरे मन में उस बूढ़े के प्रति कोई सदभाव कभी नहीं जन्मा। मैं सारे जगत के प्रति प्रेम का गीत गा सकता था उस बूढ़े को छोड़कर; वह जो बूढ़ा था, वह जो पड़ोस में ही रहता था! और उसका जो व्यवहार था, वह ऐसा था कि बड़ा कठोर था।
फिर रवींद्रनाथ ने लिखा है कि लेकिन एक दिन सारी बात बदल गई। जा रहा
था समुद्र के किनारे, वर्षा हुई थी थोड़ी, और रास्ते के किनारे डबरों में

पानी भर गया था। सांझ उतर गई। चांद आ गया। पूरे चांद की रात थी, डबरों में, गंदे डबरों में सड़क के किनारे, चांद की छवि बनने लगी, बड़ी प्यारी। फिर सागर के किनारे जाकर देखा चांद को। फिर अचानक एक ख्याल आया कि चांद तो चांद ही है, चाहे सागर का स्वच्छ जल हो और चाहे सड़क के किनारे बने गंदे डबरे का गंदा जल हो, चांद के प्रतिबिंब में तो कोई गंदगी नहीं होती। चाहे वह गंदे डबरे में बन रहा हो और चाहे स्वच्छ जल में बन रहा हो, प्रतिबिंब तो गंदा नहीं होता गंदे जल के कारण।
इस ख्याल के आते ही समाधि लग गई। यह ख्याल अनूठा है। इसका मतलब हुआ कि सीमाएं सब टूट गईं। और प्रतिबिंब कहीं भी बन रहा हो उसका, चाहे राम में, चाहे रावण में, बराबर हो गया। समाधि लग गई, आनंद से हृदय भर गया। नाचता हुआ घर की तरफ लौटने लगा। रास्ते पर वह आदमी मिला। आज मुझे डरा नहीं पाया, आज उसे देखकर भी मैं आनंदित हुआ। उसे मैंने गले लगा लिया। आज उसने मेरी आंख में आंख झांककर देखा, लेकिन मुझसे कहा नहीं कि क्या ईश्वर का अनुभव हुआ है। उसने कहा, तो अच्छा, हो गया! मालूम पड़ता है, हो गया।
रवींद्रनाथ ने लिखा है, उस दिन के बाद तीन दिन तक ऐसी दशा बनी रही कि
जो मिल जाए, उससे ही गले मिलने का हो मन--मित्र हो कि शत्रु हो, अपरिचित कि परिचित, नौकर, मित्र--कोई भी हो। और फिर आदमी चुक गए, तो गाय, घोड़े, उनसे भी गले मिलना होने लगा। फिर वे भी चुक गए, तो वृक्ष, पत्थर, दीवाल। और रवींद्रनाथ ने लिखा है कि दीवाल से मिलकर भी वही अनुभव होने लगा, जो अपनी प्रेयसी से मिलकर हो।
लेकिन उस दिन लगा कि अब तक जो मैंने लोगों से व्यवहार किया है, वह बड़ा बुरा था। जाकर क्षमा मांगने गया उस बूढ़े से कि मुझे माफ कर दो। मैं तुम्हें पहचान ही न पाया कि तुम कौन हो। आज पहचान पाया हूं, तो सबसे क्षमा मांगने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।
जिस दिन आपको भी थोड़ी-सी झलक मिलेगी, सिवाय क्षमा मांगने के और कोई उपाय नहीं रह जाएगा। क्योंकि चारों तरफ वही विराट मौजूद है, और हम उसके साथ जो व्यवहार कर रहे हैं, वह बड़ा ओछा है। पर होगा ही व्यवहार ओछा, क्योंकि दृष्टि ओछी है। क्योंकि वह विराट तो कहीं दिखता ही नहीं है।
ऐसा मैंने सुना है; एक सूफी कथा है। एक सम्राट अपने बेटे पर नाराज हो गया, क्योंकि बेटा कुछ उपद्रवी, हठधर्मी था, उच्छृंखल था। नाराज इतना हो गया कि एक दिन उसने बेटे को राज्य का निकाला दे दिया। उसे कहा कि तू राज्य को छोड़कर चला जा। एक ही बेटा था। बड़ा कष्ट था, लेकिन छोड़ना पड़ा। बाप की भी जिद थी, बेटा भी जिद्दी था। बाप का ही बेटा था, एक से ही ढंग थे; दोनों अहंकारी थे। बेटे ने भी छोड़ दिया। राज्य की सीमा में मत टिकना! तो राज्य की सीमा में न टिककर दूसरे राज्य में चला गया।
राजा का बेटा था। कभी जमीन पर पैदल भी नहीं चला था, कभी कोई काम भी नहीं किया था। तो सिवाय भीख मांगने के कोई उपाय नहीं रहा। थोड़ा-बहुत तंबूरा बजाना जानता था, थोड़ा गीत-वीत का शौक था, तो गीत, तंबूरा बजाकर भीख मांगने लगा।
दस वर्ष बीत गए। बाप बूढ़ा हुआ, मरने के करीब आया। तो अब उसे लगा कि क्या करे, उस बेटे को खोजा जाए! तो वजीरों को भेजा कि कहीं भी मिले, शीघ्र ले आओ। मौत मेरी करीब है; वही मालिक है, जैसा भी है।
उस दिन जब उस छोटे-से गांव में, जहां एक चाय की दूकान के सामने वह भावी सम्राट भीख मांग रहा था... । गर्मी के दिन थे और आग बरस रही थी और रास्ते तप रहे थे, उन पर पैदल नंगे चलना मुश्किल था। उसके पास जूते नहीं थे। तो वह भीख मांग रहा था एक छोटे-से बर्तन में और लोगों से कह रहा था कि जूते के लिए मुझे पैसे चाहिए। होटल में जो लोग चाय-वाय पी रहे थे, गरीब-गुरबे, वे भी उसको पैसे, दो पैसे, थोड़ी-बहुत चिल्लर उसके बर्तन में थी।
वजीर का रथ आकर रुका। वजीर ने देखा; पहचान गया। वस्त्र अब भी वही थे,
दस साल पहले पहनकर जो घर से निकला था। फट गए थे, चीथड़े हो गए थे, गंदे हो गए थे, पहचानना मुश्किल था कि ये सम्राट के वस्त्र हैं। लेकिन पहचान गया मंत्री। आंखें वही थीं। चेहरा काला पड़ गया था। शरीर सूख गया था। हाथ में भिक्षा-पात्र था। पैर में फफोले थे।

मंत्री नीचे उतरा। वह भिक्षा-पात्र फैलाए हुए था। भिक्षा-पात्र! पास में रथ आकर रुका है, सोचा कि भिक्षा-पात्र इस तरफ करूं। देखा मंत्री है।
हाथ से भिक्षा-पात्र छूट गया। एक क्षण में दस साल मिट गए।
मंत्री चरण पर गिर पड़ा और कहा कि महाराज, वापस चलें।
भीड़ इकट्ठी हो गई। गांव सब आ गया पास। लोग पैरों पर गिरने लगे। वे, जिनके सामने वह भीख मांग रहा था, जो अभी भीख देने से कतरा रहे थे, वे उसके पैरों पर गिरने लगे, कहने लगे, माफ कर देना, हमें क्या पता था!
एक क्षण में सब बदल गया, सारे गांव का रुख। एक क्षण में बदल गया राजकुमार का रुख भी। अभी वह भिखारी था, एक क्षण में सम्राट हो गया। कपड़े वही रहे, शरीर वही रहा, आंखें बदल गईं। रौनक और हो गई।
जिंदगी, जैसा हम उसे देख रहे हैं, हमारी आंख से जो दिखाई पड़ रही है जिंदगी, हमारी आंख के कारण है। आंख बदल जाए, सारी जिंदगी बदल जाती है। और तब सिवाय क्षमा मांगने के कुछ भी न रह जाएगा।
वह पूरा गांव पैरों पर गिरने लगा कि क्षमा कर देना, बहुत भूलें हुई होंगी हमसे। निश्चित हुई हैं। हमने तुम्हें भिखारी समझा, यही बड़ी भूल थी! अर्जुन यही कह रहा है कि हमने तुम्हें मित्र समझा, यही बड़ी भूल थी। और मित्र समझकर हमने वे बातें कही होंगी, जो मित्रता में कह दी जाती हैं।
और मित्र एक-दूसरे को गाली भी दे देते हैं। सच तो यह है कि जब तक गाली देने का संबंध न हो, लोग मित्रता ही नहीं समझते! जब तक एक-दूसरे को गाली न देने लगें, तब तक समझते हैं, अभी पराए हैं, अभी कोई अपनापन नहीं है।
तो मित्र समझा है। कभी कहा होगा, ऐ कृष्ण! कभी कहा होगा, ऐ यादव! कभी कहा होगा, ऐ मित्र! क्षमा कर देना। हठपूर्वक बहुत-सी बातें कही होंगी। हठपूर्वक अपनी बात मनवानी चाही होगी। तुम्हारी बात झुठलाई होगी। विवाद किया होगा। तुम गलत हो, ऐसा भी कहा होगा। तुम गलत हो, ऐसा सिद्ध भी किया होगा। अवमानना की होगी। ठुकराया होगा तुम्हारे विचार को।
और हे अच्युत, हंसी के लिए ही सही, तुमसे वे बातें कही होंगी, जो नहीं कहनी चाहिए थीं। विहार में, शय्या पर, आसन में, भोजन करते वक्त, मित्रों के साथ, भीड़ में, एकांत में, दूसरों के सामने, न मालूम क्या-क्या कहा होगा! न मालूम किस-किस भांति आपको अपमानित किया होगा! या दूसरे अपमानित कर रहे होंगे, तो सहमति भरी होगी, विरोध न किया होगा। ये सब अपराध, अप्रमेयस्वरूप, अचिंत्य प्रभाव वाले, आपसे मैं क्षमा कराता हूं।
आपको अब जैसा देख रहा हूं और अब तक जैसा आपको देखा, इन दोनों के बीच जमीन-आसमान का भेद पड़ गया है। तो जो व्यवहार मैंने आपसे किए थे अनजान में, न जानते हुए आपको, न पहचानते हुए आपको, उन सबके लिए मुझे माफ कर देना।
इस जगत से भी हम माफी मांगेंगे, क्योंकि जगत परमात्मा है। और हम जो व्यवहार उससे कर रहे हैं, वह परमात्मा के साथ किया गया व्यवहार नहीं है। अगर मानकर भी चलें आप--अभी आपको पता भी नहीं है, सिर्फ मानकर चलें--कि यह जगत परमात्मा है और चौबीस घंटे के लिए प्रत्येक व्यक्ति से ऐसा व्यवहार करने लगें, जैसे वह परमात्मा है, तो आप पाएंगे कि आप बदलने शुरू हो गए, आप दूसरे आदमी हो गए। आपके भीतर गुणधर्म बदल जाएगा।
सूफियों की एक परंपरा है, एक साधना की विधि है, कि जो भी दिखाई पड़े, उसे परमात्मा मानकर ही चलना। अनुभव न हो, तो भी। कल्पना करनी पड़े, तो भी। क्योंकि वह कल्पना एक न एक दिन सत्य सिद्ध होगी। और जिस दिन सत्य सिद्ध होगी, उस दिन किसी से क्षमा नहीं मांगनी पड़ेगी।
मंसूर ने कहा है कि अगर परमात्मा भी मुझे मिल जाए, तो मुझे क्षमा नहीं मांगनी पड़ेगी। क्योंकि मैंने उसके सिवाय किसी में और कुछ देखा ही नहीं है।
अर्जुन को मांगनी पड़ रही है, क्योंकि अब तक उसने परमात्मा में भी कृष्ण को देखा है, एक मित्र को देखा है, एक सखा को देखा है। फिर मित्र के साथ जो संबंध है... ।
ध्यान रहे, मित्रता कितनी ही गहरी हो, उसमें शत्रुता मौजूद रहती है।
और मित्रता चाहे कितनी ही निकट की हो, उसमें एक दूरी तो रहती ही है।

मन का जो द्वंद्व है, वह सब पहलुओं पर प्रवेश करता है। आप किसी को शत्रु नहीं बना सकते सीधा। शत्रु बनाना हो, तो पहले मित्र बनाना जरूरी है। या कि आप किसी को सीधा शत्रु बना सकते हैं? सीधा शत्रु बनाने का कोई उपाय नहीं है। शत्रुता भी आती है, तो मित्रता के द्वार से ही आती है। असल में शत्रुता मित्रता में ही छिपी रहती है।
इसलिए बुद्धिमानों ने कहा है कि जिनको शत्रु न बनाने हों, उनको मित्र बनाने से बचना चाहिए। अगर आप मित्र बनाएंगे, तो शत्रु भी बनेंगे ही। क्योंकि मित्र और शत्रु कोई दो चीजें नहीं हैं। शायद एक ही घटना के दो छोर हैं; दो सघनताएं हैं एक ही तरंग की।
तो अर्जुन यह कह रहा है कि मित्रता में बहुत बार शत्रुता भी की है। और मित्रता में बहुत समय ऐसे वचन भी कहे हैं, जो शत्रु से भी नहीं कहने चाहिए। उन सबकी मैं क्षमा चाहता हूं।
हे विश्वेश्वर! आप इस चराचर जगत के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं। हे अतिशय प्रभाव वाले, तीनों लोकों में आपके समान दूसरा कोई भी नहीं है। अधिक तो कैसे होवे? इससे हे प्रभो, मैं शरीर को अच्छी प्रकार चरणों में रखकर और प्रणाम करके स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूं। हे देव, पिता जैसे पुत्र के और सखा जैसे सखा के और पति जैसे प्रिय स्त्री के, वैसे ही आप भी मेरे अपराध को सहन करने के लिए योग्य हैं।
मैं जानता हूं कि आप क्षमा कर देंगे। और मैं जानता हूं कि आप बुरा न लेंगे, अतीत में जो हुआ है। मैं जानता हूं कि आप महाक्षमावान हैं और जैसे प्रियजन को कोई क्षमा कर दे, आप मुझे कर देंगे। फिर भी मैं क्षमा मांगता हूं। शरीर को ठीक से चरणों में रखकर... ।
इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
हमें ख्याल में नहीं है कि शरीर की प्रत्येक अवस्था मन की अवस्था से जुड़ी है। शरीर और मन ऐसी दो चीजें नहीं हैं। इसलिए आज तो विज्ञान बाडी एंड माइंड, शरीर और मन, ऐसा न कहकर, साइकोसोमेटिक, मनोशरीर या शरीरमन, ऐसा एक ही शब्द का प्रयोग करने लगा है। और ठीक है, क्योंकि शरीर और मन एक साथ हैं। और प्रत्येक में कुछ भी घटित हो, दूसरे में प्रभावित होता है। जैसे कभी सोचें... ।
पश्चिम में दो विचारक हुए हैं, लेंगे और विलियम जेम्स। उन्होंने एक सिद्धांत विकसित किया था, जेम्स-लेंगे सिद्धांत। वह उलटी बात कहता है सिद्धांत, लेकिन बड़ी महत्वपूर्ण। आमतौर से हम समझते हैं कि आदमी भयभीत होता है, इसलिए भागता है। जेम्स-लेंगे कहते हैं, भागता है, इसलिए भयभीत होता है। आमतौर से हम समझते हैं, आदमी प्रसन्न होता है, इसलिए हंसता है। जेम्स-लेंगे कहते हैं, हंसता है, इसलिए प्रसन्न होता है। और उनका कहना है कि अगर यह बात ठीक नहीं है, तो आप बिना हंसे प्रसन्न होकर बता दीजिए! या बिना भागे भयभीत होकर बता दीजिए!
उनकी बात भी सच है; आधी सच है। आधी आम आदमी की बात भी सच है।
असल में भय और भागना दो चीजें नहीं हैं। भय मन है और भागना शरीर है। प्रसन्नता और हंसी दो चीजें नहीं हैं। प्रसन्नता मन है और हंसी शरीर है। और शरीर और मन एक-दूसरे को तत्क्षण प्रभावित करते हैं, नहीं तो शराब पीकर आपका मन बेहोश नहीं होगा। शराब तो जाती है शरीर में, मन कैसे बेहोश होगा? शराब मजे से पीते रहिए। शरीर को नुकसान होगा, तो होगा। मन को कोई नुकसान नहीं होगा। लेकिन मन तत्क्षण बेहोश हो जाता है। और जब आपका मन दुखी होता है, तो शरीर भी रुग्ण हो जाता है।
अब तो शरीरशास्त्री कहते हैं कि जब मन दुखी होता है, तो शरीर की रेसिस्टेंस, प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है। अगर मलेरिया के कीटाणु फैले हुए हैं, तो जो आदमी मन में दुखी है, उसको जल्दी पकड़ लेंगे; और जो मन में प्रसन्न है, उसको नहीं पकड़ेंगे।
आप जानकर हैरान होंगे कि प्लेग फैली हुई है, सबको पकड़ रही है, और डाक्टर दिन-रात प्लेग में काम कर रहा है, उसको नहीं पकड़ रही। कारण क्या है? डाक्टर अति प्रसन्न है अपने काम से। वह जो सेवा कर रहा है, उससे आनंदित है।

उसे प्लेग कोई बीमारी नहीं है, एक प्रयोग है। उसे प्लेग जो है, वह कोई खतरा नहीं है, बल्कि एक चुनौती है, एक संघर्ष है, जिसमें वह जूझ रहा है। वह प्रसन्नचित्त है, वह आनंदित है, वह बीमार नहीं पड़ेगा। क्यों? क्योंकि शरीर की प्रतिरोधक शक्ति, रेसिस्टेंस, जब आप प्रसन्न होते हैं, तब ज्यादा होती है; जब आप दीन, दुखी, पीड़ित होते हैं भीतर, तो कम हो जाती है।
कीटाणु भी बीमारियों के आप पर तब तक हमला नहीं कर सकते, जब तक आप दरवाजा न दें, कि आओ, मैं तैयार हूं। और जब आप इतने प्रसन्नता से भरे होते हैं, तो चारों तरफ आपके एक आभा होती है, जिसमें कीटाणु प्रवेश नहीं कर सकते।
चौबीस घंटे में बीमारी पकड़ने के घंटे अलग हैं। और अब आदमी के भीतर की
जो खोज होती है, उससे पता चलता है कि चौबीस घंटे में कुछ समय के लिए आप पीक आवर में होते हैं, शिखर पर होते हैं अपनी प्रसन्नता के। कोई क्षण में चौबीस घंटे में एक दफा आप बिल्कुल नादिर, नीचे, आखिरी अवस्था में होते हैं। उस आखिरी अवस्था में ही बीमारी आसानी से पकड़ती है। और शिखर पर कभी बीमारी नहीं पकड़ती।
वह जो शिखर का क्षण है आपके भीतर प्रसन्नता का, वह शरीर और मन का एक ही है। वह जो खाई का क्षण है, वह भी एक ही है।
शरीर और मन जुड़े हैं। आप जब किसी के प्रति क्रोध से भरते हैं, तो आपकी मुट्ठियां भिंचने लगती हैं, और दांत बंद होने लगते हैं, और आंखें सुर्ख हो जाती हैं, और आपके शरीर में एड्रीनल और दूसरे तत्व फैलने लगते हैं खून में, जो जहर का काम करते हैं, जो आपको पागलपन से भरते हैं। अब आपका शरीर तैयार हो रहा है।
आपको पता है कि क्यों मुट्ठियां भिंचने लगती हैं? क्यों दांत कसमसाने लगते हैं? आदमी भी जानवर रहा है। और जानवर जब क्रोध से भरता है, तो नाखून से चीर-फाड़ डालता है, दांतों से काट डालता है। आदमी भी जानवर रहा है। उसके शरीर का ढंग तो अब भी जानवर का ही है। इसलिए दांत भिंचने लगते हैं, हाथ बंधने लगते हैं। और शरीर काम शुरू कर देता है, जहर खून में फैल जाता है कि अब आप किसी की हत्या कर सकते हैं। आपको पता है, क्रोध में आप इतना बड़ा पत्थर उठा सकते हैं जो आप शांति में कभी नहीं उठा सकते! क्योंकि आप पागल हैं। इस वक्त आप होश में नहीं हैं। इस वक्त कुछ भी हो सकता है।
जब क्रोध में ऐसा होता है, तो प्रेम में इससे उलटा होता है। जब आप प्रेम से भरते हैं तब आपको पता है, आप बिल्कुल रिलैक्स हो जाते हैं, सारा शरीर शिथिल हो जाता है, जैसे शरीर को अब कोई भय नहीं है। क्रोध में शरीर तन जाता है, प्रेम में शिथिल हो जाता है। जब आप किसी के आलिंगन में होते हैं प्रेम से भरे हुए, तो आप छोटे बच्चे की तरह हो जाते हैं, जैसे वह अपनी मां की छाती से लगा हो--बिल्कुल शिथिल, लुंज-पुंज। अब आपके शरीर में जैसे कोई तनाव नहीं है कहीं।
मन, शरीर, एक साथ बदलते चले जाते हैं। आप कभी तने रहकर प्रेम करने की कोशिश करें, तब आपको पता चल जाएगा। असंभव है। या कभी ढीले होकर क्रोध करने की कोशिश करें, तो पता चल जाएगा। असंभव है।
कभी आपने ख्याल किया है कि जब आप किसी को अपमानित करना चाहते हैं, तो आपका मन होता है, निकालूं जूता और दे दूं सिर पर। मगर क्यों ऐसा होता है? और ऐसा एक मुल्क में नहीं होता, सारी दुनिया में होता है। एक जाति में नहीं होता, सब जातियों में होता है। एक धर्म में नहीं होता, सब धर्मों में होता है। दुनिया के किसी कोने में कितने ही सांस्कृतिक फर्क हों, लेकिन जब आप किसी को अपमानित करना चाहते हैं, तो अपना जूता उसके सिर पर रखना चाहते हैं।
असल में जूता तो केवल सिंबल है। आप अपना पैर रखना चाहते हैं। लेकिन वह जरा अड़चन का काम है। किसी के सिर पर पैर रखना, जरा उपद्रव का काम है। उसके लिए काफी जिमनास्टिक, योगासन इत्यादि का अभ्यास चाहिए। एकदम से रखना आसान नहीं होगा, उसके लिए सर्कस का अनुभव चाहिए। तो फिर सिंबल का काम करते हैं। जूता सिंबल का काम करता है, कि हम जूते को सिर पर मार देते हैं। हम उससे यह

कह रहे हैं कि तुम्हारा सिर हमारे पैर में! लेकिन क्या इसका मतलब है? सारी दुनिया में यह भाव एक-सा है।
इससे विपरीत श्रद्धा है, जब हम किसी के चरणों में सिर को रख देना चाहते हैं।
यह बड़े मजे की बात है कि सारी दुनिया में अपमान करने के लिए सिर पर पैर रखने की भावना है, लेकिन सम्मान करने के लिए सिर्फ भारत में पैर पर सिर रखने की धारणा है। इस लिहाज से भारत की पकड़ गहरी है आदमी के मन के बाबत। इसका यह मतलब हुआ कि सारी दुनिया में अपमान करने की व्यवस्था तो हमने खोज ली है, सम्मान करने की व्यवस्था नहीं खोज पाए। और अगर यह बात सच है कि हर मुल्क में हर आदमी को अपमान की हालत में ऐसा भाव उठता है, तो दूसरी बात भी सच होनी चाहिए कि श्रद्धा के क्षण में सिर को किसी के पैर में रख देने का भाव उठे। यह, भीतर जो घटना घटेगी, तभी!
इसका यह मतलब हुआ कि श्रद्धा को जितना हमने अनुभव किया है, संभवतः दुनिया में कोई मुल्क अनुभव नहीं किया। अगर अनुभव करता, तो यह प्रक्रिया घटित होती। क्योंकि अगर अनुभव करता, तो कोई उपाय खोजना पड़ता, जिससे श्रद्धा प्रकट हो सके।
तो एक तो श्रद्धा की यह अभिव्यक्ति है क्षमा-याचना के लिए। अर्जुन कह रहा है कि सब भांति आपके चरणों में अपने शरीर को रखकर मांगता हूं माफी। मुझे माफ कर दें।
लेकिन इतनी ही बात नहीं है, थोड़ा भीतर प्रवेश करें। तो सिर जब किसी के चरणों में रखा जाता है... ।
अभी जब बाडी-इलेक्ट्रिसिटी पर काफी काम हो गया है, तो यह बात समझ में आ सकती है। आपको शायद अंदाज न हो, लेकिन उपयोगी होगा समझना। और इस संबंध में थोड़ी जानकारी लेनी आपके फायदे की होगी।
हर शरीर की गतिविधि विद्युत से चल रही है। आपका शरीर एक विद्युत-यंत्र है, उसमें विद्युत की तरंगें दौड़ रही हैं। आप एक बैटरी हैं, जिसमें विद्युत चल रही है, बहुत लो वोल्टेज की, बहुत कम शक्ति की। लेकिन बड़ा अदभुत यंत्र है कि उतने लो वोल्टेज से सारा काम चल रहा है।
अभी इंग्लैंड में एक वैज्ञानिक ने कुछ तांबे की जालियां विकसित की हैं, वे काम की हैं। वह आपके शरीर के नीचे तांबे की जालियां रख देता है और आपके हाथों में और आपके पैरों में तांबे के तार बांध देता है। और आपके शरीर की ऋण विद्युत को आपके शरीर की धन विद्युत से जोड़ देता है। आपके भीतर जो निगेटिव, पाजिटिव पोल हैं विद्युत के, उनको जोड़ देता है। उनके जोड़ते से ही आप एकदम शांत होने लगते हैं।
अब तो इसका इंग्लैंड के अस्पतालों में उपयोग हो रहा है। उनको जोड़ते
से ही आप शांत होने लगते हैं। कितना ही अशांत आदमी हो, तीस मिनट में एकदम गहरी नींद में खो जाएगा। क्योंकि उसकी दोनों विद्युत शक्तियां एक-दूसरे को शांत करने लगती हैं। अगर उलटे तार जोड़ दिए जाएं, तो शांत आदमी अशांत होने लगता। उसके भीतर की विद्युत अस्तव्यस्त होने लगती है।
और यह एक आदमी का ही नहीं। अगर इसका और गहरा प्रयोग करना हो, तो एक स्त्री को एक जाली पर लिटा दिया जाए, एक जाली पर पुरुष को; और उनके ऋण-धन को जोड़ दिया जाए, तो और भी शीघ्रता से, और भी शीघ्रता से शांति होने लगती है। आपको अपनी पत्नी या प्रेयसी के पास बैठकर जो शांति मिलती है, उसमें अध्यात्म बहुत कम, बिजली ज्यादा है। आपकी ऋण-धन विद्युत जुड़ जाती है। और अगर प्रेम गहरा हो तो ज्यादा जुड़ जाती है, क्योंकि आप एक-दूसरे को ज्यादा से ज्यादा निकट लेना चाहते हैं। अगर प्रेम ज्यादा न हो, तो आप भला निकट हों, अपने को दूर रखना चाहते हैं। एक तरह का बचाव बना रहता है, वह बाधा बन जाती है।
यह तो दस-पच्चीस लोगों के ग्रुप में भी प्रयोग किया जाता है। दस-पच्चीस लोगों को इकट्ठा जोड़ दिया जाता है एकशृंखला में, तब और भी जल्दी परिणाम होते हैं।
भारत इस रहस्य को किसी दूसरे कोने से सदा से जानता रहा है। गुरु के चरणों में सिर रखना, गुरु के साथ उसकी विद्युत का जोड़ है। उसके चरणों में

सिर रखते ही गुरु की जो विद्युत धारा है, वह शिष्य में प्रवाहित होनी शुरू हो जाती है।
और ध्यान रहे, विद्युत के प्रवाहित होने के लिए दो ही जगहें हैं, या तो हाथ या पैर--अंगुलियां। नुकीला कोना चाहिए, जहां से विद्युत बाहर जा सके।
और जहां से विद्युत भीतर लेनी हो, उसके लिए सिर से अच्छी कोई जगह नहीं है। उसके लिए गोल जगह चाहिए, जहां से विद्युत ग्रहण की जा सके। रिसेप्टिविटी के लिए सिर बहुत अच्छा है; दान के लिए अंगुलियां बहुत अच्छी हैं। व्यवस्था पूरी यह थी--वह तो अभी उन्होंने इंग्लैंड में विद्युत-यंत्र बनाए और उसका फायदा लिया, हम हजारों साल से ले रहे हैं--व्यवस्था यह थी कि गुरु के चरणों में शिष्य सिर रख दे। सिर का मतलब है, रिसेप्टिव हिस्सा, ग्राहक हिस्सा। और चरणों का अर्थ है, दान देने वाला हिस्सा। और गुरु अपने हाथों को सिर के ऊपर रख दे, आशीर्वाद में। तो गुरु दोनों तरफ से, पैर की अंगुलियों से, हाथ की अंगुलियों से, दायक हो जाता है। और जो नीचे झुका है, उसकी तरफ आसानी से विद्युत बह पाती है। इसलिए शिष्य नीचे है, गुरु ऊपर है। अगर आपको सच में श्रद्धा का भाव जन्मा है, तो आप फौरन अनुभव करेंगे कि आपके सिर में अलग तरह की तरंगें गुरु के चरणों से प्रवाहित होनी शुरू हो गईं। और आपका सिर शांत हुआ जा रहा है। कोई चीज उसमें बह रही है और शांत हो रही है।
मनुष्य का शरीर विद्युत-यंत्र है। अब तो विद्युत के छोटे यंत्र भी बनाए गए हैं, जो आपके मस्तिष्क में लगा दिए जाएं, तो वे धीमी गति से आपके मस्तिष्क में विद्युत की तरंगें फेंकेंगे। उन तरंगों से आप शांत होने लगेंगे।
नींद के लिए रूस ने ट्रैंक्वेलाइजर्स करीब-करीब बंद कर दिए हैं। उन्होंने विद्युत-यंत्रों का उपयोग शुरू कर दिया है। क्योंकि वे कहते हैं, ट्रैंक्वेलाइजर तो भीतर जाकर शरीर को अस्तव्यस्त भी करता है, विद्युत-यंत्र किसी तरह अस्तव्यस्त नहीं करता। और मनुष्य के ही शरीर में नहीं, पशुओं के शरीर में भी मस्तिष्क से अगर विद्युत डाली जाए, वे भी शांत हो जाते हैं।
अभी एक अमेरिकन विचारक, साल्टर एक प्रयोग कर रहा था, अपनी बिल्ली के ऊपर। मैं बहुत चकित हुआ! वह अपनी बिल्ली के मस्तिष्क में विद्युत की तरंगें फेंक रहा था, और वैसी अवस्था पैदा कर रहा था, जिसको वैज्ञानिक अल्फा वेव्स कहते हैं।
मस्तिष्क में चार तरह की तरंगें हैं विद्युत की। एक तो वे तरंगें हैं,
जो आप सामान्यतः सोच-विचार में लगे होते हैं, तब चलती हैं। उनको नापने का उपाय है। क्योंकि प्रति सेकेंड उनकी खास फ्रीक्वेंसी होती है। फिर उनसे बाद की तरंगें हैं, अल्फा उनका नाम है। जब आप शांत सोए होते हैं, रिलैक्स होते हैं या ध्यान में होते हैं, तब अल्फा होती हैं। फिर उसके बाद की भी तरंगें हैं, जब आप बिल्कुल प्रगाढ़ निद्रा में होते हैं, जहां स्वप्न भी नहीं होता। और उसके बाद की भी तरंगें हैं, जिनके बाबत अभी पश्चिम में कोई समझ पैदा नहीं हो सकी है कि वे किसकी खबर देती हैं। इन तीन का तो पता चलता है।
तो अब तो आप ध्यान में हैं या नहीं, इसको यंत्र से नापा जा सकता है। यंत्र बता देता है कि अल्फा तरंगें चल रही हैं, तो आप ध्यान में हैं।
तो साल्टर यह प्रयोग कर रहा था कि आदमी ही ध्यान में हो सकते हैं कि जानवर भी ध्यान में पहुंचाए जा सकते हैं! तो एक बिल्ली को विद्युत की तरंगें देकर अल्फा की हालत में लाता था। और बिल्ली को भूखा रखता था और जब उसमें अल्फा तरंगें आ जाती थीं, यंत्र बताता कि अल्फा तरंगें आ गईं, तब उसको दूध, मिठाई देता था।
तो बिल्ली तरकीब सीख गई कि जब अल्फा तरंगें मिलती हैं, तभी उसको दूध, मिठाई मिलती है। जब उसको भूख लगती, तो बिल्ली चुपचाप शांत खड़े होकर आंख बंद करके ध्यान करने लगती! जब उसको भूख लगती। क्योंकि उसको पता चल गया भीतर कि कब मन की कैसी हालत होती है, तब मुझे दूध मिलता है, तो वह आंख बंद

करके खड़ी हो जाती। और बिल्ली अल्फा तरंगें पैदा करने लगी बिना विद्युत की सहायता के!
तो मुझे तो बहुत आशापूर्ण मालूम पड़ा। अगर बिल्ली कर सकती है, तो आप भी
कर सकते हैं। ऐसी क्या मुश्किल है! ऐसी क्या मुश्किल है!
अर्जुन कह रहा है कि चरणों में सिर रखकर आपसे प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूं, मुझे क्षमा कर दें। और मैं जानता हूं कि आप तो क्षमा कर ही देंगे। लेकिन जो मैंने किया है अतीत में, वह मेरे ऊपर बोझ है। उस बोझ से मुझे मुक्त हो जाना जरूरी है। उसके लिए चरणों में सब छोड़ देता हूं।
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें। कीर्तन में सम्मिलित हों, और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
दसवां प्रवचन

मनुष्य बीज है परमात्मा का

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास।। 45।।
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।। 46।।
श्रीभगवानुवाच
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न
दृष्टपूर्वम्।। 47।।
न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन
कुरुप्रवीर।। 48।।
हे विश्वमूर्ते, मैं पहले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूं और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। इसलिए हे देव, आप उस अपने चतुर्भुज रूप को ही मेरे लिए दिखाइए। हे देवेश, हे जगन्निवास, प्रसन्न होइए।
और हे विष्णो, मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किए हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूं। इसलिए हे विश्वरूप, हे सहस्रबाहो, आप उस ही चतुर्भुज रूप से युक्त होइए।
इस प्रकार अर्जुन की प्रार्थना को सुनकर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय, सबका आदि और सीमारहित विराट रूप तेरे को दिखाया है, जो कि तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया।
हे अर्जुन, मनुष्य-लोक में इस प्रकार विश्वरूप वाला मैं न वेद के अध्ययन से, न यज्ञ से तथा न दान से और न क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही तेरे सिवाय दूसरे से देखा जाने को शक्य हूं।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है, भगवान कृष्ण के विकराल स्वरूप में अर्जुन देवताओं को कंपित होते हुए देखता है, अन्यों को मृत्यु की ओर जाते हुए देखता है। लेकिन क्या उसने अपने आपको इस विकराल रूप में नहीं देखा? मृत्यु के मुंह में जाते नहीं देखा? और अगर अपने आपको भी देखा, तो उसका उल्लेख क्यों नहीं किया गया है? और अगर नहीं देखा, तो क्यों?

यह प्रश्न कीमती है और बहुत सोचने योग्य।
कोई भी व्यक्ति अपनी मृत्यु नहीं देख सकता। मृत्यु सदा दूसरे की ही देखी जा सकती है। क्योंकि मृत्यु बाहर घटित होती है, भीतर तो घटित होती ही नहीं। समझें।
आपने जब भी मृत्यु देखी है, तो किसी और की देखी है। आपकी मृत्यु की जो धारणा है, वह दूसरों को मरते देखकर बनी है। ऐसा नहीं है कि आप बहुत बार नहीं मरे हैं। आप बहुत बार मरे हैं। लेकिन जो भी आपकी मृत्यु की धारणा है, वह दूसरे को मरते हुए देखकर आपने बनाई है।
जब दूसरा मरता है, तो आप बाहर होते हैं। शरीर निस्पंद हो जाता है। श्वास बंद हो जाती है। हृदय की धड़कन समाप्त हो जाती है। खून चलता नहीं। आदमी बोल नहीं सकता। निष्प्राण हो जाता है। लेकिन भीतर जो था, वह तो कभी मरता नहीं।
और आदमी अपनी मौत कैसे देख सकता है! इसलिए भीतर जो मर रहा है, वह नहीं देख सकता कि मैं मर रहा हूं। वह तो अब भी पाएगा कि मैं जी रहा हूं। अगर होश में है, तो उसे दिखाई पड़ेगा कि मैं जी रहा हूं। अगर बेहोश है, तो ख्याल में नहीं रहेगा।

हम बहुत बार मरे हैं, लेकिन बेहोशी में मरे हैं। इसलिए हमें कोई ख्याल नहीं है। हमें कुछ पता नहीं है कि मृत्यु में क्या घटा। अगर एक बार भी हम होश में मर जाएं, तो हम अमृत हो गए। क्योंकि तब हम जान लेंगे कि बाहर ही सब मरता है। जो मेरा समझा था, वह टूट गया, बिखर गया, शरीर नष्ट हो गया। लेकिन मैं! मैं अब भी हूं।
कोई व्यक्ति कभी स्वयं की मृत्यु का अनुभव नहीं किया है। जो लोग बेहोश मरते हैं, उन्हें तो पता ही नहीं चलता कि क्या हुआ। जो लोग होश से मरते हैं, उन्हें पता चलता है कि मैं जीवित हूं। जो मरा, वह शरीर था, मैं नहीं हूं।
इसलिए ऐसा सोचें, और तरह से। अगर आप कल्पना भी करें अपने मरने की, तो कल्पना भी नहीं कर सकते। अनुभव को छोड़ दें। कल्पना तो झूठ की भी हो सकती है। और आपने सुना होगा, कल्पना तो किसी भी चीज की हो सकती है। कल्पना ही है। लेकिन आप अपने मरने की कल्पना करें, तब आपको पता चलेगा, वह नहीं हो सकती। आप कुछ भी उपाय करें, अपने शरीर को मरा हुआ देख लेंगे। लेकिन आप देखने वाले बाहर जिंदा खड़े रहेंगे, कल्पना में भी! कितना ही सोचें कि मैं मर गया, कैसे मरिएगा! कल्पना में भी नहीं मर सकते। क्योंकि वह जो सोच रहा है, वह जो देख रहा है, कल्पना जिसे दिखाई पड़ रही है, वह साक्षी बना हुआ जिंदा रहेगा।
असली में तो मरना मुश्किल है, कल्पना में भी मरना मुश्किल है। लोग कहते हैं, कल्पना असीम है। कल्पना असीम नहीं है। आप मृत्यु की कल्पना करें, आपको पता चल जाएगा, कल्पना की भी सीमा है।
इसलिए अर्जुन सबको तो देखता है मृत्यु के मुंह में जाते, स्वयं को नहीं देखता। स्वयं को कोई भी नहीं देख सकता। अगर अर्जुन स्वयं को भी मृत्यु में जाते देखे, तो देखेगा कौन फिर? जो मृत्यु में जा रहा है वह अलग हो जाएगा, और जो देख रहा है वह अलग हो जाएगा। अगर अर्जुन देख रहा है मृत्यु में जाते, तो अर्जुन का शरीर भला चला जाए मृत्यु में, अर्जुन नहीं जा सकता; वह बाहर खड़ा रहेगा। वह देखने वाला है।
वह जो आत्मा है, उसे हमने इसीलिए द्रष्टा कहा है। वह सब देखता है। वह मृत्यु को भी देख लेता है।
इसलिए अर्जुन को ख्याल नहीं आया। आने का कोई उपाय भी नहीं है। वह बाहर है, वह देखने वाला है। और सब मर रहे हैं--मित्र भी, शत्रु भी, बड़े-बड़े योद्धा--लेकिन अर्जुन को ख्याल भी नहीं आ रहा कि मैं मर रहा हूं, या मैं मर जाऊंगा।
इसलिए बड़े मजे की बात है, आप रोज लोगों को मरते देखते हैं, आपको भय भी पकड़ता है, लेकिन आप विचार करें, कभी भीतर यह बात मजबूती से नहीं बैठती है कि मैं मर जाऊंगा। ऊपर-ऊपर कितना ही भयभीत हो जाएं कि मरना पड़ेगा, लेकिन भीतर यह बात घुसती नहीं कि मैं मर जाऊंगा। भीतर यह भरोसा बना ही रहता है कि और लोग ही मरेंगे, मैं नहीं मरूंगा।
यह भरोसा प्रतिफलन है उस गहरे आंतरिक केंद्र का, जहां मृत्यु कभी प्रवेश नहीं करती। उसके बाहर-बाहर ही मृत्यु घटित होती है। आपका घर आपसे छीना जाता है बहुत बार। आपके वस्त्र आपसे छीने जाते हैं बहुत बार, जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, व्यर्थ हो जाते हैं, नए वस्त्र मिल जाते हैं। लेकिन आप! आप कभी भी नष्ट नहीं होते।
इसलिए अपनी मृत्यु की कल्पना असंभव है। अपनी मृत्यु का दर्शन भी असंभव है। और जो अपनी मृत्यु का दर्शन करने की कोशिश कर लेता है, वह अमृत का अनुभव कर लेता है।
समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं अपनी मृत्यु का अनुभव करने की कोशिश हैं।
सब प्रक्रियाएं, योग की सारी चेष्टा इस बात की है कि आप होशपूर्वक अपने को मरता हुआ देख लें।
क्या होगा? सब मर जाएगा, आप बच जाएंगे।
रमण को ऐसा हुआ कि उन्हें लगा कि उनकी मृत्यु आ रही है। वे बीमार हैं, उनकी मृत्यु आ रही है। और जब मृत्यु आ ही रही है, तो उससे लड़ना क्या, हाथ-

418

पैर ढीले छोड़कर वह लेट गए। उन्होंने कहा, ठीक है। जब मृत्यु आ रही है, तो आ जाए। मैं मृत्यु को भी देख लूं कि मृत्यु क्या है!
सब शरीर ठंडा हो गया। ऐसा लगने लगा कि शरीर अलग हो गया। लेकिन सब शरीर मरा हुआ मालूम पड़ रहा है, फिर भी रमण को लग रहा है, मैं तो जिंदा हूं। वही अनुभव उनके जीवन में क्रांति बन गया। उसके पहले वे रमण थे, उसके बाद वे भगवान हो गए। उसके पहले तक उन्होंने जाना था, मैं यह शरीर हूं, जो मरेगा। इसके बाद उन्होंने जाना कि यह शरीर मैं नहीं हूं। जो नहीं मरेगा, वह मैं हूं। सारा तादात्म्य बदल गया। सारी दृष्टि बदल गई। एक नए जन्म की--अमृत, एक नए जीवन की शुरुआत हो गई।
योग की सारी प्रक्रियाएं आपको स्वेच्छा से मरने की कला सिखाने की हैं। पुराने शास्त्रों में कहा है, आचार्य, गुरु, मृत्यु है। क्योंकि जिस गुरु के पास आपको मृत्यु का अनुभव न हो पाए, वह गुरु ही क्या!
लेकिन मृत्यु का अनुभव बड़ा विरोधाभासी है। एक तरफ जो भी आपने अपने को समझा था--नाम, धाम, पता-ठिकाना, शरीर--सब मर जाता है। और जो आपने कभी नहीं सोचा था आपके भीतर, एक ऐसे केंद्र का आविर्भाव हो जाता है, जिसकी मृत्यु का कोई उपाय नहीं है, जो अमृत है।
अर्जुन को इसलिए अनुभव नहीं हुआ। और आपको भी तभी तक मृत्यु का भय है,
जब तक आपने अनुभव नहीं किया है। आपके भीतर क्या मरणधर्मा है और क्या अमृत है, इसका भेद ही ज्ञान है। आपके भीतर क्या-क्या मर जाने वाला है और क्या- क्या नहीं मरने वाला है, इसकी भेद-रेखा को खींच लेना ही ज्ञान है। समाधि में वही भेद-रेखा खिंच जाती है। आप दो हिस्सों में साफ हो जाते हैं।
एक आपकी खोल है, जो मरेगी, क्योंकि वह जन्मी है। जो जन्मा है, वह मरेगा। और एक आपके भीतर की गिरी है, जो नहीं मरेगी, क्योंकि वह जन्मी भी नहीं है। शरीर का जन्म है, आपका कोई जन्म नहीं है। शरीर का जन्म है, शरीर की मृत्यु है। जो आपको मां-बाप से मिला है शरीर, वह मरेगा। लेकिन जो आप हैं, उसके मरने का कोई उपाय नहीं है।
लेकिन ऐसा विश्वास करके मत बैठे रहना। विश्वास करने की हमारी बड़ी जल्दी होती है। और मतलब की बात हो, इच्छा के अनुकूल हो, हम जल्दी विश्वास कर लेते हैं। हम सब चाहते हैं कि न मरें, इसलिए आत्मा अमर है, इसमें विश्वास करने के लिए हमें बहुत तर्क की जरूरत नहीं पड़ती। हमारा भय ही काफी तर्क हो जाता है। कोई भी हमसे कहे, आत्मा अमर है, हमारा दिल बड़ा खुश होता है कि चलो, मरेंगे नहीं। इस पर विश्वास कर लेने में जल्दी कर देते हैं लोग। जल्दी मत करना। विश्वास से कुछ हल न होगा। अनुभव ही एकमात्र हल है।
मैं कहता हूं, इससे मान मत लेना। कृष्ण कहते हैं, इससे मत मान लेना।
बुद्ध कहते हैं, इससे मत मान लेना। उनके कहने से सिर्फ प्रयोग करने के लिए तैयार होना है, मान मत लेना। इतना ही समझना कि कहते हैं ये लोग, प्रयोग करके हम भी देख लें। और अगर अनुभव मिल जाए, तो ही मानना, अन्यथा मत मानना।
नहीं तो हमारी हालत ऐसी है कि बिना अनुभव के हम माने चले जाते हैं।
बिना अनुभव के जो मान्यता है, वह ऊपर-ऊपर होगी, थोथी होगी, कागजी होगी, जरा- सी वर्षा होगी और बह जाएगी, टिकने वाली नहीं है। ऊपर-ऊपर की जो मान्यता है, वह मृत्यु में आपको सजग न रख पाएगी, आप बेहोश हो जाएंगे।
डाक्टर तो अब एनेस्थेसिया का प्रयोग करते हैं बड़ा आपरेशन करना हो तो। लेकिन मृत्यु सबसे बड़ा आपरेशन है। क्योंकि आपका समस्त शरीर-संस्थान आपसे अलग किया जाता है। इसलिए प्रकृति भी उसे होश में नहीं कर सकती। प्रकृति भी आपको बेहोश कर देती है, मरने के पहले आप बेहोश हो जाते हैं।
वह इतना बड़ा आपरेशन है, उससे बड़ा कोई आपरेशन नहीं है। कोई डाक्टर एक हड्डी अलग करता है, कोई डाक्टर दो हड्डी अलग करता है, कोई हृदय को बदलता है। लेकिन पूरा संस्थान, आपका पूरा शरीर मृत्यु अलग करती है आपसे। वह गहरे से गहरी सर्जरी है। उसमें आपको बेहोश कर देना एकदम जरूरी है। इसलिए मौत के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। अगर मौत में होश रख पाएं, तो आपको पता चल जाएगा कि आपकी कोई मृत्यु नहीं है।
ध्यान जो साधता है, वह धीरे-धीरे मौत में भी होश रख पाता है। क्योंकि मरने के पहले बहुत बार वह अपने को शरीर से अलग करके देख लेता है।

कठिन नहीं है। अगर प्रयोग करें, तो सरल है। अगर मानते ही रहें, तो बहुत कठिन है। अगर प्रयोग करें, तो बहुत सरल है। क्योंकि आप अलग हैं ही। सिर्फ थोड़े से होश को बढ़ाने की जरूरत है भीतर। आंख बंद करके भीतर देखने की क्षमता विकसित करने की जरूरत है।
लेकिन मौत तो बहुत दूर है। आप अपनी नींद को भी नहीं देख पाते, तो मौत
को कैसे देख पाएंगे? आप रोज सोते हैं शाम। जिंदगी में साठ साल जीएंगे, तो बीस साल सोने में बिताएंगे। छोटा-मोटा काम नहीं है नींद, एक तिहाई जिंदगी उसमें जाती है। बीस साल आप सोते हैं, अगर साठ साल जिंदा रहते हैं। लेकिन आपको पता है कि नींद क्या है? कभी आपने होशपूर्वक नींद को देखा है? कि नींद उतर रही मेरे ऊपर। छा रही। सब तरफ से मुझे घेर रही। शरीर सुस्त हुआ जा रहा। नींद प्रवेश करती जा रही है और मैं देख रहा हूं।
आप नींद को भी नहीं देख पाते, तो मौत को कैसे देखिएगा? मौत तो बहुत गहरी मूर्च्छा है। नींद तो बहुत छोटी मूर्च्छा है। जरा-सा कोई बर्तन गिर जाए, तो खुल जाती है। इससे ज्यादा गहराई नहीं है। एक मच्छड़ काट जाए, तो खुल जाती है। बहुत गहरी नहीं है। लेकिन इतनी उथली चीज में भी आप होश नहीं रख पाते, तो मौत में कैसे रख पाएंगे?
प्रयोग अगर करेंगे, तो जिसको भी मृत्यु के संबंध में जागना है, उसे नींद से प्रयोग शुरू करना चाहिए। रात जब बिस्तर पर पड़ें, तो आंख बंद करके एक ही ख्याल रखें कि मैं जागा रहूं। शरीर को ढीला होने दें, होश को सजग रखें। और ख्याल रखें कि मैं देख लूं, नींद कब आती है? कब मेरा शरीर जागने से नींद में प्रवेश करता है? कब गियर बदलता है? कब मैं नींद की दुनिया में प्रवेश करता हूं? उसे देख लूं! बस, चुपचाप देखते रहें।
पता नहीं चलेगा कब नींद लग गई, और देखने का ख्याल भूल जाएगा! सुबह होश आएगा कि देखने की कोशिश की थी, लेकिन देख नहीं पाए; नींद आ गई और देखना खो गया। लेकिन सतत लगे रहें। अगर तीन महीने निरंतर बिना किसी विघ्न-बाधा के आप नींद के साथ जागने की कोशिश करते रहे, तो किसी भी दिन यह घटना घट जाएगी कि नींद उतरेगी आपके ऊपर, जैसे सांझ उतरती है, अंधेरा छा जाता है, और आप भीतर जागे रहेंगे; आप देख पाएंगे कि नींद यह है।
जिस दिन आपने नींद देख ली, उस दिन आपने एक बहुत बड़ा कदम उठा लिया। बहुत बड़ा कदम उठा लिया। फिर दूसरा प्रयोग है कि नींद रात लगी रहे, लगी रहे, लगी रहे, लेकिन भीतर एक कोने में होश भी बना रहे कि मैं सो रहा हूं, करवट बदल रहा हूं, मच्छड़ काट रहा है, हाथ-पैर ढीले पड़ गए हैं। अब जागने का क्षण करीब आ रहा है, अब मैं जाग रहा हूं।
जिस दिन आप सांझ से लेकर सुबह तक, शरीर सोया रहे और आप जागे रहें, अब कोई कठिनाई नहीं है; अब आप मृत्यु में प्रवेश कर सकते हैं। तब बहुत आसान है, तीसरी बात। इतना अगर सध जाए--इसमें वर्षों लग सकते हैं--लेकिन इतना सध जाए, तो आप दूसरे आदमी हो जाएंगे, एक नए आदमी हो जाएंगे। आपने अपनी नींद पर विजय पा ली।
और जिसने अपनी नींद पर विजय पा ली, उसको मृत्यु पर विजय पाने में कोई कठिनाई नहीं, क्योंकि मृत्यु एक और बड़ी नींद है, और गहन मूर्च्छा है। अगर आप नींद में जग पाते हैं, तो आपको तत्क्षण पता चलने लगेगा कि आप अलग हैं और शरीर अलग है। क्योंकि शरीर सोएगा और आप जगेंगे।
ध्यान रहे, आपको तब तक शरीर के और आत्मा के अलग होने का पता नहीं चलेगा, जब तक आप कोई ऐसा प्रयोग न करें, जिस प्रयोग में दोनों की क्रियाएं अलग हों। अभी आपको भूख लगती है, तो आपके शरीर को भी लगती है, आपको भी लगती है। बहुत मुश्किल है तय करना कि शरीर को भूख लगी कि आपको लगी। अभी आप जो भी कर रहे हैं, उसमें आपकी क्रियाओं में तालमेल है, शरीर और आप में तालमेल है। आपको कोई न कोई ऐसा अभ्यास करना पड़े, जिसमें आपको कुछ और हो रहा है, शरीर को कुछ और हो रहा है; बल्कि शरीर को विपरीत हो रहा है, आपको विपरीत हो रहा है। लोगों ने भूख के साथ भी प्रयोग किया है। उपवास वही है। वह इस बात का प्रयोग है कि शरीर को भूख लगेगी और मैं स्वयं को भूख न लगने दूंगा। भूखे मरने का नाम उपवास नहीं है। अधिक लोग उपवास करते हैं, वे सिर्फ भूखे मरते हैं। क्योंकि शरीर को भी लगती है भूख, उनको भी लगती है। बल्कि सच तो यह है

कि भोजन करने में उनकी आत्मा को जितनी भूख का पता नहीं चला था, उतना उपवास में पता चलता है।
भोजन करते में तो पता चलता नहीं; जरूरत के पहले ही शरीर को भोजन मिल जाता है। भूख भीतर तक प्रवेश नहीं करती। उपवास कर लिया, उस दिन दिनभर भूख लगी रहती है। खाते वक्त तो दो दफे लगती होगी दिन में, तीन दफा लगती होगी। न खाएं, तो दिनभर लगती है! भूख पीछा करती है। शरीर तो भूखा होता ही है, आत्मा भी भीतर भूख से भर जाती है।
उपवास का प्रयोग इसी तरह का प्रयोग है, जैसा नींद का प्रयोग है। शरीर
को भूख लगे और आप भीतर बिना भूख के रहें, तो दोनों क्रियाएं अलग हो जाएंगी। जिस दिन आपको साफ हो जाएगा, शरीर को भूख लगी और मैं तृप्त भीतर खड़ा हूं, कोई भूख नहीं है, उस दिन आपको भेद का पता चल जाएगा। शरीर सो गया, आप जागे हुए हैं, भेद का पता चल जाएगा। और जब भेद का पता चलेगा, तभी जब मृत्यु होगी, शरीर मरेगा, आप नहीं मरेंगे, तब आपको उस भेद का भी पता चल जाएगा। नींद से शुरू करें, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे भीतर भेद साफ होने लगता है, रोशनी भीतर बढ़ने लगती है। रोशनी हमारे पास है, हम उसे बाहर उपयोग कर रहे हैं, भीतर कभी ले नहीं जाते। तो सारी दुनिया को देखते हैं, अपने भर को छोड़ देते हैं।
इसलिए अर्जुन को दिखाई नहीं पड़ा। क्योंकि मृत्यु तो किसी को भी दिखाई नहीं पड़ती है अपनी, सिर्फ दूसरे की दिखाई पड़ती है।
इसलिए दूसरे के संबंध में जो भी आपको दिखाई पड़ता है, उसको बहुत मानना मत, वह झूठा है, ऊपर-ऊपर है। अपने संबंध में भीतर जो दिखाई पड़े, वही सत्य है, वही गहरा है। और जब आपको अपना सत्य दिखाई पड़ेगा, तभी आपको दूसरे का सत्य भी दिखाई पड़ेगा। जिस दिन आपको पता चल जाएगा, मैं नहीं मरूंगा, उस दिन फिर कोई भी नहीं मरेगा आपके लिए। फिर आप कहेंगे कि वस्त्र बदल लिए।
रामकृष्ण की मृत्यु हुई, तो पता चल गया था कि तीन दिन के भीतर वे मर जाने वाले हैं। जो लोग भी जाग जाते हैं, वे अपनी मौत की घोषणा कर सकते हैं। क्योंकि शरीर संबंध छोड़ने लगता है। कोई एकदम से तो छूटता नहीं, कोई छः महीने लगते हैं शरीर को संबंध छोड़ने में।
इसलिए मरने के छः महीने पहले, जिसका होश साफ है, वह अपनी तारीख कह सकता
है कि इस तारीख, इस घड़ी मैं मर जाऊंगा। तीन दिन पहले तो बिल्कुल संबंध टूट जाता है। बस आखिरी धागा जुड़ा रह जाता है। वह दिखाई पड़ने लगता है कि बस अब एक धागा रह गया है, यह किसी भी क्षण टूट जाएगा।
तो रामकृष्ण को तीन दिन पहले पता हो गया था कि उनकी मृत्यु आ रही है।
तो उनकी पत्नी शारदा रोती थी, चिल्लाती थी। रामकृष्ण उसको कहते थे कि पागल, तू रोती-चिल्लाती क्यों है, क्योंकि मैं नहीं मरूंगा। लेकिन शारदा कहती थी, सब डाक्टर कहते हैं, सब प्रियजन कहते हैं कि अब आपकी मृत्यु करीब है! और वे कहते थे, तू उनकी मानती है या मेरी! मेरी मानती है या उनकी! मैं नहीं मरूंगा। मैं रहूंगा यहीं।
लेकिन शारदा को कैसे भरोसा आए! रामकृष्ण का यह कहना, उनके अपने भीतर
के अनुभव की बात है। वे कह रहे हैं कि मैं नहीं मरूंगा।
रामकृष्ण को कैंसर हुआ था। कठिन कैंसर था, गले में था और भोजन-पानी सब बंद हो गया था। बोलना भी मुश्किल हो गया था। पर रामकृष्ण ने कहा है कि देख, तुझसे मैं कहता हूं, जिसको कैंसर हुआ था, वही मरेगा। मुझे कैंसर भी नहीं हुआ था। यह गला रुंध गया है, यह गला बंद हो गया है, यह गला सड़ गया है, यह कैंसर से भर गया है, लेकिन मैं देख रहा हूं कि मैं यह गला नहीं हूं। तो गला मर जाएगा, यह शरीर गल जाएगा, मिट जाएगा, लेकिन मैं नहीं मरूंगा।
पर हमें कैसे भरोसा आए? क्योंकि हमें अनुभव न हो। हम तो मानते हैं कि
हम शरीर हैं। तो जब शरीर मरता है, तो हम मानते हैं कि हम भी मर गए। हमारे जीवन की भ्रांति हमारी मृत्यु की भी भ्रांति बन जाती है।
अर्जुन को दिखाई नहीं पड़ा, आपको भी दिखाई नहीं पड़ेगा। जिस दिन मृत्यु
के द्वार पर आप खड़े हो जाएंगे और देखेंगे कि मर रहा है सब कुछ, तब भी एक आप बाहर खड़े रहेंगे। आप नहीं मर रहे हैं, आपके मरने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए अर्जुन बात नहीं कर रहा है अपनी मृत्यु की।

प्रश्नः एक और मित्र ने भी बहुत गहरा सवाल पूछा है। उन्होंने पूछा है
कि हम सब भगवान हैं। सब भगवान के अंश हैं, यह तो समझ में आ जाता है। लेकिन अंश पूर्ण नहीं हो सकता, अंश तो अंश ही होगा। तो हम भगवान के अंश हैं, यह तो समझ में आ जाता है, लेकिन भगवान हैं, यह समझ में नहीं आता। तो इतना ही कहना उचित है कि हम भगवान के अंश हैं, लेकिन भगवान हैं, यह कहना उचित नहीं है।

यह सवाल महत्वपूर्ण है। और जो लोग गणित को समझते हैं, उन्हें बिल्कुल ठीक साफ समझ में आ जाएगा कि ऐसा ही होना चाहिए। अंश कभी अंशी नहीं हो सकता। टुकड़ा पूर्ण कैसे हो सकता है? टुकड़ा टुकड़ा है।
हम एक सागर से एक चुल्लू भर पानी ले लें, तो वह सागर नहीं है, सागर का अंश हो सकता है। यह सीधा गणित है। स्वभावतः, एक रुपए का नोट एक रुपए का नोट है, वह सौ का नहीं हो सकता, सौ का एक हिस्सा हो सकता है, सौवां हिस्सा हो सकता है। यह सीधा गणित है। और जहां तक गणित जाता है, वहां तक बिल्कुल ठीक है।
लेकिन धर्म गणित से आगे जाता है। और धर्म बड़ा उलटा गणित है। उसे थोड़ा समझने के लिए चेष्टा करनी पड़े। क्योंकि सामान्य गणित तो हम रोज उपयोग करते हैं, हमें पता है। धर्म का गणित हमें बिल्कुल पता नहीं है। धर्म के गणित का पहला सूत्र यह है कि वहां अंशी और अंश एक हैं।
आपने ईशावास्य का पहला सूत्र सुना है! उस पूर्ण से पूर्ण निकल आता है
और पीछे भी पूर्ण शेष रह जाता है। आप किसी सौ रुपए में से एक रुपए का नोट बाहर निकालें, पीछे निन्यानबे शेष रहेंगे, सौ शेष नहीं रहेंगे। लेकिन यह सूत्र तो बड़ी गजब की बात कहता है। यह कहता है कि सौ में से सौ भी बाहर निकाल लो, तो भी सौ ही पीछे शेष रह जाता है! पूर्ण से पूर्ण भी निकाल लो, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है।
इसका क्या मतलब हुआ? यह तो हमारे सारे गणित की व्यवस्था गड़बड़ हो जाती है। अगर यह उपनिषद का सूत्र सही है, तो हमारा सारा गणित गलत है। अध्यात्म के जगत में गणित गलत है। उसके कारण हैं। उसे हम दो-तीन तरह से समझें, तो ख्याल में आ जाए।
पहली तो बात यह कि जो निराकार है, उसमें से हम अंश को बाहर नहीं निकाल सकते। कोई उपाय नहीं है। आप सागर में से चुल्लू भरकर पानी बाहर निकाल लेते हैं, क्योंकि सागर के बाहर भी जगह है। इसलिए आप पानी भर लेते हैं चुल्लू में।
ऐसा समझें कि सागर ही सागर है और सागर के बाहर कोई जगह नहीं है। फिर आप चुल्लू भी भर लें, तो आपकी चुल्लू में अंश नहीं होगा, पूरा सागर ही होगा। बाहर तो हम इसलिए निकाल लेते हैं कि बाहर सुविधा है। सागर में से चुल्लू भर पानी बाहर निकाल लेते हैं।
परमात्मा से चुल्लू भर निकालना मुश्किल है। क्योंकि परमात्मा के बाहर कोई जगह नहीं है, सिर्फ वही है। उसके बाहर निकालिएगा कैसे? कौन निकालेगा? कहां निकालेगा? उसके बाहर निकालने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए परमात्मा को खंड-खंड करने का भी उपाय नहीं है। आप अखंड परमात्मा हो, टुकड़े-टुकड़े नहीं हो। टुकड़ा हो नहीं सकता उसका। और अगर परमात्मा का टुकड़ा हो जाए, तो हमने बड़ा भारी काम कर लिया! मार ही डाला उसको। उसके टुकड़े नहीं हो सकते, कि आप एक टुकड़ा हो, मैं एक टुकड़ा हूं और तीसरा आदमी तीसरा टुकड़ा है। ऐसे उसके कोई टुकड़े नहीं हो सकते। क्योंकि टुकड़ा होगा उसका, जिसके बाहर भी कोई जगह हो। परमात्मा का कोई टुकड़ा नहीं हो सकता।
इसलिए जो लोग कहते हैं, हम परमात्मा के अंश हैं, बिल्कुल गलत कहते हैं। क्योंकि अंश का मतलब है, आप टुकड़ा हो गए, आप अलग हो गए। आप परमात्मा में हैं पूरे के पूरे और पूरा का पूरा परमात्मा आप में है। इसमें कोई बंटाव के उपाय नहीं हैं। काटने की कोई सुविधा नहीं है। डिवीजन नहीं हो सकते। क्योंकि वह अकेला ही है। कैसे बांटिए? कौन बांटे? कहां बांटे? कहां है जगह जिसमें हम बांट लें?

और दो टुकड़ों के बीच तो फासला हो जाता है। आपके और परमात्मा के बीच जरा भी फासला नहीं है। इसलिए आपको टुकड़ा नहीं कहा जा सकता। आप एक फल के दो टुकड़े कर लेते हैं, दोनों में फासला हो जाता है। आपके और परमात्मा के बीच इंचभर भी फासला नहीं है। आपको टुकड़ा नहीं कहा जा सकता। आपको अंश नहीं कहा जा सकता। या तो आप पूरे के पूरे परमात्मा हैं और या बिल्कुल परमात्मा नहीं हैं। इन दो के बीच तीसरा कोई उपाय नहीं है।
मगर हमारी बुद्धि समझौते के लिए तैयार रहती है। वह सोचती है कि पूरा परमात्मा कहना तो जरा जरूरत से ज्यादा हो जाएगा। और बिल्कुल परमात्मा नहीं हैं, तो भी बड़ी मन को दीनता मालूम पड़ती है। इसलिए ऐसा कहो कि थोड़े- थोड़े परमात्मा हैं, जरा-जरा!
लेकिन जरा-जरा परमात्मा का क्या मतलब होता है? थोड़े-थोड़े परमात्मा का क्या मतलब होता है? थोड़ा परमात्मा पूरे परमात्मा से कम होगा! तो वह परमात्मा ही नहीं होगा। थोड़े परमात्मा का क्या मतलब होगा?
ऐसा समझिए कि एक आदमी आपसे कहता है कि थोड़ा-थोड़ा आपसे प्रेम है, थोड़ा- थोड़ा! क्या मतलब होता है थोड़ा-थोड़ा प्रेम का? या तो प्रेम होता है या नहीं होता। थोड़ा-थोड़ा प्रेम जैसी कोई चीज नहीं होती। हो भी नहीं सकती।
आप कहते हैं कि मैं थोड़ा-थोड़ा चोर हूं। थोड़ा-थोड़ा कोई चोर होता है! या
तो आप चोर हैं या चोर नहीं हैं। थोड़ा-थोड़ा आप क्यों कहते हैं? कहते हैं कि मैं लाख की चोरी नहीं करता; ऐसे, पैसे दो पैसे ही चुराता हूं। इसलिए थोड़ा- थोड़ा चोर हूं।
लेकिन एक पैसे की चोरी भी उतनी ही चोरी है, जितनी लाख रुपए की चोरी। यह लाख और एक का फासला चोरी का फासला नहीं है। चोरी करने की जो चित्त-दशा है, वह एक पैसे में भी उतनी ही है, जितनी करोड़ में। इसलिए करोड़ की चोरी बड़ी और एक पैसे की चोरी छोटी, यह सिर्फ नासमझ कहेंगे, जिनको सिर्फ गणित आता है; जिनको गणित के पार कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
चोरी बराबर होती है। एक पैसे की चोरी में भी आप पूरे चोर होते हैं, और
एक करोड़ की चोरी में भी उतने ही चोर होते हैं, पूरे चोर होते हैं। क्या आप चुराते हैं, इससे चोर होने में फर्क नहीं पड़ता। या तो आप चोर हैं, या चोर नहीं हैं। इन दोनों के बीच बंटाव नहीं है।
ठीक ऐसे ही, या तो आप परमात्मा हैं पूरे के पूरे, और या बिल्कुल नहीं हैं। बीच में, थोड़े-थोड़े परमात्मा, ऐसा समझौता हमारा गणित करने वाला जो मन है, वह करता है। उससे हमें राहत भी मिलती है, लेकिन वह सत्य नहीं है।
असीम को खंडों में नहीं बांटा जा सकता।
आस्पेंस्की ने, रूस के एक बहुत बड़े गणितज्ञ ने एक किताब लिखी है, टर्शियम आर्गानम। गणित के ऊपर लिखी गई मनुष्य के इतिहास में श्रेष्ठतम पुस्तकों में एक है। खुद आस्पेंस्की का भी दावा है कि तीन ही किताबें दुनिया में हैं, जिनमें वह एक है। और उसके दावे में जरा भी दंभ नहीं है। दावा बिल्कुल सही है।
तर्क और गणित के सिद्धांत पर पहली किताब लिखी है अरस्तू ने। उस किताब
का नाम है, आर्गानम। आर्गानम का मतलब है, पहला सिद्धांत। फिर दूसरी किताब लिखी है बेकन ने। उस किताब का नाम है, नोवम आर्गानम, नया सिद्धांत। और आस्पेंस्की ने तीसरी किताब लिखी है, टर्शियम आर्गानम, तीसरा सिद्धांत, गणित का तीसरा सिद्धांत। और आस्पेंस्की ने अपनी किताब में जो ऊपर ही घोषणा की है, वह बड़ी मजेदार है। वह यह है कि दोनों सिद्धांतों के पहले भी मेरा सिद्धांत मौजूद था। ये दोनों किताबें लिखी गईं, उसके पहले भी मेरा सिद्धांत मौजूद था।
उन दोनों किताबों में, जो प्रश्न आपने पूछा है, उसी गणित का विस्तार है, कि अंश कभी भी अंशी के बराबर नहीं हो सकता, खंड कभी अखंड के बराबर नहीं हो सकता। और आस्पेंस्की ने लिखा है कि खंड अखंड के बराबर है, टुकड़ा पूरे के बराबर है। क्यों? क्योंकि असीम के गणित में खंड हो ही नहीं सकता।
इसीलिए ईशावास्य का सूत्र बड़ा कीमती है कि पूर्ण से पूर्ण को निकाल लें, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। क्यों शेष रह जाता है? क्योंकि आप निकाल ही नहीं सकते, तरकीब यह है। आप निकाल ही नहीं सकते। पूर्ण से

पूर्ण को निकाला नहीं जा सकता। आप सिर्फ वहम में पड़ते हैं कि निकाल लिया। इसीलिए पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। वह सिर्फ आपका धोखा था कि मैंने निकाला। निकालने का कोई उपाय नहीं है।
आपको लगता है कि आप अंश हैं, यह धोखा है। अंश होने का कोई उपाय नहीं है। आप पूरे के पूरे परमात्मा हैं, अभी और यहीं। ऐसा भी नहीं कहता हूं कि कल हो जाएंगे। क्योंकि जो आप नहीं हैं, वह आप कल भी नहीं हो पाएंगे। और जो आप नहीं हैं, वह होने का कोई उपाय नहीं है। कल हो सकता है, आपको पता चले, लेकिन हैं आप अभी और यहीं। जितनी भी देरी आपको लगानी है, वह आप पता लगाने में कर सकते हैं, होने में कोई फर्क नहीं पड़ता।
बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो बुद्ध से पूछा गया कि तुम्हें क्या मिला? तो बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी मुझे नहीं, सिर्फ मैंने उलटा खोया!
पूछने वाला चकित हुआ होगा। क्योंकि हम सोचते हैं, ज्ञान में मिलना चाहिए। हम तो लोभ से जीते हैं। हमारा तो गणित फैलाव का है। और बुद्ध कहते हैं कि मिला मुझे कुछ भी नहीं, उलटा खो गया! क्या खो गया?
तो बुद्ध ने कहा, मेरा अज्ञान खो गया। और जो मुझे मिला है, वह अब मैं जानता हूं कि मुझे सदा ही मिला हुआ था। वह मैंने कभी खोया ही नहीं था। सिर्फ मुझे पता नहीं था। जो मेरी ही संपदा थी, वह मेरी ही आंख से ओझल थी। जिस जमीन पर मैं सदा से खड़ा था, उसको ही मैं देख नहीं रहा था और सारी तरफ खोज रहा था। अपने को छोड़कर मैं सब तरफ भटक रहा था। और मैं सदा से था। जो मुझे मिला है, वह उपलब्धि नहीं है, आविष्कार है, सिर्फ मैंने उघाड़कर देख लिया है।
आप परमात्मा हैं अभी और यहीं। लेकिन हमें यह मानने में तकलीफ होती है। क्या कारण है? क्या-क्या तकलीफें हैं हमारे मन में मानने में कि हम अपने को परमात्मा मान लें?
बड़ी तकलीफें हैं। क्योंकि परमात्मा मानते से ही आप जैसे हैं, वैसे ही
जी न सकेंगे। तब चोरी करने को हाथ बढ़ेगा और आप अपने को परमात्मा मानते हैं, बड़ी घबड़ाहट होगी कि यह मैं क्या कर रहा हूं! तब किसी की जेब काटने को हाथ बढ़ेगा और परेशानी होगी कि यह मैं क्या कर रहा हूं! आपका यह ख्याल भी, विचार भी कि मैं परमात्मा हूं, आपकी जिंदगी को बदल देगा; आप वही आदमी नहीं रह जाएंगे, जो आप हैं।
एक चौबीस घंटे परमात्मा की तरह मानकर जीकर देखें। कल्पना ही सही, एक्ट ही करना पड़े, कोई हर्ज नहीं। एक चौबीस घंटे ऐसे जीकर देखें, जैसे मैं परमात्मा हूं। आपकी जिंदगी दूसरी हो जाएगी।
इससे घबड़ाहट है! हम अपने चोर को, बेईमान को, बदमाश को बचाना चाहते हैं।
तो कोई हमसे कह दे, शैतान हो, तो हमें कोई एतराज नहीं होता। कोई हमसे कह दे, भगवान हो, तो हमें बेचैनी शुरू होती है, क्योंकि वह झंझट की बात कह रहा है। अगर मान लें, तो फिर जो हम हैं, वही हम न रह पाएंगे, उसमें बदलाहट करनी पड़ेगी। और उसमें हम बदलाहट नहीं करना चाहते हैं। तो फिर उचित यही है कि हम न मानें।
लेकिन बिल्कुल इनकार करने की भी हिम्मत नहीं होती, क्योंकि हर आदमी गहरे में तो चाहता है कि परमात्मा हो। वह चाह स्वाभाविक है। वह चाह वैसे ही है, जैसे बीज चाहता है कि वृक्ष हो। जैसे कि बीज चाहता है कि खिले, फूल बने, आकाश में सुगंध बिखराए। जैसे बीज चाहता है कि ऊपर उठे, सूरज को चूमे, आकाश में खिले। वैसे ही आपके भीतर भी जो असलियत छिपी है, वह प्रकट होना चाहती है। इसलिए वह कहती है, बढ़ो, फैलो, विस्तीर्ण हो जाओ।
और विस्तीर्ण होने का अंतिम आयाम भगवान है। वही विस्तीर्णता का आखिरी रूप है। और जब तक आदमी भगवान न हो जाए, तब तक कोई तृप्ति नहीं है। क्योंकि जब तक जो आपके भीतर छिपा है, वह पूरी तरह खुल न जाए, प्रकट न हो जाए, उसकी पंखुड़ी-पंखुड़ी खिल न जाए, तब तक कोई चैन नहीं है।
इसलिए आदमी इनकार भी नहीं कर पाता, स्वीकार भी नहीं कर पाता, ऐसी दुविधा में जीता है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि उसके कोई खंड नहीं हुए हैं। वह अखंड है। और वह अखंड की तरह ही आपमें मौजूद है, उसे स्वीकार करें। और उसके साथ जीने की कोशिश शुरू करें। यह विचार भी आपके जीवन में क्रांति

बन जाएगी। यह विचार का बीज भी भीतर पड़ जाए, तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे चारों तरफ आपका सब कुछ बदलने लगेगा।
हमारे विचार भी क्षुद्र हैं। हम विराट विचार तक को स्वीकार करने में घबड़ाते हैं। हम क्षुद्र विचार में जीते हैं, क्योंकि हमारा व्यक्तित्व उसके आस-पास आसानी से रह पाता है।
विराट को जगह दें थोड़ी। अभी ख्याल ही सही, कोई बात नहीं। क्योंकि जो
आज विचार है, वह कल व्यक्तित्व बन जाएगा। और जो आज छिपा हुआ बीज है, वह कल वृक्ष हो जाएगा। जो आज सोचा है, वह कल हो जाएगा।
बुद्ध ने कहा है, तुम जो भी हो गए हो, वह तुम्हारे पिछले विचारों का परिणाम है। और तुम जो विचार आज कर रहे हो, वह तुम कल हो जाओगे। इसलिए विचार में थोड़ी बुद्धिमानी बरतना।
लेकिन हम विचार में कोई बुद्धिमानी बरतते नहीं। हम सोचते हैं, विचार
से क्या लेना-देना है? लेकिन एक आदमी के मन में अगर यह विचार बैठ जाए कि मैं परमात्मा हूं, तो एक बात पक्की है कि उसके शैतान को सुविधा मिलनी मुश्किल हो जाएगी। और एक आदमी को यह विचार बैठ जाए कि मैं शैतान हूं, तो उसके शैतान को बहुत सुविधा मिलनी शुरू हो जाएगी।
मनसविद कहते हैं कि आप वही हो जाते हैं, जिसका स्वप्न आपमें पैदा हो जाता है। अभी तो मनसविद कहते हैं कि स्कूल में किसी बच्चे को गधा, मूर्ख नहीं कहना चाहिए। क्योंकि अगर यह धारणा मजबूत हो जाए, तो वह यही हो जाएगा, जो उसके शिक्षक कह रहे हैं। और दुनिया में इतने जो गधे दिखाई पड़ते हैं, इसमें नब्बे परसेंट शिक्षकों का हाथ है। ये बेचारे गधे थे नहीं, इनको गधे कहने वाले लोग मिल गए। और उन्होंने धारणा इतनी मजबूत बिठा दी कि अब ये भी मानते हैं, अब ये भी स्वीकार करते हैं।
मनसविद कहते हैं, किसी को ऐसा कहना गलत है। किसी को बीमार कहना गलत है। अभी तो मनसविद कहते हैं कि चिकित्सक के पास जब कोई बीमार आए, तो उसे ऐसे व्यवहार करना चाहिए, जैसे वह बीमार नहीं है। दवा भला दे, लेकिन व्यवहार ऐसे करे, जैसे वह बीमार नहीं है! क्योंकि उसका व्यवहार दवा से ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि व्यवहार उसके मन में चला जाएगा; दवा केवल शरीर में जाएगी।
लेकिन जो क्वैक डाक्टर हैं, धोखेधड़ी वाले डाक्टर हैं, वे आपको देखकर
ही ऐसी घबड़ाहट पैदा करते हैं कि जैसे आप बिल्कुल मरणासन्न हैं। क्योंकि आप आ गए, नहीं तो आप बच नहीं सकते थे। उनके पास आ गए, अब बच जाएंगे, नहीं तो बच नहीं सकते थे। छोटी-सी फुंसी आपको हो, तो वे कैंसर जैसी घबड़ाहट पैदा कर देते हैं। क्योंकि तभी आपका शोषण किया जा सकता है। तभी आपका शोषण किया जा सकता है।
और फुंसी भी कैंसर हो सकती है, अगर भरोसा आ जाए। भरोसा बड़ी चीज है। बहुत बड़ी चीज है। क्योंकि भरोसा काम करना शुरू कर देता है। आपके भीतर एक ख्याल बैठ गया कि मैं बीमार हूं, तो आप बीमार हो जाएंगे।
मेरे एक शिक्षक थे, मेरी बात मानने से राजी नहीं थे। मैं उनसे कहता था,
जो आदमी मान ले, धीरे-धीरे हो जाता है। वे कहते थे, यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि कोई कितना ही मान ले कि मैं नेपोलियन हूं, नेपोलियन तो नहीं हो जाऊंगा, पागल हो जाऊंगा! जिस यूनिवर्सिटी में मैं पढ़ता था, वे वहीं शिक्षक थे, मेरे शिक्षक थे। जहां हमारा डिपार्टमेंट था, वहां से कोई एक मील के फासले पर वे नीचे यूनिवर्सिटी के कैम्पस में ही रहते थे।
फिर मैंने एक दिन योजना बनाई। कोई पंद्रह दिन बाद, जब उनसे यह बात हुई थी। पंद्रह दिन बाद मैं उनके घर गया और उनकी पत्नी को मैंने कहा कि मेरी प्रार्थना है, स्वीकार कर लें। एक प्रयोग में लगा हूं, किसी को कहना मत। सुबह उठते ही अपने पति को कहना कि आज तबीयत कुछ खराब है क्या? पीला चेहरा मालूम पड़ता है! रात सोए नहीं क्या? आंख लाल-लाल दिखाई पड़ती है!
उनकी पत्नी ने कहा, लेकिन वे बिल्कुल ठीक हैं! मैंने कहा, इसकी फिक्र न करें। छोटा प्रयोग कर रहा हूं। आप सिर्फ इतना करें। और वे जो भी कहें, यह कागज की एक पट्टी दे जाता हूं, इस पर ठीक उन्हीं के शब्द लिख देना, वे जो भी वक्तव्य दें इसके उत्तर में।

फिर उनके नौकर को कहा, बाहर बगीचे के माली को कहा, कि जब वे बाहर आएं,
तो कृपा करके इतना ही पूछना कि आपके पैर कुछ डांवाडोल मालूम पड़ते हैं! तबीयत ठीक नहीं है क्या? वे जो कहें, इस कागज पर लिख लेना। फिर रास्ते में एक पोस्ट आफिस पड़ता था, उसके पोस्ट मास्टर को जाकर कहा कि जब वे यहां से निकलें, कृपा करके तुम बाहर रहना। इतना उनसे पूछ लेना कि क्या बात है, बहुत दिन बाद दिखाई पड़े। तबीयत खराब हो गई थी क्या?
ऐसा रास्ते में कोई दस जगह मैं लोगों को चिट्ठियां देकर आया। डिपार्टमेंट का जो चपरासी था, उससे मैंने कहा कि तू एकदम उठकर उनको संभाल लेना कि आप बिल्कुल गिरे पड़ते हैं! वह बोला, लेकिन वे नाराज होंगे। ऐसा कैसे करूंगा! मैंने कहा, तू बिल्कुल फिक्र मत कर। जिम्मा मेरा है। तू एकदम संभाल लेना, कुर्सी पर बिठा देना कि आपकी हालत तो खराब हो रही है! उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि कौन कहता है कि मेरी हालत खराब है! मैं बिल्कुल ठीक हूं। रात अच्छी तरह सोया। पट्टी पर पत्नी के लिखा हुआ था कि मैं बिल्कुल ठीक हूं। रात अच्छी तरह सोया। तुझे कोई वहम पैदा हो गया? तेरी आंख में कुछ भूल है।
लेकिन इतनी ताकत, जब बाहर माली ने उनसे पूछा कि मालिक, तबीयत कुछ खराब है? उनके उत्तर में नहीं थी। माली की चिट्ठी पर लिखा हुआ था कि हां, रात से कुछ थोड़ा ढीला-ढीला अनुभव कर रहा हूं। अभी सिर्फ कमरे और बाहर का फर्क पड़ा है।
और जब पोस्ट मास्टर ने उनसे पूछा कि क्या बात है, बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़े। तबीयत कुछ खराब है? तो उन्होंने कहा, हां रात से कुछ थोड़ा-सा बुखार है।
और जब कमरे के चपरासी ने आकर उनको संभाला और कुर्सी पर बिठाला, तो उन्होंने चपरासी से कहा कि तू पूछताछ मत कर। जाकर किसी और प्रोफेसर की गाड़ी ले आ, मुझे घर पहुंचा। मेरा शरीर तप रहा है और हालत मेरी ठीक नहीं है। और जब मैंने ये दसों चिट्ठियां उनके सामने रात को जाकर रखीं, तो उन्हें एक सौ तीन डिग्री बुखार था। मैंने कहा, ये चिट्ठियां पढ़िए और बिस्तर के बाहर निकल आइए। यह बुखार झूठा है या सच? यह बुखार सच है, क्योंकि थर्मामीटर पकड़ता है। उसको झूठा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सचाई का और उपाय क्या है? थर्मामीटर पकड़ ले, तो चीज सत्य होती है।
मैंने कहा, यह बुखार सच है, लेकिन सिर्फ एक धारणा का परिणाम है। सुबह
से मैं आपके चारों तरफ प्रचार कर रहा हूं कि आप बीमार हैं। और यह बीमारी का ख्याल आपको पकड़ गया है।
आदमी आदमी नहीं है; आदमी सिर्फ एक संभावना है। और अगर पश्चिम में डार्विन ने लोगों को समझा दिया कि आदमी बंदर की औलाद है और आदमी को अगर भरोसा हो गया, तो पता नहीं आदमी बंदर की औलाद है या नहीं, आदमी बंदर की औलाद के जैसा व्यवहार करेगा। यह भरोसा आ जाना चाहिए।
यह सवाल बड़ा नहीं है कि वह सच में है या नहीं। अभी तक तय भी नहीं है कि
वह बंदर की औलाद है। लेकिन डार्विन ने जो भरोसा पश्चिम को दिला दिया कि आदमी बंदर की औलाद है, उसका बड़ा परिणाम हुआ। जब आदमी बंदर की औलाद है, तो बात ही खत्म हो गई, हमने स्वीकार कर लिया कि हम बंदर जैसे हैं।
जब फ्रायड ने लोगों को भरोसा दिला दिया कि आदमी सिवाय कामवासना के, सिवाय सेक्सुअलिटी के और कुछ भी नहीं है, तो पता नहीं वह ठीक कह रहा है कि गलत, लेकिन जिनको भरोसा आ गया कि हम सिर्फ सेक्स हैं, सिर्फ कामवासना हैं, वे कामवासना में ही ठहर गए। अगर आज पश्चिम पूरी तरह कामवासना से भर गया है, तो उसका जिम्मा फ्रायड पर है, जिसने एक धारणा दे दी।
आदमी एक संभावना है फ्लेक्सिबल, बड़ी लोचपूर्ण संभावना है। यही उसकी खूबी है। आप किसी कुत्ते को कुछ और नहीं बना सकते; वह कुत्ता ही रहेगा। किसी शेर को कुछ नहीं बना सकते; वह शेर ही रहेगा। फ्लेक्सिबल नहीं है, फिक्स्ड है, लोच नहीं है। आदमी लोचपूर्ण है। आदमी को जो धारणा दे दें, वह वही बन जाएगा।
जब मैं आपसे कहता हूं, आप ईश्वर हैं, तो मैं आपको एक धारणा दे रहा हूं परम विस्तार की। उस धारणा का आज ही फल नहीं हो जाएगा। आज ही आप एकदम से

छलांग लगाकर ईश्वर नहीं हो जाएंगे, वह मैं जानता हूं। लेकिन वह धारणा अगर गहरे में बैठ जाए, तो वह आपके भीतर जो छिपा है, उसका आविष्कार हो जाएगी। और ईश्वर होना आपकी नियति है, आपके भीतर छिपा है। आप कितने ही जन्मों- जन्मों तक टालते रहें, बच न सकेंगे। इसलिए ईश्वर को कोई जल्दी भी नहीं है कि आप अभी ही ईश्वर हो जाएं। समय की वहां कोई कमी नहीं है। अनंत समय पड़ा है। आप कितने ही जन्म भागते रहें, दौड़ते रहें, सब कुछ करते रहें, एक न एक दिन आप उसके जाल में गिर जाएंगे। लेकिन जब तक आप नहीं गिरते हैं, तब तक अकारण दुख भोगते हैं।
जो मैं जोर देकर कहता हूं कि आप परमात्मा हैं, उसका कुल कारण गहरे में इतना है कि जो आपकी अंतिम नियति है, जो डेस्टिनी है, जो आपकी आखिरी होने की संभावना है, वह परमात्मा है। और वह आपका बीज भी है। क्योंकि आखिर में केवल वही हो सकता है, जो आज ही छिपा हो। शून्य से कुछ भी पैदा नहीं होता। जो मौजूद हो, उसी का उदघाटन होता है।
अगर आपके मन में यह ख्याल बैठ जाए--और यह ख्याल सत्य के अत्यंत अनुकूल है--कि आप खंड नहीं हैं, अखंड आपके भीतर विराजमान है। यह कैसे अखंड विराजमान होगा? इसे थोड़ा हम समझें।
स्वामी राम कहा करते थे कि ऐसा हुआ एक बार कि एक राजा के महल में एक कुत्ता घुस गया। राजा ने जो महल बनाया था, उसमें उसने हजारों कांच के टुकड़े लगाए थे। हर कांच का टुकड़ा एक दर्पण था। कुत्ता जब अंदर गया, तो उसने देखा कि लाखों कुत्ते खड़े हैं। हर कांच के दर्पण में एक-एक कुत्ता खड़ा था, पूरा का पूरा। ऐसा नहीं कि एक टुकड़ा कि लाख कांच लगे थे, तो लाख टुकड़े हो गए कुत्ते के और एक-एक टुकड़ा एक-एक कांच में दिखाई पड़ने लगा। लाख कांच लगे थे, तो लाख कुत्ते हो गए, पूरे के पूरे। पूरा कुत्ता टुकड़ों में दिखाई पड़ने लगा।
कुत्ता घबड़ाया, भौंका। लाख कुत्ते भौंके। कुत्ता घबड़ा गया और भी ज्यादा। क्योंकि लाख कुत्ते भौंक रहे थे चारों तरफ से। चीखा। दौड़ा। कुत्ता कांच के आईनों की तरफ दौड़ा। कांच के आईनों के कुत्ते कुत्ते की तरफ दौड़े। कुत्ता वहां मर गया उसी रात। लड़ता रहा रातभर। मर गया।
करीब-करीब आदमी की हालत ऐसी है। आपमें परमात्मा पूरा प्रतिबिंबित हो रहा है। आप एक दर्पण हैं, एक मिरर। हर आदमी एक मिरर है। और आदमी ही क्यों, पौधा, पशु, पक्षी, सभी; समस्त कण इस जगत के दर्पण हैं। और आपमें परमात्मा पूरा छलक रहा है, पूरा उसका प्रतिबिंब बन रहा है; कट नहीं गया, टुकड़ा नहीं हो गया। लेकिन आप अपने में बनते प्रतिबिंब को नहीं देख रहे हैं। आप भी उस कुत्ते का व्यवहार कर रहे हैं। आप भौंक रहे हैं आस-पास के दर्पणों में, वहां से उत्तर आ रहा है। घबड़ा रहे हैं, परेशान हो रहे हैं!
जिंदगी एक चिंता है, क्योंकि संघर्ष है चारों तरफ। वह कुत्ता जैसे मर गया उस रात उस महल में, हम भी संसार में ऐसे ही परेशान होकर मरते हैं। और जिससे हम परेशान हो रहे थे, वह और हम, एक का ही प्रतिबिंब थे। और जिससे हम परेशान हो रहे थे, वह हमारी ही छाया थी और हम उसकी छाया थे। लेकिन यह गहन अनुभव तभी संभव हो पाता है, जब विचार की एक पृष्ठभूमि तैयार हो जाए।
जब मैं कहता हूं कि आप परमात्मा हैं, तो सिर्फ इसलिए कि एक विचार की भूमिका तैयार हो जाए और फिर आप इस यात्रा पर निकल पाएं।
आप जिद्द करते हैं कि नहीं हैं। आप जिद्द यह कर रहे हैं कि हमें इस यात्रा पर नहीं जाना है। न जाना हो, आपकी मर्जी। आपको कोई जबर्दस्ती इस यात्रा पर नहीं भेज सकता है।
लेकिन अगर जाना हो, तो आपको इस यात्रा के कुछ सूत्र समझ लेने जरूरी हैं। और पहला सूत्र यह है कि अंत में जो आप हो जाएंगे, वह आप आज और अभी-यहीं हैं। कितना ही समय लगे, लेकिन समय केवल वही प्रकट कर पाएगा, जो आपमें छिपा था।
महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को हम भगवान कहते हैं इसीलिए कि उनमें वह प्रकट हो गया है, जो हममें प्रकट नहीं है। लेकिन हममें और उनके स्वभाव में कोई फर्क नहीं है। सिर्फ अभिव्यक्ति का फर्क है।

ऐसा समझिए कि दो कवि हैं। एक कवि चुप बैठा है और एक कवि गा रहा है। जो
गा रहा है, वह आपको कवि मालूम पड़ेगा। जो चुप है, वह कवि नहीं मालूम पड़ेगा।
लेकिन कवि होने में जरा भी अंतर नहीं है। वह भी गाएगा। वह भी गा सकता है। वह गाएगा ही; भीतर उसके गीत मौजूद है, वह प्रकट होगा।
एक बीज पड़ा है और एक वृक्ष लगा है। वृक्ष में फूल खिल गए हैं, और बीज में तो कुछ भी पता नहीं चलता है, कंकड़-पत्थर की तरह पड़ा हुआ है। आपको वृक्ष अलग दिखाई पड़ता है, आप वृक्ष को नमस्कार करते हैं, बीज को नहीं। लेकिन बीज में भी वृक्ष छिपा है। और यह जो वृक्ष आज खड़ा है, कल यह भी बीज की तरह कहीं पड़ा था। और आज जो बीज की तरह पड़ा है, कल भविष्य में वृक्ष हो जाएगा।
आप बीज हैं परमात्मा के, जब मैं जोर देता हूं कि आप परमात्मा हैं।
इसकी स्वीकृति, इसका सहज स्वीकार आपके विकास में सहयोगी, साथी बन जाता है।
इसका अस्वीकार संकुचन दे देता है। आप अपने भीतर कुंद होकर बंद हो जाते हैं। फिर आपकी मर्जी।

अब हम सूत्र को लें।
हे विश्वमूर्ते! मैं पहले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूं। और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। इसलिए हे देव! आप उस अपने चतुर्भुज रूप को ही मेरे लिए दिखाइए। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइए।
पहले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूप को देखकर हर्षित भी हो रहा हूं। और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। अर्जुन बड़ी दुविधा में है। दोहरी बातें एक साथ हो रही हैं।
राबिया, एक सूफी फकीर औरत के बाबत सुना है मैंने कि वह हंसती भी थी और रोती भी थी, साथ-साथ! और जब लोग उससे पूछते कि राबिया, क्या तू पागल हो गई? तू हंसती भी है और रोती भी है, साथ-साथ! हमने रोते हुए लोग भी देखे, हमने हंसते हुए लोग भी देखे। बाकी दोनों साथ-साथ करता हुआ हमने कभी नहीं देखा। कारण क्या है?
तो राबिया कहती, हंसती मैं उसे देखकर, और रोती मैं तुम्हें देखकर। हंसती मैं उसे देखकर, जो छाया है चारों तरफ। और रोती मैं तुम्हें देखकर कि तुम्हें बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ रहा! हंसती हूं मैं उसे देखकर जो मुझे आज अनुभव आ रहा है, और रोती हूं मैं उसे सोचकर जो मैंने कल तक माना था।
हंसना और रोना एक साथ जब घटित हो, तो हम आदमी को पागल कहते हैं। क्योंकि सिर्फ पागल ही हंसते और रोते एक साथ हैं। क्योंकि हम तो बांट लेते हैं समय में चीजों को। जब हम रोते हैं, तो रोते हैं; जब हंसते हैं, तो हंसते हैं। दोनों साथ-साथ नहीं करते।
लेकिन जब कोई बहुत परम अनुभव घटित होता है, जिससे जिंदगी दो हिस्सों में बंट जाती है; पिछली जिंदगी अलग हो जाती है और आने वाली जिंदगी अलग हो जाती है; हम एक चौराहे पर खड़े हो जाते हैं। जहां पीछा भी दिखाई पड़ता है, आगा भी। और जहां दोनों बिल्कुल भिन्न हो जाते हैं, और दोनों के बीच कोई संबंध भी नहीं रह जाता। वहां दोहरी बातें एक साथ घट जाती हैं।
तो अर्जुन को हर्षित होना भी हो रहा है, भयभीत होना भी हो रहा है। वह प्रसन्न भी है, जो उसने देखा। अहोभाग्य उसका। और वह घबड़ा भी गया है, जो उसने देखा। इतना विराट है, जो उसने देखा, कि वह कंप रहा है।
अपनी क्षुद्रता का भी अनुभव तभी होता है, जब हम विराट के सामने होते हैं। नहीं तो अपनी क्षुद्रता का भी अनुभव कैसे हो? हमको किसी को भी अपनी क्षुद्रता का अनुभव नहीं होता, क्योंकि मापदंड कहां है जिससे हम तौलें कि हम क्षुद्र हैं?
जो मेंढक अपने कुएं के बाहर ही न गया हो, उसे कुआं सागर दिखाई पड़े तो कुछ गलत तो नहीं है, बिल्कुल तर्कयुक्त है। तो मेंढक जब सागर के किनारे जाएगा, तभी अड़चन आएगी। कहते हैं न कि ऊंट जब तक पर्वत के पास न पहुंचे, तब तक अड़चन नहीं होती। क्योंकि तब तक वह खुद ही पर्वत होता है। पर्वत के करीब पहुंचकर पहली दफा तुलना पैदा होती है।

अर्जुन की घबड़ाहट तुलना की घबड़ाहट है। पहली दफा बूंद सागर के निकट है। पहली दफा ना-कुछ सब कुछ के सामने खड़ा है। पहली दफा सीमा असीम से मिल रही है। तो घबड़ाहट है। जैसे नदी सागर में गिरती है तो घबड़ाती होगी। अज्ञात में, अनजान में, अपरिचित में प्रवेश हो रहा है। और ओर-छोर मिट जाएंगे, नदी खो जाएगी!
जिब्रान ने लिखा है कि जब नदी सागर में गिरती है, तो लौटकर पीछे जरूर देखती है। रास्ता जाना-माना परिचित था। अतीत-- स्मृति; भविष्य--अपरिचित, अनजान।
यह अर्जुन ऐसी ही हालत में खड़ा है, जहां मिट जाएगा पूरा। रत्ती भी नहीं बचेगी। और अब तक अपने को जो समझा था, वह कुछ भी नहीं साबित हुआ, क्षुद्र निकला। और विराट सामने खड़ा है। इसलिए भयभीत भी हो रहा है और हर्षित भी हो रहा है।
नदी जब सागर में गिरती है, तो अतीत खो रहा है, इससे भयभीत भी होती होगी;
और अज्ञात मिल रहा है, इससे हर्षित भी होती होगी। तो नदी नाचती हुई गिरती है। उसके पैर में भय का कंपन भी होता होगा और आनंद की पुलक भी होती है, क्योंकि अब विराट से एक होने जा रही है।
जिस दिन गेटे मर रहा था, तो कहते हैं, वह आंख खोलकर देखता था बाहर, फिर आंख बंद कर लेता था। फिर आंख खोलकर बाहर देखता था, फिर आंख बंद कर लेता था। किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? तो गेटे ने कहा, मैं देख रहा हूं उस दुनिया को जो छूट रही है और आंख बंद करके देख रहा हूं उस दुनिया को जो आ रही है। और मैं दोनों के बीच बड़ा खिंचा हुआ हूं। जो छूट रहा है, वह व्यर्थ था, लेकिन फिर भी उसके साथ रहा, लगाव हो गया है। जो मिल रहा है, सार्थक है, लेकिन अपरिचित है, भय भी लगता है। पता नहीं क्या होगा परिणाम?
अर्जुन कह रहा है, हर्षित भी हो रहा हूं और मेरा मन अति भय से व्याकुल
भी हो रहा है। इसलिए हे देव! आप अपने चतुर्भुज रूप को ही ले लें। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न हो जाएं, वापस लौट आएं। सीमा में खड़े हो जाएं। असीम को तिरोहित कर लें। इस असीम से मन कंपता है।
और हे विष्णो! मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किए हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूं। इसलिए हे विश्वरूप! हे सहस्रबाहो! आप उसी चतुर्भुज रूप से युक्त हो जाइए।
यहां मन की एक और गतिविधि समझ लेनी चाहिए।
जो न हो, मन उसकी मांग करता है। जो मिल जाए, तो जो नहीं हो जाता है, मन उसकी मांग करने लगता है।
अर्जुन खुद ही कहा था कि मुझे दिखाओ अपना विराट रूप, असीम हो जाओ। अब
तो मैं देखना चाहता हूं; अनुभव करना चाहता हूं। अब सीमा से मेरी तृप्ति नहीं है। अब तो मैं पूरा का पूरा, जैसे तुम हो अपने नग्न सत्य में, वैसे ही निर्वस्त्र, तुम्हें तुम्हारी पूरी नग्नता में, सत्यता में देख लेना चाहता हूं। यही अर्जुन की मांग थी, यह उसकी ही प्रार्थना थी। और अब देखकर वह कह रहा है, वापस लौट आओ; अपने पुराने रूप में खड़े हो जाओ। अब तो वही ठीक है। तुम्हारा चार हाथों वाला वह रूप, उसी में तुम वापस आ जाओ। प्रसन्न हो जाओ।
जो खो जाता है, हम उसकी मांग करने लगते हैं। जो मिल जाता है, वह हमें व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है। कुछ भी मिल जाए, तो हमें डर लगता है। पीछे लौटना चाहते हैं, आगे जाना चाहते हैं। मगर जो मिल जाए, उसके साथ राजी रहने की हमारी हिम्मत नहीं है।
रवींद्रनाथ ने लिखा है एक गीत, कि खोजता था परमात्मा को अनंत-अनंत कालों से। और बड़ा बेचैन रहता था। और बड़ा रोता-चिल्लाता था। और बड़ी तपश्चर्या करता था। और कभी किसी दूर तारे के किनारे उसकी शक्ल भी दिखाई पड़ती थी। जब तक वहां पहुंचता था, तब तक वह दूर निकल जाता था। बड़ी व्याकुलता थी, मिलन का बड़ा आग्रह था। रोता, तड़पता, छाती पीटता, भटकता था।
फिर एक दिन ऐसा हुआ कि उसके दरवाजे पर ही पहुंच गया। सीढ़ियां चढ़ गया। दरवाजे पर तख्ती लगी थी कि यही है उसका मकान, जिसकी तलाश थी। हाथ में सांकल ले ली दरवाजे की। जन्मों-जन्मों की प्यास पूरी होने के करीब थी। ठोंकने ही

वाला था सांकल कि तभी मन ने कहा कि जरा सोच ले, अगर परमात्मा मिल ही गया, तो फिर तू क्या करेगा? फिर तू क्या करेगा? अब तक तू उसको खोजता था। और वह आखिरी खोज है। और अगर मिल ही गया, फिर तू क्या करेगा? फिर तेरे होने का क्या अर्थ?
रवींद्रनाथ ने बड़ी मीठी कविता लिखी है। लिखा है कि धीरे से सांकल मैंने छोड़ दी कि कहीं आवाज न हो जाए! कहीं वह बाहर ही न आ जाए! कहीं वह आकर आलिंगन में ही न ले ले कि आ। बहुत दिन से खोजता था, अब मिलन हो जाए। जूते हाथ में निकाल लिए, कि कहीं सीढ़ियों से लौटते वक्त आवाज न हो जाए! और फिर मैं जो भागा हूं, तो मैंने लौटकर नहीं देखा।
अब मैं फिर खोज रहा हूं। अब मैं पूछता हूं लोगों से कि कहां है उसका मकान? और मुझे उसका मकान पता है। और अब मैं जगह-जगह गुरुओं से पूछता हूं कि तुम्हारे चरण में आया हूं, रास्ता बताओ। और मुझे उसका रास्ता पता है। और कभी भूल-चूक से भी उसके घर के पास से मैं नहीं गुजरता हूं। क्योंकि अगर वह मिल ही जाए, तो फिर?
अर्जुन की भी यही हालत है। वह दरवाजे के भीतर घुस गए; उन्होंने कुंडी बजा दी। अब परमात्मा मिल गया, अब वे कह रहे हैं कि नहीं, वापस! फिर मुझे खोजने दो। फिर तुम अपनी सीमा में खड़े हो जाओ, ताकि फिर मैं असीम को खोजूं। अब तुम फिर मुस्कुराओ। अब तुम फिर गदा हाथ में ले लो। अब तुम चतुर्भुज हो जाओ। तुम वही हो जाओ! क्योंकि तुम तो मुझे मिटाए दे रहे हो। अब मेरा कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।
आपको ख्याल में नहीं है। जो लोग दूर तक सोचते हैं, उनको ख्याल में है। रवींद्रनाथ ने बड़ा गहरा व्यंग्य किया है।
बर्ट्रेंड रसेल ने अपने एक वक्तव्य में ठीक यही बात कही है। रसेल ने कहा है कि मैं हिंदुओं के मोक्ष से बहुत डरता हूं। मुझे सोचकर ही बात भयावनी मालूम पड़ती है। और सच में है। आपने सोचा नहीं कभी, इसलिए फिक्र नहीं है। रसेल कहता है कि मैं यह सोचकर ही बहुत भयभीत हो जाता हूं कि मोक्ष मिल जाएगा, फिर क्या? देन व्हाट? और बड़ी कठिनाई यह है कि मोक्ष से संसार में वापस नहीं आ सकते। संसार से तो मोक्ष में जा सकते हैं। एनट्रेंस तो है, एक्जिट नहीं है। मोक्ष से वापस नहीं लौट सकते। वहां से कोई दरवाजा नहीं, जिसमें से निकल भागे, बाहर आ गए।
तो रसेल कहता है, मोक्ष की बात ही घबड़ाती है कि वहां न दुख होगा, न सुख होगा, परम शांति होगी, लेकिन कितनी देर? अनंत काल तक? अनंत काल तक शांति, शांति, शांति! बहुत बोर्डम, बहुत ऊब पैदा हो जाएगी। स्वाद में थोड़ी बदलाहट तो चाहिए ही आदमी को। थोड़ा दुख आता है, तो सुख में फिर मजा आ जाता है। थोड़ी अशांति होती है, तो शांति की फिर चाह पैदा हो जाती है। लेकिन वहां कोई विघ्न-बाधा ही न होगी। वहां एक-सुरा संगीत होगा, जिसमें कभी ऊंची-नीची ताल न होगी। वहां सा रे ग म प ध नि नहीं होगा। वहां बस सा तो सा। सा सा सा सा सा चलता रहेगा अनंत काल तक!
उसमें, रसेल कहता है, घबड़ा जाएगी तबीयत। और निकलने का रास्ता नहीं है।
और यहां तो प्रभु से प्रार्थना करते थे कि मोक्ष पहुंचा दो। फिर क्या करेंगे? मोक्ष के बाद कोई उपाय नहीं है। तो रसेल कहता है, इससे तो नरक भी बेहतर है, उसमें से कम से कम बाहर तो आ सकते हैं! और कम से कम कुछ मजा तो रहेगा। कुछ चीजें तो बदलेंगी। फिर संसार ही क्या बुरा है।
यह रसेल ठीक कहता है। अगर सोचेंगे, तो घबड़ाहट होगी। लेकिन ऐसा नहीं है
कि बुद्ध और महावीर और कृष्ण ने बिना सोचे यह बात कही है। अगर आप अपनी बुद्धि को लेकर मोक्ष में चले जाएंगे, तो वही होगा, जो रसेल कह रहा है। क्योंकि बुद्धि द्वंद्व है। वह एक को नहीं सह सकती, उसको दो चाहिए। लेकिन मोक्ष की अनिवार्य शर्त है, बुद्धि को दरवाजे पर छोड़ जाना। इसलिए वहां कोई कभी नहीं ऊबता।
ध्यान रहे, बोर्डम के लिए बुद्धि जरूरी है। बुद्धि के नीचे भी बोर्डम पैदा नहीं होती, बुद्धि के ऊपर भी बोर्डम पैदा नहीं होती। आपने किसी गाय-भैंस को बोर होते हुए देखा है? कि भैंस बैठी है, बोर हो गई! कि बहुत ऊब गई!

वही घास रोज चर रही है। वही सब रोज चल रहा है। भैंस को कोई ऊब नहीं है। क्यों?
क्योंकि ऊब पैदा होती है बुद्धि के साथ। बुद्धि तुलना करने लगती है--
जो था, जो है, जो होगा--इसमें। तौलने लगती है, तो फिर भेद अनुभव होने लगता है। फिर कल भी यही भोजन मिला, आज भी यही मिला, परसों भी यही मिला, तो ऊब पैदा होने लगती है। भैंस को पता ही नहीं कि कल भी यही भोजन किया था। कल समाप्त हो गया। कल तो बुद्धि संगृहीत करती है, बुद्धि स्मृति बनाती है। भैंस जो भोजन कर रही है, वह नया ही है। कल जो किया था, वह तो खो ही गया, उसका कोई स्मरण ही नहीं है। कल जो होगा, उसकी कोई खबर नहीं है; आज काफी है।
इसलिए बुद्धि के नीचे भी बोर्डम नहीं है। कोई जानवर ऊबा हुआ नहीं है। जानवर बड़े प्रसन्न हैं। कोई आदमी के पार गया आदमी, बुद्ध, महावीर, ऊबे हुए नहीं हैं। उनकी प्रसन्नता फिर प्रसन्नता है। क्योंकि जो बुद्धि हिसाब रखती थी, उसको वे पीछे छोड़ आए।
आदमी परेशान है, जो भैंस और भगवान के बीच में है। उसकी बड़ी तकलीफ है,
वह ऊबा हुआ है। आदमी का अगर एकमात्र लक्षण, जो जानवर से उसे अलग करता है, कोई खोजा जाए, तो वह बोर्डम है, ऊब है। हर चीज से ऊब जाता है।
एक सुंदर स्त्री के पीछे दीवाना है; मिली नहीं, मिल नहीं गई स्त्री कि
ऊब शुरू हो गई! दो-चार दिन में ऊब जाएगा। सब सौंदर्य बासा पड़ जाएगा, पुराना पड़ जाएगा। एक अच्छे मकान की तलाश है; मिला नहीं कि दो-चार-आठ दिन में सब बासा हो जाएगा। एक अच्छी कार चाहिए; वह मिल गई। दो-चार-आठ दिन में बासी हो जाएगी। दूसरी कार नजर को पकड़ने लगेगी।
बुद्धि तौलती है, ऊबती है। बुद्धि के नीचे भी ऊब नहीं, बुद्धि के पार
भी नहीं।
रसेल ठीक कहता है। अगर बुद्धि को लिए ही कोई घुस जाएगा मोक्ष में, तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा। लेकिन कोई घुस नहीं सकता, इसलिए चिंता की कोई जरूरत नहीं है।
यह अर्जुन ऐसी ही दिक्कत में पड़ा है। इसको दिखाई पड़ रहा है विराट। अब इसको याद आता है कृष्ण का वह प्यारा मुख, जिससे मित्रता हो सकती थी, जिसके कंधे पर हाथ रखा जा सकता था, जिसे कहा जा सकता था, हे यादव, हे कृष्ण, अरे सखा! जिससे मजाक की जा सकती थी। उसको पकड़ने का मन होता है।
सारी दुनिया में यह बात विचारणीय बनी रही है कि आखिर भारत में हिंदुओं ने परमात्मा की इतनी साकार मूर्तियां क्यों निर्मित कीं? इतनी निराकार की बात करने के बाद इतनी साकार मूर्तियां क्यों निर्मित कीं? मुसलमानों को कभी समझ में नहीं आ सका कि उपनिषद की इतनी ऊंचाई पर पहुंचकर भारत, जहां परम निराकार की बात है, फिर क्यों गांव-गांव, घर-घर में मूर्ति की पूजा कर रहा है?
इस सूत्र में उसका रहस्य है।
इस मुल्क ने निराकार को देखा है। और जिन्होंने इस मुल्क में निराकार
को देखा है, उन्होंने अपने पीछे आने वालों के लिए साकार मूर्तियां बना दीं। क्योंकि उन्हें पता है कि निराकार बहुत घबड़ा देता है, अगर बिना तैयारी के कोई वहां पहुंच जाए। उसमें मिटने की तैयारी चाहिए। उसके पहले साकार ही ठीक है। उसके कंधे पर हाथ रखा जा सकता है। उसका शादी-विवाह रचाया जा सकता है। उसको कपड़े-गहने पहनाए जा सकते हैं। वह कुछ गड़बड़ नहीं करता। उसके साथ तुम्हें जो करना हो, तुम कर सकते हो। भोजन करवाओ तो करवाओ! लिटाओ तो लिटाओ। सुला दो। उठा दो। द्वार बंद कर दो, खोल दो। जो करना हो! परमात्मा को जिन्होंने विराट में झांका है, उन्होंने आदमी के लिए मूर्तियां निर्मित करवा दी हैं। क्योंकि उन्हें पता चल गया कि आदमी जैसा है, अगर ऐसा ही सीधा विराट में खड़ा हो जाए, तो या तो विक्षिप्त हो जाएगा, घबड़ा जाएगा, और या फिर खड़ा ही नहीं हो पाएगा; देख ही नहीं पाएगा; आंख ही नहीं खुलेगी।
इसलिए निराकार का इतना चिंतन करने वाले लोगों ने भी साकार को हटाया नहीं, साकार को बने रहने दिया।

कभी-कभी बहुत कंट्राडिक्टरी लगता है। शंकराचार्य जैसा व्यक्ति, जो शुद्ध निराकार की बात करता है, फिर वह भी मूर्ति के सामने नाचता है, कीर्तन करता है! वह भी गीत गाता है मूर्ति के सामने! बड़ी कठिन बात मालूम पड़ती है। क्योंकि पश्चिम में जो लोग वेदांत का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं, यह कंट्राडिक्टरी है। यह शंकर के व्यक्तित्व में बड़ा विरोधाभास है। एक तरफ तो वेदांत की इतनी ऊंची बात कि सब माया है। और फिर इसी माया, मिट्टी के बने हुए भगवान के सामने गीत गाना और नाचना और तल्लीन हो जाना!
इस सूत्र में उसका रहस्य है।
शंकर को तो पता है, जो उन्हें दिखाई पड़ा है। लेकिन उनके पीछे जो लोग आ रहे हैं, अब वे उनके संबंध में भी समझ सकते हैं। कि जो शंकर को दिखाई पड़ा है, यह अगर किसी को आकस्मिक रूप से दिखाई पड़ जाए, कहीं कोने से टूट पड़े कोई धारा और इसका अनुभव हो जाए, तो झेलना मुश्किल हो जाएगा। वह इम्पैक्ट, वह आघात तोड़ जाएगा।
इसलिए मूर्ति को रहने दो, जब तक कि अमूर्ति के लिए तैयार न हो जाए व्यक्ति। तब तक चलने दो उसे अपने खेल-खिलौनों के साथ, जब तक कि वह इतना प्रौढ़ न हो जाए कि सब छोड़ दे।
यह अर्जुन यही मांग कर रहा है कि तुम मूर्त बन जाओ, अमूर्त नहीं। और तुम्हारी मूर्ति वापस ले आओ।
इस प्रकार अर्जुन की प्रार्थना को सुनकर, कृष्ण बोले, हे अर्जुन! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय, सबका आदि और सीमारहित विराट रूप तुझे दिखाया, जो कि तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया।
यह बड़ा उपद्रव का वचन है। क्योंकि इसमें बड़ी उलझनें हैं। जो लोग गीता में गहन चिंतन करते हैं, मनन करते हैं, उनको बड़ी कठिनाई होती है। तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया, इसका क्या मतलब है? क्या अर्जुन पहला अनुभवी है, जिसने परमात्मा का विराट रूप देखा? यह बात तो उचित नहीं मालूम पड़ती। अनंत काल से आदमी है, अनंत सिद्धपुरुष हुए हैं, अनंत जाग्रत चेतनाएं हुई हैं। क्या अर्जुन पहला आदमी है?
यह अर्थ नहीं हो सकता इस वाक्य का। इस वाक्य का केवल एक ही अर्थ है और
वह यह कि कृष्ण के द्वारा यह रूप अर्जुन को दिखाया गया, यह पहली घटना है कृष्ण के द्वारा।
मैंने पीछे कहा कि अगर कोई अर्जुन बनने को तैयार हो, तो यह विराट दिखाया जा सकता है। एक मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि मुझे पक्का तो पता नहीं है कि मैं अर्जुन हूं या नहीं, लेकिन आप कितने अर्जुनों को पहले दिखा चुके हैं? तो मैंने उनसे पूछा कि तुम पहले पुराने कृष्ण की ही फिक्र करो कि कितने अर्जुनों को पुराने कृष्ण पहले दिखा चुके थे।
एक को ही दिखा पाए। और यही पहला भी था और यही आखिरी भी। क्योंकि अर्जुन जैसा समर्पण अति कठिन है। उतना सहज-भाव से छोड़ देना गुरु के हाथों में अति कठिन है--उतना निस्संदेह, उतनी पूर्ण श्रद्धा से, उतने समग्र भाव से। यही अर्थ है इस सूत्र का कि तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया है।
कृष्ण के संबंध में यह बात सच है कि कृष्ण ने इस रूप में, कृष्ण के रूप में जिसे दिखाया, वह अकेला अर्जुन है। और यह पहला कहा है उन्होंने। लेकिन बाद में भी किसी दूसरे को नहीं दिखाया है। यह आखिरी भी है।
अर्जुन पाना अति कठिन है। इसे थोड़ा सोच लें।
कृष्ण हो जाना इतना कठिन नहीं है, जितना अर्जुन पाना कठिन है। जब मैं ऐसा कहूंगा, तो आपको थोड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी। कृष्ण हो जाना इतना कठिन नहीं है, जितना अर्जुन होना कठिन है। बुद्ध कृष्ण हो जाते हैं, महावीर कृष्ण हो जाते हैं, लेकिन अर्जुन होना बड़ा कठिन है। क्योंकि कृष्ण होना तो स्वयं पर स्वयं की श्रद्धा से होता है। अर्जुन होना स्वयं की दूसरे पर श्रद्धा से होता है, जो बड़ी जटिल बात है।
स्वयं पर भरोसा रखना तो इतना कठिन नहीं है। क्योंकि हमारा भरोसा स्वयं पर होता ही है थोड़ा कम-ज्यादा। यह बढ़ जाए, जिस दिन आदमी अपने में

पूरे भरोसे से भर जाता है, उस दिन कृष्ण की घटना घट जाती है। यह तो सहज है, क्योंकि एक ही आदमी की बात है, अपने पर ही भरोसा करना है। लेकिन अर्जुन होना अति कठिन है, क्योंकि दूसरे पर ऐसे भरोसा करना है कि जैसे वह मेरी आत्मा है और मैं उसकी परिधि हूं।
इसलिए अर्जुन को खोजना कृष्ण को भी मुश्किल पड़ा है। एक अर्जुन कृष्ण
को उपलब्ध हुआ है। राम को कभी कोई ऐसा अर्जुन उपलब्ध हुआ, पता नहीं। बुद्ध को कभी कोई ऐसा अर्जुन उपलब्ध हुआ, पता नहीं। जीसस को कभी कोई ऐसा अर्जुन उपलब्ध हुआ, पता नहीं। उनके पास भी बहुत लोगों को घटनाएं घटी हैं, लेकिन अर्जुन जैसी विराट अनुभव की घटना नहीं घटी।
तो कृष्ण का यह कहना इस अर्थ में सार्थक है कि इस प्रकार का समर्पण मुश्किल है, अति दूभर है। और इस प्रकार का समर्पण हो, तो ही यह घटना घट सकती है।
हे अर्जुन! मनुष्य-लोक में इस प्रकार विश्वरूप वाला मैं न वेद के अध्ययन से, न यज्ञों के करने से, न दान से, न क्रियाओं से, न उग्र तपों से ही तेरे सिवाय दूसरे से देखे जाने योग्य शक्य हूं।
यह बड़ी गहरी और महत्वपूर्ण बात कही है।
कहा है कि वेद के अध्ययन से भी यह नहीं होगा। यज्ञों के करने से भी यह नहीं होगा। दान से भी नहीं होगा। क्रियाओं से योग की भी नहीं होगा। उग्र तपों से भी यह नहीं होगा। क्यों नहीं होगा? वेद के अध्ययन से क्यों नहीं होगा? क्यों, यज्ञ कोई साधेगा, तो नहीं होगा? क्यों नहीं योग की क्रियाएं इस स्थिति में ले जाएंगी?
यह नहीं होगा इसलिए कि वेद का अध्ययन हो, या यज्ञ हो, या योग की साधना हो, ये सारी की सारी प्रक्रियाएं स्वयं पर भरोसे से होती हैं। इनमें व्यक्ति अपना ही केंद्र होता है। ये समर्पण के प्रयोग नहीं हैं। ये सब संकल्प के प्रयोग हैं। और अर्जुन की घटना समर्पण से घटेगी, संकल्प से नहीं।
कोई कितना ही योग साधे, वह अर्जुन नहीं बन पाएगा, कृष्ण बन सकता है। इसे थोड़ा समझ लेना।
कितना ही योग साधे, कृष्ण बन सकता है। इसलिए हम कृष्ण को महायोगी कहते हैं। वह बुद्ध बन सकता है। क्योंकि संकल्प अगर इस जगह पहुंच जाए कि मैं अपने भीतर प्रवेश करता जाऊं अपनी ही शक्ति से, तो एक दिन उस बिंदु का अनावरण कर लूंगा, जो मुझमें छिपा है। लेकिन तब मैं अर्जुन नहीं रहूंगा, मैं कृष्ण हो जाऊंगा।
अर्जुन दूसरी ही प्रक्रिया है। वह संकल्प नहीं, समर्पण है। वहां स्वयं खोज नहीं करनी, जिसने खोज लिया है, उसके चरणों में अपने को छोड़ देना है। तो अर्जुन है, मीरा है, चैतन्य हैं, इनकी पकड़ दूसरी है; यह दूसरा उपाय है।
जगत में दो तरह के मन हैं। एक, जो संकल्प से पाएंगे परमात्मा को। दूसरे, जो समर्पण से पाएंगे परमात्मा को। समर्पण में अपने को बिल्कुल छोड़ देना है।
रामकृष्ण कहते थे--उनकी बात से इस सूत्र को मैं पूरा करूं--रामकृष्ण कहते थे, नदी को पार करने के दो ढंग हैं। एक तो है कि नाव को खेओ पतवार से। यह संकल्प है। और एक है कि प्रतीक्षा करो। जब हवाएं अनुकूल हों, तब पाल बांध दो और नाव में चुपचाप बैठ जाओ। नाव खुद चल पड़े। पाल में भरी हुई हवाएं उसे ले जाने लगें। यह समर्पण है।
कृष्ण की हवा है, अर्जुन ने तो सिर्फ नाव के पाल खोल दिए। अर्जुन खुद नहीं चला रहा है नाव को। हवा कृष्ण की है।
बुद्ध खुद चला रहे हैं। पाल वगैरह नहीं हैं उनकी नाव पर। और पाल वगैरह
वे पसंद भी नहीं करते। मरते वक्त बुद्ध ने आनंद को कहा है, अपने पर ही भरोसा रखना, किसी और पर नहीं। स्वभावतः, जिसने नदी को नाव को खेकर पार किया हो पतवारों से, वही कहेगा।

एक है समर्पण, कि छोड़ दो नाव उस पर, अनुकूल हवाओं के लिए। वह ले जाए पार
या डुबा दे, तो भी समझना कि वही किनारा है। या खुद अपने ही बल से नदी को पार कर लेना।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, न वेद के अध्ययन से, न यज्ञ के अनुष्ठान से, न योग की क्रिया से, न उग्र तपश्चर्या से यह होता है अर्जुन, जो तुझे हुआ है।
यह समर्पण से होता है।
आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें। कीर्तन पूरा करें और जाएं। और कीर्तन में सम्मिलित हों। बैठे रहें अपनी जगह, लेकिन कीर्तन में भाग लें।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
ग्यारहवां प्रवचन

मांग और प्रार्थना

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृड्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।। 49।।
संजय उवाच
इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।। 50।।
अर्जुन उवाच
दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।। 51।।
इस प्रकार के मेरे इस विकराल रूप को देखकर तेरे को व्याकुलता न होवे
और मूढ़भाव भी न होवे और भयरहित, प्रीतियुक्त मन वाला तू उस ही मेरे इस शंख, चक्र, गदा, पद्म सहित चतुर्भुज रूप को फिर देख।
उसके उपरांत संजय बोला, हे राजन्, वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति
इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखाया और फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत हुए अर्जुन को धीरज दिया।
उसके उपरांत अर्जुन बोला, हे जनार्दन, आपके इस अतिशांत मनुष्य रूप को देखकर अब मैं शांतचित्त हुआ अपने स्वभाव को प्राप्त हो गया हूं।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि क्या कोई मनुष्य बच्चे की भांति सरल हो, जिसे कोई भी ज्ञान नहीं, परमात्मा को पा सकता है? यदि हां, तो कैसे?

जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन है... । पूछा किसी ने कि कौन आपके राज्य का प्रवेश का अधिकारी होगा? प्रभु के राज्य में कौन प्रवेश कर सकेगा? तो जीसस ने कहा, जो बच्चों की भांति सरल और निर्दोष हैं वे।
लेकिन इसमें बहुत कुछ समझने जैसा है।
एक तो, जीसस ने यह नहीं कहा कि जो बच्चे हैं वे। जीसस ने कहा, जो बच्चों
की भांति सरल हैं वे। नहीं तो सभी बच्चे परमात्मा में प्रवेश कर जाएंगे। बच्चे की भांति सरल कौन होगा? बच्चा कभी नहीं हो सकता। बच्चे की भांति सरल का अर्थ ही यह हुआ कि जो बच्चा नहीं है और बच्चे की भांति सरल है। शरीर की उम्र बढ़ गई हो, मन की उम्र बढ़ गई हो, संसार को जान लिया हो, फिर भी जो बच्चे की भांति सरल हो जाता है।
तो एक तो बचपन है, जो मां-बाप से मिलता है। वह शरीर का बचपन है। वह बचपन अज्ञान से भरा हुआ है। उस बचपन में परमात्मा को जानने का कोई उपाय नहीं है। बच्चा सरल है, लेकिन अज्ञान के कारण सरल है। यह सरलता झूठी है। बच्चे की सरलता झूठी है! इसे ठीक से समझ लें। क्योंकि सरलता के पीछे वह सब जहर छिपा है, जो कल जटिल बना देगा। यह सिर्फ ऊपर-ऊपर है। भीतर तो, बच्चे के भीतर वही सब छिपा है, जो जवानी में निकलेगा, बुढ़ापे में निकलेगा। वह सब मौजूद है। यह बच्चा ऊपर से सरल है, भीतर तो जटिल है। और ऊपर भी इतना सरल नहीं है, जितना हम मानते हैं।
फ्रायड की खोजों ने काफी जाहिर कर दिया है कि बच्चे भी बहुत जटिल हैं।
आप सोचते ही हैं कि बच्चा क्रोध नहीं करता; सच तो यह है कि बच्चे जितना क्रोध करते हैं, बड़े नहीं कर पाते। आप सोचते ही हैं कि बच्चा ईर्ष्या से नहीं भरता; बच्चे भयंकर रूप से ईर्ष्यालु होते हैं। और दूसरे के हाथ में खिलौना देखकर उनको जितनी बेचैनी होती है, उतना दूसरे की कार देखकर आपको नहीं होती। और आप सोचते ही हैं कि बच्चों में घृणा नहीं होती। और सोचते ही हैं कि बच्चों में हिंसा नहीं होती। बच्चे भयंकर रूप से हिंसक होते हैं। और जब तक कीड़ा उनको दिखाई पड़ जाए कोई चलता हुआ, उसको तोड़-मरोड़ न डालें, तब तक उनको चैन नहीं मिलती।

बच्चा तोड़ने में भी काफी रस लेता है, विध्वंस में भी काफी रस लेता है। ईर्ष्या से भी भरा होता है, हिंसा से भी भरा होता है। और आप सोचते ही हैं कि बच्चे में कामवासना नहीं होती; वह भी भ्रांति है। क्योंकि आधुनिकतम सारी खोजें कहती हैं कि बच्चे में सारी कामवासना भरी है, जो बाद में प्रकट होने लगेगी।
आप ख्याल करें। हालांकि हमारा मन बहुत-सी बातों को मानने को तैयार नहीं होता, क्योंकि हमारी बहुत-सी धारणाओं को चोट लगती है। घर में अगर लड़का पैदा होता है, तो लड़के और बाप के बीच थोड़ी-सी कलह बनी ही रहती है। वह दो पुरुषों की कलह है। और मनोविज्ञान कहता है कि एक स्त्री के लिए ही वह कलह है, मां के लिए। वह जो बच्चा है और बच्चे का बाप जो है, वे दोनों अधिकारी हैं एक स्त्री के। और बच्चा पसंद नहीं करता कि बाप ज्यादा बाधा डाले। और बाप भी ज्यादा पसंद नहीं करता कि बच्चा इतना बीच में आ जाए कि पत्नी और उसके बीच खड़ा हो जाए। बाप की दोस्ती बेटे से मुश्किल से होती है। लेकिन मां की दोस्ती बेटे से हमेशा होती है।
बेटी हो, तो बाप की दोस्ती होती है, मां की दोस्ती नहीं हो पाती। बेटी
और मां के बीच सूक्ष्म कलह निर्मित हो जाती है। जैसे-जैसे लड़की बड़ी होने लगेगी, वैसे-वैसे मां और लड़की के बीच उपद्रव शुरू हो जाएगा। जैसे-जैसे लड़का बड़ा होने लगेगा, बाप और लड़के के बीच उपद्रव शुरू हो जाएगा। फ्रायड कहता है, यह सेक्स जेलेसी है; यह कामवासना ही इसके पीछे मूल आधार है। बच्चा उतनी ही कामवासना से भरा है, जितना कोई और। फर्क सिर्फ इतना है
कि अभी उसकी कामवासना का यंत्र तैयार हो रहा है। जिस दिन यंत्र तैयार हो जाएगा, वासना फूट पड़ेगी। चौदह वर्ष में, तेरह वर्ष में वासना फूट पड़ेगी। यंत्र तो बन रहा है, वासना भीतर पूरी है, वह रास्ता खोज रही है। यंत्र पूरे होते से ही उसका विस्फोट हो जाएगा।
बच्चे को हम जितनी सरलता मानकर चलते हैं, वह मानी हुई है। और उस मानने
का कारण भी अहंकार है। क्योंकि हर आदमी यह मानना चाहता है कि बचपन में मैं बड़ा पवित्र था। इस भ्रांति के दो कारण हैं, एक तो आपको बचपन की ठीक-ठीक याद नहीं। और दूसरा, जिंदगी इतनी बुरी है और जिंदगी इतनी बेहूदी और कष्ट और संकट से भरी है कि मन कहीं न कहीं राहत खोजना चाहता है। तो कम से कम बचपन स्वर्ग था, इसको मान लेने से थोड़ी राहत मिलती है।
दो ही उपाय हैं, या तो आगे स्वर्ग मानें भविष्य में, जो कि मुश्किल है, क्योंकि वहां मौत दिखाई पड़ती है। इसलिए आगे स्वर्ग को मानने में बड़ा मुश्किल होता जाता है। और रोज आपकी उलझन बढ़ती जाती है। इसलिए आगे स्वर्ग होगा, इसमें भरोसा नहीं बैठता; आगे नर्क हो सकता है। लेकिन स्वर्ग कैसे होगा आगे! रोज जब उलझन बढ़ती जाती है और जिंदगी टूटती जाती है और आदमी बूढ़ा होने लगता है, तो आगे नर्क दिखाई पड़ता है।
तो आदमी कहीं तो राहत चाहता है, सांत्वना चाहता है। लौटकर अपने बचपन में स्वर्ग को रख लेता है। तो सभी लोग बचपन की याद करते रहते हैं कि बड़ा सुखद था। यह सुखद होना एक भ्रांति है, मन के लिए एक सांत्वना है। न तो बचपन सुखद है... ।
बच्चों से पूछें। सभी बच्चे जल्दी बड़े होना चाहते हैं। कोई बच्चा बच्चा नहीं रहना चाहता, क्योंकि बचपन उसे दुखद मालूम पड़ रहा है। बचपन के अपने दुख हैं, जो आप भूल गए हैं। वे बच्चों का निरीक्षण करने से पता चलते हैं।
एक तो बच्चे को लगता है, वह बिल्कुल परतंत्र है, कोई स्वतंत्रता नहीं।
हर बात में किसी की हां और किसी की न को स्वीकार करना पड़ता है। बच्चा जल्दी बड़ा होना चाहता है। यह गुलामी है। बच्चा कमजोर है; सब ताकतवर हैं उसके आस-पास। इससे उसके अहंकार को भारी ठेस लगती है। वह भी बड़ा होना चाहता है, और कहना चाहता है, मैं भी कुछ हूं। हर चीज पर निर्भर है। खुद कुछ भी नहीं कर सकता। असहाय है, हेल्पलेस है।
इसलिए बच्चा सुख में नहीं हो सकता। यह सुख बूढ़े का ख्याल है, धारणा है, पीछे लौटकर। फिर आपको याद कितनी है? पांच साल के पहले की तो याद होती नहीं

है। मुश्किल से, कोई बहुत अच्छी याददाश्त हो, तो चार साल; उसके पहले की आपको याद नहीं होती।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चार साल पहले की आपको याद क्यों नहीं है? स्मृति तो होनी चाहिए! आप जिंदा रहे! मां के पेट से पैदा हुए, चार साल तक आप जिंदा थे, घटनाएं घटीं। उनकी स्मृति क्यों खो जाती है? आपका मन उनकी स्मृति को खो क्यों देता है? तो बड़ी अनूठी बात हाथ में आई है। और वह यह कि चार साल की जिंदगी इतनी दुखद है कि मन उसे याद नहीं करना चाहता। दुख को हम भुलाना चाहते हैं।
लेकिन हम भूल भी नहीं सकते, क्योंकि जो घट गया है, वह स्मृति में दबा है। इसलिए अगर आपको बेहोश किया जाए, सम्मोहित, हिप्नोटाइज किया जाए, तो आपको सब याद आ जाता है। ठीक पहले दिन जब आप पैदा हुए और जो आपने पहली चीख-पुकार मचाई थी, इस दुनिया में आते ही से जो आपने दुख की पहली घोषणा की थी, उससे लेकर सब याद आ जाता है। गहरे सम्मोहन में आपके मन की सारी परतें उघड़ आती हैं और सब याद आ जाता है।
सम्मोहन के जो नतीजे हैं, वे ये हैं कि बचपन बहुत दुखद है। इसलिए हम उसे भूल गए हैं। जो दुखद है, उसे याद करना मन नहीं चाहता। जो सुखद है, उसे याद करना चाहता है।
तो हम बचपन में जो सुख है, उसको चुन लेते हैं। और जो दुख है, उसे भूल जाते हैं। उसी सुख को इकट्ठा करके बाद में हम कहते हैं, बचपन स्वर्ग था। न तो बचपन स्वर्ग है; न बचपन में कोई ऐसी सरलता है, जैसा हम सोचते हैं। लेकिन सरलता लगती है, उसके कुछ कारण जरूर होने चाहिए।
एक तो बच्चा क्षण-क्षण जीता है। यह बात सच है। न तो अतीत का बहुत हिसाब रखता है, क्योंकि हिसाब रखने के लिए जितनी बुद्धि चाहिए, वह उसके पास नहीं है। न भविष्य की योजना बनाता है, क्योंकि भविष्य की योजना के लिए जितनी समझ चाहिए, वह भी उसके पास नहीं है। वह क्षण-क्षण जीता है, जैसे पशु जीते हैं। अभी जी लेता है।
इसलिए बच्चा आप पर नाराज हो जाता है, घड़ीभर बाद भूल जाता है। इसलिए नहीं कि उसको क्रोध नहीं था, बल्कि इसलिए कि अभी हिसाब रखने वाला मन विकसित नहीं हुआ है। घड़ीभर पहले नाराज हो लिया, घड़ीभर बाद हंसने लगा। वह भूल गया कि नाराज हुआ था, अब हंसना नहीं चाहिए इस आदमी के साथ। इन दोनों के बीच संबंध बिठालने की बुद्धि अभी विकसित नहीं हुई है।
तो बच्चे की सारी सरलता उसके क्षण-क्षण जीने, बुद्धिहीन होने, अज्ञान में होने के कारण है। ऐसी सरलता से कोई परमात्मा को नहीं पा सकता। एक और सरलता है, जो जीवन के सारे अनुभव को जानने के बाद, इस अनुभव को उतारकर रख देने से उपलब्ध होती है।
जिंदगी एक बोझ है अनुभव का। बच्चा बड़ा हो रहा है, अनुभव इकट्ठा कर रहा है। एक दिन ऐसी घड़ी अगर आपके जीवन में आ जाए कि आपको पता लगे, यह सारा अनुभव व्यर्थ है। यह जो जाना, जो सीखा, जो जीया, सब व्यर्थ है, कचरा है। और आप इस सारे कचरे को पटक दें अपने सिर से नीचे, तो आपको एक नया बचपन मिलेगा। आप फिर वैसे सरल हो जाएंगे, जो निर्भार होने से कोई भी हो जाता है।
वह सरलता जीसस का मतलब है, कि जो बच्चों की भांति सरल होंगे। बच्चों
की भांति सिर्फ उदाहरण है। संत फिर से बच्चे की भांति हो जाता है। या ठीक से हम कहें, तो संत सच में पहली बार बच्चा होता है। क्योंकि कोई बच्चा बच्चा है नहीं। उसके भीतर सब रोग छिपे हैं, जो बड़े हो रहे हैं। समय की देर है, सब रोग प्रकट हो जाएंगे। रोग मौजूद हैं, उनका बीज तैयार है। सिर्फ पानी पड़ेगा, धूप लगेगी और सब प्रकट हो जाएगा।
तो बच्चे की जो सरलता है, वह झूठी है। संत की सरलता ही सच्ची है। क्योंकि अब रोग छूट गए। अब भीतर कुछ बचा नहीं; संत खाली है। खालीपन सरलता है। अनुभव से खाली, ज्ञान से खाली, जीवन के सारे बोझ से खाली, रिक्त, शून्य।
अब उसने जो भी जाना, सब पटक दिया। अब चेतना अकेली रह गई है।
ऐसा समझें कि एक दर्पण है। दर्पण पर कोई आता है, तो चित्र बनता है। ठीक ऐसे ही हमारे भीतर प्रज्ञा है, बुद्धि है। उस पर सब चित्र बनते हैं। संसार भर के चित्र बनते हैं। जो भी सामने आता है, जाता है, उसके चित्र बनते हैं।

लेकिन दर्पण दो तरह के हो सकते हैं। एक दर्पण तो होता है फोटोग्राफर
के कैमरे में, जहां प्लेट लगी है। वह भी दर्पण है, लेकिन खास तरह का दर्पण है। उसमें खास रासायनिक तत्व लगाए गए हैं। उसमें जो प्रतिबिंब बनेगा, वह बनेगा ही नहीं, पकड़ भी लिया जाएगा। वह जो फोटोग्राफर की प्लेट है, एक दफा काम में आ सकती है। उसमें फिर जो पकड़ गया, तो प्लेट खराब हो गई। अब उसका दुबारा उपयोग नहीं हो सकता।
दर्पण है, उसका हजार बार उपयोग हो सकता है। क्योंकि दर्पण में प्रतिबिंब बनता है, लेकिन पकड़ता नहीं है। आप गए, प्रतिबिंब चला गया, दर्पण फिर खाली हो गया।
आदमी अपने मन का दो तरह से उपयोग कर सकता है, फोटो-प्लेट की तरह या दर्पण की तरह। जो आदमी फोटो-प्लेट की तरह अपने मन का उपयोग करता है, वह सब चीजों को संगृहीत करता जाता है, पकड़ता जाता है। जिंदगी में जो भी होता है, सब इकट्ठा करता जाता है--कूड़ा-करकट, गाली-गलौज; किसने क्या कहा, क्या नहीं कहा; क्या पढ़ा, क्या सुना--जो भी होता है, सब इकट्ठा करता जाता है।
यही इकट्ठा बोझ भीतर आत्मा का बुढ़ापा हो जाता है। यह जो बोझ है, यही बुढ़ापा है आध्यात्मिक अर्थों में। शरीर हो सकता है आपका जवान भी हो। लेकिन यह जो बोझ है भीतर, यही आध्यात्मिक बुढ़ापा है।
जिस दिन आपको यह समझ में आ जाता है कि मैं मन का एक और तरह का उपयोग भी
कर सकता हूं, मिरर लाइक, दर्पण की तरह; आप इस सारे बोझ को पटक देते हैं और खाली दर्पण हो जाते हैं। यह जो खाली दर्पण हो जाना है, यह है बचपन आध्यात्मिक अर्थों में--निर्बोझ, निर्भार।
जीसस इसकी बात कर रहे हैं। अगर आप ऐसे बच्चे हो सकते हैं, तो परमात्मा
को पाने के लिए और कुछ भी न करना पड़ेगा। इतना करना काफी है।
लेकिन इसका मतलब यह हुआ कि बच्चे तो न पा सकेंगे। आपको एक दफे भटकना पड़ेगा। एक दफे बोझ इकट्ठा करना पड़ेगा। अनुभव से गुजरना पड़ेगा, संसार की पीड़ा झेलनी पड़ेगी। और इस पीड़ा के झेलने के बाद अगर आप इस सबको छोड़ने को राजी हो जाएं, तो ही आपकी जिंदगी में असली बचपन का जन्म होगा।
इसलिए हमने इस मुल्क में ब्राह्मणों को द्विज कहा है। सभी ब्राह्मण द्विज नहीं होते। सभी ब्राह्मण ब्राह्मण भी नहीं होते। लेकिन हमारे कहने में बड़ा अर्थ है। द्विज का अर्थ है, ट्वाइस बॉर्न, जिसका दुबारा जन्म हुआ। उसको ही द्विज कहा जाता है, जिसने इस बचपन को पा लिया, जिसका दुबारा जन्म हो गया। जो फिर से ऐसे पैदा हो गया, जैसे गर्भ से ताजा आ रहा हो--कुंआरा, अछूता, जगत में जिसने रहकर भी कुछ पकड़ा नहीं।
कबीर ने कहा है, ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया। कहा कि बहुत जतन
से ओढ़ी तेरी चादर, और फिर जैसी थी, वैसी रख दी; जरा भी दाग नहीं लगने दिया। यह बचपन का मतलब है। जिंदगी में जीए, लेकिन इस जिंदगी की काल कोठरी में कोई कालिख न लगी। या लगी भी, तो उसे पोंछने की क्षमता जुटा ली। और जब वापस निकले इस कोठरी के बाहर, तो वैसे शुभ्र थे, जैसे इस कोठरी में कभी गए ही न हों।
जीवन के अनुभव से गुजरना तो जरूरी है, अन्यथा जीवन का कोई उपयोग ही नहीं रह जाता। इतना ही उपयोग है। ध्यान रहे, यहां जो भी दुख-सुख घटित होता है, उसका इतना ही उपयोग है कि आप इस बोझ को समझ-समझकर एक दिन इसके पार उठ सकें। और जिस दिन आप पार उठ जाते हैं, उसी दिन दुख-सुख बंद हो जाते हैं और आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है।
पूछा है कि फिर क्या करना जरूरी है?
कुछ भी करना जरूरी नहीं है। इतना अगर कर लिया कि जिंदगी के कचरे को हटा दिया मन से और खाली कर लिया मन और दर्पण की तरह शांत हो गए, तो सब हो गया। परमात्मा तत्क्षण दिखाई पड़ जाएगा। वह भीतर मौजूद ही है। हम इतने भरे हैं, उस भरे के कारण वह दिखाई नहीं पड़ता। वह निकट ही मौजूद है, लेकिन हमारी आंखों में इतने कंकड़-पत्थर पड़े हैं कि वह दिखाई नहीं पड़ता। बचपन की आंख मिल जाए ताजी, कुंआरी। वह अभी और यहीं उपलब्ध हो जाता है।

प्रश्नः एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि स्वीडन के एक वैज्ञानिक डाक्टर जैक्सन ने आत्मा को तौलने के संबंध में कुछ खोज की है और कहा है, आत्मा का वजन इक्कीस ग्राम है। अगर आत्मा तौली जा सकती है, तो फिर उसे पकड़ा भी जा सकता है। और अगर आत्मा को पकड़ सकते हैं, तो फिर उसे उपयोग में भी ला सकते हैं। क्या आत्मा की तौल हो सकती है?

डाक्टर जैक्सन की खोज मूल्यवान है। इसलिए नहीं कि उन्होंने आत्मा तौल
ली है, जिसे उन्होंने तौला है, उसे वे आत्मा समझ रहे हैं। लेकिन उनकी तौल मूल्यवान है। आदमी सैकड़ों वर्षों से कोशिश करता रहा है कि जब मृत्यु घटित होती है, तो शरीर से कोई चीज बाहर जाती है या नहीं जाती है? और बहुत प्रयोग किए गए हैं।
इजिप्त में तीन हजार साल पहले भी आदमी को इजिप्त के एक फैरोह ने कांच
की एक पेटी में बंद करके रखा मरते वक्त। क्योंकि अगर आत्मा जैसी कोई चीज बाहर जाती होगी, तो पेटी टूट जाएगी, कांच फूट जाएगा, कोई चीज बाहर निकलेगी। लेकिन कोई चीज बाहर नहीं निकली।
स्वभावतः, दो ही अर्थ होते हैं। या तो यह अर्थ होता है कि आत्मा को बाहर निकलने के लिए कांच की कोई बाधा नहीं है। जैसे कि सूरज की किरण निकल जाती है कांच के बाहर, और कांच नहीं टूटता। या यह अर्थ होता है। या तो यह अर्थ होता है कि कोई चीज बाहर नहीं निकली।
फैरोह ने तो यही समझा कि कोई चीज बाहर नहीं निकली। क्योंकि कोई चीज बाहर निकलती, तो कांच टूटता। समझा कि कोई आत्मा नहीं है।
फिर और भी बहुत प्रयोग हुए हैं। रूस में भी बहुत प्रयोग हुए कि आदमी मरता है, तो उसके शरीर में कोई भी अंतर पड़ता हो, तो हम सोचें कि कोई चीज बाहर गई। लेकिन अब तक कोई अंतर का अनुभव नहीं हो सका था।
जैक्सन की खोज मूल्यवान है कि उसने इतना तो कम से कम सिद्ध किया कि कुछ अंतर पड़ता है, इक्कीस ग्राम का सही। अंतर पड़ता है, इतनी बात तय हुई कि आदमी जब मरता है, तो अंतर पड़ता है। मृत्यु और जीवन के बीच थोड़ा फासला है, इक्कीस ग्राम का सही! अंतर पड़ जाता है।
अब यह जो इक्कीस ग्राम का अंतर पड़ता है, स्वभावतः जैक्सन वैज्ञानिक है, वह सोचता है, यही आत्मा का वजन होना चाहिए। क्योंकि वैज्ञानिक सोच ही नहीं सकता कि बिना वजन के भी कोई चीज हो सकती है। वजन पदार्थवादी मन की पकड़ है। बिना वजन के कोई चीज कैसे हो सकती है!
वैज्ञानिक तो सूरज की किरणों में भी वजन खोज लिए हैं। वजन है, बहुत थोड़ा है। पांच वर्गमील के घेरे में जितनी सूरज की किरणें पड़ती हैं, उनमें कोई एक छटांक वजन होता है। इसलिए एक किरण आपके ऊपर पड़ती है, तो आपको वजन नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि पांच वर्गमील में जितनी किरणें पड़ें दोपहर में, उनमें एक छटांक वजन होता है।
लेकिन वैज्ञानिक तो तौलकर चलता है। मेजरेबल, कुछ भी हो जो तौला जा सके, तो ही उसकी समझ गहरी होती है। एक बात अच्छी है कि जैक्सन ने पहली दफा मनुष्य के इतिहास में तौल के आधार पर भी तय किया कि जीवन और मृत्यु में थोड़ा फर्क है। कोई चीज कम हो जाती है। स्वभावतः, वह सोचता है कि आत्मा इक्कीस ग्राम वजन की होनी चाहिए।
अगर आत्मा का कोई वजन है, तो वह आत्मा ही नहीं रह जाती, पहली बात। क्योंकि आत्मा और पदार्थ में हम इतना ही फर्क करते हैं कि जो मापा जा सके, वह पदार्थ है।
अंग्रेजी में शब्द है मैटर, वह मेजर से ही बना हुआ शब्द है, जो तौला जा सके, मापा जा सके। हम माया कहते हैं, माया शब्द भी माप से ही बना हुआ शब्द है, जो तौली जा सके, नापी जा सके, मेजरेबल, माप्य हो।
तो पदार्थ हम कहते हैं उसे, जो मापा जा सके, तौला जा सके। और आत्मा हम उसे कहते हैं, जो न तौली जा सके, न मापी जा सके। अगर आत्मा भी नापी जा सकती है, तो वह भी पदार्थ का एक रूप है। और अगर किसी दिन विज्ञान ने यह खोज लिया कि पदार्थ भी मापा नहीं जा सकता, तो हमें कहना पड़ेगा कि वह भी आत्मा का विस्तार है।

यह जो इक्कीस ग्राम की कमी हुई है, यह आत्मा की कमी नहीं है, प्राणवायु
की कमी है। आदमी जैसे ही मरता है, उसके शरीर के भीतर जितनी प्राणवायु थी, वह बाहर हो जाती है। और आपके भीतर काफी प्राणवायु की जरूरत है, जिसके बिना आप जी नहीं सकते। आक्सीजन की जरूरत है भीतर, जो प्रतिपल जलती है और आपको जीवित रखती है।
सब जीवन एक तरह की जलन, एक तरह की आग है। सब जीवन आक्सीजन का जलना है। चाहे दीया जलता हो, तो भी आक्सीजन जलती है; और चाहे आप जीते हों, तो भी आक्सीजन जलती है। तो एक तूफान आ जाए और दीया जल रहा हो, तो आप तूफान से बचाने के लिए एक बर्तन दीए पर ढांक दें। तो हो सकता है तूफान से दीया न बुझता, लेकिन आपके बर्तन ढांकने से बुझ जाएगा। क्योंकि बर्तन ढांकते ही उसके भीतर जितनी आक्सीजन है, उतनी देर जल पाएगा, आक्सीजन के खत्म होते ही बुझ जाएगा।
आदमी भी एक दीया है। आक्सीजन भीतर प्रतिपल जल रही है। आपका पूरा शरीर
एक फैक्टरी है, जो आक्सीजन को जलाने का काम कर रहा है, जिससे आप जी रहे हैं। तो जैसे ही आदमी मरता है, भीतर की सारी प्राणवायु व्यर्थ हो जाती है, बाहर हो जाती है। उसको जो पकड़ने वाला भीतर मौजूद था, वह हट जाता है, वह छूट जाती है। उस प्राणवायु का वजन इक्कीस ग्राम है।
लेकिन विज्ञान को वक्त लगेगा अभी कि प्राणवायु का वजन नापकर वह तय करे। और अगर जैक्सन को पता चल जाए कि यह प्राणवायु का नाप है, तो सिद्ध हो गया कि आत्मा नहीं है, प्राणवायु ही निकल जाती है।
इससे कुछ सिद्ध नहीं होता। क्योंकि आत्मा को वैज्ञानिक कभी भी न पकड़ पाएंगे। और जिस दिन पकड़ लेंगे, उस दिन आप समझिए कि आत्मा नहीं है।
इसलिए विज्ञान से आशा मत रखिए कि वह कभी आत्मा को पकड़ लेगा और वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो जाएगा कि आत्मा है। जिस दिन सिद्ध हो जाएगा, उस दिन आप समझना कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण सब गलत थे। जिस दिन विज्ञान कह देगा आत्मा है, उस दिन समझना कि आपके सब अनुभवी नासमझ थे, भूल में पड़ गए थे। क्योंकि विज्ञान के पकड़ने का ढंग ऐसा है कि वह सिर्फ पदार्थ को ही पकड़ सकता है। वह विज्ञान की जो पकड़ने की व्यवस्था है, वह जो मेथडॉलाजी है, उसकी जो विधि है, वह पदार्थ को ही पकड़ सकती है, वह आत्मा को नहीं पकड़ सकती। पदार्थ वह है, जिसे हम विषय की तरह, आब्जेक्ट की तरह देख सकते हैं। और आत्मा वह है, जो देखती है। विज्ञान देखने वाले को कभी नहीं पकड़ सकता; जो भी पकड़ेगा, वह दृश्य होगा। जो भी पकड़ में आ जाएगा, वह देखने वाला नहीं है; वह जो दिखाई पड़ रहा है, वही है। द्रष्टा विज्ञान की पकड़ में नहीं आएगा। और धर्म और विज्ञान का यही फासला है।
अगर विज्ञान आत्मा को पकड़ ले, तो धर्म की फिर कोई भी जरूरत नहीं है। और अगर धर्म पदार्थ को पकड़ ले, तो विज्ञान की फिर कोई भी जरूरत नहीं है। हालांकि दोनों तरह के मानने वाले पागल हैं। कुछ पागल हैं, जो समझते हैं, धर्म काफी है, विज्ञान की कोई जरूरत नहीं है। वे उतने ही गलत हैं, जितने कि कुछ वैज्ञानिक समझते हैं कि विज्ञान काफी है और धर्म की कोई जरूरत नहीं है।
विज्ञान पदार्थ की पकड़ है, पदार्थ की खोज है। धर्म आत्मा की खोज है, अपदार्थ की, नान-मैटर की खोज है। ये दोनों खोज अलग हैं। इन दोनों खोज के आयाम अलग हैं। इन दोनों खोज की विधियां अलग हैं।
अगर विज्ञान की खोज करनी है, तो प्रयोगशाला में जाओ। और अगर धर्म की खोज करनी है, तो अपने भीतर जाओ। अगर विज्ञान की खोज करनी है, तो पदार्थ के साथ कुछ करो। अगर धर्म की खोज करनी है, तो अपने चैतन्य के साथ कुछ करो।
तो इस चैतन्य को न तो टेस्ट-ट्यूब में रखा जा सकता है; न तराजू पर तौला
जा सकता है; न काटा-पीटा जा सकता है सर्जन की टेबल पर; कोई उपाय नहीं है। इसका तो एक ही उपाय है कि अगर आप अपने को सब तरफ से शांत करके भीतर खड़े हो जाएं जागकर, तो इसका अनुभव कर सकते हैं। यह अनुभव निजी और वैयक्तिक है।
एक मित्र ने यह सवाल भी पूछा है कि धर्म और विज्ञान में क्या फर्क है?

यही फर्क है। विज्ञान है परंपरा, समूह की। धर्म है निजी अनुभव, व्यक्ति का। विज्ञान प्रमाण दे सकता है, धर्म प्रमाण नहीं दे सकता। धर्म केवल अनुभव दे सकता है, प्रमाण नहीं।
विज्ञान कह सकता है, सौ डिग्री पर पानी गर्म होता है। हजार लोगों के सामने पानी गर्म करके बताया जा सकता है। सौ डिग्री पर पानी गर्म हो जाएगा, प्रमाण हो गया। धर्म जिन बातों की चर्चा करता है, वे किसी के सामने भी प्रकट करके नहीं बताई जा सकतीं, जब तक कि वह दूसरा आदमी अपने भीतर जाने को राजी न हो। और वह भी भीतर चला जाए, तो किसी दिन दूसरे के सामने प्रमाण नहीं दे सकेगा।
धर्म के पास कोई प्रमाण नहीं है, सिर्फ अनुभव है। विज्ञान के पास प्रमाण है, अनुभव कुछ भी नहीं है। तो अगर आपको प्रमाण इकट्ठे करने हों, तर्क इकट्ठे करने हों, तो विज्ञान उचित है। और अगर आपको जीवन का अनुभव पाना हो, जीवन के रहस्य में उतरना हो, तो धर्म की जरूरत है।
और धर्म और विज्ञान पृथ्वी पर सदा बने रहेंगे, क्योंकि उनके आयाम अलग हैं, उनकी दिशाएं अलग हैं। जैसे आंख देखती है और कान सुनता है। अगर आंख सुनने की कोशिश करे, तो पागल हो जाएगी। और अगर कान देखने की कोशिश करे, तो पागल हो जाएगा। उनके आयाम अलग हैं, उनके डायमेंशन अलग हैं।
विज्ञान और धर्म का क्षेत्र ही अलग है। वे कहीं एक-दूसरे को ओवरलैप नहीं करते, एक-दूसरे के ऊपर नहीं आते। अलग-अलग हैं। इसलिए कोई झगड़ा भी नहीं है, कोई कलह भी नहीं है। न तो विज्ञान धर्म को गलत सिद्ध कर सकता है और न सही। और न धर्म विज्ञान को गलत सिद्ध कर सकता है और न सही। उनका कोई संबंध ही नहीं है। उनके यात्रा-पथ अलग हैं, उनका कहीं मिलना नहीं होता।
इसलिए दोनों की भाषा को अलग रखने की कोशिश करें, तो आपके अपने जीवन में सुविधा बनेगी। जहां पदार्थ की बात सोचते हों, वहां विज्ञान की सुनें; और जहां चेतना की बात सोचते हों, वहां विज्ञान की बिल्कुल मत सुनें, वहां धर्म की सुनें। और इन दोनों को मिलाएं मत। इन दोनों को आपस में गड्ड-मड्ड मत करें। अन्यथा आपका जीवन एक कनफ्यूजन हो जाएगा।
तो डाक्टर जैक्सन जो कहते हैं, वे ठीक कहते हैं। उन्होंने एक कीमती बात खोजी। लेकिन वह आत्मा का वजन नहीं है। वह ज्यादा से ज्यादा प्राणवायु का वजन हो सकता है। आत्मा का कोई वजन नहीं है।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है, गीता जैसे अमृत-तुल्य परम रहस्यमय उपदेश को भगवान ने अर्जुन को ही क्यों दिया? अर्जुन में ऐसी कौन-सी योग्यता थी कि वह इसके लिए पात्र था? उसका ऐसा कौन-सा श्रेष्ठ तप था?

कुछ बातें ख्याल में लेने जैसी हैं, वे गीता को समझने में उपयोगी होंगी, स्वयं को समझने में भी।
अर्जुन का कोई भी तप नहीं है। तप की भाषा ही अलग है। अर्जुन का प्रेम है, तप नहीं है। तप की भाषा अलग है। तप की भाषा है संकल्प की भाषा। एक आदमी कहता है कि मैं पाकर रहूंगा। अपनी सारी ताकत लगा दूंगा। जो भी त्याग करना है, करूंगा। जो भी खोना है, खोऊंगा। जो भी श्रम करना है, करूंगा। अपनी सारी ताकत लगा दूंगा।
आपको ख्याल है, हिंदुस्तान में दो संस्कृतियां हैं। एक तो है आर्य संस्कृति और दूसरी है श्रमण संस्कृति। श्रमण संस्कृति में जैन और बौद्ध हैं। आर्य संस्कृति में बाकी शेष लोग हैं।
कभी आपने समझा इस श्रमण शब्द का क्या अर्थ होता है? श्रमण का अर्थ है, श्रम करके ही पाएंगे। चेष्टा से मिलेगा परमात्मा--तप से, साधना से, योग से। मुफ्त नहीं लेंगे। प्रार्थना नहीं करेंगे, प्रेम में नहीं पाएंगे; अपना श्रम करेंगे और पा लेंगे। एक सौदा है, जिसमें अपने को दांव पर लगा देंगे। जो भी जरूरी होगा; करेंगे। भीख नहीं मांगेंगे, भिक्षा नहीं लेंगे, कोई अनुग्रह नहीं स्वीकार करेंगे।
तो महावीर परम श्रमण हैं। वे सब दांव पर लगा देते हैं और घोर संघर्ष, घोर तपश्चर्या करते हैं। महातपस्वी कहा है उन्हें लोगों ने। बारह वर्ष

तक, बारह वर्ष तक निरंतर खड़े रहते हैं धूप में, छांव में, वर्षा में, सर्दी में। बारह वर्ष में कहते हैं कि सिर्फ तीन सौ साठ दिन उन्होंने भोजन किया।
मतलब ग्यारह वर्ष भूखे, बारह वर्ष में। कभी एक दिन भोजन किया, फिर महीनेभर भोजन नहीं किया, फिर दो महीने भोजन नहीं किया। सब तरह अपने को तपाया और तप कर पाया।
यह समर्पण के विपरीत मार्ग है, संकल्प का। इसमें अहंकार को तपाना है।
और इसमें अहंकार को पूरी तरह दांव पर लगाना है। इसमें अहंकार को पहले ही छोड़ना नहीं है। अहंकार को शुद्ध करना है। और शुद्ध करने की प्रक्रिया का नाम तप है। अहंकार को शुद्ध करने की प्रक्रिया का नाम तप है।
जैसे सोने को हम आग में डाल देते हैं। तप जाता है। जो भी कचरा होता है,
जल जाता है। फिर निखालिस सोना बचता है। महावीर कहते हैं कि जब निखालिस अस्मिता बचती है तपने के बाद, सिर्फ मैं का भाव बचता है, शुद्ध मैं का भाव, तपते-तपते- तपते, तब आत्मा परमात्मा हो जाती है। वह शुद्धतम अहंकार ही आत्मा है। यह एक मार्ग है, इसमें सोने को तपाना जरूरी है।
एक दूसरा मार्ग है, जो समर्पण का है, जिसमें तपाने वगैरह की चिंता नहीं है। सोने को, कचरे को, सबको परमात्मा के चरणों में डाल देना है। सोने को कचरे से अलग नहीं करना है। कचरे सहित सोने को भी परमात्मा के चरणों में डाल देना है। और कह देना है, जो तेरी मर्जी।
समर्पण का अर्थ है, अपने को छोड़ देना है किसी के हाथों में। अब वह जो चाहे। यह छोड़ना ही घटना बन जाती है। यह प्रेम का मार्ग है। आप तभी छोड़ सकते हैं, जब प्रेम हो। संकल्प में प्रेम की कोई जरूरत नहीं है; समर्पण में प्रेम की जरूरत है।
अर्जुन का प्रेम है कृष्ण से गहन, वही उसकी पात्रता है। वहां प्रेम ही पात्रता है। उसका प्रेम अतिशय है। उस प्रेम में वह इस सीमा तक तैयार है कि अपने को सब भांति छोड़ सका है।
क्या घटना घटती है जब कोई अपने को छोड़ देता है? हमारी जिंदगी का कष्ट क्या है? कि हम अपने को पकड़े हुए हैं, हम अपने को सम्हाले हुए हैं। यही हमारे ऊपर तनाव है, यही हमारे मन का खिंचाव है कि मैं अपने को सम्हाले हुए हूं, पकड़े हुए हूं।
आपको पता है, चिकित्सक कहते हैं कि अगर कोई आदमी बीमार हो और उसे नींद
न आए, तो फिर बीमारी ठीक नहीं हो पाती। कोई भी बीमारी हो, बीमारी के ठीक होने के लिए नींद आना जरूरी है। क्यों? दवा से ठीक करें। लेकिन चिकित्सक पहले नींद की फिक्र करेगा। नींद की दवा देगा, कि पहले नींद आ जाए। क्यों? क्योंकि आप बीमार हैं, और जब तक आप जग रहे हैं, आप बीमारी को जोर से पकड़े रहते हैं, उसको छोड़ते नहीं हैं। कांशस, सचेतन जकड़ बनी रहती है बीमारी की आपकी छाती के ऊपर, मन के ऊपर--मैं बीमार हूं, मैं बीमार हूं! नींद में गिरते ही सब आपके हाथ से छूट जाता है। और जैसे ही छूटता है, वैसे ही प्रकृति काम शुरू कर देती है। सुबह तक आप बेहतर हालत में उठते हैं।
रोज सांझ आप थके सोते हैं। क्यों थकते हैं आप? थकते हैं इसलिए कि आपको
लग रहा है कि मैं कर रहा हूं। मैं कर रहा हूं, तो थक जाते हैं। रात नींद में खो जाते हैं, सुबह ताजे हो जाते हैं। क्योंकि कम से कम रात आपको कुछ नहीं करना पड़ा। छोड़ दिया, जो हुआ। नींद में आप गिर जाते हैं उस स्रोत में, जहां आपके श्रम की कोई भी जरूरत नहीं है।
प्रेम जागते हुए नींद में गिर जाना है। थोड़ा कठिन लगेगा समझना। प्रेम
का मतलब है, होशपूर्वक, जागते हुए किसी में गिर जाना और छोड़ देना अपने को कि अब मैं नहीं हूं, तू है। प्रेम एक तरह की नींद है जाग्रत। इसलिए प्रेम समाधि बन जाती है। कोई ध्यान करके पहुंचता है, तब बड़ा श्रम करना पड़ता है। कोई प्रेम करके पहुंच जाता है, तब श्रम नहीं करना पड़ता।
लगेगा कि प्रेम बहुत आसान है। लेकिन इतना आसान नहीं है। शायद ध्यान
ही ज्यादा आसान है। अपने हाथ में है। कुछ कर सकते हैं। प्रेम आपके हाथ में कहां? हो जाए, हो जाए; न हो जाए, न हो जाए। लेकिन अगर छोड़ने की कला धीरे-धीरे आ जाए... ।

हमें पता नहीं कि जिंदगी में जो भी महत्वपूर्ण है, वह छोड़ने की कला से मिलता है। कुछ लोगों को नींद नहीं आती, इन्सोमेनिया, अनिद्रा की बीमारी हो जाती है। तो हजार उपाय करने पड़ते हैं, फिर भी नींद नहीं आती। जितना वे उपाय करते हैं, उतनी ही नींद मुश्किल हो जाती है।
उन्हें एक सूत्र का पता नहीं है कि नींद चेष्टा से नहीं आ सकती। आपको अगर नींद न आती हो--यहां काफी लोग होंगे, जिनको नहीं आती होगी। और अगर आपको अब भी नींद आती है, तो आप प्रिमिटिव हैं, थोड़े असभ्य हैं। सभ्य आदमी को कहां नींद! सभ्य आदमी तो इतना बेचैन हो जाता है कि नींद-वींद कहां! अगर आपको नींद आती है, तो आपमें बुद्धि की कमी है। बुद्धिमान आदमी को कहां नींद! उसकी बुद्धि चलती ही रहती है। वह लाख कोशिश करता है सोने की, बुद्धि चलती चली जाती है। लोग चेष्टा करते हैं।
आज अमेरिका में करीब-करीब पचास से साठ प्रतिशत लोग बिना शामक दवा के नहीं सो सकते। और अमेरिकी मनस वैज्ञानिकों का कहना है कि इस सदी के पूरे होते-होते ऐसा आदमी खोजना मुश्किल हो जाएगा अमेरिका में, जो बिना दवा के सोता है। वह अनूठी चीज हो जाएगा, कि कोई आदमी सिर रख लेता है तकिए पर और सो जाता है!
ऐसे लोगों की तकलीफ है कि कैसे सोएं! तो कोई कहता है, गिनती करो एक से
सौ तक, फिर सौ से वापस एक तक! कोई कहता है, मंत्र पढ़ो। कोई कहता है, राम-राम जपो। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। लोग करते भी हैं। और जितना करते हैं, उतना ही पाते हैं कि नींद और भाग गई। क्योंकि नींद के आने का एक ही सूत्र है कि आप कुछ मत करें। आप चुपचाप पड़ जाएं, ताकि नींद आ सके।
जब आप नहीं करते हैं कुछ, तब नींद आती है। नींद के लाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। कुछ भी करना बाधा है। नींद उतरती है आपके ऊपर, जब आप कुछ भी नहीं करते। अगर आपको नींद न आती हो, तो मजे से पड़े रहें। और नींद न आने का मजा लेते रहें। नहीं आ रही, मजा है। नींद आ जाएगी। आप नींद के लिए सीधा कुछ मत करें। सीधी चेष्टा बाधा है।
फ्रांस के एक बहुत बड़े विचारक, गहन अनुभवी, कुए ने एक सूत्र विकसित किया है। वह सूत्र है, ला आफ रिवर्स इफेक्ट, विपरीत परिणाम का नियम। कुछ चीजें हैं कि जिनमें आप अगर प्रयास करें, तो उलटा परिणाम हाथ आता है। नींद वैसी ही चीज है, आपको उलटा परिणाम हाथ आएगा। अगर आप लाने की कोशिश करेंगे, नींद नहीं आएगी। अगर आप सब कोशिश छोड़ देंगे, थक जाएंगे कोशिश कर-करके, छोड़ देंगे, नींद आ जाएगी।
नींद गहन चीज है, आपके हाथ में नहीं है। परमात्मा और भी गहन है। नींद
तो प्रकृति है। परमात्मा और भी गहन है। वह आपके हाथ में बिल्कुल नहीं है। यह समर्पण के सूत्र के कहने वालों का नियम है कि आप परमात्मा को पकड़ने, खोजने की चेष्टा मत करें। आप सिर्फ अपने को उसमें छोड़ दें, जैसे नींद में छोड़ देते हैं। डूब जाएं। कह दें कि तू है और अब मैं नहीं हूं। अब तुझे जो करना हो, उसके लिए मैं राजी हूं।
नियति की बात इसमें सहयोगी होगी। केवल नियति को मानने वाला ही पूरा समर्पण कर सकता है। जो मानता है कि मैं कुछ कर सकता हूं, वह समर्पण नहीं कर सकता।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि संकल्प से नहीं पहुंचा जा सकता। संकल्प से लोग पहुंचे हैं, संकल्प से पहुंचा जा सकता है। मगर गीता का वह मार्ग नहीं है। और अर्जुन की वह पात्रता नहीं है।
इसलिए अर्जुन ने कोई तप नहीं किया है। अगर आप प्रेम को ही तप कहें, तब बात दूसरी है। प्रेम भी तप है। क्योंकि जो करता है, वह प्रेम में वैसे ही जलता है, जैसे कोई आग में जलता हो। और शायद प्रेम की आग और भी गहन आग है। और शायद साधारण आग ऊपर-ऊपर जलाती होगी, प्रेम की आग भीतर तक राख कर जाती है। अगर प्रेम को भी तप कहें, तब मुझे कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तब भाषा को साफ समझ लेना जरूरी है।
तप उनका मार्ग है, जो कहते हैं, हम कोशिश करके पा लेंगे। प्रेम उनका मार्ग है, जो कहते हैं, हमारी कोशिश से क्या होगा! हम असहाय हैं। तुम उठा लो।

इसलिए तप के मार्ग पर ईश्वर को मानने की भी जरूरत नहीं है। महावीर ने ईश्वर को नहीं माना। बुद्ध ने ईश्वर को नहीं माना। प्राचीन योग-सूत्रों ने कहा है कि मानो ईश्वर को तो ठीक है; न मानो, तो भी चलेगा। योग साधो, घटना घट जाएगी। ईश्वर को मानने, न मानने की कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन प्रेम के मार्ग पर तो ईश्वर को मानकर ही चलना होगा। नहीं तो समर्पण कैसे करिएगा? किसको समर्पण करिएगा? ईश्वर हो या न हो, अगर आप समर्पण कर सकते हैं, तो आप पा लेंगे परम अनुभूति।
इसलिए प्रेम का मार्ग मानकर चलता है कि ईश्वर है परम केंद्र जीवन का, अस्तित्व का। उसमें हम अपने को छोड़ देते हैं। हम अपनी तरफ से अपने को नहीं ढोते। प्रेम के पथिक का कहना है कि सब तरह के प्रयास ऐसे ही हैं, जैसे कोई आदमी अपने जूते के फीते पकड़कर खुद को उठाने की कोशिश करे। यह नहीं हो सकता। छोड़ दो।
कृष्ण के सामने अर्जुन की एक ही योग्यता है कि वह छोड़ सका पूरा का पूरा। अगर आप भी छोड़ सकते हैं, तो जो अर्जुन को घटा, वह आपको भी घट जाएगा। नहीं छोड़ सकते हैं, तो बेहतर है फिर अर्जुन के रास्ते पर न चलें। फिर महावीर का रास्ता है, पतंजलि का रास्ता है, उस पर चलें। फिर चेष्टा करें, श्रम करें।
हम ऐसे बेईमान हैं कि हम दोनों के बीच समझौता खोज लेते हैं। चेष्टा भी नहीं छोड़ते, और चाहते हैं, मुफ्त में मिल भी जाए। कहते हैं, हम अपने को छोड़ेंगे भी नहीं, और वैसी ही घटना घट जाए, जैसी अर्जुन को घटी। पर अर्जुन को घटी इसलिए कि वह छोड़ सका।
आपको पता है, आप अगर जिंदा आदमी हों और तैरना नहीं जानते, तो नदी में डूबकर मर जाएंगे। अगर आपको नदी में फेंक दें और आप तैरना न जानते हों, तो आप डूबकर मर जाएंगे। लेकिन आपने एक बात कभी देखी, कि जब आप मर जाएंगे, तब आपकी लाश ऊपर तैरने लगेगी! उसको नदी न डुबा सकेगी!
बड़े मजे की बात है! जिंदा आदमी डूब मरा; मुर्दे को नदी नहीं डुबा पा रही है! मुर्दे की क्या खूबी है? मुर्दे की पात्रता क्या है? और आपकी क्या कमी थी? जिंदा थे, तब फंस मरे। और अब मरकर मजे से ऊपर तैर रहे हैं, और नदी अब कुछ भी नहीं कर सकती!
मुर्दे की एक ही पात्रता है कि अब उसने नदी पर अपने को छोड़ दिया। उसकी
और कोई पात्रता नहीं है। अब वह लड़ नहीं सकता, यही उसकी योग्यता है। आप लड़ रहे थे, वही आपकी अयोग्यता थी। नदी से जो लड़ेगा, वह डूबेगा।
जिसको हम तैरने वाला कहते हैं, वह क्या सीख लेता है, आपको पता है! तैरना कोई कला थोड़े ही है। वह यही सीख लेता है कि नदी में मुर्दा कैसे हुआ जाए, बस। तैरना कोई कला है? तैरने में करते क्या हैं आप? हाथ-पैर थोड़े तड़फड़ा लेते हैं। वह भी जो सिक्खड़ है, वह तड़फड़ाता है। जो जानता है, वह हाथ-पैर छोड़कर भी नदी पर तैर लेता है। वह मुर्दा होना सीख गया है। अब वह नदी से लड़ता नहीं है। वह नदी के खिलाफ कोई कोशिश नहीं करता। वह नदी को कहता है कि तू भी ठीक, मैं तेरे साथ राजी हूं! वह तैरने लगता है।
नदी में मुर्दे की भांति हो जाएं, तो आप अर्जुन हो जाएंगे। फिर कोई आपको डुबा न सकेगा। अर्जुन की योग्यता थी कि वह अपने को छोड़ सका। वही भक्त की योग्यता है।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि शायद मैं ठीक से समझ नहीं पाया। आप कहते हैं, प्रार्थना में मांगें मत; कोई वासना, आकांक्षा न करें। क्या आपका यह मतलब है कि प्रार्थना में कुछ मांगा जाए, तो वह पूरा नहीं होगा?

नहीं; मेरा यह मतलब नहीं है। वह तो पूरा हो जाएगा, प्रार्थना बेकार हो जाएगी। आपने सस्ते में प्रार्थना बेच दी। जिससे परमात्मा मिल सकता था, उससे आपने एक बेटा पा लिया। जिससे परमात्मा मिल सकता था, उससे आपने कोई नौकरी पा ली। आपने बहुत सस्ते में प्रार्थना बेच दी!
यह मेरा मतलब नहीं है कि प्रार्थना में आप मांगेंगे, तो पूरा नहीं होगा। पूरा हो जाएगा, यही खतरा है। क्योंकि तब आप प्रार्थना के साथ गलत

संबंध जोड़ लेंगे और व्यर्थ की चीजें मांगते चले जाएंगे। वह पूरा हो जाएगा। पूरा इसलिए नहीं हो जाएगा कि परमात्मा आपकी प्रार्थना पूरी करने आ रहा है। इसलिए भी नहीं। क्योंकि आपकी क्षुद्र प्रार्थनाओं का क्या मूल्य है!
प्रार्थना इसलिए पूरी हो जाती है कि प्रार्थना अगर आपने पूरे भाव से
की है, तो आप ही उसके पूरे करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। अगर आपने प्रार्थना पूरे भाव से की है, तो आपका मन सशक्त हो जाता है। अगर आपने प्रार्थना पूरे भाव से की है, तो आपके मन की शक्ति ही उस प्रार्थना के कार्य को पूरा करवा देती है।
कोई आपकी प्रार्थना में आ नहीं रहा है। आप अकेले ही हैं। वह मोनोलाग है, एकालाप है; उसमें कोई दूसरा उत्तर नहीं दे रहा है। लेकिन अगर आपने बलपूर्वक कोई प्रार्थना की है, तो उस प्रार्थना को बलपूर्वक करने में आप बलशाली हो गए। और वह जो बलशाली हो जाना है आपके मन का, वही सूक्ष्म शक्तियों को विकीर्णित कर देता है और घटना घट जाती है। अगर संदेह से की है, तो घटना नहीं घटती। क्योंकि संदेह अगर साथ मौजूद है, तो आप बलशाली हो ही नहीं पाते।
लेकिन प्रार्थना पूरा कर देगी। आप जो भी मांगेंगे, पूरा हो जाएगा।
यह मेरा मतलब नहीं था। मेरा मतलब यह था कि जब आप मांगते हैं, तब वह प्रार्थना नहीं रही, मांग ही हो गई।
प्रार्थना तो वह शुद्ध क्षण है, जब आपका और विराट का मिलन होता है।
वहां छोटी-छोटी मांगें बीच में खड़ी न करना। उन क्षुद्र बातों के कारण आड़ पड़ जाएगी। और छोटी-छोटी चीजें इतनी बड़ी आड़ बन जाती हैं, जिसका हिसाब नहीं है।
कभी ख्याल किया, आंख में एक छोटा-सा तिनका चला जाए, और सामने हिमालय भी खड़ा हो, तो फिर हिमालय भी दिखाई नहीं पड़ता; आंख बंद हो जाती है। एक छोटा-सा तिनका पूरे हिमालय को ढंक देता है; आंख ही बंद हो जाती है। छोटी-सी मांग आंख को बंद कर देती है। फिर परमात्मा सामने भी खड़ा हो, तो दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा के पास मांगते हुए मत जाना। इसका यह मतलब नहीं है कि आपके मन
की ताकत नहीं है। आपके मन की बड़ी ताकत है। और अगर आप पूरे भरोसे से कोई बात को तय कर लें, वह हो जाएगी। उसको कोई परमात्मा बीच में आपके पूरा करने नहीं आता। आप ही पूरा कर लेते हैं। इतने के लिए तो आप भी काफी परमात्मा हैं!
ये जो मन की क्षमताएं हैं--मन की क्षमताएं हैं, अगर आप कोई विचार बहुत गहरे में मन में ले लेते हैं, तो आपका मन उस विचार को पूरा करने में संलग्न हो जाता है। और आपके पास न मालूम कितनी सूक्ष्म शक्तियां हैं, जिनका आपको पता नहीं है, जिनका आपको ख्याल नहीं है।
समझें। आपको नौकरी नहीं मिल रही है। आप पच्चीस इंटरव्यू दे आए। और जहां भी जाते हैं, वहीं से खाली हाथ लौट आते हैं। कभी आपने सोचा कि जब आप इंटरव्यू देकर खाली हाथ लौटते हैं, तो उसमें इंटरव्यू लेने वाले का तो थोड़ा हाथ है ही, आपका भी काफी हाथ है। ज्यादा आपका ही हाथ है।
आप जिस ढंग से प्रवेश करते हैं उसके दफ्तर में। आपकी शक्ल-सूरत आपने जैसी बना रखी है, कुटी-पिटी, हारी हुई। भीतर से आप डरे हुए हैं और पहले ही सोच रहे हैं कि नौकरी तो मिलनी नहीं है। ये वाइब्रेशंस आप लेकर उसके दफ्तर में प्रवेश करते हैं। वह आपकी तरफ देखकर ही निगेटिव हो जाता है।
आप उसको निगेटिव कर रहे हैं। आप उसको नकार से भर देते हैं। आपको देखकर
ही उसके मन में आकर्षण पैदा नहीं होता कि खींच ले आपको पास या आपके पास खिंच जाए, ऐसा लगता है कि कब आदमी यह बाहर निकले। और जैसे ही आप उसके चेहरे पर देखते हैं कि इसको लग रहा है कि कब यह आदमी बाहर निकले, आप और कंप जाते हैं। आपको पक्का हो जाता है कि गई, यह नौकरी भी गई! यह आप ही कर रहे हैं। अगर आप प्रार्थना कर सकें किसी मंदिर में जाकर, चाहे वहां कोई देवता
हो या न हो, यह सवाल बड़ा नहीं है। असली हो देवता, नकली हो, यह भी सवाल नहीं है। अगर आप किसी मंदिर में जाकर प्रार्थना कर सकें पूरे भरोसे के साथ; यह प्रार्थना किसी देवता को नहीं बदलेगी, आपको बदल देगी। आप उस मंदिर से जब

लौटेंगे, अब भरोसा होगा। आत्मविश्वास होगा। पैरों में ताकत होगी। आंखों में रौनक होगी।
और जब आप दफ्तर में प्रवेश करेंगे किसी नौकरी के, तो आपके भीतर एक यस मूड होगा, एक हां का भाव होगा कि नौकरी मिलने वाली है, प्रार्थना पूरी होने वाली है। अब कोई रोक नहीं सकता; परमात्मा मेरे साथ है। यह जो आप भीतर प्रवेश कर रहे हैं, आपकी तरंगें अब दूसरी हैं, पाजिटिव हैं, विधायक हैं। जो भी आदमी आपको देखेगा, वह खिंचेगा, आकर्षित होगा। आप मैग्नेट बन गए। प्रार्थना ने किसी परमात्मा के विचार को नहीं बदला; प्रार्थना ने आपको बदल दिया।
और आपकी प्रार्थनाएं परमात्मा के विचार को कैसे बदल पाएंगी? इसका तो मतलब यही हुआ कि जब तक आपने प्रार्थना नहीं की थी, परमात्मा कुछ गलती में था! आपने सलाह दी, तब उनको अक्ल आई! अब तक नौकरी नहीं दिलवा रहे थे, अब नौकरी दिलवा रहे हैं।
या तो इसका यह मतलब होता है, या इसका यह मतलब होता है कि रिश्वत की तलाश में था परमात्मा! जब तक आप हाथ-पैर न जोड़ो, फूल-पत्ती न चढ़ाओ, नारियल न पटको, सिर न पटको उनके पैरों में, तब तक वे राजी न होंगे। आपकी स्तुति की खोज थी, खुशामद, कोई रिश्वत! तो यह तो ब्लैकमेलिंग है। आदमी को नौकरी दिलवाना है, तो पहले सिर पटकवाओ।
नहीं, न परमात्मा आपकी रिश्वत की तलाश में है, न आपकी स्तुति की, न आपकी प्रार्थना की। लेकिन जो आप कर रहे हैं, उससे आप बदल रहे हैं। आप दूसरे आदमी होकर प्रवेश कर रहे हैं।
यह जो आपका आकर्षण है पाजिटिव बिंदु का, विधायक बिंदु का, इसका परिणाम होगा। नौकरी मिल सकती है। और नौकरी मिल जाएगी, तो आपका एक भाव दृढ़ हो जाएगा कि प्रार्थना से मिली। अब आप और मजबूत हो जाएंगे। अब दुबारा किसी दूसरी जगह प्रार्थना करके जाएंगे, तो आपके पैरों की ताकत अलग होगी। आप हवा में उड़ेंगे। यह आत्मविश्वास काम करता है।
प्रार्थना आत्मविश्वास देती है। आत्मविश्वास आपकी शक्तियों को विधायक बना देता है। अविश्वास अपने पर, नकारात्मक बना देता है।
तो यह मैंने नहीं कहा कि प्रार्थना करेंगे, तो कोई मांग पूरी नहीं होगी। पूरी हो जाएगी, यही खतरा है। पूरी न होती, तो शायद आप कभी न कभी प्रार्थना में मांग बंद कर देते। वह पूरी हो जाती है, तो मांग आदमी जारी रखता है।
धन्यभागी हैं वे, जिनकी प्रार्थनाएं कभी पूरी नहीं होतीं। क्योंकि तब उनको समझ में आ जाएगा कि प्रार्थना में मांग व्यर्थ है। तो शायद किसी दिन वे उस सार्थक प्रार्थना को कर सकें, जिसमें मांग नहीं होती, सिर्फ भाव होता है।
ठीक से समझ लें, प्रार्थना मांग नहीं, दान है। अगर आप परमात्मा को अपने को देने गए हैं, तो प्रार्थना है; अगर उससे कुछ लेने गए हैं, तो प्रार्थना नहीं है।

अब हम सूत्र लें।
इस प्रकार के मेरे इस विकराल रूप को देखकर तेरे को व्याकुलता न होवे
और मूढ़भाव भी न होवे और भयरहित, प्रीतियुक्त मन वाला तू उस ही मेरे इस शंख, चक्र, गदा, पद्म सहित चतुर्भुज रूप को फिर देख।
कृष्ण ने कहा, मैं लौट आता हूं वापस साकार में, सगुण में, ताकि तुझे भय
न होवे, तेरे मन को राहत मिले, सांत्वना मिले। इसलिए मैं अपने उसी रूप में वापस लौट आता हूं, जिसकी तू मांग कर रहा है।
यहां एक बात समझ लेने जैसी जरूरी है कि विराट का और व्यक्ति का संबंध मां और बेटे का संबंध है। कहता हूं, मां और बेटे का; बाप और बेटे का नहीं-- सोचकर। पीछे आपसे बात करूंगा।
विराट और व्यक्ति के बीच जो संबंध है वह मां और बेटे का संबंध है।
क्योंकि हम विराट से उत्पन्न होते हैं। उसकी ही लहरें, उसकी ही तरंगें हम हैं। वही हममें खिला। वही हममें फूल-पत्ता बना। वही हमारा व्यक्तित्व है।

तो हमारे और विराट के बीच जो संबंध है, वह वही होगा जो एक मां और बेटे
के बीच है। क्योंकि मां के गर्भ में बेटा बड़ा होता है उसके अंग की भांति, उसके शरीर की भांति। कुछ भेद नहीं होता। मां मरेगी, तो उसका बेटा मर जाएगा। और बेटा भीतर मर जाए, तो मां की मौत घट सकती है। दोनों एक हैं। एक से ही जुड़े हैं। बेटा अपनी सांस भी नहीं लेता; मां से ही जीता है। मां का ही प्राण उसका प्राण है। मां के साथ एक साथ एक है। जैसे लहर सागर के साथ एक है।
फिर यह बेटा पैदा होता है। तो जैसे मां का ही एक हिस्सा बाहर गया, जैसे मां का ही एक अंग अनंत की यात्रा पर निकला। यह कहीं भी रहे, कितना ही दूर रहे, मां से बहुत सूक्ष्म तंतुओं से जुड़ा रहता है।
अगर सच में ही मां और बेटे की घटना घटी हो... । सच में इसलिए कहता हूं कि सभी के भीतर नहीं भी घटती। कुछ माताएं केवल जननी होती हैं, माताएं नहीं। कोई बहुत भाव से जन्म नहीं देतीं। एक जबरदस्ती थी, एक बोझ था, एक काम था, निपटा दिया। इन माताओं का बस चलेगा, तो आज नहीं कल, जैसा आज वे बच्चे के पैदा होने के बाद नर्स को पालने के लिए रख लेती हैं, आज नहीं कल वे किसी नर्स को गर्भ के लिए भी रख लेंगी! और पश्चिम में उपाय हो गए हैं अब कि आपका बेटा किसी दूसरे के गर्भ में बड़ा हो सकता है। तो जो सुविधा-संपन्न हैं, वे अपने गर्भ में बड़ा नहीं करेंगी, वे किसी और के गर्भ में बड़ा कर लेंगी।
मां का मतलब तो यह है कि इस बेटे में मैं जन्मी, इस बेटे में मेरा जीवन आगे फैला। जैसे वृक्ष की एक शाखा दूर आकाश में निकल जाए, बस ठीक मेरी एक शाखा आगे गई।
जीवन इतना इकट्ठा मालूम पड़े जिस मां को भी, उसके और उसके बेटे के बीच हजारों मील के बीच भी संबंध होता है। इस पर बड़ा काम हुआ है। और अगर बेटा बीमार पड़ जाए, तो मां बेचैन हो जाती है। हजारों मील के फासले पर! अगर बेटा मर जाए, तो मां को तत्क्षण आघात पहुंचता है।
अभी रूस के कुछ वैज्ञानिक पशुओं के साथ प्रयोग कर रहे थे, तो बहुत चकित हुए। और पता चला कि पशुओं में मातृत्व शायद ज्यादा है मनुष्यों की बजाय! खरगोश पर वे प्रयोग कर रहे थे। तो खरगोश के बच्चों को रखा गया ऊपर और उनकी मां को वे ले गए नीचे समुद्र में एक पनडुब्बी में। और उन्होंने बच्चों को ऊपर सताना शुरू किया, जब मां पनडुब्बी में नीचे थी। जैसे ही उन्होंने बच्चों को सताना शुरू किया, मां वहां बेचैन हो गई। उन्होंने सब यंत्र लगा रखे थे, ताकि उसकी बेचैनी नापी जा सके कि वह कितनी परेशान है। और जब उन्होंने बच्चों को मार डाला, तो उसकी परेशानी का कोई अंत नहीं था, वह बेहोश हो गई परेशानी में।
यह प्रयोग कोई सौ बार किया। और हर बार अनुभव हुआ कि वह खरगोश और उसकी मां के बीच समय और स्थान का कोई फासला नहीं है। उनके भीतर कुछ अंतरंग वार्ता चल रही है। निरंतर कोई अंतरंग संबंध चल रहा है। कोई ध्वनि-तरंगें उन दोनों को जोड़े हुए हैं।
तो मां और बेटे के बीच जैसा संबंध है, उससे भी गहन-- उदाहरण के लिए कह रहा हूं मां और बेटे का--अस्तित्व और आपके बीच संबंध है। आप अस्तित्व के ही हिस्से हैं। अस्तित्व ही आपमें फैल गया है और दूर तक। आप अस्तित्व हैं। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि अस्तित्व आपको दुख नहीं देना चाहता। अस्तित्व आपको भयभीत भी नहीं करना चाहता। क्यों करना चाहेगा? मां बेटे को क्यों दुख देना चाहेगी? अस्तित्व आपको परेशान नहीं करना चाहता। और अगर आप परेशान हैं, तो वह आप अपने ही कारण होंगे। अगर भयभीत हैं, तो अपने ही कारण होंगे। अगर दुखी हैं, तो अपने ही कारण होंगे। अस्तित्व आपको दुखी नहीं करना चाहता।
जीवन तो आपको पूरे आनंद का मौका, सुविधा, अवसर, सामर्थ्य, सब देता है।
आप ही कुछ गड़बड़ कर लेते हैं। आप ही बीच में खड़े हो जाते हैं और अस्तित्व और अपने बीच बाधा बन जाते हैं।
यह जो कृष्ण का कहना है कि मैं वापस लौट आता हूं। यह इसका सूचक है कि अस्तित्व से आप जो भी गहन भाव से प्रार्थना करेंगे, अस्तित्व से जो भी गहन

भाव से आप कहेंगे, प्रेमपूर्वक अस्तित्व से जो भी आप निवेदन करेंगे, अस्तित्व बहरा नहीं है, अस्तित्व हृदयहीन नहीं है।
यही विज्ञान और धर्म की समझ का भेद है। विज्ञान कहता है, अस्तित्व है हृदयहीन, हार्टलेस। कुछ भी करो, अस्तित्व तुम्हारी सुनने वाला नहीं है। कुछ भी करो, अस्तित्व के पास कान नहीं हैं कि तुम्हारी सुने। कुछ भी करो, अस्तित्व को पता भी नहीं चलेगा। यह विज्ञान की दृष्टि है। अस्तित्व है गहन उपेक्षा में। तुम क्या हो, हो या नहीं हो, कोई प्रयोजन नहीं है।
धर्म कहता है, यह असंभव है। अगर हम अस्तित्व के ही हिस्से हैं, तो यह असंभव है कि अस्तित्व हमारे प्रति इतना उपेक्षा से भरा हो। अस्तित्व हमारे प्रति किसी गहरे लगाव में न हो, यह नहीं माना जा सकता, क्योंकि हम अस्तित्व से पैदा हुए हैं। अगर हम अस्तित्व से ही पैदा हुए हैं और उसी में लीन हो जाएंगे, तो हम उसी का खेल हैं। तो अस्तित्व प्रतिपल हमारे प्रति सजग है, और अस्तित्व हृदयपूर्ण है।
वह जो मुसलमान अपनी मस्जिद के मीनार पर खड़े होकर अजान दे रहा है, कबीर
ने उसकी खूब मजाक की है। वह मजाक एक अर्थ में सही और एक अर्थ में बिल्कुल गलत है। कबीर ने कहा है कि क्या तेरा खुदा बहरा हो गया है, जो तू इतने जोर से चिल्ला रहा है! यह बात सच है। इतने जोर से चिल्लाने की कोई जरूरत भी नहीं है। मौन में भी कहा जा सकता है, तो भी वह सुन लेगा। यह मतलब है कबीर का।
लेकिन यह जो जोर से चिल्ला रहा है, इसकी भी एक सचाई है। यह असल में यह
कह रहा है कि मैं तो बहुत कमजोर हूं, मेरी आवाज तुझ तक पहुंचे न पहुंचे, तो अपनी पूरी ताकत लगाकर चिल्ला रहा हूं। और यह भरोसा है मेरा कि तू बहरा नहीं है, सुन ही लेगा। जोर से इसलिए नहीं चिल्ला रहा हूं कि तू बहरा है, जोर से इसलिए चिल्ला रहा हूं कि मैं कमजोर हूं।
तो कबीर की बात एक अर्थ में ठीक है, खुदा बहरा नहीं है। लेकिन दूसरी बात में गलत है। यह जो अजान देने वाला है, यह कमजोर है। यह सिर्फ अपनी कमजोरी जाहिर कर रहा है। यह कह रहा है, मैं असहाय हूं।
बच्चा देखता है कि मां नहीं है पास, तो जोर से चिल्लाने लगता है, रोने लगता है। इसलिए नहीं कि मां बहरी है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि बच्चा कमजोर है। उसकी आवाज का उसे खुद ही भरोसा नहीं है। इसलिए जोर से चिल्ला रहा है। यह जो सूत्र है, कृष्ण कहते हैं, मैं वापस लौट आता हूं, यह इस बात की खबर है कि अस्तित्व वैसा ही हो जाएगा, जैसी आपकी गहरी-गहरी मौन प्रार्थना होगी। जैसा गहरा भाव होगा, अस्तित्व वैसा ही राजी हो जाएगा।
इसके बड़े इंप्लीकेशंस हैं, इसकी बड़ी रहस्यपूर्ण उपपत्तियां हैं।
इसका मतलब यह हुआ कि आप जो भी कर रहे हैं, वह भी अस्तित्व ने रूप ले लिया है आपकी वासनाओं के कारण। आपने मांगी थी एक सुंदर स्त्री, वह आपको मिल गई।
आपने मांगा था एक मकान, वह घटित हो गया। आपने चाहा था एक सुंदर शरीर, स्वस्थ शरीर, वह हो गया।
आप कहेंगे, नहीं होता। मांगी थी सुंदर स्त्री, मिल गई कुरूप। मांगा था सुंदर-स्वस्थ शरीर, मिल गई बीमारियों वाली देह।
लेकिन उसमें भी आप ख्याल करें कि उसमें भी आपकी ही मांग रही होगी। आपको जो भी मिल गया है, उसमें कहीं न कहीं आपकी मांग रही होगी। आपकी मांगें बड़ी कंट्राडिक्टरी हैं, विरोधाभासी हैं। इसलिए अस्तित्व भी बड़ी दिक्कत में होता है। क्योंकि आप एक तरफ से जो मांगते हैं, दूसरी तरफ से खुद ही गलत कर लेते हैं।
अभी एक लड़की मेरे पास आई और उसने कहा कि मुझे पति ऐसा चाहिए, शेर जैसा। सिंह हो। दबंग हो। लेकिन सदा मेरी माने! अब मुश्किल हो गई। अब इनको एक ऐसा पति मिलेगा जो देखने में शेर हो और भीतर से बिल्कुल भेड़-बकरी हो। तब इसको तकलीफ होगी। इसकी मांगें विरोधी हैं। जो दबंग होगा, वह तुझसे क्यों दबेगा? वह सबसे पहले तुझी को दबाएगा। सबसे निकट तेरे को ही पाएगा।
अब इस स्त्री की जो मांग है, विरोधाभासी है, कंट्राडिक्टरी है।
हालांकि उसे ख्याल भी नहीं है।

पुरुष ऐसी स्त्री चाहता है, जो बहुत सुंदर हो। ऐसी स्त्री जरूर चाहता है, जो बहुत सुंदर हो; लेकिन साथ में वह ऐसी स्त्री भी चाहता है, जो बिल्कुल पक्की पतिव्रता हो। साथ में वह यह भी चाहता है कि किसी आदमी की नजर मेरी स्त्री की तरफ बुरी न पड़े। अब वह सब उपद्रव की बातें चाह रहा है। बहुत सुंदर स्त्री होगी, दूसरों की नजर भी पड़ेगी। और ध्यान रहे, बहुत सुंदर स्त्री भी बहुत सुंदर पुरुष की तलाश कर रही है, आपकी तलाश नहीं कर रही है। तो पतिव्रता होना जरा मुश्किल है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बहुत देर तक अविवाहित रहा। लोग उससे पूछते कि मुल्ला विवाह क्यों नहीं कर लेते? वह कहता कि मैं एक पूर्ण स्त्री की तलाश कर रहा हूं, सर्वांग सुंदर, सती, सीता-सावित्री, ऐसी कुछ। लोगों ने पूछा कि तुम बूढ़े हुए जा रहे हो, तलाश कब पूरी होगी? क्या इतने दिन से खोजते-खोजते तुम्हें कोई पूर्ण स्त्री नहीं मिली? उसने कहा, एक दफे मिली, लेकिन मुसीबत, वह भी किसी पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही थी! मिली, बाकी मैं उसके योग्य नहीं था।
हमारी वासनाएं हैं विरोधी। हम जो मांग करते हैं, वे एक-दूसरे को काट देती हैं। अस्तित्व हमारी सब मांगें पूरी कर देता है, यह जानकर आप हैरान होंगे। लेकिन आपको पता ही नहीं, आप क्या मांगते हैं। कल जो मांगा था, आज इनकार कर देते हैं। आज जो मांगते हैं, सांझ इनकार कर देते हैं। आपको पता ही नहीं कि आपने इतनी मांगें अस्तित्व के सामने रख दी हैं कि अगर वह सब पूरी करे, तो आप पागल होंगे ही, कोई और उपाय नहीं है। और उसने सब पूरी कर दी हैं। जिन्होंने धर्म में गहन प्रवेश किया है, वे जानते हैं कि आदमी की जो
भी मांगें हैं, वे सब पूरी हो जाती हैं। यही आदमी की मुसीबत है।
ये कृष्ण राजी हो गए, यह इस बात की खबर है कि अस्तित्व राजी है, जरा सोच-समझकर उससे कुछ मांगना। बेहतर हो मत मांगना; उसी पर छोड़ देना कि जो तेरी मर्जी। तब आपकी जिंदगी में कष्ट नहीं होगा, क्योंकि तब उसकी मर्जी में कोई विरोध नहीं है। समर्पण का यही अर्थ है कि तू जो ठीक समझे, वह करना। हम में से जो बड़े से बड़े लोग हैं, वे भी इतनी हिम्मत नहीं कर पाते।
जीसस सूली पर लटके हैं। आखिरी क्षण में जब फांसी लगने लगी और हाथ-पैर में खीले ठोंक दिए गए, तो जीसस के मुंह से निकला, हे परमात्मा! यह तू मुझे क्या दिखा रहा है?
शिकायत का स्वर था। क्या दिखा रहा है? इसका मतलब साफ था कि यह मैंने सोचा नहीं था कि तू मुझे यह दिखाएगा! यह भी मैंने नहीं सोचा था कि मुझे और तू यह दिखाएगा! यह भी कभी सोचा नहीं था कि तेरे भक्त को, तेरे बेटे को, इकलौते बेटे को, और ऐसी तकलीफ झेलनी पड़ेगी! इसमें सब बात आ गई। इसमें पूरी इच्छा का जाल आ गया।
लेकिन जीसस बहुत सजग आदमी थे, तत्क्षण उन्हें समझ भी आ गई कि भूल हो गई। इस वाक्य को बोलते ही, कि यह तू मुझे क्या दिखा रहा है, समझ आ गई कि भूल हो गई। दूसरा वाक्य उन्होंने कहा, नहीं-नहीं। तेरी मर्जी पूरी हो। तू जो कर रहा, है, वही ठीक है।
इस क्षण में ही जीसस क्राइस्ट हो गए। इस एक वाक्य के फासले में दूसरे आदमी हो गए। एक क्षण पहले जब जीसस ने कहा, यह तू मुझे क्या दिखा रहा है! यह मनुष्य की आवाज है, जिसमें मनुष्य की वासनाएं ईश्वर के अनुकूल-प्रतिकूल खड़ी हैं। जिसमें मनुष्य कह रहा है कि आखिरी मेरी इच्छा पूरी होनी चाहिए। तू भी मेरी इच्छा पूरी कर, तो ही मैं प्रसन्न रहूंगा। मेरी प्रसन्नता में शर्त है, जो मैं चाहता हूं, वह हो। और आदमी को पता नहीं कि वह जो चाहता है, वह अगर पूरा हो जाए, तो वह कभी प्रसन्न नहीं होता। मगर सोचता है।
एक क्षण में जीसस ने कहा कि दाइ विल बी डन--तेरी मर्जी पूरी हो। मैं छोड़ता हूं। भूल हो गई। क्षमा कर दे। आदमी विलीन हो गया। ईश्वर, भगवत्पुरुष प्रकट हो गया। इसी क्षण जीसस, मरियम का बेटा, ईश्वर का बेटा क्राइस्ट हो गया।
फर्क हो गया। ये दो व्यक्तित्व हैं अलग-अलग। जीसस मर गया, सूली के पहले। सूली जीसस को नहीं लगी। वह तो जीसस इसी वक्त बंद हो गया, जब उसने कहा कि तेरी मर्जी। सूली क्राइस्ट को लगी। इसलिए फिर सूली सूली नहीं थी। फिर

सूली भी आनंद था। फिर कोई फर्क न रहा। फिर सूली भी उससे मिलन का द्वार है।
फिर वह चाहता है सूली, तो यही सेज है उसकी। फिर इसमें कोई फर्क नहीं है।
कृष्ण ने कहा कि मैं पूरा किए देता हूं। तू जैसा चाहता है, वैसा मैं वापस हुआ जाता हूं।
वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखाया। और फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत हुए अर्जुन को धीरज दिया।
जैसा मैं अभी कह रहा था कि जीसस और क्राइस्ट का फर्क, ऐसा संजय और व्यास ने बड़ा फर्क कर दिया।
कहा, वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति दयावान होकर अपने चतुर्भुज रूप को ग्रहण किया और फिर महात्मा कृष्ण ने... ।
फिर भगवान कृष्ण नहीं कहा संजय ने। क्योंकि जैसे ही वे सीमा में आ गए,
वे जैसे ही रूप में बंध गए, जैसे ही उनकी चारों भुजाएं प्रकट हो गईं, और जैसे ही अर्जुन के मनोनुकूल वे खड़े हो गए, भगवान शब्द छोड़ दिया। तत्क्षण कहा, महात्मा कृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत हुए अर्जुन को धीरज दिया।
महात्मा और परमात्मा में इतना ही फर्क है। परमात्मा आपकी मर्जी के अनुकूल नहीं चल सकता। आपको उसकी मर्जी के अनुकूल चलना होगा। महात्मा आपके धीरज और सांत्वना के लिए बहुत बार आपकी मर्जी के अनुकूल भी चलता है। वह दया से भरा है।
मैं पढ़ रहा था, एक यहूदी विचारक है, अब्राहिम हैसिल। उसने एक बहुत पुरानी यहूदी किताब से उल्लेख किया है। बड़ा मीठा वचन है। हिब्रू में है। उसका अंग्रेजी अनुवाद उसने किया है। वह बड़ा अजीब मालूम पड़ता है। वाक्य यह है, गॉड इ.ज नाट योर अंकल; ही इ.ज नाट नाइस, ही इ.ज नाट गुड; गॉड इ.ज एन अर्थक्वेक। ईश्वर आपके चाचा नहीं हैं; न भले हैं, न दयावान हैं; ईश्वर एक भूकंप है।
ईश्वर तो भूकंप है। इसलिए जो मरने को तैयार हैं, वही उसमें प्रवेश कर पाते हैं। लेकिन अगर हमारी मांग सीमा की है, तो महात्मा प्रकट होते हैं। महात्मा ईश्वर का वह रूप है, जो हमारे अनुकूल है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। महात्मा परमात्मा का वह रूप है, जो हमारे अनुकूल है।
इसलिए कृष्ण को हमने पूर्ण अवतार कहा, क्योंकि बहुत जगह वह हमारे अनुकूल नहीं हैं। राम को हमने आंशिक अवतार कहा, क्योंकि वे बिल्कुल हमारे अनुकूल हैं। राम में भूल-चूक खोजनी मुश्किल है। कृष्ण में भूल-चूक काफी हैं। भूल-चूक इसलिए नहीं कि उनमें भूल-चूक हैं। भूल-चूक इसलिए हैं कि हमारे साथ तालमेल नहीं खाता।
राम और सीता का संबंध समझ में आता है। कृष्ण और उनकी गोपियों का संबंध सज्जन से सज्जन आदमी को जरा चिंता में डाल देता है कि यह जरा ठीक नहीं है। जरा ऐसा लगता है कि यह बात न ही उठाओ। कृष्ण में कुछ है, जो हमें डराता भी है।
इसलिए हम उनको पूर्ण अवतार कहे हैं, क्योंकि हम उनसे पूरे राजी नहीं
हो पाते। वे पूर्ण हैं। हम इतने अधूरे हैं कि हम उनके आधे हिस्से से ही राजी हो सकते हैं। राम को हमने अधूरा अवतार कहा है, क्योंकि हम उनसे पूरे राजी हो जाते हैं। हम पूरे राजी हो जाते हैं, वे हमारे इतने अनुकूल हैं कि पूरे नहीं हो सकते, बात जाहिर है। हमसे इतना उनका मेल है कि वे अधूरे ही होंगे। वे आंशिक अवतार होंगे।
इसलिए व्यास कहते हैं, महात्मा कृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुन को धीरज दिया।
हे जनार्दन, आपके इस अतिशांत मनुष्य रूप को देखकर अब मैं शांत-चित्त हुआ अपने स्वभाव को प्राप्त हो गया हूं।
अर्जुन ने कहा कि यह देखकर आपका सीमा में वापस लौट आना, मैं अपने स्वभाव को उपलब्ध हो गया हूं।
यह स्वभाव क्या है अर्जुन का?
मनुष्य का स्वभाव सशर्त है। वह कहता है, ऐसे होओ, ऐसे होओगे तो ही।

सुना है मैंने कि तुलसीदास एक बार... । पता नहीं कहां तक सच है। लेकिन कहानी है कि तुलसीदास एक बार कृष्ण के मंदिर में गए वृंदावन। तो वे तो थे राम के भक्त। और वे तो धनुर्धारी राम को ही सिर झुकाते थे। वहां देखा कि कृष्ण बांसुरी लिए खड़े हैं। तो कहा गया है कि तुलसीदास ने कहा कि ऐसे नहीं, जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे, तब तक मैं न झुकूंगा।
यह एक अर्थ में बड़ी अजीब-सी बात है। इसका मतलब हुआ कि आदमी भगवान पर भी शर्तें लगाता है कि ऐसे हो जाओ, तो ही! मेरे अनुकूल हो जाओ, तो ही! इसका तो मतलब यह हुआ कि भक्त भगवान को भी बांधता है। सोचता है, भगवान मुझे मुक्त करें, लेकिन चेष्टा यह करता है कि मैं भी भगवान को बांध लूं।
लेकिन इसका एक और अर्थ भी है। और वह यह कि मैं हूं मनुष्य। मेरी प्रीति-अप्रीति है। मेरे लगाव-अलगाव हैं। मैं तुम्हें उसी रूप में देखना चाहता हूं, जो मेरे अनुकूल हो। और इसलिए देखना चाहता हूं उस रूप में, ताकि मैं जैसा हूं, वैसा का वैसा तुम्हारे चरणों में झुक सकूं। मेरा जैसा स्वभाव है, उसका ध्यान रखो। वह यह नहीं कह रहे हैं कि तुम्हारा बांसुरी लिए हुए रूप जो है, वह भगवान का नहीं है। होगा। मेरे लिए नहीं है। मेरी पात्रता नहीं है उस रूप को स्वीकार करने की। तुम तो धनुष-बाण लेकर राम हो जाओ, तो मैं तुम्हारे चरणों में झुक जाऊं।
कथा बड़ी मीठी है। और कथा यह है कि मूर्ति बदल गई, और कृष्ण की मूर्ति
की जगह राम धनुष-बाण लिए प्रकट हुए, तो तुलसीदास झुके।
अर्जुन कह रहा है, अब मैं अपने स्वभाव में आ गया, तुम्हें वापस वही देखकर, जो तुम थे।
अर्जुन अपने स्वभाव के बाहर चला गया था? एक अर्थ में चला गया था। और एक अर्थ में अपने गहरे स्वभाव में चला गया था। इस अर्थ में बाहर चला गया था कि मनुष्य की बुद्धि के जो परे है, वह उसके दर्शन में आ गया और वह भयभीत हो गया। उसकी सारी की सारी मनुष्यता डांवाडोल हो गई। मनुष्य की पकड़ में न आ सके, ऐसा उसे दिख गया। और एक अर्थ में वह अपने गहरे स्वभाव में चला गया था। लेकिन वह स्वभाव कास्मिक है, वह स्वभाव जागतिक है; वह मनुष्य का नहीं है। अर्जुन कह रहा है, मैं अपने स्वभाव में आ गया।
परमात्मा के साथ साधक और भक्त का यही फर्क है, यह ख्याल आखिरी ले लें।
साधक कहता है, तुम जैसे हो, वैसा ही मैं तुम्हें देखने आऊंगा; अपने को बदलूंगा। यह संकल्प का रास्ता है। वह कहता है, मैं अपने को बदलूंगा। अगर तुम ऐसे हो, तो मैं अपने को बदलूंगा। अपनी नई आंख पैदा करूंगा। और तुम जैसे हो, वैसा ही तुम्हें देखूंगा।
कृष्णमूर्ति का सारा जोर यही है कि उस पर कोई धारणा लेकर मत जाना। अपनी सब धारणा छोड़ देना। सत्य जैसा है, उसे तुम वैसे ही देखने को राजी होना। उसके लिए खुद को जितना तपाना पड़े, गलाना पड़े, मिटाना पड़े, खुद की मूर्च्छा जितनी तोड़नी पड़े, तोड़ना। लेकिन खुद को निखारना, उस पर कोई आग्रह मत करना कि तू ऐसा हो जा।
साधक संकल्प से अपने को बदलता है। और एक दिन, जिस दिन शून्य हो जाता है, शांत, शुद्ध, उस दिन सत्य को देख लेता है।
भक्त! भक्त कहता है कि मैं जैसा हूं, हूं। मैं अपने को बदलने वाला नहीं, तुम्हीं मुझे बदलना। और जब तक मैं ऐसा हूं, तब तक मेरी शर्त है कि तुम ऐसे प्रकट होना। भक्त यह कहता है कि मेरा आग्रह है कि जब तक मैं नहीं बदला हूं, और मैं अपने को क्या बदल सकूंगा, तुम्हीं बदल सकोगे। और तुम भी मुझे तभी बदल सकोगे, जब मेरा तुमसे नाता, तालमेल बन जाए। अभी मैं जैसा हूं, इससे ही संबंध बनाओ। तो तुम इस शक्ल में आ जाओ, इस रूप में खड़े हो जाओ। मैं तुम्हें कृष्ण की तरह, राम की तरह, क्राइस्ट की तरह चाहता हूं, ताकि मेरा संबंध बन जाए। संबंध बन जाए, तो फिर तुम मुझे बदल लेना।
यह बड़ी मजेदार बात है। भक्त यह कह रहा है कि मैं अपने को क्या बदलूंगा? कैसे बदलूंगा? मुझे कुछ भी तो पता नहीं है। और मेरी सामर्थ्य, शक्ति कितनी है? कि कैसे अपने को शुद्ध करूंगा? मैं तो अशुद्ध, जैसा भी हूं, यह हूं। तुम ऐसे ही मुझे स्वीकार कर लो। लेकिन इस अशुद्ध आदमी की धारणा है। तो तुम इस शक्ल में आ जाओ, ताकि मेरा संबंध जुड़ जाए। एक दफा संबंध जुड़ जाए और मैं

तुम्हारी नाव में सवार हो जाऊं, फिर तुम जहां मुझे ले जाओ, ले जाना। लेकिन अभी मेरी मर्जी की नाव बनकर आ जाओ।
दोनों ही तरह घटना घटती है। जो अपनी सब धारणाओं को गिरा देता है, उसके लिए कोई नाव की जरूरत नहीं रह जाती। उसे उस पार जाने की भी जरूरत नहीं रह जाती, वह इसी पार मुक्त हो जाता है।
लेकिन दुरूह है मार्ग। एक-एक इंच अपने को बदलना है। जिसको बदलना है, उसके ही द्वारा बदलाहट लानी है, इसलिए बड़ा कठिन है। जैसे बीमार अपना ही इलाज कर रहा है।
डाक्टर भी बीमार हो जाए, तो दूसरे डाक्टर के पास जाता है, क्योंकि खुद
का इलाज करने में घबड़ाहट लगती है। दूसरे के इलाज में तो एक दूरी होती है, तटस्थता होती है, निरीक्षण, डायग्नोसिस आसान होती है। खुद का ही इलाज करना हो, तो बड़ा मुश्किल हो जाता है। कोई बड़े से बड़ा सर्जन भी खुद का आपरेशन न करेगा। हाथ कंप जाएंगे। खुद का तो दूर है, बड़ा सर्जन अपनी पत्नी का भी आपरेशन करने को राजी नहीं होता। अगर पत्नी से झगड़ा हो, तो बात दूसरी है। थोड़ा लगाव हो, तो राजी नहीं होगा। अगर मार ही डालना चाहता हो, तो बात अलग है। नहीं तो डरेगा, क्योंकि हाथ कंपने लगेगा। राग बीच में आ जाता है।
और अपने को ही बदलना है, तो अपने से तो बहुत राग है। इसलिए भक्त कहता है, यह अपने बस की बात नहीं कि हम अपने को बदल लें। हम तो जैसे हैं, वैसे हैं। हम अपने को छोड़ सकते हैं तेरे चरणों में, बुरे-भले, चोर-बेईमान, जैसे भी हैं, छोड़ सकते हैं। तू ही बदल लेना।
यह भी संभव होता है। और इन दो में साफ होना जरूरी है, नहीं तो आदमी दोनों में डोलता रहता है। दोनों के बीच कोई मार्ग नहीं है। या तो स्पष्ट समझ लेना कि मुझे खुद ही बदलना है, तब फिर किसी परमात्मा को, किसी गुरु को, किसी को बीच में लाने की जरूरत नहीं है। फिर कितनी ही हो लंबी यात्रा और कितने ही अनंत युग लगें, लड़ते रहना। वह भी बुरा नहीं है। वह भी मनुष्य की गरिमा के अनुकूल है।
लेकिन अगर लगता हो कि यह हमसे न हो सकेगा, यह लड़ाई लंबी है, और हम चुक जाएंगे, टूट जाएंगे, तो फिर व्यर्थ लड़ना मत। फिर समर्पण कर देना। सीधा इसी क्षण छोड़ देना। यह भी मनुष्य की गरिमा के अनुकूल है। क्योंकि वही समर्पण भी कर पाता है, जो कम से कम इतना तो अपना मालिक है कि छोड़ सके। आप वही छोड़ सकते हैं, जिसके आप मालिक हैं।
ये दो हैं रास्ते, समझौता कोई भी नहीं है। इनमें से जो ठीक-ठीक चुन लेता है अपने अनुकूल रास्ता, वह पहुंच जाता है; व्यर्थ भटकाव से बच जाता है।
आज इतना ही।
रुकें पांच मिनट, कोई उठे न। कीर्तन में सम्मिलित हों। और बैठे ही न रहें। दर्शक न रहें। सम्मिलित हो जाएं। भागीदार हो जाएं। ताली तो पीट ही सकते हैं। कड़ी तो दोहरा ही सकते हैं।

गीता दर्शन, भाग पांच
गीता दर्शन अध्याय 11
बारहवां प्रवचन

आंतरिक सौंदर्य

मांग और प्रार्थना
श्रीभगवानुवाच
सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः।। 52।।
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।। 53।।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।। 54।।
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।। 55।।
इस प्रकार अर्जुन के वचन को सुनकर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, मेरा यह चतुर्भुज रूप देखने को अति दुर्लभ है कि जिसको तुमने देखा है, क्योंकि देवता भी सदा इस रूप के दर्शन करने की इच्छा वाले हैं।
और हे अर्जुन, न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं देखा जाने को शक्य हूं कि जैसे मेरे को तुमने देखा है।
परंतु हे श्रेष्ठ तप वाले अर्जुन, अनन्य भक्ति करके तो इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए और तत्व से जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए अर्थात एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी शक्य हूं।
हे अर्जुन, जो पुरुष केवल मेरे ही लिए सब कुछ मेरा समझता हुआ संपूर्ण कर्तव्य-कर्मों को करने वाला है और मेरे परायण है अर्थात मेरे को परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्ति के लिए तत्पर है तथा मेरा भक्त है और आसक्तिरहित है अर्थात स्त्री, पुत्र और धनादि संपूर्ण सांसारिक पदार्थों में स्नेहरहित है और संपूर्ण भूत-प्राणियों में वैर-भाव से रहित है, ऐसा वह अनन्य भक्ति वाला पुरुष मेरे को ही प्राप्त होता है

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि सृष्टि और स्रष्टा यदि एक हैं और अगर
हम स्वयं भगवान ही हैं, तो फिर भगवान को पाने या खोजने की बात ही असंगत है।

निश्चित ही असंगत है। इससे ज्यादा बड़ी भूल की कोई और बात नहीं कि कोई भगवान को खोजे। क्योंकि खोजा केवल उसी को जा सकता है, जिसे हमने खो दिया हो। जिसे हमने खोया ही नहीं है, उसे खोजने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जब यह पता चल जाए कि मैं भगवान हूं, तभी खोज असंगत है, उसके पहले असंगत नहीं है। उसके पहले तो खोज करनी ही पड़ेगी।
खोज से भगवान न मिलेगा, खोज से सिर्फ यही पता चल जाएगा कि जिसे मैं खोज रहा हूं वह कहीं भी नहीं है, बल्कि जो खोज रहा है वहीं है। खोज की व्यर्थता भगवान पर ले आती है, खोज की सार्थकता नहीं।
इसे थोड़ा समझना कठिन होगा, लेकिन समझने की कोशिश करें।
यहां खोजने वाला ही वह है जिसकी खोज चल रही है। जिसे आप खोज रहे हैं वह भीतर छिपा है। इसलिए जब तक आप खोज करते रहेंगे, तब तक उसे न पा सकेंगे। लेकिन कोई सोचे कि बिना खोज किए, ऐसे जैसे हैं ऐसे ही रह जाएं, तो उसे पा लेंगे, वह भी न पा सकेगा। क्योंकि अगर बिना खोज किए आप पा सकते होते, तो आपने पा ही लिया होता। बिना खोज किए मिलता नहीं, खोजने से भी नहीं मिलता। जब सारी खोज समाप्त हो जाती है और खोजने वाला चुक जाता है, कुछ खोजने को नहीं बचता, उस क्षण यह घटना घटती है।

कबीर ने कहा है, खोजत-खोजत हे सखी रह्या कबीर हिराइ। खोजते-खोजते वह
तो नहीं मिला, लेकिन खोजने वाला धीरे-धीरे खो गया। और जब खोजने वाला खो गया, तो पता चला कि जिसे हम खोजते थे वही भीतर मौजूद है।
हम जब परमात्मा को भी खोजते हैं, तो ऐसे ही जैसे हम दूसरी चीजों को खोजते हैं। कोई धन को खोजता है, कोई यश को खोजता है, कोई पद को खोजता है। आंखें बाहर खोजती हैं--धन को, पद को, यश को, ठीक। हम भगवान को भी बाहर खोजना शुरू कर देते हैं। हमारी खोज की आदत बाहर खोजने की है। उसे भी हम बाहर खोजते हैं। बस वहीं भूल हो जाती है। वह भीतर है। वह खोजने वाले की अंतरात्मा है।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं आपसे कह रहा हूं कि खोजें मत। आप खोज
ही कहां रहे हैं जो आपसे कहूं कि खोजें मत। जो खोज रहा हो, खोजकर थक गया हो, उससे कहा जा सकता है, रुक जाओ। जो खोजने ही न निकला हो, जो थका ही न हो, जिसने खोज की कोई चेष्टा ही न की हो, उससे यह कहना कि चेष्टा छोड़ दो, नासमझी है। चेष्टा छोड़ने के लिए भी चेष्टा तो होनी ही चाहिए।
एक मजे की बात इससे मुझे स्मरण आती है। एक मित्र ने पूछी भी है, उपयोगी होगी। कृष्ण भी कहते हैं कि वेद में मैं नहीं मिलूंगा, शास्त्र में नहीं मिलूंगा, यज्ञ में नहीं मिलूंगा, योग में, तप में नहीं मिलूंगा। लेकिन आपको पता है यह किन लोगों से कहा है उन्होंने? जो वेद में खोज रहे थे, यज्ञ में खोज रहे थे, तप में खोज रहे थे, योग में खोज रहे थे, उनसे कहा है। आपसे नहीं कहा है। आप तो खोज ही नहीं रहे हैं।
बुद्ध ने कहा है, शास्त्रों को छोड़ दो, तो ही सत्य मिलेगा। लेकिन यह उनसे कहा है जिनके पास शास्त्र थे। कृष्णमूर्ति भी लोगों से कह रहे हैं, शास्त्रों को छोड़ दो, सत्य मिलेगा। लेकिन वे उनसे कह रहे हैं जो शास्त्र को पकड़े ही नहीं हैं। आप छोड़िएगा खाक? जिसको पकड़ा ही नहीं उसको छोड़िएगा कैसे?
कृष्णमूर्ति को सुनने वाले लोग सोचते हैं कि तब तो ठीक। सत्य तो हमें मिला ही हुआ है, क्योंकि हमने शास्त्र को कभी पकड़ा ही नहीं। जिसने पकड़ा नहीं है वह छोड़ेगा कैसे? और सत्य मिलेगा छोड़ने से। पकड़ना उसका अनिवार्य हिस्सा है।
आपके पास जो है वही आप छोड़ सकते हैं। जो आपके पास नहीं है उसे कैसे छोड़िएगा? आपकी खोज होनी चाहिए। और जब आप खोज से थक जाएंगे; ऊब जाएंगे; परेशान हो जाएंगे; जब न खोजने को कोई रास्ता बचेगा, न खोजने की हिम्मत बचेगी; जब सब तरफ फ्रस्ट्रेटेड, सब तरफ उदास टूटे हुए आप गिर पड़ेंगे, उस गिर पड़ने में उसका मिलना होगा। क्योंकि जब बाहर खोजने को कुछ भी नहीं बचता, तभी आंखें भीतर की तरफ मुड़ती हैं। और जब बाहर चेतना को जाने के लिए कोई मार्ग नहीं रह जाता, तभी चेतना अंतर्गामी होती है।
एक गरीब आदमी से हम कहें कि तू धन का त्याग कर दे, एक भिखमंगे से हम कहें कि तू बादशाहत को लात मार दे। भिखमंगे सदा तैयार हैं बादशाहत को लात मारने को। लेकिन बादशाहत कहां है जिसको वे लात मार दें? धन कहां है जिसे वे छोड़ दें? और जिसके पास धन नहीं है, वह धन को कैसे छोड़ेगा? और जिसके पास बादशाहत नहीं है, वह बादशाहत कैसे छोड़ेगा? हम वही छोड़ सकते हैं जो हमारे पास है।
तो ध्यान रखें, जब मैं आपसे कहता हूं कि परमात्मा को खोजने की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि वह खोजने वाले में छिपा है, तो मैं यह उनसे कह रहा हूं जो खोज रहे हैं, उनसे नहीं कह रहा हूं जो खोज ही नहीं रहे हैं। उनसे तो मैं कहूंगा, खोजो। जहां भी तुम्हारी सामर्थ्य हो, वहां खोजो। मूर्ति में, शास्त्र में, तीर्थ में, जहां तुम खोज सको, खोजो। तुम्हारे मन को थोड़ा थकने दो। खोज व्यर्थ होने दो। तभी तुम भीतर मुड़ सकोगे। जिंदगी में छलांग नहीं होती, जिंदगी में एक क्रमिक गति होती है।
आप भी सुन लेते हैं कि शास्त्र में नहीं है, तो फिर क्या फायदा?

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि जब कृष्ण खुद ही कहते हैं कि शास्त्र में नहीं है, तो फिर यह गीता समझाने से क्या होगा? रामायण पढ़ने से क्या

होगा? जब खुद कृष्ण ही कहते हैं कि वेद में कुछ नहीं है, तो गीता में कैसे कुछ हो सकता है?

ठीक कहते हैं वे। वे मित्र ठीक पूछ रहे हैं कि अगर कृष्ण की ही बात हम मान लें, तो फिर गीता में भी क्या रखा है? लेकिन इतनी बात भी आपको पता चल जाए कि वेद में नहीं है, इतना भी गीता से पता चल जाए, तो बहुत पता चल गया। अगर शास्त्र पढ़ने से इतना भी पता चल जाए कि शास्त्र बेकार हैं, तो काफी पता चल गया। यह भी आपको अपने से कहां पता चलता है!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, कृष्णमूर्ति कहते हैं कि किसी की
मत मानो, अपना खोजो। मैं उन लोगों से पूछता हूं कि तुम कृष्णमूर्ति की मानकर चले आए हो। और कृष्णमूर्ति ने समझाया है कि किसी की मत मानो। और तुम मुझे कह रहे हो, कृष्णमूर्ति कहते हैं कि किसी की मत मानो, हम अब किसी की न मानेंगे। पर तुमने किसी की मान ली। कृष्णमूर्ति कहते हैं, गुरु से कुछ न मिलेगा। तुम कृष्णमूर्ति के पास किसलिए गए थे? और अगर इतना भी तुम्हें मिल गया, तो कृष्णमूर्ति इतने के लिए कम से कम तुम्हारे गुरु हो गए। और फिर अब तुम बार-बार क्यों जा रहे हो, जब कृष्णमूर्ति कहते हैं, गुरु से कुछ न मिलेगा।
तो वर्ष दर वर्ष कृष्णमूर्ति को सुनने वालों को देखें। चालीस साल से
वे ही शक्लें बार-बार वहां बैठी हुई दिखाई पड़ेंगी। ये क्या सुन रहे हैं अगर गुरु से कुछ भी न मिलेगा! तो कृष्णमूर्ति से कैसे मिलेगा! लेकिन अगर इतना भी मिल गया, तो भी कुछ कम नहीं है।
ध्यान रहे, जीवन बहुत विरोधाभासी है। गुरुओं ने सदा ही कहा है कि गुरुओं से नहीं मिलेगा। लेकिन यह खबर भी उनसे ही मिली है। शास्त्रों ने सदा कहा है कि शास्त्र में क्या रखा है! लेकिन यह पता भी शास्त्र से ही चला है। चेष्टा करने से ही पता चलेगा कि चेष्टा से नहीं मिलता है। और जब यह पता चलेगा, तो यह अनुभव और है।
दो तरह के लोग हैं। मैंने सुना है, एक बार ऐसा हुआ कि एक तीर्थ की यात्रा पर जाने वाले लोगों की भीड़ थी एक स्टेशन पर। सारे लोग जा रहे थे हरिद्वार। शायद अमृतसर का स्टेशन था। और एक आदमी कहने लगा कि मैं ट्रेन में तभी चढूंगा जब मुझे फिर उतरना न पड़े। और अगर उतरना ही है, तो चढ़ने का फायदा क्या।
वह आदमी ठीक तर्क की बात कह रहा था। वह कह रहा था, अगर इस ट्रेन में से उतरना ही है--बहुत भीड़-भड़क्का था और घुसना भी बहुत मुश्किल था--उस आदमी ने कहा कि अगर इसमें से उतरना ही है, तो इतनी दिक्कत चढ़ने की क्या करनी! हम तो उतरे ही हुए हैं। और अगर इतनी मुसीबत करके जान जोखिम में डालकर भीतर घुसना है, तो फिर एक बात पक्की कर ली जाए कि इसमें से उतरना तो नहीं पड़ेगा!
उसके मित्रों ने कहा कि बातचीत में समय मत गंवाओ। सीटी बजी जा रही है, ट्रेन जा रही है! उन्होंने जबरदस्ती खींचकर... । वह आदमी चिल्लाता ही रहा। वह ज्ञानी था! वह आदमी चिल्लाता ही रहा कि पहले यह तो पक्का पता चल जाए कि इससे उतरना तो नहीं पड़ेगा? इतनी मुश्किल से चढ़ रहे हैं। हाथ-पैर टूटे जा रहे हैं। हड्डियां खराब हुई जा रही हैं। तुम मुझे खींचे जा रहे हो। यह तो बताओ कि इससे उतरना तो नहीं पड़ेगा? उन्होंने कहा, यह पीछे समझ लेंगे। तुम पहले अंदर! उसको किसी तरह खिड़की से अंदर कर लिया।
खैर, वह आदमी किसी तरह अंदर हो गया। फिर हरिद्वार पर उतरने की नौबत आ गई। वह आदमी फिर कहने लगा कि मैंने पहले ही कहा था, अगर उतरना ही है, तो चढ़ने से क्या मतलब था। हम तो उतरे ही हुए थे। उसके मित्रों ने कहा, उतरो भी। अब यह गाड़ी यहां से जाएगी। फिर उसे खींचने लगे। वह आदमी कहने लगा, तुम हो किस तरह के लोग! कभी चढ़ने के लिए खींचते हो, कभी उतरने के लिए खींचते हो! और तुम्हीं! और तुमको इतनी भी बुद्धि नहीं आती कि तुम दोनों काम कर रहे हो उलटे! मैं तो पहले ही उतरा हुआ था।
तब एक बूढ़े आदमी ने कहा, लेकिन तू उतरा हुआ था अमृतसर पर। अब तू उतर रहा है हरिद्वार पर। और इन दोनों में फर्क है।

एक आदमी है, जिसने शास्त्र छुए ही नहीं। वह भी बड़ा प्रसन्न हो जाता है सुनकर कि शास्त्रों से कुछ भी नहीं मिलेगा। उसकी प्रसन्नता यह नहीं है कि वह समझ गया, उसकी प्रसन्नता यह है कि अच्छा, तो जो शास्त्र पढ़-पढ़कर ज्ञानी बने जा रहे थे, वे भी कोई ज्ञानी नहीं हैं। मैं पहले से ही उतरा हुआ हूं! अगर तुमको उतरना ही है, तो हम पहले से ही उतरे हुए हैं। अगर एक बार फिर ज्ञान को छोड़कर अज्ञानी बनना पड़ेगा, तो हम तो अज्ञानी पहले से ही हैं! तो तुमने कमाई ही क्या की! तुमने व्यर्थ समय गंवाया। और नाहक अकड़ रहे थे कि शास्त्र पढ़ लिया। वेद के ज्ञाता हो गए!
लेकिन उसको पता नहीं है कि एक अज्ञान ज्ञान के पहले का है। और एक अज्ञान वह है जो ज्ञान के बाद आता है। ज्ञान के बाद के अज्ञान से ज्ञान के पहले के अज्ञान का कोई भी संबंध नहीं है। कहां अमृतसर! कहां हरिद्वार! उनमें बड़ी यात्रा का फर्क है।
ज्ञान के पहले जो अज्ञान है, वह सिर्फ अज्ञान है। ज्ञान के बाद, जब ज्ञान को भी कोई छोड़ देता है, तब जो अज्ञान घटित होता है, वह चित्त की निर्दोषता है, निर्भारता है। वह अज्ञान नहीं है, वही ज्ञान है।
इसलिए सुकरात ने कहा है कि जब कोई जान लेता है, तो वह कह देता है कि अब मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। इसलिए उपनिषदों ने कहा है कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं! तो फिर बचेगा कौन? ये उपनिषद कहते हैं, अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी और महाअंधकार में भटक जाते हैं। तो फिर बचेगा कौन?
वह बचेगा, जो ज्ञान के बाद आने वाले अज्ञान को उपलब्ध होता है। जो नहीं खोजते, वे तो परमात्मा को पाते ही नहीं। जो खोजते हैं, वे और दूर निकल जाते हैं। लेकिन खोज के बाद भी खोज के छोड़ देने की एक घटना है, वे उसे पा लेते हैं।
ये तीन बातें हैं। आप, जो कि खोज ही नहीं रहा है। साधु, संन्यासी, पंडित, खोज रहा है--कोई तप में, कोई शास्त्र में, कोई कहीं और। और एक तीसरा ज्ञानी, परमहंस, जो खोज भी छोड़ दिया, शास्त्र भी छोड़ दिया। जो अब बैठ गया, जैसा है वैसा ही हो गया। अब कहीं भी नहीं खोजने जाता।
यह जो न जाने वाली चेतना है, यह भीतर प्रवेश कर जाती है। यह न जाने वाली चेतना स्वयं में प्रज्वलित हो जाती है। यह कहीं न जाने वाली चेतना नया आयाम पकड़ लेती है।
आपने सुनी हैं दस दिशाएं। जो जानते हैं, वे कहते हैं, ग्यारह दिशाएं हैं। दस दिशाएं बाहर हैं और एक दिशा भीतर है। जब दसों दिशाएं बेकार हो जाती हैं, तब चेतना भीतर की तरफ मुड़ती है। जब और कहीं नहीं मिलता वह, तभी आदमी अपने में खोजता है--आखिरी समय में, अंतिम क्षण में।
तो अगर आपको पता चल गया कि आप भगवान हैं, तब तो बात ही खतम हो गई। खोज व्यर्थ है। अगर मेरे कहने से मान लिया, तो अभी खोज करनी पड़ेगी। मेरे कहने से मान ली गई बात आपका अनुभव नहीं है। मेरे कहने से खोज शुरू होगी, अनुभव नहीं हो जाएगा। और ट्रेन में अभी चढ़ना होगा। और अगर आपकी यह जिद हो कि अगर उतरना ही है बाद में तो हम चढ़ेंगे नहीं, तो आपकी मर्जी। लेकिन फिर आप समझ लेना कि अमृतसर पर ही खड़े हैं। फिर हरिद्वार की तरफ गति नहीं हो रही। चढ़ें भी, उतरें भी। सीढ़ियों पर चढ़ना भी पड़ता है, उतरना भी पड़ता है। जो सीढ़ियों पर नहीं चढ़ता, वह नीचे की मंजिल पर रह जाता है। जो फिर जिद करता है कि मैं सीढ़ियों से उतरूंगा नहीं, वह सीढ़ियों पर रह जाता है। वह भी ऊपर की मंजिल पर नहीं पहुंचता। ऊपर की मंजिल पर वह पहुंचता है, जो सीढ़ियों पर चढ़ता है, फिर सीढ़ियों को पकड़ नहीं लेता, सीढ़ियों को छोड़ भी देता है।
बुद्ध ने कहा है, कुछ नासमझ मैंने देखे हैं एक गांव में। वे नदी पार किए थे नाव में बैठकर। और फिर उन्होंने सोचा कि जिस नाव ने हमें नदी पार करवा दी उसको हम कैसे छोड़ सकते हैं! तो कुछ दिन तो वे नाव पर रहे। लेकिन नाव पर कब तक रहते? भोजन की तकलीफ हो गई, मुसीबत हो गई। तो फिर उन्होंने सोचा, उचित यह है कि हम उतर जाएं और नाव को सिर पर लेकर चल पड़ें। क्योंकि जिस नाव ने हमको पार करवा दिया उसे हम कैसे छोड़ सकते हैं? और अगर छोड़ना ही था, तो फिर हम चढ़े ही क्यों थे? तो वे नाव को सिर पर लेकर गांव में निकले।

गांव के लोगों ने पूछा, तुम यह क्या कर रहे हो? बुद्ध उस गांव में थे। बुद्ध ने कहा, ये पंडित हैं। ये बड़े ज्ञानी हैं। ये बड़े ज्ञानी हैं, अज्ञानी तो उसी पार रह गए, वे नाव पर ही नहीं चढ़े। ये ज्ञानी हैं। नाव पर चढ़ गए थे। लेकिन इनकी मुसीबत यह हो गई कि अब इन पर ज्ञान चढ़ गया है। यह नाव इनके ऊपर चढ़ गई। अब ये उसको छोड़ नहीं पा रहे हैं। अब ये शास्त्र को ढो रहे हैं। यह तो और मूढ़ता हो गई।
इसलिए उपनिषद ठीक कहते हैं, अज्ञानी भटकते हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं।
फिर से अज्ञानी होना जरूरी है। लेकिन वह फिर से अज्ञानी होना बड़ी और बात है। खोज छोड़नी पड़ती है, लेकिन करने के बाद। संसार छोड़ना पड़ता है, लेकिन जानने के बाद। त्याग मूल्यवान है, लेकिन भोग के बाद। अन्यथा उसका कोई मूल्य नहीं है।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि भक्त अपनी पसंद के अनुसार इष्ट का साकार दर्शन कर लेते हैं। रामकृष्ण ने काली का किया या मीरा ने कृष्ण का या अर्जुन ने चतुर्भुज रूप कृष्ण का। क्या इस अवस्था को परम ज्ञान की अवस्था मान सकते हैं?

यह परम ज्ञान के पहले की अवस्था है; परम ज्ञान की नहीं। क्योंकि परम ज्ञान में तो दूसरा बचता ही नहीं। न काली बचती है, न कृष्ण बचते हैं, न क्राइस्ट बचते हैं। यह आखिरी है, सीमांत। यह आखिरी है। संसार समाप्त हो गया, अनेकता समाप्त हो गई, सब समाप्त हो गया। लेकिन द्वैत अभी भी बाकी रह गया, भक्त है और भगवान है। अभी भक्त भगवान नहीं हो गया है। अभी भक्त है और भगवान है। अभी दो बाकी हैं। सारा जगत खो गया। विविध रूप खो गए। सारे रूप दो में समाविष्ट हो गए। सारा जगत दो रह गया अब। भक्त है और भगवान है। सब तिरोहित हो गया। लेकिन दो अभी बाकी हैं।
यह परम ज्ञान के ठीक पहले की अवस्था है। जैसे सौ डिग्री पर जब पानी उबलता है। अभी भाप नहीं बना है, उबल रहा है। बस अब भाप बनने के करीब है। एक क्षण और, और पानी भाप बन जाएगा। ठीक यह सौ डिग्री अवस्था है, बस जरा-सी देर है। जरा-सी देर है कि भगवान भी खो जाएगा और भक्त भी खो जाएगा और एक ही बच रहेगा। उसको फिर कोई चाहे तो भगवान कहे, और चाहे कोई भक्त कहे, चाहे कोई नाम न दे, कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बच रहेगा, अनाम। वह अद्वैत की अवस्था है। अद्वैत परम ज्ञान है।
परम ज्ञान की हमारी परिभाषा बड़ी अनूठी है। परम ज्ञान हम तब कहते हैं,
जब जानने वाला न बचे, जाना जाने वाला न बचे। दोनों खो जाएं। दृश्य और द्रष्टा दोनों खो जाएं। ज्ञाता और ज्ञेय दोनों खो जाएं। मात्र ज्ञान रह जाए। सिर्फ जानना मात्र रह जाए। न तो उस तरफ कुछ हो जानने को, न इस तरफ कुछ हो जानने वाला। बस, सिर्फ ज्ञान रह जाए। उस ज्ञान की आखिरी घड़ी को परम ज्ञान कहा है।
महावीर ने उसे कैवल्य कहा है। कैवल्य का अर्थ है, बस, केवल ज्ञान। कुछ नहीं बचा। वह जो खोज रहा था, वह भी नहीं है अब। जिसको खोज रहा था, वह भी नहीं है अब। वह दोनों का द्वंद्व विलीन हो गया। अब सिर्फ होना मात्र, जस्ट बीइंग, जस्ट कांशसनेस, सिर्फ होश भर बचा है। वे दोनों छोर खो गए। दोनों छोरों के बीच में जो ज्ञान की घटना घटती है, वही बची है।
तो काली का दर्शन परम ज्ञान नहीं है। कृष्ण का दर्शन भी परम ज्ञान नहीं है। राम का दर्शन भी परम ज्ञान नहीं है। परम ज्ञान के पहले की आखिरी सीढ़ी है, जहां से आप सीढ़ियां छोड़ देते हैं।
ऐसा हुआ रामकृष्ण के जीवन में। रामकृष्ण तो काली के भक्त थे। अनूठे भक्त थे। और उस जगह पहुंच गए, जहां काली और वे ही बचे। लेकिन तब उनको एक बेचैनी होने लगी कि यह तो द्वैत है, और अद्वैत का अनुभव कैसे हो? अभी भी दो तो हैं ही, मैं हूं, काली है। अभी दो की दुई नहीं खोती। अभी दो तो बने ही रहते हैं।

तो वे एक अद्वैत गुरु की शरण में गए। उस अद्वैत गुरु को उन्होंने कहा
कि अब मैं क्या करूं? ये दो अटक गए हैं, इसके आगे अब कोई गति नहीं होती। अब दिखाई भी नहीं पड़ता कि जाऊं कहां? शांत हो जाता हूं; काली खड़ी हो जाती है। मैं होता हूं, काली होती है। बड़ा आनंद है। गहन अनुभव हो रहा है। लेकिन दो अभी बाकी हैं। एक आखिरी अभीप्सा मन में उठती है कि एक कैसे हो जाऊं?
तो जिस गुरु से उन्होंने कहा था, उसने कहा, फिर थोड़ी हिम्मत जुटानी पड़ेगी। और हिम्मत कठिन है और मन को चोट करने वाली है। गुरु ने कहा कि भीतर जब काली खड़ी हो, तो एक तलवार उठाकर दो टुकड़े कर देना। रामकृष्ण ने कहा कि क्या कहते हैं, तलवार उठाकर दो टुकड़े! काली के! ऐसी बात ही मत कहें! ऐसा सुनकर ही मुझे बहुत दुख और पीड़ा होती है।
तो गुरु ने कहा, तो फिर तू अद्वैत की फिक्र छोड़ दे। क्योंकि अब काली ही बाधा है। अब तक काली ही साधक थी, साधन थी, सहयोगी थी; अब काली ही बाधा है। अब सीढ़ी छोड़नी पड़ेगी। अब तू सीढ़ी को मत पकड़। माना कि इसी सीढ़ी से तू इतनी दूर आया है, इसलिए मोह पैदा हो गया है, आसक्ति बन गई है।
हमारी आसक्ति संसार में ही नहीं बनती, हमारी आसक्ति हमारी साधना के उपाय से भी बन जाती है। अब किसी जैन को कहो कि महावीर के दो टुकड़े कर दो! किसी बौद्ध को कहो कि बुद्ध के दो टुकड़े कर दो! राम के भक्त को कहो कि हटाओ, फेंक दो इस मूर्ति को मन से! बेचैनी होगी कि क्या बातें कर रहे हैं! यह कोई बात हुई धर्म की? अध्यात्म हुआ? यह तो घोर नास्तिकता हो गई।
लेकिन रामकृष्ण जानते थे कि जो आदमी कह रहा है, वह ठीक तो कह रहा है।
यह मेरी मजबूरी है कि मैं न तोड़ पाऊं।
लेकिन उस गुरु ने कहा, तू मेरे सामने बैठ और ध्यान कर। और जैसे ही काली भीतर आए, उठाना तलवार और तोड़ देना! रामकृष्ण ने कहा, लेकिन मैं तलवार कहां से लाऊंगा? उस गुरु ने बड़ी कीमती बात कही। उस गुरु ने कहा कि तू काली को ले आया भीतर, तलवार न ला सकेगा! काली कहां थी पहले? तू काली को ले आया, तो तलवार तो तेरे बाएं हाथ का खेल है। जैसे काली को तूने कल्पना से अपने भीतर विराजमान करके साकार कर लिया है, ऐसे ही उठा लेना तलवार को।
रामकृष्ण ने कहा, तलवार भी उठा लूंगा, तो तोड़ नहीं पाऊंगा। मैं भूल ही जाऊंगा। तुमको भी भूल जाऊंगा, तुम्हारी बात को भी भूल जाऊंगा। काली दिखी कि मैं तो मंत्रमुग्ध हो जाऊंगा। मैं तो नाचने लगूंगा। मैं फिर यह तलवार नहीं उठा सकूंगा।
तो उस गुरु ने कहा कि फिर मैं कुछ करूंगा बाहर से। एक कांच का टुकड़ा गुरु उठा लाया और उसने रामकृष्ण को कहा कि जब मैं देखूंगा कि तू मस्त होने लगा, डोलने लगा... । क्योंकि जब भीतर काली आती, तो रामकृष्ण डोलने लगते, हाथ-पैर कंपने लगते, रोएं खड़े हो जाते। और चेहरे पर एक अदभुत आनंद का भाव, मस्ती छा जाती। तो उस गुरु ने कहा कि मैं तेरे माथे पर इस कांच से काट दूंगा; जोर से लहूलुहान कर दूंगा; दो टुकड़े चमड़ी को काट दूंगा। और जब मैं यहां तेरी चमड़ी काटूं, तब तुझे ख्याल अगर आ जाए, तो चूकना मत। उठाकर तलवार तू भी दो टुकड़े भीतर कर देना।
और ऐसा ही किया गया। गुरु ने कांच से काट दी माथे की चमड़ी, ठीक जहां तृतीय नेत्र है। ऊपर से नीचे तक चमड़ी को दो टुकड़े कर दिया। खून की धार बह पड़ी। रामकृष्ण को भीतर होश आया। वे तो नाच रहे थे। मस्त हो रहे थे भीतर। होश आया। हिम्मत की और उठाकर तलवार से काली के दो टुकड़े कर दिए। रामकृष्ण, और काली के दो टुकड़े! यह भक्त की आखिरी हिम्मत है। यह आखिरी हिम्मत है। इससे बड़ी हिम्मत नहीं है जगत में। और जो इतनी हिम्मत न जुटा पाए, वह अद्वैत में प्रवेश नहीं कर पाता।
काली विसर्जित हो गई। रामकृष्ण अकेले रह गए। या कहें कि चैतन्य मात्र बचा। छः दिन बाद होश में आए। आंखें खोलीं, तो जो पहले शब्द थे, वे ये थे कि कृपा गुरु की, आखिरी बाधा भी गिर गई। दि लास्ट बैरियर हैज फालेन। रामकृष्ण के मुंह से शब्द आखिरी बाधा, लास्ट बैरियर! सोचने में भी नहीं आता। रामकृष्ण के सामान्य भक्तों ने इस उल्लेख को अक्सर छोड़ दिया है, क्योंकि यह उल्लेख उनके पूरे जीवन की साधना के विपरीत पड़ता है। इसलिए बहुत थोड़े से भक्तों ने इसका उल्लेख किया है। बाकी भक्तों ने इसको छोड़ ही

दिया है। क्योंकि यह तो मामला ऐसा हुआ कि जब उतरना ही था, तो फिर चढ़े क्यों? इतनी मेहनत की। काली के लिए रोए-गाए, नाचे-चिल्लाए, चीखे, प्यास से भरे, जीवन दांव पर लगाया। फिर काली को पा लिया। फिर दो टुकड़े किए।
तो वह लिखने वाले भक्तों को बड़ा कष्टपूर्ण मालूम पड़ा है। इसलिए अधिक भक्तों ने इस उल्लेख को छोड़ ही दिया है।
मगर यह उल्लेख बड़ा कीमती है। और जिनको भी भक्ति के मार्ग पर जाना है, उन्हें याद रखना है कि जिसे हम आज बना रहे हैं, उसे कल मिटा देना पड़ेगा। आखिरी छलांग, सीढ़ी से भी उतर जाने की, नाव भी छोड़ देने की, रास्ता भी छोड़ देने का, विधि भी छोड़ देने की।
तो जो रामकृष्ण को हुआ है काली के दर्शन में, वह अंतिम नहीं है। अंतिम
तो यह हुआ, जब काली भी खो गई। जब कोई प्रतिमा नहीं रह जाती मन में, कोई शब्द नहीं रह जाता, कोई आकार नहीं रह जाता, जब सब शब्द शून्य हो जाते हैं, सब प्रतिमाएं लीन हो जाती हैं असीम में, सब आकार निराकार में डूब जाते हैं, जब न मैं बचता हूं, न तू बचता है... ।
एक बहुत बड़े विचारक, यहूदी चिंतक और दार्शनिक बूबर ने एक किताब लिखी है, आई एंड दाउ। इस सदी में लिखी गई दो-चार अत्यंत कीमती किताबों में से एक है। और इस सदी में हुए दो-चार कीमती आदमियों में से मार्टिन बूबर एक आदमी है। बूबर ने लिखा है कि अंतिम जो अनुभव है परमात्मा का, वह है, आई एंड दाउ-- मैं और तू।
लेकिन यह अंतिम नहीं है। यह अंतिम के पहले का है। लेकिन यहूदी विचार हिम्मत नहीं कर पाता आखिरी छलांग की। यही फर्क है। यहूदी, इस्लाम, ईसाइयत, ये तीनों में से कोई भी आखिरी हिम्मत नहीं कर पाते, आखिरी छलांग की। अंतिम तक जाते हैं, बिल्कुल आखिर तक चले जाते हैं, लेकिन दो को बचा लेते हैं। फिर दो को छोड़ने की मुश्किल हो जाती है।
इसलिए इस्लाम कभी भी राजी नहीं हो पाया कि मंसूर जो कहता है, अनलहक-- मैं ब्रह्म हूं--यह बात ठीक है। क्योंकि यह तो बात आखिरी हो गई! यह तो परमात्मा के साथ एक होने की बात ठीक नहीं है, अधार्मिक मालूम पड़ती है। इसलिए मंसूर की हत्या कर दी गई।
इस्लाम कभी सूफियों को राजी नहीं हो पाया स्वीकार करने को पूरी तरह से। हालांकि सूफी ही इस्लाम की गहनतम बात है। वही उनका रहस्य है। वही उनकी आत्मा है। लेकिन इस्लाम कभी राजी नहीं हो पाया। क्योंकि इस्लाम अंतिम के पहले रुक जाता है, दो, परमात्मा और भक्त। ईसाइयत भी रुक जाती है, परमात्मा और भक्त। यहूदी भी रुक जाते हैं, परमात्मा और भक्त।
लेकिन इससे कोई अड़चन नहीं आती। क्योंकि जो आदमी यहां तक पहुंच जाता है, वह नहीं रुकता। इसे थोड़ा समझ लें।
इस्लाम भला रुक जाता हो। लेकिन इस्लाम को मानकर भी जो आदमी इस आखिरी जगह पहुंच जाएगा, उसको तो फिर ख्याल में आ जाता है कि अब यह आखिरी बात और रह गई। संसार का आखिरी हिस्सा और रह गया। इसे भी छोड़ दूं। वह इससे छलांग लगा लेता है। सूफी वे ही मुसलमान हैं, जिन्होंने छलांग लगा ली। लेकिन इस्लाम की जो व्यवस्था है धर्म की, वह दो पर रुक जाती है।
आम भक्ति के जितने भी दर्शन हैं, वे दो पर रुक जाते हैं। परम ज्ञान वह नहीं है। लेकिन उसके बिना भी परम ज्ञान नहीं होता, यह ख्याल में रखना। उससे सौ डिग्री तक पानी उबल जाता है, और आखिरी छलांग आसान हो जाती है। जिनमें हिम्मत है, वे लगा लेते हैं।
और उस समय तक पहुंचते-पहुंचते हिम्मत भी आ जाती है। जिसने सारा संसार
खो दिया, वह अब इस एक परमात्मा की प्रतिमा को भी कब तक सम्हाले छाती से लगाए हुए फिरेगा? जो सब को छोड़ चुका, जिसने सारे बंधन तोड़ दिए, जिसने सारा बोझ हटा दिया, वह इस प्रतिमा को भी कब तक ढोएगा? एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, कितनी देर तक? एक दिन वह इसे भी कहेगा, अब यह भी बोझ हो गई। इसको भी विसर्जित करता हूं।
इसलिए हमने हिंदुस्तान में एक व्यवस्था की है कि हम परमात्मा की मूर्ति बनाते हैं। गणेशोत्सव आता है, गणेश की मूर्ति बनाते हैं। काफी

शोरगुल मचाते हैं, भक्ति-भाव प्रकट करते हैं। और फिर जाकर समुद्र में विसर्जित कर आते हैं!
यह प्रतीक है असल में कि जैसे अभी इस मिट्टी की मूर्ति के साथ खेल रहे
हो, बना रहे हो, नाच रहे हो, गा रहे हो और फिर हिम्मत से विसर्जित कर आते हो, ऐसे ही अंत में एक दिन परमात्मा की सब प्रतिमाएं विसर्जित करने की हिम्मत रखना। इस हिम्मत का प्रशिक्षण होता रहे। इसलिए हिंदुस्तान अकेला मुल्क है, जहां हम भगवान को बनाते और मिटाते, दोनों काम करते हैं।
दुनिया में कोई कौम भगवान को बनाने और मिटाने के दोनों काम नहीं करती। बनाने का काम करते हैं कुछ लोग; वे मिटा नहीं पाते। कुछ लोग इस डर से कि फिर मिटाना पड़े, बनाने का काम ही नहीं करते। जैसे इस्लाम है। वह प्रतिमा नहीं बनाता कि कहीं प्रतिमा में फंस न जाएं। ईसाइयत ने प्रतिमाएं बना ली हैं, लेकिन उनको विसर्जन करने की कोई हिम्मत नहीं जुटा पाता।
इस मुल्क में हमने एक अनूठा प्रयोग किया। हम भगवान के साथ भी खेलते हैं। बना लेते हैं। और जब बना लेते हैं, तो पूरी भक्ति-भाव प्रकट करते हैं। कोई ऐसा नहीं कि अपने ही बनाए हुए हैं, क्या भक्ति प्रकट करनी! अभी खुद ही रंगा-रोपा है इनको। अब क्या इनके चरणों में गिरना!
नहीं, उसकी हम फिक्र छोड़ देते हैं। जैसे ही हमने प्रतिष्ठा कर ली कि भगवान हैं, हम चरणों में गिर जाते हैं। और समारोह पूरा हुआ, और हम कंधों पर अरथी उठाकर उनको समुद्र में, नदी में, सरोवर में डुबा आते हैं।
यह बनाना और मिटाना, चढ़ना और उतरना, खोजना और खोज छोड़ देना, ज्ञान इकट्ठा करना और ज्ञान का त्याग कर देना, दोनों की सम्मिलित जो व्यवस्था है, यह ध्यान में रहे, तो आप कभी भटकेंगे नहीं। अन्यथा भटकाव हो सकता है यह अनुभव द्वैत का है, परम ज्ञान के एक क्षण पहले का, लेकिन परम ज्ञान नहीं है।

प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि कीर्तन के संबंध में आप कहते हैं, धुन लगाएं, सम्मिलित हों। तो क्या शरीर के बिना कीर्तन में सम्मिलित नहीं हुआ जा सकता? क्या मन ही मन में कीर्तन नहीं किया जा सकता?

बराबर किया जा सकता है। लेकिन और किन-किन बातों में आप यह शर्त रखते हैं? जब किसी को प्रेम करना होता है, तो मन ही मन में करते हैं कि शरीर को भी बीच में लाते हैं? तब नहीं कहते कि प्रेम मन ही मन में नहीं किया जा सकता! शरीर को क्यों बीच में लाना!
कितनी चीजों में ख्याल रखते हैं इसका? अगर बाकी सब चीजों में ख्याल रखते हों, मैं राजी हूं। बिल्कुल शरीर का उपयोग मत करें। कीर्तन भीतर ही भीतर हो जाएगा। लेकिन अगर बाकी सब चीजों में शरीर को लाते हैं, तो धोखा मत दें अपने को।
डर क्या है शरीर को कीर्तन में लाने में? जब किसी को प्रेम करते हैं,
तो उसको गले लगा लेते हैं। क्यों शरीर को बीच में लाते हैं? हाथ हाथ में ले लेते हैं। क्यों हाथ को बीच में ले आते हैं? ऐसे दूर खड़े रहें बुद्ध की मूर्ति बने हुए! मन ही मन में! लेकिन तब आपको लगेगा कि अरे, यह समय खो रहा है। यह मन ही मन में कब तक करते रहेंगे?
आपका मन और आपका शरीर अभी दो नहीं हैं। अभी आपका मन और आपका शरीर एक है। अभी जल्दी मत करें। अभी आपका मन आपके शरीर का ही दूसरा छोर है। वह शरीर से ही संचालित हो रहा है। शरीर ही उसको अभी गति दे रहा है। इसलिए उचित है कि कीर्तन में अभी शरीर को भी डूबने दें, तो ही आपका मन डूब पाएगा।
और जिस दिन आप मन ही मन में डुबाने में सफल हो जाएंगे, मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं रहेगी। आपको खुद ही पता चल जाएगा कि शरीर को बीच में लाने की कोई जरूरत नहीं, मन में ही हो जाता है। तो आप मन में कर लेना। लेकिन जब तक यह नहीं हो सकता, तब तक शरीर से ही शुरू करें।
आप शरीर में जी रहे हैं, इसलिए आपकी सब यात्रा शरीर से ही शुरू होगी।
और जो यह धोखा देगा अपने को कि शरीर का क्या करना है, वह असल में धोखा दे रहा है। वह धोखा यह दे रहा है कि वह करना ही नहीं चाहता।

आदमी वहीं से तो चल सकता है, जहां खड़ा है। जहां आप खड़े नहीं हैं, वहां
से चलेंगे कैसे? आपकी मन में स्थिति क्या है? अभी आपको शराब पिला दें, तो शराब तो शरीर में जाती है, मन में तो जाती नहीं। क्या आप समझते हैं, आप होश में बने रहेंगे? आप बेहोश हो जाएंगे। क्यों बेहोश हो गए आप? शराब तो शरीर में जाती है, कोई मन में तो जाती नहीं। कोई आत्मा में तो घुस नहीं जाती शराब। मन में आप होश में रहे आइए, पी लीजिए शराब, क्या हर्ज है! तब आपको पता चलेगा कि हर्ज का है मामला।
अभी कोई आपको एक धक्का मार दे जोर से, तो धक्का शरीर तक ही लगता है कि
मन तक चला जाता है? मन तक चला जाता है। सच तो यह है कि शरीर को बाद में पता चलता है, मन को पहले पता चल जाता है। तो अभी आपका शरीर और मन बहुत करीब-करीब हैं, अभी दूरी नहीं है उसमें।
मैं निरंतर एक घटना कहता रहा हूं। एक मुसलमान फकीर हुआ, फरीद। एक आदमी उसके पास आया और फरीद से पूछने लगा कि मैंने सुना है कि मंसूर को काट डाला जब, तब भी मंसूर हंसता रहा। यह भरोसा नहीं आता इस बात पर। और यह भी मैं सुनता हूं कि जीसस को सूली लगा दी गई और उन्होंने कहा कि ये जो सूली लगाने वाले लोग हैं, हे परमात्मा, इन्हें माफ कर देना। यह बात भी जंचती नहीं। कोई मुझे पत्थर मारे, कोई मुझे सूली लगाए, कोई मेरी गर्दन काटे, यह मैं नहीं कर सकता हूं। मैं समझने आया हूं।
तो फरीद ने उसे उठाकर एक नारियल दे दिया। भक्त फरीद को नारियल चढ़ा देते थे। एक नारियल उठाकर दे दिया और कहा कि तू इसको फोड़ कर ला। एक ही बात का ख्याल रखना कि गिरी भीतर की साबित रहे, टूट न पाए।
वह नारियल कच्चा था। वह आदमी मुश्किल में पड़ गया। उसकी ऊपर की खोल तोड़े, तो भीतर की गिरी टूटे, क्योंकि वह कच्चा नारियल था। बड़ी कोशिश की, लेकिन गिरी टूट गई। लौटकर आया और उसने कहा, माफ करना। मैं गिरी को बचा न पाया, क्योंकि खोल और गिरी बिल्कुल जुड़ी हैं। नारियल कच्चा है। आप भी किस तरह की बात करते हैं!
फरीद ने दूसरा नारियल उठाकर दिया। वह सूखा नारियल था। कहा कि अब इसकी फिक्र कर तू। इसको तोड़ ला, गिरी बचा लाना। उसने बजाकर देखा। उसने कहा कि इसमें कोई अड़चन नहीं है। खोल तोड़ देंगे, गिरी बच जाएगी। क्योंकि खोल और गिरी के बीच फासला पैदा हो गया।
तो फरीद ने कहा, अब तोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जीसस नारियल थे सूखे हुए, और तू नारियल है गीला। अभी तेरी गिरी और खोल जुड़े हुए हैं। अभी तू यह फिक्र मत कर। अभी तो तेरी खोल पर जो होगा, वह गिरी तक जाएगा।
अभी शरीर और मन इकट्ठा है आपका। जिन मित्र ने पूछा है, उसके पूछने का अगर कारण यह होता कि उनका शरीर और मन अलग-अलग हो गया है, तो वे पूछते ही नहीं। क्या पूछना है! आपको पता ही होता कि मेरी गिरी अलग है, खोल अलग है। भीतर मैं अपनी मौज ले रहा हूं, शरीर को कोई पता नहीं चल रहा। पूछने का कारण दूसरा है। शायद बहुत ही कच्चे नारियल हैं। बहुत ज्यादा जुड़े हैं। शायद अभी भीतर गिरी भी नहीं है, पानी ही पानी है।
क्यों, यह डर क्यों हो रहा है कि शरीर से भाग न लें? यह डर हो रहा है कि पास-पड़ोस में कोई देख न ले। कि अरे, आप कंप रहे हैं! ताली बजा रहे हैं! आनंदित हो रहे हैं! आपको कोई रोते देखे, तो कोई एतराज नहीं। आपको कोई उदास देखे, तो किसी को एतराज नहीं। आप बिल्कुल रोती शक्ल बनाए हुए जिंदगीभर जीते रहें, तो कोई आप पर संदेह और दिक्कत नहीं खड़ी करेगा। आप जरा मस्त हों, कि आपके आस-पास के लोग परेशान! और वे आपसे कहेंगे, आपको क्या हो रहा है? क्या होश खो रहे हैं? जैसे दुखी होना ही समझदारी है, और मस्त होना यहां नासमझी है।
ठीक भी है, दुखी लोगों के समाज में जो आदमी मस्त होगा, वह समाज से अलग
जा रहा है, और दूसरे लोगों में ईर्ष्या पैदा कर रहा है। तो ईर्ष्या जब पैदा होती है, जो दूसरे लोग उसकी निंदा करेंगे। उसको कहेंगे कि तू पागल है। क्योंकि कोई अपने को पागल नहीं मानना चाहता। और यह भीड़ उदास लोगों की; इसकी संख्या ज्यादा है। वे कहेंगे कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है, इसलिए इतने मस्त नजर आ रहे हो!

एक आदमी ने मुझसे आकर कहा कि जब से मैं ध्यान करने लगा हूं, मस्त रहने लगा हूं, तो मेरी पत्नी परेशान है। वह आपके पास आना चाहती है। वह कहती है, इनको क्या हो गया है? इतनी मस्ती तो कभी देखी नहीं। इनके दिमाग में कुछ खराबी तो नहीं हो गई? मस्ती खराबी का लक्षण है! पहले ये क्रोध भी करते थे, अब इनसे कुछ कहो, तो ये हंसते हैं! तो उससे ऐसा डर लगता है कि कहीं इनके दिमाग में कोई नट-बोल्ट ढीला तो नहीं हो गया! क्योंकि स्वभावतः, जब कोई गाली दे, तो लड़ने को तैयार होना चाहिए। ये हंसते हैं।
हम सबको ऐसा लगेगा, क्योंकि भीड़ पागलों की है। उसमें अगर कोई आदमी होश
से भर जाए, मस्त हो जाए, आनंदित हो जाए, तो हम शीघ्र ही उसको दिक्कत में डाल देंगे।
वह जो मित्र को डर लग रहा है, वह पड़ोसियों का डर है। वह डर है कि कोई क्या कहेगा? तो मन ही मन में करो!
अगर मन-मन में ही करना हो, तो और सब चीजें भी मन में करना, तब कीर्तन भी करना। अगर और सब चीजें शरीर से कर रहे हैं, तो कीर्तन भी आपको शरीर से ही करना होगा। आप जहां हैं, वहीं से यात्रा हो सकती है।
दो छोटे-छोटे प्रश्न और हैं, फिर मैं सूत्र लेता हूं।

प्रश्नः एक बहिन ने पूछा है कि आपने कल कहा कि सुंदर स्त्री पूर्ण पुरुष की प्रतीक्षा करती है। तो क्या कुरूप स्त्री पूर्ण पुरुष की प्रतीक्षा नहीं कर सकती? क्या कुरूप स्त्री को अधिकार नहीं है कि वह पूर्ण पुरुष की प्रतीक्षा करे? उसका भी मन तो होता है, बहिन ने लिखा है, कि वह भी सुंदर पुरुष को पाए। और यह भी पूछा है कि कुरूप स्त्री भी क्यों सुंदर पुरुष को पाना चाहती है? और कुरूप पुरुष भी क्यों सुंदर स्त्री को पाना चाहता है?

इसका कारण है कि अपने को कोई कुरूप नहीं मानता! और कोई कारण नहीं है। अपने को कोई कुरूप नहीं मानता! अपने को तो लोग सुंदर ही मानते हैं! कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी अपने को तो सुंदर ही मानता है। इसलिए उस संबंध में तो विचार करता ही नहीं।
और यह अगर शरीर तक ही बात होती, तो मैं इस प्रश्न का उत्तर ही नहीं देता। यह हमारे अध्यात्म की भी स्थिति है। हम अपने को तो ठीक मानते ही हैं, और अपने को ही मापदंड बनाकर सारे जगत को तौलते हैं। यही भूल है।
अगर कोई व्यक्ति अपने को पहली दफे सोचेगा, तो अपने से ज्यादा कुरूप किसी को भी न पाएगा, अपने से बुरा किसी को नहीं पाएगा, अपने से बेईमान किसी को नहीं पाएगा। और जब अपने को ठीक से देख लेगा, तो जो भी मिल जाए इस जगत में, उसे लगेगा कि अनुकंपा है परमात्मा की, क्योंकि मैं तो इसके बिल्कुल योग्य नहीं था।
और ऐसा व्यक्ति जो अपने में ये सारी बुराइयां देख लेगा, वह सक्षम हो जाता है इन बुराइयों के पार होने में। क्योंकि बुराई के पार होने का पहला सूत्र है, उसकी पहचान। जो ठीक से देख लेता है कि मैं बुरा हूं, वह अच्छा होना शुरू हो गया! और जो ठीक से देख लेता है कि मैं कुरूप हूं, उसके जीवन में एक सौंदर्य का अवतरण हो जाता है, जो कि बहुत अनूठा है।
असल में सबसे ज्यादा कुरूप लोग वे ही होते हैं, जो खुद को सुंदर मानते हैं। उनमें एक तरह की कुरूपता, प्रकट कुरूपता होती है, जो उनके चेहरे पर छाई होती है। चाहे वे कितना ही रंग-रोगन करें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लिपाई-पुताई कितनी ही शरीर की करें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर उनको यह ख्याल है कि मैं सुंदर हूं, तो वह जो अहंकार है, वह सब तरफ से उनके व्यक्तित्व को कुरूप कर जाता है। उनकी सौंदर्य की स्थिति सतह से ज्यादा नहीं होती।
कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी सुंदर हो जाता है, अगर उसके भीतर उसे यह पता चल जाए कि मैं कुरूप हूं। और जैसा हूं, उसमें जरा भी झूठ करने की इच्छा न रह जाए, प्रामाणिक हो जाए उसका भाव, तो उसके भीतर से एक नए सौंदर्य का

जन्म शुरू हो जाता है। और जितना भीतर का सौंदर्य बढ़ता है, उतना ही शरीर उस सौंदर्य से आविष्ट होता चला जाता है।
संतों के चेहरे पर जो सौंदर्य है, वह शरीर का नहीं है। वह कुछ भीतर से आने वाली किरणों का है।
इस जगत में दो तरह के सौंदर्य हैं। एक तो सौंदर्य है शरीर का, आकृति का। एक सौंदर्य है अंतस का, अंतरात्मा का। आकृति का सौंदर्य तो बिल्कुल काल्पनिक बात है। काल्पनिक कहता हूं इसलिए कि आज जो सुंदर है, कल फैशन बदल जाए, तो कुरूप हो जाता है।
ऐसा समझें कि अगर जमीन पर एक ही आदमी हो, तो वह सुंदर होगा कि कुरूप होगा? उसको क्या कहिएगा? वह न सुंदर होगा, न कुरूप होगा। क्योंकि सुंदर और कुरूप की मान्यता तय करने वाले दूसरे लोग हैं, वे तय करते हैं।
चीन में गाल की हड्डी कुरूप नहीं समझी जाती, क्योंकि मंगोल जाति की गाल की हड्डी बड़ी होती है। हिंदुस्तान में गाल की हड्डी कुरूप है। चीन में चपटी नाक कुरूप नहीं समझी जाती। आर्य मुल्कों में, हिंदुस्तान में, इंग्लैंड में, जर्मनी में चपटी नाक कुरूप है। क्यों?
नीग्रो होंठ बड़े, सुंदर समझते हैं। और नीग्रो स्त्रियां पत्थर लटकाकर होंठों को बड़ा करती हैं। क्योंकि बड़ा होंठ सुंदर है, क्योंकि बड़े होंठ के चुंबन की बात ही और है। सारी आर्य कौमें पतले होंठ को पसंद करती हैं। और बड़ा होंठ हो, लटका हुआ होंठ हो, तो शादी होनी लड़की की मुश्किल हो जाए। क्या मतलब हुआ? कौन है सुंदर?
अगर हम तीन हजार साल के ज्ञात इतिहास को देखें, तो सब तरह के लोग सुंदर समझे गए हैं। सब तरह के लोग। अलग-अलग तरह से लोगों ने सुंदर समझा है। मान्यता की बात है। प्रचलन की बात है। फैशन की बात है। सौंदर्य बाहर का तो दूसरों की नजर की बात है। भीतर का सौंदर्य ही अपनी बात है।
लोगों की मान्यता का जो सौंदर्य है, उसका कोई मूल्य नहीं है। मगर हम लोगों की मान्यता से ही जीते हैं। पब्लिक ओपीनियन! लोग क्या कहते हैं! जो लोगों की मान्यता से जीता है, वह सांसारिक आदमी है और वह सांसारिक ही रहेगा।
लोगों की मान्यता से मुक्त हो जाएं। अपनी तरफ अपनी नजर से देखें। अपने को ही खोजें कि मैं क्या हूं? सोचें कि आप अकेले हैं जमीन पर। क्या हैं? सुंदर हैं, कुरूप हैं? अच्छे हैं, बुरे हैं? झूठे हैं, सच्चे हैं? सोचें। और इस तरह जीएं कि आपको अपनी कोई बुराई, कोई कुरूपता ढांकनी न पड़े, बल्कि आपके भीतर का सौंदर्य आविर्भूत हो और आपकी सारी बुराई को, सारी कुरूपता को बहा ले जाए।
सभी सुंदर को पाना चाहते हैं। जिन बहिन ने पूछा है, ठीक पूछा है। कुरूप स्त्री भी सुंदर को पाना चाहती है। लेकिन उसे पता होना चाहिए कि जिस सुंदर को वह पाना चाहती है, वह भी सुंदर को ही पाना चाह रहा होगा। इसलिए मेल कहां होगा?

प्रश्नः एक मित्र ने दो-तीन दिन से निरंतर पूछा है, जवाब मैंने नहीं दिया, क्योंकि मैंने सोचा कि इससे गीता का कोई संबंध नहीं है। पूछा है कि एक स्त्री के प्रेम में हैं वे। और वर्षों हो गए, समझा-समझाकर परेशान हो गए, अब तक वे यह नहीं समझा पाए उस स्त्री को कि प्रेम क्या है। और वह स्त्री उनके प्रेम में नहीं है। तो कैसे उसको समझाएं?

.बडा मुश्किल है, बड़ा कठिन है। क्योंकि आप जिसको चाहते हैं, उसके भी अपने मापदंड हैं, उसकी भी अपनी चाह के हिसाब हैं, उसकी अपनी वासनाएं हैं। और यह बड़े मजे की बात है कि जब भी दो व्यक्तियों में एक दूसरे को चाहता है, तो दूसरा उतना ही नहीं चाह सकता।
फ्रायड का कहना है कि दो व्यक्तियों में जब भी प्रेम होता है, सौ में निन्यानबे मौकों पर एकतरफा होता है, वन वे ट्रैफिक होता है।
एक स्त्री एक पुरुष को चाहती है, क्योंकि वह पुरुष उसे सुंदर मालूम पड़ता है। उस पुरुष की अपनी धारणा है सौंदर्य की, वह किसी और स्त्री को

चाहता है। वह उसे सुंदर मालूम पड़ती है। वह स्त्री किसी और पुरुष को चाहती है, उसे कोई और सुंदर मालूम पड़ता है।
दो व्यक्तियों की धारणाओं का मेल बहुत मुश्किल है, क्योंकि दो व्यक्ति इतने अलग-अलग हैं कि धारणाओं का मेल होता नहीं। इसलिए जब प्रेमी मिल जाते हैं, तो भी तकलीफ पाते हैं; नहीं मिलते, तो भी तकलीफ पाते हैं। नहीं मिलते हैं तो सोचते हैं, मिल जाते तो पता नहीं, स्वर्ग मिल जाता। और मिल जाते हैं, तो लगता है कि यह तो नर्क अपने हाथ से बुला लिया। दो व्यक्ति मिल नहीं पाते।
इसलिए जिस व्यक्ति को सच में ही प्रेम का आविर्भाव करना है, उसे समझ लेना चाहिए कि दूसरा करेगा या नहीं करेगा, इसकी फिक्र छोड़ दे। प्रेम से भर जाए। और जितना प्रेम कर सके, करता रहे। प्रेम को मांगे न।
इस जगत में प्रेम से उसी को आनंद मिलता है, जो करता है और मांगता नहीं।
जो मांगता है, वह कर नहीं पाता, और आनंद तो उसे मिलता ही नहीं है।
अब हम सूत्र को लें।
इस प्रकार अर्जुन के वचन को सुनकर कृष्ण बोले, हे अर्जुन, मेरा यह चतुर्भुज रूप देखने को अति दुर्लभ है कि जिसको तुमने देखा है। देवता भी इस रूप के दर्शन की इच्छा रखने वाले हैं।
चतुर्भुज रूप कृष्ण का सहज रूप नहीं है। वे कोई चार हाथ वाले नहीं हैं। वे दो ही हाथ वाले हैं, जैसे सभी आदमी हैं। लेकिन अर्जुन ने चाहा था कि वे चतुर्भुज रूप वाले प्रकट हों, चार हाथ वाले प्रकट हों।
यह चार हाथ एक प्रतीक है। हजार हाथ वाले रूप की भी हमने परमात्मा की कल्पना की है, वह भी एक प्रतीक है। मां बच्चे को उठाती है दोनों हाथों में। ये दो हाथों से उठाने तक तो मनुष्य का प्रेम है। लेकिन जहां परमात्मा चार हाथ से किसी को उठाता है, वहां मनुष्य के ऊपर के प्रेम की खबर लाने के लिए दो हाथ हमने और जोड़े हैं। जैसे परमात्मा दोहरी माता है हमारी, दोहरे अर्थों में। वह इस जगत में तो हमको सम्हाले ही हुए है, उस जगत में भी सम्हालेगा। ऐसे हमने चार हाथ की कल्पना की है।
यह प्रतीक है, काव्य-प्रतीक है, कि परमात्मा हमें इस जगत में भी सम्हाले है और उस जगत में भी। उसके चार हाथ हैं, वह चारों दिशाओं से हमें सम्हाले हुए है। सब ओर से हमें सम्हाले हुए है। उसके हाथ में हम सुरक्षित हैं। हम छोड़ सकते हैं अपने को, वहां कोई असुरक्षा नहीं है।
कृष्ण के तो दो ही हाथ हैं। लेकिन अर्जुन ने जब यह विराट रूप देखा, तो उसने प्रार्थना की कि अब मैं इतना घबड़ा गया हूं कि तुम चार हाथ वाले की तरह प्रकट हो जाओ, तो ही मेरी घबड़ाहट शांत हो सकती है। वह यह कह रहा है कि मैं इतना असुरक्षित हो गया हूं, इतनी इनसिक्योरिटी मुझे मालूम पड़ रही है कि मैं मरा; मिट गया। अब मैं इस, जो अनुभव मुझे हुआ है, यह ट्रामैटिक है। अब इस अनुभव से मैं उबार न सकूंगा अपने को कभी। अब यह भय मेरा पीछा करेगा। अब मैं सो न सकूंगा। अब मैं उठ न सकूंगा। यह मौत जो मैंने देखी है, यह अतिशय हो गई। अब तुम्हारे पुराने दो हाथ अकेले काम न करेंगे। अब तुम जैसे थे, उतने से ही काम न चलेगा। अब तुम और भी प्यारे होकर प्रकट हो जाओ।
इसका मतलब यह है कि अब तुम अनंत प्रेम होकर प्रकट हो जाओ। तुमने जो मौत मुझे दिखा दी, उसको संतुलित करने के लिए दूसरे पलड़े पर तुम चारों हाथ फैलाकर मुझे झेल लो, ताकि मैं सुरक्षित हो जाऊं।
यह सिर्फ काव्य-प्रतीक है चार हाथ का। इसका मतलब यह है कि तुम मां का हृदय बन जाओ मेरे लिए। और ऐसी मां का, जो इस जगत में ही नहीं, उस जगत में भी! जिसकी गोद में मैं सिर रख दूं और भूल जाऊं जो मैंने देखा है। जो मैंने देखा है, उसे मैं भूल जाऊं।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मृत्यु से जितना भय आदमी के मन में है, उसी
भय के कारण आदमी मोक्ष को खोजता है। और मनोवैज्ञानिक और अनूठी बात कहते हैं, वह शायद समझ में एकदम से न भी आए। वे कहते हैं, मोक्ष की जो धारणा है आदमी की, वह वही है, जो बच्चे को गर्भ की स्थिति में होती है। जब बच्चा गर्भ में होता है, तो पूर्ण सुरक्षित, एब्सोल्यूटली सिक्योर्ड होता है। कोई असुरक्षा नहीं होती गर्भ में। कोई भय नहीं होता। कोई चिंता नहीं। कोई

जिम्मेवारी नहीं। कोई नौकरी नहीं खोजनी। कोई मकान नहीं बनाना। कोई भोजन इकट्ठा नहीं करना। कल की कोई फिक्र नहीं है। सब आटोमैटिक है।
बच्चा गर्भ में पूर्ण मोक्ष की हालत में है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं।
सब उसको मिल रहा है। बिना मांगे मिलता है। जरूरत के माफिक मिलता है। उसे कुछ करना नहीं पड़ता। वह तैरता रहता है, जैसे कि विष्णु तैर रहे हैं क्षीरसागर में। ऐसा बच्चा मां के पेट के द्रवीय पदार्थों के क्षीरसागर में तैरता रहता है। कोई चिंता नहीं। कोई फिक्र नहीं। कोई उपद्रव नहीं। संसार का कोई पता नहीं। कोई दूसरा नहीं, कोई स्पर्धा नहीं। कोई मृत्यु का पता नहीं। कुछ भी पता नहीं। निश्चिंत, परम शांति में बच्चा रहता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष की जो धारणा है, वह मनुष्य के मन में
जो गहरा गर्भ का अनुभव है, उसी का विस्तार है। वे थोड़ी दूर तक ठीक कहते हैं। क्योंकि हमें ख्याल ही कैसे मिलता है आनंद का? दुख हम जानते हैं। सुख भी थोड़ा-बहुत जानते हैं। लेकिन हम सबके मन में यह भी लगा रहता है कि आनंद मिले। आनंद का हमें अनुभव कहां है? हम सब चाहते हैं, शांति मिले। शांति को हम जानते तो हैं नहीं। इसलिए बिना जाने किसी चीज की वासना कैसे जगती है? जब तक दुनिया में कार नहीं थी, तो किसी आदमी के मन में वासना नहीं जगती
थी कि कार हो। बैलगाड़ी हो, अच्छे बछड़े वाली हो, रथ हो--वह होता था। लेकिन कार हो, ऐसा किसी आदमी के मन में वासना नहीं जगती थी। लेकिन अब जगती है, क्योंकि अब कार दिखाई पड़ती है। चारों तरफ मौजूद है।
शांति को आदमी जानता ही नहीं, अशांति को ही जानता है, तो यह शांति की आकांक्षा कहां से जगती है! मनसविद कहते हैं कि वह जो गर्भ का नौ महीने का अनुभव है, वह गहरे अचेतन में बैठ गया है। वहां हमको पता है कि नौ महीने हम किसी गहरी शांति में रह चुके हैं। नौ महीने जिंदगी निश्चिंत थी, सुरक्षित थी। मृत्यु का कोई भय न था। हम अकेले थे। और सब तरह से मालिक थे। कल्पवृक्ष के नीचे थे।
हमने कल्पना की कि स्वर्ग में कल्पवृक्ष होंगे, उनके नीचे आदमी बैठेगा। इच्छा करेगा, करते ही इच्छा पूरी हो जाएगी। आपको अगर कल्पवृक्ष मिल जाए, तो बहुत सम्हलकर उसके नीचे बैठना। क्योंकि आपको अपनी इच्छाओं का कोई भरोसा नहीं है।
मैंने सुना है, एक दफा एक आदमी--वह यहां मौजूद होगा आदमी--एक दफा कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच गया भूल से। उसको पता भी नहीं था कि यह कल्पवृक्ष है। उसके नीचे बैठकर उसको ऐसे ही लगा कि बहुत भूख लगी है, अगर कहीं भोजन मिल जाता... । वह एकदम चौंका, एकदम थालियां चारों तरफ आ गईं। वह थोड़ा डरा भी कि यह क्या मामला है, कोई भूत-प्रेत तो नहीं है यहां! कहीं यहां कोई भूत-प्रेत न हो! थालियां तिरोहित हो गईं, भूत-प्रेत चारों तरफ खड़े हो गए। वह घबड़ाया कि यह तो बड़ा उपद्रव है, कोई गला न दबा दे! भूत-प्रेतों ने उसका गला दबा दिया।
आपको अगर कल्पवृक्ष मिल जाए, तो भागना, क्योंकि आपको अपनी इच्छाओं का कोई पक्का पता नहीं कि आप क्या मांग बैठेंगे! क्या आपके भीतर से निकल आएगा! आप झंझट में पड़ जाएंगे, वहां पूरा हो जाता है सब कुछ।
मनसविद कहते हैं कि कल्पवृक्ष की कल्पना गर्भ की ही अनुभूति और स्मृति का विस्तार है। गर्भ में बच्चा जो भी चाहता है, चाहने के पहले-- कल्पवृक्ष के नीचे तो पहले चाहना पड़ता है, फिर मिलता है--गर्भ में बच्चा चाहता है, उसके पहले मां के शरीर से उसे मिल जाता है। बच्चे को कभी वासना की पीड़ा नहीं होती। जो मांगता है, मांगने के पहले मिल जाता है। वह तृप्त होता है, पूर्ण तृप्त होता है।
यह जो कृष्ण का विराट, विकराल, भयंकर रूप देखकर अर्जुन घबड़ा गया है।
वह कह रहा है, तुम चारों हाथ वाले गर्भ बन जाओ। मैं तुममें डूब जाऊं, तुम्हारे प्रेम में, तुम्हारी सुरक्षा में। जो मैंने देखा है, इसको बैलेंस कर दो। दूसरे पलड़े पर इतना ही प्रेम, इतनी ही सुरक्षा बरसा दो। कृष्ण कहते हैं, तेरे लिए, जो अति दुर्लभ है और देवता भी जिसे देखने को तरसते हैं, वह मैं तेरे लिए प्रकट करता हूं। हे अर्जुन, न वेदों से, न तप से, न दान से, न यज्ञ से, इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं देखा जाने को शक्य

हूं, जैसा तू मुझे देखता है। परंतु हे श्रेष्ठ तप वाले अर्जुन, अनन्य भक्ति करके तो इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए और तत्व से जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए अर्थात एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी शक्य हूं।
जो छीन-झपट करता है तप से, जो सौदा करता है कि मैं यह देने को तैयार हूं, मुझे यह अनुभव चाहिए, उसको तो यह अनुभव नहीं मिल पाता, क्योंकि यह अनुभव प्रेम का है। सत्य को रूखा-सूखा साधक पा लेता है; लेकिन चार भुजाओं वाला, प्रेमपूर्ण, भक्त ही पा पाता है। साधक भी सत्य को पा लेता है। लेकिन उसका जो अनुभव होता है, वह सत्य का होता है, मैथमेटिकल, गणित का। भक्त का जो सत्य का अनुभव होता है, वह होता है काव्य का, प्रेम का। गणित का नहीं, पोएटिकल। भक्त पहुंचता है रस से डूबा हुआ।
और जैसे आप हैं, वैसे ही सत्य का आपको अनुभव होता है। अगर आप रस से भरे हैं, प्रेम से भरे गए हैं, तो सत्य जिस रूप में प्रकट होता है, वह प्रेम होता है। अगर आप गणित, तर्क, विचार, साधना, तप, हिसाब से भरे गए हैं, कैलकुलेटेड, तो जो सत्य प्रकट होता है, उसका रूप गणित होता है।
अरस्तू ने कहा है कि परमात्मा बड़ा गणितज्ञ है। किसी और ने नहीं कहा। क्योंकि अरस्तू बड़ा गणितज्ञ था। और अरस्तू सोच ही नहीं सकता था परमात्मा की और कोई छवि, जो गणित से भिन्न हो। क्योंकि गणित अरस्तू के लिए परम सत्य है। और गणित से ज्यादा सत्यतर कुछ भी नहीं है। इसलिए अरस्तू को लगता है, परमात्मा भी एक बड़ा गणितज्ञ है और सारा जगत गणित का एक खेल है।
मीरा से कोई पूछे, तो मीरा कहेगी, परमात्मा एक नर्तक है। सारा जगत नृत्य का एक विस्तार है।
अगर बुद्ध से कोई पूछे, तो बुद्ध कहेंगे, परम शून्य, शांति, मौन। विराट मौन, जहां कुछ भी नहीं है; न लहर उठती है, न मिटती है। सदा से ऐसा ही है।
यह प्रत्येक व्यक्ति जिस तरह से पहुंचता है, जो उसके पहुंचने की व्यवस्था होती है, जो उसका अपना व्यक्तित्व का ढांचा होता है, उसके अनुकूल परमात्मा उसे प्रतीत होता है। और जब वह उसे भाषा देता है, तब और भी अनुकूल हो जाता है।
कृष्ण कह रहे हैं कि तप से तो यह रूप मिलने वाला नहीं, क्योंकि तपस्वी
इस रूप की मांग भी नहीं करता।
महावीर की हम सोच भी नहीं सकते कि वे कहें कि सत्य, चार भुजाओं वाला हमारे सामने प्रकट हो! असंभव। अशक्य। अकल्पनीय। महावीर कहेंगे कि क्या मतलब है चार भुजाओं वाले से! ऐसे सत्य की कोई जरूरत नहीं। महावीर के लिए सत्य कभी चार भुजाओं वाला सोचा भी नहीं जा सकता।
अर्जुन कह रहा है कि चार भुजाओं वाला सत्य। प्रेमपूर्ण सत्य। मां के हृदय जैसा, गर्भ जैसा सत्य। जहां मैं सुरक्षित हो जाऊं। मैं भयभीत हो गया हूं। एक छोटे बच्चे की पुकार है, जो इस जगत में अपनी मां को खोज रहा है। इस पूरे अस्तित्व को जो मां की तरह देखना चाहता है।
तो कृष्ण कहते हैं, लेकिन अनन्य भक्ति से जिसने पुकारा हो, प्रेम से जिसने पुकारा हो, उसके लिए मैं प्रत्यक्ष हो जाता हूं इस रूप में। न केवल प्रत्यक्ष हो जाता हूं, बल्कि वह मुझमें प्रवेश भी कर सकता है और मेरे साथ एक भी हो सकता है।
हे अर्जुन, जो पुरुष केवल मेरे लिए ही सब कुछ मेरा समझता हुआ संपूर्ण कर्तव्य-कर्मों को करने वाला और मेरा परायण है अर्थात मेरे को परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्ति के लिए तत्पर है तथा मेरा भक्त है और आसक्तिरहित है; स्त्री, पुत्र, धनादि संपूर्ण सांसारिक पदार्थों में स्नेहरहित है और संपूर्ण भूत-प्राणियों में वैर-भाव से शून्य है, ऐसा वह अनन्य भक्ति वाला पुरुष मेरे को ही प्राप्त होता है।
इस अंत में दो-तीन बातें समझ लेने जैसी हैं और बहुत उपयोग की हैं। जो साधक हैं, उनके लिए बहुत काम की हैं।
पहली बात, कृष्ण कहते हैं, जो सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दे। प्रेम छोड़ता है, घृणा छोड़ने से डरती है। क्योंकि घृणा में अपने को सुरक्षित खुद ही करना होता है। प्रेम छोड़ता है। प्रेम का मतलब ही है कि हम दूसरे पर सब छोड़ दें।

मैंने सुना है, एक युवक विवाह करके लौट रहा था। पानी के जहाज से यात्रा कर रहा था। जोर का तूफान आया, उसकी प्रेयसी कंपने लगी और घबड़ाने लगी, लेकिन वह युवक शांत था। उसकी प्रेयसी ने कहा कि तुम इतने शांत क्यों हो! यहां तो मौत दिखाई पड़ती है। नाव डूबेगी लगता है। मल्लाह भी घबड़ा गए हैं। उस युवक ने कहा, घबड़ाओ मत। ऊपर जो है, मैंने सब उस पर छोड़ दिया है। उसकी स्त्री ने कहा, कुछ भी हो, छोड़ा हो या न छोड़ा हो, यहां मौत खड़ी है!
उस युवक ने अपनी म्यान से तलवार खींच ली। नंगी चमकती हुई तलवार थी, उसने अपनी प्रेयसी, पत्नी के कंधे पर तलवार रखी। पत्नी हंसने लगी। उसने कहा, यह तुम क्या खेल कर रहे हो! उस युवक ने पूछा कि नंगी चमकती हुई तलवार; जरा-सा धक्का और तेरी गर्दन अलग हो जाए; तुझे मेरे हाथ में तलवार देखकर भय नहीं लगता? तो उसकी पत्नी ने कहा, तुम्हारे हाथ में तलवार देखकर भय कैसा? तुमसे मेरा प्रेम है।
उस युवक ने तलवार भीतर रख ली और उसने कहा कि उससे मेरा प्रेम है। उसके हाथ में तूफान देखकर मुझे कोई भय नहीं लगता। उसकी मर्जी। अगर डुबाने में ही हमें कुछ लाभ होता होगा, तो ही वह डुबाएगा। और अगर बचने में कोई हानि होती होगी, तो वह हमें नहीं बचाएगा। उस पर छोड़ा हुआ है।
प्रेम छोड़ता है पूरा।
तो कृष्ण कहते हैं, जिसने पूरा मेरे ऊपर छोड़ा है। और जो प्रत्येक काम
को ऐसे करता है, जैसे वह मेरा, कृष्ण का काम है, उसका नहीं है; जिसका अहंभाव पूरा समर्पित है और जो--यह बड़ा कठिन मालूम पड़ेगा सूत्र--और जो आसक्तिरहित है। पत्नी में, बच्चे में, धन में जिसकी कोई आसक्ति नहीं है। जिसने अपना सारा प्रेम मेरी तरफ मोड़ दिया है।
इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक खतरनाक मतलब है, जो लोग आमतौर से ले लेते हैं। वह मतलब यह है कि पत्नी को प्रेम मत करो, बच्चे को प्रेम मत करो। सब तरफ से प्रेम को सिकोड़ लो और परमात्मा के चरणों में डाल दो। यह आमतौर से लिया गया मतलब है, जो खतरनाक है। क्योंकि इसका परिणाम, इसका परिणाम एक ऐसा आदमी होता है, जो सब तरफ से सूख जाता है, रसहीन हो जाता है। और यह पत्नी और बच्चे और परिवार और मित्रों से जो प्रेम को खींचता है, इस छीना-झपटी में ही प्रेम मर जाता है।
यह करीब-करीब ऐसा है, जैसे एक लगाए हुए पौधे को कोई उखाड़कर कहीं और लगाने चला। और उखाड़कर प्रेम को पत्नी की तरफ से, परमात्मा में लगाने में ही प्रेम की जड़ें सूख जाती हैं। वह परमात्मा तक कभी पहुंच नहीं पाता। पत्नी से तो उखड़ जाता है, और परमात्मा तक कभी पहुंच नहीं पाता। लेकिन यह आम भाव है, जो लोगों ने लिया है।
मेरी ऐसी दृष्टि नहीं है। मेरा मानना यह है कि पत्नी के प्रति भी तुम्हारा जो प्रेम है, वह भी कृष्ण का ही प्रेम है, तुम्हारा प्रेम नहीं है। तुम अपने को हटा लो; प्रेम को मत हटाओ। क्योंकि जब कर्मों में तुम कहते हो कि सब कर्म उसके हैं, तो प्रेम भी उसका है। पत्नी के प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, वह भी कृष्ण का है, तुम्हारा नहीं है। और पत्नी में तुम्हें जो भी दिखाई पड़े, पत्नी को देखना बंद कर देना और कृष्ण को देखना शुरू करना। बच्चे से हटाना मत प्रेम को। उसमें सूख जाएगा। पौधा बहुत कमजोर है। वैसे ही तो प्रेम नहीं है। बच्चे से क्या खाक प्रेम है! या पत्नी से क्या प्रेम है! ऐसे ही ऊपर-ऊपर तो लगाए हुए हैं। मौसमी पौधा है। उसको उखाड़कर परमात्मा में लगाने गए, उखाड़ की छीना-झपटी में ही टूट जाता है। और जड़ें उसकी इतनी कमजोर हैं कि वह परमात्मा तक पहुंचती नहीं।
बेहतर तो यह है कि पत्नी में ही और थोड़े गहरे जड़ों को पहुंचा देना। इतने गहरे पहुंचा देना कि पत्नी ऊपर रह जाए और भीतर परमात्मा हो जाए। और बच्चे में प्रेम को इतना उंडेल देना कि बच्चा दिखना बंद हो जाए और बाल-गोपाल दिखाई पड़ने लगें! तो पत्नी नहीं रही, बच्चा नहीं रहा। सारा प्रेम परमात्मा को समर्पित हो गया।
ये दो रास्ते हैं। पहला रास्ता आमतौर से प्रचलित है, मैं उसके सख्त खिलाफ हूं। मेरी व्याख्या तो यही है कि जहां भी तुम्हारा प्रेम हो, वहां परमात्मा को देखना शुरू करना। प्रेमी को भूल जाना और परमात्मा को देखना।

धीरे-धीरे वही पौधा जो तुम्हारी पत्नी पर लगा था, जड़ें फैला लेगा और परमात्मा में प्रवेश कर जाएगा। क्योंकि तुम्हारी पत्नी में काफी परमात्मा है। तुम्हारे पति में काफी परमात्मा है। कोई परमात्मा की वहां कमी नहीं है। और कहीं उखाड़कर ले जाने की जरूरत नहीं है; वहीं गहरा करने की जरूरत है।
प्रेम की गहराई प्रार्थना बन जाती है। और प्रेम अगर पूर्ण गहन हो जाए,
तो जहां पहुंच जाता है, वहीं परमात्मा है।
कृष्ण कहते हैं, सारा प्रेम मुझे दे दे। वे यह नहीं कहते कि उखाड़ ले कहीं से। वे यह कहते हैं, सारा प्रेम मुझे दे दे। जहां से भी दे, मुझको ही देना। तेरी नदी कहीं से भी गिरे, मेरे सागर में ही गिरे। रास्ता कोई भी हो, किनारे कोई भी हों; किनारों से छूटकर तू सागर तक नहीं पहुंच सकेगा। किनारों में बहना मजे से, लेकिन जानना कि ये किनारे भी सागर में पहुंचा रहे हैं।
जीवन की सारी प्रेम-धारा परमात्मा की तरफ बहने लगे, और कहीं आसक्ति न
रह जाए। यह मेरा अर्थ है। सारी आसक्ति परमात्मा की तरफ बहने लगे। और जिस दिन सारी आसक्ति परमात्मा की तरफ बहने लगे, उस दिन स्वभावतः जगत में कोई वैर-भाव न रह जाएगा। यह मेरी व्याख्या समझें, तो ही ख्याल में आएगा।
अगर आप पहली गलत व्याख्या समझते हैं, तो जगत पूरा वैरी हो जाता है। वह पति पत्नी को छोड़कर भागता है, पत्नी वैरी हो जाती है। और जिससे आप प्रेम को तोड़ते हैं, तो तटस्थ होना मुश्किल है। प्रेम को अगर तोड़ते हैं, तो घृणा पैदा करनी पड़ती है, तभी तोड़ पाते हैं। जिस पत्नी को मैंने प्रेम किया है, अगर आज उससे मैं प्रेम को हटाऊं, तो मुझे एक ही काम करना पड़ेगा कि मुझे इसके प्रति घृणा पैदा करनी पड़ेगी!
इसलिए साधु-संत लोगों को कहते हैं कि क्या है तुम्हारी पत्नी में! मांस-हड्डी, मांस-मज्जा, पीप, खून, यही सब भरा हुआ है। इसको देखो। इसको देखने से वितृष्णा पैदा होगी। इसको देखने से घृणा पैदा होगी। किस पत्नी के पीछे दीवाने हो रहे हो, इसमें है ही क्या? सिर्फ कचरे का ढेर है भीतर। उसको जरा देखो।
लेकिन जिस पत्नी में कचरे का ढेर है, और जो साधु-संन्यासी समझा रहे हैं, उनके भीतर क्या है? वही कचरे का ढेर है। और मजा यह है कि वे कचरे के ढेर से ही पैदा हुए हैं। जिस मां से पैदा हुए हैं, उसी कचरे के ढेर से पैदा हुए हैं। उसी का विस्तार हैं। उसी मवाद, उसी खून, उसी हड्डी-मांस का थोड़ा सा और फैलाव हैं।
अगर आपको प्रेम हटाना है संसार से, जबरदस्ती, तो आपको घृणा पैदा करनी पड़ेगी। वैर-भाव पैदा करिए, तो आप कहीं प्रेम को हटा पाएंगे।
और कृष्ण का दूसरा सूत्र है कि वैर-भाव किसी से रखना मत। इस संसार में किसी के प्रति वैर-भाव न रह जाए। बड़ी मुश्किल बात है। संसार में वैर-भाव न रहे, यह तभी हो सकता है, जब संसार में प्रेम-भाव इतना गहरा हो जाए कि वैर-भाव न बचे।
तो संसार से प्रेम को मत तोड़ना, संसार में प्रेम की धारा को गहन करना। गहन करना। और खोदना। और खोदना। और संसार के प्राणों तक प्रेम को पहुंचा देना। कोई वैर-भाव न रह जाएगा। और उस प्राण के केंद्र पर ही परमात्मा है। पांच मिनट रुकेंगे। आज आखिरी दिन है, इसलिए बिना कीर्तन किए कोई भी न जाए। और बीच में कोई उठे न। जब तक धुन चले, तब तक बैठे ही रहें, खड़े भी न हों। पांच मिनट साथ में जोर से कीर्तन में भागीदार हों। शरीर को भी थोड़ा भाग लेने दें।